आर्थिक विचारों का इतिहास

(HISTORY OF ECONOMIC THOUGHT)

लेखक

एम० सी० वैश्य, एम० ए०, एल-एल० बी०

अर्थशास्त्र व लोक प्रशासन विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

रतन प्रकाशन मन्दिर

पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता

बम्बई : दिल्ली : गोरखपुर : इन्दौर : कानपुर : मेरठ : पट

मूल्य :
तेरह रुपये

प्रकाशक :
रतन प्रकाशन मन्दिर,
राजामण्डी, आगरा

मुद्रक :
पदमचन्द जैन
प्रेम इलैक्ट्रिक प्रेस,
घटिया आजम खाँ, आगरा

अपनी पूजनीय स्वर्गीय माता,

जिसकी प्रेरणा का प्रस्तुत पुस्तक परिणाम है,

की

पवित्र स्मृति में

प्रस्तावना

अर्थशास्त्र विज्ञान के अध्ययन मे आर्थिक विचारो के इतिहास के गहन अध्ययन का एक विशेष महत्व है क्योंकि अन्य सभी सामाजिक विज्ञानो के समान वर्तमान अर्थशास्त्र भी एक प्रकार से प्राथमिक मनुष्य की आर्थिक क्रियाओ तथा उसके प्राचीन असंगठित विचारों के अध्ययन से प्रारम्भ होता है। जिस प्रकार वर्तमान मानव तथा उसकी सभ्यता आदि काल मे प्रारम्भ हुये उद्विकास का परिणाम है तथा वर्तमान सभ्यता को भली प्रकार समझने के लिये प्राचीन सभ्यताओ का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है, ठीक इसी प्रकार वर्तमान अर्थशास्त्र—आर्थिक प्रणाली व संस्थाओ—को भली प्रकार समझने के लिये आर्थिक विचारों के उद्विकास के इतिहास का अध्ययन करना अनिवार्य है।

अतीत वर्तमान से बहुत दूर होते हुये भी वर्तमान के साथ समय की अनन्त व अटूट शृंखला के द्वारा जुड़ा हुआ है। उद्विकास की प्रक्रिया सदा गतिशील रहती है। महान अर्थशास्त्री डा० अल्फ्रेडमार्शल की प्रसिद्ध पुस्तक **'Principles of Economics'** के प्रथम पृष्ठ पर लिखित शब्द-समुदाय **'Natura non facit saltum'** इस महान सत्य का पुष्टिकरण करता है।

विचारक, लेखक व समाज सुधारक लेखन कार्यों द्वारा अपने विचारो को व्यक्त करने मे स्वय अपने चारो ओर के सामाजिक वातावरण मे प्रभावित होते है। इतिहासकार, कवि, उपन्यासकार तथा समाजशास्त्री के समान अर्थशास्त्री के विचारो पर भी समाज की आर्थिक परिस्थितियों के प्रभाव की गहरी छाप होती है। अर्थशास्त्री के विचार समय-विशेष मे उपस्थित आर्थिक परिस्थितियो के प्रति उसकी प्रतिक्रिया का प्रतीक होते हैं। परन्तु अर्थशास्त्री स्वय भी अपने विचारो द्वारा अपने समय की आर्थिक नीतियो पर प्रभाव डालकर आर्थिक परिस्थितियों को अपने विचारो के अनुकूल प्रभावित करता है। आर्थिक विचारों का इतिहास इस कथन की पुष्टि करता है।

आर्थिक विचारो के इतिहास से संबन्धित अनेक पुस्तकों मे आर्थिक विचारो का अध्ययन विभिन्न सम्प्रदायों के अन्तर्गत किया गया है। दूसरे शब्दो मे आर्थिक विचारों के इतिहास को भिन्न सम्प्रदायो—संस्थापक, इतिहासवादी, राष्ट्रवादी, गणितिय, समाजवादी इत्यादि—मे विभाजित किया गया है। परन्तु ऐसा केवल

अध्ययन की सुविधा के दृष्टिकोण से ही किया जाता है। सत्य तो यह है कि अर्थशास्त्रियों के भिन्न सम्प्रदायों के मध्य भिन्नता होते हुये भी इनमे घनी मात्रा मे परस्पर निर्भरता पाई जाती है। उदाहरणार्थ कार्लमार्क्स, जिनको समाजवादी सम्प्रदाय का प्रसिद्ध नेता तथा पूँजीवाद का शत्रु स्वीकार किया जाता है, के प्रमुख आर्थिक विचार प्रकृतिवादियो तथा अर्थशास्त्र संस्थापको, विशेषरूप से फ्रेनक्वेस क्वेसने तथा डेविड रिकार्डो, के आर्थिक सिद्धान्तो से प्राप्त हुये है। इसी प्रकार १६ वी शताब्दी मे उत्पन्न सभी विरोधी सम्प्रदाय प्रतिक्रिया के रूप मे एडम स्मिथ द्वारा संस्थापित संस्थापक सम्प्रदाय का ही परिणाम थे। आर्थिक विचारो के भिन्न सम्प्रदायो के मध्य विभाजन की कोई स्पष्ट सीमा रेखा नही है।

विषय के क्रमबद्ध अध्ययन की सुविधा को ध्यान मे रखते हुये प्रस्तुत पुस्तक को छ खण्डो अथवा पुस्तको मे विभाजित किया गया है। पुस्तक के प्रथम खण्ड मे, जिसका शीर्षक "पूर्व-संस्थापित आर्थिक विचार" है, अर्थशास्त्र के जनक एडम स्मिथ के पूर्व विद्यमान प्राचीन, मध्यकालीन, वणिकवादी तथा प्रकृतिवादी विचारधाराओ की व्याख्या की गई है। द्वितीय खण्ड मे, जिसका शीर्षक "संस्थापित आर्थिक विचारधारा" है, अर्थशास्त्र के जनक तथा संस्थापक सम्प्रदाय के प्रवर्तक एडम स्मिथ तथा उनके अनुयायियो—रिकार्डो, माल्थस, सीनियर, जे० बी० से, जान स्टुवार्ट मिल इत्यादि—के आर्थिक विचारो की विवेचना की गई है।

पुस्तक के तृतीय खण्ड मे, "संस्थापित अर्थशास्त्र के आलोचक" शीर्षक के अन्तर्गत, १६ वी शताब्दी मे सक्रिय संथापित अर्थशास्त्र के आलोचको—सिसमोन्डी, सेंट-साइमन, राष्ट्रवादी, इतिहासवादी—के विचारो का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। चतुर्थ खण्ड मे भिन्न समाजवादी सम्प्रदायों के अर्थशास्त्रियो के आर्थिक विचारो का यथाक्रम अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

पुस्तक के पञ्चम खण्ड मे आस्ट्रियन व गणितय सम्प्रदायो, मार्शल, पीगू, कीन्स वेबलन, मिचल, कामनस तथा अन्य अर्थशास्त्रियो के आर्थिक विचारो पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक का षष्टम तथा अन्तिम खण्ड भारत मे आर्थिक विचारो के विकास के विवेचन से सम्बन्धित है। इस खण्ड के चार अध्यायो मे कौटिल्य, दादाभाई नौरोजी, राजा राममोहनराय, गोपालकृष्ण गोखले, रानाडे, गाँधीजी, तथा वर्तमान भारतीय अर्थशास्त्रियो के विचारो की संक्षिप्त व्याख्या की गई है।

इसके अतिरिक्त पुस्तक मे अध्यायो के अन्त मे एक संक्षिप्त अनुक्रमणिका भी प्रस्तुत की गई है। पुस्तक मे कठिन आर्थिक विचारो का सरल तथा प्रभावशाली शैली के द्वारा व्यक्त करने का यथासम्भव प्रयास किया गया है। यदि पुस्तक पाठको के लिये उपयोगी सिद्ध हो पाई तो मै अपने इस प्रयास को सफल तथा परिश्रम को उपयोगी सिद्ध हुआ समझूँगा।

राजस्थान विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र व लोकप्रशासन विभाग के अध्यक्ष प्रो० एम. वी. माथुर से, जिनका आर्थिक विचारो का इतिहास विशेषरूप से अध्ययन विषय है, इस विषय के सम्बन्ध मे मैंने काफी ज्ञान प्राप्त किया है तथा उनके प्रति इस आभार को प्रकट करना मेरे लिये कठिन है। विभाग के अपने सहयोगी व मित्र डा० जे० एम० जोशी का भी मैं, उनके सुझावो के लिये आभारी हूं।

पुस्तक के प्रकाशन के सम्बन्ध मे मैं श्री पदमचन्द जैन का विशेषरूप मे आभारी हूं। उन्होने अपने बहुमूल्य समय को व्यय करके पुस्तक के प्रकाशन मे व्यक्तिगत रुचि लेकर पुस्तक को यथासम्भव कम समय मे ठीक प्रकार छापकर पाठको के समक्ष रखा है। प्रेम इलैक्ट्रिक प्रेस के प्रबन्धक श्री बी. एन. मेहरा का भी मैं आभारी हूं। पुस्तक सम्बन्धी मुद्रण कार्य को उन्होने व्यक्तिगत रुचि के साथ किया है।

पुस्तक के सुधार सम्बन्धी सुझावो का मैं सदा स्वागत करूंगा।

जयपुर,
१, जुलाई, १९६३

एम० सी० वैश्य

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

पूर्व-संस्थापित आर्थिक विचार

पृष्ठ

द्वितीय खण्ड

संस्थापित आर्थिक विचारधारा

पञ्चम खण्ड

आस्ट्रियन, गणितीय व केम्ब्रिज सम्प्रदाय तथा संस्थानिक अर्थशास्त्र

षष्टम खण्ड

भारत में आर्थिक विचारधारा

प्रथम खण्ड

पूर्व-संस्थापित आर्थिक विचार

(Pre-classical Economic Thought)

आर्थिक विचारों के इतिहास की विषय सामग्री तथा महत्व

(The Subject Matter and Importance of History of Economic Ideas)

विषय परिचय

आर्थिक विचारो के इतिहास के अध्ययन का मानव जाति के अतीत काल से लेकर वर्तमान समय तक हुये विचारो के विकास के अध्ययन क्षेत्र मे एक विशेष स्थान है। वास्तव मे आर्थिक विचारों के इतिहास को मानव जाति के विचारो का लिखित संग्रह कहना अनुचित न होगा। आर्थिक विचारो का इतिहास बहुत पुराना है। वास्तव मे यह एक प्रकार से उतना ही पुराना है जितनी पुरानी मानव की विचारने की शक्ति है। आर्थिक विचारो का इतिहास अतीत काल से लेकर वर्तमान समय तक विभिन्न कालों मे विभिन्न लेखकों तथा विचारको के आर्थिक विषयों तथा समस्याओ पर व्यक्त किये गये विचारो का इतिहास है। प्राचीन अभिलेखो के अध्ययन द्वारा हमको मनुष्य के उन प्रयासों का ज्ञान होता है जो वह अपनी जीविका की प्राप्ति के हेतु करता था।

मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये प्रकृति से सदा युद्ध किया है। मनुष्य ने दुर्लभता का किस प्रकार सामना किया, व्यापार तथा वाणिज्य के विकास के लिये किन सिद्धान्तो का पालन किया, वस्तु-विनिमय अर्थव्यवस्था से मुद्रा विनिमय अर्थव्यवस्था मे किस प्रकार तथा कब प्रवेश किया, अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिये किन किन उपायो को अपनाया इत्यादि समस्याओ का विवेचन प्राचीन अभिलेखो मे मिलता है। कोई भी राष्ट्र युद्ध लडने की इच्छा से नही करता बल्कि कुछ वस्तुओ को प्राप्त करने के हेतु कुछ राष्ट्रो को युद्ध करने के लिये विवश होना पडता है। आर्थिक विचारों के इतिहास मे उन उपायों का वर्णन है जो मनुष्यो ने अपने प्राकृतिक वातावरण में आर्थिक आवश्यकताओ की पूर्ति के हेतु अपनाये। आर्थिक विचारो के इतिहास का मानव ज्ञान के सभी क्षेत्रो से सम्बन्ध है। किसी युग विशेष मे विद्यमान हुई राजनैतिक परिस्थितियों, देश की

भौगोलिक स्थिति, धर्म, समाज विज्ञान, सभ्यता, तर्कशास्त्र, राष्ट्रीय दृष्टिकोण इत्यादि सभी उस युग के आर्थिक विचारों को प्रभावित करते हैं। आर्थिक विचारों का इतिहास आर्थिक विचारो के विकास का एक आलोचनात्मक अध्ययन है। यह विभिन्न आर्थिक विचारो के उद्गम स्रोतों तथा इन विचारो के पारस्परिक सम्बन्धो का अध्ययन करता है।

आर्थिक इतिहास, अर्थशास्त्र के इतिहास तथा आर्थिक विचारों के इतिहास के बीच अन्तर—आर्थिक इतिहास (Economic History) *मनुष्य की आर्थिक उन्नति का इतिहास है।* इसके अन्तर्गत किसी राष्ट्र की वाणिज्य, औद्योगिक, बैंकिंग इत्यादि आर्थिक संस्थाओं के क्रमिक विकास का अध्ययन किया जाता है। इसके अध्ययन के द्वारा संसार के विभिन्न देशो मे विभिन्न समयो पर हुई विभिन्न आर्थिक घटनाओं के सम्बन्ध मे ज्ञान प्राप्त होता है। अतीत मे हुई आर्थिक घटनाओं का ज्ञान वर्तमान आर्थिक समस्याओ के निवारण तथा भविष्य सम्बन्धी घटनाओं के अनुमान मे लाभप्रद सिद्ध होता है। इस प्रकार आर्थिक इतिहास के अध्ययन का बहुत व्यावहारिक महत्व है। इसके अध्ययन के द्वारा हमको विभिन्न कालो मे आर्थिक संस्थाओं तथा मनुष्य के आर्थिक वातावरण के सम्बन्ध मे ज्ञान प्राप्त होता है। *उदाहरणार्थ आर्थिक इतिहास के अध्ययन के बिना हम इंगलैंड में हुई प्रसिद्ध औद्योगिक क्रान्ति तथा इसके आर्थिक व सामाजिक परिणामो के सम्बन्ध में कदापि ज्ञान प्राप्त नही कर सकते हैं।* किसी युग के आर्थिक विचार भी उस युग की आर्थिक संस्थाओ से प्रभावित होते हैं तथा इस प्रकार आर्थिक इतिहास व आर्थिक विचारो के इतिहास के मध्य एक गहरा सम्बन्ध है। प्रो० हेने ने आर्थिक इतिहास तथा आर्थिक विचारो के इतिहास के मध्य एक गहरा सम्बन्ध बताते हुये कहा है कि "निस्सन्देह मनुष्यो के विचार उनके चारो ओर के वातावरण से प्रभावित होते है। इसी प्रकार आर्थिक विचार भी बहुधा औद्योगिक वातावरण से प्रभावित व सीमित होते हैं। परन्तु प्रभावित होने तथा सिद्धान्तो का रूप धारण करने के पश्चात् ये विचार स्वयं औद्योगिक विकास तथा स्थिति को प्रभावित करते हैं। उदाहरणार्थ अबन्धनीतिवादी अर्थशास्त्रियो का व्यक्तिवाद उस समय के औद्योगिक विकास का परिणाम था। परन्तु इस व्यक्तिवाद ने स्वयं उद्योग पर अपना प्रभाव डाला। इस प्रकार आर्थिक विचारो का इतिहास सामान्य इतिहास का एक आवश्यक अंग है जो स्वयं इस की व्याख्या करता है तथा इसके द्वारा स्वयं व्याख्या किया जाता है।"[1]

1. "That men's thoughts depend largely upon their surroundings, no one doubts And so it is that economic ideas are coloured and limited—determined sometimes—by industrial environment The individualism

इस प्रकार आर्थिक अथवा औद्योगिक इतिहास तथा आर्थिक विचारों के इतिहास के मध्य एक गहरा पारस्परिक सम्बन्ध है।

अर्थशास्त्र का इतिहास (History of Economics) अर्थशास्त्र के विकास का इतिहास है। इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्र तथा आर्थिक विचारो के बीच अन्तर का ज्ञान होना आवश्यक है। आर्थिक विचारो का आरम्भ बहुत प्राचीन काल से ही हुआ है परन्तु अर्थशास्त्र का आरम्भ बहुत पुराना नही है। अर्थशास्त्र का इतिहास क्रमबद्ध आर्थिक विचारो का इतिहास है। इस दृष्टि से अर्थशास्त्र के इतिहास का आरम्भ केवल एडम स्मिथ की पुस्तक Wealth of Nations (१७७६) के समय से होता है। प्राचीन, मध्यकालीन, वणिक्वादी तथा प्रकृतिवादी कालो के आर्थिक विचारो में क्रमबद्धता का अभाव होने के कारण ये अर्थशास्त्र के इतिहास का विषय नही बन सकते, यद्यपि आर्थिक विचारों के इतिहास में इनका एक विशेष स्थान है। यद्यपि अर्थशास्त्र के इतिहास के अन्तर्गत केवल क्रमबद्ध तथा सगठित आर्थिक विचारो का अध्ययन ही किया जा सकता है, परन्तु आर्थिक विचारो के इतिहास मे बिखरे तथा असगठित आर्थिक विचारों का भी अध्ययन होता है। यही कारण है कि प्राचीन तथा मध्यकालीन आर्थिक विचारो का अध्ययन आर्थिक विचारो के इतिहास के अन्तर्गत तो किया जाता है, परन्तु अर्थशास्त्र के इतिहास के अन्तर्गत कदापि नही किया जाता है। दूसरे शब्दो मे आर्थिक विचारो के इतिहास का क्षेत्र अर्थशास्त्र के इतिहास के क्षेत्र की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। इसके अतिरिक्त यह भी कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र का इतिहास आर्थिक विचारो के इतिहास का एक अग है। सक्षेप मे दोनो अध्ययनो मे दो निम्नलिखित मुख्य अन्तर है।

प्रथम, अर्थशास्त्र का इतिहास आर्थिक विचारो के इतिहास की अपेक्षा बहुत कम पुराना है। इसका आरम्भ केवल १७७६ मे उस समय हुआ जब एडम स्मिथ ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक Wealth of Nations लिखी थी। इस पुस्तक मे आर्थिक समस्याओं का सगठित तथा क्रमबद्ध अध्ययन किया गया था। यही कारण है कि एडम स्मिथ को आज भी अर्थशास्त्र का जनक स्वीकार किया जाता है। परन्तु आर्थिक विचारो का इतिहास बहुत पुराना है। यह एडम स्मिथ के युग से बहुत पूर्व प्राचीन काल के आर्थिक विचारो का भी अध्ययन करता है।

दूसरे, अर्थशास्त्र के इतिहास का क्षेत्र तथा विषय सामग्री आर्थिक विचारो के इतिहास के क्षेत्र तथा विषय सामग्री की अपेक्षा अधिक सकुचित है। केवल क्रमबद्ध ज्ञान तथा सगठित आर्थिक विचार ही अर्थशास्त्र के इतिहास की विषय सामग्री बन सकते हैं। परन्तु आर्थिक विचारों के इतिहास की विषय सामग्री हर समय हर प्रकार के—संगठित व क्रमबद्ध तथा असंगठित—आर्थिक विचार होते हैं। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि आर्थिक विचारो का इतिहास समस्त सामान्य आर्थिक इतिहास का एक अंग है जबकि आर्थशास्त्र का इतिहास केवल आर्थिक विचारो के इतिहास का

ही एक अंग है । आर्थिक इतिहास, आर्थिक विचारो के इतिहास तथा अर्थशास्त्र के इतिहास का पारस्परिक सम्बन्ध निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है ।
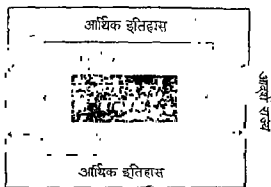
आर्थिक विचारों के इतिहास की अध्ययन रीतियां

आर्थिक विचारो के इतिहास की विषयसामग्री का निम्नलिखित तीन मुख्य रीतियो द्वारा अध्ययन किया जाता है । प्रथम, आर्थिक विचारो के विकास का अध्ययन कालानुसार रीति (Chronological Method) के द्वारा किया जा सकता है । इस रीति के अनुसार विभिन्न लेखको तथा सम्प्रदायो के आर्थिक विचारो का अध्ययन कालक्रम के अनुसार किया जाता है । इस रीति के अनुसार आर्थिक विचारो के इतिहास का अध्ययन करने वाला विद्यार्थी क्रमश: प्राचीन, मध्यकालीन, आर्थिक विचार धाराओ तथा वणिकवादी प्रकृतिवादी सस्थापक, नव-सस्थापक साहचर्य समाजवादी, मार्क्सवादी तथा कीन्सवादी सम्प्रदायो के विचारको की आर्थिक विचारधाराओ का अध्ययन करता है । यदि अध्ययन का क्रम सम्प्रदायो के अनुसार न होकर विभिन्न लेखको के आर्थिक विचारो के आधार पर किया जाता है तब प्राचीन लेखको के विचारो का अध्ययन सर्वप्रथम किया जाता है, तथा एक ही सम्प्रदाय के लेखको के विचारो का अध्ययन विभिन्न लेखको के कालक्रमानुसार किया जाता है । उदाहरणार्थ सस्थापक सम्प्रदाय के विभिन्न अर्थशास्त्रियो के विचारो का अध्ययन करते समय क्रमश: एडम स्मिथ, माल्थस, रिकार्डो, जे० बी० से, मिल इत्यादि के विचारो का अध्ययन किया जाता है । आर्थिक विचारो के अध्ययन की यह रीति अन्य रीतियो की अपेक्षा अधिक पुरानी है । जान फ्रेड बेल (John Fred Bell), जे० एम० फरगूसन (John M. Ferguson), राबर्ट लेकामन (Robert Lekachman), टेलर (Overton H. Tavlor), हेने (Lewis H. Haney) इत्यदि आर्थिक विचारो के इतिहास के अधिकाश लेखको ने अपनी पुस्तको मे अध्ययन की इस रीति को अपनाया है । इस रीति के द्वारा अध्ययन करने से हम को अर्थशास्त्र के विकास

का विस्तृत रूप मे ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इस रीति के द्वारा आर्थिक विचारों का अध्ययन करने से यह भली प्रकार ज्ञात हो जाता कि विभिन्न वर्तमान आर्थिक विचार तथा संस्थायें अनेक प्राचीन लेखकों के आर्थिक विचारों के दुर्बल सूत्रों की नींव पर आधारित हैं। आर्थिक विचारों के अध्ययन की इस रीति से यह भी ज्ञात होता है कि आर्थिक विचारों का विकास समय के साथ निरन्तरता के सिद्धान्त[2] (Principle of Continuity) के नियमानुसार होता रहा है। यद्यपि प्राचीन तथा नवीन आर्थिक विचारधारायें एक दूसरे से भिन्न हैं परन्तु निश्चितता के साथ यह बताना कठिन है कि एक विचारधारा कब तथा कहाँ समाप्त तथा दूसरी कब तथा कहाँ आरम्भ होती है।

दूसरे, आर्थिक विचारो का अध्ययन विचारानुसार रीति (Ideological Method) के द्वारा भी किया जा सकता है। इस रीति के अन्तर्गत आर्थिक धारणाओं (Economic Concepts) के विकास का अध्ययन किया जाता है। उदाहरणार्थ मूल्य, लगान, वेतन तथा ब्याज इत्यादि आर्थिक धारणाओं के सैद्धान्तिक विकास का प्राचीन समय से लेकर अब तक अध्ययन इस रीति की सहायता से किया जाता है। इस रीति में आर्थिक धारणाओं के अध्ययन को विशेष सम्प्रदाय तथा लेखक की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है। इस रीति का मुख्य लाभ यह है कि किसी भी विशेष धारणा के अविरल विकास का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इस रीति के द्वारा अध्ययन करने से लेखकों के विचारों के सम्बन्ध मे पूर्ण ज्ञान प्राप्त होना कठिन है क्योंकि केवल उन्ही लेखकों की व्याख्या की जाती है जिन्होने विशेष आर्थिक धारणा के विकास मे योगदान दिया होता है। एडमण्ड विठाकर (Edmund Whittaker) ने अपनी पुस्तक **A History of Economic Ideas** मे इस रीति को अपनाया है।

आर्थिक विचारो के अध्ययन की तीसरी रीति के अनुसार अर्थशास्त्र तथा आर्थिक विचार सामाजिक व आर्थिक प्रगति के ही रूप हैं। आर्थिक प्रेरणाओं की अनीतिवादी रूप मे व्याख्या की जाती है तथा विभिन्न आर्थिक वर्गों के बीच साधनो तथा आय के वितरण पर निरन्तर लड़ाई होती बताई जाती है। उदाहरणार्थ रिकार्डो के विचारानुसार श्रमिको के वेतनो मे केवल साहसियों के लाभ मे कमी करके ही वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार श्रमिकों तथा साहसियों मे सदा राष्ट्रीय आय का अधिक हिस्सा प्राप्त करने के लिये संघर्ष होता रहता है। यदि भूस्वामी को भी सम्मिलित किया जावे तो उत्पत्ति के सभी साधनों के स्वामियों—भूस्वामी, श्रमिक तथा पूँजीपति—के बीच राष्ट्रीय आय का स्वयं अधिक भाग प्राप्त करने के

---

2. मार्शल ने इस सिद्धान्त को अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Principles of Economics मे बहुत अधिक महत्व दिया है। यह पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर लिखित **"Natura Non Facit Saltum"** से स्पष्ट है।

हेतु सदा प्रतियोगिता तथा संघर्ष होते रहते हैं। रिकार्डो के पश्चात् कार्ल मार्क्स तथा उन के समाजवादी शिष्यों ने भी आर्थिक विचारों के अध्ययन मे अनात्मवादी व्याख्या (Materialistic Interpretation) रीति का प्रयोग किया है। यद्यपि समाज मे विभिन्न वर्गों के बीच समय समय पर संघर्ष होते रहे है परन्तु मार्क्स के विचार पूर्णतया सत्य नही हैं क्योंकि यदि समाज में सदा निरन्तर वर्गसंघर्ष होता रहता तो वर्तमान समाज का जीवित रहना कदापि सम्भव न हुआ होता। इस के अतिरिक्त वर्तमान समाज मे पहले की अपेक्षा अधिक आर्थिक प्रगति विद्यमान है। वर्तमान सहकारिता पद्धति कार्ल मार्क्स के वर्गसंघर्ष के सिद्धान्त (Theory of Class Struggle) को कुछ अंश तक अवश्य ही असत्य सिद्ध करती है।

आर्थिक विचारों के इतिहास के अध्ययन का महत्व

आर्थिक विचारो के इतिहास का अध्ययन वर्तमान अर्थशास्त्र तथा समाज शास्त्र के विद्यार्थी के लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण है। आर्थिक विचारो का इतिहास मनुष्य के आर्थिक ज्ञान के विकास का संग्रह है। इस के अध्ययन के द्वारा हम को अतीत से वर्तमान समय तक के आर्थिक विचारो का क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त होता है। यह ज्ञान अर्थशास्त्र के विद्यार्थी के लिये अन्य आर्थिक समस्याओ के समझने मे सहायक सिद्ध होता है। इस के ध्यानपूर्वक अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि अतीत, वर्तमान तथा भविष्य मे एक गहरा सम्बन्ध है। वर्तमान आर्थिक समस्याओ की स्थापना तथा विकास मे भूतकाल के अनुभव का प्रयोग किया जाता है। एक कहावत के अनुसार अनुभव मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति है। परन्तु अनुभव सदा भूतकाल की ओर संकेत करता है। जब भी भूतकाल का प्रश्न उठता है तभी आर्थिक विचारो के इतिहास के अध्ययन का महत्व स्पष्ट हो जाता है।

इसके अतिरिक्त वर्तमान आर्थिक नीतियो को ठीक प्रकार से समझने के लिये पूर्व काल की आर्थिक नीतियो का भी अध्ययन आवश्यक होता है। परन्तु पूर्व काल की आर्थिक नीतिया स्वयं उस काल के आर्थिक विचारों से प्रभावित हुई हैं। इस से यह स्पष्ट है कि पूर्व काल की आर्थिक नीतियो को उस काल के आर्थिक विचारो का अध्ययन किये बिना ठीक प्रकार से नही समझा जा सकता है। इस प्रकार वर्तमान आर्थिक नीतियों के अध्ययन के लिये आर्थिक विचारो के इतिहास का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

इस के अतिरिक्त आर्थिक विचारो के अध्ययन द्वारा हमारे विचार संकुचित न रह कर विस्तृत हो जाते हैं। इस के अध्ययन से हम को यह ज्ञान प्राप्त होता है कि आर्थिक विचार किसी एक व्यक्ति, समय, तथा राष्ट्र के एकाधिकार नही हैं। इस के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन विचार भी वर्तमान विचारों के विकास में योगदान दे सकते हैं तथा प्राचीन का वर्तमान के लिये बड़ा महत्व होता है। यदि आर्थिक विचारो का इतिहास न हुआ होता तो हमारा वर्तमान अर्थशास्त्र

बहुत अधूरा हुआ होता। उदाहरणार्थ ब्याज के संस्थापक (Classical) तथा नव-संस्थापक (Neo-classical) सिद्धान्तों की विषय सामग्री क्या है, यह हम को संस्थापक तथा नव-संस्थापक आर्थिक विचारधाराओं के अध्ययन से ही ज्ञात हो सकती है। इस के अतिरिक्त कीन्स का ब्याज का सिद्धान्त भी संस्थापक तथा नव-संस्थापक ब्याज के सिद्धान्तों की आलोचनाओं का परिणाम है। यदि प्राचीन ब्याज के सिद्धान्त न हुये होते तथा उन मे दोष न हुये होते तो कीन्स के सिद्धान्त का सम्भवतः जन्म न हुआ होता। यही बात अन्य आर्थिक सिद्धान्तों के विषय में भी सत्य है। परन्तु इन सब के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करने के लिये हम को आर्थिक विचारों के इतिहास के अध्ययन की शरण लेनी पड़ती है। उपरोक्त संक्षेप व्याख्या से वर्तमान युग के लिये आर्थिक विचारों के इतिहास के अध्ययन का महत्व स्वयं स्पष्ट है।

विशेष अध्ययन सूची

1. Lewis H. Haney : History of Economic Thought (1949), Chapter, I
2. John Fred Bell : A History of Economic Thought, Chapter, I
3. Edmund Whittaker : A History of Economic Ideas, Preface.
4. J. A. Schumpeter : History of Economic Analysis, Chapter, 1, pp. 4 to 6

प्रश्न

1. Discuss the nature and importance of 'history of economic thought'. How does it differ from the 'history of economic analysis'?

(राजस्थान, १९५६)

2. Discuss the importance of the study of history of economic thought.

(राजस्थान, १९६२)

3. Discuss the relation between 'economic history and 'history of economic thought'.

अध्याय

प्राचीन आर्थिक विचार

(Ancient Economic Thought)

विज्ञान के रूप मे अर्थशास्त्र के अध्ययन का आरम्भ केवल अठारहवी शताब्दी के मध्य से ही आरम्भ हुआ था। अर्थशास्त्र के अध्ययन मे रुचि रखने वाले सभी व्यक्ति यह भली प्रकार जानते है कि एडम स्मिथ (Adam Smith) आज भी अर्थशास्त्र के जनक स्वीकार किये गये हैं। परन्तु इस का यह अर्थ कदापि नही है कि एडम स्मिथ के पूर्व आर्थिक विचारो का निर्माण नही हुआ था। सत्य तो यह है कि आदि काल से ही किसी न किसी रूप मे अर्थशास्त्र मनुष्य के अध्ययन का विषय रहा है। परन्तु प्राचीन समय मे लेखको के अर्थशास्त्र सम्बन्धी विचार मुख्यतया बिखरे हुये तथा अधूरे ही थे। अरस्तू ने इकोनोमिका (Economica) नामक अपनी दो पुस्तको मे अर्थशास्त्र को गृह प्रबन्ध का अध्ययन बताया था। उन के विचारानुसार धन की प्राप्ति व सुरक्षा तथा उस का उचित प्रयोग करना ही अर्थशास्त्र का विषय था।

प्रारम्भिक क्रिस्तानी काल तथा मध्यकाल मे अर्थशास्त्र क्रिस्तानी धार्मिक शिक्षा के प्रचार का एक अग बन गया था। इस समय की विचारधारा के अनुसार समाज लेखको तथा तत्त्वज्ञानियो ने यह प्रचार किया था कि ईश्वरीय इच्छानुसार कार्य करके व्यक्तिगत मुक्ति प्राप्त करना ही मानव जीवन का मुख्य लक्ष्य था। अतः इस काल के लेखको ने अर्थशास्त्र के अध्ययन की ओर बहुत कम ध्यान दिया था। प्राचीन काल मे अर्थशास्त्र, तर्कशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीति, नीतिशास्त्र आदि अन्य विषयो का एक अग समझा जाता था।

प्राचीन काल ही नहीं, बल्कि सोलहवी तथा सत्रहवी शताब्दियो मे भी वणिकवादी (Mercantilists) तथा उनके पश्चात् प्रकृतिवादी (Physiocrats) अर्थशास्त्र को विज्ञान का रूप प्रदान करने मे असफल सिद्ध हुये थे। प्राचीन व मध्यकालीन लेखको तथा वणिकवादियो[1] व प्रकृतिवादियो[2] के असंगठित-व

---

1. सविस्तार अध्ययन के लिये चौथे अध्याय को पढ़िये।
2. सविस्तार अध्ययन के लिये पाँचवें अध्याय को पढ़िये।

बिखरे विचारों को एकत्रित करने तथा उनका विश्लेषण करने का श्रेय केवल एडम स्मिथ को ही प्राप्त हुआ था।

प्राचीन आर्थिक विचारों के अध्ययन की आवश्यकता

यद्यपि प्राचीन आर्थिक विचार अपर्याप्त, अधूरे तथा धार्मिक ग्रन्थों में बिखरे रूप में विद्यमान हैं परन्तु एक प्रकार से प्राचीन आर्थिक विचारों को वर्तमान अर्थशास्त्र की आधारशिला कहना अनुचित न होगा। इस सत्य से किसी को भी कोई इन्कार नहीं हो सकता कि वर्तमान को भली प्रकार समझने तथा भविष्य के सम्बन्ध में ठीक प्रकार से अनुमान लगाने के लिये भूतकाल का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना आवश्यक है। यही बात आर्थिक विचारों के विकास के इतिहास के अध्ययन के सम्बन्ध में भी सत्य है। उदाहरणार्थ प्रकृतिवादी आर्थिक विचारधारा को भली प्रकार समझने के लिये उस के पूर्व विद्यमान वणिकवादी आर्थिक विचारधारा का भली प्रकार अध्ययन करना आवश्यक है। इसी प्रकार यदि हम एडम स्मिथ तथा उन के अनुयायियों के आर्थिक विचारों को भली प्रकार से समझना चाहते हैं तो हमारे लिये प्रकृतिवाद (Physiocracy) तथा वणिकवाद (Mercantilism) की मुख्य विशेषताओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना अनिवार्य हो जाता है। परन्तु प्रकृतिवाद तथा वणिकवाद के सम्बन्ध में सही ज्ञान प्राप्त करने के लिये मध्यकालीन व प्राचीन अधूरे आर्थिक विचारों को समझना आवश्यक है। इतना ही नहीं यह कहना भी अनुचित न होगा कि कीन्स के नये अर्थशास्त्र को समझने के लिये भी प्राचीन आर्थिक स्थिति व विचारों के सम्बन्ध में ज्ञान होना आवश्यक है। वर्तमान अर्थशास्त्र तथा प्राचीन व मध्यकालीन आर्थिक विचारों के बीच एक लड़ी के समान सम्बन्ध है जिस को निम्नलिखित प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :

कीन्स के नये अर्थशास्त्र को समझने के लिये → संस्थापित अर्थशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है। परन्तु स्वयं संस्थापित अर्थशास्त्र को समझने के लिये → एडम स्मिथ तथा उसके अनुयायियों के आर्थिक विचारों का अध्ययन आवश्यक है। परन्तु एडम स्मिथ को समझने के लिये →

→ प्रकृतिवादियों के आर्थिक विचारों का अध्ययन आवश्यक है। इन को समझने के लिये → वणिकवादियों के आर्थिक विचारों का अध्ययन अनिवार्य है। वणिकवादी आर्थिक विचारों के समझने के लिये → प्राचीन तथा मध्यकालीन अधूरे आर्थिक विचारों का अध्ययन आवश्यक है।

प्राचीन यहूदी तथा हिन्दू समाज

पाश्चात्य प्राचीन आर्थिक विचार अधिकतर आचरण सम्बन्धी नियमों तथा कानून इत्यादि के द्वारा स्पष्ट किये गये हैं। इस दृष्टिकोण से यहूदियों के आर्थिक विचार प्राचीन कहे जा सकते हैं। यहूदी सरकार व शिक्षा का मुख्य उद्देश्य जन साधारण द्वारा कानून का पालन कराना था। जीवन का लक्ष्य मूसा के आदेशों (Commandments of Moses) का पालन करना था। यहूदियों के उन नियमों के अध्ययन से, जिनका वे जीवन में पालन करते थे, ज्ञात होता है कि इस काल में कृषि, व्यापार, ब्याज, कराधान, श्रम व वेतन, एकाधिकार तथा उत्तराधिकार इत्यादि आर्थिक विषयों के सम्बन्ध में लोग निर्धारित नियमों का पालन करते थे।

मूसा के नियमानुसार यहूदी अन्य यहूदी को ब्याज पर द्रव्य उधार नहीं दे सकता था।[3] इस नियम के अनुसार निर्धनों को ऋण देने में दया का प्रयोग करना आवश्यक था तथा उन से ब्याज प्राप्त करना मना था। भारतवर्ष में भी प्राचीन ग्रन्थों में अधिक ब्याज का लेना मना था। दामदुप्त के नियमानुसार ब्याज की अधिकतम मात्रा मूलधन से अधिक नहीं हो सकती थी। वशिष्ट के अनुसार ब्राह्मण तथा क्षत्रिय ब्याज पर किसी भी वस्तु को उधार नहीं दे सकते थे। इस प्रकार प्राचीन यहूदी (Hebrew) तथा भारतीय समाज में आरम्भ में ब्याज लेना बुरा समझा जाता था। यद्यपि कुछ समय पश्चात् ब्याज लेने पर प्रतिबन्ध समाप्त हो गये थे परन्तु तब भी ब्याज की दरें निर्धारित कर दी गई थी और निर्धारित दर से अधिक ब्याज लेना बुरा समझा जाता था।

ब्याज के अतिरिक्त प्राचीन यहूदी तथा भारतीय समाजों में व्यापार के क्षेत्र में भी कुछ नियम प्रचलित थे। अन्तरवर्गीय आर्थिक शोषण की समस्या का निवारण करने के उद्देश्य से वस्तुओं का उचित मूल्यों पर क्रय-विक्रय होता था। एकाधिकार तथा सट्टे के द्वारा वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि करना उतना ही बुरा समझा जाता था जितना कि ब्याज का लेना बुरा समझा जाता था। आवश्यक वस्तुओं का निर्यात करना मना था। अकाल के समय वस्तुओं की संचय (Hoarding) करना भी मना था। व्यापारियों द्वारा उपभोक्ताओं के शोषण को समाप्त करने के उद्देश्य से उनके अधिकतम लाभ की मात्रा १०% निश्चित कर दी गई थी। इसी प्रकार कम नाप व तोल व वस्तुओं में मिलावट करने के विरुद्ध भी नियम बनाये गये थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार राजा को खानों से प्राप्त सारे उत्पादन को अपने पास रखना चाहिये। राजा को खानों की देख भाल करने के लिये अधिकारी नियुक्त करने चाहिये। कौटिल्य के अनुसार जंगल, नदी, हाथी इत्यादि भी राज्य की सम्पत्ति होनी चाहिये तथा इन के उपयोग करने पर कर लगाना चाहिये।

प्राचीन समाज में श्रम तथा जाति के सम्बन्ध मे भी कुछ नियम विद्यमान थे। यहूदी समाज में श्रम को माननीय समझा जाता था। परन्तु कृषि का प्राचीन समय मे अधिक महत्व होने के कारण कृषि-श्रमिक तथा उस के वेतन की ओर अधिक ध्यान दिया जाता था। प्राचीन काल मे व्यापार व उद्योग का विकास नही हुआ था और यही कारण है कि यहूदी समाज मे माननीय मूसा नियम (Mosaic Law) मे व्यापार तथा कारीगरो के वेतन के नियमन के सम्बन्ध मे कोई विवरण नही है। परन्तु कुछ समय पश्चात् व्यापार तथा उद्योग का विकास होने के कारण उद्योगो में काम करने वाले कारीगर श्रमिको के वेतनो का नियमन भी किया जाने लगा। जाति की प्रथा प्राचीन हिन्दू समाज मे प्रचलित थी। प्राचीन हिन्दू समाज मे जाति के आधार पर ही आर्थिक व सामाजिक वर्ग बने थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चार मुख्य वर्ण थे। प्रत्येक वर्ण के व्यक्ति एक निश्चित प्रकार की आर्थिक क्रियायें ही कर सकते थे। ब्राह्मणो का कार्य वेद पढ़ना तथा पढ़ाना, धर्म का प्रचार करना, दूसरो के प्रति त्याग करना तथा दान प्राप्त करना था। इन को समाज मे उच्चतम स्थान प्राप्त था। क्षत्रियों का कार्य बाण-विद्या मे निपुणता प्राप्त करके देश की रक्षा करना था। इन को भी समाज मे विशेष सम्मान प्राप्त था। इस कार्य के उपलक्ष मे उनको करो के द्वारा आय प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था। वैश्यों का मुख्य कार्य कृषि तथा व्यापार करना था। शूद्रो का कार्य अपने से तीन उच्च वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य-लोगो की सेवा करना था। राजा का कर्त्तव्य था कि वह इस बात को देखे कि चारो वर्णों के लोग अपने अपने निश्चित वर्ण के कार्य को ठीक प्रकार से करते हैं अथवा नही। यद्यपि प्राचीन हिन्दू समाज में आर्थिक क्रियाएं जाति तथा वर्ण सस्था पर आधारित थी परन्तु आपत्ति के समय मे किसी उच्च वर्ण के लोग निम्न वर्ण के लोगो के कार्यों को भी कर सकते थे। सामान्यतया एक वर्ण के लोग दूसरे निम्न वर्ण के लोगों से सामाजिक सम्बन्ध स्थापित नही कर सकते थे तथा किसी भी मनुष्य को अपने से नीचे वर्ण की स्त्री से सम्बन्ध रखने पर मृत्यु का दण्ड दिया जा सकता था।

व्यापार अधिक लाभप्रद होते हुये भी, प्राचीन काल मे कृषि का उच्चत आर्थिक महत्व था। कृषि यहूदियो के राष्ट्रीय जीवन की आधारशिला थी। य राज्य तथा चर्च भी इसी पर आधारित थे। प्राचीन यहूदी कहावत के अनुसा लोग भूमि को जोतते हैं उन को सदा प्रचुरता से रोटी प्राप्त होती है। को स्थाई पु जी माना जाता था। प्राचीन हिन्दू समाज मे भी कृषि को आर्थि क्रियाओं मे सर्वप्रथम स्थान प्राप्त था। व्यापार का स्थान कृषि के बाद ही था। करी को सब से खराब समझा जाता था। इसी कारण प्राचीन हिन्दू समाज भी लगभग उसी प्रकार की कहावत प्रचलित थी जो यहूदियों के बीच प्रचलित थी। आज भी प्राचीन समय में राष्ट्र की अर्थव्यवस्था मे कृषि के उच्च स्थान को स कहावत के द्वारा

स्पष्ट किया जाता है "उत्तम खेती मध्यम बन्ज (व्यापार) अधम चाकरी भीख निदान "इस का अर्थ यह है कि कृषि सब से अच्छी आर्थिक क्रिया है, इसके पश्चात् व्यापार तथा आर्थिक क्रियाओं मे सब से खराब नौकरी है।

प्राचीन काल में कृषि को प्रधान महत्व देने का मुख्य कारण यह था कि उस काल मे लोग चरागाहयुग (Pastoral Age) को छोड कर कृषि युग (Agricultural Age) में प्रवेश कर रहे थे। उनके ऐसा करने का मुख्य कारण यह था कि कृषि के अन्तर्गत जीवन तुलनात्मक रूप में अधिक सुरक्षित था। चेरागाह युग में मनुष्य को सदा स्थान से स्थान अपने पशुओं के साथ भटकते फिरना पडता था। यह कार्य काफी कष्टप्रद था। मनुष्य स्वभाव से जीवन को आराम से व्यतीत करने वाला जीव है। कृषि जीवन जिस मे कि मनुष्य को एक स्थान पर बस कर भूमि को अपने पशु धन की सहायता से जोत कर अनाज का उत्पादन करना पड़ता था, चरागाह जीवन की तुलना मे अधिक सुलभ तथा सुखी था। मनुष्य एक स्थान पर बैठ कर निश्चितता के साथ जीवन के दिन सुख से काट सकता था। इस के अतिरिक्त कृषि मनुष्य जाति के बीच सामाजिक सम्बन्धो की भी जननी सिद्ध हुई। समय समय पर भिन्न स्थानों पर भटकते रहने वाली अवस्था मे मनुष्यो मे पारस्परिक सामाजिक सम्बन्ध स्थापित नही हो सकते थे। परन्तु जब एक ही स्थान पर अनेक परिवारो ने बस कर कृषि कार्य आरम्भ किया तो हितों की समानता तथा मिलकर एक साथ रहने की आवश्यकता ने सामाजिक सम्बन्धो को जन्म दिया। यही कारण था कि प्राचीन समय के धार्मिक ग्रन्थो, लेखो व कहावतो में कृषि को श्रेष्ठ बताया गया था। व्यापार तथा उद्योग पर महत्व न देने का एकमात्र कारण यह था कि ये दोनों अवस्थायें आर्थिक विकास के क्रम मे कृषि के पश्चात् ही विद्यमान होती हैं।

प्राचीन काल मे समाज को सन्तुलित अवस्था मे रखने के उद्देश्य से समाज नियमन किया जाता था। प्राचीन हिन्दू तथा यहूदी समाज मे पुराने विचारों को अच्छा समझा जाता था तथा वही राष्ट्रीय जीवन अच्छा था जिसमे न्यूनतम परिवर्तन होते थे। इस काल मे आर्थिक क्रियायें धार्मिक उद्देश्यों पर केन्द्रित थी। जीवन का धार्मिक उद्देश्य ईश्वरभक्ति के द्वारा मुक्ति प्राप्त करना था। सादगी साथ जीवन व्यतीत करने में ही मनुष्य का कल्याण समझा जाता था।

प्राचीन यूनान में आर्थिक विचार—उपलब्ध सामग्री से ज्ञात होता है कि प्राचीन यूनान की सभ्यता तथा एशिया की सभ्यता मे कुछ बातो मे समानता है। प्राचीन यूनानियो के आर्थिक विचारों के सम्बन्ध मे अनेक स्रोतो से ज्ञान प्राप्त होता है। हिरोडोटस (Herodotus) व थियुसिडीस (Thucidides) ने अपनी इतिहास की पुस्तको मे आर्थिक विचारों के अध्ययन को महत्व दिया। सुप्रसिद्ध यूनानी चिकित्सक हिपोक्रेटिस (Hippocrates) ने सामाजिक तथा आर्थिक जीवन पर

पड़ने वाले प्राकृतिक वातावरण के प्रभावों के सम्बन्ध में लिखा। डमोक्रिटस ने धन व कृषि के सम्बन्ध में लिखा। पाँचवीं शताब्दि ईसा पूर्व में प्रोटगोरस (Protagorus) तथा पोलस (Polus) ने नीतिशास्त्र (Ethics) तथा राज्य के सिद्धान्त (Theory of State) का सविस्तार अध्ययन किया। तीसरी शताब्दि ईसा पूर्व मे जीनो (Zeno) तथा एपीक्युरस (Epicurus) ने मानव जीवन के अन्तिम लक्ष्य के सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट किये। परन्तु इस काल के आर्थिक विचारों के सम्बन्ध मे अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये हम को सुप्रसिद्ध तीन यूनानी लेखकों प्लेटो (Plato), अरस्तू (Aristotle) तथा जीनोफन (Xenophon) के आर्थिक विचारों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिये।

जीनोफन (४४४-३५४ ईसा पूर्व) ने, जो सैनिक इतिहास लेखक तथा **Anabasis** के लेखक थे, अपने अवकाश के समय में गृह प्रबन्ध तथा सम्पत्ति *के विषयों पर अनेक छोटी पुस्तकें लिखी हैं। अपनी पुस्तक* **Oeconomicus** मे उन्होंने कृषि की अत्यधिक प्रशसा की है तथा प्रकृति को सभी प्रकार के उत्पादन का स्रोत कहा है। उन्होंने खेत-सम्बन्धी क्रियाओं को अत्यधिक स्वास्थ्यप्रद व रमणीय व्यवसाय बताया है। उनके विचार में व्यापारी तथा कारीगर एक ही स्थान पर निरन्तर बैठे रह कर कार्य करने से व्यक्ति अस्वस्थ हो जाते हैं परन्तु भूमि पर कार्य करने वाले श्रमिक सदा स्वस्थ रहते है। वे दास-श्रम (Slave Labour) के पक्ष मे थे परन्तु दासो के प्रति उनके स्वामियों को अच्छा सलूक करना चाहिये। उन्होंने धन के विषय पर भी अपने विचार स्पष्ट किये हैं। उनके अनुसार धन की मुख्य विशेषता इसकी उपयोगिता है। यदि किसी मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं की अपेक्षा अधिक भौतिक सामग्री प्राप्त है तो वह धनी है। इस प्रकार यह सम्भव है कि एक सन्तुष्ट गरीब व्यक्ति अन्य उस धनी व्यक्ति की अपेक्षा जिस की आवश्यकताओं तथा अभिलाषाओं की सन्तुष्टि नही हुई है, अधिक धनी हो सकता है।

अपनी दूसरी **Ways and Means to Increase the Revenue of Athens** नामक पुस्तक मे जीनोफन ने राजस्व (Public Finance) क विवेचन किया है। उन्होंने बहुत कुशलतापूर्वक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ उचित कर के सिद्धान्तो की विवेचना की है। उनके विचारानुसार विदेशी [illegible] राज्य के लिये आगम का उत्तम स्रोत है और इसी कारण उन्होंने राज्य मे व्यापारियो के साथ अच्छा सलूक करने का अनुरोध किया है। उन्हें मूल्य निर्धारण सिद्धान्त पर प्रकाश डाला है तथा यह स्पष्ट किया है कि मूल्य ओं की मांग तथा पूर्ति के द्वारा निश्चित होते हैं। वे चाँदी के बडे समर्थक थे। उनके विचार मे चाँदी की माँग असीमित होने के कारण इसके उत्पादन में उच्चावचन होने पर इसका मूल्य स्थिर रहता है। यह गुण सोने मे विद्यमान नहीं है, ऐसा

उनका विचार था। जीनोफन ने अपने ग्रन्थ में श्रम-विभाजन के लाभ तथा उत्पति-ह्रास नियम के सम्बन्ध में भी अपने विचार स्पष्ट किये हैं। उपरोक्त सभी विषयों पर उनकी विवेचना यह सिद्ध करती है कि वे एक व्यावहारिक व्यक्ति थे तथा उनके ये विचार उस काल के जीवन अनुभव का एकमात्र विश्लेषण हैं।

प्लेटो (४२७—३४७ ईसा पूर्व) एक रईस परिवार से थे। वे सुप्रसिद्ध यूनानी तत्त्वज्ञानी सौक्रटीस (Socrates) के सुप्रसिद्ध शिष्य थे। परेक्लीस (Pericles) (४५६—४३१ ईसा पूर्व) के समय पश्चात् एथन्स (Athens) में हुये अत्याचारों, अन्यायों तथा अपने गुरु की क्रूर मृत्यु के वे स्वयं दर्शक थे। वे अनेक प्रसिद्ध संवादों (dialogues), जिनमे प्रमुख वक्ता स्वयं उनके गुरु हैं, के लेखक थे। इन संवादों के माध्यम के द्वारा प्लेटो ने न्याय, सदाचार, धर्म, शिक्षा, सरकार इत्यादि विषयों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। अपनी **The Republic** तथा **The Laws** नामक दो प्रसिद्ध पुस्तकों में उन्होंने क्रमश: आदर्श समाज (Ideal Society) तथा सम्भव चिरस्थायी राज्य (Possible Enduring Society) का वर्णन किया है।

प्लेटो के आर्थिक विचार उन के न्याय तथा आदर्श राज्य सम्बन्धी उन तर्कों का परिणाम है जिन की विवेचना उन्होंने अपनी पुस्तक **The Republic** मे की है। प्लेटो का राज्य का सिद्धान्त तथा आर्थिक क्रियाओं का विचार श्रम विभाजन के विचार पर आधारित है। श्रम विभाजन मनुष्यों की प्रकृति में भिन्नता होने के कारण उत्पन्न होता है। सभी मनुष्य स्वभाव तथा शरीर मे समान नहीं होते हैं। मानव स्वभाव भिन्न होने के कारण सभी मनुष्य एक व्यवसाय मे कुशल सिद्ध नहीं हो सकते। इसके विपरीत स्वभाव की भिन्नता के कारण ही हम भिन्न व्यवसायों को अपनाते हैं। यह विचार रिकार्डो की उस प्रसिद्ध उदाहरण के समान है जो उन्होंने श्रमविभाजन के पक्ष मे अपनी पुस्तक **Principles of Political Economy** के पृष्ठ ८३ पर footnote मे दी है।[4] श्रमविभाजन के लाभो के सम्बन्ध मे प्लेटो ने अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा है कि "जब एक मनुष्य केवल एक ही कार्य को जिसमें वह निपुण है ठीक समय पर करता है तब वस्तुयें अच्छे प्रकार की तथा अधिक मात्रा मे सुविधा के साथ बनाई जा सकती हैं।"[5] ठीक इसी प्रकार के विचार श्रमविभाजन के पक्ष मे एडम स्मिथ ने भी व्यक्त किये हैं। परन्तु प्लेटो ने

अपनी दूसरी पुस्तक The Laws मे, जो पहली पुस्तक The Republic से लगभग तीस वर्ष पश्चात् लिखी गई थी, प्लेटो ने आदर्श राज्य स्थापित करने के विचार के स्थान पर व्यवहारिक दृष्टिकोण को अपनाया है। इस पुस्तक मे प्लेटो आदर्श राज्य के स्थान पर उस राज्य को चित्रित किया है तथा जिसको स्थापित करना सम्भव है। प्लेटो के लगभग ५,००० व्यक्तियों के समुद्र से दूर स्थापित इस स्वय परिपूर्ण राज्य मे प्रत्येक व्यक्ति सन्तुष्ट जीवन व्यतीत करता है सभी प्रकार की आर्थिक क्रियाओ पर राज्य का कडा नियंत्रण है। इस राज्य मे निर्धनता व अत्यधिक धन की समस्याये विद्यमान नही है तथा राज्य के हर नागरिक को आवश्यक वस्तुयें व जीवन के सुख पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त हैं। जनसख्या को स्थिर रखने के उद्देश्य से कम आयु में विवाह करना मना है तथा राज्य के बाहर उपनिवेशो (Colonies) को स्थापित करना आवश्यक है। मुद्रा इस विशेष प्रकार की है कि केवल उस नगर-राज्य मे स्वीकार की जा सकती है, बाहर नही। ब्याज पर रुपया उधार देना मना है तथा उधारकर्ता को ऋण का भुगतान करने के लिये बाध्य नही किया जा सकता है। दासो को केवल कृषि कार्य मे ही काम प्राप्त हो सकता है। व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने की आज्ञा है। व्यापार तथा उद्योग राज्य मे रहने वाले विदेशियो के हाथों मे है। राज्य के नागरिक शिल्पकला का कार्य नही कर सकते हैं। प्लेटो के राज्य मे विज्ञापन पर भी प्रतिबन्ध है।

प्लेटो के विचारानुसार जीवन का लक्ष्य धन को प्राप्त करना नही है। आदर्श जीवन का लक्ष्य आत्म ज्ञान को प्राप्त करना है। जीवन स्वय अपना लक्ष्य है। उनके विचारानुसार जीवन मे सभी प्रकार की आर्थिक व राजनैतिक क्रियायें आचार के नियमों के अनुसार की जानी चाहिये।

अरस्तू (३८४—३२२ ईसा पूर्व) प्लेटो के शिष्य थे। उन्होने अपने गुरू के विचारों का प्रचार किया। राज्य की संस्था की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त करते हुये उन्होने कहा है कि परिवार तथा गाँव के समान राज्य भी जीवन की आवश्यकताओ के द्वारा उत्पन्न होता है। मनुष्य स्वभाव से एक साथ मिल कर रहना पसद करता है। मनुष्य के ऐसा करने से राज्य का बनना सम्भव होता है। यद्यपि अरस्तू का आदर्श राज्य का विचार प्लेटो के विचार से बहुत कुछ बातो मे समान है, परन्तु अरस्तू के विचारानुसार सभी नागरिकों का राज्य के शासन मे हाथ होना चाहिये। परन्तु नागरिकता केवल सैनिको, प्रोहितो, शासको तथा राजा को ही प्राप्त हो सकती थी। दासो (slaves) को, जिनकी सख्या राज्य मे अधिक थी, नागरिकों का स्थान प्राप्त नही हो सकता था। व्यापारी, कारीगर तथा कृषि-श्रमिको को नागरिकता प्राप्त नहीं हो सकती थी क्योकि अरस्तू के विचारानुसार आदर्श राज्य के नागरिकों, कारीगर व व्यापारी को अप्रतिष्ठित कार्य नही करना चाहिये। इसी प्रकार कृषक जो सदा कार्य मे व्यस्त रहते है, नागरिक नहीं हो सकते

क्योंकि गुणों के विकास तथा राजनैतिक कार्यों को कुशलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिये मनुष्य को जीवन में अवकाश प्राप्त होना चाहिये। परन्तु कृषकों को कभी इतना अवकाश प्राप्त नहीं होता है कि वे राजनैतिक विषयों पर अध्ययन तथा चिन्तन कर सकें।[7] उनके विचार में वही राज्य वस्तुतः अच्छा था जिसमें मध्यम वर्ग का बहुमत था तथा जहां मध्यम वर्ग धनी व निर्धन वर्गों पर नियन्त्रण रखता था।[8]

सम्पत्ति के विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुये अरस्तू ने कहा है कि सम्पत्ति गृह सामग्री का हिस्सा है तथा सम्पत्ति प्राप्त करने की कला गृह प्रबन्ध की ही कला है।[9] 'धन' में वे सभी यन्त्र व वस्तुयें शामिल हैं जिन का परिवार अथवा राज्य में प्रयोग होता है। दास (slaves) भी राज्य के धन का अंग हैं। प्लेटो के समान अरस्तू भी दासता के पक्ष में थे तथा दासता (slavery) को प्राकृतिक संस्था समझते थे। उनके विचार में कुछ व्यक्तियों का अन्यों पर राज्य करना आवश्यक ही नहीं बल्कि उचित भी है। अपने जन्म-समय से ही कुछ मनुष्य राज्य करने के लिये पैदा होते हैं तथा अन्य दास बनने के लिये ही जन्म लेते हैं।[10] उत्तम अवस्था में जहां कि दास तथा स्वामी के पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे होते हैं दास तथा स्वामी दोनों के ही जीवन में सुधार होता है। परन्तु दासता एक प्राकृतिक संस्था होने के कारण अरस्तू कुछ व्यक्तियों को केवल कानून के द्वारा दास बनाने के विरोध में थे। उनके विचार में एक यूनानी को अन्य यूनानी भाई को दास नहीं बनाना चाहिये। दासता कुछ मनुष्यों के जन्म में निहित थी तथा वे ही स्वभाविक रूप से दास हो सकते थे।

अरस्तू व्यक्तिगत सम्पत्ति के पक्ष में थे। उन्होंने प्लेटो के साम्यवाद की आलोचना की है। उनके विचार में मानव स्वभाव में वस्तुओं पर व्यक्तिगत स्वामित्व का अधिकार प्राप्त करने की प्रवृत्ति होती है। यदि राज्य में व्यक्तियों को निजी सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त है तो वे सभी कार्यों को अत्यधिक रुचि के साथ करेंगे।

व्यक्तिगत सम्पत्ति के हित से प्रेरित होकर राज्य में प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य मे व्यस्त रहेगा।[11]

अरस्तू ने द्रव्य तथा मूल्य के सम्बन्ध में भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। उन्होने विनिमय मूल्य (Value in Exchange) तथा उपयोग मूल्य (Value-in use) का अन्तर व्यक्त किया है। "प्रत्येक उस वस्तु के जो हमारे पास होती है दो प्रकार भिन्न उपयोग होते हैं—एक तो उपयुक्त अथवा मुख्य तथा दूसरा अनुपयुक्त अथवा गौण। उदाहरणार्थ जूता पहनने के काम में भी आता है तथा विनिमय के काम मे भी आता है (इसके द्वारा अन्य वस्तुओं को प्राप्त किया जा सकता है)। ये दोनो ही जूते के उपयोग है।"[12] वस्तु के उपयोग मूल्य तथा विनिमय मूल्य का यह स्पष्ट अन्तर अर्थशास्त्र मे आज भी एक महत्वपूर्ण विचार है।

द्रव्य की परिभाषा तथा इसके कार्यो पर भी अरस्तू ने अपने विचार व्यक्त करके अर्थशास्त्र के विकास मे अशदान दिया है। मुद्रा समाज को वस्तु विनिमय की असुविधाओ से मुक्त करती है। मुद्रा विनिमय का माध्यम है। यह हिसाब की इकाई (Unit of Account) भी है तथा वर्तमान उपभोग को भविष्य के लिये स्थगित करके मूल्य सचय का कार्य भी करती है। परन्तु अरस्तू मुद्रा को अनुत्पादक विचारते थे तथा व्याज के विरुद्ध थे। सम्भवत: इस विषय पर वे इस समय प्रचलित धार्मिक विचारधारा से प्रभावित हुये बिना न रह सके तथा इस सत्य को न समझ सके कि जब मुद्रा को किसी अन्य व्यक्ति को उधार दिया जाता है तो वह उस व्यक्ति के लिये अनुत्पादक मुद्रा न रह कर पूंजी का रूप धारण कर लेती है जो स्वय उत्पादक है।

प्राचीन रोम (Rome) में आर्थिक विचार

यद्यपि यूनान प्राचीन आर्थिक, धार्मिक व राजनैतिक सभ्यता का केन्द्र था परन्तु प्राचीन रोम के लोग दर्शनशास्त्र व अन्य शास्त्रो के अध्ययन के स्थान पर विजय प्राप्त करने मे अधिक रुचि रखते थे। उनके जीवन का उद्देश्य सैनिक व राजनैतिक शक्ति का विकास होने के कारण, वे विज्ञान व दर्शनशास्त्र के क्षेत्र मे अधिक प्रगति नही कर सके। यही कारण है कि प्राचीन रोम मे आर्थिक विचार अधिक मात्रा मे देखने को नही मिलते है। रोम वालो ने अधिकतर आर्थिक विचार यूनान से ही उधार लिये थे। कवियो तथा इतिहास लेखको के भिन्न स्थानो पर बिखरे विचारो के

अतिरिक्त प्राचीन रोम के विचारों का अध्ययन हम तत्वज्ञानियों, कृषि-लेखकों तथा स्मृतिज्ञों (Jurists) के लेखों के द्वारा कर सकते हैं।

प्राचीन रोम के प्रसिद्ध तत्वज्ञानी Cicero, Seneca, Pliny the Elder, Marcus Aurelius, Epictetus, Lucretius आदि थे। केटो (२३४-१४६ ईसा पूर्व) ने अपनी पुस्तक The Agricultura में प्राचीन रोम के भूस्वामी के नैतिक व आर्थिक दृष्टिकोण को व्यक्त किया है। वे Commercial Farming के पक्ष मे थे। सिसरो (Cicero), जो समस्त रोम मे सुप्रसिद्ध तत्वज्ञानी थे, ने भिन्न व्यवसायों की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध मे लिखते हुये कृषि को अत्यधिक प्रतिष्ठाजनक तथा व्यापार को घृणाजनक व्यवसाय बताया है। वे व्यक्तिगत सम्पत्ति के भारी समर्थक थे। वे भी यूनानी तत्वज्ञानी प्लेटो व अरस्तू के समान दासता को आवश्यक समझते थे। श्रम विभाजन के लाभों के सम्बन्ध मे भी उन के विचार प्लेटो से मिलते है। वे भी यूनानियों के समान ब्याज लेने के विरोध मे थे। सनीका (Seneca), मार्कस आलियस (Marcus Aurelius) तथा अपिक्टेटस (Epictetus) लोभ तथा विलासिता के विरोध मे थे। उन्होने दासता के दोषों पर प्रकाश डाला तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों की प्रशंसा की। Pliny the Elder ने अपनी पुस्तक Natural History मे बड़े तथा छोटे खेतों के तुलनात्मक महत्व की विवेचना तथा दासता की निन्दा की। वे वस्तु विनिमय अर्थव्यवस्था (Barter Econony) को मुद्रा अर्थव्यवस्था (Money Economy) की अपेक्षा अच्छा समझते थे। वारो (Varro), कोलूमेला (Columella) तथा प्लेडियस (Palladius) ने अपने लेखों तथा ग्रन्थों मे कृषि अर्थशास्त्र (Agricultural Economics) की प्रशंसा तथा दासता प्रथा की आर्थिक हानियों की विवेचना की है। वे छोटे पैमाने की खेती (small scale farming) के पक्ष मे तथा Absentee Ownership के विरोधी थे।

यद्यपि प्राचीन रोम मे प्राकृतिक विज्ञानों का अधिक विकास सम्भव नहीं हो सका था परन्तु कानून के क्षेत्र मे प्राचीन रोम मे बहुत विकास हुआ था। जस्टीन्यन (Justinian) के समय में रोम के कानून के भिन्न स्रोतों को एकत्रित करके Corpus Juris Civilis बनाई गई थी जिस के द्वारा आज भी प्राचीन रोम की आर्थिक संस्थाओं के सम्बन्ध मे बहुमूल्य ज्ञान प्राप्त होता है। पेपीन्यन (Papinian), पोलस (Paulus) तथा गेयस (Gaius) इत्यादि प्रसिद्ध स्मृतिज्ञों के लेखों मे प्राचीन रोम के मौलिक आर्थिक विचारों के चिन्ह प्राप्त होते है। मुद्रा का महत्व, दासता, ब्याज, जनसंख्या सम्बन्धी आर्थिक विषयों पर रोम के इन स्मृतिज्ञों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। उन्होंने कानून को धर्म से अलग किया तथा वर्तमान सम्पत्ति कानून का निर्माण किया। व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा संविदा (Contract) की स्वतन्त्रता, जिन के बिना वाणिज्य विकास व आर्थिक उन्नति असम्भव है, को मनुष्यकृत आवश्यक आर्थिक संस्थायें घोषित किया। उन के विचारानुसार मनुष्य

को अपनी सम्पत्ति का अपनी इच्छानुसार उपयोग करने का सदा अधिकार प्राप्त होना चाहिये।

विशेष अध्ययन सूची

1. Lewis H. Haney : History of Economic Thought (4th. Ed.) : Chapter, II.
2. Eric Roll : A History of Economic Thought, Chapter, I
3. Robert Lekachman : A History of Economic Ideas, Chapter, I.
4. J. M. Ferguson : Landmarks of Economic Thought, (2nd. Ed) Chapter, I
5. J F. Bell : A History of Economic Thought, Chapters 2 and 3.
6. Edmund Whittaker : A History of Economic Ideas, Chapter II

प्रश्न

1. Compare and contrast the economic ideas of ancient Greek and Roman thinkers.

   (राजस्थान, १९५९)

2. Contrast the economic views of Plato and Aristotle and point out the importance of Aristotle in the history of economic thought.

   (राजस्थान, १९६०)

3. Is is correct to say that in ancient times detached ideas were recorded by poets and philosophers, descriptive of politico-economic relationships in human society, but no complete system of economic thought was developed ?

   (राजस्थान, १९६१)

अध्याय ३

मध्यकालीन आर्थिक विचार

(Medieval Economic Thought)

यद्यपि यूरोप के आर्थिक इतिहास मे मध्यकाल का एक महत्वपूर्ण स्थान है परन्तु इस विषय पर कि यह काल कब आरम्भ तथा कब समाप्त हुआ था विद्वानो मे काफी मतभेद है। यद्यपि अधिकांश लेखको के अनुसार यह काल रोम के साम्राज्य का पतन होने पर ४७६ ईसा पश्चात् आरम्भ हुआ था, परन्तु इस युग की समाप्ति की तिथि पर इन लेखो में काफी मतभेद है। डाक्टर इग्राम (Dr. Ingram) तथा अन्य कुछ विद्वानो के विचारानुसार यह युग १,३०० ईसा पश्चात् तक विद्यमान रहा। परन्तु इस विचार से अधिकाश लेखक सहमत नही है क्योंकि वर्तमान युग केवल १६वीं शताब्दी से ही आरम्भ होता है। इसके अतिरिक्त सामन्तवाद (Feudalism), जो मध्य-काल की एक प्रमुख सस्था थी, भी १५ वी शताब्दी के अन्त तक विद्यमान थी। यद्यपि १३ वी शताब्दी के अन्त मे मध्यकाल शिखर पर था परन्तु यह लगभग १५०० ईसा पश्चात् ही समाप्त हुआ था। इस प्रकार मध्यकाल ४७६ ईसा पश्चात् रोम साम्राज्य के पतन से आरम्भ होकर लगभग १५०० ईसा पश्चात तक लगभग १००० वर्ष का युग है।

यह काल भिन्न सभ्यताओं का मिश्रण है। कुछ विद्वानो ने इस काल की प्रार-म्भिक अवस्था को अधकारयुग (Dark Ages) कह कर सम्बोधित किया है क्योंकि इस अवस्था में किसी प्रकार की प्रगति नही हुई थी। मध्यकाल मे मुसलमानी सभ्यता का चारों ओर काफी प्रचार हुआ तथा यह सभ्यता पश्चिम मे स्पेन (Spain) से लेकर पूर्व मे जावा (Java) तक फैली हुई थी। ९वी तथा १०वी शताब्दियो मे, बगदाद (Baghdad), केरो (Cairo), ईजिप्ट (Egypt), कारडोवा (Cordova) तथा स्पेन मे मुसलमान विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई थी। मुसलमान सभ्यता के अतिरिक्त इस युग मे अन्य सभ्यताये भी विश्व के अन्य भागो मे विद्यमान थी। इन मे चीन की सभ्यता मुख्य थी तथा इस काल मे चीन विज्ञान तथा कला के क्षेत्र मे उन्नति के शिखर पर था।

मध्यकाल मे ईसाई धर्म की उन्नति व पाश्चात्य युरोप की सभ्यता मे मुख्य परिवर्तन हुआ था। १००० ईसा पश्चात के लगभग सारे

पश्चिमी यूरोप में ईसाई धर्म विद्यमान था। चर्च का विश्ववर्गीय संगठन होने के कारण ईसाई धर्म ने यूरोप मे एकता का निर्माण किया। ईसाई धर्म के अनुसार मानव सम्बन्ध इस प्रकार के होने चाहिये कि मानव आत्मा को मोक्ष प्राप्त हो सके। इस कारण इस काल मे जीवन का लक्ष्य धार्मिक था तथा आर्थिक क्रियायें धर्म के स्वाधीन थी। इस काल मे वेदान्त (Theology) का अत्यधिक विकास हुआ तथा पादरी बहुत शक्तिशाली बन गये थे। ईसा मसीह ने मानव प्रतिष्ठा का प्रचार किया था। उन्होने प्राचीन दासता की कडी आलोचना की तथा मानव बन्धुता (Human brotherhood) का प्रचार किया। ईसाई धर्म ने श्रम के सम्मान का उपदेश दिया। उन्होने मानव मे धन के सचय करने तथा गरीबों का शोषण करने की प्रवृत्तियों की निन्दा की। ईसाई धर्म के ये उपदेश यूनानी तत्वज्ञानियो के उपदेशों के, जो दासता के पक्षपाती थे, पूर्णतया प्रतिकूल थे। ईसाई धर्म के अनुसार ईश्वर तथा मनुष्य जाति की सेवा करना ही मानव जीवन का लक्ष्य था क्योंकि ऐसा करने से ही उस को जीवन मे वास्तविक सुख व शान्ति प्राप्त हो सकती थी। इस प्रकार ईसाई धर्म के प्रभाव ने मनुष्य के जीवन को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया जिस के अनुसार मनुष्य को मनुष्य की भलाई करनी चाहिये। ईसाई धर्म के युग मे गिरजा (Church) मानव सभ्यता पर प्रभाव डालने वाली एक महत्वपूर्ण सस्था बन गया था। यह सभ्यता, कला तथा अध्ययन का केन्द्र था। ईसाई मठों (Monastries) के चारो ओर नगर बसे थे। क्रिस्तानी काल मे मठ अध्ययन तथा आर्थिक नियन्त्रण के केन्द्र थे।

मध्यकालीन आर्थिक विचारो का सविस्तार ठीक प्रकार से अध्ययन करने के लिये मध्यकाल की विचार धारा को दो कालो मे विभाजित किया जा सकता है। प्रथम काल की अवधि लगभग ४७६ ईसा पश्चात से लेकर लगभग १२०० ईसा पश्चात तक है। इस काल मे ईसाई धर्म ने यूनानी विचारो के विपरीत उपदेश दिये थे। दूसरा काल १२०० ईसा पश्चात से आरम्भ होकर लगभग १५०० ईसा पश्चात मे समाप्त होता है। सामन्तवाद (Feudalism) तथा चर्च प्रधानतावाद (Scholasticism) जो मध्यकाल की दो मुख्य विशेषतायें है, इस काल मे विद्यमान तथा अति प्रभावशाली थीं। चर्च प्रधानतावाद जो अरस्तू के दर्शन व क्रिस्तानी वेदान्त का मिश्रण था, का सूत्र रूप मे वर्णन सेंट थोमस अक्विनास (St. Thomas Acquinas) ने किया था। थोमस अक्विनास (१२२५–१२७४ ईसा पश्चात) चर्च प्रधानतावाद व चर्च विधान (Canon Law) के नेता थे। उन्होने बाइबिल (Bible) तथा अरस्तू के उपदेशो को एकत्रित करके एक सगठित विचारधारा का रूप प्रदान किया। चर्च प्रधानतावाद व्यक्तिवाद के विपरीत था। इस के अनुसार मनुष्य प्राकृतिक नियमो के अधीन थे। चर्चप्रधानतावाद के आर्थिक विचारों का अध्ययन करने के लिये थोमस अक्विनास के आर्थिक विचारो का अध्ययन करना उपयुक्त होगा।

मध्यकालीन आर्थिक विचारो के इतिहास मे थोमस अक्विनास को लगभग

वही विशेष स्थान प्राप्त है जो अरस्तू को प्राचीन आर्थिक विचारो के इतिहास मे प्राप्त है। उन की प्रसिद्ध पुस्तक Summa Theologia के प्रत्येक पृष्ठ पर धर्म की छाप है। मध्य-काल मे राज्य के कार्य, निजी सम्पत्ति, उचित कीमत (Just price) तथा ब्याज प्रथा (Usury) सम्बन्धी विचारों का ज्ञान थोमस अक्विनस के ग्रन्थ मे व्यक्त विचारो के अध्ययन द्वारा भली प्रकार प्राप्त किया जा सकता है।

चर्चप्रधानतावादी समाज मे व्यक्तिगत सम्पत्ति को वाछनीय विचार किया जाता था। चर्चप्रधानतावादियो ने व्यक्तिगत सम्पत्ति को एक प्राकृतिक सस्था घोषित किया तथा इस के पक्ष मे अनेक तर्क प्रस्तुत किये थे। उनके अनुसार निजी सम्पत्ति समाज मे शाति तथा सद्भावना की जननी है। यह उत्पादन में वृद्धि करने के लिये आवश्यक है। मनुष्य निजी सम्पत्ति को प्राप्त करने की भावना से प्रेरित होकर ही समाज मे अनेक प्रकार की आर्थिक क्रियाएँ करके कुल उत्पादन मे वृद्धि करने मे योगदान देता है। व्यक्तिगत सम्पत्ति के अभाव के कारण समाज मे अशान्ति उत्पन्न हो जाती है तथा समाज की समुचित अर्थव्यवस्था अस्तव्यस्त हो जाती है। अतः व्यक्तिगत सम्पत्ति समाज मे शान्ति बनाये रखने तथा सुख व उन्नति के क्रम को विद्यमान रखने के लिये अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु व्यक्तिगत सम्पत्ति की सस्था के पक्ष मे होने हुए भी चर्चप्रधानतावादियो के विचारानुसार इस सम्पत्ति का उपयोग इस प्रकार से किया जाना चाहिये कि निजी सम्पत्ति समाज कल्याण के लिये हितकारी सिद्ध हो सके।

चर्च प्रधानतावादी आर्थिक विचारधारा मे उचित मूल्य को बहुत महत्व दिया गया था। इसका मुख्य कारण यह प्रतीत होता है कि ईसाई धर्म शोषण के विरुद्ध था। शोषण की समस्या को समाप्त करने के हेतु ही उचित मूल्य के विचार का निर्माण हुआ था। एक व्यक्ति को दूसरे बन्धु मनुष्य की विवशता का अनुचित लाभ नही उठाना चाहिये। वस्तु को उसके उचित से अधिक मूल्य पर बेचना उतना ही पाप था जितना कि अपने पडोसी को हानि पहुँचाकर धोखा देना पाप होता है। चर्च-प्रधानतावाद मे किसी भी वस्तु को उचित से कम अथवा अधिक कीमत पर बेचना अवाछनीय तथा अवैधिक (Unlawful) क्रिया थी। क्रेता को किसी वस्तु को उचित से कम कीमत पर क्रय नही करना चाहिये तथा न ही विक्रेता को वस्तु को उचित से अधिक कीमत पर बेचना चाहिये। वस्तु के उचित मूल्य का, जो पूर्णतया नहीं मापा जा सकता था, अनुमान लगाया जा सकता था। उचित मूल्य वस्तु की कुल लागत से निर्धारित किया जा सकता था।

थोमस अक्विनास वाणिज्य (trade) के पक्ष मे थे। उनके अनुसार व्यापार, जिस को मनुष्य लाभ प्राप्त करने की भावना से प्रेरित होकर करता है, पाप नही है। प्राचीन इसाई धर्म के उपदेश के विपरीत, जिसके अनुसार वाणिज्य को खराब समझा जाता था, थोमस अक्विनास के अनुसार वाणिज्य देश के जीवन के लिये आवश्यक है

परन्तु व्यापार, ईमानदारी के साथ किया जाना चाहिये। व्यापारी को लोक हितों को सदा ध्यान में रखना चाहिये।

थोमस अक्विनास ब्याज की प्रथा के विरोध मे थे। उनके विचारानुसार मुद्रा स्वय अनुत्पादक वस्तु थी तथा अनुत्पादक वस्तु को उधार देकर ब्याज प्राप्त करना एक प्रकार से उधारकर्ता का शोषण करना है। इस प्रकार चर्चप्रधानतावाद के अन्तर्गत उधार अथवा ऋण पर ब्याज प्राप्त करना अवाछनीय था। थोमस अक्विनास की ब्याज सम्बन्धी विचारधारा वर्तमान विचारो के विपरीत थी। वर्तमान समय मे मुद्रा अन्य वस्तुओ के समान उत्पादक है। मुद्रा पूँजी है तथा ब्याज का लेना वाछनीय समझा जाता है।

थोमस अक्विनास तथा उनके समर्थकों ने राज्य के कार्यों पर भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनके विचारानुसार राज्य का परम कर्तव्य जनता की रक्षा तथा उसकी उचित आवश्यकताओ की पूर्ति करना है। इसके अतिरिक्त राज्य का यह भी कर्तव्य है कि राज्य मे रहने वाले गरीब व्यक्तियो का उचित प्रकार से पालन करे। यातायात के साधनों का विकास करना तथा उनकी उचित देखभाल करना भी राज्य का कर्तव्य है। समाज मे शोषण को दैनिक जीवन मे विद्यमान न होने देने के लिये यह भी आवश्यक है कि माप व तौल के सिक्को पर कड़ा नियंत्रण रखा जाये।

सिक्को का मुद्रण करना भी राज्य का कर्तव्य था। इसके अतिरिक्त राज्य का यह भी कर्तव्य था कि राज्य मे स्थिर क्रयशक्ति की मुद्रा पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहे। राज्य को कर लगाने का अधिकार प्राप्त था। करों का भुगतान अधिकतर वस्तुओं के रूप में किया जाता था। करो का भार बहुत अधिक था। लोक-प्रशासन साधारण, अकुशल तथा भ्रष्ट था। मुद्रा तथा मुद्रण-प्रणाली भी अच्छी नही थी। नाप तथा तोल के क्षेत्र मे बेईमानी बहुत साधारण तथा व्यापक थी।

सामन्तवाद (Feudalism)

सामान्तवाद का मध्यकाल मे अन्तिम तीन शताब्दियों (१२००-१५००) मे काफी अभ्युदय हुआ तथा इसका इस काल के आर्थिक व सामाजिक सगठन पर गहरा प्रभाव पडा। सामान्तवाद के अन्तर्गत भूस्वामी (Landlords) तथा कृषि दास (Serfs) दो मुख्य वर्ग थे। इस युग मे भूमि ही मुख्य सम्पत्ति थी तथा यह खाद्य सामग्री (food) की पूर्ति का एकमात्र स्रोत थी। समाज मे भूस्वामी से लेकर कृषि-दास तक प्रत्येक व्यक्ति प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप मे भूमि पर निर्भर था। राज्य के लगभग सभी अग भूमि पर ही आश्रित थे। राज्य आगम, फौज तथा खाने की सभी सामग्री भूमि पर निर्भर थी। सामन्तवादी समाज मे सैनिक कृषिदासो तथा शासक भूस्वामियो से प्राप्त होते थे। सामन्तवादी राज्य मे शक्ति भूस्वामियो मे

निहित थी। सामन्तवादी राज्य में राजा स्वय अधिक शक्तिशाली नही था। राज्य की सत्ता अधिकतर भूस्वामियो के हाथो मे होती थी। राज्य का कार्य भूस्वामियो द्वारा प्राप्त करों की सहायता से चलता था। राजा स्वय एक बड़ा भूस्वामी होता था। सामान्तवादी राज्य मे उद्योगो की बहुत बुरी दशा थी। व्यापार तथा विनिमय अवनति की स्थिति मे थे। यातायात व सदेश के साधन खराब तथा असगठित अवस्था मे थे तथा व्यापारी वर्ग का पतन हो गया था। केवल कृषि तथा ग्रामीण समाज ही सामन्तवादी राज्य की दो मुख्य विशेषताये थी।[1] समाज के सभी व्यक्तियो को भूस्वामियों पर अपने जीवन निर्वाह के लिये आश्रित हो जाने के कारण इन भूस्वामियो को सामन्तवादी समाज मे एक छोटे राजा का स्थान प्राप्त था। शक्ति बढने पर ये भूस्वामी स्वतन्त्र हो गये तथा स्वय अपने कानून तथा विधान बनाने लगे। सामन्तवाद का अन्त १६ वी शताब्दी मे शक्तिशाली राज्य के उत्पन्न होने पर ही सम्भव हो पाया। परन्तु अनेकों दोषो के होते हुये भी, सामन्तवाद ने पश्चिमी यूरोप को बलवे (anarchy) से मुक्त रखा तथा यूरोप मे वर्तमान राज्य के विकास की आधारशिला का कार्य किया।

प्राचीन यूनान तथा रोम मे नगरो (Towns) का बहुत महत्व था। नगर समाज के राजनैतिक जीवन के केन्द्र थे। मध्यकाल मे नगरो का वर्तमान राज्य के विकास पर गहरा प्रभाव पडा। मध्यकाल मे समस्त यूरोप मे नगर तथा शहरो का विकास हुआ। बहुधा सुरक्षा के उद्देश्य से नगर तथा शहर के चारो ओर दीवार थी। कुछ अश तक मध्यकालीन नगर, व्यापार व वाणिज्य तथा कला विकसित अवस्था मे थे। बहुधा पादरी तथा भूस्वामी नागरिको की वाणिज्य क्रियाओ मे बाधक सिद्ध होते थे। ११ वी शताब्दी के अन्त मे ईसाई धर्मयुद्धों (Crusades) के फलस्वरूप यूरोप मे व्यापार व कला का विकास हुआ। इन युद्धो के कारण केवल मुसलमानो का ही भूमध्यसागर से अन्त नही हुआ वल्कि सामन्तवाद का भी अन्त हुआ। नगरो का विकास हुआ तथा नगरों मे नये उद्योगो का विकास होने लगा। व्यापारियो ने अपने आर्थिक हितो की सुरक्षा के लिये सघ (guilds) स्थापित किये। निश्चित दिनो पर नगरो मे गिरजो तथा किलो की दीवारो के चारो ओर हाट लगते थे जहाँ पर आस-पास के नगरो के व्यापारी तथा उपभोक्ता एकत्रित हो कर वस्तुओं का स्वतन्त्रता के साथ क्रय-विक्रय करते थे। इस प्रकार मध्यकाल मे वर्तमान विशाल नगरो तथा विनिमय अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ।

4. L. H. Haney : History of Economic Thought, Chapter, VI
5. Eric Roll : A History of Economic Thought, Chapter, I
6. Edmund Whittaker : A History of Economic Ideas, Chapters I & II.

प्रश्न

1. Feudalism and Scholasticism were the two essential features of Mediaval Economic Thought. Discuss.

अध्याय ४

वणिकवाद

(Mercantilism)

वणिकवाद उस आर्थिक विचारधारा का नाम है जो पाश्चात्य यूरोप, विशेषकर फ्रांस मे, सोलहवीं तथा सत्रहवी शताब्दियो मे विद्यमान थी। फ्रान्स मे यह विचारधारा वहाँ के वित्त मन्त्री काल्बर्ट के नाम से सम्बन्धित होने के कारण काल्बर्टवाद (Colbertism) के नाम से प्रसिद्ध थी। जर्मनी तथा आस्ट्रिया (Austria) मे यह विचारधारा केमरलिजम (Cameralism) के नाम से प्रसिद्ध थी। वणिकवाद मध्यकाल की समाप्ति पर १५०० ई० से आरम्भ होकर १७५० ई० तक विद्यमान रहा था। वणिकवादी, जिनमे प्रमुख रूप से व्यापार-कुशल व्यापारी, शासक, तथा व्यापार मे रुचि रखने वाले राजकुमार सम्मिलित थे, राष्ट्रीय आर्थिक प्रभुत्व को प्राप्त करने के उद्देश्य से व्यापार, विशेषकर विदेशी व्यापार को अत्यधिक महत्वशाली मानते थे। वणिकवादी बहुमूल्य धातुओं—स्वर्ण तथा रजत—को प्राप्त करने पर बहुत महत्व देते थे। फलस्वरूप वणिकवाद ने बहुमूल्य धातुओं को एकत्रित करने की एक योजना का रूप धारण कर लिया था तथा इसी कारण कुछ लेखकों ने वणिकवाद को बहुमूल्य धातुवाद (Bullionism) से सकेत किया है। वणिकवादियों के विचारानुसार अधिक स्वर्ण अधिक धन का तथा अधिक धन अधिक आर्थिक शक्ति का प्रतीक था। 'अधिक स्वर्ण के रूप मे अधिक धन प्राप्त करके अधिक शक्तिशाली बनो,' वणिकवाद का नारा था। वणिकवाद मे व्यापारी वर्ग को महत्वपूर्ण प्रधान स्थान प्राप्त होने के कारण कुछ लेखकों ने वणिकवाद को व्यापारी प्रणाली (Merchantile System) कह कर सम्बोधित किया है।

वणिकवादी लेखकों ने, जिनका जीवन के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण था, अपने विचारों को भिन्न लेखो तथा पत्रिकाओं मे असंगठित रूप से व्यक्त किया है। यही कारण है कि वे सस्थापक सम्प्रदाय (Classical School) अथवा इतिहासवादी सम्प्रदाय (Historical School) के समान किसी एक विशेष सम्प्रदाय का निर्माण न कर पाये। उनके विचारों मे एकसूत्रता का अभाव है। ये लोग पाश्चात्य यूरोप के भिन्न देशो में फैले हुये थे। यद्यपि वणिकवादियो के आर्थिक विचारों मे सगठन

का अभाव है परन्तु इनको आज उचित रूप से वर्तमान अर्थशास्त्र के निर्माताओं के पूर्वज होने का गौरव प्राप्त है। वर्तमान शताब्दि के सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री स्वर्गीय लार्ड कीन्स ने भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **General Theory** के अध्याय २३ में वणिकवादी आर्थिक विचारधारा की प्रशंसा की है।

वणिकवाद को जन्म देने वाले मुख्य आर्थिक व सामाजिक कारण

१५ वीं शताब्दि के अन्त में पश्चिमी यूरोप की जनसख्या लगभग ६ करोड थी। अधिकाश व्यक्ति भूस्वामियों के खेतों में मजदूरी तथा स्वतन्त्र कृषकों के रूप में आय प्राप्त करके जीवन-निर्वाह करते थे। कृषि पर कुल जनसख्या के लगभग ६० प्रतिशत व्यक्ति निर्भर थे। शेष १० प्रतिशत कारीगर, दुकानदार, पादरी तथा कुलीन व्यापारी, जिनके हाथों में राज्य की राजनैतिक तथा आर्थिक सत्ता थी, थे। इस प्रकार समाज भूमि तथा कृषि-क्रियाओं पर आधारित था। इस समय में दो लाख तथा एक लाख जनसख्या वाले नगरों की सख्या बहुत कम थी। केवल लन्दन, पेरिस, मिलान (Milan) तथा नेपिल्स (Naples) ही ऐसे चार बडे शहर थे जिनकी जनसख्या २ लाख के निकट थी। इसके अतिरिक्त अन्टवर्प (Antwerp), अमस्टर्डाम (Amsterdam), लिस्बन (Lisbon), रोम (Rome) इत्यादि नगरों की जनसख्या केवल १ लाख के लगभग थी। अधिकाश नगरों की आबादी लगभग ३० व ४० हजार के बीच में थी। परन्तु ये नगर एक दूसरे से काफी दूरी पर स्थित थे तथा इन नगरों में वर्तमान अर्थ में उद्योग विद्यमान नहीं था। वस्तुओं को बनाने का क्रम छोटे पैमाने पर कारीगर की छोटी दुकान में हुआ करता था। अपने घर अथवा दुकान पर कारीगर स्वय अपने कुछ शिशिक्षुओं (Apprentices) तथा दैनिक वेतन पर कार्य करने वाले मजदूरों के साथ दैनिक-जीवन की उपभोग-वस्तुओं को बनाता था। परन्तु ऊनी वस्त्र उद्योग, जो उत्तरी इटली तथा इंगलैंड के व्यापारी शहरों का मुख्य उद्योग था, तुलनात्मक बडे पैमाने पर सगठित था। इस काल में व्यापार केवल शहरों तथा इन शहरों के निकट स्थित गाँवों तक ही सीमित था।

१६ वीं शताब्दि के आरम्भ में समाज के आर्थिक जीवन, विशेषरूप से व्यापार के क्षेत्र में, अचानक भारी परिवर्तन हुआ जिसके फलस्वरूप समस्त समाज के आर्थिक जीवन में एक क्रान्ति उत्पन्न हो गई। इस क्रान्ति के निम्न मुख्य कारण थे।

(१) पुनर्जागरण (Renaissance) व मानवसेवा (Humanism) का आरम्भ—समाज में पुनर्जागरण के विद्यमान होने के कारण मनुष्य के ज्ञान में अत्यधिक विस्तार हुआ। मनुष्य की इस मानसिक जागृति के कारण उसके जीवन के दृष्टिकोण में भी भारी परिवर्तन हुआ। कला तथा साहित्य की भारी उन्नति हुई। इसके साथ ही साथ प्राचीन यूनान तथा इटली (Rome) की वह सभ्यता, जिसमें कविता तथा सौन्दर्य शास्त्र को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था भी, पुनर्जीवित

पाई। इसके अतिरिक्त व्यापारियों को व्यापार के द्वारा अधिक धनराशि प्राप्त होने के कारण उनको राजनैतिक व आर्थिक सत्ता भी प्राप्त हुई।

(३) वणिकवाद के उत्थान का तीसरा मुख्य कारण यह था कि इस काल मे यूरोप की जनसंख्या मे तेजी के साथ वृद्धि हुई। १६०० ई० मे पश्चिमी यूरोप की जनसख्या ६३/४ करोड थी। अधिक जनसख्या दो प्रकार से आर्थिक विकास को सम्भव बनाती है। एक ओर तो उत्पत्ति के साधन के रूप मे मजदूरी सस्ती होती है तथा दूसरी ओर वस्तुओ की माग सदा विद्यमान रहने के कारण इनको ऊँची कीमतो पर बेचा जा सकता है। वस्तुओ की अधिक मांग होने के कारण पूँजी की सामान्य उत्पादकता (Marginal Efficiency of Capital) ऊँची रहती है तथा व्यापारी व विनियोगीवर्ग सदा व्यापार व विनियोग करने को आतुर रहते हैं। इस प्रकार जनसख्या मे वृद्धि होने के कारण उद्योग व व्यापार का विकास हुआ तथा व्यापारी वर्ग समाज मे शक्तिशाली बन गया।

(४) धार्मिक क्षेत्र मे भी परिवर्तन होने के कारण वणिकवाद को शक्ति प्राप्त हुई। सुधारवाद (Reformation) के आरम्भ होने से प्रोटेस्टेन्ट धर्म का आगमन हुआ। प्रोटेस्टेन्ट धर्म के समर्थको ने रोमन कैथोलिक चर्च का कडा विरोध किया। इससे पोप की शक्ति भी कम हुई। इस नये धर्म के नेता Erasmus तथा Luther थे। उन्होने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर जोर दिया तथा चर्च की प्रधानता की आलोचना की। उन्होने शक्तिशाली राज्य के विचार को स्वीकार किया तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति व सविदा की स्वतन्त्रता (Freedom of Contract), जो आर्थिक प्रगति के लिये आवश्यक है, का समर्थन किया। इस काल मे चर्च की राजनैतिक शक्ति का पतन होकर उसके स्थान पर शक्तिशाली राज्य (Strong National State) का निर्माण हुआ।[1] यह परिवर्तन समाज मे शान्ति बनाये रखने के लिये आवश्यक था तथा व्यापारी वर्ग ने इस परिवर्तन के निर्माण मे सहयोग दिया। सामन्तवाद तथा चर्चप्रधानतावाद का पतन होने तथा शक्तिशाली राष्ट्रीय राज्यो के स्थापित होने से व्यापार तथा वणिकवाद का विकास सम्भव हुआ।

(५) मुद्रा अर्थव्यवस्था (Money Economy) तथा उद्योग अर्थव्यवस्था की स्थापना ने भी वणिकवाद की स्थापना को प्रोत्साहन प्रदान किया। व्यापार तथा उद्योग का विकास मध्यकालीन वस्तु-विनिमय अर्थव्यवस्था मे असम्भव था। यह केवल उसी समय सम्भव था जब समुचित अर्थव्यवस्था मुद्रा पर आधारित हो।

---

1. इतिहास के विद्यार्थी इससे भली प्रकार परिचित हैं कि किस प्रकार (Henry VIII के समय मे राज्य तथा चर्च सत्ता प्राप्त करने के लिये एक दूसरे से लडते थे तथा किस प्रकार अन्त मे Henry VIII को ही सफलता प्राप्त हुई।

रानी एलिजाबैथ प्रथम ने सिक्को का सुधार करके बड़े पैमाने की व्यापार तथा उद्योग प्रणाली के विकास को सम्भव बनाया।[2] इसी प्रकार का कार्य दूसरे राज्यों मे भी हुआ।

(६) उपरोक्त कारणो के अतिरिक्त, वणिकवाद के विकास मे प्रतियोगिता (Competition) प्रणाली का भी योगदान है। मध्यकाल मे उत्पादन व व्यापार प्राचीन रीतियो पर आधारित था। दास प्रथा प्रचलित होने के कारण व्यापार का एकाधिकार समाज मे केवल विशेष वर्ग को ही प्राप्त था। इसके कारण योग्य व्यक्तियों को अपनी योग्यता का प्रयोग करने का अवसर प्राप्त नही हो पाता था। १६ वी तथा १७ वी शताब्दियो मे प्राचीन रीतियो तथा एकाधिकारी प्रथाओ का अन्त होकर उनके स्थान पर प्रतियोगिता (Competition) का युग स्थापित हुआ। इससे कुशल तथा साहसी व्यक्तियो को व्यापार तथा उद्योग के क्षेत्रो मे प्रवेश करने का अवसर प्राप्त हुआ। इससे व्यापार का विकास हुआ तथा वणिकवाद को एक नवीन शक्ति प्राप्त हुई।

(७) राजनैतिक क्षेत्र मे राष्ट्रीयता की भावना के विद्यमान होने से भी वणिकवाद को प्रोत्साहन मिला। वास्तव मे वणिकवाद आर्थिक दृष्टिकोण से शक्तिशाली राज्य निर्माण का युग था। इगलैंड मे Henry VII (१४८५) तथा फ्रास मे Louis XI (१४६१) के तत्वावधान मे सर्वप्रथम पश्चिमी यूरोप मे दो शक्तिशाली राजनैतिक राज्यो का निर्माण हुआ। तत्पश्चात् १६ वी शताब्दि के अन्त मे पुर्तगाल, स्पेन तथा हालेड, १७ वी शताब्दि के आरम्भ मे स्वीडन (Sweden), तथा १७ वी शताब्दि के अन्त मे पुर्सिया (Prussia) तथा रूस के राज्यो की स्थापना हुई। १८ वी शताब्दि के मध्य तक जर्मनी तथा इटली को छोडकर शेष यूरोप के लगभग सभी देशो मे शक्तिशाली राजतन्त्र (Monarchy) का युग स्थापित हो गया था। शक्तिशाली राष्ट्रीय राज्यो की स्थापना के कारण राज्यों के क्षेत्र मे विकास हुआ। इंगलैंड तथा फ्रास मे मध्यकालीन अनेक छोटे सामन्तवादी राज्यो को मिला कर शक्तिशाली राज्य स्थापित हुये। इन राज्यो मे Henry VII तथा Louis XI के समान शक्तिशाली राजा राज्य करते थे। राज्यो के क्षेत्र मे वृद्धि होने के कारण वस्तुओ की माँग पहले की तुलना मे अधिक व्यापक हो गई थी। माँग की वृद्धि तथा राज्य मे आन्तरिक सुरक्षा व शान्ति होने के कारण व्यापार व उद्योग का विकास होने लगा। इससे वणिकवाद को नई शक्ति प्राप्त हुई क्योकि प्रत्येक राज्य अपनी राजनैतिक शक्ति को बढाने के लिये उत्सुक था। व्यापारियो

को विदेशो मे व्यापार करने के लिये उत्साह प्रदान करना तथा उनको बहुमूल्य धातुयें देश मे लाने के लिये प्रेरित करना भी राष्ट्रीय शक्ति को बढाने का एकमात्र सरल उपाय था।

वणिक्वाद की विशेषताएँ

इगलैंड, फ्रास, जर्मनी इत्यादि प्रत्येक राज्य मे वणिकवादी नीतियो पर राजनैतिक, आर्थिक, सास्कृतिक तथा धार्मिक शक्तियो का बहुत गहरा प्रभाव पडा। १५ वी शताब्दी के अन्त मे राज्यो की शक्ति बढ रही थी तथा वे राष्ट्र की शक्ति प्राप्त करने के इच्छुक थे। प्रत्येक राज्य अपने को अधिक शक्तिशाली बनाने के उद्देश्य से समुद्र पार नये उपनिवेशो की खोज मे व्यस्त था। उपनिवेशो को स्वाधीनता मे रखने के लिये राज्य का शक्तिशाली होना अतिआवश्यक था। इसके अतिरिक्त व्यापार तथा उद्योग के विकास के लिये बैंकिग तथा साख सस्थाओ की सुविधा सहित मुद्रा अर्थव्यवस्था का होना भी आवश्यक था। व्यापार के विकास के लिये लाभ-प्राप्ति के उद्देश्य तथा प्रतियोगिता को प्रोत्साहन प्रदान करना भी आवश्यक था। वणिकवादी विचारधारा की निम्नलिखित पाँच मुख्य विशेषतायें थी।

(१) वणिकवादी विचारधारा में बहुमूल्य धातुओं—स्वर्ण रजत—के सचय पर बहुत अधिक जोर दिया जाता था। वास्तव मे वणिकवादी काल मे अधिक स्वर्ण अधिक धन का तथा अधिक धन अधिक राष्ट्रीय शक्ति का प्रतीक था। वर्तमान समय मे, जब हम स्वर्ण तथा रजत को राष्ट्रीय धन के रूप में बहुत कम महत्व देते है, स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न मस्तिष्क मे उत्पन्न होता है कि किन कारणोवश वणिकवादी बहुमूल्य धातुओ के सचय को इतना अधिक महत्व देते थे। इसका एक कारण तो यह ज्ञात होता है कि बहुमूल्य धातुओ मे टिकाऊपन का गुण विद्यमान होने के कारण इनके रूप मे धन का सचय किया जा सकता था। वणिकवादी काल मे जबकि बैंको इत्यादि का विकास नही हुआ था यह कारण काफी *महत्वपूर्ण था। इसके अतिरिक्त वणिकवादी विचारधारा के अनुसार अधिक धन* अधिक व्यापार का प्रतीक था। इसके अतिरिक्त अधिक धन के द्वारा अधिक विनियोग भी सुविधाजनक रूप मे किया जा सकता था। परन्तु इन सब कारणों के अतिरिक्त वणिकवादियो के बहुमूल्य धातुओ के सचय को इतना अधिक महत्व देने का मुख्य कारण यह था कि उनके विचार मे स्वर्ण के द्वारा सैनिको, युद्ध शस्त्रो तथा युद्ध सम्बन्धी अन्य सामग्री को खरीदा जा सकता था। इस प्रकार स्वर्ण तथा अन्य बहुमूल्य धातु सफलतापूर्वक युद्ध लडने का एकमात्र साधन थे। वणिकवादी काल मे जबकि भिन्न राज्यो के बीच सामान्यतया युद्ध के सम्बन्ध स्थापित थे[3], बहुमूल्य

---

3. इस युग मे युद्ध एक साधारण बात थी। १४६४ ई० से लेकर १५५९ ई० तक यूरोप के कुछ देशो मे लगभग प्रत्येक वर्ष लडाई रही। १७ वी शताब्दी मे केवल ७ ही वर्ष पूर्ण शान्ति के थे। इसके अतिरिक्त १६५० ई० से लेकर १८१५ ई० तक १६५ वर्ष के समय मे लगभग ८५ वर्ष तक इगलैंड युद्धो मे व्यस्त रहा था।

धातुओं के संचय पर अधिक महत्व दिया गया था तथा राज्य की राष्ट्रीय आर्थिक नीतियों का एकमात्र उद्देश्य बहुमूल्य धातुओं को प्राप्त करना था।

(२) अन्टोनियो सेरा (Antonio Serra), क्लीमैन्ट आर्मस्ट्रोंग (Clement Armstrong) तथा अन्य वणिकवादी लेखकों ने बहुमूल्य धातुओं के संचय को अत्यधिक महत्व दिया था। जिस राज्य में बहुमूल्य धातुओं की खानें होती हैं वह राज्य शक्तिशाली राष्ट्र होता है। परन्तु प्रत्येक राज्य इस दृष्टि से समान भाग्यशाली नहीं होता है। जिन राज्यों में स्वर्ण तथा अन्य बहुमूल्य धातुओं का, खानों के अभाव के कारण, उत्पादन नहीं होता है, वे राज्य बहुमूल्य धातुओं को व्यापार के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार प्रथम उद्देश्य को प्राप्त करने के हेतु वणिकवाद में व्यापार को अधिक महत्व दिया गया था।

(३) परन्तु प्रश्न यह उठता है कि व्यापार के द्वारा कोई देश बहुमूल्य धातुओं को किस प्रकार प्राप्त करता है। वणिकवादियों को इस का उत्तर देने में कोई आपत्ति नहीं थी। इस प्रश्न के उत्तर के साथ ही विदेशी व्यापार तथा अनुकूल व्यापार शेष (Favourable Balance of Trade) का महत्व स्पष्ट हो जाता है। वणिकवादियों के विचारानुसार बहुमूल्य धातुओं को कोई देश अन्य देशों को देश में बनी वस्तुओं को बेचकर प्राप्त कर सकता है। यह उसी समय सम्भव है जब कि वह देश अन्य देशों को अधिकतम मात्रा में अपनी वस्तुऐं बेचता है तथा अन्य देशों में न्यूनतम मात्रा में वस्तुओं का क्रय करता है। इस का स्पष्ट अर्थ यह है कि ऐसा करने से देश विशेष को अन्य देशों से भुगतान के रूप में बहुमूल्य धातुएँ प्राप्त होंगी। इस प्रकार विदेशी व्यापार से अनुकूल व्यापार-शेष—अत्यधिक निर्यात तथा न्यूनतम आयात—के द्वारा बहुमूल्य धातुओं को संचित किया जा सकता था तथा एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की जा सकती थी। इस प्रकार वणिकवादी राज्य की अर्थव्यवस्था विदेशी व्यापार तथा अनुकूल व्यापार-शेष के विचार पर आधारित थी। थोमस मन (Thomas Mun), वान हार्निक (Von Hornik) तथा अन्य वणिकवादी विचारकों ने अपने लेखों में देश की समृद्धि के लिये अनुकूल व्यापार शेष के महत्व को सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया था।

(४) विदेशी व्यापार को अनिश्चितताओं के भय से सुरक्षित रखने के लिये वणिकवादी उपनिवेशों को आवश्यक समझते थे। राज्य की आर्थिक समृद्धि के लिये राज्य की राजनैतिक स्वाधीनता में कुछ उपनिवेशों का होना आवश्यक है। राज्य के लिये उपनिवेशों का दोहरा लाभ है। प्रथम तो उपनिवेशों में राज्यों की वस्तुओं को बेचा जा सकता था। दूसरे शब्दों में उपनिवेश राज्य की निर्यातों के लिये उत्तम बाजार स्थान सिद्ध होते थे। दूसरे, उपनिवेशों से आवश्यक कच्चे माल (Raw Materials) को पर्याप्त मात्रा में सस्ती कीमतों पर खरीदा जा सकता था। कच्चा माल कम कीमत पर प्राप्त होने से वस्तुओं का उत्पादन सस्ते व्यय पर किया

जा सकता था। इस के कारण देश के उद्योग विदेशों में अन्य देशों के उद्योगों से प्रतियोगिता ले सकते थे।

(५) उपनिवेशों की अर्थव्यवस्था मातृ भूमि (Mother Country) की अर्थ-व्यवस्था की पूरक ही हो सकती थी। इस विचारानुसार वणिकवाद में उपनिवेशों में वस्तुओं का विनिर्माण तथा उद्योगों की स्थापना कदापि नहीं हो सकती। उपनिवेश केवल कच्चे माल के उत्पादक ही हो सकते थे। इसके अतिरिक्त सभी प्रकार के उपनिवेश व्यापार (Colonial Trade) पर मातृभूमि का एकाधिकार था। इस प्रकार यह भली प्रकार स्पष्ट है कि वणिकवादी राज्य का उद्देश्य राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि के हित में उपनिवेशों का आर्थिक शोषण करना था।

वणिकवादी व्यापार तथा उद्योग नीतियाँ

शक्तिशाली राज्य के सिद्धान्त तथा अनुकूल व्यापार-शेष के विचार को व्यावहारिक रूप देने के लिये विशेष प्रकार की आर्थिक नीतियों का पालन करना आवश्यक था। एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना के लिये बहुमूल्य धातुओं का प्राप्त करना आवश्यक था। वणिकवादी विचारधारा के अनुसार केवल वाणिज्य ही बहुमूल्य धातुओं को प्राप्त करने का एक मात्र साधन था। इसके लिये यह आवश्यक था कि राज्य से अधिकतम वस्तुओं का निर्यात तथा राज्य में न्यूनतम वस्तुओं का आयात किया जाय। यह केवल उसी समय सम्भव हो सकता था जब देश में समस्त व्यापार का राज्य द्वारा पूर्ण नियमन हो। इस प्रकार वणिकवाद के अन्तर्गत व्यापार तथा उद्योगों का राज्य द्वारा पूर्ण नियमन किया जाता था। निर्यातों को अधिक तथा आयातों को कम करने के उद्देश्य से वणिकवादी राज्य में अनेक प्रकार के नियमों को लागू किया जाता था, भले ही वे नियम कष्टप्रद क्यों न हों।

सर्वप्रथम वणिकवादी राज्य में स्वर्ण व रजत के निर्यातों पर प्रतिबन्ध था। इसी विचारधारा का नाम बहुमूल्य धातुवाद (Bullionism) था। इस विचारधारा के अनुसार राज्य का यह कर्तव्य था कि बहुमूल्य धातुओं को एक बार प्राप्त करने के पश्चात् कभी भी निर्यात करके खोना नहीं चाहिए।

दूसरे, वणिकवाद में व्यापार के क्षेत्र में एकाधिकार का विशेष महत्त्व था। वणिकवादी राज्य में विदेशियों को कुछ विशेष प्रकार के व्यापारों को करने का अधिकार प्राप्त नहीं था। उदाहरणार्थ पुर्तगाल तथा स्पेन के उपनिवेशों के साथ अन्य किसी भी देश के व्यापारी व्यापार नहीं कर सकते थे। इतना ही नहीं बल्कि उपनिवेशों को पक्के माल का निर्यात तथा उपनिवेशों से कच्ची वस्तुओं का आयात केवल देश के जहाजों में ही किया जा सकता था। व्यापारियों की क्रियाओं पर कड़ा नियन्त्रण रखा जाता था तथा आयात व निर्यात पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित करने के उद्देश्य से बन्दरगाहों की मात्रा निश्चित थी। उदाहरणार्थ स्पेन में उपनिवेशों के साथ व्यापार केवल सेवाईल (Seville) की बन्दरगाह के द्वारा ही होता था। इंगलैंड

तथा हालैंड मे भी वणिकवादी युग मे व्यापार का एकाधिकार था। East India Company, जो १६०२ ई० मे स्थापित हुई थी, को पूर्वी देशों के साथ व्यापार का एकाधिकार प्राप्त था।

तीसरे, वणिकवादी राज्य मे व्यापार का प्रत्यक्ष नियमन होता था। व्यापार का एकाधिकार प्राप्त होने के कारण सभी राज्यो ने इस अधिकार का अपनी वस्तुओं को अधिक कीमतो पर बेचने तथा दूसरे राज्यो की वस्तुओ को कम कीमतो पर खरीदने के लिए प्रयोग किया। निर्यातो को, करो मे छूट तथा उपदान दे कर प्रोत्साहन दिया जाता था। कच्चे माल तथा अर्धनिर्मित वस्तुओ के निर्यात पर प्रत्यक्ष प्रतिबन्ध स्थापित थे। उदाहरणार्थ इगलैंड मे ऊनी वस्त्र उद्योग के विकास के हित मे भेडो, कच्ची ऊन तथा ऊनी सूत के निर्यात पर प्रत्यक्ष रोक लगा दी गई थी। इनके अतिरिक्त अधिक निर्यात कर लगा कर भी इन वस्तुओ के निर्यातो को हतोत्साहित किया जाता था। आयातो पर अधिक आयात कर लगाये जाते थे। लगभग प्रत्येक वस्तु पर, जिसका इगलैंड मे आयात होता था, बहुत अधिक आयात कर लगाया जाता था। इसके अतिरिक्त ऊनी तथा सूती मिल उद्योगो के हितो को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से ऊनी तथा सूती कपडे के आयात पर पूर्ण रोक लगा दी गई थी। सक्षेप मे वणिकवादी राज्य की विदेशी व्यापार नीति का एक मात्र उद्देश्य कच्चे माल के आयातो को कर से मुक्त करके प्रोत्साहित करना तथा पक्के माल के आयातो को अधिक कर लगा कर तथा प्रत्यक्ष रोक लगाकर हतोत्साहित करना था। इसके विपरीत पक्के माल के निर्यातो को निर्यात कर से मुक्त करके तथा उपदान देकर प्रोत्साहित तथा कच्ची तथा अर्धनिर्मित वस्तुओ के निर्यात को प्रत्यक्ष रोकों के द्वारा तथा अधिक निर्यात कर लगाकर हतोत्साहित किया जाता था। वणिकवादी राज्य की विदेशी व्यापार की इस नीति का प्रमुख उद्देश्य देश मे निर्यात उद्योगो का नियोजित विकास करके अधिक निर्यात करना तथा अधिक निर्यात करके अधिक मात्रा मे बहुमूल्य धातुओ को प्राप्त करना था। इस प्रकार व्यापार के क्षेत्र मे वणिकवादी राज्य मे अनेक प्रकार के नियमन तथा प्रतिबन्ध थे। प्रत्येक नियमन तथा प्रतिबन्ध का उद्देश्य किसी न किसी विशेष राष्ट्रीय उद्योग का विकास करना था।

प्रत्येक वणिकवादी राज्य मे प्रचलित नौ-परिवहन नियमो (Navigation Laws) का उद्देश्य देश के जहाजी उद्योग (Shipping Industry) को सरक्षण प्रदान करना था। वस्तुओ का आयात व निर्यात देश के अपने जहाजो मे करने से देश को अधिक बहुमूल्य धातुयें प्राप्त हो सकती थी तथा देश के उद्योगो को विदेशी जहाजो पर आश्रित नही होना पड़ता था। इसके अतिरिक्त युद्ध के समय मे भी जहाज देश की सहायता कर सकते थे। इस प्रकार एक शक्तिशाली जहाजी उद्योग की स्थापना करना वणिकवादी राज्य के लिए आवश्यक विचारा जाता था। नौ-परिवहन अधिनियमो के कारण ही अंग्रेजी समुद्र तट व्यापार, तथा इंगलैंड व उसके

उपनिवेशों के मध्य होने वाला व्यापार केवल अंग्रेजी जहाजों में ही होता था। इसी प्रकार अमरीका तथा इंगलैंड के बीच भी व्यापार केवल अंग्रेजी जहाजों में ही होता था। नौ-परिवहन अधिनियमों के द्वारा उपनिवेशी व्यापार का नियमन करने के अतिरिक्त, उपनिवेशी उद्योगों के विकास पर भी नियंत्रण स्थापित थे। जो वस्तुयें मातृभूमि के उद्योगों के विकास के लिए आवश्यक थी उन के उत्पादन को उपनिवेशों में उपदान के रूप में सहायता प्रदान करके प्रोत्साहन दिया जाता था।

वणिकवादी राज्य में उद्योगों का आन्तरिक नियमन किया जाता था। इस क्षेत्र में नियमन व नियंत्रण के दो मुख्य उद्देश्य थे। उद्योग नियमन का प्रथम उद्देश्य विनिर्मािणत वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहन प्रदान करना था। उद्योग नियमन का दूसरा उद्देश्य राज्य में सभी प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन का नियंत्रण करना था। इंगलैंड तथा फ्रान्स में उद्योग नियमन का केन्द्रीयकरण कर दिया गया था। महारानी एलिजाबेथ प्रथम के काल में १५६३ ई० में बनाये गये Statutes of Artificers औद्योगिक नियमों के केन्द्रीयकरण का एक उदाहरण है।

जनसंख्या, श्रम तथा वेतन सम्बन्धी विचार

वणिकवादी राज्य की व्यापार, उपनिवेश तथा नौ परिवहन नीतियों का उद्देश्य अनुकूल व्यापार-शेष के लक्ष्य को प्राप्त करना था। इसी प्रकार वणिकवादी श्रम तथा वेतन सम्बन्धी नीतियों का उद्देश्य भी वणिकवादी व्यापार-शेष सिद्धान्त पर आधारित था। अधिक निर्यातों को सम्भव बनाने के लिये वणिकवादी विचार धारा में कम वेतनों का भारी महत्त्व था। वेतनों को नीचे स्तर पर रखने के लिये श्रम की पूर्ति अधिक होनी चाहिये। इस कारण वणिकवादी विचारक अधिक तथा बढ़ती हुई जनसंख्या के भारी समर्थक थे। देश में अधिक जनसंख्या के विचार को वास्तविक रूप प्रदान करने के लिये उन्होंने विवाह करने तथा बच्चे उत्पन्न करने पर पारितोषिक देने तथा अविवाहितों को दण्ड देने का सुझाव दिया था। वास्तव में उन के विचार में श्रमिकों का देश की अर्थव्यवस्था में अतिमहत्त्वपूर्ण स्थान था। निकलास बारबन (Nicholas Barbon)[3] के विचार में देश के श्रमिक उस देश का धन तथा शक्ति थे। इसी प्रकार जोसिया टकर (Josiah Tucker)[4] के अनुसार वही देश सबसे अधिक धनी था जिसमें सबसे अधिक श्रमिक थे। हेनरी फील्डिंग (Henry Fielding) के विचारानुसार भी किसी समाज के व्यक्तियों की संख्या उस समाज की शक्ति तथा धन का प्रतीक थी।[5] डेवनेन्ट (Davenant) के विचार में भी किसी देश के लोग उस देश की वास्तविक शक्ति थे।[6]

---

3. "The people are the riches and strength of the country" (Nicholas Barbon)
4. "Is not that country richest which has the most labour" (Josiah Tucker)
5. "That the strength and riches of a society consists in the numbers of the people is an assertion which has attained the force of a maxim in politics" (Henry Fielding)
6. "People are the real strength of a country" (Davenant)

वणिकवादी समाज में केवल श्रमिकों की संख्या का ही महत्व नही था बल्कि उन को प्रवीणता व क्रियाशीलता का भी समान महत्व था क्योंकि श्रमिको में इन गुणो के होने से अधिक उत्पादन तथा अधिक निर्यात सम्भव हो सकते थे। यही कारण था कि लगभग सभी वणिकवादी लेखकों ने परिश्रम तथा प्रवीणता के गुणो को प्राप्त करने तथा राष्ट्रीय हित मे इन के उपयोग को भारी महत्व दिया। परन्तु इन सब बातो के साथ साथ वणिकवादियो के वेतन के सम्बन्ध मे प्रगतिशील विचार नही थे। उनके विचारानुसार वस्तुओ के उत्पादन व्यय को कम रखने का एकमात्र सरल उपाय यही था कि वेतन दर नीची रहे। उनका विचार था कि यदि श्रमिको का कम वेतन होगा तो वे सदा अधिक परिश्रम करेंगे तथा अधिक वेतन मिलने पर वे आलसी हो जावेगे। इस प्रकार वणिकवादियों को वेतन के जीवन निर्वाह सिद्धान्त का सस्थापक कहा जा सकता है। परन्तु यह एक आश्चर्यजनक बात है कि एक ओर तो वाणिकवादी लेखक श्रमिको से अधिक प्रवीणता व क्रियाशीलता की आशा करते थे तथा दूसरी ओर वेतन की दरों को नीचा रखने का अनुरोध करते थे। इस सम्बन्ध मे उन के सकुचित विचारो का समर्थन करना कठिन है।

मूल्य तथा ब्याज सम्बन्धी विचार

वणिकवादियों के पूर्व भी मध्यकाल मे लेखकों ने मूल्य के विषय पर अपने विचार व्यक्त किये थे। उन लेखको के विचारानुसार किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु के वास्तविक गुण पर आधारित था। मध्यकाल मे कुछ लेखको ने, जिन मे सेण्ट थोमस का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है, उचित कीमत (Just Price) के विचार पर अपने विचार स्पष्ट किये थे। परन्तु ये लेखक उचित कीमत को निर्धारित करने मे असफल रहे। उन का उचित मूल्य सम्बन्धी विचार वर्तमान उपयोगिता के विचार के समान था। वणिकवादी युग मे द्रव्य अर्थव्यवस्था तथा विनिमय प्रणाली के आरम्भ होने के कारण प्राचीन मूल्य सम्बन्धी विचारो मे भी परिवर्तन हुआ। वस्तु के आन्तरिक गुण (Intrinsic quality) पर आधारित उचित मूल्य के विचार के अतिरिक्त अब वस्तु के बाह्य अथवा बाजार मूल्य (Market Value) पर भी विचार किया गया। वणिकवादी विचारधारा मे वस्तु का मूल्य उसका बाजार मूल्य था जो बाजार मे विनिमय क्रम के द्वारा निर्धारित होता था। सर विलियम पेटी (Sir William Petty) के विचारानुसार किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु के उत्पादन व्यय से निर्धारित होता था। उत्पादन व्यय मे श्रम तथा भूमि पर किया गया व्यय सम्मिलित था क्योंकि पेटी धन—वस्तुओ—को श्रम तथा भूमि के सहयोग का फल विचारते थे।[7] पेटी के अनुसार वस्तु का बाह्य अथवा बाजार मूल्य वस्तु की माग तथा पूर्ति के परिवर्तनों के साथ कम या अधिक होता है। लोक (Locke) श्रम को वस्तु के मूल्य का एक मात्र साधन मानते थे। पेटी तथा लोक के मूल्य सम्बन्धी ये विचार सस्थापक सम्प्रदाय

7. "Labour is the father and active principle of Wealth, as lands are the mothers" (Sir William Petty)

(Classical School) के अर्थशास्त्रियों के विचारों से, विशेष रूप से एडम स्मिथ के विचारों से, बहुत मिलते जुलते हैं। एडम स्मिथ भी मूल्य के श्रम-व्यय सिद्धान्त (Labour-cost Theory of Value) के समर्थक थे।

वणिकवादी लेखकों ने मूल्य के समान, ब्याज पर भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश इस विषय पर अनेक वणिकवादियों के विचारों में समानता नहीं है। थोमस मन (Thomas Mun), जो एक प्रसिद्ध वणिकवादी लेखक थे, के अनुसार ब्याज का लेना उचित था क्योंकि द्रव्य को ब्याज पर उधार देकर छोटे व्यापारियों को, जिन के पास पूंजी तथा धन का अभाव होता है, आवश्यक मौद्रिक सहायता प्राप्त हो जाती है। इस से व्यापारियों को तो लाभ होता ही है, परन्तु इस के अतिरिक्त राज्य में व्यापार का भी विकास होता है। ब्याज का प्रलोभन देकर विधवाओं, नाबालिगों तथा अन्य सज्जन व्यक्तियों की बचाई हुई सम्पत्ति का व्यापार में विनियोग किया जा सकता है। इस प्रकार ब्याज का लेना तथा देना उचित था। थोमस मन के विचारानुसार ब्याज की दर औद्योगिक दशाओं का कारण है।

थोमस मन के विचारों का विरोध करते हुये सर थोमस कल्पेपर (Sir Thomas Culpeper) तथा उन के पुत्र ने अपनी पुस्तकों में ब्याज की प्रथा की कड़ी निन्दा की। इसी प्रकार सर जोसिया चाईल्ड (Sir Josiah Child) ने व्यापार तथा उद्योग के विकास के हित में ब्याज की दर को नीचा रखने का अनुरोध किया। कम ब्याज की दर पर व्यापारी अधिक ऋण लेकर व्यापार का अधिक विकास कर सकते हैं। इस के विपरीत ब्याज की दर अधिक होने पर व्यापार का विकास कठिन हो जाता है। इसी प्रकार डेवनेन्ट (Davenant) ने भी ब्याज की कड़ी आलोचना की तथा ब्याज पर कर लगाने का सुझाव दिया

विभिन्न व्यवसायों की उत्पादकता तथा कर सम्बन्धी विचार

वणिकवादी विचारधारा के अध्ययन से यह भली प्रकार ज्ञात हो जाता है *कि वणिकवादी व्यापार को सब से अधिक लाभप्रद व्यवसाय समझते थे। व्यापार* के पश्चात दूसरा तथा तीसरा स्थान क्रमश दस्तकारी तथा कृषि का था। इस प्रकार वणिकवादियों के मतानुसार व्यापार, दस्तकारी तथा कृषि उत्पादक व्यवसाय थे क्योंकि व्यापारी, दस्तकार तथा कृषक विदेशों से बहुमूल्य धातुओं को प्राप्त कर के राज्य को शक्तिशाली बनाते थे। इसके विपरीत वकालत, डाक्टरी, शिक्षण इत्यादि अनुत्पादक व्यवसाय थे क्योंकि इन से देश में बहुमूल्य धातु कोष में कोई वृद्धि नहीं होती।

करों के सम्बन्ध में वणिकवादियों के विचारानुसार राज्य को प्रत्येक नागरिक से केवल उतना कर लेना चाहिये जितनी उसको राज्य से सुविधायें प्राप्त होती हैं। जो व्यक्ति अधिक व्यय करते हैं वे राज्य से अधिक सुविधायें प्राप्त करते। पेटी, जो प्रसिद्ध अंगरेजी वणिकवादी लेखक थे, के विचारानुसार प्रत्येक व्यक्ति

को चाहिये कि वह अपनी योग्यतानुसार राज्य कोष मे चन्दा दे। सभी वणिकवादी विचारक सामान्य रूप से उत्पादन करों (Excise Duties) के पक्ष मे तथा सीमा-शुल्क (Custom Duties) के विरोध मे थे।

कुछ प्रमुख वणिकवादी लेखक

वणिकवादी व्यावहारिक व्यक्ति थे। उन्होंने विभिन्न लेखो तथा पुस्तिकाओं में अपने विचार व्यक्त किये है। इन लेखको के विचारो मे समानता, सगठन तथा स्पष्टता का अभाव है। यही कारण है कि यद्यपि वणिकवादी लेखको ने लगभग सभी आर्थिक विषयो पर अपने विचार स्पष्ट किये है, परन्तु फिर भी ये आर्थिक सिद्धान्तो का निर्माण न कर सके। कुछ समय पश्चात एडम स्मिथ ने ही वणिकवादियों तथा प्रकृतिवादियो के असगठित विचारो को एकत्रित करके तथा उनका विश्लेषण करके आर्थिक सिद्धान्तो का निर्माण किया। यद्यपि वणिकवादी लेखको की सख्या बहुत अधिक है तथा यहाँ प्रत्येक लेखक का अलग अलग अध्ययन करना कठिन है, फिर भी यहाँ पर कुछ प्रमुख अगरेजी, जर्मन तथा फ्रान्सीसी वणिकवादी लेखको के विचारो का सविस्तार अध्ययन करना उचित है।

थोमस मन (१५७१ ई०–१६४१ ई०)–थोमस मन (Thomas Mun), जिन के लेख वणिकवादी सिद्धन्तो तथा नीतियो के सग्रह है, लन्दन के व्यापारी थे। वे ईस्ट इन्डिया कम्पनी (East India Company) के सचालक भी थे। वे वाणिज्य बोर्ड के सदस्य भी रहे थे। उन्होंने व्यापार के सम्बन्ध में अपने विचार अपनी पुस्तक **England's Treasure by Foreign Trade** मे व्यक्त किये जो न केवल इगलैंड की बल्कि समस्त यूरोप के देशों की वैत्तिक तथा आर्थिक नीतियो के आधार बन गये थे। सभी अन्य वणिकवादियो के समान मन ने भी धन को मुद्रा से सबोधित किया। मन के विचार मे विदेशी व्यापार धन के सचय का सब से उत्तम साधन था तथा उन्होंने विदेशी व्यापार को अपने लेखो मे बहुत महत्व दिया था। मन अनुकूल व्यापार शेष को प्राप्त करने मे अदृश्य निर्यातो (जहाजो, बीमा, व्यापारियों का कमीशन इत्यादि द्वारा प्राप्त आय) का महत्व समझते थे तथा इसी कारण उन्होंने देश मे जहाज उद्योग (Shipping Industry) के विकास पर अधिक जोर दिया। इसके अतिरिक्त मन के लेखो मे मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त *(Quantity Theory of Money) तथा मूल्य के सिद्धान्त (Theory of Value)* के भी चिन्ह मिलते है। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि मुद्रा की मात्रा मे वृद्धि होने से वस्तुओं की कीमतो मे जो वृद्धि होती है उस से व्यापार-शेष प्रतिकूल हो जाता है। इसके विपरीत चलन मे मुद्रा की मात्रा कम होने से मूल्य नीचे रहते हैं। अन्य वणिकवादी लेखको के समान मन भी बहुमूल्य धातुओं के सचय को अच्छा समझते थे।

मन करो को बुरा समझते थे। उन के मतानुसार कर 'कठोरता का ढेर' के

समान थे क्योकि प्रत्येक कर प्रजा को गरीब तथा राजा को धनी बनाता है। परन्तु करों को बुरा समझते हुये भी उन के विचार मे करों का लगाया जाना आवश्यक था क्योकि बिना कर लगाये राज्य की प्रतिरक्षा करना कठिन था।

जान लोक (१६३२ ई०-१७०४ ई०)—जान लोक (John Locke) अपने समय के एक महान विचारक तथा दार्शनिक थे। उन को मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त का बहुत ज्ञान था। उन्होने मुद्रा के सापेक्ष मूल्य पर प्रकाश डाला। उन्होने मुद्रा के वेग (Velocity of Money) के विचार को भी स्पष्ट किया तथा यह व्यक्त किया कि मुद्रा की मात्रा उसके वेग से भी प्रभावित होती है। उन्होने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त का भी सर्वप्रथम निर्माण किया। एजल (J. W Angell) ने उन की इस सिद्धान्त का निर्माण करने के कारण अपनी पुस्तक **The Theory of International Prices** मे प्रशसा की है। अन्य सभी वणिकवादी लेखकों के समान लोक भी अनुकूल व्यापार-शेष के पक्ष मे थे तथा प्रतिकूल व्यापार-शेष को राष्ट्रीय बरबादी का प्रतीक समझते थे।

सर जेम्स स्टीवार्ट (१७१२ ई०–१७८० ई०)—सर जेम्स स्टीवार्ट (Sir James Steuart) १८वी शताब्दी के सब से अधिक योग्य अगरेज वणिकवादी लेखक थे। उनकी **An Inquiry into the Principles of Political Economy** नामक पुस्तक दो भागो में १७६७ ई० मे प्रकाशित हुई थी। यद्यपि उनकी यह पुस्तक उस समय की समस्याओं का एक क्रमबद्ध अध्ययन थी परन्तु फिर भी इस ने लोगों का अधिक ध्यान आकर्षित नही किया गया। एडम स्मिथ, जिनकी सुप्रसिद्ध पुस्तक **Wealth of Nations** इस पुस्तक के नौ वर्ष पश्चात प्रकाशित हुई थी, ने भी इस का अध्ययन करना आवश्यक नही समझा। परिमाणस्वरूप कुछ ही समय पश्चात यह पुस्तक गुप्त हो गई। उन की पुस्तक मे जनसख्या, मुद्रा, कृषि, व्यापार तथा उद्योग इत्यादि विषयो का सविस्तार अध्ययन किया है। जेम्स स्टीवार्ट पहले वणिकवादी लेखक थे जिन्होंने 'Political Economy' शब्द का प्रयोग किया था।

सर विलियम पेटी (१६२३ ई०–१६८७ ई०)—सर विलियम पेटी (Sir William Petty) कुछ लोगों के मतानुसार Political Economy के संस्थापक थे। उन के सभी लेखो के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि वे अपने समय के एक महान विचारक थे। उन की **Discourses on Political Arithmetic** (१६६० ई०), **A Teatise of Taxes and Contributions** (१६६२ ई०), **Political Anatomy of Ireland** (१६७२ ई०), **Quantulumcunque Concerning Money** (१६८२ ई०) नामक चार पुस्तकें उन की महानता को सिद्ध करती हैं। उन्होने कराधान (Taxation) के सिद्धान्तो का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया था तथा राष्ट्रीय धन के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। थोमस मन के समान वे भी करो को

आवश्यक समझते थे। अपनी पुस्तक **A Treatise of Taxes and Contributions** मे उन्होने पूँजी के महत्व, जनसंख्या, लगान के सिद्धान्त, मूल्य के सिद्धान्त मुद्रा तथा उत्पादन आदि महत्वपूर्ण विषयो पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। उन के मतानुसार यद्यपि श्रम तथा भूमि दोनो ही धन का स्रोत थे परन्तु श्रम को उन्होंने भूमि की अपेक्षा अधिक महत्व दिया है। सभी वस्तुओ का मूल्य उन वस्तुओं मे लगे श्रम तथा भूमि के व्यय से निर्धारित होता है।[8] वे भी अन्य वणिकवादी लेखकों के समान वेतनो को जीवन निर्वाह स्तर पर निश्चित करने के पक्ष में थे। अधिक जनसंख्या के वे भी पक्ष मे थे। उन के मतानुसार जिस राज्य मे अधिक जनसंख्या होती है वह राज्य कम जनसंख्या वाले राज्य की अपेक्षा अधिक धनी व शक्तिशाली होता है।[9] वे व्याज के विरोध मे नही थे। वे मुद्रा को व्यापार तथा उद्योग को सुविधा प्रदान करने का एक साधन समझते थे। उनके मतानुसार राज्य का कर्तव्य मुद्रा के मूल्य को स्थिर रखना था।

रिचर्ड कॅंटिलन (१६८० ई०-१७३४ ई०)–रिचर्ड केंटिलन (Richard Cantillon) प्रसिद्ध वणिकवादी विचारक थे। उन का जन्म इंगलैंड में हुआ था परन्तु वे फ्रांस मे जा कर रहने लगे थे। इसी कारण वे फ्रान्सीसी वणिकवादी लेखक कहे जाते हैं। उन्होने अनेको आर्थिक विषयो पर लिखा है। राष्ट्रीय धन, विनिमय तथा विदेशी व्यापार सम्बन्धी विषयो में उन की विशेष रुचि थी। उन के मतानुसार किसी देश की वास्तविक सम्पत्ति उस की भूमि तथा श्रम होते हैं। किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु पर व्यय किये गये श्रम तथा भूमि के मूल्य से निर्धारित होता है। उन को द्रव्य के परिमाण सिद्धान्त व व्यापार-शेष के सिद्धान्त का पूर्ण ज्ञान था। वे अनुकूल व्यापार-शेष के पक्ष मे थे तथा उन के विचार मे यह राज्य की आर्थिक शक्ति का प्रतीक था। अन्य फ्रान्सीसी वणिकवादी लेखको मे जीन बोडिन (Jean Bodin) तथा जान ला (John Law) के नाम उल्लेखनीय है।

फिलिप विल्हम वान हारनिक (१६३८ ई०–१७१२ ई०)—फिलिप विल्हम वान हारनिक (Phillip Wilhelm Von Hornick) का जन्म आस्ट्रिया मे हुआ था। वे १६८० ई०–१६८४ ई० मे जर्मनी व आस्ट्रिया तथा फ्रान्स के बीच हुये युद्ध के दर्शक थे। इस युद्ध ने उन के राजनैतिक विचारो मे घना परिवर्तन किया। उन की पुस्तक **Oesterreich Uber Alles, Wann es nur Will** जिस मे उन के वणिकवादी सिद्धान्तो का वर्णन है, १६८४ ई० मे प्रकाशित हुई थी। उन्होंनेराज य अर्थव्यवस्था के प्रसिद्ध नौ नियमो का निर्माण किया था। उन के इन नियमो का

आस्ट्रिया की वाणिज्य नीति पर गहरा प्रभाव पड़ा था। उनके नौ नियमों के अनुसार देश की भूमि के गुणों की पूरी तरह जाच की जानी चाहिये। विदेशों से केवल कच्चे माल का ही आयात होना चाहिये। बहुमूल्य धातुओं का निर्यात नहीं होना चाहिये। देश मे जहां तक सम्भव हो सके केवल देश मे बनी वस्तुओ का ही उपभोग होना चाहिये तथा जो वस्तुयें देश मे प्राप्त हो सकती हैं उनका आयात नही होना चाहिये।

जोहानीस हीनरिच वान जस्ती (१७१७ ई०-१७७१ ई०)—वान जस्ती (Johannes Heinrich Von Justi) वियना (Vienna) मे प्रोफेसर थे। Frederick the Great के समय में वे खानों के शासक के पद पर भी रहे थे। वे एक कुशल लेखक थे। वे कई प्रसिद्ध पुस्तकों के लेखक थे। अपनी पुस्तकों मे उन्होंने अपने पूर्वज वणिकवादी लेखकों के बिखरे विचारो को सगठित रूप दिया है। इस प्रकार उनकी पुस्तकें वणिकवादी विचारधारा का सग्रह है। उनकी पुस्तक Staatswirtschaft मे अन्य सभी वणिकवादी लेखकों के विचार विद्यमान हैं। सभी वणिकवादी लेखकों के समान वान जस्ती बहुमूल्य धातुओ के सचय, अधिक जनसख्या तथा विदेशी व्यापार के भारी समर्थक थे। उन्होंने कराधान के नियम बनाये तथा अचल सम्पत्ति कर, व्यक्तिगत कर, व्यवसाय कर, वस्तु कर आदि अनेक प्रकार के प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष करो की विवेचना की थी। उनके कराधान के नियमो के अनुसार कर करदाताओं की करदान क्षमता के आधार पर लगाये जाने चाहिये। इसके अतिरिक्त करो का व्यापार तथा उद्योग पर बुरा प्रभाव नही पड़ना चाहिये। तीसरे, कराधान समानता पर आधारित होना चाहिये। चौथे, कर निश्चित होने चाहिये तथा इस प्रकार से लगाये जाने चाहिये कि उनका अपवचन न हो सके। कर अधिकारियो की सख्या अधिक नहीं होनी चाहिये। करो का भुगतान करते समय करदाता को कष्ट नही होना चाहिये। इस प्रकार जस्ती वर्तमान कराधान के सिद्धान्तो के सच्चे निर्माता कहे जा सकते हैं।

कराधान के अतिरिक्त जस्ती के विचार मे कृषि की उन्नति एक शक्तिशाली राज्य के लिये आवश्यक है। अपनी दूसरी पुस्तक **Finanzschriften** में उन्होंने अपने अन्य वणिकवादी विचारो को व्यक्त किया है।

नव-वणिकवाद (Neo-Mercantilism)

वर्तमान शताब्दी मे वणिकवाद का पुनरुत्थान हुआ है तथा ससार के लगभग सभी देश—विकसित व अविकसित—वणिकवादी आर्थिक नीतियों को अपना रहे हैं। वणिकवाद आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्र मे समस्त समाज की आर्थिक-व्यापार व उद्योग-क्रियाओं के राज्य द्वारा नियमन तथा नियंत्रण की विचारधारा थी। यद्यपि १६ वीं शताब्दी तथा वर्तमान शताब्दी मे भी 'तीसा' के महान अवसाद के पूर्व आर्थिक

क्रियाएं अबन्ध नीति (Laissez-faire) के विचार पर आधारित थी तथा राज्य का आर्थिक क्षेत्र मे हस्तक्षेप करना बुरा समझा जाता था। प्रथम महायुद्ध तथा तीसा की महान मन्दी के काल मे यह भली प्रकार स्पष्ट हो गया कि अबन्ध नीति के द्वारा समाज मे पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त नही किया जा सकता था। समाज मे बेरोजगारी की बढती हुई समस्या तथा आर्थिक अस्थिरता के दोषो को दूर करने के लिये आर्थिक क्षेत्र मे राज्य के हस्तक्षेप को आवश्यक समझा जाने लगा। कीन्स ने जो तीसा की महान मन्दी के पूर्व अबन्ध नीति के समर्थक थे, अर्थव्यवस्था को दृढ बनाने के लिये राज्य के हस्तक्षेप की आवश्यकता को स्वीकार किया। वर्तमान युग मे ससार केसभी देशो मे समाज ने राज्य को आर्थिक क्षेत्र मे हस्तक्षेप करने का अधिकार प्रदान कर रखा है। अविकसित देशो मे जहाँ राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिये नियोजन को आवश्यक समझा जाता है नियोजित अर्थव्यवस्था एक वास्तविकता बन गई है। नियोजित अर्थव्यवस्था मे व्यापार, उद्योग तथा राष्ट्रीय आय के वितरण के क्षेत्र म राज्य का नियत्रण है। किन उद्योगो का देश मे विकास होना चाहिये, नये उद्योग देश के किस भाग मे स्थापित होने चाहिये, किन वस्तुओ का आयात तथा किन वस्तुओ का निर्यात होना चाहिये; विनिमय दर क्या होनी चाहिये, देश मे किन वस्तुओ पर कर लगना चाहिये तथा कौनसी वस्तुये कर से मुक्त होनी चाहिये, निर्यातो को किस प्रकार प्रोत्साहित किया जाये तथा आयातो पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रोक लगानी चाहिये, इत्यादि प्रश्न वर्तमान समय मे राज्य द्वारा ही तय किये जाते है। आज सभी देशो मे नर्यातो को बढाने तथा आयातो को कम करने का अधिकतम प्रयत्न किया जाता है। सभी देशो की विदेशी व्यापार नीति का उद्देश्य अनुकूल व्यापार-शेष की स्थिति को प्राप्त करना है। यही उद्देश्य वरिणकवादी विचारधारा का भी था।

वर्तमान युग मे सभी देश आयात-करो के द्वारा आयातो को कम तथा निर्यातों को उपदान (Subsidies) के द्वारा अधिक करने का प्रयत्न करते है। वरिणकवादी राज्य की नीति भी यही थी। तीसा के काल मे तो सभी देश अत्यधिक निर्यात करने के इच्छुक थे तथा आयात बिलकुल नही करना चाहते थे। श्रीमती जान रोबिनसन (Mrs. Joan Robinson) ने ठीक ही कहा है कि विदेशी व्यापार के क्षेत्र मे सभी देश Beggar my Neighbour नीति का पालन कर रहे थे। वे इस सत्य को भूल गये थे कि उन की समृद्धि भी तभी सम्भव हो सकती थी जब उन का पडोसी देश भी खुशहाली की स्थिति मे हो। यह उसी समय सम्भव था जब वे निर्यात के साथ आयात भी करते। परिणाम यह हुआ कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार खण्डित हो गया तथा वे स्वंय निर्धन बन गये। वरिणकवादी राज्य की नीति भी यही थी।

इन सब बातो के अतिरिक्त वरिणकवादी बहुमूल्य धातुओ के सचय को बहुत महत्व देते थे। तीसा के काल मे भी यही विचारधारा विद्यमान हुई। सयुक्त राष्ट्र आफ अमरीका मे स्वर्ण का घनी मात्रा मे आयात किया गया था। इस से ससार के

अन्य देशों में मुद्रा सकुचन तथा मन्दी की समस्या विद्यमान हो गई तथा परिमाण-स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय स्वर्ण मान का सदा के लिये खण्डन हो गया। यदि अमरीका तथा कुछ अन्य देशों ने वणिकवादी विचारधारा को न अपनाया होता तथा स्वर्णमान के नियमों का पालन किया होता तो ससार के देशों को (अमरीका सहित) बहुत सी आर्थिक कठिनाइयों का सामना न करना पड़ता।

इस के अतिरिक्त वणिकवादी राज्य बहुत शक्तिशाली था। वर्तमान साम्य-वादी तथा समाजवादी राज्यो की तुलना वणिकवादी राज्य से कुछ बातों में अवश्य की जा सकती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ससार के देश वणिकवाद की ओर जा रहे है तथा अबन्ध नीति का केवल ऐतिहासिक महत्व ही रह गया है।

यद्यपि यह सत्य है कि वर्तमान समय में राज्य के क्षेत्र तथा शक्ति का विस्तार हो रहा है तथा इस प्रकार वणिकवाद का पुनरुत्थान हो रहा है, परन्तु प्राचीन वणि-कवाद तथा वर्तमान समय के नव-वणिकवाद में कुछ महत्वपूर्ण अन्तर हैं। प्रथम, यद्यपि राज्य को अधिक शक्तियां प्राप्त हैं परन्तु ये शक्तियां प्रजातन्त्रवादी राज्य को जनता से प्राप्त हुई है तथा राज्य इन शक्तियों का उपयोग समाज के हितों के पक्ष में करता है। दूसरे, प्रजातन्त्रीय नियोजन का उद्देश्य जनता के आर्थिक जीवन में समृद्धि लाना है। वणिकवादी राज्य का यह उद्देश्य नही था क्योंकि वणिकवादी राज्य में अधिकाँश व्यक्तियों को केवल जीवन निर्वाह का ही अधिकार था। आज राज्य को अधिक शक्ति प्रदान करने का उद्देश्य सामाजिक कल्याण है। तीसरे, वर्तमान युग में योजनायें विश्वासनीय साख्यिकी आकडो पर आधारित होती है। प्राचीन वणिक-वादी राज्य में सामाजिक कल्याण का कोई महत्व नही था तथा न ही उस काल में साख्यिकी आकडे एकत्र किये जाते थे।

वणिकवाद का पतन

मानव जीवन के समान आर्थिक विचारधारायें भी जन्म, उत्थान, तथा मृत्यु के चक्र के अधीन होती हैं। वणिकवादी विचारधारा भी इसी सामान्य नियम के अधीन थी। वणिकवाद मे धन को अधिक महत्व देने का परिणाम यह हुआ कि मनुष्य का ध्यान जीवन के वास्तविक लक्ष्य से दूर हट कर धन को एकत्र करने मे लग गया। इस का यह भी परिणाम हुआ कि अर्थशास्त्र केवल धन का शास्त्र बन गया। इस विचार-धारा की कुछ समय पश्चात कारलाइल तथा रस्किन ने बडी आलोचना की। वणिक-वादी राज्य में, जहाँ श्रमिकों का वतन केवल जीवन निर्वाह सिद्धान्त (Subsistence Theory) पर आधारित था, श्रमिकों का व्यापारियों द्वारा आर्थिक शोषण स्वाभाविक था। ऐसा राज्य स्थायी नही हो सकता था। इस के अतिरिक्त वणिकवादियों के इस विचार मे भी कोई तत्व नही था कि बहुमूल्य धातुयें देश की शक्ति का प्रतीक होती है। वणिकवाद का यह भी दोष था कि वणिकवादी समाज में सभी सत्ता राज्य मे निहित थी हम सभी इस बात को भली प्रकार जानते है कि सभी प्रकार की सत्ता मनुष्यको

दूषित करती है तथा पूर्ण सत्ता मनुष्य को पूर्णरूप से दूषित करती है। यही वणिक-वादी राज्य के विषय में भी सत्य सिद्ध हुआ। वणिकवादी राज्य ने अपनी शक्तियों का दुरुपयोग किया जिस के कारण जनता में असन्तोष फैलने लगा। इतिहास के विद्यार्थी इस सत्य से भली प्रकार परिचित हैं कि किस प्रकार Stuart काल में इंगलैंड में राजा तथा प्रजा के बीच शक्ति प्राप्त करने के विषय पर मतभेद रहे तथा किस प्रकार अन्त में जनता को अधिकार प्राप्त करने में सफलता प्राप्त हुई। इस के अतिरिक्त उदारतावाद (Liberalism) का प्रारम्भ होने के कारण भी वणिकवाद का पतन हुआ। इन सब बातों के अतिरिक्त वणिकवादी विचारधारा में लचीलेपन का अभाव होने के कारण इस में समय के साथ बदलती परिस्थितियों के अनुकूल सुधार करना सम्भव नहीं था। इस के अतिरिक्त वणिकवादी विदेशी व्यापार की नीति के पालन के द्वारा अन्त-र्राष्ट्रीय व्यापार का सतुलित विकास असम्भव था। प्रवैगिक समार में स्थैतिक वणि-कवादी विचारधारा का कुछ समय के पश्चात विद्यमान रहना सम्भव नहीं था। वणिकवादियों को यद्यपि व्यावहारिक जीवन का ज्ञान था परन्तु वे अर्थशास्त्र के उन सिद्धान्तों का निर्माण नहीं कर सके जिन के कारण उन को अर्थशास्त्र के संस्थापकों का सम्मान प्राप्त होता। उन का आर्थिक दृष्टिकोण बहुत सकुचित था तथा १६ वीं शताब्दी में हुई औद्योगिक क्रान्ति उन की विचारधारा के प्रतिकूल थी।

वणिकवाद का संक्षिप्त आलोचनात्मक अध्ययन

यद्यपि वणिकवाद यूरोप के देशों में केवल लगभग २½ शताब्दी तक विद्यमान रहा परन्तु अपने काल में यह आर्थिक विचारधारा के क्षेत्र में एक महान क्रान्ति थी। एक ऐसे समय में जब मध्यकालीन सामन्तवाद तथा चर्चप्रधानतावाद का जोर था, एक शक्तिशाली राज्य इन मध्यकालीन प्रथाओं की समाप्ति के लिये अनिवार्य था। इस के अतिरिक्त विदेशी व्यापार के क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने तथा अनुकूल व्यापार-शेष के विचार को कार्य रूप देने के लिये देश में व्यापार, उद्योग, वेतन, उपभोग इत्यादि का राज्य द्वारा नियमन किया जाना भी आवश्यक था। अधिक निर्यात करने के हेतु विदेशों में उपनिवेशों को स्थापित करना भी कोई कम आवश्यक नहीं था। ये सब कार्य राज्य को शक्तिशाली बना कर ही किये जा सकते थे। इस प्रकार वणिकवाद को आर्थिक क्षेत्र में राज्य-निर्माण की विचारधारा तथा नीति कहना गलत न होगा।

इस काल में वर्तमान पूँजीवाद की स्थापना हुई। पूँजी के सचय को सम्भव बनाने के लिये बचत पर महत्व दिया जाना स्वभाविक ही था। वणिकवाद में विदेशी व्यापार पहली बार बड़े स्तर पर होना आरम्भ हुआ तथा यह कहना गलत न होगा कि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का इतिहास वणिकवाद से आरम्भ होता है। राष्ट्रीय उद्योगों के विकास के हित में वणिकवादी राज्य में आयात कर लगाये जाते थे। इस प्रकार आयात करों तथा निर्यात उपदान नीति के द्वारा राज्य में उद्योगों को सरक्षण प्रदान करके वणिकवादियों ने एक प्रकार से वर्तमान संरक्षण

सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। वणिकवादियों ने राजस्व के क्षेत्र में कराधान (Taxation) के सिद्धान्तो का भी अध्ययन किया। सभी वणिकवादी लेखक करो को आवश्यक समझते थे क्योकि कर राज्य की आय का साधन थे। जर्मन वणिकवादी वान जस्ती को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष करो तथा कराधान के सिद्धान्तो की विवेचना की राजस्व के विषय पर लिखने वाले किसी भी वर्तमान अर्थशास्त्री की विवेचना से तुलना की जा सकती है। वणिकवादी कम ब्याज के पक्ष मे थे क्योकि कम ब्याज की दर देश मे व्यापार व उद्योग के विकास के हित मे थी। उनका यह विचार ठीक था तथा वर्तमान अर्थशास्त्री भी देश मे विनियोग तथा रोजगार के स्तर को ऊँचा करने के लिये ब्याज की दर मे कमी करने का सुझाव देते हैं। इस प्रकार यदि उस समय की परिस्थितियो को ध्यान मे रखा जाय तो वणिकवाद में दोष पाना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है।

वर्तमान शताब्दी के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कीन्स ने वणिकवादियो की प्रशसा की है। कीन्स के मतानुसार वणिकवाद ने राज-कार्य पद्धति (Statecraft) जो समस्त अर्थव्यवस्था की समस्याओ तथा समाज के उत्पत्ति के साधनो के अधिकतम उपयोग मे सम्बन्धित हैं, की नीव डाली। वणिकवादियो ने अनुकूल व्यापार-शेष तथा राष्ट्रीय समृद्धि के मध्य कारण-परिणाम का सम्बन्ध स्थापित किया, अर्थात् उन्होने यह बताया कि विदेशी व्यापार के अनुकूल व्यापार-शेष पर राज्य की समृद्धि निर्भर होती है। वे वास्तविक नीतियो तथा राज्य की प्रगति मे अधिक रुचि रखते थे। कीन्स के विचारानुसार वणिकवादी आर्थिक समष्टिभाव (Macroeconomics) के सस्थापक थे।

परन्तु वणिकवाद सकुचित राष्ट्रीयता के विचार पर आधारित था। वणिक-वादी विचारधारा मे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एकमात्र उद्देश्य राज्य की राजनैतिक शक्ति मे वृद्धि करना था। यही कारण था कि वणिकवादी काल मे विदेशी व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय मित्रता को स्थापित करने के स्थान पर शत्रुता का प्रतीक था। इसके अतिरिक्त वणिकवाद मे यह सम्भव था कि एक ओर तो शक्तिशाली तथा धनी राज्य विद्यमान हो तथा दूसरी ओर उसी राज्य मे अधिकाश व्यक्ति जीवन मे निर्धनता का अनुभव करे। इसका मुख्य कारण यह था कि वणिकवाद मे लोक कल्याण का कोई स्थान निहित था। वणिकवाद मे धनी राज्य तथा गरीब जनता दो विरोधी वास्तविकताये नही थी। यह सकुचित विचार केवल थोडे समय तक ही प्रचलित रह सकता था क्योकि वास्तविकता यह है कि जनता की समृद्धि के बिना कोई भी राज्य स्थायी रूप मे शक्तिशाली तथा धनवान नही बन सकता है।

विशेष अध्ययन सूची

1. J. M Ferguson : Landmarks of Economic Thought, Chapter, III.
2. J. F. Bell : A History of Economic Thought, Chapters, 6 and 7.

3. Robert Lekachman : A History of Economic Ideas, Chapter, 3.
4. L. H. Haney : History of Economic Thought, Chapter, VII.
5. E. F. Heckscher : Mercantilism (2 vols.), 1935.
6. Eric Roll : A History of Economic Thought, Chapter, II.
7. Jacob Viner : Studies in the Theory of International Trade, Chapter, I.
8. Spengler & Allen : Essays in Economic Thought, Essay 1 & 3.
9. J. A. Schumpeter : History of Economic Analysis, Part II, Chapter, 7.
10. Alexander Gray : The Development of Economic Doctrines, Chapter, III.
11. William Fellner · Modern Economic Analysis, Chapter, 3.
12. Philip Charles Newman : The Development of Economics Thought, Chapter, II

प्रश्न

1. 'In several important respects a recrudescence of Mercantilism developed following the depression of the Nineties and came to a head with the World War (1914-18) and particularly after 1921.' (Haney). Examine the growth of this neo-Mercantilism during the inter-war period.
   (राजस्थान, १९४९)
2. "Mercantilism is the name of the general type of economic thought which prevailed during the rise and existence of absolute monarchy." Explain this, giving the general content of Mercantilistic thought.
   (राजस्थान, १९५०)
3. *What are the chief tenets of Mercantilism ? Trace its vestiges in modern economic policies.*
   (राजस्थान, १९५२; कर्नाटक, १९५८)
4. State and evaluate the basic ideas of Mercantilists and Neo-mercantilists.
   (राजस्थान, १९५६)
5. Examine critically the circumstances that gave rise to mercantilism and those that brought about its decay.
   (राजस्थान, १९५९; आगरा, १८४९, १९५३)
6. Give a resume of the Mercantilist strategy and tactics and indicate if they contain any scientific truth.
   (बनारस, १९५७)

7. 'When considered with reference to the problems of the time in which mercantilism flourished, it is difficult, if not impossible, to find fault with the system'. (Scott) Examine this statement

(आगरा, १६५१; १६६१)

8. 'This Neo-mercantilism of the post-war period naturally differed in several respects from the olden mercantilism, and especially in that it appealed to more idealistic philosophy'. (Haney) Comment.

(आगरा, १६५५)

9. Explain how the mercantile system can be regarded as a system of planned economy.

(अलीगढ़, १६५६)

10. Do you agree with the view that the term Mercantilism' lacks meaning for purposes of economic analysis.

(अलीगढ, १६५८)

11. 'Mercantilism in essence, was an economic policy and an economic doctrine bound up with the political doctrine of nationalism.' (J. M Ferguson). Comment

(आगरा, १६५६)

अध्याय ५

प्रकृतिवादी

(*The Physiocrats*)

फिजियोक्रेट (Physiocrat) शब्द फ्रान्सीसी भाषा के शब्द फिजियोक्रेटी (Physiocratie), जिसका हिन्दी अर्थ प्रकृति का शासन (Rule of Nature), है, से प्राप्त हुआ है। प्रकृतिवादी १८ वी शताब्दी में फ्रान्सीसी उत्साही समाज सुधारको का एक ऐसा समुदाय था जिसने आर्थिक विचारो की उस प्रणाली का जो वर्तमान अर्थशास्त्र विज्ञान की आधारशिला है सर्वप्रथम निर्माण किया था। इसी कारण प्रकृतिवादियों को अर्थशास्त्र विज्ञान के सस्थापक होने का गौरव प्राप्त है।[1] आर्थिक विचारो के इतिहास मे वह विचारधारा जिसका इस समुदाय के सदस्यो ने सस्थापन किया था 'प्रकृतिवाद' तथा वे स्वय 'प्रकृतिवादियों' के नाम से प्रसिद्ध हैं। एडम स्मिथ के विचारानुसार प्रकृतिवादी 'कृषि प्रणाली' (Agricultural System) के भारी समर्थक थे तथा इस कारण उन्होने प्रकृतिवाद को कृषि प्रणाली के नाम से सम्बोधित किया था। इससे प्रकृतिवाद की मुख्य विशेषता का कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। प्रकृतिवाद के सस्थापक फ्रेनक्वस क्वेसने (Francois Quesnay) के मतानुसार "प्रत्येक वह बात जो कृषि के लिये हानिकारक सिद्ध होती है, राष्ट्रीय हितो तथा राज्य के लिये भी हानिकारक होती है। इसके विपरीत प्रत्येक वह बात जो कृषि के लिये लाभदायक होती है, वह राज्य तथा राष्ट्र के लिये भी हितकारी सिद्ध होती है।"[2] सभी प्रकृतिवादियो के लेखो मे यह विचार स्पष्ट रूप से

1. यद्यपि इस सम्बन्ध मे अर्थशास्त्रियो मे मतभेद पाया जाता है परन्तु प्रकृतिवादी स्वय अपने आप को गौरव के साथ 'Economistes' कहते थे। प्रो० जीड तथा रिस्ट के मतानुसार केवल एडमस्मिथ को ही अर्थशास्त्र विज्ञान का सच्चा संस्थापक कहलाने को गौरव प्राप्त है। प्रकृतिवादियो को उनके मतानुसार, अर्थशास्त्र विज्ञान का केवल अग्रसर (Heralds) ही कहा जा सकता है।
2. "E... rejudices the ...ich is favour-..." (Francois ...ugene Daire,

व्यक्त किया गया है। प्रकृतिवादी प्रबन्ध नीति (Laissez faire) के भारी समर्थक थे। वे आर्थिक क्षेत्र में राज्यकीय नियंत्रण तथा सरकारी हस्तक्षेप की नीतियो के विरोध मे थे। उनके विचारानुसार आदर्श राज्य मे व्यक्तियो को अधिकतम आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। प्रकृतिवादियो को अर्थशास्त्रियों के प्रथम सम्प्रदाय को स्थापित करने का श्रेय प्राप्त है।

प्रकृतिवाद को जन्म देने वाले कारण

प्रत्येक समय के आर्थिक विचार उस समय की आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियो से प्रभावित होते हैं तथा उन परिस्थितियो को स्वय प्रभावित करते है। प्रकृतिवाद के जन्म के सम्बन्ध मे भी यह बात पूर्णतया सत्य है। प्रकृतिवाद के आरम्भ (Origin) होने के कारणो के सम्बन्ध मे ज्ञान प्राप्त करने के लिये १८ वी शताब्दी मे फ्रान्स के राजनैतिक व सामाजिक इतिहास का अध्ययन करना आवश्यक है। १८ वी शताब्दी के मध्य मे फ्रान्स की राजनैतिक व आर्थिक स्थिति बहुत चिन्ताजनक थी। फ्रान्स के राजा Louis XIV (१६४३ ई०-१७१५ ई०) के ७२ वर्ष के शासन काल मे अनेक युद्धो तथा फिजूल खर्ची के कारण राज्य तथा जनता की आर्थिक स्थिति बहुत खराब अवस्था मे थी। Louis XIV के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी Louis XV ने १७१५ ई० से लेकर १७७४ ई० तक लगभग ६० वर्ष तक राज्य किया। इन दोनों राजाग्रो के लगभग १३७ वर्ष के शासनकाल मे फ्रास क्रम से लगातार युद्ध लडने मे व्यस्त रहा। इसी काल मे फ्रान्स की राष्ट्रीय सीमाग्रो मे भी परिवर्तन हुये। इसके अतिरिक्त इस काल मे उपनिवेशो को प्राप्त करने तथा खोने का क्रम भी विद्यमान रहा था। अन्त मे फ्रान्स के उपनिवेश साम्राज्य (Colonial Empire) को काफी धक्का लगा तथा शान्ति सन्धियों के फलस्वरूप फ्रान्स को कनाडा तथा भारत इत्यादि उपनिवेशो को त्यागना पडा। इस काल मे राज्य की प्रत्येक क्रिया के कारण राष्ट्रीय ऋण के भार मे भी अत्यधिक वृद्धि हो गई तथा फ्रान्स एक परिक्षीण राष्ट्र (Insolvent Nation) की गम्भीर स्थिति को पहुँच गया था। ऐसी स्थिति मे वातावरण आर्थिक विचारो व नीतियो के क्षेत्र मे परिवर्तन होने के अनुकूल था।

इसके अतिरिक्त यद्यपि इस काल मे फ्रान्स की लोक नीति मे कोई विशेष महत्वपूर्ण सुधार व परिवर्तन नही हुये थे परन्तु सारे देश मे महत्वपूर्ण सामाजिक, राजनैतिक तथा विचार सम्बन्धी परिवर्तन विद्यमान थे। इन परिवर्तनो का प्रभाव फ्रान्स के अतिरिक्त बाहर अन्य देशो मे भी अनुभव किया गया। फ्रान्स मे इन परिवर्तनो ने सुप्रसिद्ध फ्रान्सीसी राजनैतिक क्रान्ति French Revolution को जन्म दिया।

यद्यपि १८ वी शताब्दी के मध्य मे इगलैड मे उद्योग तथा व्यापार का विकास हो रहा था, परन्तु फ्रान्स की अर्थव्यवस्था मे इस समय भी कृषि को मुख्य

स्थान प्राप्त था। १८ वीं शताब्दी के मध्य में पश्चिमी यूरोप के देशों में फ्रान्स में अधिक उपजाऊ शक्ति वाली भूमि बहुत घनी मात्रा में थी। कृषि ही फ्रान्स के लोगों का प्रमुख व्यवसाय था तथा कृषि कर राज्य की आय का प्रमुख साधन था। परन्तु कर का भार अधिक होने के कारण किसानों की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी।

कृषि पर अनेक कर लगाये गये थे। मुख्य प्रत्यक्ष कर **Taille** सभी प्रकार की भूमि तथा भवनो पर लगाया जाता था। यह कर मनमाने ढग से लगाया जाता था तथा कर निर्धारण का कोई उचित आधार नही था। इस कर का भार केवल कृषकों तथा शिल्पकारों पर ही पड़ता था। सरदार व पादरी लोग विशेष अधिकार युक्त वर्ग के सदस्य होने के नाते इस कर के भार से मुक्त थे। यह कर कृषकों व शिल्पकारो की कुल आय का लगभग ५० प्रतिशत भाग होता था। करो को बड़ी सख्ती के साथ वसूल किया जाता था। इस कर के अतिरिक्त नमक के एकाधिकार (**Gabelle**) तथा अनेक वस्तु करो (**aides**) के कारण उपभोक्ताओ को आर्थिक कष्ट होता था। बहुधा वस्तु करो की मात्रा वस्तु के मूल्य के बराबर हो जाने के कारण वस्तु की कीमत मे १०० प्रतिशत की वृद्धि हो जाती थी। प्रत्यक्ष करो, नमक के एकाधिकार तथा वस्तु करो के अतिरिक्त अनेक प्रकार के सीमा कर (**traites**) भी विद्यमान थे। यद्यपि कुछ सीमा करों का उद्देश्य देश के उद्योगों को सरक्षण प्रदान करना था, परन्तु अधिकतर सीमा कर आय प्राप्त करने के उद्देश्य से ही लगाये जाते थे। ये कर वस्तुओ पर उस समय लगाये जाते थे जब वस्तुये फ्रान्स से बाहर अन्य देशो को जाती थी तथा फ्रान्स मे अन्य बाहर के देश से आती थी, अर्थात् वस्तुओं के निर्यातो व आयातो पर सीमा कर लगाया जाता था। इसके अतिरिक्त सीमा कर वस्तुओ पर उस समय भी लगाए जाते थे जब वस्तुएँ फ्रान्स के भीतर भिन्न सूबो के बीच लाई व ले जाई जाती थी। इन विभिन्न करो का देश के आन्तरिक व विदेशी व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ा था। सीमा करो के कारण बहुत कम निर्यात हो पाते थे। इन करो के अतिरिक्त किसान को सडको तथा पुलो का उपयोग करने के लिये भी कुछ देना पडता था। किसानो को, जो एक प्रकार से फ्रान्स की अर्थव्यवस्था की शक्ति थे, कृषि मे सुधार करने का न तो कोई अवसर ही प्राप्त था तथा न उत्साह ही था। ऐसी चिन्ताजनक तथा खराब स्थिति मे सुधारो की भारी आवश्यकता थी। करो के भार मे कमी करना तथा उचित आर्थिक नीति के द्वारा कृषि क्षेत्र मे सुधार करना समय की आवश्यकता थी। व्यापार तथा उद्योग के विकास के लिये एकाधिकार की प्रथा को समाप्त करके इसके स्थान पर आर्थिक क्रियाओ की स्वतन्त्रता तथा प्रतियोगिता को प्रोत्साहित करना आवश्यक था। समाज मे आर्थिक प्रगति तभी सम्भव हो सकती थी जब राज्य का हस्तक्षेप न्यूनतम हो।

सर्वप्रथम Pierre le Pesant, Boisguillebert (१६४६ ई०-१७१४ ई०) ने *Louis XIV की आर्थिक तथा राजकोषीय नीतियो मे सुधार करने की आवश्यकता* को व्यक्त किया। उन्होने यह स्पष्ट रूप से घोषित किया कि लोगो की आर्थिक कठिनाइयो का कारण देश की दोषित कर प्रणाली थी। उन्होने अप्रत्यक्ष करो को समाप्त करने तथा इनके स्थान पर प्रत्यक्ष कर लगा कर देश की कर प्रणाली मे सुधार करने का सुझाव दिया। Boisguillebert के अतिरिक्त Marshall Vauban (१६३३ ई०-१७०७ ई०) ने, जो Louis XIV की सेना मे सैनिक थे, आयात व निर्यात करो के अतिरिक्त अन्य सभी करो को समाप्त करने का सुझाव दिया। उन्होने श्रम व कृषि की प्रशंसा की तथा यह कहा कि कानून की दृष्टि से सब को समानता प्राप्त होनी चाहिये। उन्होने विलासिता तथा विशेष अधिकार प्रथा की कड़ी आलोचना की।

परन्तु इन महान व्यक्तियो के अतिरिक्त प्रकृतिवादी लेखको पर रिचार्ड केण्टीलन (Richard Cantillon) के विचारो का विशेषरूप से प्रभाव पड़ा। उनकी पुस्तक 'Essai sur la nature du Commerce en general' में व्यक्त किये गये विचारो से प्रकृतिवादी बहुत प्रभावित हुये। मिराब्यू (Mirabeau) ने तो केन्टीलन के विचारो को अपनी पुस्तक 'L' Ami des Hommes (1756)' मे व्यक्त किये गये आर्थिक विचारो का आधार बना लिया था। मिराब्यू की पुस्तक ने, जो मुख्यतः केन्टीलन के विचारो पर आधारित थी, प्रकृतिवाद के संस्थापको के ध्यान को आकर्षित किया। संक्षेप मे केन्टीलन ने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप मे प्रमुख प्रकृतिवादियो पर गहरा प्रभाव डाला।

प्रकृतिवादी सभी प्रकार के प्रतिबन्धो के विरोध मे थे। वे प्राकृतिक व्यवस्था (Natural Order), जिसके अन्तर्गत समाज राज्य के दोषपूर्ण व हानिकारक नियन्त्रणो से मुक्त रहता है, के भारी समर्थक थे। **Laissez faire Laissez passer** के नारे का प्रकृतिवादियो की आर्थिक नीतियो मे एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान था। उन्होने आर्थिक उदारतावाद (Economic Liberalism) की नींव डाली तथा उनको उदारतावादी सम्प्रदाय (Liberalist School) के सच्चे संस्थापक कहा जा सकता है। वे वणिकवादी काल मे प्रचलित व्यापार तथा उद्योग सम्बन्धी एकाधिकार प्रथा तथा राज्यकीय नियन्त्रणो के कड़े आलोचक थे। उनके आर्थिक विचार एक प्रकार से वणिकवादी विचारो के बिलकुल विपरीत थे। वणिकवादी राजकीय नियन्त्रण, एकाधिकार, व्यापार तथा उद्योग के नियमन इत्यादि के भारी समर्थक थे। परन्तु इनके ठीक विपरीत प्रकृतिवादी राज्य की शक्ति को कम करने तथा एकाधिकार प्रथा को समाप्त करने के भारी पक्ष मे थे। वे राज्य द्वारा आर्थिक क्रियाओ के नियमन के भी विरोध मे थे। उनके विचारानुसार व्यक्तियो को आर्थिक क्षेत्र मे पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये। राजकीय नियन्त्रणो का उद्योग व व्यापार तथा इनके

द्वारा देश के आर्थिक विकास पर खराब प्रभाव पड़ता है। यही कारण था कि यद्यपि वणिकवादी विचारधारा में व्यापार व उद्योग सम्बन्धी नियन्त्रणों का एक विशेष महत्व था, परन्तु प्रकृतिवादी पूर्ण दृढता के साथ अबन्ध नीति (Laissez faire Policy) के समर्थक थे। इसके अतिरिक्त जबकि वणिकवादी व्यापार व उद्योग की उन्नति पर अधिक महत्व देते थे, प्रकृतिवादी कृषि को प्रधान महत्व देते थे। प्रकृतिवादियों के विचारानुसार केवल कृषि ही एक उत्पादक व्यवसाय था, व्यापार व उद्योग अनुत्पादक व्यवसाय थे। इसी कारण वे कृषकों को उत्पादक वर्ग तथा शिल्पकारों व व्यापारियों को अनुत्पादक वर्ग समझते थे। उनके अर्थशास्त्र में कृषकों को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त था। उनके विचार में राज्य की आर्थिक नीति का एकमात्र उद्देश्य देश में कृषि उत्पादन में वृद्धि करना तथा कृषकों की आर्थिक स्थिति में सुधार करना होना चाहिये। इस प्रकार से प्रकृतिवाद के जन्म का एक कारण वणिकवादी विरोधी आर्थिक नीतियों में निहित था। इसी सत्य को स्पष्ट करते हुए प्रो० हैने ने कहा है कि "यद्यपि प्रकृतिवाद का अर्थ बहुत कुछ अधिक था तथा इसके अनेक लक्ष्य थे, परन्तु एक प्रकार से इस की परिभाषा यह कह कर की जा सकती है कि प्रकृतिवाद फ्रान्सीसियों का वणिकवाद के विरुद्ध बलवा था"[3]।

प्रमुख प्रकृतिवादी लेखक

प्रकृतिवादी सम्प्रदाय के प्रमुख नेता फ्रेनक्वस क्वेसने (Francois Quesnay) थे। क्वेसने (१६९४ ई० १७७४ ई०) का जन्म एक कृषक परिवार में हुआ था। उनके पिता एक साधारण वकील थे। अपने जीवन के १७ प्रथम वर्षों तक वे पेरिस के समीप एक खेत (Farm) पर रहे थे। २४ वर्ष की आयु में वे शल्य चिकित्सक (Surgeon) बन गए थे। उन्होंने bleeding के विषय पर एक पुस्तक लिखी थी। वे Academy of Surgery के मुख्य मन्त्री तथा इस संस्था द्वारा प्रकाशित पुस्तिका के सम्पादक भी थे। १७४९ ई० में वे Madame de Pompadour तथा कुछ काल पश्चात् Louis XV के राज्य चिकित्सक नियुक्त हुए थे। वे प्रकृति की शक्ति में भारी विश्वास रखते थे तथा Nature Cure के भारी समर्थक थे। उनकी प्रथम पुस्तक "**Observations sur les effets de la saignee**', जो औषधि से सम्बन्धित थी, १७३० ई० में प्रकाशित हुई थी। उनकी सुप्रसिद्ध पुस्तक '**Tableau Oeconomique**' १७५८ ई० में तथा उनकी अन्तिम पुस्तक '**Maximes generales du Gouvernement economique d'un Royaume agricole** १७६० ई० में प्रकाशित हुई थी। यद्यपि उनके लेखों तथा पुस्तकों की संख्या अधिक नहीं थी परन्तु उनके विचारों का प्रभाव बहुत अधिक था। वे आर्थिक उदारतावाद के कट्टर पक्षपाती थे। यही कारण

है कि वे प्रकृतिवादी सम्प्रदाय के नेता माने जाते है। उनके प्रकृतिवादी अनुयायियो मे Mirabeau the Elder, Du Pont de Nemours, Mercier de la Riviere, Turgot, Badeau, Le Trosner के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

क्वेसने की समपूर्ण योजना व समस्त आर्थिक विचार प्राकृतिक विधान (Natural order) के विचार पर आधारित थे। इस विचार के अनुसार प्रकृति सभी मनुष्यकृत सस्थाओ की अपेक्षा पूर्वगामी है तथा मानव जाति व सभी सामाजिक वर्गो को प्राकृतिक व्यवस्थ के अनुकूल होना चाहिये। यह प्राकृतिक व्यवस्था सर्वव्यापी तथा निर्दोष है। मनुष्य का कर्तव्य है कि प्रकृति के नियमो का सच्चे ढग से पालन करे। ऐसा करने से ही उस को अत्यधिक सुख तथा सच्ची शान्ति प्राप्त होगी। ऐसा करना उस का प्राकृतिक अधिकार भी है। जब मनुष्य प्राकृतिक व्यवस्था के नियमों का उल्लघन करते है तो वे स्वय अपने को बरबाद करते हैं। इस के विपरीत प्राकृतिक व्यवस्था के नियमो का पालन करने के हेतु अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक व्यवस्था को प्राप्त करना प्रत्येक राज्य का लक्ष्य होना चाहिये।

राज्य की व्यापार तथा उद्योग सम्बन्धी नीति भी इसी प्राकृतिक व्यवस्था के अनुकूल होनी चाहिये। वस्तुओ का उत्पादन तथा वितरण प्रकृति के निश्चित नियमो के अनुसार होना चाहिये तथा इन नियमों की कार्यशीलता में सरकारी प्रतिबन्धो के द्वारा किसी प्रकार की रुकावट नही डालनी चाहिये। प्राकृतिक व्यवस्था मे प्रत्येक चीज पूर्ण थी। उनके विचारानुसार सरकार का कार्य केवल नागरिको की जान व सम्पत्ति की सुरक्षा प्रदान करना था। प्राकृतिक नियम के विचार ने ही प्रसिद्ध "Laissez faire, laissez passer" —अर्थात् जाने दो रोकोमत— के विचार को, जिस पर सारे सस्थापित अर्थशास्त्र की नीव आधारित है, जन्म दिया था। प्रत्येक व्यक्ति अपने आर्थिक हित को अच्छी तरह से जानता है तथा राज्य को चाहिये कि जो भी आर्थिक क्रियाए व्यक्ति समाज मे अपने व्यक्तिगत हित की भावना से प्रेरित होकर करते है उनमें प्रतिबन्धो व नियत्रणो के द्वारा, किसी भी प्रकार की बाधा न डाले।

क्वेसने के विचारानुसार कृषि ही एकमात्र उत्पादक व्यवसाय था। राज्य की आर्थिक समृद्धि कृषि की उन्नति पर आधारित थी। इस कारण राज्य की आर्थिक नीति इस प्रकार की होनी चाहिये कि उससे कृषि का सुधार हो सके तथा कृषको की, जो समाज मे वास्तविक उत्पादन करते थे, आर्थिक स्थिति मे भी सुधार सम्भव हो सके। इसी दृष्टिकोण को सामने रख कर उन्होने सरकार की कर नीति की निन्दा की तथा उसमे उचित सुधार करने का अनुरोध किया। उनके विचार में समाज मे कृषक के अतिरिक्त अन्य सभी वर्ग अनुत्पादक (Sterile) थे क्योकि केवल कृषि मे ही वेशी उपज (Produit Net) प्राप्त होती है। अधिक खेती को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से कृषि वस्तुओ की कीमत ऊची होनी चाहिये। अधिक खेती होने से

खाद्य सामग्री की मात्रा में वृद्धि सम्भव हो सकेगी जिससे देश में अधिक जनसंख्या का रहना सम्भव हो सकेगा। अनाज तथा कच्ची वस्तुओं का निर्यात स्वतन्त्र होना चाहिये तथा किसी प्रकार की रोक नहीं लगाई जानी चाहिये। उनकी योजना में कृषि देश की अर्थव्यवस्था व सभ्यता की आधारशिला थी।

क्वेसने की प्रसिद्धि मुख्यत: उनकी पुस्तक Tableau economique पर आधारित है। इस पुस्तक में उन्होंने बड़े सुन्दर ढंग से इस बात को समझाया है कि समाज में धन अथवा राष्ट्रीय आय का वितरण किस प्रकार होता है। उन्होंने सर्व प्रथम पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे उत्पादन तथा वितरण की विधि पर प्रकाश डाला। समाज मे राष्ट्रीय आय के वितरण के क्रम का क्रमगत अध्ययन करने का श्रेय उन्ही को प्राप्त है। इसके अतिरिक्त उन्होने राज्य की कर प्रणाली का भी अध्ययन किया तथा कराधान के सिद्धान्त का भी निर्माण किया था। वास्तव मे वे तथा उन के अन्य प्रकृतिवादी अनुयायी आर्थिक समिष्ट भाव (Macro economics) के सच्चे संस्थापक थे। अपनी पुस्तक Tableau economique में उन्होने उत्पादक व अनुत्पादक वर्गों की भी व्यवस्था की है तथा भूमि के लगान पर एकमात्र भूमि कर (Impot unique) लगाने का सुझाव दिया है। उनकी इस पुस्तक को अन्य सभी प्रकृतिवादी इन्जील (Bible) के समान समझते थे।

प्रकृतिवादी सम्प्रदाय के दूसरे सदस्य व प्रकृतिवादी सिद्धान्तो के निर्माता मिराब्यू दी ऐल्डर (Mirabeau the Elder) थे। यद्यपि उनकी प्रथम पुस्तक 'L'ami des hommes' प्रकृतिवाद के सम्बन्ध मे नही थी परन्तु इस मे उन मूल आर्थिक विचारों की व्याख्या की गई थी जो कुछ समय पश्चात प्रकृतिवाद की विषय सामग्री बन गये थे। इसके अतिरिक्त उनकी दो पुस्तक 'La theorie de L' impot (1770)' तथा 'La Philosophie rurale (1763)' प्रकृतिवाद से विशेष रूप से सम्बन्धित थी। प्रथम पुस्तक उस समय के कर शासन की आलोचना तथा दूसरी पुस्तक में प्रकृतिवाद के सिद्धान्तो की सुन्दर व्याख्या है। उन्होने करों में कमी करने, कर प्रणाली को सरल बनाने तथा प्रत्यक्ष कर लगाने का सुझाव दिया था। इन पुस्तकों के अतिरिक्त उन्होने अन्य लेखो तथा पुस्तिकाओ के द्वारा प्रकृतिवादी विचारों का प्रचार किया था। उनके विचारो के कारण कर वसूल करने वाले सरकारी शासक उन से क्रोधित हो गये थे तथा उनको अपने विचारो का मूल्य जेल जा कर चुकाना पडा था।

Mirabeau the Elder के अतिरिक्त तीसरे प्रसिद्ध प्रकृतिवादी लेखक डू पोन्ट डी नेमोर्स (Du Pont de Nemours) थे। यद्यपि उन्होने प्रकृतिवाद के सिद्धान्तो का विकास व निर्माण करने में कोई विशेष योगदान नही दिया, परन्तु वे प्रकृतिवादी सिद्धान्तो के प्रमुख प्रचारक थे। अपनी पुस्तक **'De l' origine et**

desprogresed' une science nouvelle' (1768) में उन्होंने प्रकृतिवाद के *सिद्धान्तों को सुन्दर ढंग से व्यक्त किया था।*

प्रकृतिवादी सम्प्रदाय के चौथे महत्त्वपूर्ण सदस्य राबर्ट जेक्वस तरगो (**Robert Jacques Turgot**) थे। उन्होंने राजनीतिज्ञ होने के नाते प्रकृतिवाद में कुछ सिद्धान्तों को कार्य रूप प्रदान किया था। वे **Louis XVI** के शासन काल में लेखा नियंत्रक (**Comptroller General**) के उच्च पद पर नियुक्त थे। उन्होंने करो में सुधार किये। इसके अतिरिक्त उद्यम की स्वतन्त्रता (**freedom of enterprise**) तथा खाद्य व्यापार को सुविधायें प्रदान की थी। लेखा नियंत्रक के पद पर नियुक्ति के काल में उन्होंने अपनी सुधार योजनाओं को सफलता पूर्वक सारे फ्रान्स में लागू किया था। उन्होंने देश में सभी समुदायों पर समान कर लगाने का भी प्रयत्न किया था। उन्होंने एकाधिकारों तथा विशेषाधिकारों को समाप्त किया। दुर्भाग्यवश उन के सुधार अल्पकालीन सिद्ध हुए तथा केवल दो वर्ष के अल्प समय के पश्चात १७७६ ई० में वे लेखा नियंत्रक के पद से हटा दिये गये। अर्थशास्त्र साहित्य को उन की सबसे उत्तम देन १७७६ ई० में प्रकाशित पुस्तक 'Reflexions sur la formation et la distribution des richesses' थी। इस पुस्तक के कारण उनको प्रकृतिवादी विचारधारा में क्वेसने के समान स्थान प्राप्त है। इस पुस्तक में उन्होंने Political Economy के सिद्धान्तों का सुन्दर व वैज्ञानिक रूप से प्रतिपादन करने के अतिरिक्त मुद्रा का परिभ्रमण, व्याज की दर का प्रभाव, भूमि व इसकी उत्पादकता आदि विषयों पर भी अपने विचार व्यक्त किये है।

प्रकृतिवादी सम्प्रदाय के एक अन्य संस्थापक सदस्य गोरने (Gourney 1712-1759) थे। उन्होंने जोसिया चाइल्ड (Josiah Child) की पुस्तक **'A New Discourse of Trade'** तथा रिचार्ड केन्टिलन (Richard Cantillon) की *पुस्तक 'Essay on the Nature of Commerce in General' का अनुवाद* किया था। वे अबन्ध आर्थिक नीति—**'laissez faire, laissez passer'**—के समर्थक थे। वे उदारतावादी थे तथा उन्होंने वणिकवादी औद्योगिक नियंत्रणों की आलोचना की थी।

मुख्य प्रकृतिवादी आर्थिक विचार (Physiocratic Main Economic Ideas)

मुख्य प्रकृतिवादी आर्थिक विचारों को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है।

(१) प्राकृतिक विधान (The Natural Order)
(२) राज्य के कार्य (Functions of the State)
(३) कृषि तथा वेशी उपज (Agriculture and Produit Net).

(४) समाज में धन का परिभ्रमण अथवा वितरण (Circulation of Wealth in Society).
(५) मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Value).
(६) करारोपण का सिद्धान्त (Theory of Taxation).
(७) व्यापार (Trade).
(८) लगान, मजदूरी तथा पूंजी (Rent, Wages and Capital).

(१) प्राकृतिक विधान (The Natural Order)

प्रकृतिवादी प्राकृतिक विधान के विचार के भारी समर्थक थे। वास्तव में वे आर्थिक क्षेत्र में सभी प्रकार के राजकीय प्रतिबन्धों के विरोध में थे। ड्यूपोन्ट डी नेमर्स के विचारानुसार प्रकृतिवाद प्राकृतिक विधान का विज्ञान था। प्रकृतिवादी आर्थिक विचारधारा की यह एक मुख्य विशेषता थी कि प्राकृतिक नियम जो जीवन में सदैव लागू होता है, राजकीय प्रतिबन्धों के बिना अर्थव्यवस्था के लिए हितैषी सिद्ध होता है। प्रकृतिवादी विचारधारा के अनुसार प्राकृतिक विधान जो सभी प्रकार की मनुष्यकृत राजकीय प्रतिबन्धों से मुक्त होता है, सर्वश्रेष्ठ अर्थव्यवस्था का प्रतीक होता है। प्रकृतिवादियों के मतानुसार प्रकृति अथवा परमेश्वर मनुष्य के साथ सदैव अच्छा तथा उदारता का व्यवहार करती है। यह प्राकृतिक विधान सदैव सब स्थानों में विद्यमान रहता है। यद्यपि प्राकृतिक विधान का विचार बहुत प्राचीन था—यह विचार प्राचीनत था मध्यकालीन आर्थिक विचारधारा में भी विद्यमान था—परन्तु प्रकृतिवादियों ने प्राकृतिक विधान के विचार के आधार पर विशेष आर्थिक नीतियों का निर्माण किया था। प्राकृतिक विधान के विचार का साराश यह था कि जब व्यक्ति समाज में अपने व्यक्तिगत हित से प्रेरित होकर कोई आर्थिक क्रिया करते है तो यह क्रिया समस्त समाज के लिए भी हितकारी सिद्ध होती है।[4] इस प्रकार प्राकृतिक विधान द्वारा प्रेरित अर्थव्यवस्था में व्यक्तिगत तथा सामाजिक हितों में समानता पाई जाती है। फलस्वरूप व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार किसी भी प्रकार की आर्थिक क्रिया सपन्न करने का पूर्ण अधिकार तथा स्वतन्त्रता होनी चाहिए। यह उसी समय सम्भव था जब राज्य आर्थिक क्षेत्र में किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप न करे। प्रकृतिवादी सभी प्रकार की रोकों तथा हस्तक्षेपों के विरोधी थे। उनकी विचारधारा में **laissez faire, laissez passer** के नारे का विशेष स्थान था

4. इस प्रकृतिवादी विचार का एडम स्मिथ पर बहुत गहरा प्रभाव पडा था। यह विचार एक प्रकार से एडम स्मिथ के आर्थिक उदारतावाद (Economic Liberalism) तथा उसके प्रकृतिवाद व आशावाद (Naturalism and Optimism) की आधारशिला है। स्मिथ की प्रसिद्ध पुस्तक *'Wealth of Nations'* में इस प्रकृतिवादी विचारधारा के प्रभाव के चिन्ह विद्यमान हैं।

क्योकि केवल प्रबन्ध नीति के अनुकूल वातावरण मे ही प्राकृतिक विधान कार्यशील हो सकता था तथा व्यक्तिगत व सामाजिक हित सुरक्षित रह सकते थे। प्राकृतिक विधान मे सभी क्षेत्रो मे कुशलता रहती है तथा प्राकृतिक नियम ईश्वर की इच्छा के प्रतिरूप होते हैं। ऐसा प्रकृतिवादियो का दृढ विश्वास था। वास्तव मे व्यक्तिगत निजी हित समस्त प्रकृतिवादी अर्थव्यवस्था का आधार है। प्रकृतिवादियो के मतानुसार व्यक्ति प्रत्येक आर्थिक क्रिया के लाभ तथा हानि से भली प्रकार परिचित होता है तथा वह अपने साथियो के साथ मिलकर कार्य करने की आवश्यकता को भी भली प्रकार समझता है। इसलिए उसको आर्थिक कार्यों के क्षेत्र मे पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए।

(२) राज्य के कार्य (*Functions of the State*)

यद्यपि प्रकृतिवादी विचारधारा तथा आर्थिक प्रणाली मे सरकारी प्रतिबन्धों को कोई स्थान प्राप्त नही था, परन्तु इस से यह नही समझ लेना चाहिये कि प्रकृतिवादी अर्थव्यवस्था मे राज्य का कोई महत्व नही था। प्रकृतिवादी अराजकता (Anarchism) के प्रचारक नही थे। प्रकृतिवादी राज्य एक ऐसी सरकार के विचार पर आधारित था जिसमे न्यूनतम विधान के साथ-साथ राजा को अधिकतम सत्ता प्राप्त थी। राजा का कर्तव्य था का प्राकृतिक नियमो का स्वय पालन करके तथा इन नियमो का जनता से पालन करा के परमेश्वर की इच्छा का पालन करे। राजा ससार मे परमेश्वर का प्रतिनिधि था तथा उसको प्राकृतिक विधान को कार्य रूप देना चाहिये। प्राकृतिक विधान को व्यावहारिकता का रूप देने के लिये राजा मे सत्ता का निहित करना आवश्यक था। इस प्रकार प्रकृतिवाद राज्य मे राजा *की शासन कार्य मे सहायता करने के लिये कुशल सरदारों का होना आवश्यक था।* सरकार, जो प्रकृतिवादियो के मतानुसार एक आवश्यक बुराई थी, का कर्तव्य समाज मे व्यक्ति की जान, सम्पत्ति तथा स्वतन्त्रता की रक्षा करना था। राजा को चाहिये कि उन व्यक्तियों को दण्ड दे जो प्राकृतिक संस्थाओं, विशेष रूप से व्यक्तिगत सम्पत्ति, के नियमो का उल्लघन करते है। राज्य का यह कर्तव्य था कि जनता को प्राकृतिक विधान के विज्ञान की शिक्षा प्रदान करे। इन सबके अतिरिक्त भूमि की उत्पादकता मे वृद्धि करने के हेतु लोक कार्यों (कुयें तथा सिचाई इत्यादि के साधन) का निर्माण करना तथा सारे ससार मे प्राकृतिक विधान को कार्यशील बनाने के उद्देश्य से अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबन्धो को समाप्त करना भी प्राकृतिवादी राज्य के महत्वपूर्ण कार्य थे।

राज्य मे किसी भी प्रकार के विधान को कार्यरूप प्रदान करने के लिये *सरकार अथवा राजा को पर्याप्त शक्ति प्रदान करना आवश्यक है जिसका प्रयोग* सरकार समाज मे उन व्यक्तियो को दण्ड देने के लिये कर सकती है जो विधान का पालन नही करते हैं। इस प्रकार दोषी व्यक्तियो को दण्ड देने के लिये राजा को

आवश्यक सत्ता का प्राप्त होना आवश्यक है। प्रकृतिवादी राज्य मे प्राकृतिक विधान का सभी व्यक्तियों द्वारा पालन कराने के लिये प्रकृतिवादियो के मतानुसार राज्य का शासन एक निरंकुश राजा (despot king) के हाथ मे होना आवश्यक तथा वांछनीय था। इस प्रकार प्रकृतिवादी राज्य निरंकुशता के विचार की आधारशिला पर आधारित था।

यह देख कर आश्चर्य होता है कि एक ओर तो प्रकृतिवादी विचारक व्यक्ति को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करने के पक्ष मे थे, परन्तु दूसरी ओर वे राजा को पूर्णतया निरकुश बनाने के भी पक्ष मे थे। यह असत्यवत् बात ज्ञात होती है कि एक राजतन्त्र राज्य मे राजा किस प्रकार अबन्ध नीति (laissez faire policy) का पालन कर सकता है। वास्तविक अनुभव इसके प्रतिकूल है। इसके अतिरिक्त प्रकृतिवादी प्राकृतिक विधान का विचार प्रकृतिवादी व्यक्तिगत सम्पत्ति की संस्था के विचार से टक्कर खाता है। एक ओर तो प्रकृतिवादी प्राकृतिक विधान की अच्छाई मे पूर्ण विश्वास रखकर इसके कट्टर पक्षपाती थे, परन्तु दूसरी ओर उनकी विचारधारा मे व्यक्तिगत सम्पत्ति का एक विशेष महत्व था तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति की रक्षा करना राज्य का एक महान कर्तव्य था। हम सभी इस बात से भली प्रकार परिचित है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति प्राकृतिक संस्था नही है। व्यक्तिगत सम्पत्ति मनुष्यकृत संस्था है जिसका आधार मनुष्य का मनुष्य द्वारा शोषण है। प्रकृतिवादी विचारधारा जिसमें प्राकृतिक विधान को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त था, मे व्यक्तिगत सम्पत्ति का कोई स्थान नही होना चाहिये था। इसके विपरीत प्रकृतिवादी राज्य मे व्यक्तिगत सम्पत्ति प्राकृतिक विधान का एक मौलिक आधार थी। प्रकृतिवादियो द्वारा व्यक्तिगत सम्पत्ति (भूमि) के अधिकार का समर्थन मुख्यत: इस विश्वास पर आधारित था कि भूस्वामियो को भूमि को साफ करने तथा कृषि योग्य बनाने मे श्रम व पूंजी का व्यय करना पडता था। इसलिये भूमि पर उन्ही का पूर्व अधिकार होना वाछनीय था।

(३) कृषि तथा बेशी उपज (Agriculture and Produit Net)

प्रकृतिवादी लेखको की विचारधारा मे कृषि को सर्वप्रधान महत्व प्राप्त था। वास्तव मे प्रकृतिवादी अर्थव्यवस्था कृषि प्रणाली पर आधारित थी। एडम स्मिथ के मतानुसार प्रकृतिवादी कृषि प्रणाली (agricultural system) के भारी प्रचारक थे। क्वेस्ने, जो प्रकृतिवादी सम्प्रदाय के नेता थे, के मतानुसार वे सभी नीतियाँ जो कृषि के लिये हानिकारक थी, राष्ट्र तथा राज्य के हितो के भी विरुद्ध थी; इसके विपरीत जो नीतियाँ कृषि के लिये हितकारी थी वे राष्ट्र तथा राज्य के हितो के लिये भी लाभदायक थी। यह विचार सभी प्रकृतिवादी लेखको के लेखों मे विद्यमान है। सक्षेप मे इसका अर्थ यह है कि प्रकृतिवादी विचारधारा के अनुसार राष्ट्र की समृद्धि कृषि की उन्नति पर निर्भर थी। प्रकृतिवादियो के विचारानुसार भूमि उत्पादन का एक

महत्वपूर्ण उत्पादक साधन थी। फलस्वरूप जब श्रमिक भूमि पर काम करते हैं तो वेशी उपज (Produit net) प्राप्त होती है। यह उपज लागत से अधिक होती है तथा प्रकृति की उदारता का परिणाम होती है। कृषि मे शुद्ध वेशी उपज प्राप्त होने का एकमात्र कारण यह है कि कृषि के क्षेत्र मे उत्पादन के कार्य मे प्रकृति मनुष्य के साथ सक्रिय सहयोग करती है, परन्तु इस सहयोग का मनुष्य से कोई भी मूल्य नही लेती है। फलस्वरूप कृषि मे मनुष्य को वेशी उपज प्राप्त होती है। यह वेशी उपज प्रकृति के कार्य की प्रतीक है।

कृषि के अतिरिक्त अन्य सभी उद्योग व व्यापार अनुत्पादक थे। इनमे किसी प्रकार की कोई वेशी उपज प्राप्त नही होती है। उद्योग तथा व्यापार मे उत्पादन केवल लागत अथवा व्यय के समान होता है तथा इस प्रकार इन कार्यों मे व्यस्त सभी व्यक्तियो का श्रम अनुत्पादक है। केवल कृषि-कृषि मे मछली उद्योग (Fishing) तथा खाने तथा कच्चे माल का उत्पादन भी शामिल था—मे ही लागत की अपेक्षा अधिक उत्पादन होने के कारण शुद्ध आय प्राप्त होती है। यद्यपि व्यापारी व शिल्पकार समाज को उपयोगी सेवाएँ प्रदान करते है तथा समाज के एक आवश्यक अग है परन्तु फिर भी इन सामाजिक वर्गों की सेवाएँ अनुत्पादक प्रकार की है क्योकि इनमे वेशी उपज नाममात्र को भी विद्यमान नही होती है। व्यापार तथा शिल्पकार किसी भी प्रकार नये धन का उत्पादन नही करते है। शिल्पकार केवल समाज मे पूर्व-प्राप्त कच्चे माल को अपनी सेवाओ द्वारा बनी हुई वस्तुओ का नया रूप प्रदान करते हैं। इसमे समाज के धन की कुल मात्रा मे कोई परिवर्तन नही होता है। केवल इस कुल उत्पादन अथवा धन के भिन्न रूपो की मात्रा में ही परिवर्तन होता है। शिल्पकार के समान व्यापारियो की सेवाएँ भी अनुत्पादक हैं क्योंकि व्यापारी भी किसी नई वस्तु का उत्पादन नही करते हैं। अपने व्यापार-क्रय-विक्रय—के द्वारा वे केवल समाज मे पूर्व-प्राप्त वस्तुओ अथवा कुल उत्पादन का समाज मे भिन्न वर्गो के बीच वितरण अथवा हस्तान्तरण करने मे सहायता करते है। समाज मे व्यापारी, शिल्पकार तथा अन्य व्यवसायो मे व्यस्त व्यक्तियो की आय का एकमात्र साधन कृषि द्वारा प्राप्त वेशी उपज (Net Product) है। इस प्रकार मनुष्य जाति की समृद्धि के हित मे यह आवश्यक था कि इस वेशी उपज की मात्रा अधिकतम हो। यह तभी सम्भव था जब राज्य की भिन्न आर्थिक नीतियाँ—कर नीति, मूल्य नीति, व्यापार नीति इत्यादि—कृषि के विकास के उचित आधार पर बनाई गई हो। कृषि के विकास की ओर ध्यान देना केवल किसान का ही कर्तव्य नही था बल्कि सारे राष्ट्र का एक महान कर्तव्य था।

राष्ट्रीय हित के लिये कृषि को उचित नीतियो के द्वारा उत्साह प्रदान करना तथा कृषि को सभी प्रकार के प्रतिबन्धो से मुक्त करना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त कृषि विकास को सम्भव बनाने के लिये कृषक को अनाज की उचित कीमत का प्राप्त

होना भी आवश्यक था। अनाज तथा कच्चे माल के निर्यात पर किसी भी प्रकार की रोक नही लगाई जानी चाहिये। प्रकृतिवादियो के मतानुसार कृषि की उन्नति मे देश की अधिक जनसख्या की गम्भीर समस्या को हल करने का उपाय निहित था। यदि देश की सरकार कृषि के विकास के लिये सच्चे ढग से प्रयास करेगी तो देश मे जनसख्या की समस्या विद्यमान नही होगी। इसके अतिरिक्त कृषि अनेक प्रकार के बुनियादी उद्योगो (Basic Industries) की भी आधारशिला है। इस कारण भी कृषि का विकास करना राज्य तथा राष्ट्र का परमकर्तव्य है। सक्षेप मे प्रकृतिवादी विचारधारा मे कृषि का एक महान महत्व था तथा समस्त अर्थव्यवस्था व सभ्यता कृषि पर आधारित थी।

(ग्र) इस विचारधारा मे कई त्रुटियाँ विद्यमान है। प्रथम, प्रकृतिवादियो का यह कहना कि केवल कृषि ही उत्पादक है तथा अन्य सभी आर्थिक क्रियाएँ व व्यवसाय अनुत्पादक हैं, सत्य नही है। आज अर्थशास्त्र के सभी विद्यार्थी इस सत्य मे भली प्रकार परिचित है कि किसी देश की आर्थिक उन्नति व सामाजिक विकास केवल कृषि के विकास के द्वारा सम्भव नही हो सकता है। वास्तविकता तो यह है कि किसी देश की आर्थिक व सामाजिक प्रगति काफी अश तक उस देश की औद्योगिक उन्नति पर निर्भर होती है। इतिहास इस सत्य का साक्षी है कि पश्चिमी देशो मे, जिन की गणना आज ससार के उच्चतम विकसित तथा सभ्य देशो मे भी की जाती है, आर्थिक व सामाजिक प्रगति औद्योगिक क्रान्ति का ही परिणाम है। दूसरे, कृषि का विकास स्वय औद्योगिक विकास पर दो प्रकार से निर्भर होता है। एक ओर तो उद्योगो के विकास के कारण कृषि को नये अच्छे यत्रो का प्रयोग प्राप्त होता है, जिस के फलस्वरूप कृषि उत्पादन मे वृद्धि सम्भव होती है ट्रेक्टर, रासायनिक खाद, सिचाई के वर्तमान यत्र इत्यादि जिन का आज बडी मात्रा मे कृषि मे उपयोग किया जाता है तथा जिन के उपयोग के कारण आज विकसित देशो मे अनाज तथा अन्य खनिज पदार्थो के उत्पादन मे आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है, उद्योगो के विकास के बिना कदापि सम्भव न हुआ होता। आज इस सत्य से किसी को भी इन्कार नही हो सकता कि अविकसित कृषि तथा अविकसित उद्योग एक दूसरे पर प्रभाव डालते है। दूसरी ओर औद्योगिक विकास कृषि वस्तुओं तथा खनिज पदार्थों की माँग उत्पन्न करके कृषि तथा खनिज पदार्थ उद्योगो के विकास मे सहायक सिद्ध होता है। सक्षेप मे कृषि के विकास को उद्योगो के विकास से अलग नही किया जा सकता है। दोनो मे एक विशेष प्रकार का पारस्परिक सम्बन्ध है। प्रकृतिवादी लेखक इस महान सत्य के महत्व को समझने मे असमर्थ थे। यही कारण है कि उनकी विचारधारा मे कृषि का तो सर्वोत्तम स्थान था परन्तु उद्योग तथा व्यापार को केवल गौण स्थान ही प्राप्त था। उनके मतानुसार व्यापारी, शिल्प-

कार तथा अन्य व्यवसायों में काम करने वाले व्यक्तियों की आय का एकमात्र स्रोत कृषि द्वारा प्राप्त वेशी उपज थी।

प्रकृतिवादियों के कृषि को इतना अधिक महत्व तथा उद्योगों व व्यापार को इतना कम महत्व देने का एक प्रमुख कारण उनके वणिकवादी विचारों के विरोध में निहित था। प्रकृतिवादी सभी प्रकार से वणिकवाद के विरोधी थे। वणिकवाद का कड़ा विरोध करना प्रकृतिवादी राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक नीतियों *का एक मुख्य उद्देश्य था। फलस्वरूप इस विरोध के चिन्ह कृषि की महानता,* स्वतन्त्र व्यापार, एक कर प्रणाली, वेशी उपज इत्यादि विषयों से सम्बन्धित प्रकृतिवादी विचारों में पाये जाते हैं। प्रकृतिवादी इस दोषपूर्ण विचारधारा की कड़ी आलोचना की गई। यद्यपि वास्तव में इस विचारधारा का प्रभाव यह हुआ होता कि कृषक वर्ग के अतिरिक्त अन्य वर्गों को समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने का कोई अवसर न रहा होता परन्तु प्रकृतिवादी लेखकों ने स्पष्ट शब्दों में यह घोषित किया था कि यद्यपि वाणिज्य तथा उद्योग अनुत्पादक थे परन्तु ये, अनुपयोगी नहीं थे। "अनुपयोगी होने के बजाय इन कलाओं के द्वारा जीवन की आवश्यक तथा आराम सम्बन्धी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं तथा मनुष्य जाति अपने जीवन तथा समृद्धि के लिए इन पर आश्रित होती है।"[5] इस प्रकार प्रकृतिवादी विचारधारा में अनुत्पादक (sterile) तथा अनुपयोगी (useless) शब्दों में एक महान अन्तर था। प्रकृतिवादी केवल लेखक व विचारक ही नहीं थे, अपितु उन को व्यावहारिक जीवन का भी घना अनुभव था। वे इस सत्य को भली प्रकार समझते थे कि उस जुलाहे का श्रम भी, जो कच्ची *ऊन तथा रुई से कपड़ा बुनता है, समाज के लिये उतना ही उपयोगी है, जितना* उस किसान का जो ऊन तथा रुई का उत्पादन करता है। प्रकृतिवादी इस सत्य को भली प्रकार समझते थे कि जुलाहे के श्रम के बिना किसान का श्रम समाज के लिये पूर्णतया बेकार सिद्ध होगा। इस प्रकार प्रकृतिवादी राज्य में शिल्पकार, व्यापारी तथा अन्य व्यवसायी व्यक्तियों को उनके उपयोगी होने के नाते उचित स्थान प्राप्त था, यद्यपि उन की क्रियायें अनुत्पादक थी।[6]

उपरोक्त कठिनाई के उत्पन्न होने के दो मुख्य कारण थे। प्रथम, प्रकृतिवादी लेखकों के मतानुसार प्रकृति उदार थी तथा प्रकृति के सहयोग के कारण ही

---

5. "Far from being useless, these are the arts that supply the luxuries as well as the necessaries of life, and upon these mankind is dependent for its preservation and for its well being".

(*Baudeau, Ephem.* IX (1770)

6. Gide and Rist paying compliments to the farsightedness of Physiocrats, remark that the Physiocrats had the good sense to try to give an [illegible] Class] which threatened [illegible]ich it seemed unfair to [illegible]ian any other towards

Second Edition, p. 33)

कृषि में वेशी उपज प्राप्त होती थी। वास्तव में प्रकृति की उदारता में उनका इतना दृढ विश्वास था कि इस का प्रभाव एडम स्मिथ पर भी घनी मात्रा में पड़ा था तथा इस प्रकृतिवादी विचारधारा के चिन्ह एडम स्मिथ के प्राकृतिवाद (Naturalism) तथा आशावाद (Optimism) मे स्पष्ट रूप से विद्यमान है। स्मिथ के पश्चात उनके कुछ अनुयायियों ने भी सामान्य रूप से इस विचार का समर्थन किया। परन्तु कुछ समय पश्चात् अंग्रेजी अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो ने इस का विरोध किया तथा सफलतापूर्वक यह सिद्ध किया कि प्रकृति उदार होने के स्थान पर कृपण थी। रिकार्डो ने प्रकृतिवादी विचारधारा की आलोचना की तथा मनुष्य व प्रकृति के सहयोग (Nature—Man Cooperation) के विचार के स्थान पर मनुष्य-प्रकृति संघर्ष (Man against Nature) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

दूसरे, 'उत्पादन' की प्रकृतिवादी परिभाषा सही नहीं है। प्रकृतिवादी लेखकों के विचारानुसार उत्पादक क्रियाएँ केवल वही हो सकती थीं जिनके फलस्वरूप वेशी उपज (Net Product) अथवा आधिक्य (Surplus) प्राप्त होता है। प्रकृतिवादी इस महान सत्य को समझने में असमर्थ थे कि मनुष्य स्वयं न तो पदार्थ को उत्पन्न ही कर सकता है तथा न ही उस को नष्ट ही कर सकता है।[7] आज अर्थ-शास्त्र का प्रत्येक विद्यार्थी इस सत्य से भली प्रकार परिचित है कि जिस प्रकार उप-भोग उपयोगिता को नष्ट करने की क्रिया है इसी प्रकार उत्पादन उपयोगिता-रचनात्मक (Utility Creating) क्रिया है।[8] इस दृष्टि से शिल्पकार, व्यापारी, इत्यादि सभी व्यक्तियों की क्रियाएँ उतनी ही कम या अधिक उत्पादक है जितनी कि उस कृषक की क्रियाएँ जिस को प्रकृतिवादी विचारधारा मे उच्चतर स्थान प्राप्त था। क्या ही अच्छा होता कि प्रकृतिवादियों ने समाज मे विभिन्न आर्थिक वर्गों की क्रियाओं को उत्पादक व अनुत्पादक घोषित करने के पूर्व अपनी 'उत्पादन' की परिभाषा को सही परिभाषा की कसौटी पर जांचा होता।

प्रकृतिवादी विचारकों के लेखों को ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि वे स्वयं ही इस दोष को भली प्रकार समझते थे, अपितु उन्होंने शिल्प-कार, व्यापारी इत्यादि के श्रम को कभी उपयोगी न बताया होता, परन्तु फिर भी वे इन व्यक्तियों की क्रियाओं को उत्पादक घोषित करने के लिये तय्यार नहीं थे। ऐसा क्यों था? इस का कारण स्पष्ट है। प्रकृतिवादी लेखकों का मुख्य उद्देश्य वणिकवादी लेखकों के विचारों का, जिन मे वाणिज्य व व्यापार को, कृषि के महत्व को बिल्कुल भुला कर, बहुत अधिक महत्व दिया गया था, कड़ा विरोध करना था।[9] यह कृषि को उत्पादक तथा उद्योग व वाणिज्य को अनुत्पादक सिद्ध करके

ही सम्भव था।

(४) समाज में धन का परिभ्रमण अथवा वितरण (The Circulation or Distribution of Wealth in Society)

प्रकृतिवादियों ने सर्वप्रथम समाज में विभिन्न वर्गों के बीच धन अथवा वस्तुओं के वितरण की विधि का विश्लेषण किया। समाज में धन के वितरण के क्रम की प्रसिद्ध प्रकृतिवादी लेखक क्वेसने की आर्थिक सारिणी (**Tableau Eonomique**) में भली प्रकार व्याख्या की गई है। वास्तव में **Tableau Economique** प्रकृतिवादियों की आर्थिक विचारधाराओं के इतिहास को एक विशेष महत्वपूर्ण देन है, तथा केवल इसी के आधार पर प्रकृतिवादियों को आर्थिक विचारधाराओं के इतिहास में एक विशेष स्थान प्राप्त हो सकता है। वास्तव में क्वेसने की आर्थिक सारिणी का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से यह भली प्रकार ज्ञात हो जाता है कि व्यक्ति के अतिरिक्त समाज भी प्राचीन अर्थशास्त्रियों के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण विषय था तथा इस दृष्टि से प्रकृतिवादियों को वर्तमान आर्थिक समष्टिभाव विश्लेषण (Modern Macroeconomic Analysis) का सच्चा संस्थापक कहा जा सकता है। प्रकृतिवादी यह जानने के इच्छुक थे कि समाज में धन किस प्रकार एक वर्ग से दूसरे वर्ग तक पहुँचता है। प्रकृतिवादियों के मतानुसार अर्थव्यवस्था के लिये धन के परिभ्रमण का वही महत्व था जो मानव शरीर में रक्त के चक्कर का होता है। जिस प्रकार कि एक कुशल डाक्टर के लिए शरीर में खून के दौरे के सिद्धान्त का ज्ञान प्राप्त करना अतिआवश्यक होता है, ठीक इसी प्रकार अर्थशास्त्री को समाज में धन के वितरण का ज्ञान होना आवश्यक है।

यह बात विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि आर्थिक सारिणी के लेखक क्वेसने थे जिनको स्वयं चिकित्सक होने के नाते शरीर में खून के परिभ्रमण के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान प्राप्त था। क्वेसने ने, जो हारवे (Harvey) की नई खोज में बहुत रुचि रखते थे, हारवे के इस जीवविद्या सम्बन्धी विचार का प्रयोग समाजशास्त्र के क्षेत्र में बड़ी कुशलतापूर्वक किया। आर्थिक सारिणी का प्रमुख उद्देश्य समाज में कृषि द्वारा प्राप्त कुल उत्पादन के वितरण का विश्लेषण करना था। प्रकाशन के समय क्वेसने के अन्य प्रकृतिवादी साथियों ने इस सारिणी की अत्यधिक प्रशंसा की। प्रसिद्ध प्रकृतिवादी लेखक मिराब्यू ने तो इस की तुलना एक महान आविष्कार से की थी। आर्थिक सारिणी की प्रशंसा करते हुये उन्हों ने कहा था कि "आरम्भ से अब तक संसार में तीन महान आविष्कार हुये हैं जिन्होंने राजनैतिक समाजों को स्थिरता प्रदान की है। इन में प्रथम आविष्कार तो लिखने की कला है जिस से मनुष्य को प्राचीन विचारों, पूर्वप्रथाओं तथा खोजों इत्यादि की जानकारी प्राप्त हुई है तथा विचार विनिमय का अवसर प्राप्त हुआ है। मानव जीवन का दूसरा महान आविष्कार मुद्रा है, जिस पर सभ्य समाजों में सभी

सम्बन्ध आधारित होते है। जीवन का तीसरा महान आविष्कार आर्थिक सारिणी है जो उपरोक्त दोनो आविष्कारो का परिणाम है तथा उन के उद्देश्यो की पूर्ति करती है। यह हमारे समय की एक महान खोज है जिस का लाभ भविष्य मे आने वाली पीढी को प्राप्त होगा।"[10] बोदियू (Baudeau) ने भी लगभग इसी प्रकार के शब्दों मे आर्थिक सारिणी की प्रशसा करते हुये कहा था कि आर्थिक सारिणी की योजना इतनी सुन्दर तथा स्पष्ट है कि समस्त यूरोप मे निसकोच स्वीकार किया जावेगा।[11] प्रोफेसर हैक्टर डेनिस ने (Hector Denis) मिराब्यू के विचार का समर्थन करते हुये लिखा है कि "आर्थिक समाजो मे धन के परिभ्रमण की खोज का अर्थशास्त्र विज्ञान के इतिहास मे वही स्थान है जो खून के परिभ्रमण की खोज का जीवविद्या विज्ञान के इतिहास मे है।"[12] यद्यपि इन कथनो मे अतिशयोक्ति का अश अवश्य है, परन्तु इस मे कोई सन्देह नही कि कुछ गम्भीर दोषो के विद्यमान होते हुये भी आर्थिक सारिणी प्रकृतिवादियो की आर्थिक विचारधाराओ के इतिहास को एक महान देन है तथा यह क्वेसने की महानता का प्रतीक है। भले ही आज, जब अर्थशास्त्र विज्ञान के क्षेत्र मे चारो ओर से नवीन विचारो का निर्माण हो रहा है, हम आर्थिक सारिणी के महत्व को न समझ पावे, परन्तु आज से दो शताब्दी पूर्व जब अर्थशास्त्र विज्ञान अपने विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे था, आर्थिक सारिणी का निर्माण एक खोज से कम नही था। यह अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे सामान्य सन्तुलन विश्लेषण (General Equilibrium Analysis) जिस का वर्तमान युग मे समाज की आर्थिक समस्याओ के अध्ययन मे विशेष महत्व है, के विकास मे प्रथम ढग था।

आर्थिक सारिणी मे समाज को चार निम्नलिखित वर्गो मे विभाजित किया गया है -

(१) **कृषकों का उत्पादक वर्ग**—इस वर्ग में कृषक, मछुए (fishermen) तथा खानो मे काम करने वाले व्यक्ति भी सम्मिलित थे।

(२) **भू स्वामी तथा सम्पति स्वामी वर्ग**—इस वर्ग मे भूस्वामी तथा अन्य सम्पत्ति स्वामित्व वाले व्यक्ति सम्मलित थे। ये व्यक्ति प्रकृतिवादियो के मतानुसार कुछ अश तक उत्पादक थे तथा इसी कारण इनको समाज मे सम्मान प्राप्त था।

(३) **अनुत्पादक वर्ग**—इस वर्ग मे शिल्पकार, उद्योगपति, व्यापारी, तथा अन्य व्यवसायो मे काम करने वाले व्यक्ति (वकील, डाक्टर इत्यादि) सम्मिलित थे। घरेलू नौकर तथा वेतन पर काम करने वाले श्रमिक भी इसी वर्ग मे सम्मलित थे।[13]

प्रकृतिवादियो के मतानुसार समाज मे केवल प्रथम वर्ग ही उत्पादक था तथा इस कारण यह वर्ग समाज में धन के परिभ्रमण का एकमात्र स्रोत था। भूस्वामी वर्ग के सदस्य कृषको पर आश्रित थे। यद्यपि इन लोगो का उपभोग सम्बन्धी व्यय अनुत्पादक था परन्तु ये पूर्णतया अनुत्पादक वर्ग की अपेक्षा कम अनुत्पादक थे क्योंकि ये अपनी सम्पत्ति व भूमि के सुधार पर जो व्यय करते थे वह उत्पादक स्वभाव का था।

इस प्रकार क्वेसने की आर्थिक सारिणी मे समाज का विभाजन स्वतन्त्र (Independent) तथा पराधीन (Dependent) दो वर्गों मे किया गया था। स्वतन्त्र वर्ग मे उत्पादक वर्ग के सदस्य--कृषक, मछुए, खानो मे काम करने वाले व्यक्ति इत्यादि—तथा अनुत्पादक वर्गो के सदस्य—शिल्पकार, उद्योगपति, व्यापारी व अन्य स्वतन्त्र व्यवसायो मे व्यस्त व्यक्ति—सम्मलित थे। भूस्वामी तथा सम्पत्ति स्वामी भी इसी वर्ग मे सम्मलित थे। पराधीन वर्ग, जो अनुत्पादक था, मे घरेलू नौकर तथा वेतन पर काम करने वाले श्रमिक सम्मलित थे। आर्थिक सारिणी के सामाजिक वर्गों को पृष्ठ ७१ पर दिये हुए चार्ट के द्वारा भली प्रकार समझा जा सकता है।

---

13. प्रोफेसर हैने ने अपनी पुस्तक **History of Economic Thought** मे घरेलू नौकरो तथा वेतन पर काम करने वाले श्रमिको का चौथे वर्ग में वर्गीकरण किया है।
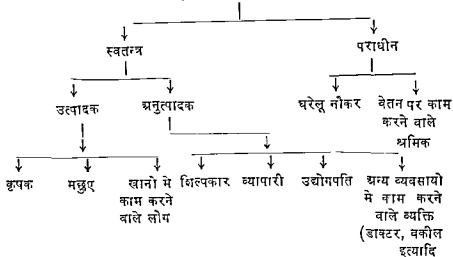
क्वेसने की आर्थिक सारिणी की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। मान लो समाज मे किसी समय विशेष—एक वर्ष—मे उत्पादित कुल धन अथवा उपज का मूल्य ५मिलियर्ड फ्रेन्क[14] milliard francs है। इस ५ मिलियर्ड मे से २ मिलियर्ड उत्पादक वर्ग के सदस्यो व उन के परिवार के जीवन निर्वाह, बैलो, सिंचाई, हल तथा बीज इत्यादि के लिये आवश्यक है तथा इस भाग का समाज मे परिभ्रमण नही होता है। यह एक प्रकार से उत्पादन व्यय है तथा इस को संचित कर लिया जाता है। शेष उत्पादन, जिस का मूल्य ३ मिलियर्ड फ्रेंक है, को समाज मे बेचा जाता है तथा इस का समाज मे परिभ्रमण किया जाता है। परन्तु यह किस प्रकार होता है ?

उत्पादक वर्ग के जीवन निर्वाह के लिये केवल कृषि वस्तुएं ही काफी नही होती है। अनाज, जो जीवन के लिये अति आवश्यक वस्तु है, के अतिरिक्त कृषकों को जीवन मे कपडे, जूते, बर्तन, माचिस इत्यादि वस्तुओ की भी आवश्यक्ता होती है। इन सभी वस्तुओ को कृषक शिल्पकारों से प्राप्त करते है तथा इन वस्तुओ के बदले शिल्पाकार व व्यापारी वर्गो के सदस्यों को १ मिलियर्ड फ्रेंक मूल्य का अनाज दे दिया जाता है। दो मिलियर्ड फ्रेंक जो उत्पादन की लागत है तथा १ मिलियर्ड फ्रेंक अनुत्पादक वर्ग को देने के पश्चात २ मिलियर्ड फ्रेंक के मूल्य का धन अथवा अनाज उत्पादक वर्ग के पास शेष रह जाता है। यह धन भूस्वामियों व सम्पत्ति स्वामियो को लगान तथा सरकार को करों के रूप मे प्राप्त होता है। जो धन सरकार को कृषको से कर के रूप मे प्राप्त होता है उस से सरकार शासन का कार्य चलाती है। यह धन शासकों को वेतन इत्यादि देने मे समाप्त होता है। प्रकृतिवादी राज्य मे शासन का कार्य भूस्वामी तथा सम्पत्ति वर्ग के सदस्य सपन्न करते थे। इस कारण यह कहा जा सकता है कि

14. एक मिलियर्ड १००० मिलियन अथवा १०० करोड़ के बराबर होता है।

प्रकृतिवादी समाज में आर्थिक संगठन
(समाज में मुद्रा चलनशील नहीं है)

चित्र—अ

प्रकृतिवादी समाज में धन का परिभ्रमण
(मुद्रा प्रेरित अर्थव्यवस्था)

चित्र—ब

चित्र : अ के ध्यानपूर्वक अध्ययन से यह भली प्रकार ज्ञात हो जाता है कि केवल उत्पादक वर्ग ही समाज के अन्य वर्गों को खाद्य सामग्री प्रदान करके जीवित रखता है। इसी वर्ग पर समाज की आर्थिक समृद्धि का उत्तरदायित्व है। समाज के वर्गों का जीवन स्तर वेशी उपज की मात्रा पर निर्भर है। इस कारण राज्य की आर्थिक तथा कर नीतियाँ कृषि विकास के लिए हितकारी होनी चाहिए। चित्र : ब के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि उत्पादक वर्ग से ही समाज मे धन के परिभ्रमण के चक्र का प्रारम्भ होता है तथा इसी स्थान पर आकर अन्त मे इसकी समाप्ति होती है।

आर्थिक सारिणी का आलोचनात्मक अध्ययन

यद्यपि यह कहना सत्य है कि आर्थिक सारणी की योजना को स्वीकार करना कठिन है तथा इसमे अनेक त्रुटियाँ विद्यमान है परन्तु यदि इसके जन्म के समय को ध्यान मे रखा जाये तो हम आर्थिक सारिणी के लेखक की प्रशंसा किए बिना नही रह सकते। उस समय जब कि अर्थशास्त्र विज्ञान का आरम्भ भी नही हुआ था[15] आर्थिक सारिणी का निर्माण करके समाज मे धन के वितरण का क्रमबद्ध विश्लेषण (Systematic Analysis) करना निश्चय ही एक महान आविष्कार के समान था। प्रथम, आर्थिक सारिणी के अध्ययन से समाज मे तीनो वर्गों की पारस्परिक निर्भरता सिद्ध होती है। यद्यपि प्रकृतिवादियों के मतानुसार अनुत्पादक वर्ग वास्तविक उत्पादन नही करता था परन्तु समाज मे इस वर्ग का आर्थिक महत्व था क्योंकि यह वर्ग जीवन निर्वाह सम्बन्धी अनेको आवश्यक तथा उपयोगी वस्तुओ का सृजन करता था। दूसरे, आर्थिक सारिणी इस सत्य को भी भली प्रकार स्पष्ट करती है कि जीव शरीर मे खून के परिभ्रमण के समान ही समाज की अर्थव्यवस्था मे धन का परिभ्रमण होता है। आर्थिक सारिणी समाज मे समुचित आय तथा व्यय के आकारिक प्रवाह विश्लेषण (Circular Flow Analysis) का, जो वर्तमान काल मे सैद्धान्तिक तथा आर्थिक दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण है, आरम्भ थी। आर्थिक सारिणी से ही एक प्रकार से वर्तमान सामान्य सन्तुलन विश्लेषण (Modern General Equilibrium Analysis) के विकास का इतिहास आरम्भ होता है।

प्रकाशित होने के पश्चात् काफी समय तक क्वेसने की आर्थिक सारिणी अधिक्तर अर्थशास्त्रियों की समझ के बाहर रही थी। यद्यपि आर्थिक सारिणी सरल थी परन्तु असाधारण पुस्तक होने के कारण यह उस समय के अर्थशास्त्रियों का ध्यान पर्याप्त मात्रा मे आकर्षित न कर सकी। काफी समय तक यह पुस्तक अप्रसिद्ध रही। १६ वी शताब्दी के कुछ अर्थशास्त्रियो का ध्यान, जिनमे कार्ल मार्क्स (Karl

---

१५. सभी अर्थशास्त्री एडम स्मिथ को अर्थशास्त्र विज्ञान का जनक स्वीकार करते हैं।

Marx) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्वेसने की पुस्तक की ओर आकर्षित हुआ। मार्क्स तो क्वेसने की आर्थिक सारिणी से इतने अधिक प्रभावित हुये कि क्वेसने तथा उनकी अपनी विचार पद्धति मे घना अन्तर होते हुये भी उन्होंने क्वेसने को एक महान अर्थशास्त्री स्वीकार किया तथा क्वेसने की आर्थिक सारिणी की सहायता से पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था मे आय व व्यय (income and spending), बचत व विनियोग (saving and investment) तथा input-output के प्रवाह का अध्ययन किया। कुछ समय पश्चात् प्रसिद्ध अँग्रेजी अर्थशास्त्री प्रोफेसर हेनरी हिग्स (Henry Higgs) ने 'The Physiocrats' नामक अपनी पुस्तक लिखकर क्वेसने की सारिणी की ठीक प्रकार मे व्याख्या करके इसे पुनर्जीवित किया है। वर्तमान युग में आय तथा input-output विश्लेषण के क्षेत्र मे जो विकास हुआ है उसमे क्वेसने की आर्थिक सारिणी के महत्व को समझा गया है। वर्तमान प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्री प्रोफेसर वेस्ली लिओन्टीफ (Wassily Leont ef) ने भी अपनी 'The structure of American Industry' नामक पुस्तक में input-output विश्लेषण पद्धति का प्रयोग करके क्वेसने की आर्थिक सारिणी को पुनर्जीवित किया है। वर्तमान शताब्दी के महान अमरीकी अर्थशास्त्री जोसफ. ए. शुम्पीटर (Joseph A. Schumpeter) ने अपनी पुस्तक 'History of Economic Analysis' मे क्वेसने की आर्थिक सारिणी की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि प्रथम तो सारिणी की पद्धति में अति सरलता का असाधारण गुण विद्यमान है। पूँजीवादी समाज का आर्थिक जीवन व्यक्तिगत फर्मों तथा गार्हस्थ्यों के बीच विद्यमान लाखों सम्बन्धो पर आधारित होता है। यद्यपि हम इनके सम्बन्ध मे कुछ सिद्धान्त स्थापित कर सकते हैं परन्तु हम इन सब सम्बन्धो को देख नही सकते है। परन्तु इन लाखो सम्बन्धो को भिन्न वर्गो के बीच स्थापित कुछ सम्बन्धों के रूप मे देखने पर जटिल आर्थिक समस्या सरल हो जाती है। आर्थिक सारिणी मे आर्थिक सम्बन्धो को इसी रूप मे स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त आर्थिक सारिणी की विश्लेषण पद्धति की सरलता अक सिद्धान्त (numerical theory) के विकास की अनेक सम्भावनाएँ प्रदान करती है। शुम्पीटर के विचारानुसार आर्थिक सारिणी मे क्वेसने ने सच्चे रूप से अर्थ मिति (econometrics) के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण कार्य किया है।[16]

परन्तु उपरोक्त सभी गुणों के विद्यमान होते हुए भी आर्थिक सारिणी दोष रहित नही है। आर्थिक सारिणी समाज मे धन के परिभ्रमण के सम्बन्ध मे अपूर्ण ज्ञान प्रदान करती है। यह एक बहुत ही आश्चर्य की बात है कि भूस्वामी वर्ग जो कुल राष्ट्रीय आय के ⅖ भाग को प्राप्त करता है, समाज में कुछ नही करता था। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी प्रकृतिवादी भूस्वामी वर्ग को अत्यधिक सम्मान

16 Joseph A. Schumpeter, History of Economic Analysis p. 241

की दृष्टि से देखते थे। इस का एक कारण यह था कि प्रकृतिवादी सामन्तवादी समाज, जिसमे आर्थिक व राजनैतिक क्रियाएँ आलसी भूस्वामी व सम्पत्ति स्वामी वर्ग द्वारा निर्देशित की जाती थी, मे रहते थे तथा इस वर्ग को सामाजिक हितों के लिये आवश्यक समझते थे।

शुम्पीटर ने भी आर्थिक सारिणी की आलोचना करते हुए लिखा है कि आर्थिक सारिणी के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि कुल उत्पादन प्रथम उत्पादन किया जाता है, फिर इस का वितरण किया जाता है। इस से यह सिद्ध होता है कि उत्पादन तथा वितरण दो अलग-अलग प्रक्रियाएँ है। परन्तु यह सत्य नहीं है। यद्यपि वास्तव मे समाजवादी समाज मे उत्पादन व वितरण दो भिन्न प्रक्रियाएँ होती है, परन्तु पूँजीवादी समाज मे ये (उत्पादन तथा वितरण) एक ही प्रक्रिया के दो भिन्न रूप होते हैं।[17]

(५) मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Value)

यद्यपि प्रकृतिवादी कृषि-वस्तुओं को उचित मूल्य प्रदान किये जाने के भारी पक्ष मे थे परन्तु वे मूल्य के विचार मे कोई विशेष रुचि नहीं रखते थे। टर्गो (Turgot) ने मूल्य, जो वास्तविकता मे वस्तु की उपयोगिता पर आधारित था, से सम्बन्धित अपने विचार व्यक्त किये। दो वस्तुओं की तुलना करते हुए उन्होंने व्यक्त किया कि मूल्य निश्चित नहीं होते बल्कि समय-समय पर उपयोगिता अथवा आवश्यकता के अनुसार कम व अधिक होते रहते है। यद्यपि टर्गो के मूल्य सम्बन्धी विचार मूल्य के उपयोगिता सिद्धान्त से मिलते जुलते हैं परन्तु वे मूल्य के उपयोगिता सिद्धान्त का प्रतिपादन न कर सके। अन्य सभी प्रकृतिवादियों के समान टर्गो भी केवल उत्पादन मे ही रुचि रखते थे। इस सम्बन्ध मे एक बात अवश्य ध्यान मे रहनी चाहिए। यद्यपि प्रकृतिवादी लेखक मूल्य के सम्बन्ध मे पर्याप्त मात्रा मे विचार व्यक्त करने मे अयोग्य सिद्ध हुये थे परन्तु वे उपयोगिता मूल्य—Value-in-use—(**Usuelle**) तथा विनिमय मूल्य—Value-in-exchange - (**Venale**) के अन्तर को भली प्रकार समझते थे। उनके विचार मे कीमत (Price) तथा मूल्य (Value) में कोई अन्तर नहीं था क्योंकि क्वेसने ने यह व्यक्त करते हुये कि कीमत तथा मूल्य एक ही बात है लिखा है कि "जिसको मूल्य कहा जाता है वह कीमत ही है।"[18] विनिमय से सम्बन्धित होते हुए भी उन्होंने इसका अध्ययन करने का कष्ट नहीं किया। उनके विचारानुसार कृषि वस्तुओं को अधिक कीमत (**bon prix**) तथा औद्योगिक वस्तुओं को सस्ती कीमत (**Bon marche**) पर बेचा जाना चाहिए। क्वेसने के विचारानुसार वस्तु का मूल्य उस वस्तु के कुल उत्पादन व्यय

---

17. Ibid. p, 241
18. "What is called value is Price." (*Quesnay*)

से निर्धारित होता है तथा उत्पादन व्यय स्वय उपयोगिता के द्वारा निर्धारित होता है। परन्तु उत्पादन व्यय मे क्या-क्या तत्व सम्मिलित होते है तथा प्रतियोगिता का क्या अर्थ है, इस सम्बन्ध मे क्वेसने ने कुछ व्यक्त नही किया है। इस सब के अतिरिक्त क्वेसने ने यह भी स्पष्ट किया है कि बाजार मूल्य (**prix courant**) पर क्रेताओ तथा विक्रेताओ के बीच विद्यमान पारस्परिक प्रतियोगिता का भी प्रभाव पडता है। इससे यह ज्ञात होता है कि प्रकृतिवादी माँग, पूर्ति तथा मूल्य के पारस्परिक सम्बन्ध को समझते थे। इसके अतिरिक्त प्रकृतिवादियों, विशेष रूप से क्वेसने, के लेखो मे प्राकृतिक मूल्य (natural price) सम्बन्धी विचारो के चिन्ह भी विद्यमान है। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी प्रकृतिवादी मूल्य के किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन नही कर सके। यह कार्य कुछ समय पश्चात् एडम स्मिथ के कुशल हाथों द्वारा पूरा किया गया।

(६) करारोपण का सिद्धान्त (Theory of Taxation)

इस क्षेत्र मे प्रकृतिवादियों का मुख्य उद्देश्य देश की कर प्रणाली मे सुधार करना था। एक ओर तो वे कर प्रणाली को सरल बनाने तथा दूसरी ओर कर के भार को केवल उन्ही व्यक्तियो पर डालने के पक्ष मे थे जिनमे इस भार को सहन करने की शक्ति थी, अर्थात जो कर देने के योग्य थे। प्रकृतिवादी कर सिद्धान्त का उद्देश्य करो का विरोध करना नही था। इसके विपरीत प्रकृतिवादियो का यह दृढ विश्वास था कि उनके कर सिद्धान्त के अनुसार कर नीति बनाने पर राज्य को पर्याप्त मात्रा मे आगम प्राप्त हो सकेगी।

प्रकृतिवादी कर प्रणाली समाज के तीन वर्गो—कृषक, भूस्वामी तथा शिल्पकार,—वेशी उपज तथा राज्य से बडी सुन्दरता के साथ जुडी हुई है। प्रकृतिवादी समाज मे राज्य के आवश्यक कार्य (इनका वर्णन पहले किया जा चुका है) निर्धारित थे। इन कार्यों को सम्पन्न करने के लिये राज्य को खर्चा करना पडता है। इसके लिये यह आवश्यक है कि राज्य को आय अथवा धन प्राप्ति के साधन प्राप्त हो। राज्य को यह धन केवल वेशी उपज (**Produit net**) से ही प्राप्त हो सकता था क्योकि प्रकृतिवादी विचारधारा के अनुसार आय किसी अन्य स्रोत से प्राप्त नहीं हो सकती थी। इस कारण राज्य के लिये यह उचित तथा आवश्यक था कि कर केवल वेशी उपज के एकमात्र स्रोत—कृषक वर्ग—पर ही लगाया जाय। वेशी उपज के अतिरिक्त अन्य आधार पर कर लगाने का प्रभाव समाज पर बुरा पड़ेगा। आर्थिक सारिणी की योजना के अनुसार उत्पादक वर्ग अपने पास कुल उपज मे से केवल उत्पादन लागत तथा अपने जीवन निर्वाह के लिये रख कर जो वेशी उपज शेष बचती है वह भूस्वामी तथा सम्पत्ति स्वामी वर्ग को लगान के रूप मे दे देता है। इस कारण कर भूस्वामी वर्ग को प्राप्त हुई इस वेशी उपज मे से प्राप्त किया जाना चाहिये। शिल्पकार वर्ग पर कर देने के लिये वेशी उपज नही होती है। इस कारण

इस वर्ग की करदान क्षमता शून्य होती है तथा इस वर्ग पर कर नहीं लगाया जाना चाहिये।

प्रकृतिवादी कर सिद्धान्त का व्यावहारिक निष्कर्ष यह है कि केवल वेशी उपज में से ही कर लिया जाना चाहिए। यदि कृषक पर कर लगाया जावेगा तो वह लगान के रूप में भूस्वामी को कम देगा क्योंकि कर देने के कारण वेशी उपज की मात्रा कम हो जावेगी। इस प्रकार निस्सन्देह प्रकृतिवादी कर सिद्धान्त के अनुसार राज्य की कर नीति एक कर प्रणाली (single tax system) पर आधारित होनी चाहिए। उन्होंने वेशी उपज पर एक कर (**Impot Unique**) लगाने का सुझाव दिया। प्रकृतिवादियों का यह विश्वास था कि वेशी उपज पर एक कर के द्वारा सरकार को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त मात्रा में आगम प्राप्त हो सकेगी। करदाता को कर भार का अनुभव न होने के अतिरिक्त इस प्रकार के कर में सरलता तथा मितव्ययता के अन्य गुण जो एक अच्छी कर प्रणाली में होने चाहिए, भी विद्यमान थे। फ्रान्स में अपने समय की कर प्रणाली की आलोचना करते हुए प्रसिद्ध प्रकृतिवादी लेखक बोदियू (Baudeau) ने लिखा था कि राष्ट्र के दुःख का एक मुख्य कारण समाज के भिन्न वर्गों पर कर प्रणाली के असमान भार में निहित था। उन्होंने राज्य में कर प्रणाली में सुधार करने का अनुरोध किया तथा अनेक करों के स्थान पर भूमि के उत्पादन पर ३० प्रतिशत तक एक कर लगाने का सुझाव दिया।

(७) व्यापार (Trade)

प्रकृतिवादियों के मतानुसार सभी विनिमय क्रियाएँ अनुत्पादक थीं क्योंकि विनिमय क्रम में किसी वस्तु का उत्पादन नहीं होता है, केवल समान मूल्यों का हस्तान्तरण ही होता है। व्यापार तथा विदेशी व्यापार के द्वारा केवल उपयोगिता का सृजन होता है परन्तु उपयोगिता उत्पादकता से बिल्कुल भिन्न थी। राष्ट्रीय व्यापार के समान विदेशी व्यापार भी स्वयं अनुत्पादक था। व्यापार के अनुत्पादक स्वभाव को सिद्ध करते हुए मर्सियर डी ला रिवेरे ने लिखा है कि यद्यपि "दर्पण के समान व्यापारी भी वस्तुओं को गुणा करते दिखाई देते हैं परन्तु दर्पण के प्रतिबिम्ब के समान यह एक धोखा है।'[19] इस प्रकार वणिकवाद के बिल्कुल विपरीत प्रकृतिवाद में विदेशी व्यापार तथा घरेलू व्यापार को उच्च स्थान प्राप्त नहीं था। परन्तु व्यापार को अनुत्पादक समझते हुए भी प्रकृतिवादी स्वतन्त्र व्यापार के पक्षपाती थे। प्रकृतिवादी स्वतन्त्र व्यापार नीति प्रकृतिवादी आर्थिक उदारतावाद तथा सामान्य प्रबन्ध नीति का ही एक आवश्यक अंग थी। यह एक महत्वपूर्ण सत्य है कि यद्यपि प्रकृतिवादी स्वतन्त्र व्यापार के पक्षपाती थे परन्तु उन का मुख्य उद्देश्य देश में उस समय प्रचलित

---

19. "Like mirrors, too, the traders seem to multiply commodities, but they only deceive the superficial" (Mercier de la Riviere. *Order Naturel*, p. 538)

अनेक नियमनों व नियन्त्रणों का विरोध करना तथा कृषि विकास के हित मे अनाज के स्वतन्त्र निर्यात को प्रोत्साहन प्रदान करना था। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा मौद्रिक सिद्धांतो के क्षेत्र मे प्रकृतिवादियों ने नये विचारों को जन्म नही दिया। वे वणिकवादी व्यापाराशेष सिद्धान्त (Marcantilist Balance of Trade Theory) के कट्टर आलोचक थे।

(८) लगान, मजदूरी तथा पूंजी (Rent, Wages and Capital)

लगान के विषय मे प्रकृतिवादियो ने रिकार्डो के समान एक नवीन सिद्धान्त को जन्म नही दिया। उनके लगान सम्बन्धी विचार उनके वितरण सिद्धान्त का ही एक अग थे। उनके विचारानुसार लगान एक प्रकार का आधिक्य था। यह एक प्रकार की अतिरिक्त आय थी जिस का लागत से कोई सम्बन्ध नही था। यह केवल कृषि के क्षेत्र मे ही प्राप्त होती थी तथा प्रकृति की उदारता का प्रतीक थी। प्रकृति कृषक के साथ भूमि पर खाद्य उत्पादन करने में सहयोग के रूप मे कार्य करती है परन्तु इस कार्य का वह कृषक अथवा मनुष्य म किसी प्रकार का कोई पारितोषिक प्राप्त नही करती है। इस सम्बन्ध मे प्रकृतिवादियो के विचार महान अँग्रेजी अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो (David Ricardo) के बिल्कुल विपरीत थे क्योंकि रिकार्डो के विचारानुसार लगान प्रकृति की कृपणता का प्रतीक था। प्रकृतिवादियो के प्रकृति-मनुष्य सहयोग (Nature-Man Co-opration) विचारो के स्थान पर रिकार्डो ने प्रकृति-मनुष्य संघर्ष (Nature against Man) के विचार का भारी प्रचार किया। लगान के विषय मे प्रकृतिवादी विचारधारा आशावादी कही जा सकती है। इसके विपरीत रिकार्डो के विचारो मे निराशा विद्यमान है। लगान रिकार्डो के अनुसार वह आय है जो किसान को भूमि के स्वामी को एक ओर तो भूमि की पूर्ति गुणात्मक तथा परिमाणात्मक प्रकार से सीमित होने तथा दूसरी ओर जनसख्या मे निरन्तर वृद्धि होने के कारण भूमि की माँग बढने के कारण देनी पडती है। टर्गो ने लगान के अन्तरीय लगान सिद्धान्त (Different Rent Theory) को निम्नलिखित शब्दो मे व्यक्त किया है :

"... ......the competition of rich entrepreneurs in agriculture establishes the current prices of leases in proportion to the fertility of the land and the price at which its produce sells, always according to the estimates which the farmers make of all their expenses and profit they make on their advances; they can pay the Proprietor only the surplus.

But when competition between them is very keen they pay him all the r surplus, the Proprietor leasing his land only to the one who offers him the highest rent."[20]

---

20. *Reflections on the Formation and the Distribution of Riches*, sec, xiii, p, 56.

मजदूरी के विषय की ओर प्रकृतिवादियों का भी, पूर्व पूंजीपति युग के अन्य लेखकों के समान, कोई विशेष ध्यान आकर्षित नहीं हुआ। श्रमिक को, उनके विचारानुसार वेशी उपज का केवल उतना ही हिस्सा प्राप्त होना चाहिए जितना कि उसके निर्वाह के लिये काफी हो सके। एक प्रकार से उनका मजदूरी सम्बन्धी विचार मजदूरी के जीवन निर्वाह सिद्धान्त (Subsistance Theory of Wages) का ही प्रारम्भिक रूप है। वे जीवन निर्वाह वेतन को ही प्राकृतिक अथवा उचित मजदूरी विचारते थे। उन्होंने जनसंख्या के किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया क्योंकि उनके जनसंख्या सम्बन्धी विचार असंगठित तथा बिखरे हुए थे। जनसंख्या की वृद्धि को प्रकृतिवादी बुरा नहीं विचारते थे। जनसंख्या का बढ़ना फ्रान्स में उस समय की प्रचलित विचारधारा के अनुसार, प्राकृतिक विधान के अनुकूल था, अच्छा समझा जाता था।

पूंजी तथा ब्याज के क्षेत्र में प्रकृतिवादियों ने कुछ महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने द्रव्य तथा पूंजी में भेद किया तथा वे इस सत्य को भली प्रकार समझते थे कि पूंजी का संचय समाज में बचत की मात्रा पर निर्भर होता है। उनके लेखों में पूंजी की उत्पादकता तथा उत्पादन में पूंजी के महत्व के सम्बन्ध में भी चिन्ह विद्यमान हैं।

ब्याज के सम्बन्ध में कैंनने ने ब्याज के माग व पूर्ति तथा जोखिम सिद्धान्तों की आलोचना करते हुए लिखा है कि ब्याज का निर्धारण भी उसी प्राकृतिक विधान के अनुसार होता है जिस के अनुसार भूमि की आय निर्धारित होती है। टर्गो ने ब्याज को पूंजी की उत्पादकता से सम्बन्धित करते हुये लिखा है कि ब्याज इस कारण दिया जाता है क्योंकि पूंजीपति इसका भूमि में अनेक प्रकार से विनियोग कर सकता है। परन्तु इतना होते हुये भी टर्गो ब्याज के उत्पादकता सिद्धान्त का प्रतिपादन न कर सके।

प्रकृतिवाद के आलोचक (Critics of Physiocracy)

मुख्य प्रकृतिवादी विचारों तथा सिद्धान्तों के वर्णन के पश्चात् प्रकृतिवादी विचारधाराओं के कुछ प्रसिद्ध आलोचकों के सम्बन्ध में भी कुछ ज्ञान होना आवश्यक है। अन्य सभी आर्थिक विचारधाराओं के समान प्रकृतिवाद भी आलोचना रहित नहीं था। जिस प्रकार कि वणिकवाद की आलोचना स्वयं प्रकृतिवादियों ने की थी इसी प्रकार प्रकृतिवाद की भी अनेक आलोचकों ने आलोचना की थी। यद्यपि प्रकृतिवादी १७६७ ई० के लगभग अपने प्रभाव के शिखर को प्राप्त कर चुके थे परन्तु अनेकों कारणों से उन का यह प्रभाव कुछ ही समय पश्चात् कम होता गया। प्रथम, उन का यह सुझाव कि केवल वेशी उपज पर ही कर लगाया जाना चाहिये तथा ऐसा करने से ही फ्रांस की करारोपण नीति में आवश्यक सुधार सम्भव हो सकेगा, स्वीकार नहीं किया गया। प्रकृतिवादियों के विचारों के प्रचार का प्रमुख साधन पत्रिकाएँ

थी। उन्हो ने दो प्रमुख पत्रिकाओं—**Journal de l' Agriculture** तथा **Ephemirides**—को प्रकाशित किया परन्तु ये पत्रिकाएँ लगभग सात वर्ष (१७६५ ई०-१७७२ ई०) के अल्प समय तक ही जीवित रही। इस के पश्चात इन पत्रिकाओं को पुन: प्रकाशित करने के प्रयास असफल सिद्ध हुये।

प्रकृतिवाद के प्रभाव के कम होने का दूसरा कारण यह था कि प्रकृतिवादी उदार राजनैतिक विचारों के युग में असीमित राजतन्त्र राज्य (Absolute Monarchy) तथा निरकुश राजा की प्रथा के समर्थक थे। भूस्वामी तथा सम्पत्ति स्वामी वर्ग इस विचार के विरोधी थे क्योकि उनके विचार मे ऐसे राज्य मे अधिक करो की सम्भावना थी। व्यापारी तथा उद्योगपति भी प्रकृतिवादियो के विरोध मे थे क्योंकि उन को तृतीय निम्न वर्ग मे सम्मिलित किया गया था तथा उन को समाज का अनुत्पादक वर्ग घोषित किया गया था। १७७६ ई० मे जब फसल खराब होने के कारण फ्रान्स मे अनाज की कीमतो मे अत्यधिक वृद्धि हुई तो जनता ने प्रकृतिवादियो को अनाज सम्बन्धी स्वतन्त्र विदेशी व्यापार नीति की कडी आलोचना की।

फ्रान्कवेस डी फार्वोनेस (Francois de Forbonnais) ने अपनी **Elemens du Commerce** नामक पुस्तक में क्वेसने की **Tableau economique** की कड़ी आलोचना की। फार्वोनेस ने प्रकृतिवादी वेशी उपज (**produit net**) के विचार को गलत बताया तथा यह भी स्पष्ट रूप से कहा कि व्यापार व उद्योग अनुत्पादक नही थे। उन्होने प्रकृतिवादी एक कर (**Impot Unique**) तथा स्वतन्त्र व्यापार के उद्देश्यो की आलोचना की तथा वणिकवादी अनुकूल व्यापराशेष के विचार का समर्थन किया। फार्वोनेस के अतिरिक्त, अब्बे डी माब्लि (Abbe de Mably) ने समस्त प्रकृतिवादी विचारो की कड़ी आलोचना की। इन आलोचकों के अतिरिक्त वाल्टेयर (Valtaire–1694–1774) प्रकृतिवाद के कट्टर आलोचक थे। उन्होंने प्रकृतिवादी प्राकृतिक विधान तथा एक कर प्रणाली की बहुत कडी आलोचना की थी। वे प्रसिद्ध प्रकृतिवादी मिराब्यू से बडी घृणा करते थे। वोल्टेयर के अतिरिक्त अब्बेगेलिअनि (Abbe Galiani--1728--1787) ने प्रकृतिवादी सिद्धान्तो की हसी की तथा इस बात को गलत सिद्ध किया कि केवल भूमि ही धन प्राप्ति का एक मात्र स्रोत है। उन्होने यह स्पष्ट किया कि एक ही प्रकार की आर्थिक नीति सभी देशो के लिये उपयुक्त नहीं हो सकती तथा न ही एक प्रकार की नीति एक ही देश के लिये सभी समय उपयुक्त सिद्ध हो सकती है। गेलिआनि ने उपयुक्त उदाहरणो के द्वारा यह भली प्रकार सिद्ध किया कि प्रकृतिवादी विचारो मे वास्तविकता का भारी अभाव था।

प्रकृतिवाद का प्रभाव (Influence of Physiocracy)

प्रकृतिवादी विचारों की आलोचना होते हुये भी आर्थिक विचारधाराओं के इतिहास का विद्यार्थी इस महान सत्य को कदापि नही भूल सकता है कि प्रकृतिवाद

का उस युग की आर्थिक नीतियों तथा आगामी लगभग १५० वर्षों की आर्थिक विचारधारा के प्रवाह पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा था। वास्तव मे प्रकृतिवादी आर्थिक उदारतावाद (Economic Liberalism) तथा अवन्ध आर्थिक नीति (laissez faire) के उन महान विचारों के जन्मदाता थे जो समस्त सस्थापक अर्थशास्त्र (Classical economics) तथा १६ वी शताब्दी मे प्रचलित आर्थिक विचारधारा तथा नीतियो की आधारशिला थे। एडम स्मिथ तथा उन के अनुयायियों—जे. बी. से, रिकार्डो, जे एस मिल, सीनियर—के अर्थशास्त्र मे आर्थिक उदारतावाद को एक महान स्थान प्राप्त है। शास्त्रीय क्षेत्र मे प्रकृतिवादियो का प्रभाव न केवल एडम स्मिथ तथा संस्थापक सम्प्रदाय (Classical School) के अन्य अर्थशास्त्रियों तक ही सीमित था, समाजवाद के जनक बल्कि काल मार्क्स भी प्रकृतिवादी विचारों, विशेष रूप से क्वेसने की आर्थिक सारिणी, के ऋणी है। इस के अतिरिक्त प्रकृतिवादी वर्तमान input-output analysis, तथा आर्थिक समष्टिभाव (Macroeconomics) के जन्मदाता थे।

व्यवहारिक क्षेत्र मे प्रकृतिवादी आर्थिक विचारो का प्रभाव उस समय की आर्थिक नीतियो मे विद्यमान है। फ्रान्स के अतिरिक्त अन्य राज्यो मे भी उन के विचारो का आर्थिक नीति क्षेत्र मे प्रयोग किया गया था। कार्ल फ्रिडरिच (Carl Friedrich 1728—1811) ने अपनी रियासत के तीन नगरो मे प्रकृतिवादी सिद्धान्तों का प्रयोग किया था। स्वीडन के राजा गस्टेव तृतीय (Gustav III) पर भी इन सिद्धान्तो का प्रभाव पडा था। टस्कनी के बडे नवाब लियोपोल्ड तृतीय (Grand Duke of Tuscany, Leopold III), जो कुछ समय पश्चात् आस्ट्रिया (Austria) के राजा बने थे, ने प्रकृतिवादी विचारो के अनुसार अपने राज्य मे सुधार किये। इन सब के अतिरिक्त पोलैंड के राजा स्टेनिस्लास (Stanislas of Poland), स्पेन के राजा चार्ल्स तृतीय (Charles III of Spain), आस्ट्रिया के महाराजा जासफ द्वितीय (Emperor Joseph II of Austria) तथा रूस की महारानी कैथरीन (Empress Catherine of Russia) का भी प्रकृतिवादियो की आर्थिक योजनाओ की ओर ध्यान आकर्षित हुआ था। Versailles के राजदरबार मे तो प्रकृतिवादी प्रभाव इतनी अधिक मात्रा मे विद्यमान था कि स्त्रियो ने कृषि को प्रोत्साहन प्रदान करने के हेतु किसान वस्त्र पहनने आरम्भ कर दिये थे।

वणिकवाद व प्रकृतिवाद की तुलना (Mercantilism and Physiocracy Compared)

वणिकवादी तथा प्रकृतिवादी विचारधाराओ मे कई प्रकार से मौलिक अन्तर है। वास्तव म दोनो विचारधाराएं एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत हैं। हैने ने प्रकृतिवाद के अर्थ को समझाते हुये अपनी पुस्तक **History Of Economic**

Thought मे ठीक ही लिखा है कि "यद्यपि प्रकृतिवाद का अर्थ बहुत अधिक था तथा इस के अनेक लक्ष थे, परन्तु एक प्रकार इस की परिभाषा यह कह कर की जा सकती है कि प्रकृतिवाद फ्रान्सीसियो का वणिकवाद के विरुद्ध बलवा था।"[20] दोनो विचारधाराओ के मुख्य अन्तर का निम्नलिखित रूप मे अध्ययन किया जा सकता है।

वणिकवाद (Mercantilism)	प्रकृतिवाद (Physiocracy)
१. वणिकवाद के अन्तर्गत राज्य को घनी सत्ता प्राप्त थी। वास्तव मे वणिकवादी अर्थव्यवस्था सरकार द्वारा नियमित तथा नियन्त्रित अर्थव्यवस्था थी।	१. प्रकृतिवादी राज्य मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता असीमित थी। राज्य को आर्थिक क्षेत्र मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने का अधिकार न था। प्रकृतिवादियो का यह दृढ विश्वास था कि वही सरकार अच्छी है जो न्यूनतम शासन करती है तथा व्यक्ति को आर्थिक क्रियाएँ करने की अधिकतम स्वतन्त्रता प्रदान करती है। प्रकृतिवादी **Laissez faire laissez passer** तथा आर्थिक उदारता वाद के भारी समर्थक थे।
२. वणिकवादी मुद्रा को ही धन विचारते थे। उन के विचारानुसार अधिक स्वर्ण, अधिक धन तथा अधिक धन अधिक शक्ति की प्राप्ति का साधन था।	२. प्रकृतिवादियो ने इस सम्बन्ध मे वणिकवादी विचारधारा का कड़ा विरोध किया। उन्होने केवल यही नही स्पष्ट किया कि द्रव्य वास्तविक धन नही है बल्कि यह भी घोषित किया कि द्रव्य का सचय करना अनावश्यक तथा अनुचित था। उन्होने धन को वास्तविक रूप मे अध्ययन करने का प्रयत्न किया था।
३. वणिकवादी विचारधारा मे व्यापार, उद्योग तथा व्यापारी व उद्योगपति का समाज मे प्रथम स्थान था। विदेशी व्यापार के द्वारा ही अधिक धन का सृजन किया जा सकता था।	३. प्रकृतिवादियो ने व्यापार व उद्योग को अनुत्पादक तथा व्यापारी व उद्योगपति को समाज का अनुत्पादक वर्ग घोषित किया। प्रकृतिवादी समाज मे कृषक ही उत्पादक वर्ग था तथा उस का समाज मे प्रथम स्थान था।

20 L. H. Haney *History of Economic Thought, P. 172*

४. वणिकवादी अनुकूल व्यापाराशेष सिद्धान्त (Favourable Balance of Trade Theory) तथा मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त (Quantity Theory of Money) के समर्थक थे ।	४. प्रकृतिवादियों ने अनुकूल व्यापाराशेष सिद्धान्त की आलोचना की।
५. वणिकवादियो ने समाज मे धन के वितरण का विशेष अध्ययन नही किया।	५. प्रकृतिवादियो ने, विशेपकर क्वेसने ने अपनी प्रसिद्ध **Tableau economique** लिखकर समाज मे धन के वितरण की समस्या का अध्ययन किया।
६. वणिकवाद मे उत्पादकता का तथा वेशी उपज में इस प्रकार का कोई सम्बन्ध न था ।	६. प्रकृतिवादी विचारधारा मे उत्पादकता का अर्थ कृषि मे वेशी उपज (Produit net) के विचार मे सम्बन्धित था।
७. वणिकवादी विचारधारा मे राज्य के हस्तक्षेप को समाज के हित मे स्वीकार किया जाता था।	७ प्रकृतिवादी प्राकृतिक विधान (**Natural Order**) के भारी समर्थक थे।
८. वणिकवादी बहुकर प्रणाली मे विश्वास रखते थे।	८. प्रकृतिवादी एक कर प्रणाली के भारी पक्षपाती थे।

प्रकृतिवाद का मूल्यन (Evaluation of Physiocracy)

प्रकृतिवाद का आर्थिक विचारधाराओ के इतिहास मे क्या महत्व है ? यद्यपि इस प्रश्न पर सब का एक मत नहीं हो सकता, परन्तु इस महान सत्य से किसी को भी इन्कार नही हो सकता कि प्रकृतिवादियो ने राजनीति अर्थशास्त्र (Political Economy) अथवा अर्थशास्त्र के प्रथम सम्प्रदाय की स्थापना की थी। प्रोधो (Proudhon) के अनुसार Tableau Economique की योजना कोरी कल्पना थी। एडम स्मिथ, जिस पर प्रकृतिवादी विचारो का कुछ अश तक अवश्य गहरा प्रभाव पडा था, ने प्रकृतिवाद के सम्बन्ध मे लिखा है कि "प्रकृतिवाद में अनेको दोप होते हुए भी यह प्रणाली उस सत्य तथा वास्तविकता के सबसे अधिक समीप है, जिसका अभी तक राजनीति अर्थशास्त्र म प्रकाशन हुआ है तथा इस दृष्टि से इस का अध्ययन प्रत्येक उस व्यक्ति के ध्यान देने योग्य है जो इस महान विज्ञान के सिद्धान्तो का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने का इच्छुक है।"[21] नार्मन जे० वेयर (Norman

---

21 The Physiocratic "system with all its imperfections is perhaps the nearest approximation to the truth that has yet been published upon *the subject of political economy, and is, upon that account, well worth* consideration of every man who wishes to examine with attention the principles of that very important science." (Adam Smith). *Wealth of Nations* (ed Edwin Carman) BK IV, chap IX, p. 642

J. Ware) ने **American Economic Review** (Dec. 1931) पत्रिका में प्रकाशित अपने लेख "The physiocrats : A study in Economic Rationalisation" में लिखा है कि प्रकृतिवादियों ने १८ वीं शताब्दी में फ्रांस में कृषि की खराब व्यवस्था में सुधार करने के हेतु एक सामाजिक-राजनैतिक (Socio-political) विचारधारा की पेचीदा प्रणाली का श्रीगणेश किया था।

प्रकृतिवादी मौलिक विचार जिसके अनुसार केवल कृषि को ही उत्पादक समझा गया था उतना ही अधूरा तथा गलत था जितना गलत कि वह वणिकवादी विचार था जिसके अन्तर्गत केवल वाणिज्य के द्वारा ही राष्ट्र की समृद्धि सम्भव थी। वेशी उपज का विचार केवल एक मिथ्या (Myth) थी। इसके अतिरिक्त यह भी कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं कि एक ओर तो प्रकृतिवादी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा अबन्ध नीति (Laissez Faire) के भारी समर्थक थे तथा साथ ही साथ दूसरी ओर प्राकृतिक विधान व्यवस्था को सदा विद्यमान रखने के लिये प्रकृतिवादी राज्य का शासन निरंकुश राजा के द्वारा चलाये जाने के पक्ष में थे। उनके ये विचार एक दूसरे से टक्कर खाते है। प्रकृतिवादी उत्पादकता व उपयोगिता का सम्बन्ध समझने के अयोग्य थे। यही कारण था कि व्यापारी तथा शिल्पकार वर्ग को वे एक ओर तो अनुत्पादक विचारते थे तथा दूसरी ओर इस वर्ग को समाज के जीवन के लिए आवश्यक समझते थे। यद्यपि हमारे लिए यह कल्पना करना कठिन है कि किस प्रकार अनुत्पादक वर्ग समाज के लिए आवश्यक हो सकता था परन्तु प्रकृतिवादियों को इसका उत्तर देने में कोई कठिनाई नहीं थी क्योंकि प्रकृतिवाद में उत्पादकता का विचार वेशी उपज के विचार पर आधारित था। यदि प्रकृतिवादियों ने इस सत्य को जानने का प्रयास किया होता कि उपयोगिता का सृजन करना ही उत्पादकता है तो उन्होंने कृषि को उत्पादक तथा उद्योग को अनुत्पादक कभी न विचारा होता।

प्रकृतिवादी विचारधारा लगान के सम्बन्ध में भी दोषपूर्ण है। इसमे सन्देह नहीं कि लगान अतिरिक्त आय है, परन्तु इस आय के उत्पन्न होने का जो कारण प्रकृतिवादियों ने दिया है वह गलत है। लगान की समस्या प्रकृति की उदारता के कारण नहीं बल्कि, जैसा कि रिकार्डो ने कहा है, भूमि की सीमितता, जो प्रकृति की कृपणता का परिणाम है, तथा जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होने के कारण उत्पन्न होती है। प्रकृतिवादियों का यह कहना कि प्रकृति मनुष्य के साथ सदा सहयोग तथा सदाचार का व्यवहार करती है सत्य नहीं है। यदि प्रकृतिवादियों ने थोड़ा सा भी समय इस सत्य के अध्ययन में व्यतीत किया होता कि मनुष्य को अपनी स्थिति में सुधार करने के लिए नई भूमि को जोतने तथा नये देशों में जाकर रहने पर विवश

होना पड़ता है तो उन्होंने प्राकृतिक विधान (Natural Order) की महानता व अच्छाई में कदापि विश्वास न किया होता तथा उनकी आर्थिक विचारधारा का प्रवाह भिन्न सीमा की ओर हुआ होता।

प्रकृतिवादी मुद्रा के महत्व को भी अच्छी तरह नहीं समझ सके। वे मुद्रा को केवल विनिमय का साधन समझते थे। कृषि को धन तथा उत्पादन का एक-मात्र साधन समझने के कारण वे देश की आर्थिक समृद्धि में व्यापार शेष तथा विदेशी व्यापार के पूरे महत्व को समझने में अयोग्य सिद्ध हुये। प्रकृतिवाद में कृषक का कल्याण ही जन साधारण का कल्याण विचारा जाता था। प्रकृतिवादी कृषक के कल्याण के हित में अनाज को ऊँची कीमत पर बेचने के विरोध में न थे, परन्तु यह देख कर आश्चर्य होता है कि खाद्य पदार्थों की मँहगाई तथा जन कल्याण में किस प्रकार कोई सीधा अनुपाती सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध तो उलटा ही है क्योंकि गत वर्षों में मँहगाई का अनुभव करने के कारण अब हम सब इस सत्य से भली प्रकार परिचित हैं कि मँहगाई के काल में जनता को कल्याण के स्थान पर कष्ट का अनुभव करना पड़ता है।

उपरोक्त संक्षेप वर्णन से यह स्पष्ट है कि प्रकृतिवादी अर्थशास्त्र अनेक त्रुटियों का भण्डार है। परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि प्रकृतिवाद के अध्ययन का सैद्धान्तिक व व्यवहारिक दृष्टि से कोई महत्व नहीं है। वास्तविकता इससे बिल्कुल भिन्न है। आर्थिक विचारधाराओं का इतिहास प्रकृतिवाद के बिना अधूरा है। प्रोफेसर जॉन फ्रेड बैल (John Fred Bell) ने प्रकृतिवादियों के योग-दान को निम्नलिखित शब्दों में बड़ी सुन्दरता के साथ व्यक्त किया है। "प्रकृतिवादियों ने अपने श्रम द्वारा बिखरे विचारों को क्रमबद्धता प्रदान की, पूर्ण प्रतियोगिता के विचार का स्पष्टीकरण किया तथा समाज में विभिन्न अंगों की पारस्परिक निर्भरता को सिद्ध किया। जबकि उनके ये विचार स्थाई प्रकार के थे, उनके अन्य विचार अस्थाई प्रकार के थे जो अल्प समय के पश्चात् जीवित न रह सके।"[22] प्रकृतिवादी महान व्यक्ति थे तथा उनके विचारों को आर्थिक विचारों के इतिहास में सदा महत्व-पूर्ण स्थान प्राप्त रहेगा।

3. L. H. Haney : History of Economic Thought, Chapter, IX.
4. Gide and Rist : A History of Economic Doctrines, Chapter, I.
5. J. A. Schumpeter : History of Economic Analysis, Part II, Chapter, 4.
6. John M. Ferguson : Landmarks of Economic Thought, Chapter, IV.
7. Spengler & Allen : Essays in Economic Thought, Essay, 8.
8. Eric Roll : A History of Economic Thought, Chapter. III.
9. Alexander Gray : The Development of Economic Doctrines, Chapter, IV.
10. Leo Rogin : The Meaning and Validity of Economic Theory, Chapter, 2.
11. William Fellner : Modern Economic Analysis, Chapter, 4.

प्रश्न

1. Compare and contrast the doctrines of Physiocrats with those of the Mercantilists. What permanent contribution have the former made to economic thought ?

(आगरा, १९४६; १९५०; १९५६, राजस्थान, १९५८; १९६१)

2. What is the contribution of the Physiocrats to the Economic Science ? Discuss their influence on posterity.

(आगरा, १९४७; १९५१, राजस्थान, १९५७)

3. 'Physiocracy, though it meant much more might also be defined as the revolt of the French against Mercantilism'. (Haney). Explain fully the above statement

(आगरा, १९४८, १९५४, १९६२, राजस्थान, १९४८)

4. Enumerate the forces which gave rise to physiocracy and their main contribution to economic thought.

(आगरा, १९५९; राजस्थान, १९५१)

5. "Still it wes the Physiocrats who constructed the way along which Adam Smith and the writers of the hundred years which follow have marched." (Gide and Rist)

Discuss this statement with special reference to the contribution of the Physiocrats to economic thought.

(राजस्थान, १९५५)

6. What is 'Natural Order' associated with Physiocrats ? It is said that physiocracy is characterised by macroeconomics. Do you agree ? Give reasons for your answer.

(बनारस, १९५९)

7. The physiocratic scheme of economic analysis covers an extensive ground. Show how this is so. Point out very briefly in this connection the influence of Physiocracy on Adam Smith.

(बनारस, १९५७)

8. 'The physiocratic system is indeed the first system which contains an analysis of capitalistic production.' Discuss.

(अलीगढ़, १९५८)

9. Briefly describe the reproduction scheme in Quesnay's *Tableau Economique*, and bring out its deficiencies, if any.

(अलीगढ़, १९५६)

10. Do you agree with the view that Physiocrats were the first to develop an integrated study of the functioning of the economic system ?

(अलीगढ़, १९५९)

11. Explain critically the Physiocratic idea of the circular flow of economic life.

(कर्नाटक, १९५९)

12. Explain the Physiocratic concepts of 'Net Product' and 'Tableau Economique.'

(कर्नाटक, १९५८)

द्वितीय खण्ड

संस्थापित आर्थिक विचारधारा

(Classical Economic Thought)

अध्याय ६

संस्थापित अर्थशास्त्र तथा एडम स्मिथ के पूर्वाधिकारी

(Classical Economics and Adam Smith's Predecessors)

सस्थापित अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र अथवा राजनैतिक अर्थशास्त्र (Political Economy)[1] का आरम्भ से ही एक महत्वपूर्ण तथा आवश्यक अग रहा है। वास्तव मे अर्थशास्त्र विज्ञान के प्रारम्भिक जीवनकाल मे अर्थशास्त्र एक प्रकार से केवल सस्थापित अर्थशास्त्र ही था। सस्थापित अर्थशास्त्र अर्थशास्त्र के उस भाग अथवा अग को कहते है जिसका निर्माण तथा विकास सस्थापक सम्प्रदाय (Classical School) के अर्थशास्त्रियो के हाथो हुआ था। सस्थापित अर्थशास्त्र सस्थापक सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियो द्वारा प्रतिपादित आर्थिक सिद्धान्तों तथा नीतियो का सम्पूर्ण विवेचन है। अर्थशास्त्रियों का संस्थापक सम्प्रदाय[2] एडम

1. प्राचीन समय मे अर्थशास्त्र को Political Economy के नाम से ही पुकारा जाता था। यही कारण है कि रिकार्डो, माल्थस, सीनियर तथा जॉन स्टवार्ट मिल द्वारा अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो पर लिखित पुस्तको का सामान्य शीर्षक Principles of Economics के स्थान पर Principles of Political Economy था। अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो का वर्णन करने वाली पुस्तक का प्राचीन Principles of Political Economy के स्थान पर Priciples of Economics का सरल तथा अधिक उपयुक्त शीर्षक रखने का श्रेय मार्शल को प्राप्त है।
2. वर्तमान शताब्दी के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड कीन्स (John Maynard Keynes) के अनुसार सस्थापित अर्थशास्त्र (Classical Economics) रिकार्डो के अनुयायियो (Followers) का अर्थशास्त्र है तथा अर्थशास्त्र सस्थापको से उसका अभिप्राय रिकार्डो के अनुयायियो, जिनमे जॉन स्टवार्ट मिल, अलफ्रे ड मार्शल तथा पीगू भी सम्मिलित है, से है। अर्थशास्त्र सस्थापक (classical economists) शब्द का श्री गणेष कार्ल मार्क्स ने किया था। मार्क्स ने (classical economists) शब्द का प्रयोग रिकार्डो तथा उनके पूर्वाधिकारियो, जिनमे स्मिथ भी सम्मिलित है, के लिये किया था। सक्षेप मे सस्थापित अर्थशास्त्र उस प्राचीन अर्थशास्त्र को कहा जा सकता है, जिसका जन्म स्मिथ की प्रसिद्ध पुस्तक **Wealth of Nations** के साथ हुआ था तथा जो जॉन स्टवार्ट मिल के समय मे चरम सीमा पर पहुँचा था। १८ वी शताब्दी की सातवी दशाब्दी से आरम्भ होकर लगभग १६ वी शताब्दी के मध्य तक सस्थापित अर्थशास्त्र का प्रसिद्धि युग था।

स्मिथ का ही सम्प्रदाय है क्योंकि इस सम्प्रदाय की नींव डालने का श्रेय स्मिथ को ही प्राप्त है। स्मिथ के अतिरिक्त इंगलैण्ड में डेविड रिकार्डो (१७७२ ई०-१८२३ ई०), थामस रोबर्ट माल्थस (१७६६ ई०-१८३४ ई०), नासो विलियम सीनियर (१७६० ई०-१८६४ ई०), जॉन स्टवार्ट मिल (१८०६ ई०-१८७३ ई०) तथा फ्रान्स में जे० बी० से (१७६७ ई०-१८३२ ई०) को संस्थापक सम्प्रदाय के प्रथम श्रेणी के सदस्य स्वीकार किया जाता है। इनके अतिरिक्त जेम्स मिल (James Mill), जो प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जॉन स्टुवार्ट मिल के पिता थे, तथा जे० बी० मकुल्लच (J. B. McCulloch) भी संस्थापक सम्प्रदाय के सदस्य थे, यद्यपि इनके आर्थिक विचार सम्प्रदाय के प्रथम श्रेणी के अर्थशास्त्रियों की अपेक्षा कम प्रसिद्ध हैं।

यद्यपि संस्थापक सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियों के सभी विचारों में सदा समानता नहीं पाई जाती है, परन्तु सामान्य रूप से इस सम्प्रदाय के लगभग सभी लेखकों ने सम्प्रदाय के संस्थापक एडम स्मिथ को अपना नेता स्वीकार किया है तथा उसके सिद्धान्तों को या तो मूल रूप में (Original form) अथवा उनमें आवश्यक संशोधन करके स्वीकार किया है। कुछ बातों में मतभेद होते हुये भी किसी भी स्थिति में संस्थापक अर्थशास्त्रियों ने अपने नेता एडम स्मिथ के मौलिक सिद्धान्तों का विरोध नहीं किया है। उदाहरणार्थ माल्थस जे० बी० के द्वारा प्रतिपादित प्रसिद्ध पूर्ति व माँग (Say's Law of Supply and Demand) से सहमत नहीं थे तथा न ही वे एडम स्मिथ की स्वतन्त्र व्यापार नीति के समर्थक थे। परन्तु यह सब कुछ होते हुये भी माल्थस के विश्लेषण तथा तर्क का स्वभाव संस्थापक परम्पराओं के अनुकूल था तथा उनका जनसंख्या का सिद्धान्त संस्थापित अर्थशास्त्र का एक ऐसा महत्वपूर्ण अंग है जिस पर संस्थापित अर्थशास्त्र के सभी समर्थकों को सदा गौरव रहा है।

संस्थापित अर्थशास्त्र की विषय सामग्री (Contents of Classical Economics)

सम्थापित अर्थशास्त्र में अबन्ध नीति (Laissez faire) का विशेष रूप से एक महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि संस्थापित अर्थशास्त्र **Laissez-faire Laissez-passer** की नीति का विवेचन है। संस्थापित अर्थशास्त्र कुछ अवास्तविक मान्यताओं (Assumptions) पर आधारित है तथा ये मान्यताएँ संस्थापित अर्थशास्त्र के आवश्यक अंग हैं। संस्थापित अर्थशास्त्र, प्रथम तो पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित है। अर्थशास्त्र संस्थापकों (Classical Economists) का कहना था कि समाज में सदा पूर्ण रोजगार की स्थिति विद्यमान रहती है। उनके विचारानुसार यदि किसी समय अथवा स्थिति विशेष में समाज में बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न भी होती है तो भी यह समस्या अल्पकालीन ही होती है क्योंकि दीर्घकाल में आर्थिक शक्तियों के क्रियाशील होने के

कारण पूर्ण रोजगार की स्थिति पुन: स्थापित हो जाती है। इस प्रकार सस्थापित अर्थशास्त्र एक प्रकार से पूर्ण रोजगार का अर्थशास्त्र (Economics of full Employment) था।

सस्थापित अर्थशास्त्र की दूसरी मुख्य विशेषता जे० बी० से का प्रसिद्ध पूर्ति व माँग का नियम है। इस नियम के अनुसार पूर्ति सदा अपनी माँग उत्पन्न करती है (Supply creates its own demand) तथा फलस्वरूप समाज मे अत्युत्पादन (Over-production) तथा न्यूनोत्पादन (Under-production) की घटनायें विद्यमान नही हो सकती है। अर्थशास्त्र सस्थापकों का कहना था कि यदि किसी समय किसी कारणवश माँग तथा पूर्ति के बीच समायोजन न होने के कारण अत्युत्पादन अथवा न्यूनोत्पादन का सकट उत्पन्न हो भी जाय तो यह संकट अल्पकालीन ही होता है तथा दीर्घकाल मे समाज मे कुल पूर्ति सदा कुल माँग के समान ही होती है।

सस्थापित अर्थशास्त्र की तीसरी विशेषता यह है कि अर्थशास्त्र संस्थापकों का यह दृढ विश्वास था कि ब्याज की दर समाज मे कुल विनियोग व कुल बचत के बीच समायोजन तथा समानता स्थापित करती है। यदि किसी समय समाज मे किसी कारणवश विनियोग की मात्रा बचत की मात्रा की तुलना मे अधिक हो जाती है तो ब्याज की दर मे वृद्धि हो जावेगी जिसके फलस्वरूप विनियोग कम तथा बचत अधिक हो जावेगी तथा कुछ समय पश्चात् विनियोग तथा बचत एक दूसरे के समान हो जावेंगे। इस प्रकार ब्याज की दर के परिवर्तन, अर्थशास्त्र सस्थापको के विचारानुसार विनियोग तथा बचत के बीच सन्तुलन स्थापित करने के एकमात्र साधन थे। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि समाज मे आर्थिक उच्चावचनो की समस्या का उपाय, अर्थशास्त्र सस्थापको के विचार में केन्द्रीय बैंक की बैंक दर मे उपयुक्त परिवर्तन करना था। सस्थापित आर्थिक विचारधारा के निर्माताओं का पूर्ण विश्वास था कि विनियोग ब्याज दर के प्रति पूर्णतया मूल्यसापेक्ष (perfectly elastic) होती है। परन्तु वर्तमान शताब्दी के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री सवर्गीय लार्ड कीन्स तथा उनके समर्थको ने यह भली प्रकार सिद्ध कर दिया है कि विनियोग पर ब्याज की अपेक्षा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Efficiency of Capital) का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। विनियोग को केवल ब्याज की दर के उपयुक्त परिवर्तनो के द्वारा नियमन नही किया जा सकता है। ब्याज की दर तथा विनियोग के मध्य एक बहुत कमजोर तथा दूर का पारस्परिक सम्बन्ध है।

इसी प्रकार कीन्स तथा अन्य वर्तमान अर्थशास्त्रियो ने अर्थशास्त्र संस्थापको के इस विचार को भी गलत सिद्ध किया है कि बचत की मात्रा सदा एकमात्र रूप में ब्याज की दर से प्रभावित तथा निर्धारित होती है। ब्याज की अपेक्षा बचत की

मात्रा आय के स्तर से अधिक निर्धारित होती है। परन्तु आय का स्तर स्वयं विनियोग के स्तर द्वारा निर्धारित होता है। इस प्रकार यह सिद्ध किया गया है कि बचत की मात्रा आय के द्वारा विनियोग की मात्रा द्वारा निर्धारित होती है तथा विनियोग की मात्रा ब्याज के साथ पूँजी की सीमान्त उत्पादकता से निर्धारित होती है जो स्वय जनसख्या का आकार, आविष्कार, समाज मे लोगो की उपभोग वृत्ति (tastes of people), उत्पादनो के नये साधनो की खोज, उत्पादन-प्रविधि (technique of production), युद्ध व अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति इत्यादि गतिशील कारणों से प्रभावित होती है।

चौथे, संस्थापित अर्थशास्त्र मे पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect Competition) के विचार का एक विशेष स्थान है। अर्थशास्त्र सस्थापको के विनिमय तथा वितरण सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता पर ही आधारित है। पूर्ण प्रतियोगिता के विचार का अर्थ यह है कि बाजार मे बहुत अधिक क्रेता व विक्रेता एक ही वस्तु का क्रय विक्रय इस प्रकार से करते हैं कि कोई क्रेता तथा विक्रेता विशेष अपनी क्रियाओं के द्वारा वस्तु की उत्पादन मात्रा तथा कीमत पर कोई प्रभाव नही डाल सकता है। उत्पत्ति के विभिन्न साधन विभिन्न व्यवसायो व स्थानो के बीच पूर्णतया गतिशील होते हैं। इसके अतिरिक्त मूल्यो तथा वस्तु सम्बन्धी अन्य बातों के सम्बन्ध मे सभी का ज्ञान पूर्ण होता है। पूर्ण प्रतियोगिता मे परिवहन व्यय शून्य होता है तथा क्रेता व विक्रेता केवल मूल्य से ही प्रभावित होते है। इसका अर्थ यह है कि अर्थशास्त्र सस्थापको के विचार मे वास्तविक मनुष्य एक आर्थिक मनुष्य (Economic Man) था जो केवल आर्थिक दृष्टिकोण मे ही विवेकशील था। परन्तु वर्तमान विचारधारा के अनुसार आर्थिक मनुष्य तथा पूर्ण प्रतियोगिता का विचार मिथ्या है, जिसका वास्तविक ससार से कोई सम्बन्ध नहीं है।

पाँचवे, अर्थशास्त्र सस्थापकों के अर्थशास्त्र मे उत्पादन तथा ह्रासमान प्रतिफल के नियम (Law of Diminishing Returns) के अध्ययन पर वितरण तथा वृद्धिमान प्रतिफल के नियम (Law of Increasing Returns) की अपेक्षा बहुत अधिक महत्व दिया गया है। महान सस्थापक ह्रासमान प्रतिफल का नियम (Great Classical Law of Diminishing Returns) सभी आर्थिक क्रियाओं मे लागू होता है, ऐसा अर्थशास्त्र सस्थापको का विचार था। परन्तु इसके विपरीत अर्थशास्त्र सस्थापको ने वृद्धिमान प्रतिफल के नियम तथा वितरण के विषयो पर बहुत कम लिखा है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सस्थापित अर्थशास्त्र अधूरा तथा असन्तुलित अर्थशास्त्र है।

छठे, सस्थापक सम्प्रदाय के नेता एडम स्मिथ का यह पूर्ण विश्वास था कि व्यक्ति के निजी हित अथवा स्वार्थ (individual's self-interest) तथा सामाजिक हितो मे समानता होती है। इसका अभिप्राय यह है कि जब समाज मे कोई व्यक्ति अपने

स्वार्थ से प्रेरित होकर स्वयं को किसी आर्थिक क्रिया में व्यस्त करता है—किसी वस्तु अथवा सेवा का उत्पादन करता है—तो उस व्यक्ति की वह क्रिया उसके व्यक्तिगत हित के अतिरिक्त समस्त समाज के हितों के लिये भी उपकारी सिद्ध होती है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक आर्थिक क्रिया जो मनुष्य लाभ कमाने के उद्देश्य से करता है, समाज मे कुल उत्पादन की मात्रा मे भी वृद्धि करती है। इसी विचार पर एडम स्मिथ का सहजवाद (Naturalism) तथा आशावाद (Optimism) आधारित है तथा इसी विचार से एडम स्मिथ की प्रसिद्ध अबन्ध नीति (Laissez faire) का निर्माण हुआ है। एडम स्मिथ तथा अन्य अर्थशास्त्र सस्थापकों के विचारानुसार समाज केवल व्यक्तियो का एक समूह था तथा इसका अपना कोई अलग अस्तित्व नही था। परन्तु वर्तमान विचारधारा के अनुसार सामाजिक तथा व्यक्तिगत हितो मे कोई समानता नहीं है। कीन्स ने यह सिद्ध किया है कि स्मिथ-वादी व्यक्तिगत व सामाजिक हितो के मध्य समानता एक मिथ्या है। व्यक्ति जिस वस्तु का उत्पादन लाभ की भावना से प्रेरित होकर करता है यह सदा आवश्यक नही है कि उस वस्तु का उत्पादन समाज कल्याण के लिये भी हितकारी सिद्ध हो। उदाहरणार्थ यद्यपि मदिरा (Wine) तथा अन्य नशीली वस्तुओ का उत्पादन व्यक्ति के लिये बहुत लाभप्रद हो सकता है परन्तु इससे कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता कि मदिरा के अधिक उत्पादन तथा उपभोग के कारण समाज कल्याण मे वृद्धि होती है।

सातवें, सस्थापित अर्थशास्त्र मे स्वतन्त्र-व्यापार सिद्धान्त (Theory of Free Trade) का विशेष महत्व है। वास्तव मे एडम स्मिथ तथा उस के पश्चात रिकार्डो व अन्य अर्थशास्त्र सस्थापको ने स्वतन्त्र व्यापार के पक्ष मे अनेक तर्क दिये है। स्मिथ की विचारधारा मे तो सारा ससार एक बडा समाज था जिस मे श्रम विभाजन का बड़ा महत्व था। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभो का विवेचन करते हुए स्मिथ ने कहा था कि स्काटलैण्ड के गर्म घरो (hot houses of Scotland) मे अंगूर पैदा करना व्यर्थ है जबकि अच्छे अंगूरो को सस्ते मूल्य पर फ्रान्स से प्राप्त किया जा सकता है। सस्थापित अर्थशास्त्र मे सरक्षण[3] का कोई स्थान नही था।

आठवें, अर्थशास्त्र सस्थापको ने आर्थिक समस्याओ के अध्ययन तथा विश्लेषण मे निगमन रीति (Deductive Method) का प्रयोग किया है।[4]

---

3. इस सम्बन्ध मे एडमस्मिथ ने देश की प्रतिरक्षा (defence) के हित मे सरक्षण की छूट दी थी क्योकि स्मिथ के विचारानुसार प्रतिरक्षा धन की अपेक्षा अधिक आवश्यक थी। ('Defence is better than opulence', said Adam Smith)

4. इस रीति की इतिहासवादी सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियों ने कड़ी आलोचना की थी।

संस्थापित अर्थशास्त्र में कुछ मौलिक मान्यताओ को सत्य मानकर इन मान्यताओ के आधार पर जीवन की समस्याओ का अध्ययन किया जाता था।

अन्तिम, अर्थशास्त्र संस्थापको का यह दृढ विश्वास था कि सभी आर्थिक नियम (Economic Laws) विश्वव्यापी थे जो सभी स्थानों पर सभी समय लागू होते थे। वे आर्थिक नियमो की तुलना प्राकृतिक विज्ञानों (पदार्थ विज्ञान व रसायनशास्त्र इत्यादि) के नियमो से करते थे। अर्थशास्त्र के नियमों की इस प्रकृति की इतिहासवादी सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियो द्वारा कडी आलोचना की गई। वास्तव में *अर्थशास्त्र के नियमो की प्राकृतिक विज्ञान के नियमो से तुलना करके अर्थशास्त्र संस्थापकों* ने एक भारी गलती की थी। वे इस सत्य को न समझ सके कि अर्थशास्त्र सामाजिक विज्ञान की एक शाखा है तथा सभी समाज विज्ञानो के नियम सापेक्ष (relative) होते है। ये नियम विशेष स्थितियो तथा स्थानों मे लागू होते है। स्थिति मे परिवर्तन होने पर इन नियमो मे भी परिवर्तन होना आवश्यक है। उदाहरणार्थ यदि स्वतन्त्र व्यापार की नीति अमरीका के समान विकसित देश के लिए लाभप्रद है तो इससे यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि स्वतन्त्र व्यापार की नीति भारत के समान *अविकसित देश के लिये भी हितकारी है। इतना ही नही बल्कि एक ही नीति उसी* देश के लिए भिन्न परिस्थितियो मे लाभप्रद अथवा घातक भी सिद्ध हो सकती है। अर्थशास्त्र की विषय सामग्री सदा-परिवर्तनीय मनुष्य है तथा परिवर्तनीय विषय का अध्ययन करने वाले विज्ञान के नियम सदा सापेक्ष होते हैं।

सस्थापित अर्थशास्त्र की प्रमुख विशेषताओ को निम्न प्रकार सक्षेप मे समझाया जा सकता है।
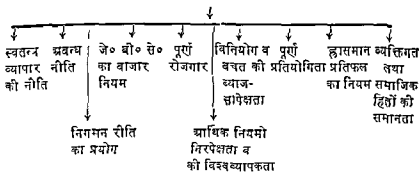
एडम स्मिथ के पूर्वाधिकारी

आज सर्वसम्मति से एडम स्मिथ को अर्थशास्त्र का जनक स्वीकार किया जाता है तथा यह सत्य भी है क्योकि एडम स्मिथ ने अपने पूर्वाधिकारियो के बिखरे तथा असंगठित विचारो को एकत्र करके उन को संगठित व वैज्ञानिक ढंग से

प्रस्तुत किया है। परन्तु यह सब होते हुए भी एडम स्मिथ अपने पूर्वाधिकारियों के ऋणी हैं। स्मिथ की विचारधारा मे उन के पूर्वाधिकारियो के प्रभाव के चिन्ह विद्यमान है। स्मिथ की पुस्तक **'Theory of the Moral Sentiments'** मे लार्ड शेफ्ट्सबरी (Lord Shaftesbury), फ्रान्सिस हृचेसन (Francis Hutcheson), बरनाड डी० मेन्डेविलि (Bernard de Mandeville) तथा डेविडह्यूम (David Hume) के नैतिक विचारो का प्रभाव पाया जाता है। लार्ड शेफ्टसबरी अंग्रेजी नैतिकवादी (Moralist) अथवा भाववादी (Sentimental) सम्प्रदाय के संस्थापक थे तथा एडम स्मिथ इस सम्प्रदाय के सदस्य थे। इस सम्प्रदाय के सदस्य नैतिकता को मानव भावो तथा विवेकशीलता का मिश्रण विचारते थे।

फ्रान्सिस हृचेसन (Francis Hautheson) ग्लासगो विश्वविद्यालय (University of Glasgaw) मे एडम के अध्यापक थे। वे एक प्रभावशाली अध्यापक थे तथा उन के अनुभव तथा ऊँची योग्यता का एडम स्मिथ पर बहुत अधिक प्रभाव पडा। एडम स्मिथ को हृचेसन के समान महान अध्यापक का विद्यार्थी बनने का अवसर प्राप्त हुआ, यह एक बडे गौरव की बात थी तथा एडम स्मिथ स्वयं अपने को इस सम्बन्ध मे भाग्यशाली समझते थे। हृचेसन का स्मिथ पर धार्मिक व राजनैतिक स्वतन्त्रता के क्षेत्र मे विशेष प्रभाव पडा था। स्मिथ के प्रसिद्ध सिद्धान्तो के मूल तत्व हृचेसन की १७५५ ई० मे प्रकाशित पुस्तक 'System of Moral Philosophy' मे पाये जाते है। हृचेसन के समान स्मिथ ने भी अपनी पुस्तक **'Wealth of Nations'** मे श्रम विभाजन पर अधिक जोर दिया है। मूल्य के सिद्धान्त के विषय मे भी स्मिथ पर हृचेसन के विचारो का प्रभाव पडा था। सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि एडम स्मिथ पर हृचेसन का प्रभाव इतनी अधिक मात्रा मे पड़ा था कि स्वय स्मिथ ने हृचेसन की प्रशसा करते हुये लिखा है कि हृचेसन को कभी भी भुलाया नही जा सकता है—"The never-to-be-forgotten Huscheson."

स्मिथ पर अपने अध्यापक फ्रान्सिस हृचेसन के अतिरिक्त एक अन्य डाक्टर बरनार्ड डी मेन्डेविलि[5] (Bernard de Mandeville) के विचारो का भी प्रभाव पडा था। मेन्डेविलि १७०४ ई० मे लिखित एक प्रसिद्ध पुस्तिका के लेखक थे।

---

5. बरनार्ड डी मन्डेविलि का जन्म १६७० ई० मे हालैंड मे हुआ था। वे एक चिकित्सक थे तथा हालैंड को छोड कर इंगलैंड मे आकर बस गये थे। उन को तत्वज्ञान के अध्ययन मे काफी रुचि थी। आर्थिक विचारधारा के विद्यार्थियों के दृष्टिकोण से मेन्डेविलि का महत्व उन की १७०५ ई० मे लिखित पुस्तिका **'A Fable of the Bees or Private Vices, Public Benefits'** तथा इस पुस्तिका का एडम स्मिथ पर प्रभाव पडने के कारण है। इस पुस्तिका का दूसरा सस्करण १७१४ ई० मे प्रकाशित हुआ था।

यह पुस्तिका, जिस का शीर्षक प्रथम संस्करण में **The Grumbling Hive or knaves turned Honest** था परन्तु १७१४ ई० में प्रकाशित दूसरे संस्करण में बदल कर **"A Fable of the Bees, or Private Vices, Public Benefits'** कर दिया गया था, उस समय सादा व नैतिक दृष्टि से पवित्र जीवन व्यतीत करने से सम्बन्धित विचारधारा के सम्बन्ध में एक आक्षेप सहित कविता (Satire) थी। मेन्डेविलि की यह कविता लार्ड शेफ्टसबरी तथा उन के विचारों पर एक कड़ा आक्रमण थी। मेन्डेविलि ने अपनी कविता में यह स्पष्ट किया कि व्यक्ति की जो क्रिया अथवा आदत नैतिक दृष्टि से बुरी है वह आर्थिक दृष्टि से समाज की प्रगति के लिये अत्यन्त आवश्यक है। जैसा कि शीर्षक से स्वयं स्पष्ट है लेखक ने कविता में यह सिद्ध किया है कि निजी अथवा व्यक्तिगत बुरी आदतें (private vices) तथा क्रियाएँ (मदिरा, तम्बाकू इत्यादि का उपभोग) सार्वजनिक हितों के लिये उपकारी सिद्ध होती हैं क्योंकि जब व्यक्ति अपनी बुरी आदतों की सन्तुष्टि करता है तो वह अपनी आय को खर्च करता है जिस से समाज के अन्य वर्गों को आय प्राप्त होती है।[6] यदि मनुष्य की बुरी आदतों की सन्तुष्टि न होती तो वर्तमान सभ्यता का कदापि विकास सम्भव न हुआ होता।

यद्यपि एडम स्मिथ ने मेन्डेविलि के विचारों की अपनी पुस्तक **'Theory of Moral Sentiments'** में आलोचना की थी, परन्तु मेन्डेविलि के विचारों का स्मिथ के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा था। मेन्डेविलि के विचारों में ही स्मिथ ने अपने प्रसिद्ध व्यक्तिगत हित के सिद्धान्त (Doctrine of self-interest) को प्रतिपादित किया था। मेन्डेविलि के समान स्मिथ का भी यह विश्वास था कि राष्ट्रीय धन मनुष्य में एक प्राकृतिक प्रवृत्ति (natural instinct) जिसे यदि बुरा नहीं तो अच्छा भी नहीं कहा जा सकता है, का परिणाम है। इस के अतिरिक्त मेन्डेविलि की कविता में श्रम विभाजन के लाभों की भी विवेचना की गई थी। इसका भी प्रभाव स्मिथ पर पड़ा था क्योंकि अपनी पुस्तक **Wealth of Nations** में स्मिथ ने श्रम विभाजन के लाभों के आधार पर आर्थिक नीतियों का निर्माण करने का भरसक प्रयास किया है।

फ्रान्सिस हचेसन व मेन्डेविलि के अतिरिक्त एडम स्मिथ पर जिस तीसरे लेखक का विशेष प्रभाव पड़ा उसका नाम डेविड ह्यूम (१७११ ई०-१७७६ ई०) है।

---

6 वर्तमान शताब्दी के महान अंगरेजी अर्थशास्त्री कीन्स ने मेन्डेविलि के इस विचार को लेकर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **General Theory** में Theory of Aggregate Effective Demand का विवेचन किया है।

ह्यूम व स्मिथ मे गहरी मित्रता थी तथा दोनो ही हचेसन के विद्यार्थी रहे थे। स्मिथ ने ह्यूम की प्रशसा करते हुये कहा था कि वे (Hume) वर्तमान युग (उस समय) के सब से अधिक कुशल इतिहासकार तथा तत्वज्ञानी थे। स्मिथ द्वारा ह्यूम की उपरोक्त शब्दो मे की गई यह प्रशसा यह स्पष्ट करती है कि स्मिथ पर ह्यूम के विचारो तथा लेखो का गहरा प्रभाव था। वास्तव मे स्मिथ पर ह्यूम का प्रभाव इतना अधिक था कि वे स्वय ग्लासगो विश्वविद्यालय में कक्षा मे अपने विद्यार्थियो के समक्ष व्याख्यान करते समय ह्यूम के निबन्धों (Essays) की चर्चा किया करते थे। स्मिथ के उदारतावाद (liberalism) मे भी ह्यूम का प्रभाव विद्यमान है। उत्पादक व अनुत्पादक श्रम के बीच जो अन्तर स्मिथ ने किया है वह भी ह्यूम के विचार के अनुकूल है। ह्यूम का विशेष अध्ययन क्षेत्र द्रव्य तथा विदेशी व्यापार था। स्मिथ के समान ह्यूम भी पक्के विश्ववर्गीय (Cosmopolitan) थे तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के भारी समर्थक थे।

ह्यूम के अतिरिक्त कुछ अंश मे स्मिथ पर अन्य प्रकृतिवादी लेखको के विचारों का भी प्रभाव था। तर्गो (Turgot) तथा क्वेसने (Quesney) के साथ बातचीत करने के बहुधा अवसर प्राप्त होने के कारण स्मिथ इन के विचारो से भी भली प्रकार परिचित थे। स्मिथ पर क्वेसने की आर्थिक सरिणी (Tableau economique) तथा प्रकृतिवादी (laissez faire) नीति का गहरा प्रभाव पडा तथा इन विचारो का प्रयोग उन्होने कुशलतापूर्वक अपनी पुस्तक **Wealth of Nations** में अपने विचारो को स्पष्ट करते समय किया था।

विशेष अध्ययन सूची

1. Dudley Dillard : The Economics of John Maynard Keynes, Chapter, 1.
2. O. H. Taylor : A History of Economic Thought, Chapter, 2.
3. William Fellner : Modern Economic Analysis, Chapter, 5.
4. J. J. Spengler and W. R. Allen (Ed.) Essays in Economic Thought, Essay No. 6.

प्रश्न

State the basis on which the theory of economic policy of the Classical Political Economy is built.

(बनारस, १९५७)

2. Bring out the differences between the Classical Economics and Historical School.

(राजस्थान, १९५४)

3. Classical economics is a superstructure raised upon the assumption of full employment. Discuss

4. Discuss how far is Adam Smith indebted to his predecessors for his economic system

5. What, according to classical political economy, is the legitimate economic policy of the State, and why ?

(बनारस, १९५६)

अध्याय ७

एडम स्मिथ

(Adam Smith)

एडम स्मिथ[1] (१७२३ ई०—१७६० ई०) को अर्थशास्त्र के जनक तथा अर्थशास्त्रियों के सस्थापक सम्प्रदाय का सस्थापक नेता स्वीकार किया जाता है।

---

1. एडम स्मिथ का जन्म ५ जून, १७२३ ई० मे स्काटलैण्ड में किर्ककाडी (Kir Kcaldy) नामक स्थान मे हुआ था। उस समय किर्ककाडी नगर की जनसख्या केवल १५०० के लगभग थी, तथा स्मिथ के पिता की यहाँ पर वहि शुल्क अधिकारी के पद पर नियुक्ति थी। जन्म होने के तीन मास पूर्व ही उनके पिता का देहान्त हो गया था। उनके पालन पोषण तथा प्रारम्भिक शिक्षा का भार उनकी माता के ऊपर ही पडा। वे स्वय एक बड़ी समझदार स्त्री थीं तथा स्मिथ के जीवन पर उनकी माता का गहरा प्रभाव पडा।

   स्मिथ की प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय स्कूलो मे हुई थी तथा आरम्भ से ही उन्होंने अपनी योग्यता स्पष्ट की थी। चौदह वर्ष की कम आयु मे ही उन्होंने उच्चकोटि के साहित्यिक ग्रन्थो (classics) तथा गणित का इतना अधिक ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि उनको ग्लासगो कालेज (Glasgow College) मे प्रवेश प्राप्त हो गया जहाँ पर उन्होंने अन्य चार विद्यार्थियों के साथ Balliol College, Oxford मे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए Snell Exhibition वजीफा प्राप्त किया। यह वजीफा जो ४० पौण्ड प्रतिवर्ष की धन राशि का था, उच्चकोटि की योग्यता वाले उन विद्यार्थियो को ही प्राप्त होता था जो शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् स्काटलैण्ड के Episcopal Church के अधीन सेवा करने का वचन देते थे। १७३७ ई० तक स्मिथ ग्लासगो कालेज के विद्यार्थी थे तथा यहाँ से उन्होंने एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। ग्लासगो कालेज के ४ वर्ष के विद्यार्थी जीवन काल मे स्मिथ को अनेक अच्छे विद्यार्थियो तथा अध्यापको के सम्पर्क मे आने का अवसर प्राप्त हुआ। इन्हीं अध्यापकों मे से एक Francis Hutcheson भी थे जिनका प्रभाव स्मिथ पर अन्य अध्यापको की अपेक्षा अधिक पडा।

   १७४० ई० मे ग्लासगो कालेज को छोड स्मिथ ने Balliol College, Oxford मे प्रवेश किया जहां वे १७४६ ई० तक रहे। ग्लासगो से आक्सफोर्ड लगभग ४०० मील की दूरी पर स्थित था तथा यह दूरी स्मिथ ने, घोड़े पर

निःसन्देह एडम स्मिथ एक महान विचारक थे। उन्होंने अपने पूर्वाधिकारियों के अधूरे तथा बिखरे विचारों को वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करके अर्थशास्त्र को विज्ञान का रूप प्रदान किया। स्मिथ की महानता इस सत्य से सिद्ध होती है कि आर्थिक विचारधारा के सभी सम्प्रदाय—चाहे वह समाजवादी सम्प्रदाय है या इतिहासवादी सम्प्रदाय है, चाहे वह मार्क्सवादी समाजवादी सम्प्रदाय है या नवसस्थापक सम्प्रदाय है या कोई अन्य और सम्प्रदाय है—किसी न किसी रूप मे स्मिथ के ऋणी अवश्य

सवारी करके पूरी की। रास्ते मे जब स्मिथ ने स्काटलैण्ड की सीमा पार करके इगलैण्ड की सीमा मे प्रवेश किया तो वे इगलैण्ड की अच्छी कृषि अर्थव्यवस्था तथा सामान्य आर्थिक समृद्धि से बहुत प्रभावित हुये। इसके दूसरी ओर थी स्काटलैण्ड की बुरी आर्थिक स्थिति। स्मिथ ने इस अन्तर के कारणो का अध्ययन किया तथा इस ज्ञान व अध्ययन का उनकी पुस्तक के शीर्षक व विषय सामग्री पर भी प्रभाव पडा। आक्सफोर्ड मे कालेज में अच्छे आधिविद्य वातावरण (academic atmosphere) का भारी अभाव होने के कारण स्मिथ के Balliol College, Oxford मे ६ वर्ष अच्छे नही व्यतीत हुये। यहाँ पर अच्छे विद्यार्थियो व अच्छे अध्यापको का अभाव होने के कारण स्मिथ की मित्रमडली सीमित थी तथा उनका अधिकाश समय पुस्तको के साथ ही व्यतीत होता था। इस सबका एक अच्छा परिणाम यह अवश्य हुआ कि स्मिथ का अध्ययन गहन हो गया।

अगस्त १७४६ ई० मे बी० ए० की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् स्मिथ किर्ककाडी वापस लौट आये। यहाँ वापस आकर १७४६ ई० से लेकर १७४८ ई० तक अपने भविष्य के सम्बन्ध मे कोई योजना बनाये बिना वे अपनी माता के पास रहकर विभिन्न विषयो पर अध्ययन करते रहे। इस समय उन्होंने प्राचीन पदार्थ विज्ञान, ज्योतिष विद्या, प्राचीन तर्कशास्त्र तथा आत्मतत्त्वज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित निबन्ध लिखे। १७४८ ई० से लेकर १७५० ई० तक स्मिथ ने अंग्रेजी साहित्य तथा अर्थशास्त्र पर एडिनबर्ग (Edinburgh) मे extension lectures दिये जिनकी काफी प्रशसा की गई।

स्मिथ का असली जीवन-क्रम उस समय प्रारम्भ हुआ जब वे ग्लासगो कालेज मे जनवरी, १७५१ ई० मे तर्कशास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त हुये। यहाँ पर उन्होंने १३ वर्ष के दीर्घ समय तक पढाया। कालेज मे नियुक्ति के एक वर्ष पश्चात् १७५२ ई० मे नैतिक 'तत्त्वज्ञान' के विभागाध्यक्ष के पद को प्राप्त करने पर वे तर्कशास्त्र के अतिरिक्त विधिशास्त्र (Jurisprudence) तथा राजनीतिशास्त्र (Political Science) के विषयो पर भी व्याख्यान देते थे। इस काल मे उनको सस्था मे काफी सम्मान मिला तथा स्मिथ स्वय ग्लासगो कालेज के प्रति आभारी थे। स्मिथ ने स्वय इस समय को अपने जीवन का अत्यधिक उपयोगी, भाग्यवान, तथा आदरणीय समय कहा है। जबकि एक ओर Balliol College, Oxford था जिसको छोडने के पश्चात् कभी उन्होंने याद नही किया, इसके दूसरी ओर Glasgow College था जिसको छोडने पर भी वे कभी नही भुला सके। ग्लासगो कालेज मे स्मिथ के व्याख्यान बहुत लोकप्रिय थे तथा सभी विद्यार्थी इनको ध्यानपूर्वक सुनते थे। उनके व्याख्यानो को

हैं। मार्क्सवाद के विषय में तो यह ठीक ही कहा गया है कि मार्क्सवाद संस्थापित अर्थशास्त्र के पेड के तने (classical trunk) पर लगाई गई एक टहनी (branch) के समान है।

ग्लासगो के धनी व्यापारियो के पुत्र भी सुनने के लिये आने का कष्ट करते थे। १७६२ ई० मे ग्लासगो विश्वविद्यालय ने LL. D. की उपाधि प्रदान करके स्मिथ को तथा स्वयं अपने को सम्मानित किया। अपने इस १३ वर्ष के अध्यापन काल मे ही उन्होने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **Theory of Moral Sentiments** का लेखन किया जो १७५६ ई० मे प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक से स्मिथ को अधिक सफलता तथा यश प्राप्त हुआ। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ चार्ल्स टाऊनशेण्ड (Charles Townshend) स्मिथ की इस पुस्तक से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने स्मिथ को १७६३ ई० मे Duke of Buccleuch का ३०० पौण्ड वार्षिक की ऊँची तनख्वाह पर निजी शिक्षक (personal tutor) नियुक्त किया। यह तनख्वाह स्मिथ को उनके केवल शिक्षण काल के लिये ही नहीं बल्कि उनके जीवन काल तक मिलती रही।

१७६४ ई० मे स्मिथ शिक्षक होने के नाते young Duke के साथ यूरोप, विशेष रूप से फ्रान्स का भ्रमण करने गये। एक या दो सप्ताह पेरिस (Paris) मे ठहरने के पश्चात् वे लगभग डेढ वर्ष तक Duke के साथ दक्षिण फ्रान्स मे Toulouse नामक स्थान मे रहे। यहा पर स्मिथ ने अपने फालतू समय का उपयोग करने के लिये एक पुस्तक के लेखन का कार्य प्रारम्भ किया जो १२ वर्ष के पश्चात् **Wealth of Nations** नामक प्रसिद्ध पुस्तक के रूप मे प्रकाशित हुई। Duke के साथ शिक्षक के रूप मे फ्रास मे भ्रमण करने से स्मिथ को विशेष लाभ यह हुआ कि उनको तर्गो (Turgot), क्वेसने (Quesney), नेकर (Necker), मारमान्टल (Marmontel) इत्यादि प्रसिद्ध प्रकृतिवादी लेखको से सम्पर्क स्थापित करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। बहुधा इन लेखको से विचार विनिमय होने के कारण स्मिथ को फ्रास की आर्थिक समस्याओ के सम्बन्ध मे आवश्यक ज्ञान प्राप्त हुआ तथा इनके आर्थिक विचारो का प्रयोग स्मिथ ने अपनी पुस्तक **Wealth of Nations** मे किया। **Wealth of Nations** की Book II मे प्रकृतिवादी प्रभाव के चिन्ह विशेष रूप से विद्यमान हैं।

१७६६ ई० मे विदेश यात्रा से लन्दन वापस लौटने पर स्मिथ अपने जन्म स्थान किर्कवाडी अपनी माता के साथ रहने चले आये। यहा वे १७७६ ई० तक रहे तथा दस वर्ष के इस समय मे अपनी पुस्तक **Wealth of Nations** का लेखन करते रहे। १७७६ ई० मे उनकी सुप्रसिद्ध पुस्तक **Wealth of Nations** प्रकाशित हुई। प्रथम पुस्तक **Theory of Moral Sentiments** के समान इस पुस्तक से भी स्मिथ को धन तथा यश प्राप्त हुआ। समय के बीतने के साथ पुस्तक का प्रभाव तथा इसके साथ लेखक की प्रसिद्धि भी बढ़ती गई। जहा तक धन का सम्बन्ध है, यह उस समय प्राप्त हुआ जब १७७८ ई० मे स्मिथ स्काटलैण्ड मे बहिःशुल्क कमिश्नर के उच्च पद पर नियुक्त किये गये। इस पद से प्राप्त तनख्वाह तथा भूत में Duke के शिक्षक होने से प्राप्त निवृत्ति वेतन (Pension) दोनो को मिलाकर स्मिथ को काफी अधिक आय

वेल्थ ऑफ नेशन्स (The Wealth of Nations)[2]

यद्यपि एडम स्मिथ की प्रसिद्धि १७७६ मे The Wealth of Nations के प्रकाशित होने के पूर्व हो चुकी थी परन्तु १७७६ ई० मे इस अति उत्तम रचना के प्रकाशित होने पर उनकी प्रसिद्धि और भी अधिक हो गई। इस पुस्तक के प्रकाशित होने के फौरन ही पश्चात् एडम स्मिथ के पूर्वाधिकारियो के विचार प्रच्छन्न हो गये तथा लोग स्मिथ की पुस्तक को अर्थशास्त्र विज्ञान का आरम्भ विचारने लगे। पुस्तक की अत्यधिक लोकप्रियता के कारणो को समझने के लिए दो बातों का विवेचन करना आवश्यक है; प्रथम, पुस्तक के गुणो तथा दूसरे, पुस्तक का उस समय की आर्थिक व राजनैतिक परिस्थितियो से क्या सम्बन्ध था। इस पुस्तक की प्रसिद्धि के अनेक कारण थे। वेल्थ ऑफ नेशन्स जनसाधारण के लिए लिखी गई थी विशेषज्ञो के लिये नही। पुस्तक को लिखने का ढग सुन्दर व सरल तथा शैली अतिरोचक है। वास्तव मे इस पुस्तक को पढने के लिए अर्थशास्त्र का ज्ञान होना आवश्यक नही है। पुस्तक इतनी रोचक है कि यदि इसकी तुलना बोसवेल (Boswell) की पुस्तक 'Life of Johnson' से की जावे तो गलत न होगा। पुस्तक मे लेखक ने काफी ऐतिहासिक व आँकडो सम्बन्धी सूचना प्रस्तुत की हैं। पुस्तक मे लेखक ने उस समय उत्तेजित समस्याओ का सविस्तार पूर्वक ढग से विवेचन किया है। उपनिवेशी शासन, वणिकवादी प्रणाली, मौद्रिक नीति तथा करारोपण आदि विषयो पर लेखक ने अपने विचारो तथा तर्को को पुस्तक मे इतने अच्छे ढग से प्रस्तुत किया है कि पाठको को लेखक की प्रशसा करनी ही पडती है। शैली मे भाव, उदारता तथा सरलता के दुर्लभ गुण एक साथ पाये जाते हैं। स्मिथ ने गहन अध्ययन करने के पश्चात् पुस्तक मे औद्योगिक समाज की मौलिक सस्थाओ का व्यापक रूप से विश्लेषण किया है। उस समय की आर्थिक नीति की आलोचना करके स्मिथ ने जनता का ध्यान अपने विचारो व पुस्तक की ओर आकर्षित किया है। इसके अतिरिक्त यह भी कोई कम महत्वपूर्ण बात नहीं थी कि पुस्तक ऐसे समय पर प्रकाशित हुई थी जब इगलैण्ड मे औद्योगिक व वाणिज्य क्षेत्रो मे भारी परिवर्तन हो रहे थे। नये आविष्कारो के परिणामस्वरूप औद्योगिक विकास

प्राप्त हो जाती थी। १७७८ ई० मे स्मिथ के स्कूल ने उनको अधिष्ठाता (rector) के अवैतनिक पद के लिये निर्वाचित किया। १७८४ ई० मे माता का देहान्त हो जाने के कारण उनके जीवन के अन्तिम वर्ष शोकपूर्ण वातावरण मे व्यतीत हुये। वे अविवाहित थे। १७६० ई० मे अतड़ियो की बीमारी के फलस्वरूप स्मिथ का देहान्त हो गया। अपने जीवन काल के बड़े परिश्रम से उन्होंने मौलिक आर्थिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन करके अर्थशास्त्र विज्ञान की भारी सेवा की तथा आर्थिक विचारधाराओं के इतिहास मे अपने लिए एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया।

2. पुस्तक का पूरा शीर्षक **An Enquiry into the Nature and Causes of the Wealth of Nations** है।

की नई सम्भावनाये उत्पन्न हो रही थी। ऐसे समय में आर्थिक व व्यापार सम्बन्धी नीतियों मे भी पर्याप्त सुधार करने की आवश्यकता थी। जैसा कि ऐसे समय मे बहुदा होता है सभी लोग इन समस्याओं पर अपने समय के प्रसिद्ध विचारक व लेखक के विचारो को जानने के लिये व्याकुल थे।

पुस्तक मे निजी हित (self-interest) तथा प्राकृतिक स्वतन्त्रता (natural liberty) के दो मौलिक विचार प्रस्तुत किए गए हैं। इन्ही दोनों मौलिक विचारों पर स्मिथ के शेष आर्थिक सिद्धान्त आधारित है। ससार मे आर्थिक संस्थाओं की उपस्थति स्मिथ के विचारानुसार इन दोनो मौलिक विचारो पर आधारित थी। आर्थिक क्षेत्र मे निजी-हित के महत्व को स्पष्ट करते हुए स्मिथ ने लिखा था कि "हम जो भोजन करते हैं वह हमको कसाई (butcher), शराब खींचने वाले (brewer) तथा नानाबाई (baker) की कृपा से नही वल्कि उनके निजी हित को प्रेरित करके प्राप्त होता है। हम उनका कृपालुता को नही वल्कि उनके निजी-प्यार (self-love) से निवेदन करते हैं, हम कभी भी उन से अपनी आवश्यकनाओं की नही बल्कि सदा उनके स्वय लाभ की बात करते है।"[3] स्मिथ की समस्त पुस्तक मे यही विचार विद्यमान है। परन्तु इस का यह अर्थ कदापि नही है कि स्मिथ के विचार मे सभी मानव सम्बन्ध केवल इसी विचार पर आधारित थे। वास्तव में १७५९ ई० मे लिखित अपनी पुस्तक **Theory of Moral Sentiments** मे यह स्मिथ ने स्पष्ट किया था कि मनुष्यों के बीच नैतिक सम्बन्ध सहानुभूति के सिद्धान्त पर आधारित थे। परन्तु **Wealth of Nations** मे स्मिथ जब निजी हित को मानव सम्बन्धो का आधार घोषित करते है तो उनका अभिप्राय आर्थिक सम्बन्धो से है।

पुस्तक मे दूसरा मुख्य सिद्धान्त जिस का स्मिथ ने विशेष रूप से विवेचन किया है प्राकृतिक स्वतन्त्रता का सिद्धान्त (doctrine of natural liberty) है। यूरोप में बहुत समय से वणिकवादी प्रणाली प्रचलित थी। इसके अन्तर्गत व्यापार तथा अन्य आर्थिक क्रियाओ पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगे थे। स्मिथ के पूर्व वणिकवादी नीतियो का प्रकृतिवादियो ने कड़ा विरोध किया था। भले ही वणिकवादी नीतियाँ १६ वी व १७ वी शताब्दियो मे कितनी ही उपयोगी सिद्ध क्यों न हुई हों, निःसन्देह ये नीतियाँ १८ वी शताब्दी के दृष्टिकोण से पुरानी थी। १८ वी शताब्दी वैज्ञानिक आविष्कारों का युग था। इन आविष्कारो का कृषि व औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं के क्षेत्र मे लाभप्रद उपयोग उसी समय सम्भव हो सकता था जब

---

3. "It is not from the benevolence of the butcher, the brewer, or the baker, that we expect our dinner, but from their regard to their self interest. We address ourselves not to their humanity, but to their self-love, and never talk to them of our own necessities, but of their advantage." says Smith.

उद्योगों पर नियंत्रण न हो, जब व्यापार स्वतन्त्र हो तथा व्यापार व उद्योग करों के हानिकारक अतिभारों से मुक्त हों। केवल कुछ कम्पनियों को ही उत्पादन करने के एकाधिकार प्राप्त होने के कारण प्रतियोगिता के कारण होने वाले आर्थिक विकास की सम्भावना उपस्थित न थी। राजनैतिक व धार्मिक क्षेत्रों में भी जीवन स्वतन्त्र न था। ऐसी चिन्ताजनक स्थिति में परिवर्तन होना एक स्वाभाविक बात थी। स्वतन्त्रता के आन्दोलन को राजनीति के क्षेत्र में रूसो (Rousseau) ने, तत्त्वज्ञान में वाल्टेयर (Voltaire) तथा अन्य व्यक्तियों ने तथा अर्थशास्त्र के क्षेत्र में प्रकृतिवादियों ने उत्तेजित किया था। प्रकृतिवादी विचारधारा वणिकवादी विचारधारा के पूर्णतया प्रतिकूल थी। यह विचारधारा Laissez faire, laissez passer की स्थाई आधारशिला पर आधारित थी। प्रकृतिवादियों का विश्वव्यापी आर्थिक नियमों में अटल विश्वास था। स्वतन्त्रता उनका सर्वप्रिय नारा था।

यह सत्य है कि स्मिथ प्रकृतिवादियों के प्रति काफी ऋणी थे तथा कुछ समय तक वे प्रसिद्ध प्रकृतिवादी डा० क्वेसने के शिष्य भी थे तथा उन (क्वेसने) के वे बड़े आभारी थे[4]। इसके अतिरिक्त इंगलैंड तथा यूरोप में स्वतन्त्रता आन्दोलनों की लहर प्रचलित थी। लोग राजनैनिक अधिकारों के प्रति सचेत होते जा रहे थे। यह एक विशेष रूप से महत्वपूर्ण बात है कि जिस वर्ष स्मिथ की पुस्तक प्रकाशित हुई थी (१७७६ ई०) उसी वर्ष अमरीका तथा इंगलैंड के बीच Declaration of Independence पर हस्ताक्षर किए गए थे तथा जिस के अनुसार अमरीकी उपनिवेश को इंगलैंड की दासता से मुक्ति प्राप्त हुई थी। कहने का तात्पर्य यह है कि उपनिवेशी प्रणाली का खण्डन होना आरम्भ हो गया था। इंगलैंड में भी सरकारी प्रतिबन्धों का विरोध तथा आलोचना की जा रही थी। ऐसे समय में रहकर स्मिथ के विचारों पर भी स्वतन्त्रता आन्दोलनों का प्रभाव आवश्यक रूप से पड़ा। वे आर्थिक स्वतन्त्रता के भारी समर्थक बन गए तथा इसी विचार पर उन्होंने स्वतन्त्र व्यापार, पूर्ण प्रतियोगिता इत्यादि आर्थिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। स्मिथ ने प्रचलित वाणिज्य नीतियों की अपनी पुस्तक में तर्कों के साथ आलोचना की तथा तर्कों की सहायता यह सिद्ध किया कि सर्वोत्तम आर्थिक नीति वह नीति होती है जिस का उद्देश्य स्वतन्त्रता तथा इस पर आधारित पूर्ण प्रतियोगिता की आर्थिक संस्था को जीवित रखना होता है। सरकारी नीति का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति को, जब तक कि वह न्याय के नियमों का उल्लघन नहीं करता है, अपनी इच्छा अनुसार किसी भी आर्थिक क्रिया को करने तथा अपने उद्योग

---

4. यह कहा जाता है कि क्वेसने के देहान्त के पूर्व स्मिथ ने अपनी पुस्तक **The Wealth of Nations** को क्वेसने को समर्पण करने का विचार किया था।

व पूँजी को अन्य व्यक्तियो के उद्योग व पूँजी से प्रतियोगिता लेने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

क्या पुस्तक की प्रसिद्धि का कारण स्मिथ के विचारों की मौलिकता (Originality) थी ?

उपरोक्त प्रश्न का उत्तर 'नही' मे है। स्मिथ ने जिन सिद्धान्तों तथा विचारों की अपनी पुस्तक मे विवेचना की है वे मौलिक कदापि नही हैं क्योकि स्मिथ इन आर्थिक *विषयो पर लिखने वाले प्रथम अर्थशास्त्री नही थे।* *उन से पहले भी शताब्दियो पूर्व* लेखको ने इन विषयो तथा समस्याओं पर समय-समय पर अपने विचार लेखन कार्यो के द्वारा व्यक्त किए थे। स्मिथ अपने अंग्रेजी तथा फ्रान्सीसी पूर्वाधिकारियो के भारी ऋणी थे क्योंकि उनके असगठित व बिखरे विचारो का स्मिथ ने अपने सिद्धान्तों की सामग्री के रूप मे काफी *मात्रा मे उपयोग किया था।* स्मिथ ने अपनी पुस्तक में कोई मौलिक रूप से नये सिद्धान्तों अथवा विचारों का निर्माण नही किया। उदाहरणार्थ बहुमूल्य धातुवाद (Bullionism) के विरुद्ध स्मिथ ने जो तर्क दिए है वे थामस मन (Thomas Mun) के द्वारा पहले ही दिए जा चुके थे। इसी प्रकार मूल्य के श्रम सिद्धान्त (Labour Theory of value) के *सम्बन्ध मे विलियम पेटी* (William Petty) ; निजी-हित (self-interest) के विषय पर बर्नार्ड डी मेन्डेविलि (Bernard de Mandeville) व डेविड ह्यूम (David Hume) ; *नीची ब्याज दर के लाभो* पर जोसिया चाईल्ड (Josiah Child), प्राकृतिक नियम के सिद्धान्त (Theory of Natural Law) पर फ्रान्सिस हुचेसन (Francis Hutcheson) व लॉक (Locke) ; साख के सिद्धान्त पर डेवनेन्ट (Davenant), तथा चलन के विषयों के सम्बन्ध में न्यूटन (Newton) इत्यादि लेखक अपने विचार एडम स्मिथ के पुस्तक लिखने के शताब्दियों पूर्व व्यक्त कर चुके थे। इतना ही नही, बल्कि स्मिथ द्वारा व्यक्त किए *गए करारोपण के चार प्रसिद्ध सिद्धान्तों को भी लगभग समान शब्दों मे स्मिथ के* फ्रान्सीसी पूर्वाधिकारियो के लेखो तथा पुस्तको मे लिखित पाया जाता है।

स्मिथ पर *समान्यतः* प्रकृतिवादियो *का* काफी प्रभाव था। इस प्रभाव का अनुमान हम स्मिथ की १७७६ ई० मे प्रकाशित पुस्तक The Wealth of Nations मे व्यक्त आर्थिक विचारो तथा १७६३ ई० मे कक्षा व्याख्यान मे व्यक्त आर्थिक विचारो की तुलना करके लगा सकते है। स्मिथ ने कितने ही आर्थिक विषयो पर अपने प्रकृतिवादी पूर्वाधिकारियो के विचार उधार लिये है। स्मिथ का वितरण का सिद्धान्त (Theory of Distribution) तथा राष्ट्रीय आय अथवा उत्पादन के लगान, वेतन, लाभ तथा ब्याज मे विभाजन की योजना पूर्णतया प्रकृतिवादी विश्लेषण पर आधारित है। इसके अतिरिक्त पूँजी की प्रकृति तथा गति सम्बन्धी विचार भी

फ्रान्सीसी लेखकों से उधार लिये गये हैं। उपभोग के[5] भारी आर्थिक महत्व तथा उत्पादक व अनुत्पादक श्रम की परिभाषा पर भी प्रकृतिवादी प्रभाव के चिन्ह विद्यमान हैं। प्रकृतिवादियों के समान **Laissez faire, laissez passer** का नारा स्मिथ की सभी आर्थिक नीतियों की आधारशिला थी।

उपरोक्त वर्णन से निःसन्देह यह भली प्रकार स्पष्ट है कि कुछ भी कारण क्यों न हो परन्तु पुस्तक की प्रसिद्धि का कारण स्मिथ के विचारों की मौलिकता कदापि नहीं कही जा सकती। यदि ऐसा कहना सत्य है तो प्रश्न उठता है कि अन्य किस कारणवश पुस्तक को इतनी अधिक प्रसिद्धि तथा लेखक को इतना अधिक यश प्राप्त हुआ कि स्मिथ को सर्व सम्मिति से अर्थशास्त्र का जनक स्वीकार किया जाने लगा। स्मिथ की महानता का कारण उसके विचारों की मौलिकता नहीं है। स्मिथ की महानता का कारण इस सत्य में निहित है कि स्मिथ पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने अपने पूर्वाधिकारियों के विभिन्न भाषाओं में व्यक्त किये गये घनी मात्रा में बिखरे व अधूरे विचारों को एकत्र करके उनको सुन्दर ढग से प्रभावशाली शैली में व्यक्त करके नया अर्थ प्रदान किया। स्मिथ के पूर्व किसी अन्य अर्थशास्त्री ने इतनी अधिक सामग्री को इतने उत्तम ढग से एक पुस्तक में प्रस्तुत करने का कभी सफल साहस नहीं किया था। यदि स्मिथ के विचारों में मौलिकता का अभाव है तो इसके साथ ही साथ यह कहना भी सत्य है कि उनकी शैली मौलिकता का भडार है। स्मिथ की अपनी भाषा है तथा अपनी शैली है। उनको भगवान् ने इस बहुमूल्य गुण का उपहार दिया था कि दूसरे के विचारों को भी वे ऐसी भाषा व शैली में व्यक्त कर सकते थे कि पाठकों को वे विचार स्वयं लेखक के विचार प्रतीत होने लगते थे।

इन सब बातों के अतिरिक्त पुस्तक की लोकप्रियता तथा लेखक की महानता इस सत्य बात पर भी आधारित थी कि पुस्तक में केवल सकुचित आर्थिक दृष्टिकोण को ही नहीं बल्कि जीवन के तत्व ज्ञान की भी चर्चा की गई है। स्मिथ समाज में गरीब तथा पीड़ित व्यक्तियों के हितों के रक्षक थे। यद्यपि बहुधा उनको औद्योगिक पूँजीवादी वर्ग का समर्थक कहा जाता है, परन्तु उनके हृदय में श्रमिकों तथा ग्रामीण कार्यकर्ताओं के प्रति सदा दया की भावना थी। वे व्यापारी वर्ग की ओर सन्देह-जनक दृष्टि से देखते थे। उदाहरणार्थ मालिकों की निन्दा करते हुये उन्होंने लिखा है कि "मालिक सदा तथा सभी स्थानों पर श्रमिकों के वेतनों में वृद्धि न होने के

उद्देश्य से आपस मे समझौते करते रहते है।[6] इसी प्रकार दूसरे स्थान पर वे लिखते है कि "व्यापारी तथा उद्योगपति ऊँचे वेतनो के (मूल्यो में वृद्धि होती है तथा देश व विदेश में बिक्री कम होती है) बुरे प्रभावो की तो सदा चर्चा करते है परन्तु वे अधिक लाभो के बुरे प्रभावो की कभी चर्चा नही करते है। अपने लाभ के घृणाजनक बुरे प्रभावो के सम्बन्ध में वे चुप रहते हैं। वे केवल दूसरों की शिकायत करते हैं।[7] ग्रामीण लोगो की प्रशसा करते हुये स्मिथ ने लिखा है कि "गाव के भद्रपुरुष तथा किसान अपनी महानता के अनुसार एकाधिकार की घृणाजनक बुराई से मुक्त है।"[8]

पुस्तक की योजना (Plan of the Book)

पुस्तक का पूरा शीर्षक **'An Enquiry into the Nature and the Causes of the Wealth of Nations'** बहुत उपयुक्त है क्योंकि पुस्तक मे लेखक ने राष्ट्र के धन अथवा उत्पादन की प्रकृति तथा इसको निर्धारित करने वाले कारणो का विश्लेषण किया है। पुस्तक के प्रारम्भ मे तीन पृष्ठ की भूमिका दी गई है जिसमे लेखक ने लिखा है कि पुस्तक को पांच पुस्तको (Books) अथवा खण्डो तथा एक छोटे परिशिष्ट मे विभाजित किया गया है। प्रथम दो पुस्तको मे श्रम विभाजन, द्रव्य का आरम्भ व उपयोग, मूल्य, वेतन, ब्याज, लाभ, लगान, पूँजी की प्रकृति, इसके सचय तथा पूँजी के भिन्न व्यवसायो मे उपयोग इत्यादि विषयो का मुख्यत: सैद्धान्तिक विवेचन किया गया है। तीसरी पुस्तक मे, जो विभिन्न राष्ट्रो के ऐश्वर्य (opulence) से सम्बन्धित है, कृषि के इतिहास, रोम के साम्राज्य के पतन के पश्चात नगरो की उन्नति तथा औद्योगिक नगरो में व्यापार के हेतु ग्रामीण क्षेत्रो मे कृषि पर पडने वाले प्रभावो का वर्णन किया गया है। चौथी पुस्तक मे वणिकवादी तथा प्रकृतिवादी प्रणालियो का आलोचनात्मक परीक्षण किया गया है। पाचवी तथा अन्तिम पुस्तक मे राज्यकीय आय तथा व्यय, करारोपण के सिद्धान्तों तथा राज्य-हस्तक्षेप इत्यादि विषयो का वर्णन किया गया है।

समस्त पुस्तक में चार मुख्य वातों को प्रदर्शित किया गया है—प्रथम, सामान्य आर्थिक सिद्धान्तो की विवेचना; दूसरे, उस समय की आर्थिक नीतियो व विचारों की आलोचना, तीसरे; राजनैतिक आर्थिक (politico-economic) सस्थाओ के इतिहास की व्याख्या; तथा चौथे, करारोपण के सिद्धान्तो व राज्य-हस्तक्षेप इत्यादि प्रयुक्त आर्थिक सिद्धान्तो (applied economic principles) व समस्याओ का विवेचन किया गया है।

---

6 Ibid : pp. 66 67
7. Ibid : p 98
8 "Country gentlemen and farmers are, to their great honour, of all people the least subject to the wretched spirit of monopoly." (Ibid : p, 428

भूमिका के तीन प्रारम्भिक वाक्य-खण्डो मे, पुस्तक के प्रधान राग अथवा विषय का वर्णन करते हुये स्मिथ ने लिखा है कि "प्रत्येक राष्ट्र का वार्षिक श्रम वह कोष है जो उसे (राष्ट्र) मौलिक रूप से जीवन की उन सभी आवश्यकताओ व सुविधाओं, जिनका वह राष्ट्र प्रतिवर्ष उपभोग करता है तथा जो उस श्रम का तत्कालीन उत्पादन होता है अथवा जो उस उत्पादन के द्वारा अन्य राष्ट्रो से क्रय किया जाता है, की पूर्ति प्रदान करता है। फलस्वरूप इस उत्पत्ति अथवा जो इसके द्वारा क्रय किया जाता है का इसका उपभोग करने वालो के साथ अधिक या कम अनुपात होने के अनुसार राष्ट्र मे भी आवश्यकताओ तथा सुविधाओ की पूर्ति अधिक या कम होगी तथा राष्ट्र की स्थिति श्रेष्ठतर अथवा बदतर होगी। प्रत्येक राष्ट्र मे यह अनुपात दो भिन्न परिस्थितियो से नियमित होता है। प्रथम, यह श्रम की योग्यता, कुल निपुणता तथा निर्णय पर निर्भर होता है। दूसरे, यह राष्ट्र मे काम करने वाले श्रमिको के उत्पादक व अनुत्पादक व्यवसायो मे, कुल सख्या के अनुपात से निर्धारित होता है। किसी राष्ट्र विशेष की भूमि व जलवायु कैसी ही क्यो न हो तथा उस राष्ट्र का क्षेत्र कितना ही क्यो न हो, वस्तुओ की वार्षिक पूर्ति की कमी अथवा प्रचुरता इन्ही दो परिस्थितियो पर निर्भर रहेगी।"[१]

उपरोक्त उद्धरण से यह भली प्रकार स्पष्ट है कि स्मिथ के विचार मे श्रम की मात्रा तथा गुण व निपुणता पर ही राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि निर्भर थी। परन्तु इससे हमको यह नही समझ लेना चाहिये कि स्मिथ श्रम को उत्पादन का एकमात्र साधन समझते थे। वास्तव मे उनके अनुसार प्राकृतिक साधनो व पूँजी का भी उत्पादन मे समान महत्व था। परन्तु स्मिथ प्राकृतिक साधनो अथवा भूमि की उत्पादन शक्ति को सीमित तथा श्रम की उत्पादक शक्ति को असीमित विचारते थे। सक्षेप मे श्रम उत्पत्ति का एकमात्र साधन तो नही, परन्तु प्रथम तथा सबसे अधिक शक्तिशाली सक्रिय साधन था और यह विचार ठीक भी है। पूँजी तो सचित श्रम का ही एक रूप है तथा भूमि उत्पत्ति का निष्क्रिय साधन है। स्मिथ के मतानुसार

श्रम अथवा मानव क्रियाएँ ही सच्चे राष्ट्रीय धन का स्रोत थी यह विचार प्रकृतिवादी विचारधारा के बिल्कुल प्रतिकूल है क्योंकि प्रकृतिवादी केवल भूमि को उत्पादक तथा श्रम को अनुत्पादक विचारते थे। स्मिथ ने श्रम को खोई हुई प्रतिष्ठा फिर से प्रदान की। इसी प्रकार यह विचार प्राचीन वणिकवादी विचार, जिसमे स्वर्ण तथा अन्य बहुमूल्य धातुओ को ही सच्ची राष्ट्रीय सम्पत्ति समझा जाता था, के भी प्रतिकूल था। पुस्तक सम्बन्धी उपरोक्त वर्णन के पश्चात् अब एडम स्मिथ के कुछ अन्य मुख्य आर्थिक विचारो का सविस्तार अध्ययन किया जा सकता है।

(१) श्रम विभाजन

एडम स्मिथ के विचार में किसी राष्ट्र के धन अथवा उत्पत्ति का असली स्रोत उस राष्ट्र का श्रम ही था। श्रम ही वस्तु के मूल्य का एकमात्र स्रोत व मापक था। पुस्तक की भूमिका मे प्रथम वाक्य मे ही श्रम के महत्व को व्यक्त किया गया है। प्रथम पुस्तक (Book I) के प्रथम अध्याय मे श्रम विभाजन के सम्बन्ध मे लिखा गया है तथा इस अध्याय का शीर्षक 'Of the Division Labour' है। सम्भवतः सारी पुस्तक मे यह अन्य सब अध्यायों से अधिक महत्वपूर्ण अध्याय है। इस अध्याय मे स्मिथ ने श्रम विभाजन के उन महत्वपूर्ण लाभो का विवेचन किया है जिनके फलस्वरूप राष्ट्र मे धन के उत्पादन मे वृद्धि करना सम्भव हो जाता है। श्रम विभाजन के लाभों मे स्मिथ ने मुख्य रूप से निम्न तीन लाभों की चर्चा की है :

(अ) श्रमिको की अधिक निपुणता।

(ब) समय की बचत।

(स) नई मशीनो के आविष्कारो की सम्भावना जिनके फलस्वरूप एक श्रमिक कई श्रमिको का कार्य कर सकता है।

अपने विचारो को अधिक स्पष्ट करने के उद्देश्य से लेखक ने श्रम विभाजन के सभी लाभों को पिन निर्माण उद्योग (Pin manufacturing industry) के उदाहरण द्वारा समझाने का भरसक प्रयास किया है।

श्रम विभाजन के द्वारा कुल उत्पादन किस प्रकार गुणात्मक दृष्टि से अच्छा तथा परिमाणात्मक दृष्टि से अधिक होता है यह समझाते हुये स्मिथ ने लिखा है कि जब एक ही श्रमिक पिन बनाने सम्बन्धी अन्य निर्माण प्रक्रियाओं को स्वय करता है तब प्रथम तो एक प्रक्रिया को समाप्त करने के पश्चात् तथा दूसरी प्रक्रिया को आरम्भ करने के पूर्व समय नष्ट होता है ; दूसरे, उसकी निपुणता सभी निर्माण प्रक्रियाओ मे समान न होने के कारण वस्तु भी अच्छे प्रकार की नही बन पाती है। इसके विपरीत जब उसी वस्तु को श्रम विभाजन की रीति, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक सभी निर्माण प्रक्रियाओ को स्वय न करके केवल एक निर्माण प्रक्रिया को ही करता है तब प्रथम तो उसी प्रक्रिया को अनेक बार करने के कारण उसकी निपुणता मे वृद्धि हो जाती है, जिसके कारण उत्पादन अच्छे प्रकार का तथा

अधिक होता है। दूसरे, क्योंकि अब प्रत्येक श्रमिक का सम्बन्ध केवल एक ही निर्माण प्रक्रिया से है, पहले के समान अब पहली प्रक्रिया की समाप्ति तथा दूसरी प्रक्रिया के प्रारम्भ के बीच समय नष्ट होने का कोई प्रश्न नहीं उठता है। इस प्रकार आर्थिक दृष्टिकोण से नष्ट समय के अब उत्पादक समय का रूप धारण करने के कारण कुल उत्पादन में वृद्धि हो जाती है। तीसरी तथा सब से अधिक महत्वपूर्ण बात श्रम विभाजन के सम्बन्ध में यह है कि जब श्रमिक एक ही निर्माण प्रक्रिया से विशेष रूप से सम्बन्धित होता है तब वह उस प्रक्रिया का विशेषज्ञ बन सकता है जिसके कारण वह उस निर्माण प्रक्रिया के क्षेत्र में प्रचलित प्रक्रिया में सुधार करने के उद्देश्य से नवीन यन्त्रों अथवा मशीनों का आविष्कार करने में सफल हो सकता है। आविष्कारों का इतिहास इस सत्य का भली प्रकार साक्षी है।

श्रम विभाजन के लाभों के सम्बन्ध में पिन बनाने का उदाहरण देते हुये स्मिथ ने इस प्रकार लिखा है, "मैंने स्वयं पिन बनाने का एक छोटा सा कारखाना देखा है जहाँ पर कि केवल दस श्रमिक काम करते थे। इनमें से कुछ तो दो या तीन भिन्न कार्य करते थे। यद्यपि उनके पास आवश्यक अच्छे यन्त्र आदि नहीं थे परन्तु फिर भी दिन भर में वे लगभग १२ पौण्ड पिन तैयार कर लेते थे। एक पौण्ड में मध्यम आकार के लगभग ४,००० पिन होते हैं। इसका यह अर्थ है कि ये श्रमिक मिल कर एक दिन में लगभग ४८,००० पिन बना लेते थे। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति कुल उत्पादन का १/१० अथवा ४८०० भाग बना लेता था। परन्तु यदि प्रत्येक श्रमिक ने एक साथ न मिलकर अलग-अलग पिन बनाये होते तो निश्चय ही प्रत्येक व्यक्ति एक दिन में २० पिन भी न बना पाता तथा सम्भवतः एक पिन भी न बना पाता। इसका दूसरे शब्दों में यह अर्थ है कि निश्चय ही एक व्यक्ति उस कुल उत्पादन के, जो श्रम विभाजन का परिणाम है, १/२४० भाग को तथा सम्भवतः १/४८०० भाग को भी न बना पाता।"[10]

यद्यपि एडम स्मिथ श्रम विभाजन के लाभो से अत्यधिक प्रभावित थे, परन्तु वे इसके दोषों से भी भली प्रकार परिचित थे। श्रमविभाजन के दोषो को व्यक्त करते हुये स्मिथ ने इस प्रकार लिखा है - "जिस व्यक्ति का सारा जीवन केवल एक ही प्रकार के सरल कार्य को करते हुये व्यतीत होता है उसकी अपनी समझ अथवा बुद्धि के प्रयोग करने की आदत समाप्त हो जाती है तथा वह इतना अधिक मूर्ख बन जाता है, जितना मनुष्य के लिये बनना सम्भव हो सकता है। श्रमविभाजन के कारण उद्योग विशेष मे प्राप्त निपुणता उसको अपनी बुद्धि या सामाजिक तथा फौजी गुणो को खोकर ही प्राप्त होती है। दुर्भाग्यवश प्रत्येक सभ्य समाज मे गरीब श्रमिको की आवश्यक रूप से यही दुर्दशा होती है, जब तक कि सरकार इसको रोकने के लिये कोई प्रयत्न नही करती है।[11]

श्रमविभाजन सीमारहित नही था। स्मिथ के अनुसार श्रमविभाजन की सीमा बाजार के आकार पर आधारित थी। श्रमविभाजन उसी समय सम्भव हो सकता है जब उत्पादन घनी मात्रा मे बडे पैमाने की उत्पादन रीति के द्वारा किया जाता है। जिन वस्तुओ की माग कम अथवा सकुचित होती है उनका उत्पादन थोडी मात्रा मे किया जाता है तथा परिणामस्वरूप श्रमविभाजन की सम्भावना घनी मात्रा मे उत्पादन की अपेक्षा कम होती है। व्यापक बाजार वस्तु की व्यापक माग का प्रतीक होता है। परिवहन की सुविधाएँ तथा वस्तु-विनिमय के स्थान पर विनिमय प्रणाली का स्थानापत्ति बाजार के आकार मे व्यापकता लाकर श्रमविभाजन को अधिक मात्रा मे सम्भव बना देते है। अन्य कारणों के अतिरिक्त स्मिथ के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का भारी समर्थक होने का यह भी एक मुख्य कारण था। स्मिथ समस्त सँसार को एक बडी कर्मशाला समझते थे, जिसकी उत्पत्ति श्रमविभाजन के कारण हुई है। मानव कल्याण के हित के लिये यह आवश्यक है कि इस कर्मशाला का इष्टतम आकार हो। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण बाजार का आकार राष्ट्रीय सीमाओ तक सीमित न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय हो जाता है जिसके कारण वस्तु की माग व्यापक हो जाती है तथा श्रमविभाजन का क्षेत्र बढ जाता है।

श्रमविभाजन की दूसरी सीमा पूँजी की मात्रा से निर्धारित होती है। इसका

वास्तविक अर्थ यह है कि श्रमविभाजन के लिये बडे पैमाने पर उत्पादन करना आवश्यक है। परन्तु यह तभी सम्भव है जब अधिक पूँजी का विनियोग किया जावे। छोटे पैमाने की उत्पादन प्रणाली, जिस मे पूँजी की मात्रा कम होती है, के अन्तर्गत श्रमविभाजन अधिक अश तक सम्भव नही होता है।

(२) स्मिथ का सहजवाद (Naturalism) तथा आशावाद (Optimism)

एडम स्मिथ के विचारानुसार सभी आर्थिक सस्थाओ का आरम्भ किसी मानव योजना का परिणाम नही है, बल्कि इन संस्थाओ का आरम्भ प्राकृतिक अथवा स्वेच्छानुरूप (Spontaneous) हुआ है। स्वेच्छानुरूप आरम्भ होने के अतिरिक्त इन आर्थिक सस्थाओ की दूसरी विशेषता यह है कि ये सस्थाएँ लाभप्रद हैं। *स्मिथ की पुस्तक मे आर्थिक सस्थाओ की ये दोनो विशेषतायें लगभग समानरूप* है, क्योकि १८ वी शताब्दी मे 'प्राकृतिक' तथा 'उचित' व 'लाभप्रद' शब्द पर्यायवाची समझे जाते थे।

आर्थिक संस्थाओ की स्वेच्छानुरूपता को सिद्ध करने के लिये स्मिथ ने कई उदाहरण दिये हैं। इस सम्बन्ध स्मिथ के विचार प्रकृतिवादियो के विचारो के अनुरूप हैं। सर्वप्रथम श्रमविभाज, जिसके लाभो का वर्णन ऊपर किया जा चुका है, स्मिथ के विचारानुसार एक प्राकृतिक सस्था थी। इस सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त करते हुये स्मिथ ने लिखा है. "*यह श्रमविभाजन किसी मनुष्य की बुद्धि का* परिणाम नही है। यह मानव स्वभाव की विनिमय प्रवृत्ति का आवश्यक व क्रमिक परिणाम है।"[12] यह विनिमय प्रवृत्ति सभी मनुष्यो मे पाई जाती है तथा प्राकृतिक है। यह प्रवृत्ति निजी हित (personal interest जो स्वय सभी मनुष्यों मे उनकी जन्म तिथि से लेकर मृत्यु दिवस तक विद्यमान रहता है का स्वाभाविक परिणाम है।

श्रमविभाजन के पश्चात द्रव्य को ही लीजिये। श्रमविभाजन के समान ससार मे द्रव्य की आर्थिक सस्था का आरम्भ भी स्वेच्छानुरूप हुआ है। मुद्रा, जो *एक प्रकार से वर्तमान आर्थिक प्रगति की आधारशिला है, का आविष्कार प्राचीन* वस्तु विनिमय प्रणाली की कठिनाइयो से मुक्ति प्राप्त करने के प्रयत्नो की खोज करने के कारण हुआ। जैसे-जैसे सामाजिक सगठन जटिल होता गया, जैसे-जैसे श्रमविभाजन के लाभो को समझा जाने लगा तथा जैसे-जैसे मानव की आवश्यकताओ का विस्तार होता गया, वैसे-वैसे वस्तु विनिमय प्रणाली की कठिनाइयो का भी अधिकाधिक अनुभव किया जाने लगा। मनुष्य गम्भीरता से यह अनुभव करने लगा कि वस्तु

विनिमय द्वारा व्यापार करना गत-प्रयोग की बात हो गई है। समाज में यह भावना घर करने लगी कि वस्तु विनिमय की कष्टप्रद प्रथा का अन्त होना चाहिये क्योंकि यह प्रथा मनुष्य की आर्थिक व सामाजिक उन्नति में बाधक थी। फलस्वरूप मनुष्य वस्तु-विनिमय की कष्टप्रद अर्थव्यवस्था को किसी अन्य अधिक सुविधाजनक प्रणाली से समाप्त करने के लिये प्रयत्नशील हुआ। मनुष्य का मस्तिष्क किसी एक ऐसी प्रणाली की खोज मे लग गया जो वस्तु विनिमय की कठिनाइयों को समाप्त करके मनुष्य के आर्थिक व सामाजिक विकास को सम्भव बना सकती थी। इसी खोज के परिणामस्वरूप उसे मुद्रा का ज्ञान प्राप्त हुआ।

श्रमविभाजन तथा द्रव्य के अतिरिक्त तीसरी महान आर्थिक संस्था पूँजी, जिस का राष्ट्रीय आय की वृद्धि में विशेष रूप से महत्वपूर्ण स्थान है, का आरभ भी श्रमविभाजन व द्रव्य के समान स्वेच्छानुरूप हुआ है। पूँजी की मात्रा धन के सचय से निर्धारित होती है। परन्तु धन का सचय स्वय बचत की मात्रा पर निर्भर है जो स्वय मनुष्य की बचत करने की इच्छा पर निर्भर होती है। प्रत्येक सामान्य मनुष्य अपने निजी हित से प्रेरित होकर बचत करता है। इस प्रकार पूँजी स्वयं मनुष्य मे बचत करने की स्वाभिक भावना अथवा इच्छा का परिणाम है। पूँजी समाज में एक ही समय पर लाखों व्यक्तियो द्वारा निजी हित प्रेरित बचत करने की क्रिया का परिणाम है। प्रत्येक मनुष्य अपनी स्थिति को सुधारने का इच्छुक होता है तथा वह इसी उद्देश्य से बचाता है तथा अपनी बचत का उत्पादक कार्यो मे विनियोग करता है। इस सम्बन्ध मे स्मिथ ने लिखा है: "अपनी स्थिति मे सुधार करने की यह शान्त इच्छा जो मनुष्य को बचाने के लिये प्रेरित करती है, हमारे साथ गर्भ स्थान से ही आती है तथा कब्र मे जाने के समय तक हमारा कभी पीछा नही छोडती है।"[13]

पूँजी के अतिरिक्त माँग तथा पूर्ति के सिद्धान्त का आरम्भ भी स्वेच्छानुरूप हुआ है। माँग व पूर्ति मे सदा एक दूसरे के समान होने की प्राकृतिक प्रवृत्ति होती है। इस सम्बन्ध मे स्मिथ ने इस प्रकार लिखा है: "जब बाजार मे लाई हुई वस्तु की मात्रा माँग की अपेक्षा अधिक होती है तब यह सारी मात्रा उस मूल्य पर नही बिक सकती है जो लगान, वेतन तथा लाभ चुकाने के लिये काफी होता है। इस (पूर्ति) का कुछ भाग उचित से कम मूल्य पर बिकेगा जिस के कारण सारी मात्रा का मूल्य कम हो जायेगा। बाजार मूल्य सामान्य मूल्य से कम या अधिक उसी अनुपात मे होगा जिस अनुपात मे पूर्ति माँग की तुलना मे अधिक या कम होती है। प्रत्येक वस्तु की पूर्ति का कुछ समय पश्चात उस वस्तु की माँग से समायोजन हो जाता है।"[14]

जनसंख्या के सम्बन्ध मे भी यही नियम लागू होता है। समाज मे जनसंख्या की मात्रा भी वस्तुओ के समान, जनसंख्या की माँग द्वारा निर्धारित होती है। यदि किसी समय देश मे जनसंख्या समाज मे श्रमिको की माँग की अपेक्षा अधिक होती है तो वेतनों मे कमी हो जाती है, जिस के परिणामस्वरूप गरीबी तथा भुखमरी फैलने के कारण जनसंख्या कम होकर माँग के समान हो जावेगी। इस के विपरीत यदि देश की जनसख्या माँग की अपेक्षा कम होगी तो वेतनो मे वृद्धि होगी जिस के परिणामस्वरूप अधिक विवाह होगे तथा अधिक बच्चे उत्पन्न होगे। इस सब का परिणाम यह होगा कि कुछ समय पश्चात जनसख्या बढकर इस की माँग के समान हो जावेगी। यह सब मनुष्य के निजी स्वार्थ की भावना से सदा प्रेरित होने के फलस्वरूप होता है।

जनसख्या के समान द्रव्य की पूर्ति मे भी इस की माँग के समान होने की प्रवृति होती है। यदि किसी समय माँग की अपेक्षा द्रव्य की अधिक मात्रा चलन मे होती है तो लोग उस अधिक मात्रा द्वारा विदेशो से वस्तुओ का आयात करेगे तथा देश मे मूल्यो मे भी वृद्धि होगी। वस्तुओ के मूल्य अधिक हो जाने से द्रव्य की माँग भी अधिक होकर इस की कुल पूर्ति के समान हो जावेगी। यदि द्रव्य की पूर्ति इस की माँग की अपेक्षा कम है तो इस के विपरीत बाते होगी तथा एक बार फिर द्रव्य की माँग इस की पूर्ति के समान हो जावेगी।

मुद्रा के आरम्भ के समान पत्र-मुद्रा का जन्म भी स्वेच्छानुरूप हुआ है। धातु मुद्रा की असुविधाओ से मुक्ति पाने के हेतु ही वर्तमान युग की इस महान आर्थिक सस्था का श्रीगणेश हुआ है।

इस प्रकार उपरोक्त तथा अन्य सभी आर्थिक सस्थाओ का आरम्भ अपने-आप अथवा स्वेच्छानुरूप हुआ है। आर्थिक सस्थाओ का स्वेच्छानुरूप जन्म होने के अतिरिक्त दूसरी बात इन सस्थाओ के विषय मे ध्यान देने योग्य यह है कि ये सभी सस्थाएँ मनुष्य जाति के लिये अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुई हैं। यदि ये सस्थाये न हुई होती तो वर्तमान मनुष्य का आर्थिक व सामाजिक विकास कदापि सम्भव न हुआ होता। श्रमविभाजन के अनेक लाभो की ऊपर विवेचना की जा चुकी है। श्रम विभाजन के कारण ही श्रमिको की उत्पादकता मे वृद्धि सम्भव होती है, जिस के फलस्वरूप कुल उत्पादन तथा समाज कल्याण मे भी वृद्धि सम्भव हो पाती है।

परन्तु श्रमविभाजन स्वय वर्तमान बडे पैमाने की उत्पादन प्रणाली का परिणाम है जो स्वय मुद्रा व साख की सस्थाओ के आविष्कार के कारण सम्भव हो सकी है। वस्तु विनिमय प्रणाली मे बाजार सीमित होने के कारण उत्पादन थोडी मात्रा मे छोटे पैमाने पर ही सम्भव है। परन्तु इस प्रकार उत्पादन करने मे श्रमविभाजन सम्भव नही हो पाता है। वस्तु विनिमय की प्राचीन तथा कष्टप्रद प्रणाली के स्थान पर विनिमय प्रणाली को स्थापित करके बडे आकार के बाजारो

को स्थापित करके द्रव्य व साख की स्वेच्छानुरूप जन्म लेने वाली आर्थिक संस्थाओं ने श्रमविभाजन व बड़े पैमाने की उत्पादन प्रणाली के लाभों को मानव समाज को प्रदान करने मे विशेष योगदान दिया है ।

इतना ही नही, वस्तु विनिमय प्रणाली मे पूँजी का सचय सम्भव नही था । किसी राष्ट्र मे उद्योग का विकास पूँजी की मात्रा से निर्धारित होता है । आर्थिक विकास के लिये पूँजी का सचय होना आवश्यक है । यह सत्य है कि पूँजी का सचय बचत की मात्रा से निर्धारित होता है जो स्वयं लोगो की आय व उनके उपभोग के अनुपात से निर्धारित होती है । परन्तु बचत तभी हो सकती है जब धन का कोई ऐसा सुविधाजनक रूप हो, जिस मे बचत को रखा जा सकता है । मुद्रा समाज मे विनिमय माध्यम के कार्य के अतिरिक्त धन के सचय का कार्य भी सपन्न करती है । धन के संचय (Store of Value) का कार्य करके द्रव्य की सस्था ने पूँजी के सचय को सम्भव बनाकर राष्ट्र के आर्थिक विकास को सम्भव बनाया है ।

वास्तव मे वर्तमान समाज मे द्रव्य की प्राकृतिक सस्था इतने अधिक कार्य करती है कि उन सब की यहा विवेचना करना असम्भव है । इस के कार्यो पर पुस्तके लिखी जा सकती हैं और लिखी भी गई हैं, परन्तु फिर भी इस के कार्यो की विवेचना अधूरी ही है । समाज मे सभी आर्थिक क्रियाएँ मुद्रा की कीली पर आधारित है ।

पूँजी की उपयोगिता के सम्बन्ध मे भी आज किसी को सन्देह नही हो सकता है । वास्तव मे ससार के देशो का आर्थिक इतिहास इस सत्य का साक्षी है कि अधिक पूँजी तथा आर्थिक समृद्धि मे एक प्रत्यक्ष व सीधा सम्बन्ध है । उद्योग पूँजी से सीमित होता है (Industry is limited by Capital) । इस कथन की सत्यता के सम्बन्ध मे एडम स्मिथ के समय से अब तक किसी ने सन्देह प्रकट नही किया है । पूँजी के महत्व को स्पष्ट करते हुए स्मिथ ने लिखा है कि किसी भी समाज का धन उस समाज के उद्योग पर निर्भर होता है । "परन्तु समाज के उद्योग मे वृद्धि केवल उसी अनुपात मे सम्भव होती है जिस अनुपात मे इस की पूँजी मे वृद्धि होती है ।"[15] सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि पूँजी राष्ट्र के आर्थिक जीवन का सच्चा स्रोत है । पूँजी के बढ़ने से देश मे उद्योगो की उन्नति होती है जिस से देश का आर्थिक विकास व देशवासियों के जीवन स्तर मे वृद्धि होती है । पूँजी का अभाव होने से देश की औद्योगिक अवनति होती है तथा परिणामस्वरूप देश मे गरीबी व भुखमरी का राज्य होता है ।

उपरोक्त सभी आर्थिक संस्थाओं का जन्म, जो समाज के लिए अत्यधिक लाभप्रद हैं, निजी हित के द्वारा अपने आप हुआ है। ये संस्थाएँ किसी बाहरी सहायता, सरकारी प्रयास तथा बल-प्रयोग का परिणाम नहीं हैं। ये प्रत्येक मनुष्य के अन्दर निहित निजी हित (self-interest) की एक विशाल व महान भावना का स्वाभाविक परिणाम है। निजी हित राष्ट्र के आर्थिक शरीर को केवल स्वस्थ ही नही रखता है बल्कि राष्ट्रीय समृद्धि व धन की वृद्धि का भी प्रमुख कारण होता है। ये सभी आर्थिक सस्थाएँ जिन का जन्म मनुष्य मे निजी हित की भावना होने के कारण प्राकृतिक रूप से हुआ है जनकल्याण के साधन हैं।

परन्तु एडम स्मिथ का आशावाद केवल उत्पादन के क्षेत्र तक ही सीमित था। वितरण के सम्बन्ध मे वे इस सत्य को भली प्रकार समझते थे कि निजी हित के कारण ही श्रमिको का समाज मे शोषण होता है। पुस्तक मे किसी स्थान पर भी स्मिथ ने स्वतन्त्र वितरण प्रणाली की प्रशसा नही की है। इसके विपरीत स्मिथ ने यह स्पष्ट किया है कि भूस्वामी तथा पूँजीपति "बिना बोये काटना चाहते है"। लगान तथा लाभ श्रमिको के उत्पादन मे से समाज के दोषो के कारण एक प्रकार की अनुचित कटौती है तथा समाज के दो उच्च वर्ग—भूस्वामी तथा पूँजीपति—समाज के निम्न वर्ग—श्रमिक—का शोषण करते है। क्या समाजवादी स्मिथ से अधिक दृढ शब्द लिख सकते थे ?

(३) गुप्त शक्ति (Invisible Hand)

प्राकृतिक आर्थिक सस्थाएँ जिन का श्रीगणेश निजी हित के कारण होता है समाज कल्याण के लिए भी हितकारी होती हैं। स्मिथ का पूर्ण विश्वास था कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्रियाओं का सबसे अच्छा निर्णायक होता है। उनका यह भी अटल विश्वास था कि व्यक्तिगत व सामाजिक हितों मे समानता होती है। इस का अर्थ यह है कि जब कोई व्यक्ति अपने निजी हित से प्रेरित होकर कोई कार्य—किसी वस्तु का उत्पादन करता है—तो वह अपने निजी हित की पूर्ति करने के अतिरिक्त समाज के हितों की भी पूर्ति करता है। यद्यपि सामाजिक हितो की पूर्ति करने की उसकी स्वय कोई इच्छा नही होती है, परन्तु ऐसा होते हुये भी गुप्त शक्ति का हाथ मनुष्य से उस लक्ष्य की पूर्ति कराता है जिस को करने का उस का कोई विचार नही था। इस से यह निष्कर्ष स्पष्ट है कि मनुष्य के निजी हित द्वारा व्यक्तिगत क्रियाएँ सभी के लिए कल्याणकारी सिद्ध होती हैं तथा आर्थिक क्षेत्र मे सभी सरकारी नियमन तथा नियन्त्रण व्यर्थ है तथा राज्य को आर्थिक स्वतन्त्रता की नीति का पालन करना चाहिए। इस प्रकार स्मिथ ने वणिकवादी आर्थिक नीति को गलत सिद्ध करके आर्थिक स्वतन्त्रता का प्रचार किया। समाज म व्यापार, तथा उद्योगों का न्यूनतम नियमन होना चाहिए। आर्थिक स्वतन्त्रता प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। आर्थिक सस्थाओं की अच्छाई मे विश्वास रखने से ही एडम स्मिथ के प्रकृतिवाद

का तात्पर्य है। ये प्राकृतिक आर्थिक संस्थाएं लाभप्रद होने के अतिरिक्त परमेश्वर की इच्छा का भी प्रतीक है। मनुष्य अपने निजी हित की पूर्ति करने के साथ-साथ परमेश्वर की इच्छा की भी पूर्ति करता है। निजी हित व सार्वजनिक हितों में गुप्त शक्ति (परमेश्वर) के कार्य के कारण किस प्रकार समानता स्थापित होती है यह स्मिथ द्वारा लिखित निम्न वाक्य-खण्ड से स्पष्ट है।

"As every individual endeavours as much as he can both to employ his capital in the suport of domestic industry, and so to direct that industry that its produce may be of the greatest value; evry individual necessarily labours to render the annual revenue of the society as great as he can. He generally, indeed, neither intends to promote the public interest, nor knows how much he is promoting it. By prefering the support of domestic to that of foreign industry, he intends only his own gain, and he is in this, *as in many other cases, led by an invisible hand to promote an end* which was no part of his intention. Nor is it always the worse for the society that it was no part of it. By pouring his own interest he frequently promotes that of the society more effectually than when he really intends to promote it."[16]

स्मिथ के उपरोक्त विचार की, जिसके अनुसार व्यक्तिगत व सामाजिक हितों की एकता अथवा अनुरूपता स्पष्ट होती है, वर्तमान समय मे कटु आलोचना की गई है तथा इस आलोचना मे सत्य भी है। व्यक्तिगत व सामाजिक हित एक दूसरे के अनुरूपी नही है बल्कि ये बहुधा एक दूसरे के विपरीत होते है। इस सत्य को सिद्ध करने के लिये अधिक तर्क की आवश्यकता नही है कि जिस वस्तु का उत्पादन व्यक्ति अपने निजी हित – लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से – प्रेरित होकर करता है, उस वस्तु का उत्पादन सदा तथा आवश्यक रूप से मानव आर्थिक कल्याण के लिये भी हितकारी सिद्ध हो। उदाहरणार्थ मदिरा, तम्बाकू, अफीम इत्यादि नशीली वस्तुओं का उत्पादन व्यक्ति के लिये अत्यधिक लाभप्रद हो सकता है परन्तु इससे यह समझ लेना भारी भूल होगी कि ये वस्तुये समाज कल्याण मे वृद्धि करती हैं। समाज कल्याण मे वृद्धि होने के लिये उत्पादन मे वृद्धि होना आवश्यक तो है, परन्तु केवल अधिक उत्पादन के द्वारा कल्याण मे सदा वृद्धि नही होती है। अधिक उत्पादन के साथ ही साथ यह भी समान आवश्यक है कि हितकारी तथा अच्छी वस्तुओं का उत्पादन हो परन्तु यह आवश्यक नही है कि व्यक्ति के दृष्टिकोण से अत्यधिक लाभप्रद वस्तु समाज के दृष्टिकोण से कल्याणकारी भी हो। आज सभी इस सत्य से भली प्रकार परिचित है कि असीमित व्यक्तिगत आर्थिक स्वतन्त्रता समाज मे अनेक आर्थिक व

---

16. Ibid, p. 00.

सामाजिक विषमताओं को जन्म देती है। देश के दुर्लभ आर्थिक साधनों का शोषण होता है, बेकारी की भीषण समस्या उत्पन्न होती है तथा वर्ग संघर्ष उत्पन्न होता है। आज राज्य के लिये समाज में आर्थिक शान्ति को बनाये रखने तथा पूर्ण रोजगार की स्थिति को स्थापित करने के लिये आर्थिक क्षेत्र में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में हस्तक्षेप करना अनिवार्य है।

(४) आर्थिक स्वतन्त्रता व राज्य हस्तक्षेप

अपने प्रकृतिवादी पूर्वाधिकारियों के समान एडम स्मिथ भी व्यक्तिवादी थे। वे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के भारी समर्थक थे। वे मानव के व्यक्तित्व की अच्छाई तथा गुप्त शक्ति (invisible hand) की अच्छाई में दृढ़ विश्वास रखते थे। प्रकृतिवादी **Laissez faire laissez passer** विचार का उन्होंने सदा समर्थन किया। उनके विचारानुसार व्यापार तथा उद्योगों पर राज्य द्वारा लगाये गये सभी नियन्त्रण इनके विकास के लिये घातक होते हैं। इस कारण समाज में आर्थिक विकास को सम्भव बनाने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने का पूरा अधिकार प्राप्त होना चाहिये। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक मनुष्य जिस व्यापार व उद्योग को जिस स्थान पर तथा जिस प्रकार उसका मन चाहे स्थापित कर सकता है तथा राज्य को किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। राज्य को व्यक्ति की आर्थिक क्रियाओं से अपना हाथ यथासम्भव दूर रखना चाहिये। इतना ही नहीं कि राज्य को व्यक्ति की आर्थिक क्रियाओं को स्वतन्त्रता प्रदान करनी चाहिये बल्कि एडम स्मिथ इस सम्बन्ध में एक और पग आगे जाते हैं तथा राज्य से प्रत्यक्ष रूप से किसी प्रकार की व्यापारिक व औद्योगिक क्रियाएँ न करने का भारी अनुरोध करते हैं। परन्तु क्यों? इसके कई कारण हैं। प्रथम राजा उद्योग को यदि चलाये तो भी वह उसको कुशलता के साथ नहीं चला सकता, क्योंकि वह उद्योग का प्रबन्ध स्वयं न करके अपने शासकों द्वारा करता है, जिनका उद्योग को ठीक रूप से चलाने में कोई निजी हित नहीं होता है। राजा उद्योग विशेष से बहुत दूर महलों में रहता है जब कि उद्योगपति का ध्यान सदा अपने उद्योग की ओर रहता है। राजा को अनेकों काम करने होते हैं तथा वह उद्योग विशेष को सदा उतना समय तथा व्यक्तिगत ध्यान नहीं दे सकता जितना कि उद्योग को सफलतापूर्वक चलाने के लिये अत्यन्त आवश्यक होता है।[17] इसके अतिरिक्त व्यापार व उद्योग को ठीक प्रकार से चलाने तथा सफलता

---

17. "The attention of the sovereign can be at best but a very general and

प्राप्त करने के लिये व्यापारी व उद्योगपति को शीघ्र तथा बुद्धिमानी से निर्णय करना होता है। राजा जिसका व्यापार सम्बन्धी कभी कोई परिशिक्षण नहीं हुआ होता है इस प्रकार के शीघ्र निर्णय करने के अयोग्य होता है। राजा जिसका मुख्य कार्य राज्य करना तथा शासन को चलाना होता है तथा जिसका सारा जीवन इसी राज्य विद्या के सीखने तथा प्रयोग करने मे समाप्त होता है, कदापि एक सफल व्यापारी नही बन सकता क्योंकि दोनो प्रकार के कार्यो के लिये विपरीत स्वभावो की आवश्यकता होती है। इन सब बातो के अतिरिक्त राजा स्वभाव से खर्चीला होता है जबकि व्यापारी सदा अपने खर्च मे कमी करने के लिये प्रयत्नशील रहता है। संक्षेप मे राजा तथा व्यापारी से अधिक भिन्न कोई अन्य दो व्यक्ति नही हो सकते है।[18] इस प्रकार स्मिथ का यह स्पष्ट निष्कर्ष था कि राज्य को आर्थिक क्षेत्र से दूर रहना चाहिये तथा समाज के हितो मे यह उचित है कि यह (राज्य) व्यक्तिगत आर्थिक क्रियाओ मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करे।

परन्तु प्रश्न यह उठता है कि यदि राज्य को आर्थिक क्रियाएँ नहीं करनी चाहिये तो राज्य को क्या करना चाहिये, अथवा राज्य के क्या कर्तव्य है। स्मिथ के मतानुसार राज्य के समाज के प्रति निम्नलिखित तीन अनिवार्य कार्य अथवा कर्तव्य है।

(१) समाज मे एक अच्छे न्याय शासन की व्यवस्था करना।

(२) देश की प्रतिरक्षा करना।

(३) कुछ उन आवश्यक लोक कार्यो को सपन्न करना तथा उन लोक-संस्थाओ की स्थापना करना जिनको व्यक्ति कई कारणवश नही कर सकते है। उदाहरणार्थ यातायात की सुविधाओ हेतु देश मे सड़क बनवाना, कूँये बनवाकर पीने के पानी की उचित व्यवस्था करना, अस्पताल खोलना तथा नागरिको को शिक्षा प्रदान करने के हेतु स्कूल स्थापित करना इत्यादि।

परन्तु स्मिथ के लिये हस्तक्षेप न करने का विचार केवल एक सामान्य सिद्धान्त था। स्मिथ के लिये यह कोई अन्धविश्वास अथवा निरपेक्ष नियम (absolute rule) नही था। कुछ बातो मे राज्य-हस्तक्षेप की यथार्थता की बाबत स्मिथ को किसी प्रकार का कोई सन्देह नही था। उदाहरणार्थ, ब्याज की दर पर वैधानिक रोक लगाना, डाक का प्रबन्ध व शासन करना, अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा, बैक नोटों के निर्गम पर नियन्त्रण रखना, उचित पदो पर नियुक्ति करने के लिये परीक्षा करने इत्यादि के सम्बन्ध मे राज्य-हस्तक्षेप उचित ही नहीं, बल्कि समाज के हितो मे

आवश्यक भी था। स्मिथ उन राज्य विनियमों के पक्ष में थे जो नागरिकों के भौतिक हितों की सुरक्षा के लिये आवश्यक है। उदाहरणार्थ समाज में बीमारी व रोगों की रोकथाम करने के लिये वे इस बात को आवश्यक समझते थे कि राज्य को सफाई व स्वास्थ्य सम्बन्धी विनियम बनाने चाहिये जिनका पालन करना प्रत्येक नागरिक के लिये अनिवार्य होना चाहिये। इसी प्रकार बैंकों की स्वतन्त्रता पर भी रोक लगाना सामाजिक हितों को सुरक्षित रखने के लिये आवश्यक है, क्योंकि स्वतन्त्रता पर रोक न लगाने का परिणाम, अत्यधिक नोट निकासी का रूप धारण करके, समाज के हितों के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। बैंकों की स्वतन्त्रता पर रोक लगाने को उचित घोषित करते हुए स्मिथ ने निम्न प्रकार लिखा है।

"Such regulations, no doubt, be considered as in some respects a violation of natural liberty. But these exertions of the natural liberty of a few individuals, which might endanger the security of the whole society, are and ought to be, restrained by the laws of all governments, of the free, as well of the most despotical."[19]

परन्तु उपरोक्त अपवादों के होते हुये भी सामान्यतः स्मिथ के आर्थिक विचार व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की स्थाई आधारशिला पर आधारित थे तथा सामान्यतः स्मिथ प्रतिबन्धों व नियन्त्रणों के विरोध में थे। स्मिथ के विचार वणिकवादी लेखकों के विचारों के बिल्कुल विपरीत थे।

(५) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व संरक्षण

स्मिथ का आर्थिक स्वतन्त्रता का विचार तथा उन की अबन्ध नीति (laissez faire policy) केवल राष्ट्रीय व्यापार तक ही सीमित नहीं थी। स्मिथ की विचारधारा विश्ववर्गीय थी तथा स्मिथ स्वयं भी एक अन्तर्राष्ट्रवादी थे। वे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के भारी समर्थक थे। संरक्षण की आलोचना करते हुए स्मिथ ने लिखा है कि संरक्षण पूँजी के विनियोग को अधिक उत्पादक उद्योगों से हटा कर कम उत्पादक उद्योगों की ओर कर देता है। फलस्वरूप राष्ट्र की उत्पादन शक्ति व कुल उत्पादन में कमी हो जाती है, जिस से समाज के आर्थिक कल्याण में कमी हो जाती है। केवल प्रतिरक्षा के उद्देश्य के दृष्टिकोण से ही स्मिथ ने विशेषरूप से संरक्षण का समर्थन किया है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों का वर्णन करते हुए स्मिथ ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि जो वस्तु विदेश से सस्ते मूल्य पर प्राप्त हो सकती है उस का देश में उत्पादन करना मूर्खता होगी। इस के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बाजार के आकार को विश्वव्यापी बना कर भौगोलिक श्रम-विभाजन को सम्भव बनाता है

19 Ibid. Book II, chapter ii, Vol. I, p. 307

जिस के कारण वस्तु को उत्पादन करने का प्रति इकाई व्यय कम होता है तथा वस्तु का अधिक उपभोग करना सम्भव हो जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों की व्याख्या करते हुये स्मिथ ने इस प्रकार लिखा है "परिवार के प्रत्येक बुद्धिमान स्वामी का यह सिद्धान्त होता है कि वह कभी भी उस वस्तु को घर पर बनाने का प्रयास नहीं करता है, जिस को बनाने मे खरीदने की अपेक्षा अधिक व्यय होता है। दरजी कभी अपने जूते बनाने का प्रयत्न नही करता है बल्कि उन को सदैव मोची से खरीदता है। इसी प्रकार मोची भी कभी भी अपने कपडे स्वयं सीने का प्रयास नहीं करता है; वह सदा दरजी से कपडे सिलाता है। किसान न तो जूते तथा न ही कपडे स्वयं बनाता है, बल्कि दोनों को शिल्पकारों (मोची व दरजी) से बनवाता है। ये सभी व्यक्ति अनुभव से इस सत्य को जानते है कि स्वय उन को उस वस्तु को बनाना अथवा उत्पन्न करना चाहिये जिस को बनाने अथवा उत्पन्न करने मे उसकी निपुणता अपने पड़ोसी की अपेक्षा अधिक है तथा बनाई हुई वस्तुओ के कुछ भाग से अन्य वस्तुओं को खरीद कर प्राप्त करना चाहिये। यह सिद्धान्त जिस को प्रत्येक परिवार के लिये बुद्धिमानी विचारा जाता है विशाल राज्यो के लिये कदापि मूर्खता नही कहा जा सकता है। यदि कोई विदेशी देश हम को कोई वस्तु, हमारे उस वस्तु को बनाने के व्यय की अपेक्षा, सस्ते मूल्य पर दे सकता है तो उस वस्तु को बाहर के देश से अन्य उस वस्तु के द्वारा जिस का उत्पादन करने मे हमारी कार्य क्षमता अधिक है, खरीदना हमारे हित मे होगा।

कभी कभी तो वे प्राकृतिक लाभ जो किसी एक देश को दूसरे देश की अपेक्षा, कुछ विशेष वस्तुओ के उत्पादन करने में प्राप्त होते है, इतने अधिक होते है कि समस्त ससार इस सत्य को स्वीकार करके उस देश से उन वस्तुओ के उत्पादन मे प्रतियोगिता करना व्यर्थ समझता है। उदाहरणार्थ शीशो मे, तथा गरम दीवारें व मकान बनाकर स्काटलैंड मे भी अच्छे प्रकार के अगूर उगाये जा सकते हैं तथा विदेशो में प्राप्त करने के मूल्य की तुलना मे लगभग ३० गुना अधिक व्यय करके इन अगूरों से अच्छे प्रकार की मदिरा बनाई जा सकती है। ऐसी स्थिति मे क्या स्काटलैंड मे केवल Claret (एक प्रकार की फ्रान्स देश मे बनी लाल मदिरा) तथा Burgundy (फ्रान्स की मदिरा जो साधारणतया लाल रग की होती है) बनाने के उद्देश्य से विदेशी मदिरा के आयात पर रोक लगाना उचित होगा?......जब तक किसी एक देश को किसी वस्तु विशेष के उत्पादन करने मे विशेष लाभ प्राप्त है तथा दूसरे देश को इन लाभों के अन्तर्गत उत्पादन की गई वस्तु की आवश्यकता है उस समय तक देश मे उत्पादन करने की अपेक्षा वस्तु को विदेश से आयात करना अधिक अच्छा होगा।"[20]

(६) मुद्रा

मुद्रा, जो एक आर्थिक संस्था है, के स्वच्छानुरूप आरम्भ का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। स्मिथ ने मुद्रा के महत्व तथा वास्तविक अस्तित्व सम्बन्धी प्राचीन वणिकवादी विचारधारा की कडी आलोचना की है। यद्यपि स्मिथ समाज मे मुद्रा के महत्व को भली प्रकार समझते थे—वे जानते थे कि मुद्रा के आविष्कार ने प्राचीन वस्तु विनिमय प्रणाली की असुविधाओं को समाप्त करके समाज को विनिमय से प्राप्त होने वाले अनेक लाभ प्रदान किये है, इसने धन के सचय को सम्भव बनाया है, श्रम-विभाजन के क्षेत्र को व्यापक बनाया है, बैंकों को जन्म दिया है इत्यादि—परन्तु वे वणिकवादी इस गलत विचार से बिल्कुल सहमत नही थे कि द्रव्य ही देश की वास्तविक सम्पत्ति है। स्मिथ ने इस विचार की आलोचना की तथा यह स्पष्ट किया कि देश की वास्तविक सम्पत्ति उस देश का श्रम, भूमि, भवन इत्यादि होते हैं। किसी देश की सच्ची राष्ट्रीय आय श्रम व भूमि द्वारा उत्पादित भिन्न वस्तुओं की वार्षिक उत्पत्ति होती है। मुद्रा की अपेक्षा समाज मे अन्य अधिक व्यर्थ वस्तु नही हो सकती है। मुद्रा विनिमय माध्यम का कार्य तो अवश्य करती है परन्तु यह स्वयं बिल्कुल अनुत्पादक है। स्मिथ ने स्वर्ण तथा रजत मुद्रा की तुलना उस सडक से की है जिस पर होकर देश की सारी घास व खाद्य सामग्री बाजार मे आती है तथा देश के भिन्न भागों मे परिभ्रमण करती है, परन्तु जिस पर स्वय खाद्य तथा घास का एक तिनका भी नही उगता है।[21] इस प्रकार द्रव्य को अनुत्पादक घोषित करके स्मिथ ने यह सिद्ध किया है कि प्रत्येक वह आर्थिक नीति जिसका उद्देश्य प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रीतियों द्वारा देश मे मुद्रा की मात्रा मे वृद्धि करना है, गलत है क्योंकि अधिक मुद्रा प्राप्त होने से देश अधिक धनी नही बन जाता है।

(७) मूल्य का सिद्धान्त

स्मिथ का मूल्य का सिद्धान्त त्रुटिपूर्ण है। आरम्भ मे स्मिथ ने यह स्पष्ट किया है कि किसी वस्तु को मूल्य प्राप्त होने के पूर्व उसमे दो विशेषतायें होनी आवश्यक है। प्रथम, वस्तु मे उपयोगिता की विशेषता होनी चाहिये। इसमे वस्तु का उपयोग-मूल्य (Value in use) निश्चित होता है। किसी भी व्यर्थ वस्तु का कोई मूल्य नही हो सकता है। परन्तु साथ ही यह भी सम्भव है कि वस्तु के अत्यधिक उपयोगी होते हुये भी इसका कोई मूल्य न हो। उदाहरणार्थ वायु तथा जल की उपयोगिता से क्या किसी को कोई इनकार हो सकता है? परन्तु वायु तथा नदी के तट पर पानी का कभी कोई मूल्य नही देना पडता है। इससे यह स्पष्ट है कि मूल्यवान होने के लिये वस्तु मे उपयोगिता के गुण के अतिरिक्त दुर्लभता की विशे-

---

21. "The gold and silver money which circulates in any country may very properly be compared to a highway, which while it circulates and carriesto market all the grass and corn of the country, produces itself not a single pile of either." (Ibid : *Book II, chapter, ii, Vol. I, p* 304)

पता भी होनी चाहिये। यह दुर्लभता वस्तु के विनिमय मूल्य (Value in exchange) का कारण होती है। स्मिथ ने वस्तु के बाजार मूल्य तथा सामान्य मूल्य के अर्थ तथा इन दोनो के अन्तर को भी समझाया है। किसी वस्तु का बाजार मूल्य वह वास्तविक मूल्य होता है जिस पर वस्तु बाजार मे बेची जाती है, परन्तु जिस मूल्य के समीप वस्तु का बाजार मूल्य पहुँचने का प्रयत्न करता है वह उस वस्तु का सामान्य अथवा प्राकृतिक मूल्य (Natural Price) होता है। वस्तु का बाजार मूल्य इसके प्राकृतिक मूल्य से, बाजार मे वस्तु की पूर्ति इसकी माँग की अपेक्षा अधिक व कम होने के *मतानुसार, कम व अधिक होता रहता है। स्मिथ ने वस्तु के प्राकृतिक* अथवा सामान्य मूल्य व बाजार मूल्य के पारस्परिक सम्बन्ध को निम्नलिखित शब्दो मे समझाया है।

When "the quantity of any commodity which is brought to market falls short of the effectual demand, all those who are willing *to pay the whole value of the rent, wages, and profit which must* be paid in order to bring it thither, cannot be supplied with the quantity which they want Rather than want it altogether, some of them will be willing to give more. A *competition will immediately* begin among them, and the market price will rise more or less about the natural price, according as either the greatness of the deficiency, or the wealth and wanton luxury of the competitors, happen to animate more or less the eagerness of the competition "[22]

स्मिथ का मूल्य का सिद्धान्त द्विरूपी है। आरम्भ मे स्मिथ के विचारानुसार वस्तु का मूल्य उस वस्तु को बनाने मे व्यय हुए श्रम के मूल्य से निर्धारित होता है। "श्रम सभी वस्तुओं के विनिमय मूल्यों का सच्चा माप है। प्रत्येक वस्तु का वास्तविक मूल्य उस वस्तु को बनाने मे हुए कष्ट तथा परिश्रम की मात्रा होती हैं।[23] संक्षेप मे *श्रम ही वस्तु के विनिमय मूल्य का स्रोत तथा एकमात्र माप है। यह कहना गलत* न होगा कि अर्थशास्त्र के जनक एडम स्मिथ ने ही सर्वप्रथम मूल्य के श्रम-सिद्धान्त (Labour Theory of Value) को स्पष्ट रूप से विदित किया था तथा कार्ल मार्क्स ने इसी सिद्धान्त का सहारा लेकर पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे श्रमिकों के शोषण की घटना को सिद्ध किया था।

परन्तु एक बार मूल्य के श्रम सिद्धान्त का निर्माण करने के पश्चात स्मिथ को अपनी भूल का ज्ञान हुआ। सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के पश्चात

उन्होंने इस सत्य को समझा कि यह सिद्धान्त, जिसके अनुसार केवल श्रम ही वस्तु के मूल्य का सच्चा मापदण्ड था, केवल उस प्राचीन असभ्य अर्थव्यवस्था मे ही लागू हो सकता है जहाँ श्रमिक अपने हाथ से बनाए सरल छोटे-मोटे यन्त्रो द्वारा वस्तुओं का उत्पादन करते है तथा उन को आपस मे वस्तु-विनिमय द्वारा प्राप्त करते है तथा जहाँ भूमि प्रकृति का मुफ्त उपहार होती है, अर्थात् जहाँ भूस्वामी व पूंजीपति की कोई समस्या नहीं होती है।

अपने मूल्य के श्रम-सिद्धान्त की इस त्रुटि से भयभीत होकर स्मिथ ने इस मे परिवर्तन करके इस को मूल्य के उत्पादन-व्यय सिद्धान्त (cost of production theory of value) का रूप दिया। एक जटिल अर्थव्यवस्था मे, जहाँ पर श्रम के अतिरिक्त पूँजी व भूमि भी उत्पादन के साधन होते है, केवल श्रम ही वस्तु के मूल्य का निर्धारक नहीं हो सकता है। श्रम के अतिरिक्त ब्याज व लगान भी उत्पत्ति के दो अन्य साधनों—पूँजी तथा भूमि—के पारितोषिक के रूप मे वस्तु के उत्पादन व्यय का आवश्यक अंग होते हैं। इस कारण वस्तु का प्राकृतिक मूल्य इतना होना चाहिए कि उस से वेतन के अतिरिक्त ब्याज तथा लगान का भी भुगतान किया जा सके। स्मिथ का मूल्य सिद्धान्त अधूरा है, क्योंकि इस मे मूल्य पर माग के प्रभाव का कोई महत्व नहीं है।

(८) वितरण का सिद्धान्त

मूल्य के सिद्धान्त के समान वितरण की समस्या के क्षेत्र मे भी स्मिथ का योगदान उत्पादन की अपेक्षा अवर है। वितरण की समस्या सम्बन्धी विचार की कल्पना आरम्भ मे नहीं की गई थी। यह बात **Wealth of Nations** की तुलना स्मिथ के १७६३ ई० में ग्लासगो मे दिए गए व्याख्यानो से करने से भली प्रकार स्पष्ट हो जाती है। पुस्तक मे वितरण के सिद्धान्त का वर्णन प्रकृतिवादियो के प्रभाव का परिणाम प्रतीत होता है। स्मिथ का लगान का सिद्धान्त बहुत असन्तोषजनक है। लगान के समान स्मिथ का लाभ का सिद्धान्त भी व्यर्थ है तथा उस का वेतन का सिद्धान्त असंगत विचारो का एक बेजोड समूह है।

लगान का वर्णन करते हुए पुस्तक के छठे अध्याय में स्मिथ ने लिखा है कि 'श्रमिक को अपने श्रम के उत्पादन का जो भाग भूस्वामी को देना पडता है वह लगान कहलाता है तथा वस्तु के मूल्य के तीन अंगो मे से एक है'। इस का अर्थ यह है कि लगान वस्तु के उत्पादन व्यय का वेतन तथा लाभ के साथ एक भाग है। इस प्रकार लगान मूल्य का कारण है, परिणाम नहीं। परन्तु आगे चलकर ११ वे अध्याय मे लगान के सम्बन्ध मे स्मिथ ने इन विचारों के विपरीत विचार व्यक्त किए है। यहां पर लगान को मूल्य का कारण नहीं बल्कि परिणाम घोषित किया गया है। अधिक अथवा कम वेतन व लाभ अधिक अथवा कम कीमत का कारण होते है, परन्तु अधिक

अथवा कम लगान इस (कीमत) का परिणाम है।[24] दूसरे शब्दों में स्मिथ के अनुसार लगान अन्तरीय अधिशेष (differential surplus) है तथा भूमि की उर्वरता तथा स्थिति का लगान पर प्रभाव पडता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्मिथ का लगान-सिद्धान्त बहुत त्रुटिपूर्ण तथा असन्तोषजनक है क्योंकि यह दो विपरीत विचारों पर आधारित है।

स्मिथ का लाभ-सिद्धान्त भी उन के लगान-सिद्धान्त के समान त्रुटिपूर्ण है। स्मिथ के लाभ के सिद्धान्त का सब से बडा दोष यह है कि लाभ तथा ब्याज मे कोई भेद नही किया गया है। स्मिथ लाभ को पूँजी की आय विचारते है जब कि वास्तविकता यह है कि लाभ साहसी के साहस का प्रतिफल है। स्मिथ के सिद्धान्त के अनुसार ब्याज लाभ का ही भाग है, परन्तु यह विचारना गलत है।

स्मिथ का वेतन का सिद्धान्त भी आलोचना रहित नही है। लगान के सिद्धान्त के समान यह सिद्धान्त भी असगत विचारो पर आधारित है। एक तरफ तो स्मिथ ने यह कहा है कि वेतन मालिको तथा श्रमिको के मध्य प्रतियोगिता द्वारा निर्धारित होते है। एक ओर तो श्रमिक अधिकतम वेतन प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं तथा दूसरी ओर मालिक श्रमिको को न्यूनतम वेतन देने का प्रयास करते है। इस प्रकार वास्तविक वेतन दर दोनो पक्षो के सौदा करने की शक्ति के द्वारा निर्धारित होती है। वास्तविक ससार मे मालिको की सौदा करने की शक्ति श्रमिको की सौदा करने की शक्ति की अपेक्षा अधिक होती है। यद्यपि श्रमिकों की सौदा करने की शक्ति कमजोर होती है परन्तु वेतन एक निश्चित दर से कभी कम नहीं हो सकता है। यह न्यूनतम वेतन दर श्रमिको के जीवन निर्वाह स्तर (subsistence level) से निर्धारित होती है। एक दूसरे स्थान पर स्मिथ मजदूरी के मजदूरी कोष (Wages fund) सिद्धान्त की चर्चा करते हैं जैसा कि इस वाक्य से स्पष्ट है "The demand for those who live by wages, it is evident, cannot increase but in proportion to the increase of the funds which are destined for the payment of wages."[25] संक्षेप मे यह कहना उचित है कि स्मिथ का वितरण का सारा सिद्धान्त त्रुटिपूर्ण है।

(६) करारोपण

करारोपण के विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुये स्मिथ ने *करारोपण के चार प्रसिद्ध सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया है।* ये चार प्रसिद्ध सिद्धान्त निम्नलिखित हैं।

(१) **समानता का सिद्धान्त**—इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक राज्य के

---

24. "High or low wages and profit are the causes of high or low price, high or low rent is the effect of it." (Ibid, *Vol I, p.* 147)

25. Ibid : Vol, 1, *pp.* 70-71.

नागरिक को चाहिये कि वह यथासम्भव अपनी योग्यता के अनुपात में सरकार की सहायता के लिये धन दे।

(२) निश्चितता का सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को जो कर देना है उस की मात्रा निश्चित होनी चाहिये।

(३) सुविधा का सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के अनुसार करदाताओ पर इस प्रकार से कर लगाया जाना चाहिये तथा इस को इस प्रकार तथा ऐसे समय पर वसूल किया जाना चाहिये कि उनको कर का भुगतान करने मे न्यूनतम कष्ट का अनुभव हो।

(४) मितव्ययिता का सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के अनुसार कर वसूल करने का तरीका ऐसा होना चाहिये कि राजकोष मे प्राप्त कर-आगम तथा करदाताओ द्वारा दिये गये करो के बीच न्यूनतम अन्तर हो।

एडम स्मिथ के विचारों का प्रभाव

स्मिथ के आर्थिक विचारो का महान प्रभाव सैद्धान्तिक आर्थिक क्षेत्र तथा व्यावहारिक क्षेत्रो मे काफी फैला। इस सत्य के अतिरिक्त कि स्मिथ अर्थशास्त्रियो के प्रथम सम्प्रदाय के संस्थापक थे तथा अर्थशास्त्र के जनक थे, अर्थशास्त्रियो के अन्य सम्प्रदाय भी स्मिथ के ऋणी है। स्मिथ अर्थशास्त्रियों के संस्थापक सम्प्रदाय के नेता तो थे ही, परन्तु इसके अतिरिक्त उनको समाजवाद का भी एक प्रकार से संस्थापक कहा जाये तो गलत न होगा। मार्क्स द्वारा प्रतिपादित मूल्य के श्रम सिद्धान्त का स्रोत एक प्रकार से एडम स्मिथ के मूल्य का श्रम सिद्धान्त ही था तथा समाजवादियों के समान स्मिथ ने भी श्रमिकों के शोषण की चर्चा की थी।

स्मिथ के विचारो के प्रभाव के सम्बन्ध मे विशेष महत्व की बात यह है कि उन्होने अर्थशास्त्रिय विचारधारा के क्षेत्र मे एक ऐसे सम्प्रदाय की संस्थापना की, जिसको स्मिथ के पश्चात लगभग एक शताब्दी तक उनके अनेक अनुयायियो ने अपने विचारो की मजबूत ईटो के द्वारा पूरा करके शक्तिशाली बनाया। यद्यपि स्मिथ के अनुयायियो की सूची बहुत विस्तृत है, परन्तु इसमे रिकार्डो, माल्थस, जे० एस० मिल, नासो सीनियर, जरेमी बेन्थम आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त स्मिथ के विचारो का प्रभाव केवल इंगलैंड तक ही सीमित नही था बल्कि फ्रान्स तथा यूरोप के अन्य देशो मे भी इस प्रभाव के चिन्ह भली प्रकार विद्यमान थे। यूरोप मे फ्रान्सीसी अर्थशास्त्री जे० बी० से (J B. Say) ने स्मिथ के विचारो का भारी प्रचार किया। Wealth of Nations को पढने के पश्चात् से ने कहा था कि स्मिथ की पुस्तक को पढने के पश्चात् यह भली प्रकार विदित हो जाता है कि स्मिथ के पूर्व राजनीतिक अर्थशास्त्र (Political Economy) था ही नही। लार्ड माहोन (Lord Mahon) ने भी पुस्तक की प्रशंसा करते हुये लिखा है कि Wealth of Nations ने अर्थशास्त्र की संस्थापना ही नही की थी बल्कि इसको

पूरा भी किया था। पुस्तक के प्रकाशित होते ही डेविड ह्यूम (David Hume) तथा प्रसिद्ध इतिहासकार एडवर्ड गिबन (Edward Gibbon) ने भी स्मिथ के मित्रो से पुस्तक की प्रशंसा की थी।

परन्तु सैद्धान्तिक आर्थिक जगत के अतिरिक्त स्मिथ के विचारो का प्रभाव व्यावहारिक जगत मे भी फैला था। रिचार्ड कावडन (Richard Cobden) तथा जॉन ब्राइट (John Bright) के नेतृत्व मे स्थापित मेन्चेस्टर सम्प्रदाय (Manchester School) तथा Anti-Corn Law League ने स्मिथ के विचारो को सफलतापूर्वक व्यावहारिक रूप देने का भरसक प्रयास किया। इंगलैंड में Anti-Corn Law League स्थापित करने का एक मात्र मुख्य उद्देश्य खाद्य के आयातों को आयात कर से मुक्त कराके स्वतन्त्र व्यापार की नीति को लागू करना था। स्मिथ का स्वप्न १८४६ ई० उस समय पूरा हुआ जब इंगलैंड में Corn Laws की समाप्ति की गई थी। सन् १७७७ ई० मे प्रधान मन्त्री लार्ड नार्थ (Lord North) ने स्मिथ की पुस्तक मे दिये गये विचारो के आधार पर दो नये कर लगाये थे। परन्तु स्मिथ के आर्थिक विचारो का व्यावहारिक नीति के क्षेत्र मे सबसे अधिक प्रयोग उस समय हुआ जब विलियम पिट (William Pitt) के इगलैंड का प्रधान मन्त्री हो जाने पर उसने स्मिथ के स्वतन्त्र व्यापार सम्बन्धी विचारो को फ्रान्स के साथ पहली बार स्वतन्त्र-व्यापार सम्बन्धी सधि की जो इगलैंड के आर्थिक इतिहास मे १७८६ ई० की ईडन-सधि (Treaty of Eden) के नाम से प्रसिद्ध है। विलियम पिट ने अपने विद्यार्थी जीवन मे स्मिथ की पुस्तक को पढा था तथा लेखक के विचारो से वह अत्यधिक प्रभावित हुआ था। प्रधानमन्त्री बन जाने के पश्चात् भी पिट (Pitt) स्मिथ से जटिल वैत्तिक व आर्थिक समस्याओ पर परामर्श लेता था।

निष्कर्ष

एडम स्मिथ के भिन्न आर्थिक विचारों के उपरोक्त सक्षिप्त विवेचन से यह भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि वे एक महान अर्थशास्त्री तथा प्रथम श्रेणी के विचारक थे। उन्होने अपने पूर्वाधिकारियो के अनेक बिखरे तथा त्रुटिपूर्ण विचारो को एक साथ एकत्र करके उनको अपने पाठको के समक्ष नये रूप मे रखा। उनकी शैली प्रभावशाली थी तथा उनके विचारो मे नवीनता का अश था। अर्थशास्त्रियों के सस्थापक सम्प्रदाय की स्थापना करके स्मिथ ने आर्थिक विचारो के क्षेत्र मे उस अनुकूलन वातावरण को उत्पन्न किया जिसकी छत्रछाया मे सस्थापक सम्प्रदाय के अन्य के अतिरिक्त विशेषरूप से दो अर्थशास्त्रियो—रिकार्डो तथा जॉन स्टवार्ट मिल—ने प्रसिद्धि प्राप्त की तथा स्मिथ के सम्प्रदाय को यश प्रदान किया। आर्थिक विचारो के इतिहास मे एडम स्मिथ का नाम सदा अमर ही नही रहेगा बल्कि उनको सदा प्रथम स्थान भी प्राप्त रहेगा।

विशेष अध्ययन सूची

1. John Rae : The Life of Adam Smith (1895)
2. F. W. Hirst : Adam Smith.
3. Adam Smith : The Wealth of Nations, (ed. cannan), Vol. I & II.
4. Adam Smith : The Theory of Moral Sentiments.
5. Robert Lekachman: A History of Economic Ideas, Chapter 4.
6. J. M. Ferguson : Landmarks of Economic Thought, Chapter, V.
7. Gide & Rist : A History of Economic Doctrines, Chapter, II.
8. O. H. Taylor : A History of Economic Thought, Chapters, 3 & 4
9. L. H. Haney : History of Economic Thought, Chapter, X
10. J. F. Bell : A History of Economic Thought, Chapter, 10.
11. Leo Rogin : The Meaning and Validity of Economic Theory, Chapter, 3.
12. Eric Roll : A History of Economic Thought, Chapter, IV.
13. P. C. Gewman : The Development of Economic Thought, Chapter, V.

प्रश्न

1. 'In addition to the conception of the economic world as a great natural community created by the division of labour we can distinguish in Smith's work two other fundamental ideas, around which his more characteristic theories group themselves. First, is the idea of the spontaneous origin of economic institutions, and secondly, their beneficial character' (*Gide and Rist*) Discuss fully the above statement.

   (आगरा, १९४८, १९५२; राजस्थान, १९४८)

2. 'Notwithstanding the originality and vigour displayed by the Physiocrats, they can only be regarded as the heralds of the new science Adam Smith, it is now unanimously agreed, is its true founder.' (*Gide and Rist*) Discuss fully the above statement.

   (आगरा, १९४६; १९५०, १९५४; राजस्थान, १९६०)

3. 'Smith thought of economic order as an organism, the

creation of a thousand human wills unconscious of the end whither they are tending, but all of them obedient to the impulse of one instinctive, powerful force'. Elucidate.

(आगरा, १९४७)

4. Discuss briefly the ideas embodied in Adam Smith's 'Naturalism' and 'Optimism'.

(आगरा,, १९५६; १९६०; राजस्थान, १९५८)

5. Discuss the contribution of Adam Smith under the following heads :—

(आगरा, १९५७; १९६२)

(a) Political philosophy.
(b) Tneory of value.
(c) Theory of capital and distribution.

6. Adam Smith considered 'spontaneous order' as the most beneficial. Explain fully the above statement.

(आगरा १९५८)

7. Discuss the claim of Adam Smith to be regarded as the father of Political Economy and analyse the main features of his economic thought.

(राजस्थान, १९५०)

8. Elucidate the statement that much of the *Wealth of Nations*, being relevant to conditions that have passed away, is now only of historical interest.

(राजस्थान, १९५२)

9. In the *Wealth of Nations* Adam Smith lays emphasis on division of labour and accumulation of capital as the two main factors governing economic prosperity of a nation. Discuss.

(बनारस, १९५६)

10. Scrutinize carefully Smith's analysis of capital formation *or* Smith's theory of wages

(बनारस, १९५८)

11. Explain why Adam Smith is regarded as the father of Economic Sciences.

(कर्नाटक. १९५६)

12. To what extent is it true to say that the natural harmony of interests is the fundamental thesis of Smith's doctrines?

(कर्नाटक, १९५८)

13. "*The Wealth of Nations* is a strange mixture of a book economics, philosophy, history, political theory, practical programme". Dioeuss.

(कर्नाटक, १९५७)

14. Evaluate Adam Smith's contribution to economic thought.

(कर्नाटक, १९५७)

थामस राबर्ट माल्थस

(Thomas Robert Malthus)

ससार मे कभी कभी कुछ ऐसे महापुरुष भी जन्म लेते हैं जो बिना इस बात की चिन्ता किये कि भविष्य-पीढी (future generation) उन के सम्बन्ध मे क्या सोचेगी तथा उन के विचारो को इतिहास मे क्या स्थान प्राप्त होगा, अपना कार्य करते है। ऐसे ही महापुरुषो मे थामस राबर्ट माल्थस[1] की गणना की जा सकती है। आर्थिक विचारों के इतिहास मे शायद ही किसी अन्य अर्थशास्त्री का नाम इतना विवादास्पद है जितना कि माल्थस का।

---

1. थामस राबर्ट माल्थस (१७६६ ई०--१८३४ ई०) का जन्म इगलैंड मे राकरी नामक स्थान मे सन् १७६६ ई० में एक कुशल परिवार मे हुआ था। उन के पिता, जिन का नाम डेन्यल माल्थस (Daniel Malthus) था, स्वयं वकील थे तथा David Hume व Rousseau के मित्र थे। १७८४ ई० मे माल्थस ने उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये Jesus College कैम्ब्रिज मे प्रवेश किया जहाँ से उन्होने १७८८ ई० मे बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। यहाँ पर माल्थस ने Greek तथा Latin भाषाओ व गणितशास्त्र मे पुरस्कार प्राप्त किये। १७९१ ई० मे उन्होंने एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात उन्होने अपने जन्म स्थान पर गिरजा मे काम करना आरम्भ कर दिया तथा ३१ वर्ष की आयु मे चर्च-प्रदेश (parish) के कार्याधिकृत बन गये थे। १७९६ ई० मे सर्वप्रथम माल्थस ने विलियम पिट के शासन की आलोचना करते हुये एक पुस्तिका लिखी थी जिस का शीर्षक **"The Crisis, a View of the Recent Interesting State of Great Britain by a Friend to the Constitution"** था। परन्तु यह प्रकाशित न हो सकी। १७९८ ई० मे माल्थस की प्रसिद्ध **'An Essay on the Principle of Population, as it affects the future improvement of Society : With remarks on the Speculations of Mr. Godwin, M. Condorcet, and other writers'** नामक पुस्तिका प्रकाशित हुई। यद्यपि पुस्तिका के प्रथम सस्करण पर लेखक का नाम नही था, परन्तु यह भली प्रकार ज्ञात था कि पुस्तिका के लेखक माल्थस थे। बाद के सस्करणों मे माल्थस का नाम

साधारणतया यद्यपि अर्थशास्त्र का साधारण विद्यार्थी माल्थस के नाम से उन के जनसख्या के प्रसिद्ध सिद्धान्त के कारण परिचित है परन्तु वास्तव मे माल्थस का आर्थिक विचारो के इतिहास मे जनसख्या के सिद्धान्त के अतिरिक्त अन्य और योगदान भी है जिस की ओर दुर्भाग्यवश पाठको का ध्यान पर्याप्त मात्रा मे आकर्षित नही हुआ है। यह सत्य है कि यदि माल्थस ने अन्य कुछ भी न लिखा होता तो भी केवल **'Essay on Population** के आधार पर ही उन को आर्थिक विचारों के इतिहास मे एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ होता। परन्तु माल्थस के इतिहास के

पुस्तिका के लेखक के रूप मे स्पष्ट रूप मे व्यक्त किया गया था। इस पुस्तिका के कई सस्करण हुये थे। १७९९ ई० मे माल्थस यूरोप के भ्रमण क लिये गये तथा १८०३ ई० मे यूरोप मे अशान्ति होने के कारण केवल फ्रान्स, नार्वे स्वीडन तथा स्वीटजरलैंड की यात्रा करके स्वदेश वापस लौट आये।
१८०५ ई० मे माल्थस की नियुक्ति ईस्ट इ डिया कम्पनी द्वारा स्थापित नये East India College, Haileybury मे इतिहास तथा Political Economy के प्रोफेसर के पद पर हुई तथा इस पद पर वे अपने जीवन के शेष काल तक नियुक्त रहे। यहाँ पर माल्थस ने अपने 'Essay' के सस्करणो का पुनर्निरीक्षण किया तथा इस के अतिरिक्त १८२० ई० मे उन की पुस्तक **Principles of Political Economy** प्रकाशित हुई जिस का दूसरा सस्करण माल्थस की मृत्यु के पश्चात १८३६ई० मे प्रकाशित हुआ। प्रसिद्ध पुस्तिका **'Essay** तथा **Principles of Political Economy** के अतिरिक्त माल्थस ने अन्य पुस्तिकाएँ भी समय समय पर लिखी थी। इन मे से कुछ प्रसिद्ध पुस्तिकाओ के नाम निम्न प्रकार हैं।

पुस्तिका का शीर्षक	प्रकाशित होने का वर्ष
१. High Price of Provisions	१८०० ई०
२. Letter to Whitbread on the Poor Laws	१८१३ ई०
३ Observation on the effects of the Corn Laws	१८१४ ई०
४. Nature and Progress of Rent	१८१५ ई०
५. Grounds of an Opinion of the policy of Restricting the Importtaion of Foreign Corn	१८१५ ई०
६. Measure of Value	१८२३ ई०

माल्थस की रुचि व्यापक प्रकार की थी तथा वे अपने समय की आर्थिक व सामाजिक विवादात्मक समस्याओ पर भी अपने विचार खुले रूप से स्पष्ट करते थे। १८२१ ई० मे उन्होने Political Economy Club तथा १८३४ ई० मे Royal Statistical Society की स्थापना मे अपना भारी सहयोग देकर भी अपनी महानता का परिचय दिया। रिकार्डो व माल्थस मे गहरी मित्रता थी तथा दोनो मे पत्रो द्वारा तथा व्यक्तिगत मुलाकात द्वारा आर्थिक समस्याओ पर विचार विनमय होता था। ये पत्र रिकार्डो व माल्थस के आर्थिक विचारों पर काफी प्रकाश डालते हैं। १८३४ ई० मे ६८ वर्ष की आयु मे उनका स्वर्गवास हो गया।

व्यक्तित्व को सही प्रकार समझने के लिए तथा आर्थिक विचारों के इतिहास के प्रति उस के सम्पूर्ण योगदान का सही रूप से मूल्यांकन करने के लिये इस अंग्रेज पादरी के सभी आर्थिक विचारो का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना आवश्यक है। माल्थस के विभिन्न आर्थिक विचारों का निम्न शीर्षको के अन्तर्गत क्रमशः अध्ययन किया जा सकता है :

(१) जनसख्या का सिद्धान्त।
(२) मूल्य सम्बन्धी विचार।
(३) वितरण का सिद्धान्त।
(४) आर्थिक विकास का सिद्धान्त।
(५) सामान्य अत्युत्पादन की समस्या।

(१) जनसख्या का सिद्धान्त[2]

माल्थस के जनसख्या सिद्धान्त ने अर्थशास्त्र मे एक नये विषय के अध्ययन को जन्म दिया। माल्थस के पूर्व अधिक जनसख्या को सदा देश के लिये हितकारी समझा जाता था। माल्थस ने उस समय प्रचलित इस विचार की निन्दा की तथा यह स्पष्ट रूप से व्यक्त किया कि यदि जनसख्या को इस के प्राकृतिक रूप मे बढने दिया जाता है तो शीघ्र ही अत्यधिक जनसख्या की भयानक स्थिति उत्पन्न होती है। इस का मुख्य कारण यह है कि जनसख्या मे वृद्धि होने की गति खाद्य सामग्री की वृद्धि होने की गति की अपेक्षा अधिक तीव्र होती है। इस कारण जनसख्या व खाद्य सामग्री के मध्य सन्तुलन भग हो जाता है तथा देश मे बीमारी, बाढ़, लडाई, अकाल आदि प्राकृतिक कोप विद्यमान हो जाते है। बीमारी, अकाल, बाढ, लडाई आदि प्राकृतिक कोप (Natural Calamities) देश मे विद्यमान होकर जनसख्या को उपलब्ध खाद्य सामग्री के समान करते हैं। ये प्राकृतिक प्रकोप उस समय तक कार्यशील रहते हैं जब तक देश मे जनाधिक्य की समस्या बनी रहती है। जनसख्या के सदा खाद्य सामग्री की अपेक्षा अधिक गति से बढने के कारण ये प्राकृतिक प्रकोप देश मे समय समय पर विद्यमान होते रहते हैं। इन प्राकृतिक प्रकोपो को माल्थस ने नैसर्गिक अवरोधों (Positive Checks) का नाम दिया था। माल्थस का विचार था कि समाज मे इन नैसर्गिक अवरोधो का समय समय पर विद्यमान होना नैतिक तथा अन्य सभी दृष्टिकोणो से हानिकारक था। इस कारण उस ने मानव जाति से निवारक अवरोधो (Preventive Checks) का प्रयोग करने का अनुरोध किया। निवारक अवरोधो मे ब्रह्मचर्य का पालन करना, अधिक आयु मे विवाह करना इत्यादि उपाय सम्मिलित थे। माल्थस के अनुसार निवारक अवरोध नैसर्गिक अवरोधो की अपेक्षा कही अधिक अच्छे थे।

---

2. माल्थस के जनसख्या सिद्धान्त के विस्तारपूर्वक अध्ययन के लिये आगे अध्याय ६ को पढिये।

माल्थस स्वयं गणितशास्त्र के अच्छे विद्यार्थी थे तथा अपने विद्यार्थी जीवन में वे Wrangler[3] रह चुके थे। गणितशास्त्र में निपुण होने के कारण उन्होंने जनसंख्या के खाद्य सामग्री की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से बढ़ने के विचार को गणित्य रूप में यह कह कर व्यक्त किया कि एक ओर तो जनसंख्या १ : २ : ४ : ८ : १६: ३२ : ६४ : १२८ गुणोत्तर गति (geometrical progression) में तेजी से तथा दूसरी ओर खाद्य सामग्री १ : २ . ३ : ४ : ५ : ६ . ७ : ८ . अकगणित गति (arithmetical progression) के अनुसार धीमे धीमे बढ़ती है। परिणामस्वरूप कुछ ही समय पश्चात देश में जनाधिक्य की गम्भीर समस्या उत्पन्न हो जाती है। माल्थस के विचारानुसार निवारक अवरोधों का प्रयोग ही इस जनाधिक्य की समस्या पर विजय प्राप्त करने का एकमात्र अच्छा उपाय था।

माल्थस के समय से अब तक उन का जनसख्या का सिद्धान्त आलोचकों की आलोचनाओं तथा समर्थकों के समर्थन का विषय रहा है। वास्तव में इसी जनसख्या के सिद्धान्त के कारण माल्थस को निराशावादी कहा जाता है। कुछ आलोचकों ने तो माल्थस को पागल तक कहा है। परन्तु अर्थशास्त्र के जिस विद्यार्थी को भी माल्थस के जनसख्या-सिद्धान्त का पूर्ण ज्ञान है वह इस सत्य से कभी इन्कार नहीं कर सकता कि माल्थस न तो निराशावादी थे तथा न ही वे पागल थे बल्कि इस के विपरीत वह वास्तविकता मे विश्वास रखने वाले एक सच्चे तथा सयमी महान अर्थशास्त्री थे।

(२) मूल्य सम्बन्धी विचार

माल्थस ने मूल्य सम्बन्धी विचार १८२० ई० में लिखित अपनी पुस्तक **Principles of Political Economy'** के दूसरे अध्याय में व्यक्त किये हैं। इस सम्बन्ध में माल्थस ने वस्तु के तीन प्रकार के मूल्यों के बीच भेद किया है—उपयोगिता मूल्य (Value in use); मौद्रिक विनिमय मूल्य (Nominal Value in Exchange) तथा वास्तविक विनिमय मूल्य (Real Value in exchange)। किसी वस्तु का उपयोगिता मूल्य उस वस्तु की वास्तविक उपयोगिता का सकेत होता है। किसी वस्तु का मौद्रिक विनिमय मूल्य उस वस्तु का बहुमूल्य धातुओं के रूप में व्यक्त किया गया मूल्य होता है। इस के विपरीत किसी वस्तु का वास्तविक विनिमय मूल्य उस वस्तु की अन्य जीवन सम्बन्धी आवश्यक वस्तुओं को विनिमय द्वारा प्राप्त करने की शक्ति होती है। इस प्रकार माल्थस व स्मिथ के विचारों में काफी समानता है।

---

3. wrangler शब्द केम्ब्रिज विश्वविद्यालय मे उस विद्यार्थी के लिये प्रयोग किया जाता था जो गणितशास्त्र में honours की परीक्षा में प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण होता था।

वस्तु के मूल्य के निर्धारण के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुये माल्थस ने लिखा है कि यह वस्तु की माग तथा पूर्ति की शक्तियो द्वारा निर्धारित होता है।[4] उत्पादन व्यय का पूर्ति की शक्ति के द्वारा वस्तु के मूल्य पर प्रभाव पड़ता है। वस्तु का मूल्य कम से कम इतना अवश्य होना चाहिये कि वह वस्तु के उत्पादन व्यय के समान हो क्योकि यदि वस्तु का विनिमय मूल्य बाजार मे इतना कम है कि उस से वस्तु के उत्पादन की पूर्ति भी नहीं की जा सकती है तो उस वस्तु का उत्पादन होना बन्द हो जावेगा। परिणामस्वरूप वस्तु की पूर्ति कम हो जावेगी तथा मूल्य में वृद्धि होना आवश्यक हो जावेगा। इस प्रकार किसी वस्तु का आवश्यक मूल्य उस वस्तु के उत्पादन व्यय के समान होने के कारण उस वस्तु के उत्पादन करने मे व्यय हुये कुल श्रम के वेतन, पूँजी के लाभ तथा भूमि के लगान के जोड़ के समान होता है। वेतन, लाभ तथा लगान स्वय उन्ही कारणो द्वारा निर्धारित होते हैं, जिनके द्वारा वस्तु का मूल्य निर्धारित होता है। माल्थस ने इस प्रकार से *निर्धारित मूल्य को आवश्यक मूल्य (necessary price) का नाम दिया है* तथा यह मूल्य मार्शल के पूर्ति मूल्य (supply price) के समान है।[5] स्मिथ तथा रिकार्डो, जो केवल श्रम को ही मूल्य का माप विचारते थे, के विपरीत माल्थस का यह विश्वास था कि लगभग सभी वस्तुओं का उत्पादन व्यय वेतन, लाभ व लगान का समूह होता है। माल्थस का मूल्य सम्बन्धी विचार उन के पूर्वाधिकारी एडम स्मिथ तथा साथी डेविड रिकार्डो के द्वारा प्रतिपादित किये गये मूल्य-सिद्धान्तो की तुलना मे अधिक वास्तविक तथा अच्छा है क्योकि माल्थस ने वस्तु के मूल्य निर्धारण की समस्या के सम्बन्ध मे माग तथा पूर्ति की शक्तियो के पारस्परिक प्रभाव के महत्व को भली प्रकार समझाया है, परन्तु यह सब होते हुये भी माल्थस मूल्य का सिद्धान्त प्रतिपादित न कर सके क्योकि माल्थस के विवेचन ने मुख्यत स्मिथ तथा रिकार्डो के मूल्य-सिद्धान्तों की आलोचनाओं का रूप धारण किया था।

(३) वितरण का सिद्धान्त

माल्थस के वितरण के सिद्धान्त को ठीक प्रकार से समझने के लिये हमारे लिये माल्थस के लगान, वेतन तथा लाभ सम्बन्धी सिद्धान्तो का संक्षिप्त अध्ययन करना आवश्यक है। यद्यपि लगान के सिद्धान्त के सम्बन्ध मे रिकार्डो का नाम विशेष-

रूप से उल्लेखनीय है परन्तु माल्थस सम्भवतः इंगलैंड मे लगान के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले प्रथम अर्थशास्त्री थे। एडम स्मिथ, जैसा कि हम को विदित है, के विचार लगान के सम्बन्ध मे अधूरे तथा अत्यधिक दोषपूर्ण थे। एक स्थान पर स्मिथ ने लगान को मूल्य का अंग तथा दूसरे स्थान पर मूल्य का परिणाम कहा था। यद्यपि माल्थस के लगान सिद्धान्त सम्बन्धी विचार किसी एक विशेष स्थान पर न होकर उन की पुस्तिकाओ तथा पुस्तक **Principles of Political Economy** मे बिखरे हुये है परन्तु ये स्पष्ट तथा संक्षिप्त हैं। माल्थस के अनुसार लगान एक प्रकार की अधिशेष (surplus) आय है जो भूस्वामी तथा सम्पत्तिस्वामी को प्राप्त होती है तथा इस आय का मूल (origin) तथा प्रकृति अन्य आयो (वेतन, लाभ आदि) से भिन्न है। लगान वस्तु के उत्पादन व्यय के पश्चात शेष बचा अधिशेष है। माल्थस के विचारानुसार लगान के उत्पन्न होने के तीन कारण हैं। लगान की समस्या के उत्पन्न होने का प्रथम कारण भूमि की अधिक उर्वरता है जिसके कारण भूमिपर कुल खाद्य सामग्री का उत्पादन कृषक की लागत की अपेक्षा अधिक होता है। दूसरा कारण जनसंख्या का बढ़ाना है जिस के परिणामस्वरूप भूमि की माग में वृद्धि होती है। तीसरा कारण यह है कि माग की तुलना मे अधिक उर्वर भूमि की पूर्ति सीमित है, जिस के कारण कुछ समय पश्चात कृषक को कम उर्वर भूमि पर खेती करने के लिये विवश होना पडता है। परन्तु कम उपजाऊ शक्ति वाली भूमि पर खाद्य सामग्री का उत्पादन व्यय अधिक उपजाऊ शक्ति वाली भूमि के उत्पादन व्यय की अपेक्षा अधिक होता है। परिणामस्वरूप खाद्य की कीमत मे वृद्धि होने के कारण (मूल्य कम उपजाऊ शक्ति वाली भूमि पर खाद्य उत्पन्न करने के उत्पादन व्यय के समान अवश्य होगा क्योकि यदि ऐसा नही होगा तथा मूल्य कम होगा तो इस भूमि पर खेती नही की जावेगी) अधिक उपजाऊ शक्ति वाली भूमि के स्वामी को अतिरिक्त लाभ होता है। यही आर्थिक लगान है।[6] लगान के विद्यमान होने के कारणो का वर्णन करने के अतिरिक्त माल्थस ने यह भी बताया है कि लगान मूल्य का परिणाम है कारण नही।

श्रमिकों के वेतन के सम्बन्ध मे यह कहना उचित है कि माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त में वेतन का जीवन निर्वाह सिद्धान्त निहित है। परन्तु १८२० ई० के लगभग माल्थस का वेतन के जीवन निर्वाह सिद्धान्त के प्रति कोई विश्वास नहीं रहा था। अपनी पुस्तक **'Principles of Political Economy'** मे माल्थस ने वेतन की परिभाषा इस प्रकार की है : "वेतन श्रमिक के व्यक्तिगत श्रम का पारितोषण है। वस्तु के मूल्य के समान वेतनो का विभाजीकरण भी वास्तविक तथा मौद्रिक वेतनो मे किया जा सकता है। किसी श्रमिक का वास्तविक वेतन उसको प्राप्त हुई जीवन

6, Ibid : pp. 139 140.

सम्बन्धी आवश्यक, आराम तथा विलासिता सम्बन्धी वस्तुओं की मात्रा होती है। श्रमिक का मौद्रिक वेतन इन वस्तुओं का द्रव्य मूल्य होता है।"[7] माल्थस के मतानुसार श्रमिक का मौद्रिक वेतन श्रमकी माग तथा पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है। मुद्रा की क्रयशक्ति यथास्थिर रहते हुये वेतनों मे परिवर्तन श्रमिकों की पूर्ति व मांग में परिवर्तन होने के फलस्वरूप होते है। सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि माल्थस वेतनों के माग व पूर्ति सिद्धान्त के समर्थक थे। माल्थस के कुछ कथनों से यह भी स्पष्ट होता है कि वे मजदूरी के वेतन-कोष सिद्धान्त (Wage fund Theory) के समर्थक थे, यद्यपि स्पष्ट रूप से कही भी उन्होने इस सिद्धान्त की चर्चा नही की है। उदाहरणार्थ **'Principles of Political Economy'** मे पृष्ठ २६१ पर इसके कुछ चिन्ह मिलते हैं। परन्तु यह सब होते हुये भी माल्थस का यह दृढ विश्वास था कि वेतन श्रम की माग तथा पूर्ति की शक्तियो द्वारा निर्धारित होते है।

लाभ के सम्बन्ध मे लिखते हुये माल्थस ने एडम स्मिथ के विचारों मे सुधार *करने का प्रयास किया। स्मिथ के विचारानुसार लाभ सम्पत्ति (Stock) पर प्राप्त* आय थी। माल्थस ने Stock तथा पूँजी में भेद स्पष्ट किया तथा यह बतलाया कि लाभ का सम्बन्ध कुल सम्पत्ति (Stock) के केवल उस भाग से होता है जिस का लाभ प्राप्ति की आशा से विनियोग किया जाता है तथा जिसको पूँजी कहा जा सकता है। पूँजी तथा सम्पत्ति मे भेद स्पष्ट करते हुये माल्थस ने लिखा है कि यद्यपि समस्त पूँजी सम्पत्ति होती है परन्तु समस्त सम्पत्ति को पूँजी नही कहा जा सकता है।[8] माल्थस के अनुसार लाभ पूँजी के विनियोग द्वारा प्राप्त आय है। जिस प्रकार वेतन श्रमिक का पारितोषिक है ठीक उसी प्रकार लाभ पूँजी का पारितोषिक है।

माल्थस स्मिथ के इस कथन से कदापि सहमत नही थे कि लाभ श्रम की उत्पत्ति मे से एक प्रकार की कटोती है। माल्थस के विचारानुसार लाभ का सम्बन्ध पूँजी की उत्पादकता से है क्योंकि श्रमिक जब पूँजी यन्त्र इत्यादि का प्रयोग करता है तो उत्पादन उस परिस्थिति की अपेक्षा अधिक होता है जिसमे श्रमिक पूँजी का प्रयोग नही करता है।

(४) आर्थिक विकास का सिद्धान्त

माल्थस के आर्थिक विकास सम्बन्धी विचार **Principles of Political**

Economy के सातवें तथा अन्तिम अध्याय में पाये जाते है। प्रथम, राष्ट्र का आर्थिक विकास जनसख्या की वृद्धि पर निर्भर होता है। परन्तु केवल जनसख्या की वृद्धि से ही देश का आर्थिक विकास सम्भव नही हो सकता। इस कारण माल्थस के विचारानुसार जनसख्या की वृद्धि के अतिरिक्त राष्ट्र मे पूँजी की भी निरन्तर वृद्धि होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त कच्चे माल की पूर्ति सम्भव बनाने के लिए उर्वर भूमि का होना भी आवश्यक है। इन सबके अतिरिक्त माल्थस के अनुसार नये आविष्कारो के कारण भी राष्ट्रीय उत्पत्ति मे वृद्धि होने के कारण राष्ट्र का आर्थिक विकास होता है। सक्षेप मे माल्थस के विचारानुसार राष्ट्रीय आर्थिक विकास जनसख्या की वृद्धि, पूँजी की मात्रा, अच्छी व उर्वर भूमि की मात्रा तथा आविष्कारों पर निर्भर होता है। इस प्रकार :

राष्ट्रीय आर्थिक विकास = जनसख्या का आकार + पूँजी की मात्रा + भूमि + आविष्कार

(५) सामान्य अत्युत्पादन की समस्या

माल्थस प्रथम अर्थशास्त्र सस्थापक थे जिन्होने यह स्पष्ट किया कि समाज मे कुल समर्थ माग (total effective demand) का कुल उत्पादन की अपेक्षा अभाव होने के कारण सामान्य अत्युत्पादन की गम्भीर समस्या उत्पन्न हो जाती है। यह विचार जे० बी० से (J. B. Say) के प्रसिद्ध बाजार नियम, जिसके अनुसार पूर्ति सदा स्वय अपनी माँग उत्पन्न करती है की स्पष्ट आलोचना था। से तथा सस्थापक सम्प्रदाय के अन्य अर्थशास्त्रियो का विश्वास था कि समाज मे यद्यपि अल्पकाल मे कुछ वस्तुओ के कम उत्पादन तथा अन्य वस्तुओ के अत्युत्पादन की समस्या उत्पन्न हो सकती है, परन्तु दीर्घकाल मे यह समस्या उत्पादन के साधनों की पूर्ण औद्योगिक गतिशीलता के कारण समाप्त हो जावेगी। से का कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति एक ही समय क्रेता व विक्रेता होता है। वस्तुओं का विनिमय सदा वस्तुओ के द्वारा होता है तथा इस कारण पूर्ति समर्थ माग का एकमात्र स्रोत है।

माल्थस ने जे० बी० से के इस विचार को गलत बताया कि वस्तुओं का विनिमय वस्तुओ के द्वारा होता है। माल्थस को एक प्रकार से वर्तमान कम उपभोग सिद्धान्त (Under consumption theory) का प्रवर्त्तक कहा जा सकता है। माल्थस का कहना था कि उत्पादक व निर्माता पूँजी का प्रयोग करके वस्तुओं का उत्पादन करते है, परन्तु उत्पादन की हुई वस्तुओ की कुल मात्रा का वे उपभोग नही करते है। परिणामस्वरूप अतिरिक्त उत्पादन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। माल्थस के विचार इस सम्बन्ध मे उनके समय से आगे थे तथा उस समय प्रचलित दृढ से-रिकार्डो विचारधारा मे माल्थस के विचार टक्कर न ले सके। परन्तु माल्थस के विचारों की सत्यता भविष्य मे उस समय स्पष्ट हुई जब वर्तमान शताब्दी के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री स्वर्गीय लार्ड जे० एम० कीन्स ने समर्थ माँग के

अभाव के सिद्धान्त के आधार पर नये सिद्धान्तो का अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **'General Theory'** मे प्रतिपादन करके कीन्स-प्रेरित क्रान्ति (Keynesian Revolution) को जन्म दिया। कीन्स ने माल्थस को उसके विचारो के लिये श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है।

निष्कर्ष

माल्थस एडम स्मिथ व रिकार्डो के समान सस्थापक सम्प्रदाय के एक मजबूत स्तम्भ थे। जनसख्या के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके माल्थस ने आर्थिक विचारो के इतिहास में अपने लिये केवल स्थान ही सुरक्षित नही किया, बल्कि उन्होने अर्थशास्त्र के विषय क्षेत्र को भी विस्तृत किया। माल्थस को Demography विज्ञान का सस्थापक कहा जा सकता है। उनका अत्युत्पादन का सिद्धात आज के समान उस समय भी सत्य तथा वास्तविक था। यद्यपि माल्थस माग व पूर्ति का विश्लेषण न कर सके परन्तु वे इन दोनो—माँग व पूर्ति—की पारस्परिकता के महत्व को को भली प्रकार समझते थे। यद्यपि वे अनावश्यक आशावादी नही थे परन्तु उनको निराशावादी कहना भी उचित नही है। वे पूर्णतया वास्तविकतावादी थे। माल्थस का नाम उनके अन्य विचारो के कारण नही तो उनके जनसख्या के सिद्धान्त के कारण आर्थिक विचारो के इतिहास मे सदा जीवित रहेगा।

विशेष अध्ययन सूची

1. Gide and Rist : A History of Economic Doctrines, Chapter, III.
2. L. H. Haney · History of Economic Thought, Chapter, XII.
3. J. F. Bell A History of Economic Thought, Chapter, 11.
4. O. H. Taylor . A History of Economic Thought, Chapter, 6
5. Robert Lekachman . A History of Economic Ideas, Chapter, 6.
6. Leo Rogin · The Meaning and Validity of Economic Theory, Chapter, 5.
7. S H Patterson : Readings in the History of Economic Thought, Part II, Chapter, 3.

प्रश्न

1. Examine critically Malthus's theory of General Glut.

   (राजस्थान, १९५१; अलीगढ़, १९५६, १९५९)

2. Explain Malthus's share in the making of the classical theories of value and rent.

   (कर्नाटक, १९५७)

3. Discuss the contribution of Malthus to economic thought.

   (कर्नाटक, १९५६)

4. Evaluate Malthus's contribution to the theory of crisis.

   (कर्नाटक, १९५७)

अध्याय ६

माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त तथा नवमाल्थसवाद

(Malthus's Theory of Population and Neo-Malthusianism)

यद्यपि जनसख्या की समस्या बहुत प्राचीन है, परन्तु आधुनिक समय में इसका रूप कुछ भिन्न हो गया है। यदि अधिक नहीं, तो कम से कम वणिकवादी काल से माल्थस के समय तक तो बढती हुई जनसंख्या परमेश्वर का वरदान मानी जाती थी। वणिकवादियों की यह धारणा थी कि देश की आर्थिक उन्नति के लिए घनी जनसख्या आवश्यक है। प्राचीन काल मे घनी जनसंख्या वाले देश ही सबसे अधिक धनी तथा शक्तिशाली होते थे तथा इसलिए उस समय घनी जनसंख्या देश के लिए हितकर मानी जाती थी। जर्मन अर्थशास्त्री सिसमिल्क (Siissmilch) जिसकी विचारधारा का माल्थस ने सम्भवतः भलीभाँति अध्ययन किया था, राष्ट्र की राजनैतिक व आर्थिक शक्ति के लिए जनसख्या की वृद्धि को आवश्यक समझता था। प्राचीन समय मे बहुत से जर्मन शहरो मे तो केवल विवाहित व्यक्ति ही कुछ पदों पर नियुक्त हो सकते थे। इसी प्रकार की योजनाओ के प्रस्ताव इगलैड में भी किये जा रहे थे। माल्थस के समय में सरकार तथा मालिक (employers) दोनों ही घनी जनसख्या को अच्छा समझते थे, क्योंकि घनी जनसख्या के कारण सरकार को लड़ने के लिए सिपाही तथा मालिको को कारखानो के लिए सस्ते श्रमिक मिल जाते थे। स्टेन्जलैन्ड (Stangeland) ने अपनी **"Pre-Malthusian Doctrines"** नामक पुस्तक में, माल्थस के पूर्व जनसख्या सम्बन्धी सामान्य दृष्टिकोण का इस प्रकार से वर्णन किया है; "लेकिन अधिक जनसख्या प्राय. हितकारी समझी जाती थी, लोग अधिक जनसख्या से कभी भयभीत नही होते थे, क्योंकि उनका यह विश्वास था कि जनसख्या सदैव जीवन-निर्वाह के प्राप्त साधनो से सीमित रहती है।"

माल्थस के पहले जनसख्या के सिद्धान्त को व्यवस्थित रूप से प्रतिपादित करने का कोई ठोस प्रयत्न नही किया गया था। प्रसिद्ध प्रकृतिवादी अर्थशास्त्री मिराब्यू (Mirabeau) ने केवल यह तर्क किया था कि जनसंख्या की वृद्धि जीवन निर्वाह के साधनो की पूर्ति से सीमित होती है। 'प्राकृतिक-व्यवस्था' मे विश्वास रखने वाले

अन्य सभी लोगो के समान मिराब्यू का भी यही विश्वास था कि प्रकृति भरण-पोषण का स्वय प्रयत्न करती है। एडम स्मिथ ने भी, यह विश्वास करते हुए कि जनसख्या पूर्ति तथा भोग के अनुसार अपने आप सामजस्य की स्थिति पर आ जाती है, जनसख्या के सिद्धान्त को पृथक रूप मे प्रतिपादन करने की कोई आवश्यकता नहीं समझी थी। वास्तव मे स्मिथ जनसख्या के स्वत संतुलित चक्र (self-adjusting cycle) मे विश्वास करते थे जैसा कि उनके निम्नाकित कथन से स्पष्ट है। "किसी भी अन्य वस्तु के समान मनुष्यो की माँग भी आवश्यक रूप से मनुष्यो की उत्पत्ति को नियत्रित करती है। यदि जन-उत्पत्ति माग की अपेक्षा कम होने लगती है तो आवश्यकतानुसार माँग जन्म-दर को बढा देती है और यदि जन-उत्पत्ति माँग की अपक्षा अधिक हो जाती है तो माँग आवश्यकतानुसार जन्म-दर को कम कर देती है।'[1] जनसख्या के विषय पर आवश्यक सामग्री एकत्र करने और इस सामग्री को एक ठास रूप देकर नवीन प्रकार से जनसख्या के सिद्धान्त के रूप मे प्रतिपादन करने का श्रेय माल्थस को प्राप्त हुआ। इस नय सिद्धान्त ने लडखड़ाती हुई प्राचीन धारणा का खडन किया।

यद्यपि प्राचीन समय मे भी जनसख्या की समस्या के बारे मे यत्र-तत्र विचार प्रकट किये गये थे, परन्तु १७९८ ई० मे जब युवक पादरी थामस राबर्ट माल्थस की **"Essay on the Principle of Population as it effects the Future Improvement of the Society"** पुस्तिका प्रकाशित हुई, तभी जनसख्या की समस्या ने विश्वव्यापी ध्यान आकर्षित किया और एक निश्चित सिद्धान्त का रूप धारण किया। खाद्य सामग्री मे वृद्धि होने के साथ जनसख्या मे वृद्धि होने के सिद्धान्त को चित्रित करने वाली उसकी पुस्तिका के प्रकाशन ने सारे ससार मे अत्यधिक विवाद को जन्म दिया।

माल्थस पर पड़ने वाले प्रभाव

माल्थस ने जब अपना निबन्ध लिखा था तो उससे पहले इंगलैंड की जो दशा थी, उस दशा ने उसके विचारो को सबसे अधिक प्रभावित किया था। यद्यपि १८ वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे इंगलैंड का कृषि उद्योग उन्नति पर था, परन्तु इसी शताब्दी के अन्त मे बतना अधिक आर्थिक सकट छा गया था कि देश की जनसख्या इतनी अधिक ज्ञात होने लगी कि उसका भरण पोषण इंगलैंड की भूमि नही कर सकती थी। गेहूँ का मूल्य प्रति वर्ष बढ़ता ही जाता था। १७७० ई० तथा १८२० ई० के बीच मे गेहूँ आदि के मूल्यो में दुगुनी से भी अधिक वृद्धि हो गई थी। औद्योगिक क्रान्ति के कारण समाज मे बेकारी, दरिद्रता, बीमारी तथा झगडो ने घर कर लिया था।

---

1 Adam Smith The *Wealth of Nations* (Cannan ed) pp 81 82
"It is in this manner that the demand for men like that for any other commodity, necessarily regulates the production of men; quickens it when it goes on too slowly, and stops it when it advances too fast"

माल्थस के द्वारा अधिक जनसख्या वाले देश के रूप मे उल्लेख किये गये आयरलैंड की खराब स्थिति के बारे मे ग्रीन ने लिखा है ; "आयरलैंड में कुशासन के शाप के साथ ही साथ दरिद्रता का नंगा नाच भी था और यह दरिद्रता देश की जनसख्या की तीव्र वृद्धि के साथ बढती गई जिसके फलस्वरूप दुर्भिक्ष ने देश को नरक बना दिया।"[2] थॉरॉल्ड रॉजर्स (Thorold Rogers) द्वारा किया गया अठारहवी शताब्दी के अन्तिम तीस वर्षो का निम्नांकित वर्णन भी लगभग इसी प्रकार की दुर्गति का द्योतक है: "कीमतें बढती गईं और जब यह देश प्राय: सारे सभ्य ससार से युद्ध कर रहा था, राष्ट्र को दुर्भिक्ष की यातनाएँ सहनी पडी। जब तक युद्ध होता रहा देश अवर्णनीय परन्तु रहस्यमयी रीति से होने वाली बुरी फसलो के चक्रो मे फँसा रहा।"[3]

अपने समय की इस आर्थिक दुर्गति से माल्थस का प्रभावित होना स्वाभाविक था और उसकी प्रतिक्रिया उसके निबन्धो के रूप मे समाज के सामने स्पष्ट हुई। एडम स्मिथ के समय मे चारो ओर बडी राजनैतिक तथा औद्योगिक क्रान्तियाँ हो रही थी। फ्रान्स मे स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुता पर आधारित राजनैतिक क्रान्ति का प्रादुर्भाव हो चुका था। साथ ही साथ इगलैंड मे अत्यधिक आर्थिक उन्नति की सम्भावनाओ से युक्त औद्योगिक क्रान्ति हो रही थी। अतः स्मिथकालीन विचारधारा मे सर्वत्र उन्नति तथा आशावाद की प्रधानता थी। परन्तु माल्थस के समय मे दोनो के दुष्परिणाम समाज के सामने आ गये थे और इसीलिये माल्थस के लेख आर्थिक सकट तथा निराशावाद से भरे पड़े हैं और इस प्रकार माल्थस निराशावादी आर्थिक विचारधारा के सबसे बड़े प्रवर्तक बन गये।

इतना सब कुछ होते हुए भी, १८ वीं शताब्दी के एक प्रसिद्ध अंग्रेज विलियम गॉडविन (William Godwin) के लेख, माल्थस के निबन्ध लिखने का मुख्य कारण थे। गॉडविन ने अपनी "Enquiry Concerning Political Justice and its Influence on Morals and Happiness", नामक एक उत्तेजनात्मक पुस्तक १७९३ ई० मे प्रकाशित की थी। इस पुस्तक में गाडविन ने यह प्रतिपादित किया था कि मनुष्यों के दुख तथा कष्टो के लिए सरकार ही दोषी होती है। माल्थस के पिता, डेनियल माल्थस (Daniel Malthus) ने भी गॉडविन की विचारधारा का समर्थन किया था। युवक माल्थस ने अपने पिता तथा गॉडविन के विचारों का विरोध किया। अपने निबन्ध की भूमिका में माल्थस के निम्नाङ्कित शब्दों से यही स्पष्ट होता है कि विलियम गॉडविन ने ही एक प्रकार से माल्थस को निबन्ध लिखने के लिए बाध्य किया था। "मि० गॉडविन के निबन्ध के विषय पर एक मित्र के साथ वार्तालाप के फलस्वरूप यह निबन्ध लिखा गया। विवाद, समाज की भावी उन्नति के सामान्य

प्रश्न को लेकर प्रारम्भ हुआ। लेखक अपने मित्र के समक्ष अपने विचारो को प्र करने की इच्छा से पहले उन्हे लिखने बैठ गया क्योकि वार्तालाप की अपेक्षा, ि कर वह अपने विचार अधिक स्पष्ट रूप से प्रकट कर सकता था। परन्तु जब उ लिखना प्रारम्भ किया तो ऐसे विचार उसके मस्तिष्क में आये जो पहले कभी न आये थे और उसका यह विचार हुआ कि इस प्रकार के मनोरजक विषय पर थो सा प्रकाश डालना भी लोगो को रुचिकर प्रतीत होगा। अत. उसने अपने विच को प्रकाशित करने का निश्चय किया।"[4]

माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त

माल्थस की पुस्तक मे प्रतिपादित सिद्धान्त जनसंख्या के मुख्य तर्क संक्षेप माल्थस के शब्दो मे ही निम्न प्रकार से दिये जा सकते हैं।

(१) "जनसख्या के बढ़ने की शक्ति भूमि की जीवन-निर्वाह करने वा वस्तुओ को उत्पन्न करने की शक्ति से कही अधिक है।"

(२) "अनियन्त्रित जनसख्या गुणोत्तर गति (Geometrical Progressio से बढती है, जबकि खाद्य-सामग्री अकगणित क्रम (Arithmetical Progressio से बढती है। जनसंख्या तथा खाद्य सामग्री वृद्धि सम्बन्धी आँकडो के अ परिचय से ही भूमि की शक्ति की तुलना मे जनसख्या की शक्ति की प्रबलता स्प हो जाती है।"

(३) "उस प्राकृतिक नियम के अनुसार, जिसके आधार पर मानव जीवन लिए भोजन आवश्यक है, इन दोनो असमान शक्तियो के प्रभावो को समान ही रख जाना चाहिए।"

(४) "इसका यह तात्पर्य है कि जीवन निर्वाह की कठिनाइयो के कार जनसंख्या पर सदैव शक्तिशाली नियंत्रण कार्य करता रहा हैं।"

(५) "भूमि का उत्पादन तथा जनसंख्या वृद्धि की दो शक्तियो की प्राकृति असमानता और प्रकृति के वह महान नियम, जो दोनो के प्रभावो को लगातार समा रखते हैं (सब मिलकर) एक बडी कठिनाई उत्पन्न कर देते है, जिसका ऐसा निरा करण मुझे नही दिखाई देता जिसमे समाज पूर्णता को प्राप्त हो सके।"[5]

माल्थस के जनसख्या के सिद्धान्त का सम्पूर्ण विवेचन निम्नांकित तीन तत्व पर आधारित है।

---

4 Thomas Robert Malthus *Essay of Population, 1st Ed Preface*

5 Ibid *Vol 1 Book 1, 7th, Ed* London 1914

(१) **जनसंख्या वृद्धि-दर**—माल्थस के अनुसार, यदि किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न हो तो जनसख्या गुणोत्तर दर १ : २ : ४ : ८ : १६ : ३२ से बढती है।

(२) **खाद्य-सामग्री वृद्धि-दर**—माल्थस के अनुसार, यद्यपि जनसख्या गुणोत्तर दर से बढती है परन्तु खाद्य सामग्री केवल अंकगणित गति १ : २ : ३ : ४ : ५ : ६ : ७ : ८ से ही बढती है। यदि २५ वर्षो तक इन दोनो की वृद्धि दर का अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जनसख्या २५ वर्षो में दुगुनी हो जाती है जबकि खाद्य सामग्री इतने समय मे तीव्र गति से घटती हुई दर से ही बढती है। माल्थस का कहना है कि "सारी पृथ्वी को ध्यान मे रखते हुए···और वर्तमान जनसंख्या को एक हजार मिलियन मानते हुए, जनसंख्या मे १, २, ४, ८, १६, ३२, ६४, १२८, २५६, की भाँति तथा खाद्य सामग्री मे १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, की भाँति वृद्धि होगी। परिणामस्वरूप दो शताब्दियो मे जनसंख्या तथा खाद्य सामग्री का सम्बन्ध २५६ : ९ का हो जायगा, तीन शताब्दियों में दोनों ४०९६ : १३ के अनुपात मे हो जायँगे और दो हजार वर्षो मे दोनो के अन्तर का हिसाब लगाना असम्भव ही हो जायगा।"

(३) **जनसंख्या के प्रतिरोध**—जनसख्या मे गुणोत्तर दर से वृद्धि होने तथा खाद्य-सामग्री मे अंकगणित दर से वृद्धि होने से जनसंख्या तथा खाद्य सामग्री का संतुलन नष्ट हो जाता है। कालान्तर मे जनसख्या की वृद्धि, खाद्य सामग्री की वृद्धि से कही अधिक आगे बढ जाती है। इस प्रकार से उत्पन्न, जनसंख्या व खाद्य सामग्री के मध्य असन्तुलन को (अ) प्राकृतिक अथवा नैसर्गिक अवरोधों से अनिवार्यतः तथा (ब) निवारक व प्रतिबन्धक अवरोधों से वैकल्पिक रूप से, ठीक किया जा सकता है। नैसर्गिक अवरोध, आपत्ति, बीमारियाँ, युद्ध, भूचाल, बाढें, सूखा, अकाल आदि के रूप में अचानक वज्रपात के समान प्राकृतिक संकट होते है, जिनके कारण मनुष्यो को अनेक कष्ट भोगने पडते हैं। निवारक अथवा प्रतिबन्धक प्रकार के अवरोध मानवीय होते हैं जो सयम, बडी आयु में विवाह, नैतिक नियंत्रण, ब्रह्मचर्य आदि के समान जनसंख्या को सीमित करने के लिए कृत्रिम उपायों के रूप मे होते हैं। असभ्य नैसर्गिक अवरोधो की अपेक्षा निवारक अवरोध श्रेष्ठ होते हैं, क्योंकि ये उच्च सभ्यता के द्योतक होते है और मानवों को कष्टों से बचाते हैं। इसीलिए माल्थस मनुष्यो को कृत्रिम उपायो को अपनाने के लिए आह्वान करता है जिससे वे प्राकृतिक अथवा दैवी प्रकोपो से बच सकें। माल्थस के सिद्धान्त को निम्नांकित रूपरेखा की सहायता से भली भाँति समझाया जा सकता है।

माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त

असन्तुलन-निवारण की समस्या उत्पन्न होती है

नैसर्गिक अवरोध (कष्ट, बीमारियाँ, युद्ध, भूचाल, दुर्भिक्ष, बाढ आदि,)

निवारक अवरोध (ब्रह्मचर्य, देर से विवाह, नैतिक अवरोध आदि)
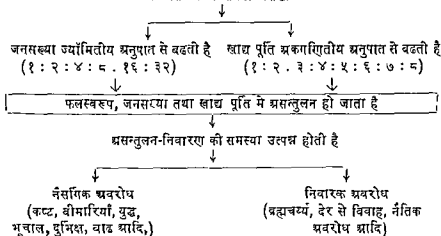
इस प्रकार, माल्थस के जनसख्या के सिद्धान्त का स्पष्टीकरण अत्यन्त सरल भाषा मे निम्न प्रकार किया जा सकता है :—सभी प्राणियो मे, जिनमे मनुष्य भी सम्मिलित है, अपनी जाति को बढाने की अति तीव्र एवं स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है और यदि उनको स्वतन्त्र छोड दिया जाय तो कालान्तर मे उनकी वृद्धि इस भयावह तीव्र गति से होने लगती है कि खाद्य सामग्री की वृद्धि पीछे रह जाती है—यह जनसख्या की वृद्धि का साथ नही दे सकती है ।.परिणामस्वरूप, जनसख्या-वृद्धि को कम करने के लिए, भूचाल, बीमारियाँ, युद्ध, दुर्भिक्ष आदि प्राकृतिक प्रकोपो की क्रियाशील शक्तियाँ अपना कार्य करने लगती हैं । माल्थस ने इन प्राकृतिक प्रकोपो, अथवा कष्टों को 'नैसर्गिक अवरोध' के नाम से पुकारा है ।.ये नैसर्गिक अवरोध स्वतंत्र रूप से अपना कार्य उस समय तक करते रहते है, जब तक कि जीवन-निर्वाह की प्राप्त सामग्री तथा उस पर निर्भर रहने वाली जनसख्या मे पूर्ण सामंजस्य स्थापित नही हो जाता है । जब तक मानव जाति अपनी प्राकृतिक प्रवृति का अज्ञानतापूर्वक अनुसरण करती रहेगी, तब तक समय-समय पर नैसर्गिक अवरोधो की पुनरावृत्ति अनिवार्यत विद्यमान होती रहेगी ।

माल्थस भलीभाँति जानता था कि नैसर्गिक अवरोधो के क्रियाशील होने की सम्पूर्ण प्रणाली अत्यन्त भयानक है और इसके कारण मनुष्यो को कठिन दु.खो का सामना करना पडता है । अतः इन नैसर्गिक अवरोधो से बचने के लिए यथा-सम्भव शीघ्र ही प्रयत्न करना मनुष्यो के लिए एक बडा बुद्धिमत्तापूर्ण तथा युक्ति-सगत कार्य होगा । माल्थस यह भी जानता था कि इन नैसर्गिक अवरोधो के बुरे प्रभावो से बचना स्वय मनुष्यो के अपने हाथो मे है । आत्मसयम, अधिक आयु हो जाने पर विवाह तथा ब्रह्मचर्य का पालन करके मनुष्य नैसर्गिक अवरोधो के दुष्परिणामो से बचकर अपनी उन्नति कर सकते है । माल्थस ने इन सब को निवारक

अवरोधो की संज्ञा दी और उसने इन्ही को अपनाये जाने पर बड़ा बल दिया; क्योकि ये अपेक्षाकृत कम दोषपूर्ण हैं और मनुष्य की बुद्धिमानता प्रदर्शित करते हैं। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि माल्थस ने जनाधिक्य को रोकने के लिए नैतिक नियंत्रणों का पक्ष ग्रहण किया। नैतिक नियंत्रण एक ऐसा गुण है, जिसे ईसाई धर्म ही ने नही वरन् ससार के सभी मुख्य धर्मो ने स्वीकार किया है। उसके उपदेशों मे सबसे बड़ी त्रुटि यह हुई कि उसने गर्भावरोध के कृत्रिम उपायों का भी समर्थन किया।

माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त की आलोचना

माल्थस ने एक ऐसा उग्र विवाद प्रारम्भ किया, जिसके शान्त होने की अब भी कोई सम्भावना नही है। गत दो शताब्दियो में माल्थस के सिद्धान्त की सम्भवतः सबसे अधिक आलोचना की गई है और साथ ही साथ इसका लोगों ने सबसे अधिक समर्थन भी किया है। वास्तव मे जब से विलियम गॉडविन ने इस सिद्धान्त को, "वह काला तथा भयानक राक्षस जो सदैव मानव समाज की आशाओ पर कुठाराघात करने के लिए तैयार रहता है" के रूप मे वर्णन किया है, तब से इसी सिद्धान्त के बारे मे अधिकतम बुरा भला कहा गया है।

सर्वप्रथम, माल्थस की जनसख्या वृद्धि सम्बन्धी गुणोत्तर अनुपात की धारणा ही त्रुटिपूर्ण है। इस पर पूर्ण रूप से विश्वास नही किया जा सकता है। जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़े इसकी पुष्टि नही करते हैं। २५ वर्षो मे जनसंख्या के दुगने होने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक परिवार में इस अवधि मे कम से कम चार व्यक्ति विवाह की आयु के हो जावेंगे और यह तभी सम्भव है जब परिवार में ५ या ६ बच्चों का जन्म हो, जिनमे से १ या दो बच्चे बालमृत्यु से नष्ट हो जायेंगे। आलोचको के अनुसार यह जन्मदर बहुत ऊँची है और साधारणतया ऐसा नही होता है।

परन्तु उपरोक्त आलोचना के होते हुये भी माल्थस के गुणोत्तर अनुपात का पक्ष फिर भी लिया जा सकता है। माल्थस के अनुसार बिना रोक लगाये जनसख्या २५ वर्षो मे दुगनी हो जायगी। निर्विरोध जनसख्या का तात्पर्य उस समाज से होता है जिसमे युद्ध न होता हो, सब साध्य बीमारियो की रोकथाम हो गई हो, जिसमे बाल-विवाह की सब आर्थिक बाधायें दूर हो गई हो और जिस समाज मे कुटुम्ब को सीमित करने के लिए कृत्रिम उपायो का प्रयोग न किया जाता हो। इस प्रकार के समाज मे जनसंख्या २५ वर्षो मे दुगनी हो सकती है।

दूसरे, कुछ विशेषज्ञो के विचारानुसार जनसंख्या २५ वर्षों मे दुगनी नही होती है। इन विशेषज्ञों का कहना है कि १०० वर्षो की अवधि को माल्थस के समान २५ वर्षीय चार पीढियो मे विभाजित करने की अपेक्षा ३३ वर्षीय तीन पीढियों मे विभाजित करना अधिक युक्तिसंगत है। परन्तु यह आलोचना सिद्धान्त के आधार-

मूल निष्कर्ष—जनसंख्या की गुणात्मक वृद्धि दर—का खण्डन नही करता है, वरन् उसका समर्थन करता है। इस विषय में पीढियो की अवधि मे २५ से ३३ वर्षों की वृद्धि अथवा अनुपात मे २ से १½ अथवा १½ से १¼ की कमी कोई विशेष महत्व नही रखती। इन परिवर्तनो से वृद्धि-दर मे थोडा सा अन्तर पड़ सकता है—वृद्धि दर कुछ कम हो सकती है, परन्तु वृद्धि की गुणात्मक प्रवृत्ति उसी प्रकार बनी रहेगी।

तीसरे, जीवन-निर्वाह की सामग्री में वृद्धि की गणितीय अथवा धनात्मक दर की भी आलोचना की जाती है कि यह भी त्रुटिपूर्ण स्वेच्छाचरिता का द्योतक है और पुनरोत्पादन नियम (Law of Reproduction) के विरुद्ध है। वास्तव मे यह मान्यता बिलकुल असत्य है, क्योकि जीवन-निर्वाह की सामग्री के अन्तर्गत वनस्पति तथा पशु-पक्षियो का एक विस्तृत क्षेत्र आ जाता है और इनकी वृद्धि मनुष्यो से अधिक तीव्र गति से होती है। अनाज अथवा आलू के समान पौधो मे, समुद्री मछली, भेड़े, मुर्गी-मुर्गे आदि पशु-पक्षियो मे पुनरोत्पादन शक्ति मनुष्यो से कही अधिक होती है। माल्थस इस आलोचना का उत्तर बड़ी सुगमता के साथ यह कह कर दे सकता था कि जीवन-निर्वाह की सामग्री की यह पुनरोत्पादन शक्ति निवास योग्य पृथ्वी के थोडे भाग तक ही सीमित है, साथ ही साथ उचित भरण-पोषण प्राप्त करने की कठिनाई तथा निम्न श्रेणी के जीव-जन्तुओ मे प्रचलित जीवन सघर्ष के कारण यह शक्ति और भी अधिक सीमित हो जाती है। इस पर आलोचकों का यह प्रत्युत्तर हो सकता है कि यदि हम एक पक्ष के अपवादो को मान लेते हैं तो हमे दूसरे पक्ष के अपवादो को भी मान लेना चाहिये और उनका यह कहना भी युक्तिसगत होगा कि हमारे सामने दो विभिन्न प्रमाणित तथ्य हैं। पहले तथ्य से यह स्पष्ट है कि पौधो तथा जीव जन्तुओ में पुनरोत्पादन दर मनुष्यो की अपेक्षा कम नही होती हैं। दूसरा तथ्य इस वास्तविकता को स्पष्ट करता है कि जनसख्या की अनन्त वृद्धि मे होने वाली बाधाएँ भी पौधो तथा पशुओ की अनन्त वृद्धि की विघ्न बाधाओ से कम नही है।

चौथे, ऐसा ज्ञात होता है कि माल्थस ने अपने गणितीय अनुपात का आधार उस नियम को माना है जिसे क्रमागत उत्पत्ति-ह्रास नियम का नाम दिया गया है। भूमि के गुण इस प्रकार के होते हैं कि किसी एक भूखड पर लगाई जाने वाली श्रम तथा पूँजी की अतिरिक्त इकाइयो से भूमि की उपज मे आनुपातिक वृद्धि नही होती है। अत. माल्थस ने यह धारणा बना ली थी कि किसी भू-खण्ड पर खाद्य-सामग्री की पूर्ति मे अधिक से अधिक गणितीय अनुपात से ही वृद्धि की जा सकती है।

परन्तु उपर्युक्त धारणा के विपरीत वस्तुःस्थिति यह है कि रासायनिक खाद के अधिकाधिक प्रयोग, यान्त्रिक प्रणाली के प्रारम्भ, तथा सिंचाई के कृत्रिम साधनों की सहायता से, बहुत से देशो में खाद्य-सामग्री का उत्पादन अत्यधिक बढा है।

(G. F. McCleary) ने ठीक ही लिखा है कि "उसके माल्थस द्वारा कहे हुए अनुपात, की तर्क, के लिए कोई वैज्ञानिक उपयोगिता नहीं है। इसके विपरीत, माल्थस के जनसख्या के सिद्धान्त मे गणितीय अनुपात ही सबसे अधिक लचीला तर्क है, इसकी आलोचना करना अति सुगम और व्याख्या करना अति कठिन है।"[6]

पाँचवे, माल्थस उन बहुत से महान परिवर्तनों को, जो उसके समय मे ही प्रारम्भ हो गये थे, भली भाँति समझ नही सका। पूर्वज्ञान अथवा दूरदर्शिता के अभाव मे, माल्थस ने बढती हुई जनसंख्या के लिये जीवन-निर्वाह की सामग्री प्राप्त करने की मानवीय शक्ति के सम्बन्ध मे निराशावादी दृष्टिकोण अपनाया। उदाहरण के लिए, माल्थस १६ वी शताब्दी मे होने वाली आश्चर्यजनक जनसंख्या वृद्धि का अनुमान भी नही कर सका। इस अवधि मे इङ्गलैण्ड की जनसख्या १८०१ ई० मे १० मिलयन से बढ़कर १६०१ ई० मे ३७ मिलियन तक हो गई थी। माल्थस के इस निराशावादी दृष्टिकोण का कारण उसकी क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम की धारणा थी। वह इस प्रकार की जनसख्या का, जिसकी वृद्धि अति तीव्रगति से हो और साथ ही साथ वह उच्च जीवनस्तर को बनाये रखे, अनुमान भी नही कर सकता था। इगलैण्ड मे १६ वी शताब्दी मे हुई उन्नति औद्योगिक क्रान्ति को सम्भव बनाने वाले यातायात तथा सवाद-वाहन के साधनो के असाधारण विकास के कारण हुई थी। यद्यपि १६ वी शताब्दी में कृषि एक महत्वपूर्ण उद्योग नही रहा था, परन्तु आयात हुआ खाद्यान्न प्रचुर मात्रा मे पाया जाता था। यह सब उन्नति तथा उच्च जीवन स्तर प्रत्यक्षरूप से जनसख्या वृद्धि के कारण ही सम्भव हो सका था। यद्यपि माल्थस को इन सब परिणामो का पूर्ण ज्ञान नही था, फिर भी भौतिक उन्नति पर जनसख्या वृद्धि के प्रभावो का स्पष्टीकरण करने की असमर्थता के लिए माल्थस की आलोचना करना न्यायसगत है। माल्थस यह अच्छी प्रकार नही समझ सका था कि श्रम-विभाजन तथा उत्पादन की उन्नतिशील प्रणाली से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिये जनसख्या की अति वृद्धि आवश्यक हो सकती है।

छटे, माल्थस क्रमागत उत्पादन वृद्धि नियम के महत्व को भली भाँति नही समझ सका। इस नियम के अनुसार श्रम तथा पूँजी की वृद्धि से अधिक अच्छी व्यवस्था होने के कारण उत्पादन की मात्रा बढ़ जाती है। इस तथ्य पर वह बल देने मे असमर्थ रहा। बढती हुई जनसख्या की खाद्य-सम्बन्धी अधिकाधिक माँग को पूरा करने के लिये कृषि में आधुनिक मशीनों के प्रयोग के कारण उत्पादन की एक निश्चित मात्रा बहुत थोडे से श्रमिको की सहायता से प्राप्त होने लगी है। माल्थस ने सीनियर के साथ विवाद मे यह स्वीकार भी कर लिया था कि कुछ परिस्थितियो मे खाद्य-सामग्री जनसंख्या की अपेक्षा अधिक तीव्रगति से बढती है, परन्तु इन परिस्थितियों को वह अपवादस्वरूप समझता था। माल्थस

6. G F. McCleary: The Malthusian Population Theory, pp. 111-112.

भविष्य में आधुनिक वैज्ञानिक यन्त्रों तथा विज्ञान की सहायता से मनुष्यों की खाद्य सामग्री की उत्पादन शक्ति का ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगा सका था।

सातवें, माल्थस की सबसे बड़ी भूल यह हुई कि उसने जनसंख्या के सिद्धान्त को मनुष्य-बाह्य समझा।[7] जो देश प्राकृतिक साधनों में जितना अधिक धनी होगा, उतनी ही अधिक जनसंख्या उसमें रह सकती है। मानव-प्रकृति की स्वाभाविक प्रवृत्ति ऐसी होती है जो जनसंख्या को एक निश्चित सीमा से अधिक बढ़ने से रोकती है और इस प्रवृत्ति के कारण जनसंख्या सदैव जीवन-निर्वाह के साधनों के अनुसार घटती बढ़ती रहती है।

बहुत से प्रमुख अर्थशास्त्री माल्थस के जनसंख्या के सिद्धान्त की आधार-शिलाओं पर ही प्रहार करते हैं। उदाहरण के लिये कॉलिन क्लार्क (Colin Clark) ने निम्नांकित, शब्दों में माल्थस का खंडन किया है: "यह बात बिल्कुल भ्रमरहित तथा स्पष्ट है कि इतिहास में जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि बहुत कम पाई जाती है। इस पृथ्वी पर मानव जाति की वृद्धि दर अधिकतर विलक्षण रूप से धीमी रही है। मिश्र, लंका, भारत तथा अन्य देशों में बहुत समय तक स्थिर अथवा घटती हुई जनसंख्या के ऐतिहासिक तथा प्रामाणिक उदाहरण पाये जाते हैं।"

परम्परावादी लेखकों में श्रेष्ठ तार्किक प्रो० नासो सीनियर (Nassau Senior) ने माल्थस तथा उसके अनुयायियों के सिद्धान्तों में कुछ आधारभूत त्रुटियों का संकेत किया है। माल्थस को एक पत्र में सीनियर ने इस प्रकार लिखा है: "आप (माल्थस) के अधिकांश पाठकों का यह विश्वास था कि जनसंख्या की वृद्धि दर ऐसी बुराई है जो नष्ट तो क्या, कम भी नहीं की जा सकती। वे वास्तविक मनुष्य के बारे में विचार नहीं करते, वरन् ऐसे मनुष्य के बारे में विचार करते हैं जो न दूरदर्शी है न महत्त्वाकांक्षी; समाज में उन्नति करने के लिए न तो उसमें बुद्धि है और न अवनति का डर······। हो सकता है कि मनुष्यों की अतिरिक्त वृद्धि दरिद्रता का कारण बन जाय, परन्तु इससे यह विश्वास कर लिया गया है कि ऐसा अनिवार्यतः होगा। चूँकि जीवन-निर्वाह सामग्री की वृद्धि के साथ ही साथ जनसंख्या की वृद्धि उससे अधिक हो सकती है, इसलिए लोग यह समझ बैठे हैं कि ऐसा अवश्य ही होगा।"[8]

उपरोक्त दोषों के होते हुए भी, माल्थस के सिद्धान्त को बहुत सफलता मिली है। इस सफलता का क्या कारण हो सकता है? उसे यह सफलता उस विषय के कारण, जिसका उसने पक्ष लिया है तथा उसके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त

---

7. F S. Nitti *Population and the Social System*
8. Malthus Senior Correspondence Reproduced in McCleary *The Malthusian Population Theory*, pp 114-126

के आकर्षण तथा मौलिकता के कारण प्राप्त हुई है। उसका यह कथन कि मनुष्य अपनी वृद्धि के कारण ही दरिद्रता से दुखी रहते है, निर्धनो को उत्तर देने के लिए धनिकों के हाथ मे एक अच्छा शस्त्र बन गया है। माल्थस के जनसख्या के सिद्धान्त ने, समाज के एक पूरे वर्ग—धनिकों—के स्वार्थो, पक्षपातों तथा अवगुणो को गाडविन तथा अन्य लेखको के ध्वंसकारी सिद्धान्तों के कठोर प्रहारों से बचाने के लिए एक आवरण का काम किया। इस प्रकार, माल्थस की सफलता का कारण इसके सिद्धान्त की सत्यता नही थी वरन् वे स्वार्थ थे जिनको इस सिद्धान्त ने उचित ठहराया।

फिर भी प्रश्न यह है कि क्या ये सारे तर्क माल्थस के विख्यात सिद्धान्त का खडन करते हैं। सम्भवतः ऐसा नही है। इसके विपरीत यह कहना बिल्कुल सत्य होगा कि जनसख्या का सिद्धान्त वर्तमान समय मे भी सत्य है और यह समय के परीक्षण मे सफल उतरा है। इसे कोई अस्वीकार नही कर सकता कि मनुष्यों तथा अन्य सभी प्राणियों मे अत्यन्त तीव्रगति मे वृद्धि करने की शक्ति होती है। इसके विपरीत औद्योगिक उत्पादन स्थान, कच्चामाल, श्रम व पूँजी आदि अनेको कारणों से सीमित रहता है। बहुत से विद्वानो का ऐसा विचार है कि पृथ्वी पर मानवीय आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए कृषियोग्य भूमि की कमी है; परन्तु बहुतो का यह विश्वास है कि ससार मे साधनो की इतनी प्रचुरता है तथा मनुष्यो की अनुसधान शक्ति इतनी असीमित है कि जनसख्या वृद्धि की गति कितनी ही तीव्र क्यो न हो, पृथ्वी बढती हुई जनसंख्या का भरण-पोषण करने मे सदैव समर्थ रहेगी। परन्तु यदि इस तर्क को सही भी मान लिया जावे फिर भी संसार के कुछ देशो मे कभी-कभी माल्थस के दृष्टिकोण के अनुसार जनाधिक्य हो सकता है। एशिया के बहुत से देश इसके उदाहरण हैं।

यद्यपि माल्थस के सिद्धान्त की, इस के प्रथम प्रतिपादन काल सन् १७९८ ई० से ही आलोचना की जा रही है; फिर भी मार्शल, (Marshall), एली (Ely), पेटन (Patten) आदि बहुत से पश्चिमी अर्थशास्त्रियो ने इसका समर्थन किया है। इन अर्थशास्त्रियो ने अपने उत्पादन तथा वितरण के सिद्धान्तो मे इस प्रसिद्ध नियम को उचित स्थान दिया है। उपर्युक्त अर्थशास्त्रियो को प्रभावित करने के अतिरिक्त माल्थस ने उद्विकास (Theory of Evolution) के सिद्धान्त के निर्माता चार्ल्स डारविन (Gharles Darvin) को भी अत्यधिक प्रभावित किया था। वाकर (Walker) का विश्वास है कि माल्थस का सिद्धान्त क्षेत्र, अथवा रग आदि भेदभावो का विचार किए बिना प्रत्येक समाज पर लागू होता है। उसने लिखा है कि "उसके (माल्थस) विरुद्ध उठाये गये सम्पूर्ण विवादो के मध्य माल्थसवाद अजेय तथा अविच्छिन्न रूप से स्थित है।" इसी प्रकार प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्री क्लार्क (Clark) का

यह कहना है कि, "माल्थस के नियम की बारम्बार आलोचना स्वयं उसकी मार्मिकता अथवा सत्यता को प्रमाणित करती है।"

आलोचको के द्वारा प्राय. यह तर्क दिया जाता है कि यदि जनसख्या की वृद्धि धन की वृद्धि से अधिक नही हुई है तो इसका कारण यही रहा है कि जनसख्या स्वेच्छा से सीमित रक्खी गई है। परन्तु वास्तविकता यह है कि प्राय प्रत्येक देश मे, विशेषकर पूर्व मे जहाँ प्रतिबन्धक अवरोधो का प्रयोग नही किया गया है, जनाधिक्य का सदैव इतना अधिक भय रहता है कि सरकारी तथा व्यक्तिगत सस्थाओ द्वारा गर्भ निरोध एव सतति-निग्रह के उपायो को प्रयोगो मे लाने का प्रबल प्रचार किया जा रहा है। भारत, चीन तथा पृथ्वी के अन्य भागो मे जहाँ जनसख्या तथा खाद्य सामग्री के सतुलन की एक प्रमुख समस्या है, जनसंख्या की प्रवृत्ति समझने के लिए माल्थस के सिद्धान्त की सत्यता बहुत ही महत्वपूर्ण है। जनाधिक्य की समस्या वाले बहुत से देशो मे एक निश्चित सीमा से कम अवस्था मे विवाह करने पर वैधानिक रोक लगा दी गई है। इस प्रकार यदि आलोचको के द्वारा उपर्युक्त सब तथ्यो का सही रूप से यथाविधि अध्ययन किया जाय तो माल्थस को स्वत: सम्मान का स्थान प्राप्त हो जाता है और वह आधुनिक काल का एक सच्चा भविष्य वक्ता बन जाता है।

इस समय भी, जनसख्या की समस्या का महत्व किसी प्रकार से कम नहीं हुआ है, यद्यपि इसके स्वभाव मे कुछ परिवर्तन अवश्य हो गया है। आज ससार के प्रत्येक देश मे प्रतिबन्धक अवरोधो का बोलबाला है और जन्म दर मे लगातार व्यापक कमी करने की समस्या ने सारे ससार मे अर्थशास्त्रियो तथा राजनीतिज्ञो का ध्यान आकर्षित कर लिया है। ससार के सब देशो मे जन्मदर मे लगातार कमी करने के वर्तमान उपाय माल्थस के सिद्धान्त की सर्वव्यापकता तथा अजेयता के अतिरिक्त और क्या सिद्ध करते है ? यदि मनुष्यो को जनाधिक्य तथा उसके अवाछनीय परिणामो का भय नही है, तो फिर वे सर्वत्र सतति निग्रह तथा कृत्रिम उपायो द्वारा बच्चों की सख्या सीमित करने के लिए क्यो उत्सुक रहते हैं ? ससार के विभिन्न भागो के आलोचकों द्वारा, माल्थस के जनसख्या के सिद्धान्त की अति तीव्र आलोचना होने हुए भी, यह सिद्धान्त अजेय है, आज भी वह उसी प्रकार से स्वय सिद्ध है जैसे यह भूतकाल मे था और भविष्य मे भी यह ऐसा ही रहेगा।

नव-माल्थसवाद

नव-माल्थसवाद वह आदोलन है जिसको माल्थस के अनुयायियो ने सनतिनिग्रह तथा अन्य उपायो के द्वारा जनसख्या कम करने के लिये चलाया है। इस आन्दोलन के समर्थकों मे इगलैंड की श्रीमती मैरी स्टोप्स (Mrs. Marie Stopes) तथा अमेरिका की श्रीमती मारग्रेट सेन्जर (Mrs Margaret Sanger) जिन्होने सहवास के आनन्द को कम किये विना जन्मदर मे कमी करने के लिये, यन्त्रिक

एवं रासायनिक गर्भनिरोध के रूप में संतति-निग्रह के उपायो की सिफारिश की है के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस आन्दोलन ने राजनीतिज्ञो, डाक्टरो, समाजशास्त्रियो तथा अर्थशास्त्रियो का आशीर्वाद प्राप्त किया है। कुछ देशो की सरकारो ने तो इसे सरकारी तौर पर अपनाना स्वीकार कर लिया है।

माल्थस के आधुनिक अनुयायी नव-माल्थसवादियो का कहना है कि यदि माल्थस भी इस समय जीवित होता तो वह भी आधुनिक सतति-निग्रह के आन्दोलन का एक प्रतिष्ठित नेता बन जाता।[9] परन्तु जीड व रिस्ट आदि बहुत से लेखक नव-माल्थसवादियों के इस विचार से सहमत नहीं हैं। *उनका दृढ विश्वास है कि माल्थस* गर्भ-निरोध के लिये प्रयोग मे लाये जाने वाले आधुनिक उपायो को योनि सम्बन्धी भ्रष्टाचार के नाम से कलंकित कर देता और इन्हे ईसाई धर्म के पूर्णतया विरुद्ध तथा राक्षसी कार्य बतलाता। इस सम्बन्ध मे विचार स्पष्ट करते हुये जीड व रिस्ट ने अपनी पुस्तक **'History of Economic Doctrines'** मे लिखा है कि *इस बात को सिद्ध करने के पक्ष में काफी प्रमाण मौजूद हैं कि यदि माल्थस जीवित हुआ* होता तो वह कभी भी नव-माल्थसवादी न हुआ होता। माल्थस पूर्ण रूप से नैतिक प्रतिबन्ध का पक्षपाती था। वह योनि सम्बन्धी कुकर्मो के सदैव विरुद्ध था। वह उन सब कुकर्मो को निरादर की दृष्टि से देखता था जो विवाहित अथवा अविवाहित दशा मे बध्यता अथवा गर्भनिरोध के सहारे स्वच्छन्द सहवास के पक्ष मे थे। *माल्थस के द्वारा इन सब उपायो को बुराइयो का नाम दिया गया है।* उसने इनके दुष्प्रभावो की नैतिक प्रतिबन्धों के अच्छे प्रभावों से तुलना की है। इस सम्बन्ध मे माल्थस ने निम्न प्रकार लिखा है।

"वास्तव में जनसख्या को रोकने के लिये किसी भी कृत्रिम तथा अस्वाभाविक उपाय को मैं सदैव बुरा ही समझूँगा और जिन नियत्रणो का मैने सुझाव दिया है वे *बिलकुल भिन्न प्रकार के है। वे केवल तर्क संगत तथा धर्म सम्मत ही नही है* वरन् वे पूर्ण रूपेण उद्योग को प्रोत्साहित करने वाले है।"

इतने से ही सन्तुष्ट न होकर उसने आगे लिखा है, "सन्तान उत्पत्ति को रोकने वाले सहवास के उपायों का प्रभाव हृदय के श्रेष्ठतम प्रेम को कम करता है और अन्त मे नारी के चरित्र को बहुत सीमा तक गिरा देता है।" *वह गर्भपात को भी दृढता के साथ निन्दा करता था, जिसका कि उस समय प्रयोग नही होता था—* यद्यपि आधुनिक समाज मे यह व्यापक रूप से प्रचलित है। माल्थस के अनुसार पवित्रता किसी कृत्रिम समाज पर लादी जाने वाली वस्तु नही है परन्तु वह अत्यन्त विशुद्ध, ठोस तथा युक्तिसगत है। "कुछ अवगुणो को दूर करने के लिए पवित्रता अत्यत आव-

श्यक है। ऐसा न होने से प्रकृति के साधारण नियमानुसार अवगुण अपने आप उत्पन्न हो जाते हैं।" उसने स्पष्ट तथा प्रभावशाली भाषा में नैतिक नियत्रणों के अतिरिक्त दूसरे मानवीय निरोधकों के प्रयोग की निन्दा की है। उसने लिखा है कि "निवारक अवरोधों के बारे मे, जो अवगुण के अन्तर्गत आते हैं, यह कहा जा सकता है कि इनका कार्यान्वित करना नैसर्गिक अवरोधो से कही बुरा है, यद्यपि इनका प्रभाव बहुत अधिक दिखलाई पड़ता है।"

माल्थस के निबन्ध के प्रथम संस्करण के अध्ययन के पश्चात हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जहाँ तक सम्भव है माल्थस यदि आज जीवित होता तो वह नव-माल्थसवादी विचारधारा को न अपनाता। फिर भी कुछ लेखक यह कहते है कि इस समस्या का एक दूसरा पहलू भी है जो इतना ही महत्वपूर्ण है। ये लेखक स्वीकार करते हैं कि माल्थस ने भी जो ईसाई धर्म का परम भक्त था और जो योनि सम्बन्धी भ्रष्टाचार तथा अन्य बुराइयो के विरुद्ध था और जो अपने प्रारम्भिक जीवन मे नैतिक नियत्रणो का प्रयोग करने की आवश्यकता पर दृढतापूर्वक बल देता था, बाद मे अपने दृष्टिकोण को बहुत उदार बना लिया था। इनका कहना है कि अपनी प्रसिद्ध निबन्ध की पुस्तक के प्रथम सस्करण वाला नैतिकता का पक्षपाती माल्थस बाद के सस्करणो मे व्यवहारिक सुखार्थी माल्थस बन गया था। समझौते की भावना जो पहले सस्करण मे अनुपस्थित थी दूसरे सस्करण मे स्पष्ट रूप मे प्रकट हो गई थी। माल्थस बहुत दृढ नही था। वह उदार तथा व्यावहारिक था वह सदैव सासारिक परिस्थितियो से प्राप्त अनुभव के आधार पर अपने प्रारम्भिक दृष्टिकोणो मे परिवर्तन करने के लिए तैयार रहता था।

इन लेखको के अनुसार माल्थस को नैतिक नियत्रणो की कार्यक्षमता के बारे मे पूर्ण विश्वास नही था। वह समझता था कि यदि इसके द्वारा बुराइयाँ कम होने की अपेक्षा अधिक होने लगी तो पवित्रता अथवा सयम केवल गुणहीन होकर हानि-कारक भी सिद्ध हो सकते है। इससे वह यह भी समझता था कि ऐसे मनुष्यो की सख्या, जो उसके बतलाये हुए सरल मार्ग का अनुकरण करेंगे बहुत कम होगी। अतः उसके लिये अपने दृष्टिकोण को नम्र बनाने अथवा उसमे समझौता करने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नही था। वह परिस्थितियो के कारण काम, वासनाओ को तृप्त करने वाले ऐसे आचरणो, जिनके कारण कि सतान उत्पन्न न हो, को क्षमा करने के लिये बाध्य हो गया था यद्यपि इनको वह प्रारम्भ मे अधर्म समझता था। उसके लिये दो बुराइयो मे से किसी एक को चयन करने का प्रश्न था। वह जनसख्या के आधिक्य तथा अधर्म इन दोनो मे से अधर्म को ही कुछ अच्छा समझता था। इस प्रकार से पूर्ण पवित्रता के नियम के स्थान पर उसे विशिष्ट उपयोगिता का नियम अपनाना पड़ा। अब उसके निबन्ध मे नैतिक नियत्रण का कही नाम तक न था। अब उसे यह कहने मे भी किसी प्रकार की हिचकिचाहट मालूम नही होती थी कि विवाह के स्थान पर बुद्धिमत्ता

पूर्ण अवरोध के उपाय असामयिक मृत्यु की अपेक्षा श्रेष्ठतर हैं। इस प्रकार उसके निबन्ध के प्रथम संस्करण मे सयम तथा अधर्म के बीच किसी अन्य विकल्प का स्थान नही था। परन्तु बाद मे वह समझौतावादी हो गया था जैसा कि उसके बुद्धिमत्ता-पूर्ण अवरोध के विकल्प से स्पष्ट होता है। यद्यपि पुस्तक के प्रथम सस्करण मे वह एक बडा भारी आचारवादी तथा अनुसन्धानप्रिय व्यक्ति था, परन्तु वही बाद मे हम लोगो को इस प्रकार का सुझाव देने मे संतोष करने लगाः "यह हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी विषय-वासना को सन्तुष्ट करने की आदत को इस प्रकार की बनायें जिससे कि कोई बुराई न हो सके।" यह कहा जाता है कि उसका उपर्युक्त कथन इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी इ गित नही करता है कि एक अत्यन्त दृढ़ योगी धीरे-धीरे परन्तु निश्चयात्मक रूप से अपने आपको व्यावहारिक दार्शनिक मे परिणत कर नवमाल्थसवाद की नवीन विचारधारा के झडे के नीचे खडे होने के लिए उत्सुक हो गया है। इन लेखकों के अनुसार वास्तविकता यह है कि नवमाल्थसवादी किसी दूसरे समूह के नही है, वरन् इसके विपरीत माल्थस ने ही रियायतें देकर और समझौते की भावना को दिखाकर स्वयं इस आन्दोलन की आधारशिला रखी थी।

नवमाल्थसवाद का तात्पर्य संतति-निग्रह के उपायो के प्रयोग से है। एक देश मे जनसंख्या की बढ़ती हुई दर को रोकने के लिये संतति-निग्रह के स्थान पर माता-पिता का संयम अधिक सम्मानपूर्ण शब्द है। संतति-निग्रह के कृत्रिम उपाय अनेक कारणो से अच्छे समझे जाते हैं। प्रायः यह कहा जाता है कि किसी कुटुम्ब मे उत्पन्न होने वाले बच्चो की सख्या को, प्राप्त आर्थिक साधनो के अनुसार सीमित रखने के लिये, संतति-निग्रह आवश्यक है। तीन से अधिक बच्चो का उत्पन्न होना माता-पिता की अदूरदर्शिता है। अतः बच्चे व माता की शारीरिक वृद्धि एवं कल्याण के लिये गर्भ निरोधक उपाय आवश्यक हैं। यह भी कहा जाता है कि यह वैज्ञानिक उपाय है और इसका नैतिक, शारीरिक अथवा मानसिक दृष्टि मे कोई बुरा प्रभाव नही पडता।

यद्यपि यहाँ पर सतति-निग्रह के विपक्ष में दिए जाने वाले तर्कों का पूर्ण विश्लेषण करना सम्भव नही है तथापि उनकी कुछ व्याख्या किये बिना भी काम नही चल सकता।

कृत्रिम गर्भनिरोध के विरुद्ध सबमे बड़ा तर्क यह है कि यह अस्वाभाविक तथा अनैतिक है। अस्वाभाविक इसलिए है कि यह प्रकृति के विरुद्ध है। गर्भनिरोध के पक्षपाती इस विषय पर बहुत तर्क करते है। उनका कहना है कि "हमारे अधिकाश दैनिक कार्य—बाल बनाना, फव्वारे के नीचे स्नान करना, नाखून काटना, बाल संभालना, पुल, नाव, हवाई जहाज, बाध, खदाने, रेडियो, टेलीविजन आदि के प्रयोग प्रकृति के कार्यों मे हस्तक्षेप ही करते हैं। प्रकृति

के साथ हस्तक्षेप करके ही मनुष्य पशुस्तर से निकल कर उन्नति कर पाया है।"[10] यदि समाज में उपर्युक्त तथा अन्य बातें स्वाभाविक हो गई है तो, उनके मतानुसार, गर्भनिरोध भी पूर्ण स्वाभाविक तथा प्राकृतिक है।

यह समझ लेना चाहिये कि एक व्यक्ति कपड़े, जूते, रेडियो आदि का प्रयोग करता है तो वह कोई अस्वाभाविक कार्य नही करता। प्रकृति प्रदत्त पदार्थों को वह इस प्रकार प्रयोग करता है जिस प्रकार प्रकृति उन्हे प्रयोग करना चाहती है। ऐसा करने मे वह प्रकृति अथवा प्राकृतिक नियमो के विरुद्ध कोई कार्य नही करता है। फिर भी यदि बिना उपयुक्त आधार के वह कोई इमारत बनाएगा तो वह गिर पडेगी और उसे हानि होगी। अगर बुरा जूता बनायेगा तो वह पहनने वाले के पैरो मे घाव कर सकता है। यदि प्राकृतिक परिस्थितियो अथवा नियमो के विरुद्ध कोई बाँध बनाया जायगा, तो वह टूट सकता है और निकट के निवासियो को हानि पहुँचा सकता है। यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिए कि गर्भनिरोध के यन्त्र तथा औषधियाँ उपर्युक्त अनुसन्धानों अथवा सहायताओ के समान नही हैं। गर्भनिरोधक उपायो का प्रयोग अथवा उनके प्रयोगो का उद्देश्य अप्राकृतिक है, क्योकि यह सहवास के अन्तिम लक्ष्य मे बाधा डालता है और इसलिए यह प्राकृतिक नियमो के विरुद्ध माना जाता है।

गर्भनिरोध स्पष्ट रूप से अनैतिक है। यद्यपि नवमाल्थसवादियों तथा गर्भनिरोध के पक्षपातियो के लिये यह तर्क करना सम्भव है कि नैतिकता सापेक्ष है और यह रीति के अनुसार होती है। एक काल से दूसरे काल तथा एक सस्कृति से दूसरी सस्कृति मे नैतिक स्तर भिन्न होता है। नैतिकतायें मानवकृत हैं। वे स्थायी, स्थिर अथवा निरपेक्ष नही हो सकती है। गर्भनिरोध के एक अमरीकी उत्साही पक्षपाती ने लिखा है कि गर्भनिरोध अनैतिक अवश्य है, परन्तु यह एक सामाजिक आवश्यकता है। इसलिए हम इसे नैतिक बनाना चाहते है।

यहाँ इस बात पर बल देना चाहिये और प्रत्येक युवक तथा युवती को यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि नैतिकता अपरिवर्तनीय सिद्धान्तों पर आधारित होती है और ऐसे ही सिद्धान्तों पर इसे आधारित रहना चाहिए। परिवर्तनशील परिस्थितियो, अनुसधान तथा अन्वेषण, रॉकिट तथा अन्तरमहाद्वीपीय दूरमारक यन्त्र आदि नैतिकता के आधार को नही बदल सकते। संतति-निग्रह के पक्षपाती यह कह सकते है कि नैतिक नियम परिवर्तनशील है। वे यह कह सकते हैं कि जो आज अच्छा है वह कल बुरा हो सकता है और जो आज बुरा है वह कल प्रशंसनीय हो सकता है; परन्तु हत्या, चोरी, व्यभिचार तथा ऐसे ही अन्य अपराधो को भविष्य मे कभी भी निर्दोष नही कहा जा सकता है। नैतिकता मे कोई प्रजातन्त्रात्मक विधाता अथवा अनिवार्यता सम्मिलित नही है। किसी देश का बहुसख्यक वर्ग अल्पसख्य-

वर्ग को समाप्त करने की इच्छा कर सकता है अथवा वे स्वच्छन्द प्रेम तथा संतति-निग्रह की मांग कर सकते है और यह भी हो सकता है कि उनकी मांग पूरी कर दी जाय, परन्तु इसका तात्पर्य यह नही है कि जो कुछ हमने किया है वह नैतिक है। यदि मनुष्य संतति-निग्रह के उपायो का प्रयोग करना चाहते है तो वे ऐसा कर सकते हैं, परन्तु उन्हे अपना कार्य ठीक तथा नैतिक नही समझना चाहिए। अपराध तो अपराध ही है, चाहे उसे एक व्यक्ति करे चाहे पूरा समाज करे।

कुछ व्यक्तियो का यह कहना कि "सतति-निग्रह अनैतिक है, लेकिन समाज की दृष्टि से उपयोगी है और इसलिये इसे नैतिक बनाने का हमारा कर्तव्य है" एक बडा आपत्तिजनक दर्शन है। इस आधार पर क्या यह कहा जा सकता है कि हिटलर ने यहूदियो को देश से निकालना, मारना तथा कैद करना सामाजिक दृष्टि से उपयोगी समझा था तथा इसलिये उसका यह कार्य नैतिक था? भविष्य मे कुछ स्वार्थी समाज शास्त्री असाध्य रोगियो तथा वृद्ध व्यक्तियो को, सामाजिक बरबादी को दूर करने के लिए, मार डालना सामाजिक दृष्टि से उपयोगी समझ सकते हैं, परन्तु क्या ऐसा करना नैतिक होगा? इसलिए जो व्यक्ति नैतिकता की दृष्टि से क्या उचित है और क्या करना चाहिए, मे अन्तर नही समझते हैं, वे वास्तव मे यह नही जानते कि वे किसके बारे मे बात कर रहे हैं।

स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से केवल हम यही कह सकते हैं कि जितने डाक्टर संतति-निग्रह के पक्ष मे हैं उतने ही इसके विपक्ष मे भी हैं। वास्तव मे सतति-निग्रह एक बुराई ही है। चाहे मनुष्य ही उसका प्रयोग क्यो न करे यह अप्राकृतिक तथा अनैतिक है, क्योंकि यह प्रकृति-सगत मानव स्वभाव के विरुद्ध है और परमेश्वर द्वारा जिस उद्देश्य के लिए मनुष्य बनाया गया है उसके भी विरुद्ध है। व्यापक रूप से सतति निग्रह के उपायो का प्रयोग करने वाले इंगलैंड, स्वीडन, फ्रान्स तथा अन्य देशो की जनसख्या-आयोगो की रिपोर्टो से यह स्पष्ट होता है कि इन देशो के निवासी नैतिकता के स्तर मे किस सीमा तक गिर गए है।

नव-माल्थसवादी तथा विश्व की भरण-पोषण क्षमता

सतति-निग्रह आन्दोलन के नैतिक तथा अन्य पहलुओं को छोडकर हमे उन आधारभूत आर्थिक कारणों की व्याख्या करनी चाहिए जिनसे प्रभावित होकर नव-माल्थसवादी सतति-निग्रह का समर्थन करते हैं। नवमाल्थसवादी कहते है कि ससार की पोषण क्षमता प्राय चरम सीमा पर पहुँच चुकी है तथा अब मानव समाज के लिए केवल एक ही सभावना रह गई है, और वह है अनैसर्गिक अवरोधो का प्रयोग। इस सम्बन्ध मे वैज्ञानिकों के विवाद का अध्ययन बडा मनोरंजक है।

संतति-निग्रह करने वाले—कम से कम उनमे से बहुत से—इस बात को अस्वीकार नही करते हैं कि संसार मे वृद्धि के लिए स्थान है, परन्तु वह कहते है कि इससे लाभ क्या होगा? कुछ समय पश्चात् वर्तमान सम्पूर्ण स्थान भर जायगा।

संसार के आर्थिक साधन सीमित है और कभी न कभी बिल्कुल समाप्त हो जायेंगे।" यद्यपि यह कथन कुछ सीमा तक ठीक है; लेकिन फिर भी यह तर्क नैराश्यपूर्ण है। जिस प्रकार संसार के साधन सीमित हैं उसी प्रकार जनसंख्या की वृद्धि भी सीमित है। यद्यपि इनमे से कोई भी अनन्त नही है परन्तु वे अनन्त रूप से विकसित होने योग्य है। उनकी सीमायें मनुष्य को ज्ञात नही हैं, क्योंकि संसार के साधनों के विकास की सभावनाओं का अन्वेषण तो मानव ने अभी प्रारम्भ किया है। क्या पृथ्वी अपनी जनसंख्या का भरणपोषण कर सकती है? इस प्रश्न का उत्तर संयुक्त राष्ट्र सघ के जनसख्या विभाग ने निम्न प्रकार दिया है: "कभी-कभी यह कहा जाता है कि यदि जनसख्या वर्तमान दर से बढती जायगी तो पृथ्वी के साधन शीघ्र ही अपनी सीमा पर पहुँच जायेंगे। यदि मनुष्य अपनी सतानोत्पत्ति पर नियंत्रण नही करेगा तो भुखमरी, एव युद्ध इस वृद्धि को रोक देंगे। वैज्ञानिक अध्ययन इस विचारधारा का अधिक समर्थन नही करता है। पृथ्वी की खाद्य तथा जीवनोपयोगी वस्तुओं की उत्पादनक्षमता मानव के अनुसन्धानों पर निर्भर होने के कारण अत्यधिक लोचदार है। यहाँ तक कि वर्तमान ज्ञान तथा समाज की वर्तमान दशा के अनुसार भी यह अनुमान लगाया जाता है कि उचित प्रणाली अपनाई जाय तो वर्तमान जनसख्या से अधिक जनसख्या का भरण-पोषण किया जा सकता है। यदि सम्पूर्ण सभावित उर्वर भूखन्ड जोता जाने लगे और यदि आधुनिक कृषि विज्ञान का भलीभाँति सभी स्थानो पर प्रयोग होने लगे तो खाद्य पदार्थो का उत्पादन कई गुना बढ सकता है। कोयला, कच्चा लोहा, शक्ति के अन्य साधन तथा औद्योगिक कच्चे माल आदि के स्रोतों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यदि उनका उचित प्रयोग किया जाय तो ये बढती हुई जनसख्या की आवश्यकता की पूर्ति बहुत समय तक करने के लिए पर्याप्त हैं। सूर्य तथा अणुशक्ति के प्रयोग की सम्भावनाओं का अनुसन्धान तो केवल अभी प्रारम्भ ही किया गया है।"[11] यह एक अत्यन्त मानवीय तथा उत्तरदायी संस्था का कथन है और इसे हम एक अज्ञानी व्यक्ति के कथन के समान महत्वहीन समझ कर नही टाल सकते है।

मनुष्य के द्वारा अपने अधिकार मे रहने वाले साधनो के प्रयोग करने की संभावनायें बहुत है। उदाहरण के लिए वनस्पतिशास्त्रियों ने अभी तक कम से कम २५०,००० उपजातियो का वर्गीकरण किया है। इनके अतिरिक्त अनजानी कितनी है, अभी तक कोई नही जानता है। इन २५०,००० मे से केवल २,५०० उपजातियाँ अर्थात् एक प्रतिशत का प्रयोग अभी तक मानव के हित मे किया गया है। इनमे से कुछ साधनो का प्रयोग तो अभी ही किया गया है। उदाहरण के लिए

Cellulose को Rayon, Plastics तथा Paints मे और mould को anti-biotics आदि मे परिवर्तित किया गया है। हमे यह मालूम है कि किस प्रकार कुछ खाद्य पदार्थ अथवा व्यापारिक उपयोगी वस्तुएँ हजारो वर्षो तक बेकार ही पड़ी रही है। आलू तथा रबर इसके उदाहरण है। कुछ लोगों का कहना है कि बहुत दिनो तक टमाटर की खेती सजावटी फूलो के लिए की जाती थी। फिनलैंड के प्रसिद्ध विद्वान प्रोफेसर Atturi Virtanen ने लिखा है कि "ससार की खाद्य पूर्ति मे वृद्धि की सभावनायें अत्यधिक है। नई खोज के हुये बिना भी वर्तमान ज्ञान के प्रयोग से ही हम चार बिलियन मनुष्यों के लिए खाद्य पदार्थ पैदा कर सकते है।[12]

ससार के साधनो तथा जनसख्या की वृद्धि के सबन्ध का विस्तृत अध्ययन करने के पश्चात् W. S. Woyotinskv तथा E. S. Woyotinsky ने लिखा है कि "पृथ्वी की पोषण क्षमता की मुख्य समस्या भरण-पोषण करने वाले मानवो की सख्या की तुलना मे उर्वर भूमि की कमी नही है, वरन् समस्या यह है कि प्राप्त 'साधनो को पूर्णरूप से प्रयोग करने की मानवीय योग्यता अपर्याप्त है।"[13] अन्त मे ससार के सारे देश, जिनमे विकसित कृषि प्रणालियो वाले देश भी सम्मिलित है, खाद्य की फसलो के वर्तमान उत्पादन से अधिक उत्पादन कर सकते है......यह कोई नहीं जानता कि पृथ्वी की पोषण क्षमता की अन्तिम सीमा पर हम लोग कब पहुँचेगे। जो कुछ भी हम जानते है वह यह है कि यदि हजारो वर्षो से नही तो शताब्दियो से मनुष्य ने खाद्य उत्पादन के लिये उन वैज्ञानिक यत्रो का प्रयोग नही किया था जिनका प्रयोग वह इस समय प्राकृतिक रहस्यो को दृष्टिगोचर करने के लिये कर रहा है। इनके बारे मे वह पहले कुछ सोच ही नही सकता था।"[14]

इस प्रकार के तथ्य, आँकड़े तथा दृष्टिकोण निस्सदेह आशावादी है और ये ससार मे माल्थस के भय के विद्यमान होने के लिये कोई स्थान नही छोडते। भविष्य मे बहुत समय तक अधिकाधिक बढती हुई जनसख्या को अपनी शारीरिक आवश्यकता के लिये वर्तमान ज्ञान का प्रयोग करने से ही पोषणतत्व प्राप्त होते रहेगे, तब तक विज्ञान और भी तीव्र गति से प्रगति करेगा। हमे पूर्ण विश्वास होना चाहिये कि प्रत्येक पीढी अपनी मस्या को हल करने मे समर्थ होगी। विज्ञान के द्वारा यह पूर्णतया सभव है। क्या ससार आगे की पीढी का भरण-पोषण कर सकता है? वैज्ञानिक अपने क्षेत्र मे इस प्रश्न का काफी सीधा व सरल उत्तर दे सकता है और उनके दृष्टिकोण से यह उत्तर पूर्ण रूप से 'हां' मे है।

उपरोक्त वर्णन से यह भली भाँति ज्ञात हो जाता है कि जनसख्या की

---

12. At the Conference of Pure and Applied Chemistry, September 1951, New York, quoted by Novett in *"Too Many of Us" P. 162.*
13. W. S. and E. S. Woyotinsky. *World Population and Production P. 324*
14. Ibid: *P.* 594.

समस्या के बारे में निराशावादी तथा आशावादी दोनों दृष्टिकोण है। माल्थस का *विवाद एक सङ्कट-काल में आरम्भ हुआ था, जिससे निराशावादी दृष्टिकोण का* जन्म हुआ और सङ्कट तथा कष्ट जनसंख्या की वृद्धि से बढ़ता गया। इसलिये अन्य बातों के साथ-साथ इस काल की कठिनाइयों के लिये जनसंख्या की वृद्धि भी दोषी ठहराई गई। यद्यपि यह कठिनाइयाँ निस्सदेह युद्ध के कारण थी, परन्तु जनसंख्या की वृद्धि उद्योग, यातायात, कृषि तथा औषधियों की उन्नति के कारण हुई थी। ऐसा कोई प्रमाण नही है जिससे कि यह सिद्ध हो सके कि कृषि की उन्नति जनसंख्या की वृद्धि से कम हुई है। निराशावादी यह कहते है कि इतिहास के किसी काल में मानव जाति को पर्याप्त भोजन नही मिला है और कम से कम इस समय तो ससार के अधिकांश व्यक्ति आवश्यकता से कम भोजन पाते है। उनका विचार है कि ससार के २६०० मिलियन व्यक्तियों को सतोषपूर्ण भोजन देना असभव है। उनका कहना है कि वर्तमान जनसंख्या की ऊँची वृद्धि दर-६०,००० प्रति-दिन—समस्या को और भी जटिल बना देती है। यद्यपि वे स्वीकार करते है कि खाद्य सामग्री में वृद्धि करने की सभावनायें बहुत हैं, परन्तु उनका कहना है कि वे इतनी शीघ्रता तथा तेजी के साथ *विकसित नहीं की जा सकती हैं जितनी शीघ्रता से जनसंख्या में वृद्धि होती है।*

आशावादी, फिर भी, वैज्ञानिक अनुसन्धानों और उनके प्रयोग में समय के अन्तर की ओर सकेत करते है। वह विज्ञान की भावी सम्भावनाओं की ओर भी ध्यान दिलाते है। परन्तु अब विज्ञान न माल्थस के समय से कहीं अधिक प्रगति कर ली है और मनुष्य का प्रकृति पर नियन्त्रण पहले से अधिक है। समुद्र तथा रेगिस्तान खाद्य पदार्थ प्रदान कर सकते है, तथा ऊन का उत्पादन कारखानों में किया जा सकता है। आशावादियों का यह कहना है कि सारे ससार में वर्तमान कृषि-प्रणालियाँ उन प्रणालियों से बहुत ही हीन है जो कृषि प्रयोगों तथा अनुसन्धानों द्वारा अभी तक जानी जा सकती थी। वे अच्छी तरह समझते है कि इन क्षेत्रों में प्रगति की अनन्त सम्भावनाएं हैं।"[15]

G. F. McCleary ने अपनी पुस्तक "Peopling the British Common Wealth" में स्पष्ट किया है कि जनसंख्या के आधिक्य का डर असत्य तथा भयावह है। उसने उस भविष्यवाणी की ओर सकेत किया है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त से पहले दूर देशों में अँगरेज लोग इतनी संख्या में हो जायेंगे जितने कि इंगलैंड में है और १६४० ई० तक ही आस्ट्रेलिया में ५० मिलियन व्यक्ति हो जावेंगे। लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि यह स्वप्न जन्म दर कम हो जाने के कारण किस प्रकार असत्य सिद्ध हुआ है। जन्म दर गिरने के कारण तो इंगलैंड में लोग बाहर से आने लगे है। काल्पनिक प्रेत ने प्रगति के मार्ग में बाधा डाली है। "ऐसा ज्ञात

15. "*Food and People*" a UNESCO publication contains an optimist pessimist controversy between Sir John Russell and Aldous Huxley

होता है कि हमारे राष्ट्रमडल पर सुखद हाथ ने अधिकार जमा लिया है—और यह सुदख परन्तु धूर्त तथा लोपकारी हाथ संकल्पित वन्ध्यता का है। किसी विदेशी शत्रु ने हमारे ऊपर यह हाथ नही फैलाया, वरन् हमने अपने आप इसे अपने ऊपर डाल लिया है।'

हम नवमाल्थसवाद सम्बन्धी इस विवेचन को, बरट्रेन्ड रसेल (Bertrand-Russel) की **"Principles of Social Reconstruction"** नामक पुस्तक से कुछ अश उद्धृत करते हुए समाप्त करते है। विश्व प्रसिद्ध तत्वज्ञानी ने इस सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त करते हुये लिखा है कि "वर्तमान समय मे जन्म दर मे कमी स्वय कोई खेदजनक बात नही है, खेदजनक बात तो यह है कि कमी जनसख्या के श्रेष्ठतम वर्ग मे ही सबसे अधिक है। यदि *जनसख्या के श्रेष्ठतम वर्ग की वन्ध्यता* को रोकना है तो प्रथम तथा तीव्रतम आवश्यकता इस बात की है कि कुटुम्बो को सीमित रखने के लिए आर्थिक उद्देश्यो को समाप्त किया जाय।"

विशेष अध्ययन सूची

1. T. R. Malthus : An Essay on Population.
2. *Gide & Rist* : *A History of Economic Doctrines*, Chapter, III
3. L H. Haney : History of Economic Thought, Ch. XII.
4. Eric Roll A History of Economic Thought, Ch IV.

प्रश्न

1. 'There is reason to believe that were Malthus alive, he would not be a Neo-Malthusian' ?
   Examine the above statement
   (आगरा, १६४६)
2. 'Malthus gave the problem of population a definiteness and distinctness which made its significance tangible' (Haney). Comment
   Trace the changes Malthusian theory has undergone during the last 50 years.
   (आगरा, १६५६)
3. Indicate the circumstances which influenced Malthus in his formulation of the theory of population Has the Malthusian theory stood the test of time ?
   (कर्नाटक, १६५७)
4. Examine critically Multhusian theory of population in the light of Modern thought.
   (राजस्थान, १६४६)
5. Explain the Malthusian theory of population and give the changes it has undergone during the last fifty years.
   (राजस्थान, १६५७)

अध्याय १०

डेविड रिकार्डो

(David Ricardo)

अर्थशास्त्र के जनक एडम स्मिथ के पश्चात् आर्थिक विचारो के इतिहास मे डेविड रिकार्डो[1] का दूसरा स्थान है। यदि स्मिथ सस्थापक सम्प्रदाय के सस्थापक थे तो रिकार्डो इस सम्प्रदाय के केन्द्रीय स्तम्भ थे। उन्होंने एडम स्मिथ के विचारो का पुष्टिकरण किया तथा वितरण के क्षेत्र मे अपने विचारो के योगदान के द्वारा अर्थशास्त्र को पूर्ण बनाया क्योकि उनके पूर्वाधिकारी एडम स्मिथ ने उत्पादन को ही अपने अध्ययन तथा लेखन का विषय बनाया था। परिणामस्वरूप स्मिथ के विचार वितरण की समस्याओ पर अधूरे तथा दोषपूर्ण रहे। स्मिथ के इस अधूरे कार्य को रिकार्डो ने वितरण को अपना विशेष रूप से अध्ययन विषय बनाकर पूरा किया।

---

1. डेविड रिकार्डो (१७७२ ई०—१८२३ ई०) का जन्म १७७२ ई० मे लन्दन मे यहूदी परिवार मे हुआ था। उनके पिता हालैण्ड से आकर लन्दन मे बस गये थे तथा अपने परिश्रम तथा बुद्धि द्वारा कुछ समय पश्चात् लन्दन शेयर बाजार के एक प्रसिद्ध सदस्य बन गये थे। रिकार्डो की प्रारम्भिक शिक्षा लन्दन मे हुई। १२ वर्ष की आयु मे उनको दो वर्ष के लिये वाणिज्य शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से हालैण्ड भेज दिया गया। १४ वर्ष की छोटी आयु मे जब उनके अन्य साथी सम्भवत खेलकूद मे व्यस्त थे, युवक रिकार्डो ने अपने पिता के कारबार का कार्यभार सभालना आरम्भ कर दिया तथा थोडे ही समय मे सट्टे तथा दलाली सम्बन्धी सभी बातो का ज्ञान प्राप्त कर लिया। २१ वर्ष की आयु मे उन्होंने Priscilla Anne Wilkinson नामक एक युवती से विवाह किया तथा तत्पश्चात् ईसाई धर्म को अपना लिया जिसके कारण पिता तथा पुत्र के आपसी सम्बन्ध खराब हो गये तथा रिकार्डो को अपने पिता के कारबार को छोडना पडा।

   पिता से अलग होने के पश्चात् रिकार्डो ने शेयर बाजार मे अपना निजी स्वतन्त्र रूप से कार्य आरम्भ किया तथा अपनी एकमात्र योग्यता के कारण अल्प समय मे ही बहुत अधिक धनी बन गये। २६ वर्ष की कम आयु मे जब बहुत से व्यक्ति विश्वविद्यालयो मे शिक्षा पाते रहते है, अथवा जीविका की समस्या का सामना करते है, रिकार्डो लन्दन स्टाक बाजार के एक धनी व प्रसिद्ध

रिकार्डो का लेखन कार्य

रिकार्डो के लेखन कार्य मे उन के समय की अनेक तार्किक आर्थिक समस्याओ से सम्बन्धित अनेक लेख व पुस्तिकाएँ तथा १८१७ ई० मे प्रकाशित उन की प्रसिद्ध पुस्तक **'Principles of Political and Economy Taxation'** सम्मिलित है। उन की छोटी पुस्तिकाओं मे से कुछ मे तो मुद्रा तथा वित्तिय समस्याओ सम्बन्धी विचारो का वर्णन किया है तथा अन्य दूसरी पुस्तिकाओ की विषय सामग्री कृषि है। इन पुस्तिकाओ के अध्ययन द्वारा लेखक के उच्चत्तर विचारो, उदारता, आर्थिक

सदस्य थे। दस वर्ष के अल्प समय मे उन्होने £ २,०००,००० धनराशि कमा ली थी। १८१४ ई० मे उन्होने फाटके (speculation) तथा शेयर बाजार से अवकाश प्राप्त करके Gloucestershire मे स्थित अपनी भूसम्पत्ति Gatcomb Park मे रहना आरम्भ कर दिया था तथा वही वे अपने जीवन के शेष समय तक रहे। परन्तु साहित्यिक विषयो मे उनकी रुचि अवकाश के पश्चात् भी बनी रही।

रिकार्डो ने एडम स्मिथ की प्रसिद्ध पुस्तक **Wealth of Nations** को सर्वप्रथम १७६६ ई० मे पढा था तथा पुस्तक से वे इतने अधिक प्रभावित हुये कि आर्थिक प्रश्नो की ओर उनका ध्यान आकर्षित होने लगा। १८१६ ई० मे उन्होने राजनीति मे प्रवेश किया तथा ससद (House of Commons) के सदस्य बन गये। वे राजनीति तथा ससदीय मामलो मे काफी रुचि रखते थे तथा अपने समय की सभी विवादात्मक आर्थिक व राजनैतिक समस्याओ मे भाग लेकर अपने विचारो का योगदान देते थे। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जॉन स्टुवर्ट मिल के पिता जेम्स स्टुवर्ट मिल, जे० आर० मेक्लन (J. R. McCulloch), प्रसिद्ध फ्रांसीसी अर्थशास्त्री जे० बी० से (J B. Say) तथा थामस रावर्ट माल्थस, रिकार्डो के गहरे मित्र थे जिनमे वे वहुदा अनेक सैद्धान्तिक व व्यावहारिक आर्थिक समस्याओ पर विचार विनिमय किया करते थे। रिकार्डो व माल्थस के पत्र (Ricardo-Malthus Letters) इस सम्बन्ध मे काफी प्रसिद्ध है तथा इन पत्रो मे दो महान अर्थशास्त्रियो के आर्थिक विचार प्रदर्शित है। इन अर्थशास्त्रियो के अतिरिक्त एक अन्य व्यक्ति ट्रॉवर (Trower), जो स्टाक एक्सचेज का सदस्य तथा रिकार्डो के समान बैंक ऑफ इंगलैण्ड का अशधारी भी था, से भी रिकार्डो की मित्रता थी तथा ट्रावर से रिकार्डो बैंकिंग तथा वित्त सम्बन्धी मामलो मे विचार विनिमय करते थे। माल्थस के समान रिकार्डो भी Political Economy Club के एक सस्थापक सदस्य थे। ससद के सदस्य होने के नाते रिकार्डो ससदीय सुधारो, व्यापक मतदान तथा गुप्त मतदान पद्धतियो के भारी समर्थक थे। कृषि, चलन, स्वतन्त्र व्यापार, तथा अखबारो की स्वतन्त्रता आदि विषयो पर उनके उदार विचार थे। धनी होते हुये भी वे उदारता के देवता थे तथा खैराती सस्थाओ तथा गरीबो की सहायता के लिये उदारता के साथ दिल खोल कर धन देते थे। १८२३ ई० मे उनका स्वर्गवास हो गया। अपने पीछे उन्होने पत्नी, तीन पुत्रो व चार पुत्रियों को छोडा।

समस्याओं के विश्लेषण की विधि तथा शैली के सम्बन्ध मे भारी ज्ञान प्राप्त होता है। यद्यपि रिकार्डो एडम स्मिथ के विचारो के भारी समर्थक थे तथा उन की गणना स्मिथ के अनुयायियो मे होती है परन्तु रिकार्डो की लेखन विधि स्मिथ से भिन्न थी। स्मिथ की शैली प्रभावशाली तथा सरल थी तथा अपने कथन की सत्यता को सिद्ध करने के लिये स्मिथ ने ऐतिहासिक उदाहरण तथा सामग्री प्रस्तुत की है। इस के विपरीत रिकार्डो की शैली रूखी, भाषा कठिन तथा विचारो को व्यक्त करने का ढंग ऐसा है कि कभी कभी तो उन के विचार समझदार तथा बुद्धिमान व्यक्ति की भी समझ के बाहर है। उन के अनुमान तथा मान्यतायें असत्य तथा वास्तविकता से बहुत दूर हैं। वे आदर्श तथा अव्यावहारिक समार मे रहने मे आनन्द लेते हैं। मनमानी मान्यताओ के आधार पर उन्होंने तर्क की निगमन रीति का प्रयोग करके ऐसे निष्कर्ष प्राप्त किये है जिन का वास्तविक समार से कोई सम्बन्ध नही है। उनकी भाषा-सारिणी तथा सामग्री की रचना दोषपूर्ण है तथा उन की रीति की कटु आलोचना की गई है। नास्सो सीनियर ने रिकार्डो के सम्बन्ध मे अपनी राय व्यक्त करते हुए लिखा है कि रिकार्डो एक बहुत असत्य लेखक थे जिन को महानता प्राप्त हुई है।

मौद्रिक तथा वित्तिय सम्बन्धी समस्याओ पर रिकार्डो द्वारा लिखित प्रथम पुस्तिका **'The High Price of Bullion, a Proof of The Depreciation of Bank notes'** १८०९ ई० मे प्रकाशित हुई थी। यह पुस्तिका रिकार्डो द्वारा लिखित उन अनेक पत्रो का सग्रह है जो समय समय पर **Morning Chronicle** पत्रिका मे प्रकाशित हुये थे। रिकार्डो को विनिय तथा बैंकिंग सम्बन्धी अन्य समस्याओं का व्यावहारिक ज्ञान था क्योकि फाटके का कार्य उन्होंने छोटी आयु से ही आरम्भ किया था। उन्होंने उस समय विद्यमान 'Bullion Controversy' मे अपने विचारो का भारी योगदान दिया। Bullion Committee के सदस्य होने के नाते उन्होंने इस समिति की रिपोर्ट मे अपने अधिकाश विचार व्यक्त किये थे। उन्होंने इस सत्य को भली प्रकार स्पष्ट किया कि मुद्रा के विषय मे विशेष महत्वपूर्ण बात मुद्रा का मूल्य है न कि यह कि मुद्रा धातु की बनी है अथवा कागज की बनी है। मुद्रा से सम्बन्धी रिकार्डो की दूसरी **'Proposals for an Economical and Secure Currency with Observations on the Profits of the Bank of England'** नामक पुस्तिका १८१६ ई० मे प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तिका मे अन्य बातो के अतिरिक्त रिकार्डो ने इगलैंड की सरकार को स्वर्ण-धातु मान (**Gold Bullion Standard**), जिस के अन्तर्गत पत्र मुद्रा स्वर्ण-सिक्को के स्थान पर स्वर्ण की बनी एक निश्चित भार की छड़ों के रूप मे परिवर्तनशील थी, को अपनाने का सुझाव दिया क्योकि यह स्वर्ण-धातु मान स्वर्ण-चलन मान की अपेक्षा मितव्ययी था तथा इस को चलाने के लिये स्वर्ण-चलन मान की अपेक्षा कम स्वर्ण की आवश्यकता थी इस मान मे स्वर्ण के सिक्के चलन मे न होने के कारण राज्य को सिक्को के मुद्रण के

व्यय मे बहुत मितव्ययिता सम्भव होगी तथा घिसावट के कारण स्वर्ण की हानि नहीं होगी तथा साथ ही साथ स्वर्ण-चलन मान का विशेष गुण—अत्यधिक चलन निकासी का भय न रहना—भी विद्यमान रहेगा। इसके अतिरिक्त कोष के रूप में भी स्वर्ण कम मात्रा में रखकर कार्य चलाया जा सकता था।

मौद्रिक तथा वित्तिय समस्याओ पर लिखने के अतिरिक्त रिकार्डो ने अपने उस समय विद्यमान Corn Laws सम्बन्धी विवाद मे भी भाग लिया। १८१५ ई० मे रिकार्डो ने **'The Influence of a Low Price of Corn on the Profits of Stock'** नामक तथा १८२२ ई० मे **'On Protection to Agriculture'** नामक पुस्तिकाएँ लिखी थी। ये दोनो पुस्तिकायें स्वतन्त्र व्यापार व सरक्षण के विवाद मे सम्बन्धित थी तथा इनमे रिकार्डो ने स्वतन्त्रव्यापार का समथन तथा खाद्य के आयानो को आयात-करो से मुक्त करने का अनुरोध किया था। रिकार्डो ने अपने तर्को के द्वारा इन पुस्तिकाओ मे यह सिद्ध करने का भरसक प्रयास किया कि खाद्य के आयानो पर कर लगाने के कारण मजदूरी मे वृद्धि तथा लाभ मे कमी होती है। लाभो मे कमी होने से पूजी के संचय पर खराब प्रभाव पडता है जिसके कारण देश का औद्योगिक विकास कठिन कार्य हो जाता है। खाद्य का आयात स्वतन्त्र तथा सभी देशो मे होना चाहिये। रिकार्डो की पुस्तिका **'On Protection to Agriculture'** की प्रशसा करते हुये McCulloch ने लिखा है कि यह पुस्तिका रिकार्डो की सर्वोत्तम रचना है तथा यदि रिकार्डो ने अन्य कुछ और भी न लिखा होता तो भी केवल इसी पुस्तिका के आधार पर उन की गणना सदैव प्रथम श्रेणी के अर्थशास्त्रियो मे की जाती। इनके अतिरिक्त रिकार्डो की **'Plans for the Establishment of a National Bank'** तथा **'Notes on Malthus' Principles of Political Economy'** नामक पुस्तिकायें १८२३ ई० मे उन की मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हुई थी। इनके अतिरिक्त पुस्तिकाओ की सूची मे **'Essay on the Funding system'** नामक पुस्तिका भी सम्मिलित है।

यद्यपि रिकार्डो ने अनेक पुस्तिकाओ का लेखन किया था तथा इन पुस्तिकाओ का रिकार्डो को प्रसिद्ध बनाने मे काफी महत्व भी है, परन्तु यह होते हुये भी रिकार्डो की आर्थिक विचारो के इतिहास मे महान प्रसिद्धि की एकमात्र आधारशिला उनकी १८१७ ई० मे प्रकाशित पुस्तक **Principles of Political Economy and Taxation** है। पुस्तक को लिखने के लिये रिकार्डो को उनके मित्र जेम्स मिल ने लाचार किया था। अधिक शिक्षित न होने के कारण यद्यपि पुस्तक मे प्रभावशाली शैली तथा उपयुक्त भाषा का अभाव है परन्तु इस पुस्तक मे संस्थापक सम्प्रदाय के प्रथम नेता एडम स्मिथ के सिद्धान्तो का इस अच्छे ढग मे विकास तथा सुधार किया गया है कि रिकार्डो को संस्थापक अर्थशास्त्र का सच्चा विकासकर्त्ता (True Developer of Classical Economics) कहा

जा सकता है। इसके अतिरिक्त एक मुख्य विशेषता इस पुस्तक की यह है कि लेखक ने वितरण को विशेषरूप से अपना अध्ययन विषय बनाया है। एडम स्मिथ मूल्य। धन तथा उत्पादन को ही अर्थशास्त्र का प्रमुख अध्ययन विषय समझते थे परन्तु व्यावहारिक ससार से विशेष सम्बन्ध होने के कारण रिकार्डो के विचारानुसार अर्थशास्त्र की प्रमुख समस्या उन सिद्धान्तो का प्रतिपादन करना है जिनके अनुसार कुल राष्ट्रीय उत्पादन का श्रमिकों, तथा भूस्वामियो के मध्य वेतन, लाभ तथा लगान के रूप मे वितरण होना चाहिये। वितरण के सिद्धान्तों को प्रतिपादन करने के महत्व की चर्चा रिकार्डो ने माल्थस को लिखित अपने एक पत्र मे भी की है।

रिकार्डो के समय मे वितरण की समस्या का केवल शास्त्रीय महत्व ही नही, बल्कि समान व्यावहारिक महत्व भी था। बड़े पैमाने की उत्पादन प्रणाली के फलस्वरूप अधिक वेतनो, बढते हुये मूल्यो तथा श्रमिको के औद्योगिक केन्द्रो पर केन्द्रित हो जाने के कारण इगलैड मे अनेक आर्थिक व सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हो गई थी। करो का भार व्यापारियो पर बहुत अधिक था। एक ओर पू जीपति राजनैतिक व आर्थिक सत्ता प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे तथा दूसरी ओर श्रमिको ने अपने सघ बनाने आरम्भ कर दिये थे। लडाई के कारण सरकार के सार्वजनिक ऋण मे अत्यधिक वृद्धि हो गई थी। भूस्वामियो को भय था कि खाद्य के स्वतन्त्र आयात होने के कारण उनकी लगान आय म कमी हो जावेगी तथा इस भयवश वे खाद्य सामग्री के आयात पर अधिक कर लगाने के पक्ष मे थे। ससद मे अनेक राजनैतिक दल थे तथा बहुधा सार्वजनिक हितो के विपरीत कानून बनाये जा रहे थे। ऐसी असन्तोषजनक आर्थिक व राजनैतिक परिस्थिति मे रिकार्डो ने साहस करके अपनी पुस्तक मे मूल्य, वितरण, विदेशी व्यापार व करारोपण के सिद्धान्तो का वर्णन किया। रिकार्डो की प्रमुख पुस्तिकाये व पुस्तक निम्नलिखित है।

पुस्तिकायें व पुस्तक	प्रकाशन-वर्ष
१. The High Price of Bullion, a Proof of the Depreciation of Bank Notes.	१८०६ ई०
२. Reply to Mr. Bosanquet's Practical Observation on the Report of the Bullion Committee.	१८११ ई०
३. Proposals for an Economical and Secure Currency, with Observation on the Profits of the Bank of England.	१८१६ ई०
४. The Influence of a Low Price of Corn on the Profits of Stock.	१८१५ ई०
५. On Protection to Agriculture	१८२२ ई०
६. Plans for the Establishment of a National Bank	१८२३ ई०
७. Notes on Malthus' Principles of Political Economy.	१८२३ ई०
८. Essay on the Funding System	
पुस्तक	
१. Principles of Political Economy and Taxation.	१८१७ ई०

एडम स्मिथ की पुस्तक **'Wealth of Nations'** तथा इंग्लैंड में अपने समय की आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव के अतिरिक्त रिकार्डो की विचारधारा पर माल्थस के प्रसिद्ध **'Essay On Population'** का भी गहरा प्रभाव पड़ा था। यद्यपि रिकार्डो माल्थस के अत्युत्पादन के सिद्धान्त से सहमत नहीं थे तथा जे० बी० से के इस कथन के कि 'पूर्ति स्वयं अपनी माँग उत्पन्न करती है तथा सामान्य अत्युत्पादन असम्भव है' समर्थक थे, परन्तु जनसंख्या व लगान के विषयों पर रिकार्डो माल्थस के विचारों से काफी प्रभावित हुये थे। उन्होंने माल्थस के लगान की भारी प्रशंसा की है। माल्थस के जनसंख्या निबन्ध की प्रशंसा करते हुये रिकार्डो ने लिखा है कि "इस महान लेखन कार्य के आलोचकों के आक्रमणों से इसको अधिक शक्ति प्राप्त हुई है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि विज्ञान के विकास के साथ, जिसका आरम्भ यह निबन्ध है, इस निबन्ध की प्रसिद्धि और अधिक होगी।" रिकार्डो का प्रसिद्ध लगान सिद्धान्त एक प्रकार से माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त पर आधारित है।

अब हम रिकार्डो के मुख्य आर्थिक विचारों का निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन कर सकते हैं।

(१) मूल्य सिद्धान्त।
(२) वितरण सिद्धान्त।
(३) विदेशी व्यापार का सिद्धान्त।
(४) करारोपण सम्बन्धी विचार।
(५) अन्य आर्थिक विचार।

(१) मूल्य सिद्धान्त

रिकार्डो ने अपनी पुस्तक के जिस अध्याय मे मूल्य का विवेचन किया है वह पुस्तक मे अन्य सभी अध्यायों से बड़ा है। रिकार्डो ने यह स्पष्ट किया है कि यद्यपि मूल्य की प्राप्ति के लिये वस्तु मे उपयोगिता की विशेषता का होना आवश्यक है परन्तु उपयोगिता मूल्य की माप कदापि नही हो सकती है। अपने इस कथन के पक्ष मे रिकार्डो ने एक ओर तो वायु व पानी, जो अत्यधिक उपयोगी बल्कि जीवन के लिए आवश्यक पदार्थ हैं, जिनका विनिमय मूल्य शून्य के समान होता है, का उदाहरण दिया है तथा दूसरी ओर स्वर्ण जिसकी कम उपयोगिता होते हुये भी अधिक विनिमय मूल्य होता है, का उदाहरण दिया है। रिकार्डो का कहना है कि यदि वस्तु की उपयोगिता उसके मूल्य का माप हुई होती तो स्वर्ण का बहुत कम तथा हवा व पानी के समान बहुत उपयोगी वस्तुओ का बहुत ऊँचा मूल्य हुआ होता। रिकार्डो के मतानुसार किसी वस्तु का विनिमय मूल्य दो बातो का परिणाम होता है—प्रथम उस वस्तु की दुर्लभता अथवा सीमित पूर्ति का तथा दूसरे उस वस्तु को प्राप्त करने अथवा बनाने मे व्यय हुये श्रम की मात्रा का। रिकार्डो का कहना है कि अतुल्य मूर्तियों, पुस्तकों, पुराने सिक्को व पुरानी मदिरा इत्यादि उन असाधारण कुछ वस्तुओ को छोड़ कर जिनकी मात्रा अथवा पूर्ति को श्रम के द्वारा किसी प्रकार बढ़ाया नहीं जा सकता है, अन्य शेष उन सभी वस्तुओ का मूल्य, जिनकी दैनिक जीवन मे जन साधारण को आवश्यकता होती है, उन वस्तुओं को प्राप्त करने मे व्यय किये गये श्रम की मात्रा के द्वारा निर्धारित होती है। रिकार्डो के विचारानुसार सभी पुन. उत्पन्नीय (Reproducible) वस्तुओं का विनिमय मूल्य उन वस्तुओ को उत्पन्न करने मे व्यय किये गये श्रम की मात्रा से निर्धारित होता है। वस्तुओ के बीच होने वाले विनिमय का आधार श्रम की मात्रा द्वारा निर्धारित अनुपात होता है। यदि किसी वस्तु अ की एक इकाई को उत्पन्न करने के लिये एक घन्टे के श्रम की आवश्यकता होती है तथा अन्य किसी वस्तु ब की एक इकाई को उत्पन्न करने के लिये समान प्रकार के दो घण्टे के श्रम की आवश्यकता होती है तो ऐसी स्थिति मे अ वस्तु की दो इकाइयो तथा ब वस्तु की एक इकाई का विनिमय मूल्य समान होगा। संक्षेप मे रिकार्डो के मूल्य सिद्धान्त मे वस्तुओ के विनिमय मूल्य का एकमात्र आधार वस्तुओ को बनाने मे व्यय किये गये श्रम की मात्रा है। रिकार्डो के मूल्य के श्रम-सिद्धान्त का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है प्रतियोगिता के अन्तर्गत बाजार मे वस्तुओ का विनिमय मूल्य उन

वस्तुओ को बनाने की श्रम-लागत के द्वारा निर्धारित होता है। रिकार्डो इस बात को मानते थे कि यद्यपि समय विशेप पर किसी वस्तु का वास्तविक अथवा बाजार मूल्य उस वस्तु को बनाने में व्यय किये गये श्रम की मात्रा से कम तथा अधिक हो सकता है परन्तु वस्तु का प्राकृतिक अथवा दीर्घकालीन मूल्य सदैव इस श्रम के मूल्य के समान होगा। अपने इस कथन का पुष्टिकरण रिकार्डो ने माल्थस को लिखित एक पत्र मे किया है जिसमे उन्होने माल्थस के पत्र का उत्तर देते हुये लिखा है कि 'भले ही मेरा यह सिद्धान्त पूर्णतया सत्य न हो, परन्तु वस्तुओ के सापेक्ष मूल्यो को मापने का यह सबसे अधिक सच्चा वास्तविक दृष्टिकोण है'। यद्यपि रिकार्डो एक व्यवसाय मे एक घन्टे के श्रम को अन्य किसी व्यवसाय मे एक घन्टे के श्रम की तुलना सम्बन्धी कठिनाई मे भली प्रकार परिचित थे, परन्तु यह सब कुछ होते हुये भी मूल्य के श्रम-सिद्धान्त मे उनका दृढ विश्वास था।

स्मिथ ने यद्यपि मूल्य के श्रम सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, परन्तु तत्पश्चात् उन्होंने यह अनुभव किया कि श्रम सिद्धान्त केवल ऐसे प्राथमिक समाज (Primitive Society) मे ही सत्य हो सकता था जहाँ भूमि प्रकृति का निःशुल्क उपहार है, जहाँ पूंजी का यत्रो व अन्य प्रकार से कोई प्रयोग नही होता है तथा जहाँ परिणाम स्वरुप श्रम ही उत्पत्ति का एकमात्र साधन है। प्रगतिशील समाज मे जहाँ आर्थिक विकास होने के कारण भूमि प्रकृति का निःशुल्क उपहार न होकर भूस्वामी की निजी सम्पत्ति होती है तथा उपयोग करने का मूल्य देना पडता है तथा जहाँ पूंजी का प्रयोग किया जाता है, वस्तु का मूल्य श्रम लागत से निर्धारित न होकर कुल लागत, जिस मे वेतन के अतिरिक्त उत्पत्ति के अन्य दो साधनो भूमि व पूजी के पारितोपिक लगान व लाभ भी सम्मिलित होते हैं, द्वारा निर्धारित होता है। इस प्रकार एडम स्मिथ ने मूल्य के श्रम सिद्धान्त को छोड कर मूल्य के उत्पादन-व्यय सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिस के अनुसार किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु का उत्पादन करने मे व्यय हुए कुल श्रम की मात्रा से निर्धारित न होकर उस वस्तु के कुल उत्पादन व्यय से निर्धारित होता है।

रिकार्डो ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि विकसित समाज मे भी मूल्य का श्रम-सिद्धान्त ठीक उसी प्रकार लागू होता है जिस प्रकार से यह प्राथमिक समाज मे लागू होता है। रिकार्डो के विचारानुसार लगान किसी भी समाज मे मूल्य के निर्धारण मे प्रवेश नही करता है क्योंकि यह स्वय मूल्य का परिणाम है। पूजी को रिकार्डो सचित श्रम विचारते थे। इस प्रकार वस्तु का मूल्य उस श्रम की मात्रा के मूल्य के समान होगा जो उस वस्तु के उत्पादन करने मे लगा है। रिकार्डो के मतानुसार उत्पादन मे लगे श्रम अथवा पूंजी की मात्राओ मे परिवर्तन होने तथा इनको दिये गये पारितोपिको मे कमी तथा वृद्धि होने के फलस्वरूप इनके द्वारा प्राप्त हुई वस्तुओ के सापेक्ष मूल्यो मे भी परिवर्तन हो जावेगे। "वेतनो की प्रत्येक वृद्धि अथवा

लाभ की प्रत्येक गिरावट के कारण उन सभी वस्तुओं के मूल्यो मे भी कमी हो जावेगी जिन के उत्पादन मे पूंजी का अधिक महत्व है तथा उन वस्तुओं के मूल्य ऊँचे हो जावेंगे जिन के उत्पादन मे श्रम का अधिक महत्व है। इस का ठीक विपरीत परिणाम वेतनों मे गिरावट तथा लाभो मे वृद्धि के फलस्वरूप होगा।"[2]

रिकार्डो का मूल्य सिद्धान्त अनेक आलोचनाओं का विषय बना है। राबर्ट टारेन्स (Robert Torrens) ने अक्टूबर १८१८ ई० मे **'Edinburgh Magazine and Literary Miscellany'** नामक पत्रिका मे लिखित एक लेख, जिस का शीर्षक **"Strictures on Mr. Ricardo's Doctrine respecting Exchangeable Value"** था, मे कटुआलोचना की। रिकार्डो के समकालीन माल्थस ने भी रिकार्डो के मूल्य-सिद्धान्त की अपनी पुस्तक **Principles of Political Economy** के दूसरे अध्याय के चौथे खण्ड मे कड़ी आलोचना की। केवल James Ramsey McCulloch रिकार्डो के इस सिद्धान्त के प्रतिरक्षक थे। इन आलोचनाओं के फलस्वरूप रिकार्डो का ध्यान सिद्धान्त के दोषों की ओर आकर्षित हुआ तथा मूल्य के श्रम-सिद्धान्त मे दृढ विश्वास रखते हुए भी रिकार्डो ने अपने मित्र McCulloch को लिखित एक पत्र मे इस सिद्धान्त की स्वय अपनी व्याख्या के प्रति असन्तोष प्रकट करते हुये निम्न शब्द लिखे थे।

"I am more convinced than ever that the great regulator of value is the quantity of labour required to produce the commodity valued There are many modifications which must be admitted into this doctrine, from the circumstances of the unequal times that commodities require to be brought to the market, but this does not invalidate the doctrine itself I am not satisfied with the explanation which I have given of the principles which regulate value I wish a more able pen would undertake it. The fault is not in the adequacy of the doctrine to account for all difficulties, but in the adequacy of him who has attempted to explain it '[3]

माल्थस की आलोचना के फलस्वरूप रिकार्डो ने अपने मूल्य के श्रम सिद्धान्त का पुन निरीक्षण किया तथा इस सिद्धान्त मे आवश्यक सशोधन करके श्रम की मात्रा के अतिरिक्त वस्तुओं को प्राप्त करने अथवा बनाने मे व्यय हुये समय की मात्रा के प्रभाव को भी वस्तुओ के विनिमय मूल्य के निर्धारण मे महत्व दिया। यह रिकार्डो द्वारा McCulloch को मई, १८२० ई० मे लिखित पत्र मे निम्नलिखित शब्दो से भली प्रकार विदित हो जाता है।

---

2 Divid Recardo *Principles of politcal Economy and Taxation, 3rd ed*, *p 53*

3 *Letters of David Racardo to James Ramsey Meculloch, 1816 1823* (New York 1895) *p. p.* 47, 49.

After the best consideration that I can give to the subject, I think that there are two causes which occasion variations in the relative value of commodities, Ist, the relative quantity of labour required to produce them, 2nd, the relative times that must elapse before the result of such labour can be brought to the market "[4]

इस प्रकार श्रम की मात्रा के अतिरिक्त रिकार्डो ने मूल्य के कारणो के विश्लेषण मे समय के प्रभाव को भी महत्व दिया। McCulloch को लिखित एक अन्य पत्र मे मूल्य के सिद्धान्त की व्याख्या से सवन्धित कठिनाइयों की चर्चा तथा McCulloch मे इन कठिनाइयो का समाधान करने का अनुरोध करते हुये रिकार्डो ने लिखा है कि "यदि मुझको मूल्य के विषय पर अब फिर अध्याय लिखना पड़े तो मै इस बात को स्वीकार करूँगा कि मूल्य एक कारण से निर्धारित न होकर दो कारणों मे निर्धारित होता है। मूल्य प्रथम, वस्तुओं का उत्पादन करने के लिये श्रम की सापेक्ष मात्रा तथा दूसरे, वस्तुओ को बनाने के समय से लेकर उनका बाजार मे विक्रय करने के समय तक विनियोग पूँजी की लाभ-दर से निर्धारित होता है।"[5]

उपरोक्त सभी कथनो से केवल एक ही बात सिद्ध होती है और वह यह है कि रिकार्डो का मूल्य-सिद्धान्त अनेक दोषो का भण्डार है तथा रिकार्डो के लिये इस सिद्धान्त की आलोचकों के आक्रमणो मे प्रतिरक्षा करना एक कठिन कार्य था।

(२) वितरण सिद्धान्त

रिकार्डो की आर्थिक विचारो के इतिहास मे प्रसिद्धि का मुख्य कारण उसका वितरण सिद्धान्त है। इस क्षेत्र मे रिकार्डो का विशेष योगदान है। अपनी पुस्तक **Principles of Political Economy and Taxation** की भूमिका मे अर्थ-शास्त्र मे वितरण के सिद्धान्तों के महत्व को स्पष्ट करते हुये रिकार्डो ने लिखा है कि "भूमि की उत्पत्ति—वह समस्त मात्रा जो भूमि पर से श्रम, यन्त्रो व पूँजी का प्रयोग करके प्राप्त की जाती है—समाज के तीन वर्गों अर्थात् भूस्वामी, पूँजीपति व श्रमिकों के मध्य विभाजित करदी जाती है। उत्पत्ति का जो अनुपात अथवा हिस्से तीनो वर्गों को प्राप्त होते है क्रमश. लगान, लाभ तथा वेतन कहलाते है। उन नियमों का प्रति-

4 Ibid : p 65.

5 "I *sometimes think that if I were to write* the chapter on value again which is my book, I should acknowledge that the relative value of commodities was regulated by two causes instead of one, namely by the relative quantity of labour necessary to produce the commodities in question, and by the rate of profit for the time that the capital remained dormant and until the commodities were brought to the market." (*Ibid : pp, 71, 72)*

पादन करना, जो इस वितरण का नियमन करते हैं, अर्थशास्त्र की प्रमुख समस्या है।[6] इस प्रकार यह भली प्रकार विदित है कि रिकार्डो की पुस्तक मे मूल्य तथा उत्पादन की अपेक्षा वितरण का अधिक महत्व है तथा इसी क्षेत्र मे रिकार्डो का विशेष योगदान है। वितरण के सिद्धान्त मे लगान के सिद्धान्त को केन्द्रीय स्थान प्राप्त है। वास्तव मे रिकार्डो का लगान का सिद्धान्त समाजवादियो की आर्थिक सुधार योजनाओ की आधार शिला है। रिकार्डो के अनुसार "लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भूस्वामी को भूमि की मूल तथा अनाशवान (Original and Indestructible) शक्तियों के उपयोग करने के कारण दिया जाता है"।[7] रिकार्डो के अनुसार लगान[8] एक प्रकार का अन्तरीय आधिक्य (Differential Surplus) है जो अच्छी भूमि के भूस्वामी को सीमान्त भूमि के उत्पादन की तुलना मे प्राप्त होता है। सीमान्त भूमि लगान रहित (no-rent) भूमि होती है क्योंकि इसकी कुल उपज केवल उत्पादन व्यय के समान होने के कारण इस पर किसी प्रकार का आधिक्य शेष नही बचता है। सीमान्त भूमि अन्य काश्त वाली भूमियो मे सबसे कम उपजाऊ भूमि होती है। रिकार्डो के लगान के सिद्धान्त मे इस सीमान्त भूमि का विशेष स्थान है क्योकि लगान का कम अथवा अधिक होना सीमान्त भूमि की स्थिति पर ही निर्भर रहता है। यदि जनसख्या मे वृद्धि होने तथा क्रमगत उत्पत्ति ह्रास नियम (law of diminishing returns) के लागू होने के कारण सीमान्त भूमि की स्थिति नीची हो जाती हैं तो लगान में वृद्धि हो जाती है तथा यदि यह स्थिति जनसख्या के सीमित होने अथवा खेती काश्त सम्बन्धी कुछ वैज्ञानिक सुधार होने के कारण ऊपर हो जाती है तो लगान कम हो जाता है। लगान के आधिक्य होने के कारण जो आय भूस्वामी को बिना कोई परिश्रम किये केवल बाह्य परिस्थितियों—जनसख्या मे वृद्धि होने तथा उत्पत्ति-ह्रास नियम के लागू होने—के कारण प्राप्त होती है, समाजवादियो ने इस आय को अनुचित घोषित किया है तथा भूस्वामी वर्ग को समाज विरोधी वर्ग कहा है।

एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि रिकार्डो का वेतन-सिद्धान्त वेतन का जीवन-निर्वाह का सिद्धान्त है क्योकि रिकार्डो के कथनानुसार वेतन की प्राकृतिक दर श्रमिको की उन न्यूनतम आवश्यकताओ से निर्धारित होती है जो उनके जीवन-

6 "The produce of the earth—all that is derived from its surface by the united application of labour, machinery and capital, is divided among *three classes of the community, namely, the proprietor of the land, the* owner of the stock or capital necessary for its cultivation, and the labourers by whose industry it is cultivated to determine the laws which regulate this distribution is the principal problem in political economy" *(Principle Political Economy and Taxation, 3rd ed. Preface.)*

7 Ibid *p.* 180

8. रिकार्डो के लगान के सिद्धान्त के सविस्तार अध्ययन के लिये अध्याय ११ को पढिये।

निर्वाह के लिये आवश्यक हैं। रिकार्डो का कहना था कि अन्य उन सभी वस्तुओं के समान जिनका क्रय व विक्रय किया जाता है तथा जिनकी मात्रा में कमी व वृद्धि की जा सकती है, श्रम का भी अपना प्राकृतिक व बाजार मूल्य होता है। श्रम का प्राकृतिक मूल्य (वेतन) वह मूल्य है जो श्रमिकों की पूर्ति को स्थिर रखने के लिये श्रमिको को अवश्य प्राप्त होना चाहिये। यदि वास्तविक वेतन इस प्राकृतिक अथवा दीर्घकालीन वेतन से कम होगा तो श्रमिको की संख्या उनकी माँग की अपेक्षा बीमारी व मृत्यु आदि कारणो से कम हो जावेगी तथा वेतन बढ कर एक बार फिर श्रम के प्राकृतिक मूल्य (वेतन) के समान हो जावेंगे। इसके विपरीत वास्तविक वेतन यदि प्राकृतिक वेतन से अधिक होंगे तो श्रमिको की पूर्ति कम आयु मे विवाह करने आदि कारणों से बढ जावेगी तथा परिणामस्वरूप वास्तविक वेतन कम होकर प्राकृतिक वेतन के समान हो जावेंगे। इस प्रकार दीर्घकाल मे वास्तविक वेतन दर मे सदा प्राकृतिक वेतन दर के समीप रहने की प्रवृत्ति होती है जो स्वयं श्रमिको के जीवन-निर्वाह स्तर से निर्धारित होती है।

परन्तु रिकार्डो के विचारानुसार श्रमिको का जीवन निर्वाह स्तर स्थिर नही था। यह स्पष्ट करते हुये रिकार्डो ने लिखा है कि हमको "यह नही समझना चाहिये कि प्राकृतिक मूल्य जो श्रमिको की खाद्य तथा अन्य आवश्यकताओ द्वारा निर्धारित होता है, पूर्णतया स्थिर रहता है। यह एक ही देश मे भिन्न समय पर भिन्न होता है तथा भिन्न देशों के बीच इसमें काफी अन्तर होता है। यह मुख्यतः लोगों की आदतो तथा रीति-रिवाजो मे निर्धारित होता है।'[9] रिकार्डो का कहना था कि प्राकृतिक वेतन दर मे वृद्धि करने तथा श्रमिको की स्थिति मे सुधार करने के लिये रीति, रिवाजो व आदतो मे सुधार होना आवश्यक है।

यद्यपि रिकार्डो ने वेतनो के जीवन-निर्वाह सिद्धान्त का समर्थन किया है, परन्तु स्मिथ के समान उनका भी यह विश्वास था कि समाज का आर्थिक विकास होने पर पूँजी का अधिक उपयोग होने से श्रम की अधिक माँग होने के फलस्वरूप श्रमिको की वास्तविक दरो का अनिश्चित समय तक प्राकृतिक वेतन दर से अधिक रहना सम्भव है।

विश्लेषणात्मक दृष्टि से यह कहना अनुचित नही है कि रिकार्डो का वेतन सिद्धान्त सरल सिद्धान्त था। रिकार्डो के अनुसार श्रम एक प्रकार की वस्तु है तथा अन्य सभी वस्तुओ के समान इस का मूल्य—वेतन—भी इसकी माँग व पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है। श्रम की माँग पूँजी की मात्रा से निर्धारित होती है। रिकार्डो का कहना है कि अन्य सभी मूल्यो के निर्धारण के समान वेतन भी पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत बाजार मे स्वतन्त्र रूप से निर्धारित होने चाहिये तथा इस

9. David Ricardo : *op. cit.* Vol I, p. 97.

सम्बन्ध में कोई किसी प्रकार का वैधानिक नियन्त्रण नही होना चाहिये। रिकार्डो के विचारानुसार राज्य द्वारा बनाये गये (Poor Laws) श्रमिको के हितों को सदा सुरक्षित नही रख सकते थे। रिकार्डो के विचारानुसार श्रमिको की स्थिति मे सुधार करने की कुन्जी स्वय श्रमिको के अपने हाथो मे थी। रिकार्डो ने इस सम्बन्ध मे लिखा है कि "श्रमिक की स्थिति मे सुधार करने का इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नही है कि वह अपने बच्चो की मात्रा को अपने साधनो के अनुसार सीमित रखे। श्रमिक स्वय अपने भाग्य का स्वामी है।[10]

रिकार्डो के विचारानुसार समाज की आर्थिक प्रगति के साथ-साथ लाभ की मात्रा में भी कमी की प्रवृत्ति होगी। समाज व धन की प्रगति के साथ लगान की मात्रा में वृद्धि होती है, सम्भवत: वेतन भी, मूल्यो मे वृद्धि होने के कारण, बढते हैं। परन्तु लाभ की मात्रा कम हो जाती है। रिकार्डो का कहना था कि भूस्वामी कुल उपज में से अपना लगान, जो जनसख्या मे वृद्धि होने तथा क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम के लागू होने के कारण निरन्तर बढता रहता है, निकाल कर शेष श्रमिकों व पूँजीपति-साहसी को आपस मे बाँटने के लिये दे देता है। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति मे यदि वेतन मे वृद्धि होती है तो परिणामस्वरूप लाभ मे कमी हो जावेगी। इसके विपरीत लाभ मे वृद्धि वेतनो मे कमी करके ही सम्भव हो सकती है। इस प्रकार रिकार्डो ने यह स्पष्ट किया है कि श्रमिक व पूँजीपति के मध्य सदा सघर्ष रहता है। भूस्वामी का हिस्सा, जो जनसख्या में वृद्धि होने के साथ-साथ बढ़ता रहता है, उसको सदा बिना कठिनाई के प्राप्त हो जाता है। रिकार्डो ने श्रमिक व पूँजीपति के मध्य इस सघर्ष को इस प्रकार व्यक्त किया है, "श्रमिक के वेतन मे, लाभ में कमी हुए बिना, कभी वृद्धि सम्भव नही है। यदि अनाज का कृषक तथा श्रमिक के मध्य विभाजन होना है तो यदि श्रमिक को इस अनाज का अधिक अनुपात प्राप्त होता है तब स्पष्ट है कि कृषक के पास कम अनाज रहेगा। इसी प्रकार यदि कपडा व रुई का विभाजन श्रमिक व उसके स्वामी के मध्य होता है तो यदि प्रथम को अधिक प्राप्त होता है तो दूसरे को उसी अनुपात मे कम प्राप्त होगा।"[11] इस निराशात्मक वातावरण से यह स्पष्ट है कि कृषि व उद्योग मे कच्चे माल के मूल्यों मे वृद्धि होने के फलस्वरूप यदि वेतनों मे वृद्धि होती है, तो लाभो मे कमी हो जाता है। आर्थिक प्रगति के साथ साथ लगान में वृद्धि होने, वास्तविक वेतन दरों के स्थिर रहने तथा लाभो की दर मे कमी होने की प्रवृत्ति पृष्ठ १७७ पर दिये गये रेखा चित्र द्वारा भली प्रकार स्पष्ट हो जाती है।

---

10 "There is no means of improving the lot of the worker except by limiting the number of his childern. His destiny is in his own hands" (Ricardo : *Principles*)

11 *Ibid*. Vol I, P.35
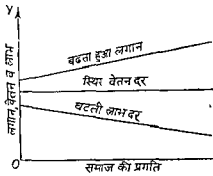
रिकार्डो ने यह व्यक्त किया है कि समाज की प्रगति के साथ लाभ में कमी होने की प्रवृत्ति श्रमिको के दीर्घकालीन हितो के पक्ष मे नही है क्योंकि लाभ की दर मे कमी होने से पूंजी-सचय करने के उत्साह मे भी कमी हो जावेगी। पूंजी के सचय का अभाव होने के कारण वेतन कोष (wages fund) भी कम हो जावेगा तथा श्रमिको की स्थिति खराब हो जावेगी क्योकि वेतन कोष के कम हो जाने पर वेतन भी कम हो जावेंगे।

रिकार्डो के वितरण के सिद्धान्त की व्याख्या से भूमि का राष्ट्रीयकरण करने के पक्ष मे बहुत तर्क प्राप्त हो जाते हैं तथा मार्क्सवादी समाजवादियो ने अपने विचारों तथा भूमि के राष्ट्रीयकरण करने व लगान का कर के द्वारा सामाजीकरण करने की योजनाओ की वाञ्छनीयता सिद्ध करने के लिये रिकार्डो के लगान-सिद्धान्त की शरण ली है।

परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नही है कि रिकार्डो का वितरण सिद्धान्त दोष-रहित है। स्मिथ के समान रिकार्डो ने भी लाभ व ब्याज मे कोई अन्तर नही किया है। इसके अतिरिक्त रिकार्डो का यह कहना भी बिल्कुल सत्य नही है कि श्रम का मूल्य अन्य वस्तुओ के समान इसकी माँग व पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। वास्तविकता यह है कि यदि यह स्वीकार भी कर लिया जावे कि श्रम एक वस्तु के समान है तो भी श्रम मे अनेकों विचित्रताएँ—श्रम नाशवान है तथा इसको श्रमिक से अलग नही किया जा सकता है इत्यादि—हैं जो अन्य वस्तुओ मे नही पाई जाती हैं। इस प्रकार माँग व पूर्ति का साधारण नियम वेतनों के निर्धारण मे ठीक उसी प्रकार लागू नही होता है, जिस प्रकार कि यह वस्तुओ के मूल्य-निर्धारण मे लागू होता है।

(३) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त

अपने सस्थापक पूर्वाधिकारी एडम स्मिथ के समान रिकार्डो भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के भारी पक्षपाती थे। वे स्वतन्त्र व्यापार के लाभो से भली प्रकार परिचित थे तथा सरक्षण के विरोधी थे। स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पक्ष मे ससंद मे

१८२० ई० मे भाषण देते हुए रिकार्डो ने कहा था कि "यह देश (इगलैंड) ससार मे सबसे अधिक सुखी देश हो सकता है यदि यह Corn Laws की बुराइयों से मुक्त हो जावे।" अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों को स्पष्ट करने के हेतु रिकार्डो ने दो देशो इगलैंड व पुर्तगाल तथा दो वस्तुओ मदिरा (Wine) तथा कपडे का उदाहरण दिया है। रिकार्डो का कहना है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार दोनो पक्ष देशो के आर्थिक हितो के लिये लाभदायक होता है भले ही दोनो मे से एक देश दोनो वस्तुओ के उत्पादन मे दूसरे देश को अपेक्षा अधिक दक्ष क्यो न हो।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक व्यय के सिद्धान्त का प्रतिपादन सबसे पहले रिकार्डो ने ही किया था। इस सिद्धान्त को रिकार्डो ने स्वय अपने आप से एक प्रश्न से प्रारम्भ किया। दो देशो मे उत्पादन का विनिमय क्यो होता है? अर्थात् यदि दोनों देश अनाज तथा वस्त्र का समान रूप मे उत्पादन कर सकते है तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की क्या आवश्यकता है? इसका साधारण उत्तर यही हो सकता है कि दोनो देशो को ऐसा करने से लाभ होता है। रिकार्डो के समय मे मुक्त व्यापार तथा सरक्षित व्यापार के समर्थको मे एक बड़ा विवाद चल रहा था। सरक्षण के पक्षपातियो द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विपक्ष मे विशेषकर यह तर्क दिया जाता था कि इग्लैंड के लिये रूस अथवा पोलैंड से गेहूँ तथा अन्य कृषि पदार्थों का आयात करना व्यर्थ है क्योकि वह स्वय इन दोनो वस्तुओ को रूस तथा पोलैंड के समान क्षमता से उत्पादन कर सकता है। रिकार्डो ने सरक्षण के पक्षपातियो के इस तर्क का जवाब निम्न प्रकार से दिया है। यह उत्तर इस प्रकार के सभी उदाहरणों पर लागू होता है। उसका कहना है कि ऐसा इसलिये होता है क्योकि इग्लैंड को अन्य वस्तुओ के उत्पादन की अपेक्षा सूती वस्त्रो के उत्पादन तथा निर्यात करने से अधिक लाभ होता है। वास्तव मे दूसरे देशो को सूती वस्त्रो का निर्यात करने से इंग्लैंड को स्वयं देश मे उत्पादन करने की अपेक्षा दूसरे देशो मे अधिक मात्रा मे अनाज मिल सकता है और इसलिये ऐसा करने से वहाँ के निवासी अधिक अनाज का उपभोग कर सकते है। इसलिये इग्लैंड खाद्य का उत्पादन न करके उतने श्रम को कपास के उत्पादन मे लगा देता है और उसका निर्यात करके इसके बदले मे अधिक अनाज प्राप्त कर लेता है। रिकार्डो ने अपने इस विचार को निम्नाकित उदाहरण द्वारा समझाया है जो उस समय की परम्परावादी विचारधारा के अनुमोदको के लिये महत्त्वपूर्ण बन गया है।

"यदि दो व्यक्ति जूते तथा टोप (hats) बना सकते हैं और यदि एक व्यक्ति दोनो के बनाने मे दूसरे से अधिक निपुण है परन्तु हैट निर्माण मे वह अपने प्रतियोगी से केवल $\frac{1}{5}$ अथवा २०% अधिक श्रेष्ठ है जबकि वह जूतो के निर्माण मे $\frac{1}{3}$ अर्थात् ३३$\frac{1}{3}$% अधिक श्रेष्ठ है तो ऐसी दशा मे क्या यह दोनो के हित मे न होगा कि श्रेष्ठ आदमी केवल जूतों का निर्माण करे और कम योग्य व्यक्ति केवल टोपो का निर्माण

करे ?"[11] अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का तुलनात्मक व्यय सिद्धान्त (Comparative Cost Theory) उपरोक्त टिप्पणी मे व्यक्त उदाहरण का ही एक व्यापक रुप है।

सिद्धान्त की मान्यतायें

रिकार्डो ने अपने अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्त को कुछ मान्यताओं पर आधारित किया था। कुछ मान्यताओ का अपनी व्यवस्था मे उन्होंने स्पष्ट वर्णन कर दिया था और कुछ उसमे स्वय सिद्ध है। ये मान्यताये निम्नाकित थी।

१—केवल श्रम ही उत्पादन का साधन था और उत्पादन व्यय केवल श्रम के रूप मे ही समझा जाता था जो दिनो व इकाइयो के रूप मे स्पष्ट किया जाता था।

२—सभी श्रम पूरी तरह से समान समझा जाता था।

३—उत्पादन, अनुपातिक प्रतिफल के नियम के आधार पर होता था अर्थात् दो वस्तुओ का व्यय अनुपात स्थिर समझा जाता था।

४—किसी एक समय मे दो वस्तुओ तथा दो देशो का विचार किया जाता था।

५—उत्पादन के साधनो को देश के भीतर पूर्णतया गतिशील परन्तु दो देशों के मध्य पूर्णतया गतिहीन विचारा जाता था।

६—यातायात के व्यय पर ध्यान नही दिया जाता था।

७—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को सभी प्रकार की बाधाओ तथा नियन्त्रणो से मुक्त समझा जाता था।

८—स्वर्ण मान दोनो देशो मे लागू होता था और द्रव्य का परिमाण सिद्धान्त सत्य समझा जाता था।

९- दोनो देश स्थायी सन्तुलन की ओर सदैव प्रयत्नशील होते हुये माने जाते थे, जिनमे व्यापार-चक्र के समान किसी बात से बाधा नही पडती थी।

१०—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार समान आर्थिक शक्ति वाले देशो के मध्य तथा समान आर्थिक महत्व वाली दो वस्तुओ मे होता था।

सिद्धान्त की आलोचनाएं

कुछ दिनो पहले तक रिकार्डो के द्वारा प्रतिपादित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का परम्परावादी सिद्धान्त प्राय मान्य था। विशेषकर अंग्रेजी भाषी देशो मे यह अधिक मान्य था जैसा कि एल्सवर्थ (Ellsworth) ने लिखा है कि यह सिद्धान्त क्रमागत *उत्पत्ति ह्रास नियम अथवा श्रम विभाजन के लाभों के समान बिलकुल सत्य तथा* निर्विवाद समझा जाता था। परन्तु इस सिद्धान्त की सैद्धान्तिक रूपरेखा पहले मे ही स्थिर नही है, क्योकि इसकी नीव ही कमजोर है। वर्तमान समय मे बर्टिल ओहलिन (Bertil Ohlin) तथा फ्रैंक ग्राहम (Frank Graham) आदि लेखको के द्वारा इसकी बहुत कटु आलोचना की गई है।

---

11. Ibid : footnote, p. 83.

रिकार्डो के सिद्धान्त की सबसे महत्वपूर्ण आलोचना वस्तुओं के आन्तरिक विनिमय को समझाने के लिये श्रम-व्यय की मान्यता के विरुद्ध है। यहाँ तक कि उन्नीसवीं शताब्दी में सापेक्ष कीमतो के समझाने में कीमत का श्रम सिद्धान्त अस्वीकृत कर दिया गया था क्योंकि श्रम के समूहो मे प्रतिस्पर्धा नही होती इसके अतिरिक्त उत्पादन के अन्य साधनो—पूँजी, भूमि व साहस जिनमे कि अत्यधिक गुणात्मक (Qualitative) अन्तर है—को जोडने के साथ ही साथ परिमाणात्मक (Quantitative) मजदूरो के विभिन्न स्तरो का जोडना भी आवश्यक है। यदि श्रम-व्यय अथवा वास्तविक व्यय का आन्तरिक कीमतो के समझाने मे त्याग कर दिया जाता है तो अस्वीकृत सिद्धान्त पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त अपने आप गलत हो जाता है। साथ ही साथ श्रम-व्यय की मान्यता उत्पादन के साधनो के परिवर्तनशील सयोग मे मेल नही खाती है। यह भी कहा गया है कि तुलना करने के लिये द्राव्यिक व्यय ही सबसे उत्तम है। इसलिये आलोचक यही कहते है कि इस सिद्धान्त को श्रम-व्यय के द्वारा समझाना त्याग देना चाहिये और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार समस्या की व्याख्या कीमतो के रूप मे करनी चाहिये क्योंकि कीमते ही इस बात का निर्धारण करती है कि किन वस्तुओ का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होगा और कौन देश उन्हे उत्पन्न करेगे।

इस सिद्धान्त को दूसरी कठिनाई उत्पत्ति के श्रम-व्यय की मान्यता के कारण उत्पन्न होती है। रिकार्डो के अनुसार उत्पादन के प्रत्येक विभाग मे समता व्यय नियम लागू होता है, जिसके अनुसार किसी वस्तु की अतिरिक्त मात्रा को पहले के समान प्रति इकाई के स्थिर श्रम-व्यय पर उत्पादित किया जा सकता है। परन्तु जैसाकि हम सब जानते है समता व्यय नियम कुछ समय तक ही लागू होता है। इसके पश्चात् क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगता है जिसके कारण अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण उतना अधिक सम्भव नही होगा जितना कि रिकार्डो के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक व्यय सिद्धान्त से विदित होता है।

इस सिद्धान्त का एक अन्य दोष इस मान्यता पर आधारित है कि यद्यपि देश के अन्दर उत्पत्ति के साधन पूर्णतया गतिशील होते है परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से ये पूर्णतया गतिहीन होते हैं। यह मान्यता अवास्तविक है तथा तथ्यों के अनुसार नही है। विभिन्न साधनों की विभिन्न उद्योगो तथा विभिन्न क्षेत्रो के मध्य पूर्ण गतिशीलता देश के अन्दर भी नही पाई जाती है। यह तथ्य देश मे विभिन्न व्यवसायों तथा विभिन्न क्षेत्रो मे मजदूरी तथा व्याज दरो मे विद्यमान व्यापक अन्तर से स्पष्ट होता है। इसके अतिरिक्त श्रम तथा पूँजी को पिछडे हुये उद्योगो से हटा कर दूसरे उद्योगों मे सरलता व शीघ्रता के साथ नही लगाया जा सकता है। साधनो की आन्तरिक गतिहीनता कीमतो को अधिक प्रभावित करती है और इनके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के ढग को भी प्रभावित करती है। परन्तु वास्तविक बात तो यह है कि

साधनों की आन्तरिक गतिशीलता का अभाव वास्तव में उस अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण का फल है जिसके कारण एक देन किसी एक प्रकार के औद्योगिक संगठन से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होने के कारण उत्पादन के वैकल्पिक ढंगों को नही अपना सकता है।

रिकार्डो के तुलनात्मक व्यय सिद्धान्त मे एक और परम्परावादी मान्यता यह है कि इस सिद्धान्त मे यातायात व्यय का विचार नही किया जाता है। परन्तु यह मान्यता अवास्तविक है। बहुत से ऐसे उत्पादन क्षेत्र है जिनमे यातायात व्यय वस्तु के उत्पादन व्यय से भी अधिक महत्वपूर्ण होता है। एक वस्तु का आयात अथवा निर्यात तब तक नही किया जा सकता है जब तक कि दोनो देशों के मध्य उत्पादन व्यय का अन्तर उन वस्तु को एक देश से दूसरे देश मे ले जाने के यातायात व्यय से अधिक नही होता है। यातायात व्यय की उपस्थिति से तीसरी प्रकार की वस्तुओं की सम्भावना हो जाती है और यह वस्तुयें निर्यात तथा आयात वस्तुओं के अतिरिक्त देश के अन्दर उत्पादन की गई वे वस्तुये होती है जिनका न तो आयात ही होता है तथा न निर्यात ही होता है। कुछ अर्थशास्त्रियो ने इस कठिनाई को दूर करने का प्रयत्न इस आधार पर किया है कि वह देश जो किसी वस्तु का निर्यात करता है उसे यातायात व्यय सहन करना पडता है और इस दशा मे यातायात व्यय को भी उत्पादन व्यय मे सम्मिलित कर लेना चाहिये।

यातायात व्यय की उपस्थिति अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के परम्परावादी तुलनात्मक व्यय सिद्धान्त मे एक दूसरे दोष की ओर संकेत करती है। बहुत से उदाहरण यह स्पष्ट करने के लिये दिये जा सकते है कि किस प्रकार किसी देश का एक भाग एक वस्तु का आयात कर सकता है और उसी देश का दूसरा भाग इस वस्तु को स्वय उत्पन्न कर उसका निर्यात कर सकता है। उदाहरणार्थ जर्मनी के बन्दरगाह इंगलैंड से कोयले का आयात करने के आदी हो गये थे यद्यपि जर्मनी स्वय कोयले का एक प्रसिद्ध उत्पादक तथा निर्यात करने वाला देश था।

फ्रैन्क ग्राहम के समान कुछ अर्थशास्त्रियों ने यह पूर्ण रूप मे सिद्ध कर दिया है कि रिकार्डो की मान्यताओ को स्वीकार करने पर भी पूर्ण श्रम विभाजन असम्भव होगा। फ्रैंक ग्राहम ने अपूर्ण विशिष्टीकरण को समझाने के लिये बहुत से उदाहरण दिये हैं।

यदि हम दो ऐसे देशों को ले जिनमे एक देश छोटा और दूसरा देश बडा है तो यह सम्भव है कि पहला देश किसी एक वस्तु के उत्पादन मे पूर्ण विशिष्टता प्राप्त कर ले जब कि दूसरा देश दोनो वस्तुओ का उत्पादन करे। यह इसलिये भी हो सकता है क्यो कि छोटा देश उस वस्तु का उत्पादन जिसमे इसने विशिष्टीकरण प्राप्त किया है इतनी अधिक मात्रा मे नही कर सकता है कि दोनो देशो की पूर्ण मांग को पूरी कर सके। उदाहरण के लिये ब्रह्मा, भारतवर्ष की तुलना मे कपास की अपेक्षा चावल

बहुत सस्ता पैदा कर सकता है। रिकार्डो के तुलनात्मक व्यय के सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्मा चावल के उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त करेगा और भारत कपास के उत्पादन में। यद्यपि ब्रह्मा छोटा देश होने के कारण चावल के उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त कर सकता है और इसके कुछ भाग को भारत से कपास के आयात का भुगतान करने के लिये निर्यात् कर सकता है परन्तु भारत बडा देश होने के कारण निम्नांकित दो कारणों से केवल कपास के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त नही कर सकता है।

(१) छोटा देश होने के कारण ब्रह्मा भारत की चावल की सम्पूर्ण माँग पूरा नहीं कर सकता है।

(२) यदि भारत में कपास के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण हो जायगा तो ब्रह्मा छोटा देश होने के कारण भारत की सारी कपास को नही खरीद सकता है।

इससे स्पष्ट है कि बडा देश पूर्ण रूप से विशिष्टीकरण नही कर सकता है। इसी प्रकार अपूर्ण विशिष्टीकरण उस समय होता है जब दो वस्तुयें ऐसी हों जो तुलनात्मक कीमत की न हों—एक बहुत अधिक कीमती तथा दूसरी बहुत कम कीमती हो। ऐसी स्थिति मे यद्यपि अधिक कीमती वाली वस्तु का उत्पादन करने वाले देश के लिये विशिष्टीकरण सम्भव है परन्तु कम कीमत वाली वस्तु का उत्पादन करने वाले देश के लिये विशिष्टीकरण सम्भव नही होगा। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जब तक हम दो समान आकार वाले देशों तथा समान कीमत वाली वस्तुओं की मान्यता पर न चले पूर्ण विशिष्टीकरण सम्भव नही होता है इस सम्बन्ध मे फ्रंक ग्राहम ने ठीक ही कहा है कि पूर्ण विशिष्टीकरण की परम्परावादी सम्भावना दो देशों के मध्य तभी सम्भव हो सकती है जब हम ऐसी दो वस्तुओं का विचार करें जो समान योग्यता वाली है और दो ऐसे देशों को ले जो लगभग एक ही आर्थिक स्थिति मे है। वास्तविक संसार मे यह दोनों परिस्थितियाँ बहुत कम पाई जाती है। इसलिये रिकार्डो का तुलनात्मक व्यय सिद्धान्त अवास्तविक मालूम पडता है।

तुलनात्मक व्यय सिद्धान्त की एक अन्य सीमा इस बात मे ज्ञात होती है कि इसके अनुसार एक देश को एक ऐसी वस्तु के उत्पादन करने का प्रयत्न करना पडता है, जिसके उत्पादन में इस देश को प्राकृतिक लाभ नहीं होता है और जिसे वह देश दूसरे देश से सस्ती कीमत पर आयात कर सकता है। आजकल प्राय सभी देश सैनिक तथा नैतिक कारणों से विदेशों पर निर्भरता दूर करने के उद्देश्य से नियन्त्रित नीतियों का पालन करते है। इसका अच्छा उदाहरण उड़ीसा तथा दक्षिणी भारत के प्रदेशों में कच्चे जूट को अधिक उत्पादन व्यय पर उत्पन्न करना है जबकि हमारे पड़ोसी पाकिस्तान का कच्चे जूट के उत्पादन पर एकाधिकार है।

कुछ लेखकों ने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि यह सिद्धान्त उस देश मे लागू नहीं होता है जो किसी वस्तु की एक किस्म को दूसरे देशो से आयात करता है जब कि उसी वस्तु की दूसरी किस्म को स्वयं उत्पादन करके निर्यात करता है। वास्तव मे यह कोई सीमा नही है। व्याख्या मे वस्तु की प्रत्येक किस्म एक पृथक उत्तम वस्तु समझी जाती है। हो सकता है कि भारत को मोटे तथा साधारण वस्त्रो के उत्पादन मे कम व्यय का लाभ प्राप्त हो परन्तु महीन तथा अच्छे वस्त्र के उत्पादन मे कोई भी लाभ न हो। ऐसी दशा मे भारत के लिये मोटे कपडे का निर्यात तथा महीन वस्त्र का आयात करना आवश्यक है।

अन्त मे बरटिल ओहलिन ने रिकार्डो के सिद्धान्त को खतरनाक, अवास्तविक तथा अनावश्यक रूप से जटिल कहकर आलोचना की है। परम्परावादी सिद्धान्त जटिल तथा अवास्तविक इसलिये बतलाया गया है कि यह विभिन्न देशो मे व्यय पूर्ण अन्तर के बारे मे विचार नही करता है। यह इस बात का विचार नही करता है कि किसी देश मे उत्पादन व्यय की कमी कम मजदूरी, कम व्याज तथा यातायात आदि के कम खर्चो के कारण कहाँ तक सम्भव है। इसके विपरीत परम्परावादी सिद्धान्त दो देशो के मध्य श्रम के प्रतिफल का ही ध्यान रखकर तुलना करता है। ओहलिन परम्परावादी सिद्धान्त को खतरनाक समझता है क्योंकि यद्यपि यह सिद्धान्त केवल दो देशो और दो वस्तुओ के बारे मे विचार करता है परन्तु इसके निष्कर्षों को बिना किसी हिचकिचाहट के उन जटिल समस्याओ मे भी लागू कर देता है जहाँ बहुत से देश तथा बहुत सी वस्तुये अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे सम्मिलित होती है। इसके अतिरिक्त परम्परावादी सिद्धान्त स्थिर तथा दृढ है और इसलिये गतिशील परिवर्तनो वाले विषय को अच्छी प्रकार से समझने के लिये अपर्याप्त है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का परम्परावादी सिद्धान्त अवास्तविक मान्यताओ पर प्रतिपादित किया गया है और इसलिये बहुत से आधुनिक लेखको द्वारा इसकी कटु आलोचना की गई है। वर्तमान समय मे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के ऐसे सिद्धान्त की आवश्यकता है जो मूल्य के आधुनिक सिद्धान्त पर आधारित हो (मूल्य के अस्वीकृत किये गये श्रम सिद्धान्त के ऊपर नही) और सरल तथा वास्तविक हो। आजकल बरटिल ओहलिन का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धान्त माना जाता है।

(४) करारोपण

रिकार्डो की प्रसिद्ध पुस्तक '**Principles of Political Economy and Taxation**' का एक तिहाई ($\frac{1}{3}$) भाग करारोपण की व्याख्या से सम्बन्धित है। यद्यपि इस विषय पर रिकार्डो ने कितने ही प्रकार के करों की चर्चा की है परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से रिकार्डो की यह व्याख्या बहुत ही असन्तोषजनक है। रिकार्डो

ने करारोपण के सामान्य सिद्धान्तों तथा करारोपण के सामान्य वर्गीकरण के सम्बन्ध मे कुछ नही लिखा है। रिकार्डो के विचारानुसार करारोपण एक प्रकार का भार है। करारोपण इस प्रकार का होना चाहिये कि पूंजी सचय पर इस का न्यूनतम बुरा प्रभाव पडे। सरकार को चाहिये कि कर इस प्रकार से लगावे कि इन का भार आय पर पडे पूंजी पर नही क्योंकि यदि करो का भार पूंजी पर पडेगा तो पूंजी के सचय मे कमी होकर वेतन-कोष का आकार भी कम हो जावेगा जिस के फलस्वरूप देश मे भविष्य मे उत्पादन मे कमी हो जायगी। रिकार्डो के अनुसार कर लगान, मूल्यो तथा लाभो पर लगाये जा सकते है। रिकार्डो वेतनो पर कर लगाने के पक्ष मे नही थे क्योंकि प्राकृतिक वेतन दर के सदा श्रमिको के जीवन निर्वाह स्तर मे निर्धारित होने के कारण श्रमिको की करदान क्षमता शून्य थी। रिकार्डो के अनुसार लगान पर कर लगाना उचित था क्योकि एक ओर तो लगान बिना कमाई (unearned) आय थी तथा दूसरी ओर इस का भार पूर्णतया भूस्वामियो पर ही पडेगा। कच्चे माल पर लगाया गया कर कृषक पर लगाया जा सकता था तथा इस का करापात (incidence) उपभोक्ताओ पर पडेगा। रिकार्डो की लाभ सम्बन्धी करो की व्याख्या दोषपूर्ण है। इस के अतिरिक्त रिकार्डो स्मिथ के समान करारोपण के सिद्धान्तो का प्रतिपादन नही कर सके।

(५) अन्य आर्थिक विचार

इस शीर्षक के अन्तर्गत हम रिकार्डो के मशीन व सार्वजनिक ऋण सम्बन्धी विचारो का अध्ययन कर सकते हैं। रिकार्डो यत्रो (Machinery) के पक्ष मे थे तथा वे मशीनो को एक प्रकार मे वरदान समझते थे। मशीनो के प्रयोग के द्वारा उत्पादन मे वृद्धि होने के फलस्वरूप समाज के सभी वर्गो की स्थिति मे सुधार होने की आशा की जा सकती है। परन्तु अपनी पुस्तक के तीसरे सस्करण मे रिकार्डो ने यह मत स्पष्ट किया कि यदि मशीनो के प्रयोग के फलस्वरूप केवल शुद्ध आय—लाभो—मे ही वृद्धि होती है तथा कुल राष्ट्रीय आय (Gross revenue) स्थिर रहती है अथवा कम हो जाती है तो मशीनो का प्रयोग समाज के लिये वरदान न बन कर अभिशाप सिद्ध हो सकता है। मशीनो के प्रयोग की वाञ्छनीयता तभी सिद्ध हो सकती है जब इनके प्रयोग के फलस्वरूप श्रमिको की आर्थिक स्थिति मे भी सुधार हो। श्रमिकों का मशीनो के प्रति विरोध इस सत्य का द्योतक है कि मशीन श्रमिको के हितों के लिये हानिकारक सिद्ध होती है।

रिकार्डो सार्वजनिक ऋण के पक्ष मे न थे। उन का कहना था कि इस बीमारी का अन्त करने के लिये कोई भी त्याग अधिक नही है। यद्यपि वे पूंजी कर (capital levy) के विरोधी थे परन्तु सार्वजनिक ऋण के भुगतान करने के लिये वे पूंजी कर का भी समर्थन करने के लिये तैयार थे। उन के विचारानुसार राष्ट्रीय ऋण मूल्यो के सन्तुलन को नष्ट कर देता है, देशवासियो को कर के भार से बचने

के लिये देश छोड कर बाहर जाने के लिये बाध्य करता है तथा यह सदा देश के उद्योग व साहस के गले मे भारी पत्थर के समान लटका रहता है।

रिकार्डो के योगदान की समीक्षा तथा सारांश

रिकार्डो का नाम आर्थिक विचारों के सारे इतिहास मे सब से अधिक विवादपूर्ण नाम है। इससे यह सिद्ध होता है कि रिकार्डो एक महान अर्थशास्त्री थे क्योंकि साधारण व्यक्ति कभी आलोचनाओ का विषय नही बन सकता है। अंग्रेजी की कहावत कि कोई भी व्यक्ति मरे कुत्ते को लात नहीं मारता है, सत्य है। रिकार्डो के योगदान के विभिन्न मूल्याकन किये गये है। यदि कुछ आलोचको ने उन पर कटु-आलोचनाओ के पत्थरो से आक्रमण किया है तो उन के अन्य प्रशसको ने उन के विचारो का समर्थन करके उन को आर्थिक विचारो के इतिहास मे ऊँचे स्थान पर बिठलाने का भरसक प्रयत्न किया है। आर्थिक विचारो के इतिहास के निष्पक्ष विद्यार्थी के लिये एक निष्पक्ष निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये आलोचको व प्रशसको के मत बहुत महत्वपूर्ण है। रिकार्डो के आलोचक अधिक थे, प्रशसक कम थे। उन के प्रशसको मे हम केवल जेम्स मिल (प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जॉन स्टवार्ट मिल के पिता) तथा जेम्स रैमसे मैकुलख (James Ramsey McCulloch) को ही सोच सकते है। आलोचकों की विस्तृत सूची मे अन्य के अतिरिक्त माल्थस, लार्ड लाडरडेल (Lord Lauderdale), राबर्ट टारेस (Robert Torrens), सर एडवर्ड वेस्ट (Sir Edward West), विलियम थाम्पसन (William Thompson), आर्थर यग (Arthur Young), थामस टुक (Thomas Tooke) तथा सिस्माडी (Jean Charles L. Sismonde de Sismondi) के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है।

रिकार्डो का यह सौभाग्य था कि उन को जेम्स मिल (James Mill) तथा मैकुलख (McCulloch) के समान प्रशसक प्राप्त हो सके। मिल ने रिकार्डो के विचारो व सिद्धान्तो का अपनी पूर्ण शक्ति से प्रचार किया। मिल की १८२१ ई० मे प्रकाशित पुस्तक **Principles of Political Economy** को यदि रिकार्डो के *अर्थशास्त्र की कुंजी कहा जाये तो गलत न होगा।* मिल के अतिरिक्त McCulloch, जो रिकार्डो व उन के आलोचक माल्थस का गहरा मित्र था, ने रिकार्डो के सिद्धान्तो का सदा पालन किया तथा उन के सिद्धान्तो की सदा प्रतिरक्षा की। रिकार्डो के विचारो के आधार पर योजना बनाने वाले रिकार्डोवादी समाजवादियो मे John Gray, John Francis Bray, Thomas Hodgskin तथा Charles Hall के नाम लिये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त रिकार्डो को मार्क्सवादी समाजवादियों का सच्चा *नेता भी कहा जा सकता है, क्योंकि मार्क्सवाद रिकार्डो के आर्थिक सिद्धान्तो पर आधारित है।*

रिकार्डो के आर्थिक सिद्धान्तो को गलत सिद्ध करने के लिये आलोचको की कभी कमी नही थी। राबर्ट टारेंस ने रिकार्डो की आलोचना करते हुये १८३१ ई०

मे कहा था कि "आज सामान्यत सभी यह स्वीकार करते है कि रिकार्डो के लगान, मूल्य तथा लाभ के सभी सिद्धान्त गलत थे।" थॉमस टुक के विचारानुसार भी रिकार्डो का मूल्य का सिद्धान्त गलत था। उन की पुस्तक **Principles of Political Economy and Taxation** के प्रकाशन के लगभग दो दशाब्दी पश्चात् रिकार्डो के अधिकांश सिद्धान्त गलत सिद्ध हो गये थे तथा इनका व्यावहारिक महत्व समाप्त हो गया था। परन्तु यह सब कुछ होते हुये भी रिकार्डो के अर्थशास्त्र मे जीवित रहने की आश्चर्यजनक शक्ति थी। वर्तमान शताब्दी के सुप्रसिद्ध अंग्रेजी अर्थशास्त्री स्वर्गीय लार्ड जॉन मेनार्ड कीन्स ने माल्थस की असफलता व रिकार्डो की सफलता के सम्बन्ध मे लिखा है कि रिकार्डो ने इगलैंड पर इसी प्रकार पूर्ण विजय प्राप्त करली थी जिस प्रकार कि स्पेन मे पवित्र धर्म (Holy Inquisition) ने पूर्ण विजय प्राप्त करली थी (Ricardo conquered England as completely as the Holy Inquisition conquered Spain)।[12] रिकार्डो वास्तव मे १९ वीं शताब्दी के महान अर्थशास्त्री थे तथा उन का ज्ञान व्यापक था। वे प्रसिद्ध Political Economy Club के महत्वपूर्ण प्रवर्त्तक सदस्य (Founder Member) थे। ससद मे भी उन के योगदान को कदापि नही भुलाया जा सकता है। यदि एडम स्मिथ अर्थशास्त्र विज्ञान के जनक हैं तो रिकार्डो को भी अर्थशास्त्र मे निगमन प्रणाली का गुरु कहा जा सकता है। रिकार्डो के विचारो का इगलैंड की आर्थिक नीतियों पर भी गहरा प्रभाव पडा था। यदि रिकार्डो ने लगान के सिद्धान्त के अतिरिक्त अन्य आर्थिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन व विकास भी न किया होता तो भी माल्थस के जनसख्या के सिद्धान्त के समान केवल इसी सिद्धान्त के आधार पर उन को आर्थिक विचारों के इतिहास मे प्रथम श्रेणी का स्थान प्राप्त हो सकता था। सौभाग्यवश उन का योगदान सूर्य की व्यापक किरणों के समान सभी आर्थिक दिशाओ मे विद्यमान है।

विशेष अध्ययन सूची

1 David Ricardo . Principles of Political Economy and Taxation (3rd. ed)

2. Alfred Marshall 'Ricardo's Theory of Value', Appendix 1 in Principles of Economics.

3 J. F. Bell . A History of Economic Thought, Chapter, 12.

4. Robert Lekachman ; A History of Economic Ideas, Ch 7

5. R. L. Meek . 'The Decline of Ricardian Economics' *Economica* February, 1950

---

12 J. M Keynes : *General Theory*, p. 32.

6. Piero Sraffa : The Works and Correspondence of David Ricardo, 9 Vols.
7. L. H. Haney · History of Economic Thought, Chapter, XIII.
8. Gide and Rist : A History of Economic Doctrines, Chapter III.
9. Eric Roll . A History of Economic Thought, Chapter, IV.
10. Leo Rogin : The Meaning and Validity of Economic Theory, Chapter, 4.
11. O. H Taylor : A History of Economic Thought, Chapters 7 and 8.
12 J. M. Ferguson ; Landmarks of Economic Thought, Chapter, VII.
13. S H Patterson : Readings in the History of Economic Thought, Part III, Chapter 2.

प्रश्न

1. 'The Ricardian theory of rent affords a target for every Marxian in his general attack on private property The Ricardian theory of value is the starting point of modern socialism '

   Examine critically the truth of the above statement

   (राजस्थान, १६४८ ; आगरा १६४८ ; १६५१)

2. Examine the manner in which Ricardo reconciles his *labour theory of value with the differences in the quality* of labour.

   (राजस्थान, १६५३)

3. Estimate the importance of David Ricardo's contribution to the development of economic theory.

   (राजस्थान, १६५४ ; १६५६)

4. 'Next to Smith, Ricardo *is the greatest name in economics,* and fiercer controversy has centered round his name than ever raged around the master's.' (Gide and Rist)

   Elucidate the above statement.

   (राजस्थान, १६५८ , १६६१ ; आगरा, १६५५)

5. 'The main achievement of Ricardo is to be found in the theory of value and distribution ' (Eric Roll). Discuss the statement fully.

   (आगरा, १६५४ ; १६६१)

6. 'His (Ricardo's) mistake lies in the extreme and impractical abstractness of an assumption of equality of labour, a mistake which was later to be made the basis for a theory of value by the socialists.' (Haney) Justify.

(आगरा, १९५९)

7. Examine critically Ricardo's theory of distribution.

(बनारस, १९५९ ; कर्नाटक, १९५८)

8. Analyse Ricardo's theory of value.

(बनारस, १९५८)

9. Briefly discuss Ricardo's model of distribution of national product between landlords, labourers and capitalists with the progress of economy.

(अलीगढ़, १९५८)

10. Evaluate Ricardo's contributions to the theory of foreign exchange and currency.

(कर्नाटक, १९५९)

11. "Political Economy you think is an enquiry into the nature and causes of wealth—I think it should be called an enquiry into the laws which determine the division of the produce of industry amongst the classes who concur in its formation." (Ricardo in a letter to Malthus)

Explain this view of Ricardo on the scope of Political Economy and compare it with that of his predecessors.

(कर्नाटक, १९५६)

12. Examine Ricardo's views regarding the effect of economic progress on the relative shares in distribution.

(कर्नाटक, १९५७)

13. Discuss Ricardo's contribution to monetary theory.

(कर्नाटक, १९५७)

शास्त्रियों ने लगान शब्द को अधिक व्यापक बनाकर इसे उत्पादन के सभी साधनों के लिये प्रयोग किया है। उनके अनुसार भूमि के वर्गीकरण के अन्तर्गत न आने वाले अन्य उत्पादन के साधनों में भी भूमि का रूप विद्यमान रहता है। अमरीकी अर्थशास्त्री केनिथ बोल्डिंग (Kenneth E. Boulding) के अनुसार आर्थिक लगान, "किसी सतुलित उद्योग मे लगे हुए उत्पादन साधन की इकाई को किया गया वह भुगतान है, जो उस साधन को उस उद्योग में लगाये रखने के लिये न्यूनतम मात्रा से अतिरिक्त दिया जाता है। आरभ में लगान का विचार सबसे पहली भूमि की सेवाओं के सम्बन्ध मे किया गया था तथा इसीलिये इसका नाम आर्थिक लगान रक्खा गया था। परन्तु वास्तव में यह किसी भी उत्पादन के साधन के सम्बन्ध में, जिसकी पूर्तिपूर्ण लोचदार नही है, प्रयोग मे लाया जा सकता है।"[3] अन्य अर्थशास्त्रियों ने भी लगान की परिभाषा लगभग इसी प्रकार से की है। अंगरेजी अर्थशास्त्री श्रीमती जॉन रॉबिन्सन (Mrs. Joan Robinson) के मतानुसार 'लगान की विचारधारा का तत्व किसी उत्पत्ति के साधन की एक विशेष मात्रा के द्वारा उसे उसी काम मे लगाये रखने के लिये आवश्यक न्यूनतम आय से अतिरिक्त आय से है।"[4]

प्रकृतिवादी तथा रिकार्डो के मतों का तुलनात्मक अध्ययन

यद्यपि रिकार्डो इस मत से सहमत थे कि लगान एक प्रकार का वेशी भुगतान था, परन्तु इस प्रश्न पर कि यह कैसे प्राप्त होता है, उनका प्रकृतिवादियों से मतभेद था। प्रकृतिवादियों के मतानुसार यह अतिरिक्त आय कृषि मे प्रकृति के मनुष्य के साथ सहयोग मे कार्य करने के कारण प्रकृति की उदारता के फलस्वरूप प्राप्त होती है, जिसके लिये प्रकृति को कुछ पारितोषण नहीं दिया जाता है। इसके विपरीत रिकार्डो के अनुसार लगान मनुष्य के प्रति प्रकृति की कृपा अथवा उदारता का परिणाम न होकर उसकी अनुदारता अथवा कृपणता का परिणाम है। उनके अनुसार प्रकृति मनुष्य के साथ सौतेली माता के समान व्यवहार करती है। रिकार्डो के समय में अधिक लगान के कारण समाज मे अधिक चिन्ता फैल गई थी। वे स्वय व्यापारिक दृष्टिकोण का व्यक्ति थे। इसलिये उनकी समझ मे यह स्पष्ट रूप से आगया था कि अधिक लगान भूमि तथा उसकी उपज के कम होने के कारण देना पड़ता है, उनकी बाहुल्यता के कारण नहीं। जहाँ प्रकृतिवादी इस अतिरिक्त मात्रा की वृद्धि को (Produit net) राष्ट्रीय आर्थिक उन्नति में वृद्धि का निर्देशक समझते थे वहाँ रिकार्डो को इस लगान की वृद्धि मे मानव समाज के लिये निराशाजनक भविष्य दिखलाई पड़ता था। यद्यपि लगान का प्रकृतिवादी दृष्टिकोण (Produit net) जमीदारों के विरुद्ध किसी प्रकार के वर्ग-संघर्ष तथा घृणा के विचारों को उत्पन्न नहीं करता है, परन्तु रिकार्डो के लगान का दृष्टिकोण इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि जमीदार समाज विरोधी तत्व है, जो अनार्जित आय पर अपना

3. Kenneth E Boulding *Economic Analysis (1955 Ed).* pp. 211-12
4. Joan Robinson *Economics of Imperfect Competition.* p 102

जीवन निर्वाह करते है। उनका स्वार्थ समाज के अन्य वर्गों के स्वार्थ के विरुद्ध है। इस प्रकार लगान अथवा बेशी मात्रा की प्रवृत्ति तथा उसकी प्राप्ति के कारणों के बारे मे प्रकृतिवादियो एव रिकार्डो के दृष्टिकोण मे आधारभूत अतर है।

रिकार्डो का लगान सिद्धान्त

यद्यपि अर्थशास्त्र मे रिकार्डो का योगदान बहुत व्यापक है (अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, बैंक पत्र, मुद्रा निर्गमन, अर्थशास्त्र की प्रणालियो की व्याख्या, मूल्य-सिद्धान्त आदि विषयो पर भी उन्होने अपने विचार प्रकट किये है) परन्तु उन्होंने समाज मे धन वितरण करने वाले सिद्धान्तों के अध्ययन पर विशेष बल दिया है। यद्यपि रिकार्डो ने अपनी प्रभावशाली लेखनी के द्वारा वितरण को नियमित करने वाले सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है—लगान का सिद्धान्त, मजदूरी तथा लाभ का सिद्धान्त—परन्तु इनमे से लगान का सिद्धान्त सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। वास्तव मे रिकार्डो का लगान सिद्धान्त इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि अकेला यही उनके नाम को अमर बनाने तथा आर्थिक विचारधारा के इतिहास मे प्रथम श्रेणी के थोड़े से अर्थशास्त्रियो मे इनको महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करने के लिये यथेष्ट है। उनके अन्य सिद्धान्तो, जो कालान्तर मे प्रायः अमान्य हो गये है, की अपेक्षा यह सिद्धान्त इतना अधिक लोकप्रिय हो गया है और इसने इतनी अधिक महत्ता प्राप्त करली है कि अपने प्रवर्तक की लेखनी से लिखे जाने के एक शताब्दी के पश्चात् भी इस समय अर्थशास्त्र मे कोई भी परीक्षा पत्र तब तक पूर्ण नही समझा जा सकता, जब तक कि उसमे रिकार्डो के लगान सिद्धान्त के बारे मे कुछ न कुछ न पूछा जाय।

रिकार्डो ने लगान की परिभाषा इस प्रकार से की है "भूमि की कुल उपज का जमीदार को दिया गया वह भाग जो भूमि की प्रारम्भिक तथा अनाशवान शक्तियो के प्रयोग के लिये दिया जाता है, लगान कहलाता है।" यह "भुगतान प्रायः श्रम की अतिरिक्त मात्रा के लगाने से अपेक्षाकृत कम प्रतिफल प्राप्त होने के कारण किया जाता है।"[5] लगान विभिन्न भू खण्डो की उर्वरा शक्ति मे अन्तर होने के कारण 'बेशी' के रूप मे प्राप्त होता है। लगातार बढती हुई जनसंख्या की अधिकाधिक खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अधिक खाद्यान्नो को उगाने की दृष्टि से भूमि के अधिक क्षेत्रफल पर कृषि की जाने लगती है। खाद्यान्न की बढती हुई माँग को पूरा करने के लिये विस्तृत व गहरी अथवा दोनो प्रकार की खेती साथ-साथ करनी पडती है। दोनों अवस्थाओं मे बढती हुई जनसंख्या के फलस्वरूप जैसे जैसे अधिक कृषि होती जाती है वैसे वैसे इस 'बेशी' की मात्रा अधिक होती जाती है। लगान का जन्म दो सर्वव्यापी नियमों के कारण होता है—एक ओर तो प्रकृति की अनुदारता अथवा क्रमागत

---

5. David Ricardo : *Principles of Political Economy and Taxation, Ch. II, 2nd. Ed, pp* 47 55,

उत्पत्ति ह्रास नियम का लागू होने तथा दूसरी ओर जनसख्या की गुणात्मक वृद्धि की प्रवृत्ति के कारण।

परन्तु प्रश्न यह है कि जमीदारो को लगान कैसे प्राप्त होता है ? इस प्रश्न का उत्तर किसी देश मे भूमि को उत्तरोत्तर जोते जाने की प्रणाली द्वारा जाना जा सकता है। जब तक देश मे सबसे अच्छी भूमि की अधिकता रहती है और प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी कठिनाई के जोतने के लिये इस भूमि को मुफ्त प्राप्त कर सकता है तब तक लगान नाम की कोई समस्या उत्पन्न नही होती है। परन्तु जैसे-जैसे जनसख्या बढती जाती है वैसे वैसे सबसे अच्छी भूमि पर खेती का क्षेत्रफल बढता जाता है। जब सम्पूर्ण अच्छी भूमि समाप्त हो जाती है तो अपेक्षाकृत हीन भूमि, जो द्वितीय श्रेणी की है, खेती के प्रयोग मे लाई जाती है। परन्तु द्वितीय श्रेणी की भूमि पर उसी समय खेती की जा सकती है जबकि उससे प्राप्त उपज कम से कम उस पर की गई खेती के कुल व्यय (श्रम की मजदूरी, पूँजी का व्याज तथा कुछ लाभ) के बराबर हो। परन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है जब कृषि उपज की कीमतें बढ जायँ क्योकि जितने व्यय से एक निश्चित क्षेत्रफल पर प्रथम श्रेणी की भूमि पर जितनी उपज प्राप्त होती थी, उतने ही व्यय से उतने ही क्षेत्रफल पर द्वितीय श्रेणी की भूमि पर—हीन उर्वरता होने के कारण—अपेक्षाकृत कम उपज प्राप्त होती है तथा मूल्य मे वृद्धि होना आवश्यक है अन्यथा द्वितीय श्रेणी की कम उपजाऊ शक्ति वाली भूमि पर खेती नही की जावेगी। वास्तव मे मूल्य मे वृद्धि होने के कारण ही द्वितीय श्रेणी की भूमि पर खेती का क्रम आरम्भ किया जाता है। चूँकि दोनों प्रकार की भूमियो की उपज एक ही बाजार मे बिकती है अत. दोनो की कीमते समान होती है इसलिये प्रथम श्रेणी की उपज को वेचने से द्वितीय श्रेणी की उपज की अपेक्षा अधिक मूल्य प्राप्त हो जाता है। इन दोनो उपजो के मूल्य का अन्तर पहली श्रेणी की अधिक उपजाऊ शक्ति वाली भूमि का लगान बन जाता है।

यदि जनसख्या की वृद्धि का क्रम बना रहे तो कालान्तर मे तृतीय श्रेणी की भूमि पर कृषि करना आवश्यक हो जाता है। ऐसी दशा मे दूसरी श्रेणी की भूमि से भी लगान प्राप्त होने लगता है और प्रथम श्रेणी की भूमि का लगान बढ जाता है क्योकि अब इसका लगान इसकी उपज के मूल्य तथा तृतीय श्रेणी की भूमि की उपज के मूल्य के अन्तर के बराबर होता है। यदि जनसख्या और भी बढती जाय तो तृतीय श्रेणी की भूमि पर भी लगान प्राप्त होने लगता है और चौथी श्रेणी की भूमि सीमान्त अथवा लगानरहित भूमि बन जाती है। इस प्रकार लगान के प्रारम्भ तथा उसकी वृद्धि का आधारभूत कारण लगातार बढती हुई जनसख्या के भरण-पोषण के लिए क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम के लागू होने के फलस्वरूप, पर्याप्त मात्रा मे खाद्यान्न को उगाने की बढती हुई कठिनाई है। रिकार्डो ने जिस प्रकार लगान के प्रारम्भ तथा उसकी वृद्धि को समझाने का प्रयत्न किया है, उससे

स्पष्टतया यह निष्कर्ष निकलता है कि जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि के साथ उसके भरण-पोषण के लिये खाद्यान्न की पूर्ति के बढ़ाने के लिये, प्रत्येक देश को पहले से हीन भूमि पर खेती करनी पड़ती है और परिणामस्वरूप अपेक्षाकृत अधिक उर्वर-भूखण्डो मे भूस्वामियो को लगान प्राप्त होने लगता है। यह लगान पूँजी तथा श्रम की एक निश्चित मात्रा के द्वारा प्राप्त अन्य भूखण्डो की उपज तथा न्यूनतम उर्वर भूखण्ड की उपज के अन्तर के बराबर होता है।

बढ़ती हुई जनसख्या के कारण नये भूखण्डों पर खेती होने के साथ ही साथ जिन भूखण्डो पर पहले से ही खेती होती चली आ रही है, उन पर भी पहले की अपेक्षा श्रम तथा पूँजी की अतिरिक्त इकाइयाँ लगा कर अधिक उत्पादन प्राप्त करने क प्रयत्न किये जाते है। कृपक को इस दशा मे भी लगान देना पडता है। इस दशा मे श्रम व पूँजी की अन्तिम इकाई को कोई लगान नही देना पडता है क्योकि इसमे प्राप्त अतिरिक्त उपज केवल इसके व्यय के बराबर ही होती है। परन्तु इससे पहले की इकाइयों के द्वारा प्राप्त उपज अधिक होती है। श्रम व पूँजी की अन्तर सीमान्त (intra-marginal) इकाई तथा सीमान्त इकाई की उपज का यह अन्तर लगान का करण बन जाता है। इस प्रकार आर्थिक लगान विस्तृत (extensive) तथा गहरी (intensive) दोनो प्रकार की खेती मे देना पडता है।

विस्तृत तथा गहरी खेती मे दिये जाने वाले आर्थिक लगान का प्रारम्भ चित्रों के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। विस्तृत खेती मे यदि प्रथम श्रेणी की भूमि पर लगाये गये श्रम तथा पूँजी की एक निश्चित मात्रा से १०० मन गेहूँ पैदा किया जा सकता है, दूसरी श्रेणी की भूमि से ८० मन, तीसरी श्रेणी की भूमि से ५० मन और चौथी श्रेणी की भूमि से ३० मन गेहूँ प्राप्त हो सकता है तो चौथी श्रेणी को छोडकर अन्य श्रेणियो की भूमि से क्रमश ७०, ५०, तथा २० मन गेहूँ लगान के रूप में प्राप्त होगा। गहरी खेती मे भी इसी प्रकार से लगान प्राप्त होगा। केवल विभिन्न भूमि की विभिन्न श्रेणियो के स्थान पर श्रम व पूँजी की विभिन्न इकाइयाँ समझनी चाहिये। अर्थात् गहरी खेती मे भूमि की निश्चित स्थिर मात्रा होते हुये श्रम व पूँजी की क्रमश: पहली इकाई से ७० मन, दूसरी से ५० मन तथा तीसरी से २० मन गेहूँ लगान के रूप मे प्राप्त होगा। पृष्ठ १६४ पर दिये गये चित्रो मे, जिनमे रेखांकित भाग लगान प्रदर्शित करता है, यह बात भली प्रकार स्पष्ट होती है।
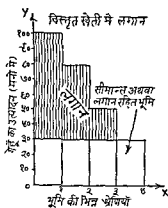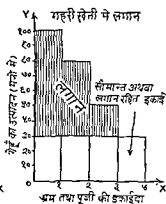
चित्र १ चित्र २

उपरोक्त चित्रों में चित्र १ विस्तृत खेती के अन्तर्गत लगान के उत्पन्न होने के क्रम को व्यक्त करता है। जैसा की चित्र से विदित है चौथी श्रेणी की भूमि जिस पर कुल उपज की मात्रा ३० मन गेहूँ है लगान-रहित अथवा सीमान्त भूमि है क्योंकि प्रचलित मूल्य पर कुल उत्पत्ति—३० मन गेहूँ—को बेचकर केवल उत्पादन लागत ही प्राप्त होती है। दूसरे शब्दों में इस भूमि से किसी प्रकार कोई अधिशेष प्राप्त नहीं होता है। प्रथम, द्वितीय तथा तीसरी श्रेणी की भूमियों के अधिक उपजाऊ होने के कारण इन में लगान प्राप्त होता है जो चित्र में रेखांकित क्षेत्र से प्रदर्शित किया गया है। दूसरे शब्दों में प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी की भूमि लगान-भूमि (Rent-land) है। चित्र २ में लगान के उत्पन्न होने के क्रम को गहरी खेती के अन्तर्गत व्यक्त किया गया है। इस चित्र में श्रम व पूँजी की चौथी इकाई सीमान्त अथवा लगान-रहित इकाई है तथा इस से पहली अन्य इकाइयों पर लगान प्राप्त होता है।

सिद्धान्त की मान्यतायें

रिकार्डो का लगान का सिद्धान्त कुछ मान्यताओं पर आधारित है, जिनके कारण इस सिद्धान्त की काफी आलोचना हुई है। सर्व प्रथम यह सिद्धान्त दीर्घकाल की मान्यता पर आधारित है और यह मान्यता परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के सम्पूर्ण तर्कों में पाई जाती है। दूसरे, सीमान्त अथवा लगान रहित भूमि के कारण लगान का जन्म हुआ है। सिद्धान्त की तीसरी मान्यता भूमि की कमी अथवा उसकी सीमित पूर्ति के बारे में है। चौथे, यह माना गया है कि भूमि की 'मूल तथा अनाशवान' शक्तियाँ हैं, जिनके लिए लगान का भुगतान किया जाता है। पाँचवें, रिकार्डो के सिद्धान्त के अनुसार लगान का सम्बन्ध पूर्णतया भूमि से है, 'मानव कृत' उत्पादन के अन्य साधनों का लगान से कोई सम्बन्ध नहीं है। छठे, विभिन्न प्रकार की उर्वरा शक्ति वाले भूखण्ड बिलकुल स्वाभाविक क्रम से जोते जाते हैं। अर्थात् सबसे अधिक उपजाऊ शक्ति वाली भूमि सबसे पहले और उससे कम उपजाऊ शक्ति वाली भूमि

उसके बाद तथा उससे भी कम उपजाऊ भूमि उसके बाद क्रमशः जोती जाती है। सातवें, भूमि के विभिन्न भूखडो में उर्वराशक्ति का अन्तर है, क्योकि यदि उर्वराशक्ति मे अन्तर न हुआ होता तो समान उर्वराशक्ति के कारण किसी प्रकार के लगान का जन्म तब तक न हुआ होता जब तक कि कोई भूखण्ड स्थिति सम्बन्धी विशेष लाभ न प्राप्त कर रहा होता। अन्त मे, यह सिद्धान्त कृषि मे क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम के लागू होने तथा जनसंख्या मे निरन्तर वृद्धि होने की दो प्रवृत्तियों पर आधारित है।

रिकार्डो के लगान के सिद्धान्त की आलोचनायें

रिकार्डो के लगान के सिद्धान्त की अनेक आलोचनाये की गई हैं। सर्व प्रथम, इसी बात की कड़ी आलोचना की गई है कि लगान पृथ्वी की मूल तथा अनाशवान शक्तियो के प्रयोग के बदले मे भूस्वामी को किया गया भुगतान है। आलोचकों की ओर से यह कहा गया है, और संभवतः ठीक ही कहा गया है, कि भूमि की मूल तथा अनाशवान शक्तियो जैसी कोई शक्ति नही होती है। कम से कम, उर्वरा शक्ति के कुछ तत्व तो ऐसे हैं जो नाश हो जाते है और जिनके कारण भूमि की उपजाऊ शक्ति कम हो जाती है। इस अणुयुग मे किसी वस्तु को अनाशवान समझना एक भयंकर भूल होगी। वास्तव मे भूमि की मूल तथा अनाशवान शक्तियाँ पूर्णरूपेण दृष्टिगोचर नही होती है। यदि इस मूल्य-परिवर्तनो के समक्ष, भूमि की पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति का अर्थ धारणा मे समझा जाय तो सभवतः अधिक युक्ति सगत होगा। प्रोफेसर हैने (Haney) ने भूमि की मूल तथा अनाशवान शक्तियो पर रिकार्डो का पूर्ण रूप से समर्थन किया है। उसका कहना है कि जलवायु के समान भूमि के साथ कुछ ऐसे तत्व रहते हैं जो वर्तमान ज्ञान के आधार पर न तो नाश किये जा सकते है तथा न बनाये जा सकते है। इसके साथ ही साथ किसी भूमि तत्व का निर्माण तथा विनाश इतनी भिन्न-भिन्न सुविधाओ से होता है कि लगान के सिद्धान्त मे निहित अपेक्षाकृत स्थायी असमानताये नही बन सकती है।"[6]

दूसरे, आलोचकों का यह भी कहना है कि लगान केवल भूमि का ही कोई अनोखा लक्षण नही है। भूमि के लगान के समान, गुण व भेद से उत्पन्न बेशी आय उत्पत्ति के श्रम तथा पूँजी साधनों को प्राप्त भुगतान मे भी पाई जाती है। इस दृष्टिकोण का बहुत से आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने समर्थन किया है। इस विचारधारा के अनुसार लगान को उत्पत्ति के लिये किसी एक निश्चित अवधि मे उत्पादन के किसी साधन विशेष की पूर्ति का इसकी माँग की तुलना मे अपेक्षाकृत बेलोचदार होना आवश्यक है। यह मानना कि केवल भूमि की ही पूर्ति सीमित है, तर्कसगत नही मालूम होता है। अल्पकाल तथा अर्द्ध-दीर्घकाल मे भूमि के अतिरिक्त, उत्पादन के अन्य साधनो मे भी उनकी माँग के परिवर्तनो के अनुपात मे उनकी पूर्ति में

अनुपाती परिवर्तन सम्भव नही हो पाते हैं। इसलिये पूँजी, श्रम तथा साहस आदि उत्पादन के साधनो को कभी-कभी ऐसे अवसर प्राप्त हो जाते है, जिससे उन्हे भी भूमि के लगान के समान अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। श्रीमती जॉन रोबिन्सन ने भूमि की धारणा से घनिष्ठरूप से सम्बन्धित लगान की आलोचना करते हुये लिखा है कि "श्रम, साहस तथा पूँजी के तीन विस्तृत वर्गों मे सम्मिलित उत्पादन के साधनो की कुछ विशेष इकाइयाँ भी लगान प्राप्त कर सकती है।"[७] मार्शल ने भी रिकार्डो के सिद्धान्त मे यह कमजोरी पाई है। उसके अनुसार कभी-कभी श्रम तथा पूँजी के वर्गो मे सम्मिलित साधन को भी इस प्रकार का बेशी लाभ प्राप्त होता है। परम्परावादी वातावरण मे पले होने के कारण मार्शल ने इस प्रकार की अतिरिक्त आय को लगान न कहकर आभास लगान की संज्ञा दी है। उन्होने लिखा है, "मनुष्यो के द्वारा बनाये गये औजारो तथा पृथ्वी के बीच मे असमानता होते हुये भी उनमे कुछ समानता है। यह समानता इस बात मे है कि उनमे से कुछ औजार शीघ्रता से उत्पन्न नही किये जा सकते है। अल्पकाल के लिये उनकी मात्रा प्रायः स्थिर रहती है और इस काल मे उनमे प्राप्त आय का उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओ की कीमत से वही सम्बन्ध होता है, जो वास्तविक लगान का भूमि की उपज से होता है"[८]

तीसरे, आलोचको ने रिकार्डो के दृष्टिकोण की आलोचना इसलिये की है कि वे लगान को मूल्य के फलस्वरूप मानते है। रिकार्डो के अनुसार मूल्य लगान मुक्त, सीमान्त भूमि पर उत्पादित अनाज के उत्पादन व्यय से निर्धारित होता है। रिकार्डो के लगान के सिद्धान्त का सावधानी से अध्ययन करने पर यह बात बिलकुल निर्मूल हो जाती है कि भूमि का लगान मूल्य से निर्धारित होता है। मिल तथा अन्य आलोचको ने इस दृष्टिकोण की आलोचना की है। उसका कहना है कि एक उद्योग के दृष्टिकोण से लगान मूल्य मे सम्मिलित होता है।

चौथे, रिकार्डो की उस क्रमिक योजना, जिसके अनुसार भिन्न-भिन्न उर्वरा शक्ति वाले भूखण्ड जोते जाते है, की भी कटु आलोचना की गई है। रिकार्डो के अनुसार, सबसे अधिक उपजाऊ शक्ति तथा सबसे अच्छी स्थिति वाला भूखण्ड सबसे पहले जोता जाता है परन्तु यह तथ्य सदैव सत्य नही है। इतिहास साक्षी है कि मनुष्य की बहुत सी बस्तियाँ उर्वरता अथवा स्थान के दृष्टिकोण से नही बसी है। कैरे (Carey) तथा रोशर (Roscher) ने संकेत किया है कि इतिहास इस बात को प्रमाणित नही करता है कि एक नये देश मे सबसे पहले अच्छी भूमि ही जोती जाती है। श्रेष्ठतम भूमि का सर्व प्रथम उपयोग किया जाना तभी प्रमाणित हो सकता है

---

७. Joan Robinson 'Economics of Imperfect Competition p 102.
८. Marshall : *Principles of Economics, Reprint, of 8th Ed. p.* 358 (see also. P. 342).

जब मनुष्य देश की सम्पूर्ण भूमि का सबसे पहले निरीक्षण करले और बडी सावधानी से जाँच पड़ताल करले। परन्तु आज तक कही ऐसा नही किया गया। भारतवर्ष मे हिमालय की तराई मे बहुत सा उपजाऊ भूखण्ड अभी तक आबाद नही हो पाया है, जबकि दिल्ली, कलकत्ता तथा कानपुर आदि शहरो के पास उससे कही हीन भूमि पर मनुष्य रहते है। इससे यह सिद्ध होता है कि रिकार्डो के द्वारा दिया गया कृषि भूमि के उपयोग का इतिहास सत्य नही है।

पाँचवे, रिकार्डो के सिद्धान्त के अनुसार हीन तथा श्रेष्ठ भूखण्डों के प्राकृतिक लाभों के अन्तर से लगान की उत्पत्ति होती है। अत: यदि सब भूखण्ड उर्वरता आदि के दृष्टिकोण मे समान हुये होते तो रिकार्डो के सिद्धान्त के अनुसार लगान की उत्पत्ति ही नही हुई होती। इसके विपरीत यदि सभी भूखण्ड इस दृष्टिकोण मे समान भी होते तब भी, *क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम के अनुसार, लगान की उत्पत्ति अवश्य* होती। प्राचीन आर्थिक सिद्धान्तो के प्रबल समर्थक मार्शल ने भी स्वीकार किया है कि असमान उर्वरता के न होने पर भी केवल भूमि का सीमित होना ही लगान की उत्पत्ति के लिये पर्याप्त है। इस प्रकार रिकार्डो के लगान के सिद्धान्त ने इस तथ्य का बिलकुल ध्यान नही रक्खा है कि लगान उत्पत्ति के साधन की पूर्ति के सीमित होने से उत्पन्न होता है। यह प्रत्येक आर्थिक परिस्थितियों मे पाया जाता है।

छटे अन्य प्राचीन सिद्धान्तो के समान रिकार्डो का लगान सिद्धान्त भी, दीर्घकाल तथा पूर्ण स्पर्धा की प्राय. गलत मान्यताओं की पृष्ठभूमि मे प्रतिपादित किया गया है। इन दो मान्यताओ ने रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की व्यावहारिक उपयोगिता को प्राय: समाप्त कर दिया है क्योंकि जो सिद्धान्त इन दो मान्यताओं पर आधारित है वह वास्तविक ससार मे, जहाँ अपूर्ण प्रतिस्पर्धा तथा अल्पकाल अत्यन्त महत्वपूर्ण है, अधिक उपयोगी सिद्ध नही हो सकता है।

रिकार्डो के सिद्धान्त की समीक्षा

बहुत से दोषो तथा अनेको कटु आलोचनाओं के होते हुये भी रिकार्डो का लगान का सिद्धान्त आर्थिक सिद्धान्तों के साहित्य मे एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसने निराशावादी रूप को स्पष्ट करके प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियो के स्वाभाविक क्रम की महत्ता को समाप्त कर दिया है। रिकार्डो के सिद्धान्त के द्वारा स्पष्ट किया गया *यह तथ्य कि जनसंख्या की लगातार वृद्धि हमे कालान्तर मे हीन भूखण्डो पर कृषि* करने के लिये बाध्य कर देती है, आज भी उतना ही सत्य है, जितना कि रिकार्डो के समय मे सत्य था। कृषि मे उन्नति तथा व्यापक वैज्ञानिक अनुसंधानो, जिन पर आधुनिक समाज को गर्व है, के होते हुये भी रिकार्डो के लगान के सिद्धान्त का मानव जीवन में लागू होना अधिक से अधिक स्थगित ही किया जा सकता है, समाप्त नही किया जा सकता। प्रो० चार्ल्स जीड (Charles Gide) ने सत्य ही लिखा है कि "जब मनुष्य अण्डे की जरदी को विज्ञान की सहायता से उत्पन्न करने लगेगा तभी रिकार्डो

का सिद्धान्त निरर्थक सिद्ध हो सकता है। जब तक ऐसा नहीं होता है तब तक रिकार्डो का सिद्धान्त सत्य रहेगा।"

रिकार्डो के सिद्धान्त का सैद्धान्तिक व व्यावहारिक दृष्टिकोणों से बहुत अधिक प्रभाव रहा है। इसमे लगान लेने वाले जमीदार वर्ग तथा समाज के अन्य वर्गों के स्वार्थों के सघर्ष की सत्यता प्रमाणित की गई है। रिकार्डो के लगान सिद्धान्त के आधार पर ही मिल ने करो के द्वारा लगान को प्राप्त करने अथवा इसका सामाजीकरण करने के लिये बडी दृढता के साथ समर्थन किया था। हैनरी जार्ज ने लगान को सामाजिक बुराइयो का मूल माना है। उसके अनुसार यदि लगान समाप्त कर दिया जाय तो समाज मे दरिद्रता तथा श्रमिको की निर्धनता समाप्त हो जायगी। आज वर्तमान समय मे सभी देशो मे विचारो तथा व्यवहार दोनो मे लगान को अवैधानिक समझा जाता है और बहुत से देशो मे जमीदारी प्रथा के उन्मूलन की माग क्रियान्वित हो गई है। हमारे देश मे भी जमीदारी प्रथा समाप्त कर दी गई है और समाज का प्रगतिशील वर्ग जमीदारो को घृणा की दृष्टि से देखता है। यद्यपि हम इस बात को आज भूल जाते है परन्तु मूलत उनकी वैधानिक मृत्यु का प्रारम्भ तो उसी समय हो गया था जब रिकार्डो ने अपने सिद्धान्त का आज से लगभग १५० वर्ष पूर्व प्रतिपादन किया था। समाजवादी रिकार्डो के सिद्धान्त को बडे सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री सिडनी वैब (Sidney Webb) तो रिकार्डो के लगान के सिद्धान्त को 'समूहवादी अर्थशास्त्र की आधार शिला' मानता है।

लगान का आधुनिक सिद्धान्त

आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार रिकार्डो ने लगान को भूमि तथा प्रकृति के नि शुल्क उपहारो से बहुत निकट रूप मे सम्बन्धित कर दिया है। इससे यह ज्ञात होता है कि लगान केवल भूस्वामी को भूमि के एक विशिष्ट गुण के कारण प्राप्त होता है और यह उत्पादन के अन्य साधनो—श्रम, पूँजी तथा साहस, आदि—को प्राप्त नहीं हो सकता है। रिकार्डो की लगान की विवेचना लगान को बिलकुल एक पृथक श्रेणी मे रख देती है। इसका अन्य आर्थिक सिद्धान्तों से बहुत अन्तर हो जाता है। रिकार्डो के मतानुसार लगान का सिद्धान्त सभी साधनो पर लागू नहीं किया जा सकता है। यह केवल भूमि पर ही लागू होता है।

कुछ समय से रिकार्डो का लगान सिद्धान्त अधिक परिवर्तित तथा व्यापक बन गया है। आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने लगान के सिद्धान्त के प्रयोग और उसके दृष्टिकोण को अधिक विस्तृत तथा व्यापक बना दिया है। वे लगान को केवल भूमि तक सीमित रखने पर विश्वास नहीं करते है क्योंकि भूमि के अतिरिक्त उत्पादन के अन्य साधनो की उत्पादन क्षमता में भी विभिन्न भूखण्डो की भिन्न उर्वरता के समान अन्तर पाया जाता है। उदाहरण के लिए एक फर्म की मशीन दूसरी से अच्छी हो

सकती है, इसका प्रबन्ध दूसरी फर्म की अपेक्षा अधिक योग्य हो सकता है तथा इस मे श्रम विभाजन अधिक विकसित हो सकता है, जिसके फलस्वरूप पहली फर्म मे दूसरी की अपेक्षा अधिक उत्पादन होता है और इससे पहली फर्म को कुछ वेशी लाभ मिल जाता है। इसी प्रकार एक श्रमिक की कार्यक्षमता बहुधा दूसरे से भिन्न होती है। एक व्यक्ति बिना अधिक परिश्रम किये ही दूसरे से अधिक कार्य कर सकता है और इस प्रकार व्यावहारिक जीवन मे एक व्यक्ति के द्वारा बिलकुल अन्तरीय अधिशेष के समान गुण वाली वेशी आय प्राप्त करने की सम्भावना होती है। योग्यता का अन्तर श्रमिको मे ही नही वरन् प्रबन्धको अथवा व्यवस्थापको मे भी पाया जाता है। योग्यता का लगान विभिन्न व्यवसायो में विभिन्न प्रकार की सफलता तथा उनसे प्राप्त समान लाभ अथवा आय के निर्धारण करने में बहुत महत्वपूर्ण है। "आधुनिक विचारधारा के अनुसार किसी भी उत्पादक अथवा व्यापारी के द्वारा उसकी श्रेष्ठ योग्यता अथवा व्यावसायिक प्रबन्ध के कारण प्राप्त वेशी लाभ लगान के समान ही होता है।"[9]

अमरीकी अर्थशास्त्री एफ० ए० वाकर (F. A. Walker) के अनुसार विभिन्न साहसियो की योग्यताओ मे इसी प्रकार से अन्तर होता है, जिस प्रकार भूखण्डों की उर्वरा शक्ति मे अन्तर पाया जाता है। इस प्रकार से वाकर ने लाभ के लगान सिद्धान्त को पूर्णरूप से प्रतिपादित किया है। अपने इस सिद्धान्त के द्वारा उसने यह समझाया है कि अधिक योग्यता वाले साहसियो को ठीक इसी प्रकार लगान मिलता है जिस प्रकार अच्छी श्रेणी की भूमि को मिलता है। इस दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण करते हुये उसने लिखा है "स्वतन्त्र तथा पूर्ण प्रतिस्पर्धा के अन्तर्गत श्रमिको को कार्य मे लगाने वाले सफल नियोक्ताओ को प्राप्त प्रतिफल नापा जा सकता है। इस प्रकार के प्रत्येक व्यवसायी का प्रतिफल, उसके द्वारा उत्पादित धन तथा इतनी ही पूँजी एवं श्रम की मात्रा वाले व्यवसाय की निम्नतम इकाई अथवा अलाभकारी श्रेणी के इकाई के स्वामी के द्वारा उत्पादित धन के अन्तर के बराबर होगा। यह माप एक ही बाजार मे बिकने वाली न्यूनतम उर्वराशक्ति वाली भूमि तथा इसमे अच्छी भूमि की उपजो के मूल्यों के अन्तर के समान है।"[10]

इस प्रकार औद्योगिक तथा व्यावसायिक इकाइयो मे सहयोग देने वाली विभिन्न उत्पादक सेवाओं को प्राप्त होने वाली आय की विभिन्न धन राशियाँ, विभिन्न भूखण्डो मे प्राप्त लगान के समान होती है। इन दोनो मे कोई अन्तर नही है। मार्शल ने भी इसी दृष्टिकोण का दृढ़ता मे समर्थन करते हुये लिखा है कि 'प्रकृति के निःशुल्क उपहार मे लेकर, स्थायी उन्नतिशील खेत, कारखानों, भाप के इन्जन तथा कम टिकाऊ व धीरे-धीरे निर्मित औजारो तक मे लगान का कुछ न कुछ रूप पाया जा

सकता है।"[11] मार्शल ने यहाँ तक कहा है कि "भूमि का लगान स्वय कोई प्रथ वस्तु नहीं है वरन् यह एक सामान्य वर्ग का एक विशेष प्रकार मात्र है।"[12]

इस प्रकार मार्शल की '**Principles**' नामक पुस्तक मे इस बात पर बार बार बल दिया गया है कि लगान को बिलकुल पृथक और केवल भूमि से सम्बन्धि नह समझना चाहिये वरन् इसे मूल्य के नियमो की सामान्य क्रियाओ का स्वाभावि परिणाम समझना चाहिये।

श्रीमती जॉन रॉबिन्सन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक '**Economics of Imperfect Competition**' मे लगान के आधुनिक सिद्धान्त का पूर्णरूप से स्पष्टीकरर किया है। उसके अनुसार लगान की उत्पत्ति का मुख्य कारण उत्पादन के हर साध की पूर्ति का उनकी माँग की तुलना में सीमित होने मे निहित है। बेलोचदार पूर्ति हो पर उत्पत्ति का प्रत्येक साधन—भूमि, श्रम, पूँजी अथवा प्रबन्ध—लगान प्राप्त क सकता है। केवल भूमि की पूर्ति को ही बेलोचदार मानना सत्य नहीं ज्ञात होता है माग की तुलना मे पूर्ति की लोचहीनता निर्मित वस्तुओ मे भी उसी प्रकार हो सकत है जिस प्रकार यह प्राकृतिक अथवा ईश्वरीय वस्तुओ अथवा प्रकृति के निःशुल्क उपहारों मे होती है। अल्पकाल मे भूमि के अतिरिक्त अन्य वर्गों के साधनो मे भ भूमि की समानता पाई जाती है। अर्थात् अल्पकाल मे उनकी मात्रा भी प्राय स्थि होती है। इसलिये उनसे प्राप्त आय, उनसे उत्पादित वस्तुओ की कीमत के आधा पर भूमि का लगान ही मानी जा सकती है।[13] मार्शल ने लिखा है: "यदि किस निश्चित अवधि मे उत्पादन के किसी साधन की पूर्ति सीमित होती है और इसक मानवीय प्रयत्नो के द्वारा नही बढाई जा सकती है तो उस काल मे आर्थिक कार्यों के प्रतिफलो का अध्ययन करते समय उस साधन से प्राप्त आय को लाभ की अपेक्षा लगान के समान ही समझना अधिक उपयुक्त होगा।[14]

परन्तु क्या इस सब का यह तात्पर्य है कि अर्थशास्त्रियो द्वारा कही जाने वाली भूमि तथा श्रम, पूँजी व साहस कहे जाने वाले उत्पादन के अन्य साधनों मे कोई अन्तर नही है? निस्सन्देह, इनमे अन्तर है, परन्तु केवल इतना ही कि जब कि भूमि की पूर्ति की लोचहीनता लगभग सदैव के लिये होती है, श्रम, पूँजी तथा उत्पादन के अन्य साधनो की पूर्ति की लोचहीनता केवल उस काल तक के लिये ही सीमित होती है, जिस काल मे उन साधनो को उत्पादित नही किया जा सकता है। अत यद्यपि अल्प काल मे उनकी पूर्ति भूमि की पूर्ति के समान बेलोचदार होती है, परन्तु दीर्घ काल मे उनकी पूर्ति पूर्णतया लोचदार होती है।

यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यदि प्रत्येक साधन की पूर्ति सदैव पूर्णतया लोचदार बनी रहे तो उस साधन को कभी लगान नही मिल सकता है। पूर्ण लोचदार पूर्ति वाले साधन के उदाहरण की निम्न प्रकार कल्पना की जा सकती है। मान लीजिए ५ प्रतिशत ब्याज पर मनुष्य असीमित मात्रा मे रुपया बचा सकते हैं और उधार दे सकते हैं। यह भी मान लीजिये कि ५ प्रतिशत मे कम दर पर कोई भी मनुष्य उधार देने को तैयार नही है। अतः इस दशा मे ब्याज दर ५% ही रहेगी, यह इससे भिन्न नही हो सकती है क्योकि यदि ब्याज दर बढ जाती है तो इतना अधिक रुपया बाजार मे आ जायेगा कि उसके लिये उधार लेने वाला ही नही रहेगा और यदि ब्याज दर ५% से कम हो जाती है तो हमारी मान्यता के आधार पर कोई उधार देगा ही नही। इसलिये ब्याज दर ५% ही रहेगी। इस ब्याज दर पर पूँजी की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होगी। यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिये कि यह उदाहरण बिल्कुल काल्पनिक है और इससे यही स्पष्ट होता है कि वास्तविक संसार मे पूँजी की पूर्ति भी पूर्ण रूप से लोचदार नही होती है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि पूँजी के अतिरिक्त अन्य साधन भी पूर्ण लोचदार पूर्ति की अवस्था मे नही हो सकते हैं। इसलिये प्रत्येक श्रेणी का साधन चाहे वह भूमि की श्रेणी का हो अथवा अन्य किसी श्रेणी का हो, किसी न किसी दशा मे कभी न कभी लगान प्राप्त करता है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि लगान की उत्पत्ति के लिये किसी भी साधन की पूर्ति का पूर्णतया लोचदार न होना अथवा सीमित होना आवश्यक है। उत्पत्ति के किसी साधन को लगान प्राप्त होने के लिये दूसरी आवश्यकता यह है कि इस साधन की इकाइयो मे भिन्नता होनी चाहिये। उत्पादन के एक ही साधन की विभिन्न इकाइयों मे विभिन्न कार्यक्षमता होनी चाहिये। यह दोनो बातें श्रम, साहस, तथा पूँजी मे ठीक उसी प्रकार मे पाई जाती हैं जिस प्रकार से कि भूमि में पाई जाती हैं। इस प्रकार लगान एक सामान्य वस्तु है और उत्पादन के सभी साधनो को प्राप्त हो सकता है। यह तथ्य कि अपूर्ण लोचदार पूर्ति वाले उत्पादन के प्रत्येक साधन को लगान प्राप्त हो सकता है, चित्र ३ मे भली-भांति समझाया गया है।

निम्न चित्र मे OY पर मजदूरी और OX पर काम करने वाले श्रमिकों की सख्या प्रदर्शित की गई है। SS श्रम का पूर्ति-वक्र है, जो पूर्ण से कम लोचदार है। D D श्रमिको का मांग वक्र है। चित्र के अध्ययन से यह विदित है कि जब प्रति व्यक्ति मजदूरी OS से कम है तो श्रम की पूर्ति शून्य है। OA मजदूरी दर पर उद्योग मे काम करने वाले श्रमिकों की सख्या OK है। परन्तु इतने श्रमिको से उद्योग के द्वारा श्रमिको की माँग पूरी नही होती है। इसलिये काम करने की कम इच्छा रखने वाले श्रमिकों को आकर्षित करने के लिये मजदूरी दर मे वृद्धि करनी पड़ेगी। यदि मजदूरी OA से बढा कर OB
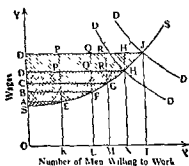
चित्र ३

कर दी जाय तो फलस्वरूप उद्योग के लिये KL अधिक श्रमिक आकर्षित हो जायेंगे और श्रमिको की कुल पूर्ति OL हो जायगी। परन्तु इस OB मजदूरी दर पर भी श्रमिको की पूर्ति माँग के बराबर नही है। इसलिये अधिक श्रमिको को आकर्षित करने के लिये मजदूरी बढाई जायगी। जैसे ही मजदूरी OC तक बढा दी जाती है मजदूरो की सख्या बढकर OM हो जाती है। पर अब भी श्रमिको की पूर्ति माँग से कम है इसलिये मजदूरी OD तक बढा दी जाती है। इस मजदूरी दर पर पर्याप्त सख्या मे श्रमिक कार्य करने को मिल जाते है। इस मजदूरी दर पर श्रम की पूर्ति और माँग दोनो बराबर हो जाते है। किसी एक उद्योग विशेष मे समान श्रमिको को एक सी मजदूरी दर ही दी जाती है। इसलिये जो श्रमिक OD मजदूरी दर से कम दर पर कार्य करने को तैयार थे उन्हे भी OD के बराबर ही मजदूरी मिलेगी अर्थात् सीमान्त श्रमिक के बराबर N H मजदूरी मिलेगी, जो कि OD के बराबर है। इसलिये O से लेकर N तक (केवल N को छोडकर) जितने श्रमिक हैं उनको उस मजदूरी से ज्यादा मजदूरी मिलेगी जिस पर वह पहले काम करने को तैयार थे। मजदूरी की यह वेशी मात्रा भूमि के लगान के समान है। OK समूह के श्रमिको को SEPD क्षेत्र के बराबर लगान प्राप्त होगा। इसी प्रकार KL समूह के श्रमिको को EFQP, LM समूह से श्रमिको को FGRQ तथा MN समूह के श्रमिको को GHR क्षेत्र के बराबर लगान मिलेगा तथा सब श्रमिको को कुल मिलाकर गहरे रगे हुये क्षेत्र SHD के बराबर लगान प्राप्त होगा।

यह चित्र रिकार्डो के लगान-सिद्धान्त से सम्बन्धित चित्र न० १ व २ से किसी भी प्रकार भिन्न नही है। इस चित्र तथा पिछले दोनो चित्रो मे केवल यही भिन्नता है कि उन चित्रो मे उत्पादन को दिखलाया गया है जबकि इसमे व्यय दिखाया गया है। जिस प्रकार पिछले चित्रो मे जैसे-जैसे सीमान्त भूखण्ड निकट होता जाता है लगान कम होता जाता है इसी प्रकार इस चित्र मे भी श्रमिको का प्रत्येक उत्तरोत्तर समूह जैसे-जैसे सीमान्त मजदूर के निकट आता जाता है वैसे वैसे उसके द्वारा प्राप्त अतिरिक्त मजदूरी की मात्रा कम होती जाती है।

रिकार्डो के लगान के सिद्धान्त के सम्बन्ध मे हम ने यह देखा है कि किसी भी कारण से भूमि की माँग मे होने वाली वृद्धि सीमान्त भूमि को नीचे खिसका कर लगान को बढा देती है। इसी प्रकार यहाँ भी हम देखते है कि जब श्रमिको की माँग बढती है तो कुल श्रमिको के द्वारा प्राप्त अतिरिक्त मात्रा का योग भी बढ जाता है। चित्र न० ३ मे श्रमिको का माँग-वक्र जब D D से D′ D′ हो जाता है तो सीमान्त श्रमिक N के स्थान पर J हो जाता है। अब N जो कि पहले रोजगार मे लगे श्रमिक की सीमान्त इकाई थी तथा जिसे कुछ वेशी मजदूरी नही मिलती थी, अब सीमान्त से हटकर श्रेष्ठ बन जाता है और वेशी वेतन प्राप्त करने लगता है। उद्योग मे श्रमिको की कुल माँग बढ जाने के कारण श्रमिको के द्वारा प्राप्त

वेशी धन SHD के स्थान पर SJD हो गया है। अर्थात् पहले की अपेक्षा अब यह हल्के रंग वाले DHJD क्षेत्र के बराबर अधिक हो गया है। यही नही वरन् श्रमिको के प्रत्येक वर्ग की वेशी मजदूरी भी अधिक हो गई है। OK समूह को SEPD के स्थान पर SEP'D', KL समूह को EFQP के स्थान EFQ'P' LM समूह को FGRQ के स्थान पर FGR'Q' और MN समूह को GHR के स्थान पर GHH'R' वेशी धन मिलने लगा है; तथा NT समूह का लगान HJH' के बराबर हो जाता है। श्रमिको को प्राप्त होने वाले लगान को प्रदर्शित करने वाला यह चित्र मूलत: उस चित्र से मिलता है जिसके द्वारा रिकार्डो का लगान सिद्धान्त स्पष्ट किया जाता है।

हस्तांतरित आय (Transfer Earnings)

अर्थशास्त्री उत्पादन के साधनो की इकाइयों के द्वारा कमाई हुई अतिरिक्त मात्रा की माप उनकी हस्तातरित आय के आधार पर करते हैं। हस्तातरित आय का तात्पर्य द्रव्य की उस मात्रा से है जिसे किसी साधन विशेष की एक इकाई सबसे अच्छे वैकल्पिक प्रयोग से प्राप्त कर सकती है। हस्तातरित आय की धारणा का आर्थिक लगान के सिद्धान्त से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जॉन राबिन्सन ने हस्तांतरित आय की परिभाषा इस प्रकार की है: "वह कीमत, जो किसी साधन की एक इकाई को एक विशेष उद्योग में काम पर लगाये रखने के लिये आवश्यक होती है, उस साधन की हस्तातरित आय कहलाती है।"[15] इस दृष्टिकोण से लगान, उत्पादन के साधन की हस्तातरित आय के ऊपर वेशी भुगतान है। उदाहरण के लिये यदि गन्ने की खेती की जाने वाले एक भूखण्ड से १०० रुपये की आय होती है, जबकि इससे दूसरे श्रेष्ठतम प्रयोग, मान लीजिए गेहूँ उगाने से ८० रुपये की आय होती है तो गन्ना उद्योग के दृष्टिकोण से इस भूखड की हस्तातरित आय ८० रुपये होगी। यह वह न्यूनतम द्रव्य की मात्रा है, जो इस भूखड को गन्ने की खेती में रखने के लिये आवश्यक है क्योंकि यदि गन्ने के उत्पादन में ८० रुपये से कम की आय प्राप्त होगी तो गन्ने के स्थान पर इस भूखण्ड पर गेहूँ की काश्त होने लगेगी। इस प्रकार गन्ना उद्योग की दृष्टि से इस भूखड का लगान १००-८० अर्थात् २० रुपये होगा। यदि किसी साधन की हस्तातरित आय शून्य है तो उस प्रयोग तथा उद्योग में उस साधन का लगान उसकी पूर्ण आय होगी। किसी एक उद्योग अथवा प्रयोग के दृष्टिकोण से एक भूखण्ड के वैकल्पिक प्रयोग होते है और इसे हस्तातरित आय प्राप्त होती है। परन्तु कुल अर्थव्यवस्था की दृष्टि से इसका वैकल्पिक प्रयोग नही होता है और इस दृष्टि से इसकी हस्तांतरित आय शून्य रहेगी तथा इस भूखण्ड की सम्पूर्ण आय, इसका लगान होगी। यह तभी होता है जब हम किसी भूखण्ड के प्रयोग को किसी विशेष उद्योग की दृष्टि से न देख कर पूर्ण अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से देखें।

---

15 *Economics of Imperfect Competition, p.* 104,

लगान तथा मूल्य

रिकार्डो के अनुसार लगान मूल्य निर्धारण नहीं करता वरन् स्वयं इसके द्वारा निर्धारित होता है। मूल्य न्यूनतम उपजाऊ अथवा सीमान्त भूमि से प्राप्त होने वाली फसल के उत्पादन व्यय से निर्धारित होता है और यह भूमि किसी प्रकार का लगान नहीं देती है। परन्तु लगान के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार किसी भूखण्ड को एक निश्चित ढंग से प्रयोग करने का व्यय उसकी हस्तांतरित आय है। इस प्रकार यदि कोई भूखण्ड गेहूँ उगाने में प्रयोग किया जाता है तो इसका व्यय उस दूसरी सबसे अच्छी फसल – मान लीजिये चावल–की मात्रा होगी, जो उस पर गेहूँ के स्थान पर उगाई जा सकती है। परन्तु सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की दृष्टि से भूमि के कोई वैकल्पिक प्रयोग नहीं होते हैं तथा इसलिये इसका हस्तांरित व्यय नहीं होता है। अत. समाज के दृष्टिकोण से पूर्ण उत्पादन का व्यय जानने के लिये लगान को सम्मिलित नहीं किया जायगा। भूमि समाज के लिये प्रकृति का निःशुल्क उपहार है।

परन्तु किसी एक प्रयोग अथवा उद्योग के दृष्टिकोण से स्थिति कुछ भिन्न हो जाती है। इस दशा में भूमि का हस्तांतरित व्यय होता है और इसलिये भूमि की कुल आय लगान नहीं हो सकती है। चूँकि हस्तांतरित व्यय सम्पूर्ण व्यय में सम्मिलित होता है अतः भूमि अथवा किसी उद्योग में लगाये गये किसी अन्य साधन की वास्तविक आय के उस भाग को जो उसकी हस्तांतरित आय के बराबर है, उत्पादन व्यय के अन्तर्गत गिनना चाहिये और यदि कोई भाग शेष रह गया है तो वह वेशी आय होने के कारण उत्पादन-व्यय में सम्मिलित नहीं किया जायगा। उदाहरण के लिये यदि गेहूँ की खेती में प्रयोग किये गये एक एकड़ भूखण्ड से ५० रुपये की आय होती है, जबकि इससे दूसरे अच्छे वैकल्पिक प्रयोग अर्थात् चावल उगाने से इस भूखण्ड से ४० रुपये की आय होती है तो गेहूँ वाले भूखण्ड की कुल ५० रुपये की आय में से इसका हस्तांतरित व्यय ४० रुपये का एक भाग है। यह गेहूँ की कीमत में सम्मिलित कर लिया जायगा, जबकि १० रुपये पृथक रहेंगे। इस प्रकार किसी एक उद्योग की दृष्टि से किसी भूखण्ड की कुल आय लगान नहीं होती है। यह न तो पूर्ण रूप से मूल्य निर्धारित करती है और न पूर्ण रूप से मूल्य के द्वारा निर्धारित होती है। यद्यपि आय का वह भाग जो हस्तांतरित व्यय है मूल्य निर्धारित करता है परन्तु इसके विपरीत वेशी मात्रा मूल्य से निर्धारित होती है।

एक व्यक्ति की दृष्टि से स्थिति भिन्न होती है। वह किसी भूखण्ड के प्रयोग को कीमत पर उसी प्रकार प्राप्त करता है जिस प्रकार कीमत देकर वह अन्य किसी साधन को खरीदता है। उसके उत्पादन की कीमत इतनी अवश्य होनी चाहिए कि वह भूमि के प्रयोग के बदले में भूमिस्वामी को कुछ भुगतान कर सके।

इसलिए एक व्यक्ति के लिए भूस्वामी को दिया गया भूमि का सारा लगान व्यय का वह भाग है जो मूल्य निर्धारण करता है।

आभास-लगान (Quasi-rent)

अर्थशास्त्र मे आभास लगान की धारणा का प्रतिपादन सबसे पहले मार्शल ने उत्पादन के साधनो को प्राप्त होने वाले उन अल्पकालीन प्रतिफलो का वर्णन करने के लिए किया था जो लगान के समान होते है। यद्यपि इस धारणा की ठीक-ठीक परिभाषा करना कठिन है, परन्तु फिर भी आभास-लगान का विचार किसी मशीन द्वारा अल्पकाल मे प्राप्त आय तथा अल्प काल मे इस मशीन को चालू हालत मे देखने के लिये किए गए व्यय के अन्तर को सकेत करता है। मार्शल ने इस धारणा का प्रयोग केवल मशीन तथा मानव-निर्मित उत्पादन के अन्य साधनो से प्राप्त आय के सम्बन्ध मे किया है।

आभास लगान किसी साधन की उस अल्पकालीन आय को कहते हैं, जो लगान के समान होती है। आभास लगान का विचार इसलिए सम्भव हुआ है कि अल्पकाल मे मशीन, पूँजी आदि मानव निर्मित वस्तुओ की पूर्ति उनकी माँग के परिवर्तनो की अपेक्षा बेलोचदार होती है। इस प्रकार अल्पकाल मे उत्पादन के अन्य साधन भी भूमि की तरह व्यवहार करते हैं। अल्पकाल मे उनकी पूर्ति इसी प्रकार बेलोचदार होती है जैसे भूमि की पूर्ति सदैव बेलोचदार रहती है। इस प्रकार उनकी आय मे व्यय के अतिरिक्त कुछ धन सम्मिलित होता है और उसे लगान कहा जा सकता है। यद्यपि यह आधिक्य लगान के समान ही होता है परन्तु, यह पूर्ण रूप से लगान नही होता है, क्योकि भूमि का लगान दीर्घकाल मे भी रहता है, जबकि उत्पत्ति के अन्य साधनो को प्राप्त यह अतिरिक्त लगान दीर्घकाल मे समाप्त हो जाता है। मनुष्यकृत साधनो को प्राप्त जो वेशी मात्रा अल्पकाल मे लगान होती है, वह दीर्घकाल मे लगान के रूप मे नही रहती है। इसे आभास लगान इसलिए कहते हैं क्योकि इसमे लगान के गुण केवल अल्पकाल मे ही पाये जाते है, दीर्घकाल मे ये समाप्त हो जाते है।

आभास लगान आर्थिक जीवन मे सर्वाधिक सामान्य वस्तु है। प्रायः यह प्रतिदिन प्रत्येक स्थान पर उत्पादन के साधनो को प्राप्त होता है जब किसी साधन की माँग एक दम अधिक हो जाती है तो यह निश्चय है कि उसकी पूर्ति को तत्काल बढाकर माँग के बराबर नही की जा सकती है और जब तक उसकी पूर्ति माँग के समान नही बढ सकती है, तब तक अपेक्षाकृत उस साधन की कमी प्रतीत होगी। इसी अवधि मे उस साधन की आय अधिक हो जायगी, जिसका उत्पादन व्यय से कोई सम्बन्ध नही होगा। साधन की आय मे यह वृद्धि आधिक्य होने के कारण एक प्रकार का लगान होती है। परन्तु जैसे-जैसे समय अधिक होता जाता है, वैसे-वैसे उसकी पूर्ति मे वृद्धि सम्भव होती जाती है। फलस्वरूप उस साधन को प्राप्त

आय का बढ़ा हुआ भाग धीरे-धीरे कम होता जाता है, तथा अन्त मे दीर्घकाल के अन्तर्गत जब पूर्ति और माँग का पूर्ण सामजस्य हो जाता है तो शून्य हो जाता है। इस प्रकार उन वस्तुओं तथा सेवाओं को अल्पकाल मे प्राप्त वेशी आय आभास लगान बन जाती है, जिनकी पूर्ति को बढाने मे कुछ समय लगता है। रबर अथवा चाय उन वस्तुओं के अच्छे उदाहरण है जिनकी पूर्ति बढाने मे कुछ समय लगता है। उदाहरण के लिये रबर के वृक्ष तथा चाय के पौधो से क्रमश. रबर और चाय की पत्तियाँ प्राप्त करने में कम से कम पाँच वर्ष लग जाते है। यदि रबर तथा चाय की माँग एक दम बढ जाय तो पूर्ति तथा माँग के सामान्य सिद्धान्त के अनुसार इनकी कीमतें बढ जायेगी और वर्तमान रबर तथा चाय के बगीचो के मालिको को वेशी आय प्राप्त होगी जो लगान के समान कही जा सकती है। परन्तु चाय अथवा रबर की माँग मे वृद्धि स्थायी रूप से होने के कारण चाय तथा रबर के बगीचो के स्वामी अधिक आय प्राप्त करने की आशा से चाय के नये बगीचे तथा रबर के वृक्ष अधिक लगाने लगेगे। इसमे पाँच छ वर्षों के पश्चात् अधिक चाय और रबर उत्पन्न होने लगेगी तथा बाजार मे इनकी पूर्ति बढ जायेगी और इन दोनो वस्तुओं की कीमते घटकर पहली कीमतो के बराबर हो जायेगी अर्थात् आय की वेशी मात्रा समाप्त हो जायगी। इस उदाहरण मे रबर तथा चाय के बगीचो के मालिको को पाँच वर्ष तक जो वेशी आय प्राप्त हुई है, उसे आभास लगान कहेगे। इसी प्रकार से और भी अन्य बहुत सी वस्तुओं की, जिनकी पूर्ति मूल्य मे वृद्धि होने के फलस्वरूप तत्काल नहीं बढाई जा सकती है, आभास लगान को समझाने के लिए उदाहरण दी जा सकती है।

लगान तथा आभास लगान मे असमानता होते हुए भी समानता है। यद्यपि अल्पकाल मे यह दोनो समान होते है, परन्तु दीर्घकाल मे इन दोनो में असमानता होती है। लगान तथा आभास लगान के अन्तर को मार्शल ने उल्कापात (Meteoric Stones) के प्रसिद्ध दृष्टान्त से समझाया है।[16] यदि किसी विशेष स्थान पर हीरो से भी मजबूत हजारो की सख्या मे उल्कापातो की वर्षा होती है तथा लोग उनको उसी समय उठा लेते है और फिर बाद मे प्रयत्न करने पर एक पत्थर की भी प्राप्ति नही हो सकती है तथा पश्चात् जब यह ज्ञात होता है कि ये पत्थर औद्योगिक कारखानो मे बहुत काम के है तो जिन व्यक्तियों ने इनको उठा लिया था वे उनके बदले मे उन पत्थरो के सीमित होने के कारण लगान के रूप मे बहुत सा मूल्य ले लेंगे। इस स्थिति में उन व्यक्तियो के पास प्रकृति का एक ऐसा नि शुल्क उपहार है, जिसकी पूर्ति मूल्य परिवर्तनो की दृष्टि से पूर्णतया बेलोचदार है। इस दशा मे इन पत्थरो से प्राप्त आय अल्प तथा दीर्घ दोनों कालो मे विशुद्ध लगान होगी। इनके

विपरीत यदि ये पत्थर आसानी से मिल सकते है, जिससे उनकी पूर्ति पूर्णतया लोचदार हो जाती है तो उनके मालिकों को किसी प्रकार का लगान प्राप्त नही होगा। इन दोनो परिस्थितियों के अन्तर्गत बीच की एक ऐमी स्थिति की कल्पना की जा सकती है, जिसमे कि इन पत्थरो की पूर्ति न तो पूर्णतया बेलोचदार है, जिससे कि पूर्ति के पूर्णतया सीमित होने के कारण सारी आय लगान के रूप में प्राप्त हो सके और न पूर्णतया लोचदार है, जिससे कि किसी प्रकार का लगान प्राप्त न हो सके; वरन् उनकी पूर्ति ऐसी है कि कुछ समय के पश्चात् माँग मे परिवर्तन होने के अनुसार उसमे भी कुछ परिवर्तन किया जा सकता है। इस दशा मे जिन मनुष्यों के पास ये पत्थर हैं उन्हे आभास लगान प्राप्त होगा। दीर्घकाल में समाप्त हो जाने वाले इस अल्पकालीन वेसी प्रतिफल को आभास लगान का नाम दिया गया है। यह लगान मनुष्यों के द्वारा भी इसी सरलता के साथ प्राप्त किया जा सकता है, जिस सरलता से कि यह निर्जीव पूँजीगत वस्तुओं के द्वारा प्राप्त किया जाता है।

विशेष अध्ययन सूची

1. David Ricardo · *Principles of Political Economy*, 3rd ed (1821)
2. Alfred Marshall . Principles of Economics, (8th Ed) Book V, Chapters 8, 9, 10 and 11 and Book VI, Chapters 9 & 10
3. *Joan Robinson* : *Economics of Imperfect Competition*, Chapter 8
4. Stonier and Hague A Text book of Economic Theory, Chapter 13.

प्रश्न

1. "Ricardian Economics centres round the land margin" Explain this statement and give a criticism of Ricardo's theory of rent.

(राजस्थान, १९५१)

2. In what respects does Ricardo's notion of rent differ from Physiocrats' conception of 'Produit Net ?' What are modern views on the subject ?

(आगरा, १९४६)

3. 'The Ricardian theory of rent inspite of the criticisms holds, though it has undergone improvements' State Ricardian theory of rent and explain briefly its improvement by Mill and Marshall

(राजस्थान, १९४९)

4. Trace the evolution of the theory of rent in economic literature.

(आगरा, १९४६)

अध्याय १२

फ्रांस तथा जर्मनी में संस्थापित अर्थशास्त्र का प्रभाव

(Influence of Classical Economics in France and Germany)

अर्थशास्त्र के जनक एडम स्मिथ ने कठिन परिश्रम करके इंग्लैंड मे अर्थशास्त्र के जिस संस्थापक सम्प्रदाय की नींव डाली थी तथा जिसका उनके योग्य अनुयायी डेविड रिकार्डो व थामस राबर्ट माल्थस ने विकास किया था उस सम्प्रदाय का प्रभाव केवल इंग्लैंड तक ही सीमित नहीं था। सौभाग्यवश स्मिथ के विचारो का प्रचार तथा विकास करने वाले अनुयायी समुद्र पार यूरोप मे, विशेष रूप से फ्रांस तथा जर्मनी मे काफी संख्या मे थे। फ्रांस मे एडम स्मिथ के विचारों के प्रचारक जीन वेप्टिस्ट से (Jean Baptiste Say) तथा फ्रेडरिक बासतया (Frederic Bastiat) थे। इन दो महान् फ्रान्सीसी अर्थशास्त्रियो के अतिरिक्त, जिन्होने फ्रांस मे संस्थापित अर्थशास्त्र का प्रचार व विकास किया, जर्मनी मे संस्थापित अर्थशास्त्र के प्रमुख समर्थक व प्रचारक कार्ल हैनरिक रौ (Karl Heinrich Rau), वान थ्यूनन (Johann-Heinrich von Thuen) तथा वान हरमन (Friedrich Bendikt Wilhelm von Hermann) थे। अब इन अर्थशास्त्रियो के व्यक्तिगत योगदान का वर्णन किया जा सकता है।

जे० बी० से (J. B. Say)

प्रसिद्ध फ्रान्सीसी अर्थशास्त्री जे० बी० से[1] के नाम से अर्थशास्त्र के विद्यार्थी भली प्रकार परिचित है, क्योंकि ये अर्थशास्त्र मे सुप्रसिद्ध *से के बाजार नियम*[2] (famous Say's Law of Markets), जिसका सारांश यह है कि पूर्ति स्वयं अपनी

---

1. जीन वेप्टिस्ट से (Jean Beptiste Say) का जन्म Baynne नामक स्थान पर १७६७ ई० मे फ्रांस मे हुआ था। वे एक प्रसिद्ध पत्रकार, वीर सिपाही, व्यापारी तथा अर्थशास्त्री थे। वे फ्रान्सीसी संस्थापित अर्थशास्त्र के जनक थे। उनकी मृत्यु १८३२ ई० मे ६५ वर्ष की आयु मे हुई।
2. प्रसिद्ध अंग्रेजी अर्थशास्त्री जान स्टवार्ट मिल (John Stuart Mill) भी से के नियम के भारी समर्थक थे।

माग उत्पन्न करती है तथा परिणामस्वरूप समाज में कभी भी स्थायी रूप से सामान्य अत्युत्पादन तथा न्यूनोत्पादन की समस्या उत्पन्न नही हो सकती है, के प्रतिपादक थे। १८०३ ई० मे अपनी पुस्तक **'Traite' d economic politique'**[3] मे से ने, एडम स्मिथ के उन सभी सिद्धातों को, जिनका **Wealth of Nations** में प्रतिपादन किया गया था, सही प्रकार से व्याख्या की है। वे स्मिथ के बडे प्रशंसक थे। स्मिथ की पुस्तक **Wealth of Nations** का अध्ययन करने के पश्चात से ने स्मिथ की प्रशसा करते हुये लिखा है कि "स्मिथ का उचित प्रकार से अध्ययन करने पर यह सत्य भली प्रकार ज्ञात हो जाता है कि स्मिथ के पूर्व कोई राजनीतिक अर्थशास्त्र (Political Economy) नही था।" परन्तु से स्मिथ के विचारों के केवल प्रचारक ही नही थे बल्कि उन्होंने अपने गुरु के विचारो मे आवश्यक सुधार करके उन को पाठको के समक्ष सही रूप मे रखा जिसके कारण फ्रास मे पाठकगण स्मिथ के विचारो को ठीक प्रकार समझ पाये। जिस प्रकार एक निपुण स्त्री अपने पति के कपडो को धोबी को धुलाई के लिए देने के पूर्व आवश्यक मरम्मत करती तथा सभी जेबों को खाली करती है इसी प्रकार से ने भी स्मिथ के सिद्धान्तो को अपने पाठको के समक्ष रखने के पूर्व उनमे आवश्यक सुधार तथा सशोधन किये ताकि वे अधिक समय तक जीवित रह सकें।

से के आर्थिक विचारो के महत्व का अध्ययन करने के सम्बन्ध मे प्रथम तो यह सत्य याद रखने योग्य है कि उस ने सफलतापूर्वक फ्रास मे प्राकृतिवादियों के विचारों का खण्डन किया। यद्यपि एडम स्मिथ भी प्राकृतिवादियो के प्रभाव से पूर्णतया मुक्त नही थे तथा प्रकृतिवादियो के समान वे भी अन्य व्यवसायो की अपेक्षा कृषि को अधिक उत्पादक विचारते थे क्योकि कृषि मे प्रकृति का योगदान अन्य व्यवसायों की अपेक्षाकृत अधिक होता है, परन्तु से ने इस गलत विचार को पूर्णतया अस्वीकार करके स्पष्ट शब्दो मे यह घोषित किया कि प्रकृति को सभी स्थानो पर मनुष्य के साथ सहयोग मे कार्य करने के लिये बाध्य होना पड़ता है। इसके अतिरिक्त से ने इस प्रकृतिकवादी विचार को भी गलत बताया कि मनुष्य उत्पादन करके भौतिक वस्तुओं का निर्माण करता है। से ने इस मूल सत्य को स्पष्ट किया कि मनुष्य पदार्थ का न तो कभी निर्माण कर सकता है तथा न ही इसको नष्ट कर सकता है। उत्पादन केवल उपयोगिताओं के सृजन करने को कहते है तथा वे सभी व्यवसाय चाहे वे उद्योग हो चाहे वाणिज्य अथवा कृषि हो, जो उपयोगी होते है, उत्पादक कहलायेंगे। इस प्रकार से ने स्मिथ के विचारो मे पर्याप्त सशोधन करके उनका

3. इस पुस्तक का कई अन्य भाषाओं मे अनुवाद किया गया था। यद्यपि राज्य ने कुछ समय के लिए इसको निषिद्ध साहित्य घोषित कर दिया था परन्तु ऐसा होते हुये भी इसके चार संस्करण हुये तथा इस पुस्तक के कारण लेखक की प्रसिद्धि समस्त यूरोप मे हो गई थी।

अधिक सन्तुलित रूप प्रदान किया तथा प्रकृतिवादी प्रभाव को फ्रास की भूमि से समाप्त किया।

से ने राजनीतिक अर्थशास्त्र के विषय क्षेत्र को निर्धारित किया तथा से के योग्य हाथो मे राजनीतिक अर्थशास्त्र (Political Economy) शुद्ध सैद्धान्तिक व वर्णनात्मक विज्ञान बन गया। उन्होने यह स्पष्ट रूप से व्यक्त किया कि अर्थशास्त्री का कार्य केवल आर्थिक समस्याओं का अध्ययन, व्याख्या तथा विश्लेषण करना है, परामर्श देना कदापि नही है। इस सम्बन्ध मे हम देख सकते है कि से के विचार वर्तमान प्रसिद्ध अंग्रेजी अर्थशास्त्री लायनल राबिन्स (Lionel Robbins) से बहुत मिलते हैं। उन्होने अर्थशास्त्र को राजनीति से अलग करने का प्रयास किया। उनके अनुसार अर्थशास्त्री को निरपेक्ष प्रेक्षक (impartial spectator) के समान होना चाहिये। १८२० ई० मे माल्थस को एक पत्र मे उन्होने इस प्रकार लिखा था: "उस (अर्थशास्त्री) को एक निरपेक्ष प्रेक्षक रहकर सन्तुष्ट रहना चाहिये। हमारा जनता के प्रति केवल इतना ही कर्तव्य है कि हम लोगो को यह बतला सके कि क्यो तथा किस प्रकार एक तथ्य अन्य दूसरे तथ्य का परिणाम होता है। यह जनता के ऊपर है कि चाहे वह अर्थशास्त्री के निष्कर्ष का स्वागत करे चाहे इसे अस्वीकार करे। परन्तु किसी भी हालत मे अर्थशास्त्री को परामर्श नही देना चाहिये।"[4] सक्षेप मे से ने प्राचीन विचारधारा, जिसके अन्तर्गत अर्थशास्त्र को एक व्यावहारिक कला समझा जाता था तथा अर्थशास्त्री का शासको व राजनीतिज्ञो को परामर्श देना एक महान कर्तव्य था, का खण्डन करके अर्थशास्त्र को वास्तविक विज्ञान (Positive Science) का रूप प्रदान किया। से के अनुसार राजनीतिक अर्थशास्त्र (Political Economy) पदार्थविज्ञान (Physics) के समान एक विज्ञान है तथा पदार्थविज्ञान के समान इसके नियम भी व्यापक है। सक्षेप मे से के लिये अर्थशास्त्र सामाजिक पदार्थविज्ञान (Social Physics) था।

इसके अतिरिक्त से अपने समय मे वैज्ञानिक आविष्कारो के हेतु हुये औद्योगिक विकास से भी प्रभावित हुये थे तथा से के विचारानुसार उद्योग किसी प्रकार कृषि से कम उत्पादक नही था। मशीनों, जिनके सम्बन्ध मे एडमस्मिथ ने सक्षेप मे लिखा था, का से के लिये काफी महत्व था तथा अपनी पुस्तक मे से ने नई मशीनो के प्रयोग के अनेक लाभो की व्याख्या की है। से के अनुसार औद्योगिक साहसी का समाज मे धन के वितरण मे एक विशेष महत्व है तथा वह सारी अर्थव्यवस्था का केन्द्र बिन्दु (pivot) है। यह विचार एडमस्मिथ के विचार मे भिन्न है क्योकि उनकी विचारधारा मे कृषक का अधिक महत्व था। से के अनुसार सेवाओ का मूल्य, ब्याज की औसत दर तथा लगान माग व पूर्ति की शक्तियो द्वारा निर्धारित होते है।

से का वितरण का सिद्धान्त एडमस्मिथ के वितरण-सिद्धान्त की अपेक्षा अधिक सन्तुलित है क्योंकि एडमस्मिथ पूँजीपति व साहसी को एक ही व्यक्ति समझते थे; तथा फलस्वरूप वे साहसी के लाभ व पूँजीपति के ब्याज के बीच कोई भिन्नता स्थापित न कर सके। परन्तु से बिना किसी कठिनाई के साहसी व पूँजीपति के कार्यो को दो भिन्न कार्य विचारते हैं तथा साहसी के लाभ व पूँजीपति के ब्याज में अन्तर करते हैं। से की वितरण की योजना सरल तथा स्पष्ट है। से के विचारानुसार लगान माग व पूर्ति की शक्तियो द्वारा ठीक इसी प्रकार निर्धारित होता है जिस प्रकार वस्तुओं का विनिमय मूल्य निर्धारित होता है।

परन्तु उपरोक्त योगदानों के अतिरिक्त से का आर्थिक विचारो के इतिहास मे सबसे अधिक महत्वपूर्ण योगदान उनका माग व पूर्ति का प्रसिद्ध बाजार नियम है। से के विचारानुसार द्रव्य-अर्थव्यवस्था (money economy) में भी वस्तु विनिमय अर्थव्यवस्था (barter economy) के समान मुद्रा रूपी घूघट (veil of money) के पीछे वस्तुओ का वस्तुओं से विनिमय होता है तथा वस्तुओं की कुल माग सदैव इन की कुल पूर्ति के समान रहती है। मुद्रा केवल एक माध्यम है तथा वस्तुओ का क्रय (माग) तथा विक्रय (पूर्ति) समान रहते हैं। से ने अपने इस नियम को इस सत्य के स्पष्ट करने मे लागू किया कि समाज मे अत्युत्पादन का सकट कभी उत्पन्न नही हो सकता है। से ने घोषित किया कि यह केवल एक कोरा भ्रम है कि किसी समय समाज मे सामान्य अत्युत्पादन की समस्या विद्यमान हो सकती है। सामान्य अत्युत्पादन के भय को मिथ्या बताते हुये से ने लिखा है कि "इससे अधिक अतार्किक (illogical) और कुछ नही हो सकता है। वस्तुओ की कुल पूर्ति तथा उन की कुल मांग आवश्यक रूप से निश्चय ही समान होगी क्योंकि कुल मांग उत्पादित की गई कुल वस्तुओ की मात्रा के अतिरिक्त अन्य कुछ और नही हो सकती है। अत. *सामान्य अत्युत्पादन का विचार एक मूर्खता है।*"[5]

इस क्षेत्र मे से का मुख्य उद्देश्य माल्थस के इस विचार को गलत सिद्ध करना था कि कुल समर्थ माग (total effective demand) के कुल पूर्ति की अपेक्षा कम होने के कारण समाज मे अत्युत्पादन का स्थाई सकट उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार से सिसमान्डी इस विचार को भी गलत समझते थे कि आविष्कार व औद्योगिक प्रगति अत्युत्पादन के सकट के कारण थे तथा सकट से मुक्ति प्राप्त करने के लिये आविष्कारों व औद्योगिक प्रगति की गति धीमी होनी चाहिये। से का कहना था कि ऐसी स्थिति मे जब ससार की अधिकाश जनसख्या को जीवन की अत्यावश्यक वस्तुएं भी उपभोग करने के लिये उपलब्ध नही हैं, अत्युत्पादन की समस्या की कल्पना किस

5 "The total supply of products ...

प्रकार की जा सकती है। परन्तु इस का यह अर्थ कदापि नहीं है कि से संकट की समस्या से अपरिचित थे। वास्तविकता इसके विपरीत है। परन्तु उन का विश्वास था कि बाजार में सकट की घटना के विद्यमान होने का कारण यह नहीं है कि देश मे सामान्य अत्युत्पादन है बल्कि इस मदी के संकट के उत्पन्न होने का मुख्य कारण यह है कि उन गलत वस्तुओं का उत्पादन कर लिया जाता है जिनकी बाजार मे माग नहीं है। सकट एक अस्थाई समस्या है जो दीर्घ काल मे ठीक वस्तुओं का उत्पादन होने पर स्वय समाप्त हो जाती हैं। परन्तु आज हम को यह सत्य भली प्रकार ज्ञात है कि से का बाजार नियम सत्य व वास्तविकता से कोसों दूर है।

२. फ्रेडरिक बासत्या (Frederic Bastiat)

जे० बी० से के अतिरिक्त फ्रान्स मे सस्थापित अर्थशास्त्र के दूसरे समर्थक व प्रचारक फ्रेडरिक बासत्या थे। बासत्या[6] भी अमरीकी अर्थशास्त्री हेनरी चार्ल्स केरे (Henry Charles Carey) के समान आशावादी थे तथा एडम स्मिथ के विचारों के प्रशसक थे। यद्यपि उन्होने केरे के समान रिकार्डो व माल्थस के निराशावादी सिद्धान्तो पर आक्रमण नहीं किया परन्तु उनके अनुसार रिकार्डो व माल्थस के विचार मौलिक त्रुटियो का भण्डार थे। बासत्या के अनुसार राजनीतिक अर्थशास्त्र का विषय मनुष्य है। वे स्मिथ के समान मानव की अच्छाई मे विश्वास रखते थे। उनके विचारानुसार राज्य एक बुराई था। वे स्वतन्त्रता के भारी समर्थक तथा समाजवाद व सरक्षण के कट्टर विरोधी थे। बासत्या के विचारानुसार राजनीतिक अर्थशास्त्र मनुष्य के उन कार्यों का, जिनके द्वारा आवश्यकताओं की पूर्ति की

---

6. फ्रेडरिक बासत्या (१८०१ ई०–१८५० ई०) एक प्रतिष्ठित कृषक तथा विधायक थे। कई भाषाओं—English, Italian, Spanish—का ज्ञान होने के कारण वे विदेशो के साहित्य से परिचित थे। २३ वर्ष की आयु मे उन्होने स्मिथ तथा जे० बी० से की पुस्तको का अध्ययन किया था। वे स्वतन्त्र व्यापार के समर्थक थे तथा इगलैंड में Richard Cobden तथा John Bright के Manchester सम्प्रदाय के समान बासत्या ने भी Bordeaux मे एक Free Trade Association की स्थापना की थी। यद्यपि वे स्मिथ व रिकार्डो के समान महान अर्थशास्त्री नहीं थे परन्तु वे एक चतुर लेखक थे। उनका अधिकाश लेखन कार्य उनके जीवन के अन्तिम ६ वर्षों मे हुआ था। उन की सबसे अधिक प्रसिद्ध पुस्तक **'Harmonies of Political Economy'** है जो उन की मृत्यु के पश्चात १८५० ई० मे प्रकाशित हुई थी। उन की दूसरी पुस्तक **'Essays in Political Economy'** है। इन पुस्तको के अतिरिक्त वे **Journal des Economistes Journal des debats** तथा **Libre Exchange** नामक पत्रिकाओं मे भी लेख लिखते थे। उनकी मृत्यु ४६ वर्ष की आयु में १८५० ई० मे गले तथा फेफड़ो की बीमारी के कारण हुई थी।

जाती है, विवेचन है। रिकार्डो तथा माल्थस के निराशावादी विचारों पर असन्तोष प्रकट करते हुये बासत्या ने रिकार्डो के लगान सिद्धान्त तथा माल्थस के जनसंख्या-सिद्धान्त को गलत बतलाया। रिकार्डो व माल्थस के निराशावादी भविष्य के विपरीत बासत्या के विचारानुसार श्रमिकों का भविष्य उज्जवल था।

बासत्या का मूल्य का सिद्धान्त दोषपूर्ण है यद्यपि उनके अनुसार मूल्य के सिद्धान्त का राजनीतिक अर्थशास्त्र के लिये वही महत्व है जो संख्या का अंकगणित-शास्त्र के लिये है। उनके द्वारा मूल्य व उपयोगिता की दी गई परिभाषाएँ भी अपूर्ण तथा सदोष है। उनके अनुसार 'सेवाओं' शब्द का अर्थ बहुत विस्तृत है तथा इसका संकेत उपयोगिता, उत्पादन-व्यय, दुर्लभता तथा श्रम इत्यादि तथ्यों से है। बासत्या का वितरण का सिद्धान्त केवल नाममात्र के लिये ही सिद्धान्त है। वे लगान के सिद्धान्त का विकास न कर सके तथा उनकी यह विवेचना अधूरी है। उनके अनुसार लगान गत सेवाओं की आय है।

बासत्या ने उत्पादन के स्थान पर उपभोग के महत्व को समझाया है। इस सम्बन्ध में उपभोग के महत्व को व्यक्त करते हुये उन्होंने लिखा है कि "राजनीतिक अर्थशास्त्र का अध्ययन उपभोक्ता के दृष्टिकोण से किया जाना चाहिये तथा उपभोग ही राजनीतिक अर्थशास्त्र का महान लक्ष्य है।" बासत्या के विचारानुसार लोकहित व सार्वजनिक कल्याण को व्यक्तिगत हित की तुलना मे अधिमान प्राप्त होना चाहिये। वे उन अनुचित इच्छाओं की पूर्ति के विरोध मे थे जिनके फलस्वरूप समाज मे अनुपयोगी प्रकार का उत्पादन होता है। मानव जाति के लिये यह आवश्यक है कि उपभोक्ताओं का नैतिक स्तर ऊंचा हो। बासत्या का यह विचार प्रशंसनीय है। जीड व रिस्ट के अनुसार "बासत्या का यह योगदान प्रथम श्रेणी का है तथा सम्भवतः इसी के आधार पर उनको विश्व के महान अर्थशास्त्रियों के मध्य स्थान प्राप्त हो सकता है।[7]

कार्ल हीनरिक रौ (Karl Heinrich Rau)

यद्यपि अंगरेजी संस्थापित अर्थशास्त्र मे फ्रांस मे काफी प्रचार था परन्तु जर्मनी इस सम्बन्ध मे एक अपवाद का उदाहरण था। जर्मनी मे विश्वविद्यालयों मे वणिकवादी विचारधारा का शिक्षण किया जाता था। जर्मन छात्र स्मिथ व रिकार्डो के सैद्धान्तिक विचारो से परिचित नही थे। १६ वी शताब्दी के मध्य तक भी, जब कि संस्थापक सिद्धान्त का अन्य देशो मे विद्योचित तथा नीति क्षेत्रो मे प्रयोग किया जा रहा था, जर्मनी मे इनका कोई विशेष प्रभाव नही था। काफी समय तक स्मिथ व रिकार्डो के संस्थापित अर्थशास्त्र का जर्मनी मे कोई प्रभाव नही हुआ। यद्यपि स्मिथ की पुस्तक **Wealth of Nations** का प्रकाशन के कुछ समय पश्चात् ही

7. Gide and Rist : *History of Economic Doctrines (1915 ed) p, 343.*

Johann Friedrich Schiller तथा तत्पश्चात् १७९४ ई० में Christian Garve ने जर्मन भाषा में अनुवाद किया था परन्तु फिर भी इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था। जर्मन राजा फ्रेडरिक महान (Fredrick the Great), जिसका शासन काल १७४० ई० में प्रारम्भ होकर १७८६ ई० तक रहा, तथा आस्ट्रीया के राजा शासक द्वितीय (Joseph II), जिसने १७८० ई० से लेकर १७९० तक राज्य किया था, एडम स्मिथ की पुस्तक से अपरिचित थे। १९वीं शताब्दी के आरम्भ में जर्मनी में स्मिथ के विचारों का प्रचार करने का कोई प्रयास नहीं किया। इस सम्बन्ध में जर्मन अर्थशास्त्री कार्ल हीनरिक रौ (Karl Heinrich Rau)[8] का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। रौ ने एडम स्मिथ के विचारों का जर्मनी में प्रचार किया। अपनी पुस्तक 'Lehrbuch der Politischen Oekonomie (Textbook of Political Economy) में उन्होंने राजनीतिक अर्थशास्त्र के सैद्धान्तिक रूप को इसके व्यावहारिक रूप से अलग किया। रौ के सार्वजनिक सम्बन्धी विचार बहुत ही उपयुक्त थे तथा उन्होंने करों के प्रभाव का देश में औद्योगिक उत्पादन तथा लोक कल्याण पर अध्ययन किया।

जाहन हैनरिक वॉन थुनन (Johann Heinrich Von Thunen)

रौ के समान वान थुनन (१७८० ई०–१८५० ई०) को भी संस्थापित अर्थशास्त्र का जर्मन प्रचारक कहा जा सकता है। वे एक जर्मन भूस्वामी के पुत्र थे तथा उन्होंने कृषि अर्थशास्त्र का विश्वविद्यालय में अध्ययन किया था। १८१० ई० में उसने उत्तरी जर्मनी में Tellow नामक स्थान पर भूसम्पत्ति खरीदकर वहीं पर रहना आरम्भ कर दिया था। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'The Isolated State in Relation to Agricultural and Political Economy (Der Isolierte Staat) का प्रथम ग्रन्थ १८२६ ई० में प्रकाशित हुआ था। रिकार्डो के समान वे भी निगमन रीति तथा लगान के सिद्धान्त के समर्थक थे। स्मिथ को वे अपना गुरु मानते थे। स्मिथ व रिकार्डो का मूल्य का श्रम सिद्धान्त उनके अनुसार औद्योगिक संसार में लागू नहीं होता है। वान थुनन ने रिकार्डो के वेतन के जीवन निर्वाह सिद्धान्त को गलत बताया तथा उन्होंने वेतन तथा ब्याज के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का प्रति-

---

8. कार्ल हीनरिक रौ (१७९२ ई०—१८७०) का जन्म १७९२ ई० में हुआ था। उनकी शिक्षा Erlangen नामक स्थान पर हुई थी जहां पर वे १८१८ ई० में प्रोफेसर बन गये थे। १८२२ ई० में वे Heidelberg में राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त तथा इस पद पर लगभग ५० वर्ष तक रहे। अल्प काल के लिये उन्होंने Baden विधानसभा में भी नौकरी की थी। उन्होंने विश्वविद्यालयों के छात्रों के लिये भी पुस्तकें लिखी थीं। उनकी **Lehrbuch der Politischen Oekonomie** पुस्तक तीन ग्रन्थों में १८२६ ई० में प्रकाशित हुई थी। पुस्तक के प्रथम ग्रन्थ में धन के सिद्धान्त तथा दूसरे व तीसरे ग्रन्थों में आर्थिक नीति व सार्वजनिक वित्त की व्याख्या की गई है। उनका देहान्त १८७० ई० में हुआ था।

पादन किया था। उनके अनुसार वेतन सीमान्त श्रमिक की उत्पत्ति के समान होता है।

वॉन थुनन ने उचित अथवा प्राकृतिक वेतन के विचार का भी प्रतिपादन किया था तथा इसको वे अपना एक महत्वपूर्ण योगदान समझते थे। उन्होंने यह व्यक्त किया कि उपभोग वस्तुओं का उत्पादन करने वाले श्रमिको का वेतन पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन करने वाले श्रमिकों के वेतन के समान होना चाहिये। उसके अनुसार प्राकृतिक वेतन दर श्रमिक को जीवित रहने के लिये आवश्यक उपभोग वस्तुओ की मात्रा के व्यय द्वारा निर्धारित होनी है।

कृषि का आरम्भ से ज्ञान होने के कारण उन्होने स्वतन्त्र रूप से अन्तरीय अधिशेष (Differential rent) के सिद्धान्त का जो रिकार्डो के सिद्धान्त से मिलता जुलता है, प्रतिपादन किया था। अपने जीवन के आरम्भिक-काल मे वे स्मिथ के समान स्वतन्त्र व्यापार के समर्थक थे। परन्तु तत्पश्चात् राष्ट्रवादी प्रभाव के अन्तर्गत अपने पुराने विचारो को बदल कर वे संरक्षण के समर्थक बन गये थे।

फ्रेड्रिक वॉन हरमन

(Friedrich Benedict Wilhelm Von Hermann)

जर्मन अर्थशास्त्री वॉन हरमन (१७९५ ई०—१८६८ ई०) को साधारणतया जर्मन रिकार्डो कहकर पुकारा जाता है। १८३२ ई० मे प्रकाशित उनकी **'Staats-wissenschaftliche Untersuchungen'** (Investigations in Political Economy) नामक पुस्तक का बहुत वर्षो तक जर्मनी के आर्थिक साहित्य मे एक विशेष स्थान रहा था। यह पुस्तक संस्थापक सिद्धान्तो का एक आलोचनात्मक अध्ययन है। वे एडमस्मिथ के इस कथन से सहमत नही थे कि व्यक्तिगत व सामाजिक हितो मे समानता है तथा राज्य को व्यक्तिगत आर्थिक स्वतन्त्रता मे हस्तक्षेप नही करना चाहिये।

सारांश

उपरोक्त संक्षिप्त व्याख्या से इस बात का ज्ञान होता है कि इंगलैंड के बाहर यूरोप के दो मुख्य देशों में एडमस्मिथ व उसके अंग्रेज अनुयायियो रिकार्डो व माल्थस इत्यादि के आर्थिक विचारो का कितना अधिक अथवा कम प्रभाव हुआ। निःसन्देह उपरोक्त व्याख्या से यह भली प्रकार स्पष्ट होता है कि यद्यपि फ्रास मे जे० बी० मे तथा बासत्या आदि के प्रयासों के कारण संस्थापित अर्थशास्त्र का काफी प्रचार हुआ था परन्तु जर्मनी मे एडमस्मिथ व रिकार्डो के अर्थशास्त्र का विशेष अधिक प्रभाव न हो सका, यद्यपि रो, वॉन थुनन व वॉन हरमन आदि अर्थशास्त्रियो ने एडमस्मिथ, माल्थस व रिकार्डो के आर्थिक सिद्धान्तो का अध्ययन किया था।

विशेष अध्ययन सूची

1. S. H. Patterson : Readings in the History of Economic Thought, Part I, 4, and Part V, 2.
2. J F. Bell ; A History of Economic Thought, Chapter 14.
3. J. M. Ferguson Landmarks of Economic Thought, Chapter, X.
4. Leo Rogin : The Meaning and Validity of Economic Theory, Chapter, 6
5. Gide and Rist . A History of Economic Doctrines, Book I, Chapter, II & IV, and Book III, Chapter 1
6. L. H. Haney : History of Economic Thought. Chapters, XVII and XVIII.

प्रश्न

1. Give a critical exposition of J B. Say's theory of markets and examine his assertion that general over production is impossible.

(कर्नाटक, १९५६)

2. Assess Johann Heinrich Von Thunen's contribution to economic thought In what sense was he in the classical tradition ?

(कर्नाटक, १९५६)

3. Give a critical exposition of the theory of value as formulated by J. B. Say

(कर्नाटक, १९५७)

4. Estimate the contribution of Frederic Bastiat to Economic Thought

(कर्नाटक, १९५७)

5. Give the economic views of J. B. Say What distinguishes them from the views of the English economists of the same time.

(राजस्थान, १९५१)

अध्याय १३

रिकार्डो के पश्चात इंगलैंड में संस्थापित अर्थशास्त्र

(Classical Economics in England After Ricardo)

जिस संस्थापित अर्थशास्त्र का श्रीगणेश इंगलैंड मे १७७६ ई० मे राजनीतिक अर्थशास्त्र के जनक एडमस्मिथ ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक **The Wealth of Nations** लिखकर किया था तथा जिस का सन्तुलित विकास माल्थस तथा रिकार्डो ने कठिन परिश्रम व सच्चे त्याग की भावना के साथ किया था, उस संस्थापित अर्थशास्त्र का प्रभाव समस्त इंगलैंड मे सूर्य की किरणों के समान चारों ओर फैल गया। वास्तव मे राष्ट्रवादी व समाजवादी लेखकों के आक्रमणों के पूर्व यह कहना अनुचित न होगा कि संस्थापित अर्थशास्त्र को इंगलैंड मे लगभग एक शताब्दी तक श्रेष्ठतम स्थान प्राप्त रहा था। प्रसिद्ध अँग्रेजी अर्थशास्त्री जॉन स्टुआर्ट मिल के हाथों मे संस्थापित अर्थशास्त्र अपनी प्रगति के शिखर को प्राप्त कर गया।

यद्यपि रिकार्डो की मृत्यु के पश्चात् तथा जॉन स्टुआर्ट मिल के समय मे उन्नति के शिखर को प्राप्त करने के समय के बीच भी संस्थापित अर्थशास्त्र का विकास क्रम जारी रहा परन्तु इस काल मे इंगलैंड मे रिकार्डो व माल्थस के समान कोई भी प्रथम श्रेणी का अर्थशास्त्री नही था। जिन अर्थशास्त्रियों ने इस काल मे लेखन कार्य किया वे केवल द्वितीय श्रेणी के अर्थशास्त्री ही थे जिन्होंने अपने मूल विचारों के रूप मे अर्थशास्त्र को दृढ बनाने मे कोई विशेष योगदान नहीं दिया। इन अर्थशास्त्रियों का कार्य मुख्यतः अपने संस्थापक पूर्वाधिकारियों के विचारों का प्रचार करने तक ही सीमित रहा था। इसका परिणाम इस सत्य से स्पष्ट होता है कि रिकार्डो व माल्थस की प्रसिद्ध पुस्तकों **'Principles of Political Economy and Taxation'** (१८१७ ई०) तथा **'Principles of Political Economy'** (१८२० ई०) के पश्चात् १८४८ ई० तक कोई प्रथम श्रेणी की पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई। केवल १८४८ ई० मे ही रिकार्डो की प्रसिद्ध पुस्तक के प्रकाशित होने के लगभग तीन दशाब्दी पश्चात प्रसिद्ध पुस्तक **'Principles of Political Economy'** के लिखने का श्रेय प्रसिद्ध अग्रेज अर्थशास्त्री जॉन स्टुआर्ट मिल[1] को ही प्राप्त हो

1. जॉन स्टुआर्ट मिल के आर्थिक विचारो का सविस्तार विवेचन अगले अध्याय मे किया गया है।

सका । यह पुस्तक सस्थापित अर्थशास्त्र के जीवन तथा विकास इतिहास मे विभाजन रेखा का कार्य करती है क्योकि इसके साथ ही सस्थापित अर्थशास्त्र को अपनी प्रगति का गौरवशील शिखर प्राप्त हुआ तथा इसी के साथ इस की अवनति भी आरम्भ हुई । मिल ने सस्थापित सिद्धान्तो की पुन.व्याख्या करके इन को नया रूप प्रदान किया तथा अन्य कुछ संस्थापित सिद्धान्तों की आलोचना करके सस्थापित अर्थशास्त्र के पतन के क्रम का श्रीगणेश भी किया । फलस्वरूप मिल का सस्थापक सम्प्रदाय के इतिहास मे एक विशेष महत्व है । जॉन स्टुआर्ट मिल के पूर्व तथा रिकार्डो के पश्चात जिन अग्रेजी अर्थशास्त्रियो ने सस्थापित अर्थशास्त्र के विकास-कार्य मे योग-दान दिया उन मे जॉन स्टुआर्ट मिल के पिता जेम्स स्टुआर्ट मिल, जॉन रामसे मैकुललख, थामस डी कुइन्से तथा नासो विलियम सीनियर के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है तथा इन अर्थशास्त्रियो के व्यक्तिगत योगदान का क्रमश अध्ययन निम्नलिखित प्रकार किया जा सकता है ।

१ जेम्स स्टुआर्ट मिल (१७७३ ई०—१८३६ ई०)
(James Stuart Mill)

जेम्स स्टुआर्ट मिल, जो सुप्रसिद्ध अग्रेजी अर्थशास्त्री जान स्टुआर्ट मिल (१८०६ ई०-१८७३ ई०) के पिता थे, का जन्म १७७३ ई० मे स्काटलैंड मे हुआ था । वे रिकार्डो के परम मित्र थे तथा रिकार्डो को अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **'The Principles of Political Economy And Taxation'** लिखने के लिए उन्होने ही प्रेरित किया था । वे प्रसिद्ध तत्वज्ञानी तथा इतिहासकार थे । १८०२ ई० मे वे लन्दन आ गये थे तथा यही पर जान स्टुआर्ट मिल तथा अन्य आठ पुत्रो का जन्म हुआ था । पिता का प्रसिद्ध पुत्र के जीवन तथा विचारो पर गहरा प्रभाव पड़ा था । १८१७ ई० मे उनकी पुस्तक **'History of British India'** प्रकाशित हुई थी । उनकी **'Elements of Political Economy'** नामक पुस्तक, जो १८२१ ई० मे प्रकाशित हुई थी, सस्थापित आर्थिक सिद्धातो का सग्रह थी ।

२. जॉन रामसे मैकुललख (१७८९ ई०--१८६४ ई०)
(John Ramsay McCulloch)

मैकुललख रिकार्डो के विचारो के प्रशसक, प्रचारक तथा समर्थक थे । वे रिकार्डो के जीवनी लेखक थे । उनकी प्रसिद्ध पुस्तक **'The Principles of Political Economy'**, जो १८२५ ई० मे प्रकाशित हुई थी, का अध्ययन इग्लैंड तथा यूरोप मे किया जाता था । मूल्य के विषय पर उन के विचार मिल से मिलते जुलते थे । वे मजदूरी के वेतन कोष सिद्धान्त के समर्थक थे तथा इस सिद्धान्त की उन्होने १८२६ ई० मे प्रकाशित अपनी **'Essay on the Circumstances which determine the Rate of Wages and the Condition of the Labouring Classes'** नामक पुस्तक मे व्याख्या की थी ।

३. थामस डी कुइन्से (१७८५ ई०-१८५९ ई०)
(Thomas De Quincey)

जेम्स मिल तथा मैकुलख के समान थामस डी कुइन्से भी रिकार्डो के समर्थक तथा मित्र थे। सन् १८२४ ई० मे उन्होने अपनी **'Dialogues of Three Templars'** नामक पुस्तक मे रिकार्डो के मूल्य सिद्धान्त का समर्थन किया था। १८४४ ई० मे प्रकाशित अपनी **'Logic of Political Economy'** नामक पुस्तक मे उन्होने उपयोगिता के महत्व तथा लगान सिद्धान्त के विषयो पर अपने विचार व्यक्त किये थे।

सक्षेप मे जेम्स मिल, मैकुलख तथा थामस डी कुइन्से को डेविड रिकार्डो के आर्थिक सिद्धान्तो का प्रचारक तथा दृढ समर्थक कहा जा सकता है। इन तीन अर्थशास्त्रियो का रिकार्डो की उनके आलोचको के आक्रमणो से प्रतिरक्षा करने में एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान है।

४. नासो विलियम सीनियर (१७९० ई०-१८६४ ई०)
(Nassau William Senior)

रिकार्डो के पश्चात तथा जॉन स्टुअर्ट मिल के पूर्व नासो विलियम सीनियर[2] ही को इगलैंड का महान अर्थशास्त्री कहलाने का गौरव प्राप्त है। अपने पूर्वाधिकारियो के द्वारा प्रतिपादित सस्थापित आर्थिक सिद्धान्तो का समर्थन करने के अतिरिक्त उन्होने कई आर्थिक विषयो पर अपने नवीन विचारो को व्यक्त करके सस्थापित अर्थशास्त्र के विकास कार्य मे अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया था। उन के विचारानुसार अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिस की विषय सामग्री धन की प्रकृति, इस का उत्पादन तथा वितरण है। सामान्यत उन्होने रिकार्डो के अर्थशास्त्र तथा माल्थस के जनसख्या-सिद्धान्त का समर्थन किया है। उनको जीवन की व्यावहारिक आर्थिक समस्याओ का भारी ज्ञान था तथा वे एक व्यावहारिक अर्थशास्त्री (practical economist) थे। उन की अनेक जर्मन व फ्रान्सीसी लेखको, विशेष रूप से प्रसिद्ध फ्रान्सीसी अर्थशास्त्री जे० बी० से मित्रता थी। वे परम्परावादी सिद्धान्तों के आलोचको के दृष्टिकोणो पर अच्छी तरह से विचार करते थे तथा उन्होने परम्परावादी तथा नये विचारो के मध्य निपुणतापूर्वक संयोग स्थापित किया था।

---

2. नासो विलियम सीनियर का जन्म १७९० ई० मे इ गलैड मे हुआ था। उन के पूर्वज स्पेन के रहने वाले थे जो इंगलैंड मे आकर बस गये थे। प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय स्कूलो मे प्राप्त करने के पश्चात उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से उन्होने मैगडलन कालेज, आक्सफोर्ड (Magdalen College, Oxford) मे प्रवेश किया तथा यहाँ से उन्होने क्रमश- १८११ ई० व १८१५ ई० मे बी० ए० व एम० ए० की उपाधियाँ प्राप्त की थी। उन्होने कानून का अध्ययन किया तथा १८१९ ई० मे वकालत मे प्रवेश किया।

सीनियर ने अर्थशास्त्र को विज्ञान बनाने का भरसक प्रयास किया। उन के विचारानुसार अर्थशास्त्र एक अमूर्त व वस्तुपरक (abstract and objective) विज्ञान है तथा अर्थशास्त्री का कर्तव्य समाज में लोगों को यह नहीं बताना है कि मनुष्य किस प्रकार सुख तथा सदाचार प्राप्त कर सकते हैं। उसका कर्तव्य केवल उनको यह बतलाना है कि वे किस प्रकार धनी बन सकते है। अर्थशास्त्र का नैतिकता तथा विधान से कोई सम्बन्ध नही होना चाहिये तथा अर्थशास्त्र का विषय क्षेत्र समाज मे केवल धन की प्रकृति, इस के उत्पादन तथा वितरण का अध्ययन होना चाहिये।

अर्थशास्त्र के विषय क्षेत्र को धन तथा इस के उत्पादन व वितरण तक सीमित करने के पश्चात सीनियर ने चार प्रसिद्ध स्वयंसिद्ध सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया जो उनके अनुसार अर्थशास्त्र विज्ञान की आधारशिला है। ये चार स्वयंसिद्ध सिद्धान्त निम्नलिखित है।

(१) प्रत्येक व्यक्ति यथासम्भव न्यूनतम त्याग के साथ धन का संचय करने के लिये इच्छुक रहता है। संक्षेप में यह कथन सुलभ सुखवाद (hedonistic principle) से सम्बन्धित था।

परन्तु शारीरिक निर्बलता के कारण उन को वकालत को शीघ्र ही त्यागना पड़ा तथा राजनैतिक अर्थशास्त्र का अध्ययन आरम्भ किया। १८२५ ई० में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में राजनैतिक अर्थशास्त्र का विभाग स्थापित होने पर सीनियर की नियुक्ति ५ वर्ष के काल के लिये राजनैतिक अर्थशास्त्र के प्रोफेसर के पद पर हुई। तत्पश्चात १८४७ ई० से लेकर १८५२ ई० तक वे इस पद पर पुनः रहे थे। इस काल में मुद्रा तथा methodology पर व्याख्यान देने के अतिरिक्त उन्होंने पत्रिकाओं में भी लेख लिखे थे। अल्प समय के लिये वे लन्दन में स्थित King's College में भी प्रोफेसर रहे थे। वे क्रमश: १८३२ ई०, १८३७ ई०, १८४१ ई०, १८४४ ई० तथा १८५७ ई० में Poor Laws, Factory Conditions, Handloom Weavers, Irish Poor Laws तथा National Education से सम्बन्धित राजकीय आयोगों के सदस्य रहे थे। विदेशों में विस्तृत रूप से यात्रा करने के कारण वे अपने समय के सभी महापुरुषों से परिचित थे। अपने समय के वे एक प्रसिद्ध समाज सुधारक थे क्योंकि उन्होंने शिक्षा, स्वास्थ्य तथा गृह-व्यवस्था इत्यादि सामाजिक समस्याओं के निवारण में रुचिपूर्वक कार्य किया था। सीनियर अपने समय के एक महान मूल विचारक थे। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक **'An Outline of Political Economy'** उन के जीवनकाल में सर्व प्रथम १८३६ ई० में Encyclopaedia Metropolitana में एक लेख के रूप में प्रकाशित हुई थी। १८५० ई० में यह **Political Economy** नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई थी। उन की मृत्यु के पश्चात १९२८ ई० में उन की original manuscript के आधार पर दो ग्रन्थों में उनकी **Industrial Efficiency and Social Economy** नामक पुस्तक प्रकाशित हुई।

(२) जनसंख्या खाद्य सामग्री की अपेक्षा अधिक तीव्रगति के साथ बढ़ती है। यही माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त था।

(३) कृषि को छोड़ अन्य सभी व्यवसायों में क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है।

(४) कृषि में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है।

इस प्रकार सीनियर ने अर्थशास्त्र को केवल थोड़े से ही अपरिवर्तनीय सिद्धान्तों पर आधारित कर अर्थशास्त्र के विषय क्षेत्र को पूर्णतया सीमित कर दिया था। उन के मतानुसार मानव कल्याण का अध्ययन अर्थशास्त्र के विषय क्षेत्र के बाहर था।

मूल्य का सिद्धान्त

सीनियर के अर्थशास्त्र में धन अर्थशास्त्र के अध्ययन तथा इसके विषय क्षेत्र का केन्द्र है। उन के अनुसार वे सभी वस्तुएँ धन होती हैं जिन में दुर्लभता, हस्तान्तरणता तथा उपयोगिता की विशेषताएँ होती हैं। उनके अनुसार किसी वस्तु के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में सुख प्रदान करने अथवा दुःख से मुक्त करने के गुण को ही उपयोगिता कहते हैं। इस सम्बन्ध में सीनियर ने क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम की भी व्याख्या की है।

सीनियर के मूल्य-सिद्धान्त सम्बन्धी विचारों में मौलिकता पाई जाती है। उन्होंने मूल्य-निर्धारण में उपयोगिता को एडमस्मिथ व रिकार्डो की तुलना में अधिक महत्व दिया तथा जेवन्स ने उन की सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त के भविष्यवक्ताओं में गणना की है। परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि सीनियर ने व्यक्ति परक मूल्य सिद्धान्त (Subjective theory of value) को प्रतिपादित किया था। वस्तु के मूल्य निर्धारण में उस की उपयोगिता के महत्व को भली प्रकार समझते हुये भी उन के विचारानुसार वस्तु की सीमितता अथवा दुर्लभता का तुलनात्मक अधिक महत्व था। पूर्ति स्वयं मानव परिश्रम तथा प्रकृति के सहयोग का परिणाम है।

सीनियर के विचारानुसार पूर्ति उत्पादन व्यय से सीमित होती है। सीनियर के समस्त मूल्य सिद्धान्त में उत्पादन व्यय अन्य सब से अधिक महत्वपूर्ण तत्व है। रिकार्डो द्वारा निर्मित मूल्य के श्रम सिद्धान्त की आलोचना करते हुये उन्होंने लिखा है कि वस्तु की दुर्लभता मूल्य का प्रमुख तथा श्रम व्यय मूल्य का केवल गौण निर्धारक कारण था। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तु का उत्पादन व्यय उस के मूल्य का नियामक होता है। सीनियर का सिद्धान्त रिकार्डो के सिद्धान्त की अपेक्षा अधिक उपयुक्त है। जबकि रिकार्डो का यह दृढ़ विश्वास था कि वस्तु का मूल्य सदा उस वस्तु को उत्पादन करने में व्यय हुये श्रम की मात्रा के मूल्य के समान

होता है, सीनियर के विचारानुसार यह सदा आवश्यक नहीं है कि वस्तु का मूल्य उसके उत्पादन व्यय के समान हो। वस्तु का उत्पादन व्यय, सीनियर के विचारानुसार एक केन्द्र के समान है जिस के समीप पहुँचने की वस्तु के मूल्य में सदा प्रवृत्ति होती है। रिकार्डो के अनुसार श्रम की मात्रा तथा आत्मत्याग (abstirence) उत्पादन व्यय के दो अंग हैं। सीनियर के अनुसार लगान उत्पादन व्यय का अंग नहीं है तथा इसका मूल्य निर्धारण में कोई स्थान नहीं है।

सीनियर ने उत्पादन व्यय को मौद्रिक रूप में अध्ययन किया है। यह विचार वास्तविक तथा व्यावहारिक दृष्टिकोण से अधिक उपयुक्त है क्योंकि विनिमय अर्थव्यवस्था में उत्पादन व्यय के महत्व को समझने के लिये यह आवश्यक है कि इस को मौद्रिक रूप में विचारा जाय। उत्पादन व्यय को मौद्रिक रूप में समझने के अतिरिक्त (रिकार्डो ने वास्तविक उत्पादन व्यय (real cost of production) का अध्ययन किया था) सीनियर के विचारानुसार उत्पादन व्यय वस्तु के मूल्य का नियामक (regulator) है, एक मात्र निर्धारक नहीं है क्योंकि मूल्य निर्धारण में वस्तु की माग अथवा उन की उपयोगिता का भी महत्व होता है। भिन्न बाजार परिस्थितियों में मूल्य निर्धारण में माग व उत्पादन व्यय का भिन्न अंशों में प्रभाव पडता है। इस सम्बन्ध में यह कहना अनुचित न होगा कि सीनियर ने सर्वप्रथम बाजार की दशाओं के बीच अन्तर प्रदर्शित किया था। उनके अनुसार उत्पादन की निम्न पाच परिस्थितियों का वस्तु के मूल्य पर प्रभाव पडता है।[3]

(१) पूर्ण प्रतियोगिता अथवा शून्य एकाधिकारी परिस्थिति जिस में सभी उत्पादक समान लाभ के अनुसार उत्पादन करते हैं।

(२) एकाधिकार की वह परिस्थिति जिस के अन्तर्गत एकाधिकारी को यद्यपि उत्पादन का एकाधिकार तो प्राप्त नहीं होता है, परन्तु उत्पादक के रूप में उस को अनेक विशेष सुविधायें प्राप्त होती हैं जो अन्य प्रतियोगी उत्पादकों को प्राप्त नहीं होती हैं।

(३) एकाधिकार की वह परिस्थिति जिस में एकाधिकारी ही एक मात्र उत्पादक होता है तथा अपने उत्पादन की मात्रा में वृद्धि नहीं कर सकता है।

(४) एकाधिकार की वह परिस्थिति जिस में एकाधिकारी एकमात्र उत्पादक होता है तथा उत्पादन में किसी भी मात्रा में वृद्धि कर सकता है।

(५) एकाधिकार की वह परिस्थिति जिस में एकाधिकारी यद्यपि एकमात्र उत्पादक तो नहीं होता है, परन्तु उस को उत्पादन की विशेष सुविधाये प्राप्त होती हैं जो उस के उत्पादन में वृद्धि होने के साथ साथ घटती जाती है।

---

3. N. W. Senior : *Political Economy*, p. 111

वितरण का सिद्धान्त

सीनियर के वितरण के सिद्धान्त को समझने के लिये उनके वेतन, लगान तथा ब्याज के सिद्धान्तो की व्याख्या करना आवश्यक है। सीनियर के विचारानुसार वस्तुओं का मूल्य श्रम तथा आत्मत्याग (adstinence) की उस समस्त मात्रा का प्रतीक होता है जो उस वस्तु का उत्पादन करने के लिये आवश्यक है। इस प्रकार इसका अर्थ यह है कि वस्तु के मूल्य में वृद्धि अथवा कमी होने के परिणामस्वरूप श्रम तथा आत्मत्याग के प्रतिफलो मे भी वृद्धि अथवा कमी हो जावेगी। जब वस्तु का मूल्य उसके उत्पादन व्यय के समान होता है तो उत्पादन के साधनों के प्रतिफल (वेतन व ब्याज) भी उन साधनों के लागत व्यय—वास्तविक परिश्रम तथा आत्म-त्याग—के समान होगे। आक्सफोर्ड व्याख्यानों मे व्यक्त किये गये विचार इस सम्बन्ध मे अधिक स्पष्ट तथा दृढ़ थे। उन्होने अपने पूंजी के विचार को व्यापक बना कर इसमे भूमि को भी सम्मिलित कर लिया था क्योंकि उनका यह विश्वास था कि उत्पादन मे विनियोग की गई पूंजी तथा भूमि के मध्य अन्तर स्थापित करना लगभग असम्भव ही होता है। यन्त्रो व मशीनो मे लगी पूंजी भूमि के समान गतिहीन बन जाती है तथा गतिहीनता के गुण के कारण ही भूमि उत्पत्ति के अन्य साधनो से भिन्न होती है।

सीनियर के वेतन-सिद्धान्त मे स्पष्टता के गुण का भारी अभाव है। वास्तविकता तो यह है उनका वेतन सिद्धान्त स्मिथ तथा रिकार्डो के वेतन-कोष सिद्धान्त के समान था क्योंकि वेतन दरों को निर्धारण करने वाले कारणों की व्याख्या करते हुये उन्होंने लिखा है "कि वेतन दर एक ओर तो उस कोष की मात्रा से जो श्रमिको के परिरक्षण के लिये रखा जाता है तथा दूसरी ओर श्रमिको की पूर्ति से निर्धारित है।"[4] उन्होने वास्तविक तथा मौद्रिक वेतनों के मध्य भी अन्तर स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

सीनियर का लगान सिद्धान्त मूलत. रिकार्डो के लगान सिद्धान्त का ही समर्थन है। रिकार्डो के समान सीनियर के अनुसार भी लगान एक प्रकार का आधिक्य है जो भूस्वामी को बिना किसी परिश्रम के प्राप्त होता है। यह उत्पादन-व्यय का अंग नही है। सीनियर का कहना है कि लगान केवल अधिक उर्वर शक्ति तथा अधिक उत्तम स्थिति वाली भूमि को प्राप्त करने का परिणाम ही नही है बल्कि यह कुछ प्राकृतिक साधन अथवा कुछ विशेष व्यक्तिगत विशेषताओं व गुणो की प्राप्ति के कारण भी प्राप्त है। उदाहरणार्थ किसी गायक को उसकी विशेष आवाज के कारण तथा किसी डाक्टर को उसकी विशेष चिकित्सा सम्बन्धी योग्यता के कारण लगान के समान आय प्राप्त हो सकती है। मार्शल के समान सीनियर भी लगान को

---

4 *Ibid* . p. 115

'Leading species of a large genus' विचारते थे। सीनियर के विचारानुसा लगान के रूप में भूस्वामी व सम्पत्ति वर्गों को, जिस को प्राप्त करने के लिये प्राप्तकत को परिश्रम नही करना पड़ता है, कुल राष्ट्रीय लाभाश का एक बड़ा हिस्सा प्राप होता है। लगान के विचार को केवल भूमि तक ही सीमित न रख कर सीनिय के विचारानुसार किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारिय को प्राप्त होने वाली भूसम्पत्ति तथा समस्त धन भी लगान के समान । क्योंकि इस सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिये उत्तराधिकारियों को किसी प्रकार के परिश्रम तथा आत्मत्याग का अनुभव नही हुआ है। कोई भी समाजवादी रिक्थ क (Inheritance tax) के पक्ष मे इससे अधिक उपयुक्त व शक्तिशाली तर्क प्रस्तुत नहीं कर सकता है।

ब्याज का आत्मत्याग सिद्धान्त (Abstinence Theory of Interest)

नासो सीनियर (Nassau Senior) ने सर्वप्रथम ब्याज को आत्मत्याग क भुगतान अथवा प्रतिफल कहा था। इसका समर्थन कैरनेस (Cairnes) तथा अन्य अर्थशास्त्रियो ने किया है। सीनियर का विश्वास था कि ब्याज धन की बचत पर दिया जाता है और धन बचाने का प्रत्येक कार्य उपभोग को रोक कर अर्थात् उपभोग के त्याग के द्वारा ही सम्भव होता है। अतः ब्याज को हम उपभोग को रोकने मे अनुभव हुये आत्मत्याग का भुगतान कह सकते हैं। ब्याज एक व्यक्ति के द्वारा अपनी आय में से बचत करने में हुई आत्मत्याग की अनुभूति का माप है।

सीनियर के इस ब्याज सिद्धान्त की बहुत आलोचनाये की गई है। सर्वप्रथम प्राय यह ठीक ही कहा गया है कि बचत के प्रत्येक कार्य मे त्याग का अनुभव नहीं होता है। द्रव्य बचाते समय किसी व्यक्ति को कुछ त्याग अथवा कठिनाई का अनुभव होता है अथवा नही यह उस की आय की मात्रा पर निर्भर होता है। प्रत्येक बचतकर्ता बचत कार्य मे कठिनाई का अनुभव नही कर सकता है। बिरला तथा टाटा के समान धनी व्यक्ति, जिनके पास व्यय करने के लिये अत्यधिक धन है, बचत के कार्य मे किसी भी कठिनाई का अनुभव नही करते हैं। ऐसे व्यक्तियो को भविष्य के लिये वर्तमान मे किसी उपभोग का त्याग नही करना पड़ता है। यह बात तो केवल उन व्यक्तियों के सम्बन्ध मे सत्य है, जिनकी कि आय वर्तमान उपभोग की सन्तुष्टि के लिये अपर्याप्त है। परन्तु दोनो प्रकार के व्यक्तियो को, चाहे वे बचत मे कठिनाई अनुभव न करने वाले धनी हों, अथवा कठिनाई अनुभव करने वाले निर्धन हों, उनकी बचत पर ब्याज मिलता है। यदि इस सिद्धान्त पर विश्वास किया जाय तो केवल निर्धनो को ही उनकी बचत पर ब्याज मिलना चाहिये।

दूसरे, बचतकर्ताओ को केवल इनके त्याग के कष्ट पर ही ब्याज नही मिलता है। मान लीजिये एक व्यक्ति धनी नही है और उसे बचत करने मे कुछ त्याग करना

पड़ता है तो वह ब्याज का अधिकारी हो जाना चाहिये। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या उसे केवल बचाने मे आत्मत्याग का अनुभव करने से ही ब्याज मिलने लगता है? ब्याज प्राप्त करने से पहले उसे कुछ और भी करना पडता है। ब्याज प्राप्त करने के लिये यह अन्य कार्य आत्मत्याग की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। ब्याज प्राप्त करने के लिये उसे अपनी बचत को ऋणी को उधार देकर गतिहीन बनाना पड़ता है अर्थात् उसे अपनी बचत के ऊपर अपने वास्तविक स्वामित्व का किसी विनियोगकर्ता—व्यक्ति, सस्था, बैंक, अथवा विनियोग ट्रस्ट आदि—के पक्ष मे परित्याग करना पडता है। एक कजूस बहुत अधिक धन बचाता है और उसे अन्य व्यक्तियो के समान बचाने मे कठिनाई अथवा त्याग का अनुभव होता है, परन्तु वह अपने एकत्र किये हुये धन पर कुछ ब्याज नही पाता है क्योकि वह अपने धन को किसी विनियोजक को नही देता है। बात यह है कि यदि हम यह स्वीकार करले कि बचत करने मे प्रत्येक दशा मे त्याग होता है तो केवल यह स्वीकारोक्ति ब्याज समझाने के लिये पर्याप्त नही है। बचत करने मे सम्भवतः त्याग आवश्यक हो सकता है परन्तु यह ब्याज दर निर्धारण अथवा उसके समझाने मे अपर्याप्त है।

तीसरे, सीनियर का यह सिद्धान्त केवल पूर्ति पक्ष से ही समस्या का अध्ययन करना है। इसके अनुसार ब्याज इसलिये दिया जाता है कि बचत करने में आत्मत्याग निहित होता है परन्तु महत्वपूर्ण प्रश्न तो यह है कि उधार लेने वाला अथवा विनियोजक ब्याज क्यो देता है? यह पूँजी की माँग का प्रश्न है, जिसकी सीनियर के सिद्धान्त ने बिलकुल उपेक्षा की है। यदि त्याग के फलस्वरूप बचाये गये धन का उत्पादन मे प्रयोग न किया जाय तो कोई भी ब्याज नही देगा। इस प्रकार ब्याज की प्राप्ति केवल बचतकर्ताओ को बचत करने में अनुभव हुये त्याग पर ही निर्भर नही होती है वरन् यह बचत के उत्पादक प्रयोग से भी निर्धारित होती है। यदि उद्योग मे मन्दी का समय हो, जिसमे पूँजी की माँग बहुत कम हो जाय, तो बचत करने वालो को ब्याज कम मिलने लगेगा और यदि माँग बिलकुल समाप्त हो जाय तो नवीन बचतो पर किसी भी प्रकार का ब्याज प्राप्त करने की सम्भावना नही रहेगी क्योकि उन बचतो को कोई उधार लेने वाला ही नही होगा यद्यपि ये बचतें भी आत्मत्याग का परिणाम है।

अन्य आर्थिक विचार

मूल्य तथा वितरण के सिद्धान्तों के अतिरिक्त सीनियर ने द्रव्य, बैंकिग तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आदि आर्थिक विषयो पर भी अपने विचार व्यक्त किये है। सीनियर के अनुसार मुद्रा एक वस्तु है जिसके प्रति लोगो का विश्वास होता है। विकसित समाज मे मुद्रा के तीन मुख्य कार्य होते है। यह विनिमय माध्यम, धन के सचय तथा भविष्य मे होने वाले भुगतानो के मापक का कार्य करती है। एक आदर्श द्रव्य वस्तु मे बहुमूल्यता, समानता, विभाजियता, टिकाऊपन, वहनीयता तथा

मूल्य स्थिरता के गुणों का होना आवश्यक है। केवल स्वर्ण व रजत धातुओं में ही ये सब गुण पाये जाते है तथा इस कारण ये ही द्रव्य के लिये उपयुक्त है। मुद्रण का कार्य सरकार को करना चाहिये। सीनियर परिवर्तनशील व प्रतिनिधि पत्र मुद्रा के पक्ष मे थे। अपरिवर्तनशील पत्र मुद्रा के दोषो की व्याख्या करते हुये उन्होंने लिखा है कि शीघ्र अथवा कुछ समय बाद राज्य अपनी इस शक्ति का कुप्रयोग करने लगता है।

सीनियर न टारेंस, रिकार्डो व विशेष रूप से जेम्स मिल द्वारा व्याख्यात द्रव्य के परिमाण सिद्धान्त की आलोचना की है। प्रथम तो उनका कहना है कि मिल ने मौद्रिक सिद्धान्त को सामान्य अर्थशास्त्र मे सम्मिलित नही किया था जिसके कारण मिल मुद्रा का मूल्य निर्धारण करने वाले तत्वो की व्याख्या करने में असफल सिद्ध हुये थे। दूसरे, सीनियर का कहना है कि द्रव्य का मूल्य भी उन्ही सिद्धान्तों द्वारा निर्धारित होना है जिनके द्वारा अन्य वस्तुओ का मूल्य निर्धारित होता है।

इसके अतिरिक्त रिकार्डो व स्मिथ के समान सीनियर भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के समर्थक तथा सरक्षण के विपक्ष मे थे। वे उस समय विद्यमान Corn Laws के आलोचक थे। उनका विश्वास था कि Corn Laws के अन्त होने के हेतु खाद्य का विदेशो से स्वतन्त्र रूप से आयात होने के कारण अनाज की कीमतों में कमी होने के फलस्वरूप श्रमिको के वेतनो मे कमी करना सम्भव हो सकेगा। इससे राष्ट्र के उद्योगो का विकास सम्भव हो सकेगा क्योकि वेतन दरो के कम हो जाने से उत्पादको को अधिक उत्पादन करने का उत्साह मिलेगा तथा औद्योगिक वस्तुओं के मूल्यो में कमी होने के हेतु इन वस्तुओ का निर्यात भी अधिक हो सकेगा।

सीनियर श्रम सघो के विरोध मे थे। वे निर्माताओं के हितो के प्रतिरक्षक थे। उनका विश्वास था कि Factory Acts जिनका उद्देश्य मिलो मे श्रमिको के कार्य के घन्टो को सीमित करना था, आर्थिक नियमो के लागू होने मे बाधक सिद्ध होंगे तथा मिल मालिको के लाभो मे कमी होगी जिसके कारण देश के औद्योगिक विकास को धक्का पहुँचेगा। दुर्भाग्यवश इस सम्बन्ध मे उनका भय अवास्तविक था।

अपने समय के एक प्रसिद्ध व्यावहारिक अर्थशास्त्री होने के नाते वे अनेक राजकीय आयोगो के सदस्य थे तथा सरकार को सामाजिक व आर्थिक समस्याओ पर परामर्श देते थे। वे राज्य-हस्तक्षेप के विरोध मे नही थे परन्तु उनका कहना था कि राज्य-हस्तक्षेप उसी सीमा तथा समय तक ही उचित है जिस सीमा व समय तक राज्य-हस्तक्षेप के फलस्वरूप आर्थिक नियमो की कार्यशीलता मे किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नही होती है।

सीनियर अपने समय के महान अर्थशास्त्री तथा मूल विचारक थे। उनको अपने समय की सभी आर्थिक व सामाजिक समस्याओ का ज्ञान था। उनके सुझाव

केवल सिद्धान्तों पर ही आधारित नहीं थे बल्कि उनमें व्यावहारिकता का भी अंश था। प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्री जे० ए० शुम्पीटर ने सीनियर के आर्थिक इतिहास के क्षेत्र में योगदानों की प्रशंसा करते हुये ठीक ही लिखा है कि "सर्वप्रथम आर्थिक स्वयंसिद्ध चार प्रसिद्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके आर्थिक सिद्धान्त के निर्माण के स्वतः सिद्ध आधार (Axiomatic Basis) को स्थापित करने का श्रेय तथा मान सीनियर को ही प्राप्त है।"

विशेष अध्ययन सूची

1. Leo Rogin : The Meaning And Validity of Economic Theory, Chapter 7.
2. J. F. Bell : A History of Economic Thought, Chapter 13.
3. J. A. Schumpter : History of Economic Analysis, Part III, Chapter 4.
4. L. H. Haney History of Economic Thought, Chapter XVI.
5. S H. Patterson : Readings in the History of Economic Thought, Part III, 4.
6. Alexander Gray . The Development of Economic Doctrine, Chapter, X, pp. 272-277.

प्रश्न

1. Evaluate Senior's contribution to economic Thought.

   (कर्नाटक, १९५९)

2. Explain the role of *entrepreneur as conceived* by Nassau Senior.

   (कर्नाटक, १९५८)

3. Discuss Senior's contribution to the theory of value.

   (कर्नाटक, १९५६)

4. State and discuss the four propositions of Senior.

   (कर्नाटक, १९५७)

5. "Senior deserves to be remembered as one of the founders of Pure Economics."

   Discuss fully the above statement.

   (राजस्थान, १९५६; आगरा, १९४९)

6. "To Senior belongs the singular honour of having been the first to make the attempts to state, consciously and explicity, the postulates that are nece-sary and sufficient in order to build up that analytical apparatus commonly known as economic theory, or, to put it differently to provide for it an axiomatic basis" (Schumpeter)

Examine this statement and assign to Senior his proper place in the history of economic thought

(राजस्थान, १६६०)

अध्याय १४

जॉन स्टुअर्ट मिल

(John Stuart Mill)

प्रसिद्ध अर्थशास्त्र सस्थापक डेविड रिकार्डो के पश्चात् सस्थापक सम्प्रदाय के प्रसिद्ध तथा अन्तिम सदस्य जॉन स्टुअर्ट मिल[1] थे। वास्तव मे मिल को एक प्रकार से आर्थिक विचारो के इतिहास मे स्मिथ, माल्थस व रिकार्डो का स्थान दिया जा सकता है। उनके हाथों मे संस्थापित अर्थशास्त्र ने अपनी प्रसिद्धि के शिखर को प्राप्त किया तथा उन्ही के समय मे इसके पतन का क्रम आरम्भ हुआ। वे प्रथम श्रेणी के सस्थापक विचारक तथा सभी दृष्टिकोणो मे एक महान अर्थशास्त्री थे।

---

1. जॉन स्टुअर्ट मिल (१८०६ ई० १८७३ ई०) का जन्म १८०६ ई० मे हुआ था। वे अँगरेजी अर्थशास्त्री जेम्स स्टुअर्ट मिल के पुत्र थे। अर्थशास्त्री का पुत्र होने के नाते उनको आर्थिक सिद्धान्तो को समझने मे लाभ प्राप्त हुआ। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा का उनके जीवन तथा लेखन कार्य पर काफी गहरा प्रभाव पडा था। तीन वर्ष की कोमल आयु मे उन्होने यूनानी भाषा (Greek) सीख ली थी तथा आठ वर्ष की छोटी आयु मे रोम की भाषा (Latin) मे निपुणता प्राप्त करली थी। १० वर्ष की आयु मे वे यूनान व रोम के प्राचीन साहित्य मे निपुण थे। १३ वर्ष की छोटी आयु मे, जबकि अधिकाश व्यक्ति स्कूलो मे अपनी कक्षाओं मे ज्ञान प्राप्त करने मे व्यस्त रहते है, मिल ने विज्ञान तथा दर्शनशास्त्र का ज्ञान प्राप्त कर लिया था व रोम का इतिहास भी लिख दिया था। उनकी तर्क तथा समझ शक्ति असाधारण थी। २३ वर्ष की आयु मे उनके राजनैतिक अर्थशास्त्र पर निबन्ध प्रकाशित हुये थे। १४ वर्ष की आयु मे वे फ्रान्स गये थे जहाँ पर उनका प्रसिद्ध फ्रान्सीसी अर्थशास्त्री जे० बी० से० मे पैरिस मे परिचय हुआ। १८२३ ई० मे उनकी नियुक्ति ईस्ट इडिया कम्पनी के दफ्तर मे क्लर्क के पद पर हुई। १८५८ ई० तक ईस्ट इंडिया कम्पनी में नौकरी करने के पश्चात् उनका अधिकांश समय लेखन कार्य मे व्यतीत होता था। १८६५ ई० से लेकर १८६८ ई० तक वे ससद के सदस्य थे। राजनैतिक प्रश्नो पर उनके विचार उदार थे। उनकी पुस्तके **'System of Logic'** १८४३ ई० मे; **'Liberty'** १८५९ ई० मे; **'Autobiography'** १८७३

मिल का स्थान आर्थिक विचारो के इतिहास मे विचित्र तथा विशेष है। उनको दो भिन्न विचारधाराओं—संस्थापित आर्थिक विचारो तथा समाजवादी विचारो के मध्य विभाजन रेखा कहा जा सकता है। यद्यपि किसी भी प्रकार मे यह कहना महान भूल होगी कि मिल समाजवादी थे क्योकि अन्त तक उनका स्वतन्त्रता मे दृढ विश्वास था, परन्तु यह कहना सत्य है कि अपने जीवन के दूसरे युग मे उन्होने Saint-Simon तथा Auguste Comte के विचारो का समर्थन किया था। आरम्भ मे वे कट्टर व्यक्तिवादी थे। इसका मुख्य कारण यह था कि उन पर उनके पिता जेम्स मिल, जो Jeremy Bentham तथा David Ricardo के गहरे मित्र थे, का गहरा प्रभाव पडा था। मिल का तत्वज्ञान बैन्थम का उपयोगितावाद था। उनके पिता ने उनको रिकार्डो की **Political Economy** तथा माल्थस के जनसख्या सिद्धान्त के प्रति पूर्ण विश्वास करा दिया था। फलस्वरूप आरम्भ मे वे संस्थापित आर्थिक विचारो के पक्के समर्थक तथा विकासकर्ता रहे। परन्तु कुछ समय पश्चात उन पर फ्रांसीसी सेट साइमनवादियों, De Tocqueville तथा Auguste Comte के विचारो का भारी प्रभाव पडने के कारण उनकी विचारधारा समाजवाद की ओर झुक गई तथा फलस्वरूप संस्थापक अर्थशास्त्र का पतन होना आरम्भ हो गया। प्रो० जीड व रिस्ट ने अपनी पुस्तक **'A History of Economic Doctrines'** मे ठीक ही लिखा है, कि "उचित रूप से यह कहा जा सकता है कि मिल के साथ

ई० मे तथा अनेक प्रकाशित लेखो के अतिरिक्त उनकी प्रसिद्ध पुस्तक **'Principles of Political Economy'** १८४८ ई० मे प्रकाशित हुई थी।

१८३० ई० मे मिल की मुलाकात एक श्रीमती टेलर (Mrs. Taylor) से हुई तथा श्रीमती टेलर का मिल के विचारो तथा लेखन कार्य पर काफी प्रभाव पडा। स्त्रियो के अधिकार, सामाजिक प्रगति, स्वतन्त्रता इत्यादि विषयो पर श्रीमती टेलर का मिल के विचारो पर गहरा प्रभाव पडा था जैसा कि अपनी पुस्तक Autobiography मे उन्होने स्वीकार किया है। १८५१ ई० मे मिल ने श्रीमती टेलर से विवाह किया तथा १८५८ ई० मे श्रीमती टेलर की मृत्यु के समय तक वे सदा साथ-साथ रहते थे। यद्यपि मिल अपने समय के एक महान विचारक व प्रसिद्ध अर्थशास्त्री थे परन्तु वे अच्छे वक्ता नही थे।

आर्थिक विचारो के इतिहास के दृष्टिकोण से मिल के जीवन को दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है। प्रथम काल १८४८ ई० तक कहा जा सकता है। इस काल मे वे संस्थापक विचारो के पूर्ण समर्थक थे। दूसरा काल १८४८ ई० के पश्चात् आरम्भ होकर १८७३ ई० तक कहा जा सकता है। इस काल मे मिल के विचार समाजवादी हो गये थे। उनकी मृत्यु १८७३ ई० मे हुई तथा उन के शव को उनकी स्त्री के समीप ही दक्षिण फ्रान्स मे Avignon नामक स्थान पर दफना दिया गया था।

अतिरिक्त वे माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त, वेतन-कोष सिद्धान्त, स्वतन्त्रता, स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा अन्य संस्थापित आर्थिक सिद्धान्तों के भारी समर्थक थे। उनके आर्थिक विचारों का सन्तुलित रूप से अध्ययन करने के उद्देश्य से यहाँ पर उनकी पुस्तक **Principles of Political Economy** की समीक्षा करना आवश्यक है।

Principles of Political Economy की तुलना विचारों की गहराई की दृष्टि से स्मिथ, माल्थस व रिकार्डो की प्रसिद्ध पुस्तकों से की जा सकती है। पुस्तक पाँच पुस्तकों अथवा खण्डों में विभाजित है। ये पाँच खण्ड अथवा पुस्तकें निम्नलिखित है :—

(१) प्रथम पुस्तक—यह उत्पादन (Production) से सम्बन्धित है तथा इसमें उत्पादन के साधनों की व्याख्या की गई है। इस पुस्तक के प्रारम्भिक अध्यायों में लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि किसी अर्थव्यवस्था की उत्पादन शक्ति उसकी भूमि, प्राकृतिक साधनों, श्रम तथा पूँजी की मात्रा तथा गुणों पर निर्भर होती है।

(२) दूसरी पुस्तक—इस पुस्तक में राष्ट्रीय उत्पादन अथवा वास्तविक राष्ट्रीय आय के विभिन्न वर्गों के बीच वितरण की विवेचना की गई है अर्थात् श्रमिकों का वेतन, पूँजीपतियों का लाभ तथा भूस्वामियों का लगान किस प्रकार निर्धारित होता है।

(३) तीसरी पुस्तक—इस पुस्तक में विनिमय तथा मूल्य निर्धारण के सिद्धान्तों की विवेचना की गई है।

(४) चौथी पुस्तक—इस पुस्तक में समाज की प्रगति का उत्पादन तथा वितरण पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या की गई है।

(५) पाँचवी पुस्तक—इस अन्तिम पुस्तक में सरकार के प्रभाव का विवेचन किया गया है।

समस्त पुस्तक में उपभोग के विषय की बिल्कुल व्याख्या नहीं की गई है। इस पुस्तक को लिखने का लक्ष्य केवल राजनैतिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र में हुये विकास व परिवर्तनों की व्याख्या करना नहीं ही था बल्कि इसके अतिरिक्त राजनैतिक अर्थशास्त्र को एक बड़े व सम्पूर्ण सामाजिक विज्ञान का अंग भी बनाना था। अपनी पुस्तक **Essays on Some Unsettled Questions of Political Economy** में जो **Principles of Political Economy** के प्रकाशन के चार वर्ष पूर्व १८४४ ई० में प्रकाशित हुई थी, मिल ने राजनैतिक अर्थशास्त्र की इस प्रकार परिभाषा की थी। "राजनैतिक अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो समाज की उन घटनाओं के नियमों की व्याख्या करता है जो मानव जाति के धन का उत्पादन करने के हेतु विद्यमान होती

है तथा जो अन्य किसी उद्देश्य की पूर्ति से प्रभावित नही होती है। यह परिभाषा पूर्ण प्रतीत होती है।"[4]

१८४८ ई० मे प्रकाशित मिल की इस प्रसिद्ध पुस्तक **Principles of Political Economy** की एक मुख्य विशेषता यह है कि लेखक ने पुस्तक मे (जैसा की मिल ने स्वय अपनी पुस्तक **Autobiography** मे लिखा है) राजनैतिक अर्थशास्त्र की व्याख्या केवल एक अमूर्त विज्ञान (Abstract Science) के रूप मे नही, बल्कि समाज दर्शनशास्त्र (Social Philosophy) की एक शाखा के रूप में की है। राजनैतिक अर्थशास्त्र समाज दर्शनशास्त्र की वह एक शाखा है जो दर्शनशास्त्र की अन्य शाखाओ—अन्य समाज विज्ञानो—से इस विशेष प्रकार से सम्बन्धित है कि इस—राजनैतिक अर्थशास्त्र—के निष्कर्ष अन्य उन अनेक कारणो पर निर्भर होते हैं जिनका अध्ययन इसके क्षेत्र के बाहर होता है। **Principles of Political Economy** की दूसरी पुस्तक मे जिसमे वितरण के सिद्धान्तो की व्याख्या की गई है, इस व्यापक दृष्टिकोण को अपनाया गया है। वितरण के नियमो की प्रकृति की व्याख्या करते हुये तथा इनको उत्पत्ति के नियमो मे भिन्न बताते हुये मिल ने ठीक ही लिखा है कि "यद्यपि धन के उत्पादन के नियमो का स्वभाव भौतिक नियमो (Physical Laws) के समान है जो अपरिवर्तनीय है तथा सभी परिस्थितियो मे समान रूप से लागू होते है, परन्तु वितरण के नियमो के विषय मे यह सत्य नही है। ये नियम पूर्ण रूप से मानव सस्थाओ का परिणाम होते हैं। एक बार उत्पत्ति प्राप्त हो जाने के पश्चात् मानव व्यक्तिगत अथवा सम्मिलित रूप से इसका वितरण अपनी इच्छानुसार किसी भी प्रकार कर सकते है।

समाज की किसी भी अवस्था मे राष्ट्रीय लाभाश का विभाजन समाज की इच्छा का ही प्रतीक होना है। सक्षेप मे समाज मे धन का वितरण समाज के नियमों व रीतियो पर निर्भर होता है।[5] इस प्रकार उत्पत्ति के नियमो व वितरण के नियमों मे मौलिक अन्तर है। जबकि प्रथम नियम—उत्पत्ति नियम—भौतिक सत्यो के समान अटल होते हैं, वितरण के नियम मानव सस्थाओं पर आधारित होते हैं तथा मानव सस्थाओ मे समय के साथ परिवर्तन होने के फलस्वरूप इनमे भी परिवर्तन होते रहते है। सक्षेप मे मिल के विचारानुसार उत्पत्ति के नियम अपरिवर्तनीय तथा सभी समाजो मे समान होते है, वितरण के नियम परिवर्तनीय है तथा मानव सस्थाओ की भिन्नताओ के कारण भिन्न समाजो मे भिन्न तथा एक ही समाज मे भिन्न समय पर भिन्न हो सकते है।

—

पुस्तक की भूमिका में मिल ने राष्ट्रीय अथवा सामाजिक तथा व्यक्तिगत धन मे भेद किया है तथा वणिकवादी विचारो की आलोचना की है। इसके अतिरिक्त भूमिका मे विभिन्न देशो में धन की असमानताओ की व्याख्या करते हुये लेखक ने व्यक्त किया है कि ये असमानताये उत्पादन तथा वितरण के नियमो का परिणाम है।

उत्पादक तथा अनुत्पादक श्रम

मिल ने उत्पादक तथा अनुत्पादक श्रम के बीच भेद किया है। इस सम्बन्ध मे मिल के विचार स्मिथ के विचारो के समान हैं। प्रथम पुस्तक के तीसरे अध्याय में उन्होने लिखा है कि "उत्पादन श्रम का अभिप्राय उस श्रम से है जो धन (भौतिक-वस्तुओं) का उत्पादन करता है। अनुत्पादक श्रम का अर्थ उस श्रम से है जो भौतिक धन का निर्माण नही करता है, अर्थात जो समाज अथवा समस्त ससार को भौतिक वस्तुओं का उत्पादन करके अधिक धनी बनाने के स्थान पर भौतिक वस्तुओं का उपभोग करके पहले से अधिक गरीब कर देता है।[8] इस प्रकार एडम स्मिथ के समान मिल के विचारानुसार समाज मे सेवाओं का सृजन करने वाले सभी व्यक्ति अनुत्पादक थे।

इसी प्रकार उत्पादक उपभोग व अनुत्पादक उपभोग मे भेद करते हुये मिल ने लिखा है कि "वे सभी व्यक्ति जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उत्पादन में योगदान नही देते है अनुत्पादक उपभोक्ता है। केवल उत्पादक श्रमिक ही उत्पादक उपभोक्ता होते हैं।"[9] स्पष्ट है कि मिल स्मिथ के समान इस मौलिक सत्य को समझने में असमर्थ थे कि समाज के सभी वर्गो मे पारस्परिक निर्भरता होती है तथा समाज के दृष्टिकोण से डाक्टर की सेवाए भी यदि अधिक नहीं तो उतनी ही उत्पादक अवश्य होती है जितनी की उस कृषक की जो खाद्य के समान भौतिक वस्तु का उत्पादन करने के कारण एडम स्मिथ तथा मिल के मतानुसार समाज का उत्पादक नागरिक था। श्रम की मात्रा मे वृद्धि होने का नियम माल्थस के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो पर आधारित है।

पूँजी की परिभाषा व महत्व

मिल के अनुसार श्रम तथा प्राकृतिक साधनो के अतिरिक्त उत्पादन करने के लिये पूँजी का होना भी आवश्यक है। मिल के विचारानुसार पूँजी उत्पादन का तीसरा साधन है; श्रम व भूमि प्रथम तथा द्वितीय साधन हैं। पूँजी श्रम की पूर्व उत्पत्ति का सचित किया हुआ स्टाक है। स्मिथ के समान मिल ने भी उत्पादन मे पूँजी के महत्व को केवल समझाते हुये लिखा है कि पूंजी के बिना उत्पादन केवल प्राथमिक उद्योग की अवस्था तक ही सम्भव हो सकता है। पूँजी का उत्पादन में

---

8 Political Economy pp 45 and 49.
9, *Ibid* p 57.

कितना अधिक महत्व है यह मिल के उस प्रसिद्ध कथन से भली प्रकार स्पष्ट है जिस मे उन्हो ने कहा है कि उद्योग पूँजी से सीमित होता है (Industry is limited by Capital)

मिल के अनुसार द्रव्य पूँजी नही है तथा न ही यह पूँजी का कार्य करता है। मिल के लिये पूँजी का अर्थ वास्तविक पूँजी मे है जिस मे उत्पादन मे प्रयोग मे आने वाले यत्र सामग्री तथा उत्पादन की अवधि मे श्रमिको द्वारा उपभोग की गई वस्तुयें सम्मिलित हैं। पूँजी वस्तुओं के उत्पादन मे ही सहायता नही करती है बल्कि पूँजी मे वृद्धि होने पर उद्योग मे रोजगार मे भी वृद्धि होती है।

परन्तु यह पूँजी जिस के प्रयोग के कारण समाज मे उत्पादन तथा रोजगार मे वृद्धि होती है, किस प्रकार उत्पन्न होती है। मिल के अनुसार पूँजी बचत का परिणाम है तथा बचत वर्तमान उपभोग के आत्मत्याग के द्वारा सम्भव होती है। इस के अतिरिक्त मिल ने अचल तथा चल पूँजी में भी भेद किया है।

मिल के अनुसार पूँजी की पूर्ति समाज मे बचत की मात्रा पर निर्भर होती है। परन्तु बचत की मात्रा स्वय उस कोष की मात्रा पर जिस मे से बचत की जाती है—अर्थात आय (Dispesable Income)—तथा बचतकर्ताओं की बचत करने की प्रवृति पर निर्भर होती है। इस सम्बन्ध मे मिल के विचार वर्तमान विचारों के समान है यद्यपि मिल यह बताने मे असमर्थ रहे कि स्वय आय जो बचत का स्रोत है किन बातो पर निर्भर होती है। उत्पादन में वृद्धि करने के लिये पूँजी की मात्रा मे वृद्धि होना आवश्यक है।

उत्पत्ति के नियमों की प्रकृति

मिल का कहना था कि यद्यपि श्रम तथा पूँजी की पूर्ति में असीमित मात्रा मे वृद्धि करना सम्भव है परन्तु भूमि की पूर्ति मे इस असीमित प्रकार की वृद्धि करना कदापि सम्भव नही है। भूमि की उत्पत्ति, अन्य बाते समान रहते हुए (**ceteris paribus**) श्रम की मात्रा मे वृद्धि होने के फलस्वरूप घटते हुये अनुपात मे बढती हैं। "उत्पत्ति के ये नियम भौतिक सत्यो के समान है। इन मे मनमानी अथवा इच्छा का कोई स्थान नही है। हम पदार्थ अथवा मस्तिष्क की विशेषताओं मे परिवर्तन नही कर सकते है। उन घटनाओं को प्राप्त करने के उद्देश्य से जिन मे हमारा हित है हम केवल इन विशेषताओ अथवा गुणो का अधिक या कम सफलतापूर्वक प्रयोग कर सकते है।"[10] सक्षेप मे उत्पत्ति के नियम अटल, अपरिवर्तनीय तथा स्वय सिद्ध सत्यों (Axiomatic truths) के समान है जो सब समय सब स्थानो मे विद्यमान रहते है तथा जिन को सिद्ध करना अनावश्यक है।

वितरण के सिद्धान्त

Principles of Political Economy की दूसरी पुस्तक मे वितरण के

10. *Ibid* p 200

सिद्धान्तो की व्याख्या की गई है। इस पुस्तक के प्रथम दस अध्यायो मे सम्पत्ति व भूसुधारो की व्याख्या की गई है। ११ वें अध्याय मे, जिस का शीर्षक "Of Wages" है, मिल ने लिखा है कि उत्पादन का विभाजन श्रमिकों, भूस्वामियों व पूंजीपतियों के मध्य होता है। मिल ने मजदूरी के वेतन-कोष सिद्धान्त का समर्थन किया है। यद्यपि समाज मे रीतिरिवाजो से भी वेतनो का नियमन होता है, परन्तु वेतन मिल के मतानुसार मुख्यत. श्रमिको की माँग तथा पूर्ति से निर्धारित होते है। जहाँ तक श्रमिकों की पूर्ति का प्रश्न है यह जनसख्या से निर्धारित है। इस के दूसरी ओर श्रमिकों की माँग पूंजी के उस कोष के आकार से निर्धारित होती है जो श्रमिको को वेतन देने के लिये रखा जाता है। श्रमिको की पूर्ति समान रहने हुये वेतन इस कोष के आकार मे परिवर्तन होने के अनुसार कम अथवा अधिक होगे। इस प्रकार वेतन जनसख्या व पूंजी के अनुपात से निर्धारित होते है जैसा कि निम्नलिखित समीकरण से विदित होता है।

$$\text{वेतन} = \frac{\text{पूंजी के वेतन कोष का आकार}}{\text{जनसख्या का आकार}}$$

निम्नलिखित वाक्य खण्ड से यह भली प्रकार स्पष्ट है कि मिल वेतनो के वेतन-कोष सिद्धान्त के समर्थक थे।

"यद्यपि वेतन सदा केवल पूंजी व जनसख्या की सापेक्ष मात्रा पर ही निर्भर नही होते हैं परन्तु प्रतियोगिता के नियम के अन्तर्गत ये अन्य किसी शक्ति से निर्धारित नहीं होते है। वेतनो (जिस का अर्थ सामान्य वेतन दर से है) मे उस समय तक कदापि वृद्धि सम्भव नहीं हो सकती है जब तक या तो उस सम्पूर्ण कोष, जिस का प्रयोग श्रमिको को वेतन देने के लिये किया जाता है, मे वृद्धि न हो गई हो अथवा श्रमिको की पूर्ति मे कमी न हो गई हो। इस के विपरीत वेतनो मे उस समय तक कमी सम्भव नही हो सकती है जब तक कि या तो वेतन-कोष मे कमी या उन श्रमिको की पूर्ति मे, जिन को इस कोष से वेतन दिया जाता है, वृद्धि न हो गई है।"[11]

मजदूरी के वेतन-कोष सिद्धान्त से यह निष्कर्ष निकलता है कि मजदूरी की दर में वृद्धि होने के लिये यह आवश्यक है कि या तो वेतन-कोष के आकार मे वृद्धि हो या जनसख्या का आकार सीमित हो। वेतन-कोष का आकार समाज मे प्राप्त पूंजी की मात्रा पर निर्भर होता है जो स्वय समाज मे लोगो की बचत करने की शक्ति-आय-व बचत करने की प्रवृति से निर्धारित होती है। मजदूरी के वेतन-कोष सिद्धान्त से एक अन्य महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह प्राप्त होता है कि वेतन-दरो मे स्थाई वृद्धि तभी सम्भव हो सकती है जब श्रमिक अपने परिवार के आकार को सीमित रखे। माल्थस का विश्वास था कि जनसख्या मे निरन्तर वृद्धि होने के फलस्वरूप वेतन दर जीवन निर्वाह स्तर से

11 *Ibid* · *pp* 343 344

अधिक नही हो सकती। माल्थस इम सम्बन्ध मे निराशावादी थे। उन का कहना था कि यद्यपि जीवन निर्वाह स्तर पर आदतो व रीतियो का प्रभाव पड़ता है परन्तु श्रमिको मे दूरदर्शिता तथा शिक्षा का अभाव होने के कारण उनका जीवन निर्वाह स्तर इतना निम्न रहेगा कि वे सदा गरीबी के सरोवर मे डुबकियाँ खाते रहेगे। माल्थस के समक्ष श्रमिको को इस भयानक व चिन्ताजनक स्थिति से बाहर निकालने का कोई उपाय न था। परन्तु मिल इतने निराशावादी नही थे। उन का विश्वास था कि श्रमिको की गरीबी के इस दुष्ट चक्र को, समाज की आर्थिक प्रगति की गति को जनसख्या की वृद्धि की गति की अपेक्षा अधिक करके तथा श्रमिको को इस आर्थिक प्रगति का अधिक हिस्सा देकर, तोडा जा सकता था तथा श्रमिको के जीवन स्तर को ऊपर उठाया जा सकता था इस के अतिरिक्त श्रमिको के लिये उचित शिक्षा का प्रबन्ध करके माल्थस के भूत—जनसख्या की वृद्धि—की भयानक गति को उपलब्ध खाद्य सामग्री के अनुसार सीमित रखा जा सकता था।

मजदूरी के वेतन कोष सिद्धान्त से यह व्यावहारिक निष्कर्ष निकलता है कि मजदूरो के अपने वेतनो मे वृद्धि करने के आन्दोलन मे कोई तत्थ्य नही है। मिल के समय मे श्रमिक अपने वेतनो मे वृद्धि करने के हेतु आन्दोलन कर रहे थे तथा मालिक मजदूरी के वेतन-कोष सिद्धान्त की शरण लेकर श्रमिको की माँगो को अनुचित घोषित करने के भरसक प्रयास कर रहे थे। यद्यपि मिल का स्वय यह विश्वास था कि श्रम सघ श्रमिक वर्ग की सहायता नही कर सकते थे परन्तु वे श्रम संघो तथा श्रम-सुधारो के विरोध मे न थे। इस समय अनेक व्यक्ति मजदूरी के वेतन-कोप सिद्धान्त की कडी आलोचना करने मे व्यस्त थे। फ्रान्सिस डी. लोग (Francis D. Longe), जिन्होने *आक्सफार्ड मे शिक्षा प्राप्त की थी तथा जिन को* *Children's Employment* Commission से सम्बन्धित होने के कारण श्रम समस्याओ का ज्ञान था, ने १८६६ ई० मे *प्रकाशित अपनी पुस्तिका* **A Refutation of the Wages Fund Theory of Modern Political Economy** मे मजदूरी के मजदूरी कोष सिद्धान्त की कडी आलोचना की थी। तत्पश्चात १८६६ ई० मे थॉर्नटन (W. T. Thornton) ने अपनी पुस्तक **On Labour** मे मजदूरी के मजदूरी कोष सिद्धान्त की आलोचना की थी। मिल ने थार्नटन की पुस्तक की **Fornightly Review** नामक पत्रिका मे समीक्षा करते हुये थॉर्नटन के मजदूरी-कोष सिद्धान्त के विपक्ष मे दिये गये तर्को को स्वीकार किया था तथा पत्रिका के मई व जून १८६६ ई० के अको मे मजदूरी के मजदूरी कोष सिद्धान्त का खण्डन करने की घोषणा की थी। यद्यपि मिल ने इस घोषणा के पश्चात अपनी पुस्तक के सातवे सस्करण मे वेतन के अध्याय का पुनर्लेखन नही किया परन्तु थॉर्नटन के तर्कों को पुस्तक के अध्याय मे footnotes के रूप मे उचित स्थान प्राप्त हुआ।

राष्ट्रीय उत्पादन मे श्रमिको के हिस्से—वेतनो—की व्याख्या के पश्चात

मिल ने अपनी पुस्तक मे पूँजीपतियों के लाभो की व्याख्या की है। सीनियर के समान मिल के मतानुसार भी लाभ पूँजीपति के आत्मत्याग (abstinence) का प्रतिफल है। स्मिथ तथा सस्थापक सम्प्रदाय के अन्य अर्थशास्त्रियों के समान मिल ने भी लाभ व ब्याज मे कोई अन्तर स्पष्ट नही किया है, यद्यपि उन का कहना है कि *लाभ दर सामान्यता ब्याज की दर से अधिक होती है। साहसी-पूँजीपति के कुल लाभ* (Gross Profit) मे उस आय के अतिरिक्त जो पूँजीपति के आत्मत्याग का प्रतिफल होता है, साहसी की देखभाल की सेवाओ तथा जोखिमो का परितोषण भी सम्मिलित होता है। मिल का विचार लाभ के सम्बन्ध मे रिकार्डो के समान था। साहसी का लाभ श्रमिको की उत्पादकता पर निर्भर होता है। लाभ तथा वेतन के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय पर रिकार्डो के समान मिल भी इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि "लाभ की दर वेतनो पर निर्भर होती है; वेतनो मे कमी होने पर इस मे वृद्धि होती है तथा वेतनों मे वृद्धि होने पर इस मे कमी होती है।"[12]

परन्तु इस सम्बन्ध मे मिल ने रिकार्डो के विचार मे एक महत्वपूर्ण सुधार किया है। रिकार्डो के 'वेतन' शब्द के स्थान पर मिल ने 'श्रम-व्यय' (cost of labour) शब्द का प्रयोग किया है जो वेतन शब्द की अपेक्षा अधिक उपयुक्त है क्योकि इस मे वे सभी व्यय सम्मिलित है जो श्रमिक की कार्यक्षमता को निर्धारित करते है। इस के अतिरिक्त उद्योगपति के दृष्टिकोण से 'श्रम-व्यय' शब्द' वेतन' शब्द की अपेक्षा अधिक उपयुक्त है क्योंकि अधिक वेतन होते हुये भी (यदि श्रमिको की उत्पादन क्षमता अधिक है) उत्पादन करने का प्रति इकाई श्रम-व्यय कम तथा वेतन कम होते हुये भी (यदि श्रमिको की उत्पादन क्षमता कम है) उत्पादन करने का प्रति इकाई श्रम व्यय अधिक हो सकता है।

मिल के लगान सम्बन्धी विचार रिकार्डो के विचारो के समान है। लगान भूमि के स्वामित्व के एकाधिकार का परिणाम है। लगान भूमि के गुण व मात्रा पर निर्भर होता है। *रिकार्डो के समान मिल के अनुसार भी लगान अन्तरसीमान्त* भूमि के स्वामी को सीमान्त अथवा लगान-रहित भूमि की उत्पादन शक्ति की तुलना मे अन्तरसीमान्त भूमि की उत्तम उत्पादन शक्ति के कारण प्राप्त होता है। किसी भूमि का लगान वह आधिक्य है जो इसको सबसे खराब, जिस पर काश्त होती है, भूमि के उत्पादन की तुलना मे प्राप्त होता है। रिकार्डो के समान मिल के विचारानुसार भी लगान उत्पादन व्यय का भाग नही है। मिल ने सर्वप्रथम लगान की अनुचितता को स्पष्ट करने के लिये इसको 'unearned advantage' का नाम दिया था। मिल का कहना था कि जनसंख्या के बढने तथा भूमि के सीमित होने के कारण लगान मे समय के बीतने के साथ बढने की प्रवृति होती है। इस कारण वे इस बात के पक्ष

12. *Ibid* : - *p.* 419

में थे कि सरकार को समय-समय भूमि के मूल्य का मूल्यांकन करके अधिक कर लगाकर भूस्वामी की आय की इस अनुचित वृद्धि का, जो उसको बिना किसी परिश्रम के प्राप्त होती है, सामाजीकरण करना चाहिये।

मूल्य का सिद्धान्त

मूल्य के सिद्धान्त की व्याख्या **Political Economy** की तीसरी पुस्तक, जो अन्य सभी पुस्तकों की अपेक्षा व्यापक है, में की गई है। इस पुस्तक के २४ अध्यायों में मूल्य, द्रव्य तथा साख, चलन नियमन, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, विनिमय दर तथा अन्य महत्वपूर्ण विषयों की व्याख्या की गई है। मूल्य के सिद्धान्त पर लिखते हुये मिल ने वस्तुओं को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है। प्रथम, दुर्लभ चित्रों के समान वे वस्तुयें है जिनकी मात्रा पूर्णतया सीमित है तथा जिनकी पूर्ति को किसी भी प्रकार बढ़ाया नहीं जा सकता है। अल्पकाल में श्रम, एकाधिकार के अन्तर्गत उत्पादित की गई वस्तुओं, तथा अन्तर्राष्ट्रीय वस्तुओं की पूर्ति सीमित होने के कारण मिल के अनुसार ये भी इसी श्रेणी में सम्मिलित है। इन वस्तुओं का मूल्य माँग व पूर्ति पर निर्भर होता है। इसको समझाते हुये मिल ने लिखा है कि जो मूल्य किसी वस्तु को बाजार में प्राप्त होता है, उस मूल्य पर उस बाजार में वस्तु की माँग उसकी पूर्ति के समान होती है। माँग से तात्पर्य समर्थ माँग (effective demand) से है।

परन्तु मिल के विचारानुसार इस श्रेणी की वस्तुओं का मूल्य के सिद्धान्त में अधिक महत्व नहीं है। जीवन में अधिकांश वस्तुयें दूसरी श्रेणी की वे वस्तुयें होती हैं जो 'श्रम व्यय' का परिणाम होती है तथा जिनकी पूर्ति को असीमित मात्रा में बढ़ाया जा सकता है। इन वस्तुओं के सम्बन्ध में मिल ने प्राकृतिक—सामान्य—तथा बाजार मूल्यों में भेद किया है। किसी समय विशेष पर वस्तु का मूल्य बाजार में उस वस्तु की माँग व पूर्ति से निर्धारित होता है तथा इसके मूल्य में इसकी माँग व पूर्ति में परिवर्तन होने के हेतु, परिवर्तन-उच्चावचन-होते रहते हैं। परन्तु जिन वस्तुओं का पुनः उत्पादन किया जा सकता है उनके मूल्यों की निम्नतम सीमा उनके उत्पादन व्यय से निर्धारित होती है। यदि वस्तुओं की पूर्ति में असीमित मात्रा में वृद्धि की जा सकती है तो यह निम्नतम मूल्य ही अधिकतम मूल्य भी होता है। यही वस्तु का सामान्य मूल्य बिन्दु है। संक्षेप में उपरोक्त सब कुछ कहने का तात्पर्य यह है कि दूसरी श्रेणी अथवा पुनः उत्पादित वस्तुओं का बाजार मूल्य उनकी समय विशेष पर माँग व पूर्ति की शक्तियों द्वारा तथा सामान्य मूल्य उनके उत्पादन व्यय द्वारा निर्धारित होता है। दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तु के बाजार मूल्य में इसके *सामान्य मूल्य के समान हो जाने की प्रवृत्ति होती है। यदि किसी* समय वस्तु की कीमत उसके उत्पादन व्यय से अधिक होगी तो इसकी पूर्ति में वृद्धि होने के कारण फिर यह उत्पादन व्यय के समान हो जावेगी। इसके विपरीत वस्तु

की बाजार कीमत के इसके उत्पादन व्यय से कम होने पर इसकी माँग में वृद्धि तथा पूर्ति में कमी हो जाने के कारण कीमत बढ़कर फिर उत्पादन व्यय (सामान्य मूल्य) के समान हो जावेगी। इस प्रकार उत्पादन व्यय अथवा पूर्ति का वस्तुओं की कीमतों को निर्धारित करने में काफी महत्व है।

मिल के अनुसार उत्पादन व्यय में वेतन तथा साधारण लाभ सम्मिलित हैं। लगान, मिल के अनुसार साधारणतया व्यय का अंग नहीं है। मिल रिकार्डो के इस विचार से सहमत हैं कि वस्तुओं का पारस्परिक सापेक्ष मूल्य मुख्यरूप से उन वस्तुओं का उत्पादन करने में व्यय हुये श्रम की मात्रा से निर्धारित होते हैं।

खाद्य सामग्री के समान तीसरी श्रेणी की वस्तुओं, जिनकी पूर्ति को असीमित मात्रा में केवल क्रमागत व्यय वृद्धि (Law of increasing costs) नियम के अनुसार ही बढ़ाया जा सकता है, की कीमत निर्धारण के सम्बन्ध में मिल ने अधिक नहीं लिखा है। इन वस्तुओं का मूल्य आवश्यक पूर्ति को प्राप्त करने के सीमान्त व्यय—अधिकतम व्यय—से निर्धारित होता है। मिल के मूल्य-सिद्धान्त को निम्न प्रकार समझाया जा सकता है।
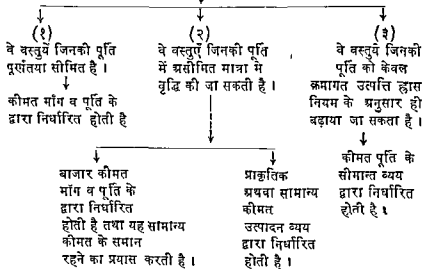
अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त

ऐडम स्मिथ व रिकार्डो के समान मिल भी स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के समर्थक थे। मिल ने इस क्षेत्र में रिकार्डो के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक

व्यय सिद्धान्त (Comparative Cost Theory) में एक बहुत आवश्यक व महत्वपूर्ण सुधार किया। रिकार्डो ने अपने प्रसिद्ध सिद्धान्त मे इंगलैंड व पुर्तगाल की प्रसिद्ध उदाहरणों के द्वारा यह व्यक्त किया था कि दो देशों के मध्य उस समय भी व्यापार होगा, जब एक देश दूसरे देश की अपेक्षा दोनों वस्तुओं का सस्ते अथवा कम व्यय पर उत्पादन कर सकता है, परन्तु एक वस्तु के उत्पादन मे उसकी दक्षता दूसरी वस्तु की अपेक्षा अधिक है। रिकार्डो ने यह व्यक्त किया था कि दोनो देशो के बीच वस्तुओ का विनिमय तुलनात्मक व्यय के अन्तर द्वारा निर्धारित दो सीमाओ—ऊपरी व नीची—के बीच होगा। परन्तु इन दोनो सीमाओ के बीच अनेक विनिमय दर हो सकती हैं। रिकार्डो यह स्पष्ट करने मे असफल थे कि तुलनात्मक व्यय के अन्तर द्वारा निर्धारित दोनो सीमाओ के बीच वास्तविक विनिमय दर अथवा आयात-निर्यात स्थिति (terms of trade) किस बिन्दु पर निश्चित होगी। रिकार्डो के सिद्धान्त की इस अपूर्णता को मिल ने पूरा किया। मिल ने यह बतलाया कि ऊपरी तथा नीची दोनो सीमाओ के बीच वास्तविक आयात-निर्यात दर दोनो देशो की एक दूसरे की वस्तुओं की परस्पर माँग की मूल्य सापेक्षता (elasticity of reciprocal demand) द्वारा निर्धारित होगी। सन्तुलित आयात-निर्यात विनिमय दर पर दोनो देशो की माँग समान होगी।

द्रव्य का महत्व तथा परिमाण सिद्धान्त

ऐडम स्मिथ के समान मिल का भी यह विश्वास था कि द्रव्य स्वयं महत्वपूर्ण नही है। यह विनिमय माध्यम का कार्य करके समाज मे आर्थिक क्रियाओं को -उत्पादन तथा वितरण—सुविधाजनक प्रकार से सम्पन्न करने मे सहायक सिद्ध होता है। उनका कहना था कि मुद्रा के आविष्कार के फलस्वरूप उत्पादन व वितरण की वास्तविक विधियो मे कोई अन्तर नही आता है। विनियम अर्थव्यवस्था मे मुद्रा रूपी घूंघट (veil of mony) के पीछे उत्पादन व वितरण का क्रम ठीक उसी प्रकार से चलता रहता है जिस प्रकार कि मुद्रा के अविष्कार के पूर्व चलता था।

समाज मे मुद्रा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए मिल ने लिखा है कि "समाज की अर्थव्यवस्था में वस्तुतः मुद्रा से अधिक कम महत्वपूर्ण और अन्य वस्तु नही हो सकती है। यह केवल समय तथा श्रम की बचत करने का एक साधन है। यह उन कार्यों को अधिक शीघ्रता तथा सुगमता के साथ सम्पन्न करने का यंत्र अथवा साधन है जिन को इसके बिना भी यद्यपि कम शीघ्रता तथा कम सुगमता के साथ किया जा सकता है। सभी अन्य प्रकार की मशीनो के समान समाज की अर्थव्यवस्था पर इसका अपना स्वतन्त्र प्रभाव केवल उसी समय पडता है जब यह अव्यवस्थित हो जाती है। अर्थ-व्यवस्था में मुद्रा के प्रवेश के कारण मौलिक दृष्टि से कोई परिवर्तन नही होता है। मूल्य के नियमो के कार्य मे कोई परिवर्तन नही होता है। वस्तुओ के

पारस्परिक सम्बन्धों में भी मुद्रा के ग्राविष्कार के हेतु कोई परिवर्तन नही होता है।"[13]

मिल मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त (Quantity Theory of Money) में विश्वास रखते थे। इस सिद्धान्त की व्याख्या मिल ने इस प्रकार की है : "मुद्रा के मूल्य मे ग्रन्य बातें समान रहते हुए, इसकी मात्रा के ग्रनुपात मे उलटे परिवर्तन होते हैं; मुद्रा की मात्रा की प्रत्येक वृद्धि इसके मूल्य को कम तथा इसकी मात्रा की प्रत्येक कमी इसके मूल्य मे वृद्धि करती है।"[14]

समाज की प्रगति का उत्पादन व वितरण पर प्रभाव

Principles of Political Economy की चौथी पुस्तक मे समाज की प्रगति के उत्पादन व वितरण पर पड़ने वाले प्रभावो की व्याख्या की गई है। वास्तव मे इन विचारों को मिल का ग्रार्थिक विकास का सिद्धान्त कहा जा सकता है। इस पुस्तक मे लेखक ने स्थिर समाज के स्थान पर एक प्रवेगिक समाज (dynamic society) की कल्पना की है। एक प्रवेगिक प्रगतिशील समाज ऐसे समाज को कहते हैं जिसमें सभ्य व्यक्ति रहते हैं तथा धन की प्रगति तथा लोगो की भौतिक समृद्धि का उच्च स्तर होता है। इस समाज मे उत्पादन तथा जनसख्या मे भी वृद्धि होती रहती है तथा प्रकृति के ऊपर मनुष्य की शक्तियो का विकास होता रहता है। मनुष्य के ज्ञान का विकास होने के कारण उसका भौतिक वस्तुग्रों के गुणों के सम्बन्ध मे भी ज्ञान निरन्तर बढता रहता है। प्रवेगिक समाज मे व्यक्ति तथा धन की सुरक्षा के लिए तथा राज्य को ग्रपनी मनमानी करने से रोकने के लिए व्यवस्थित रूप से संस्थायें होती है। इन सब बातो के ग्रतिरिक्त गतिशील समाज मे समस्त मानव जाति की सामान्य रूप से उत्पादक क्षमता में सुधार होता है तथा लोगो में सम्मिलित रूप से उत्पादन करने ग्रथवा उपभोग के लिए वस्तुयें खरीदने के उद्देश्य से संघ बनाने की प्रवृति होती है जो सम्मिलित पूँजी वाली कम्पनियों को जन्म देती है।

उपरोक्त सभी परिवर्तनो, जो एक प्रगतिशील समाज को स्थिर समाज से भिन्न बनाते हैं, के परिणामस्वरूप सभी सभ्य देशों मे धन तथा जनसख्या मे वृद्धि हुई है। उत्पादन प्रणाली में सुधार होने तथा निर्माण क्रियाग्रो में वैज्ञानिक ज्ञान का प्रयोग होने के कारण वस्तुग्रों के उत्पादन व्यय मे कमी सम्भव हो पाई है। वैज्ञानिक खोजो के कारण मानव प्रकृति पर ग्रधिक विजय प्राप्त कर सका है। परन्तु यह सब होते हुए भी कृषि वस्तुग्रो का ग्रधिक उत्पादन प्रति इकाई ग्रधिक उत्पादन व्यय द्वारा ही सम्भव हो सका है। मिल का कहना है कि खाद्य सामग्री तथा ग्रन्य कृषि वस्तुग्रों के उत्पादन व्यय मे कितनी वृद्धि होगी यह दो विरोधी

शक्तियों पर निर्भर होगी। प्रथम, जनसंख्या की वृद्धि पर जिस के फलस्वरूप खाद्य की माँग बढने के कारण कम उपजाव शक्ति वाली भूमि पर खेती करने के कारण सीमान्त व्यय मे क्रमशः वृद्धि होती है। परन्तु इसके साथ ही दूसरी शक्ति कृषि प्रवीणता (agricultural skill) में सुधार होने के हेतु प्रति इकाई उत्पादन व्यय कम होगा। यदि जनसंख्या कृषि प्रवीणता मे सुधार होने की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से बढती हुई होती है तो कृषि वस्तुओ के प्रति इकाई उत्पादन व्यय मे वृद्धि होगी। मिल का विचार है कि यद्यपि समाज की अधिकाश अवस्थाओ मे ये दोनो शक्तियां या तो स्थिर रहती हैं या बहुत मन्द गति से बढती हैं परन्तु जब समाज मे धन की वृद्धि होती है तो जनसख्या मे कृषि प्रवीणता की अपेक्षा अधिक वृद्धि होती है तथा परिणामस्वरूप खाद्य सामग्री अधिक महगी हो जाती है।

प्रगतिशील समाज में कीमतो के उच्चावचनो की व्याख्या करते हुये मिल ने लिखा है कि निस्सन्देह इनमे कम होने की प्रवृति होती है। परिवहन तथा यातायात के साधनो मे सुधार होने तथा व्यापारियो की सट्टा-क्रियाओ के कारण मूल्य कम हो जाते है। मिल के विचारानुसार व्यापारी अपनी सट्टा-क्रियाओ के द्वारा मूल्यो के उच्चावचनो को कम करके समाज को विशेष रूप से प्रशंसनीय सेवायें प्रदान करते हैं।

समाज मे आर्थिक प्रगति के वेतन, लाभ तथा लगान पर प्रभावो की व्याख्या करते हुये मिल सक्षेप मे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रगति के फलस्वरूप कृषि वस्तुओ की कीमतो मे वृद्धि तथा श्रमिको की उत्पादक्ता व निर्माण क्रियाओं में सुधार होने के कारण औद्योगिक वस्तुओ की कीमतो मे कमी होने के कारण भूमि के लगान मे वृद्धि होती है, मौद्रिक वेतन दरो मे भी वृद्धि होती है, परन्तु लाभ की दरो मे कमी होती है। मिल के तर्कों का साराश स्वय मिल के शब्दों मे इस प्रकार है: "समाज, जिसमे भूस्वामी, पूँजीपति तथा श्रमिक सम्मिलित हैं, की आर्थिक प्रगति के फलस्वरूप भूस्वामियो को अधिक धन प्राप्त होता है; श्रमिको के जीवन निर्वाह स्तर की सामग्री के व्यय मे वृद्धि होने के कारण समान रूप से मौद्रिक वेतनों की दरो मे भी वृद्धि होती है तथा लाभो मे कमी होती है।"[15] न्यूनतम लाभ स्तर की व्याख्या करते हुये मिल ने लिखा है कि 'प्रत्येक समय व स्थान पर लाभ की एक विशेप दर होती है जो न्यूनतम होती है तथा इस दर पर कुल बचत की मात्रा उत्पादक कार्यों—विनियोग—के लिये उसकी कुल माँग के समान होती है। बचत की *मात्रा दो बातो का परिणाम होती है—प्रथम, धन सचय करने की समर्थ इच्छा* तथा दूसरे, समाज मे उद्योग में विनियोग हुई पूँजी की सुरक्षा की स्थिति। प्रगतिशील समाज मे वर्तमान व भविष्य सम्बन्धी जोखिम कम होने के कारण लाभ की वह दर जो लोगो को बचाने तथा सचय करने के लिये प्रेरणा देने के लिये नितान्त

ग्रावश्यक है कम हो जाती है। मिल के ग्रनुसार "जब किसी देश में लम्बे समय से ग्रधिक उत्पादन तथा ग्रधिक शुद्ध ग्राय, जिसमे से ग्रासानी के साथ बचत की जा सकती है, प्राप्त होती रहती है तब ऐसे देश की यह एक विशेषता होती है कि लाभ की दर साधारणतया न्यूनतम दर के समान होती है।"[16]

परन्तु प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या समाज की यह ग्रार्थिक प्रगति ग्रथवा विकास ग्रसीमित है ग्रथवा इसकी कोई सीमा है ? इस सम्बन्ध में ग्रपने विचार व्यक्त करते हुये मिल ने लिखा है कि किसी भी समाज मे ग्रार्थिक विकास ग्रसीमित नही है। धन की वृद्धि ग्रसीमित नही है तथा ग्रार्थिक विकास की ग्रवस्था के ग्रन्त में प्रत्येक समाज को स्थिर ग्रवस्था (Stationary State) का सामना करना पडता है। मिल ने बड़े विश्वास तथा दृढता के साथ लिखा है कि "यदि उत्पादन की कला मे सुधार न हों तथा यदि धनी देशों से संसार के ग्रकृष्ट भूमि वाले देशो को पूँजी का ग्रधिक प्रवाह न हो तो ससार के सबसे ग्रधिक धनी व खुशहाल देश भी शीघ्र स्थिर ग्रवस्था को प्राप्त कर लेंगे।"[17]

परन्तु यह सब कुछ होते हुये भी मिल माल्थस व रिकार्डो के समान निराशावादी नही थे। उनका विश्वास था कि ग्रार्थिक प्रगति के पश्चात् भविष्य में जो स्थिर ग्रवस्था (Stationery State) प्राप्त होगी वह वर्तमान ग्रवस्था की तुलना में कही ग्रधिक ग्रच्छी होगी। इस स्थिर ग्रवस्था मे मानव का सुधार सम्भव होगा। इस समाज मे मानव की मानसिक सास्कृतिक, नैतिक तथा सामाजिक प्रगति होगी तथा रहन सहन के तरीकों मे सुधार हो सकेगा तथा उत्पादन में वृद्धि करने के साथ-साथ वितरण के नियमो में सुधार करने की ग्रोर भी पर्याप्त ध्यान दिया जावेगा।[18] उनका विश्वास था कि भविष्य में वितरण के नियमों मे सुधार होने के कारण श्रमिकों को राष्ट्रीय ग्राय का ग्रधिक भाग वेतनो के रूप में प्राप्त हो सकेगा।

ग्रार्थिक जीवन में राज्य का स्थान

यद्यपि मिल कुछ स्थितियो मे ग्रार्थिक जीवन मे सरकारी हस्तक्षेप के पक्ष में थे, परन्तु एडम स्मिथ के समान साधारणतया वे ग्रार्थिक जीवन में सरकारी हस्तक्षेप के पक्षपाती नही थे। उनका कहना था कि राज्य का ग्रार्थिक जीवन मे हस्तक्षेप करना केवल उसी सीमा तक उचित है जहाँ तक यह हस्तक्षेप ग्रार्थिक नियमो के स्वतन्त्र कार्य में बाधक सिद्ध न हो। रिकार्डों के समान उनका भी यह कहना है कि राज्य को न्यूनतम कर लगाने चाहिये। उनका कहना है कि सरकारी

---

16. *Ibid* : *Book IV, Chap. IV*, p 731
17. *Ibid* : p 746
18. *Ibid* : p 748 75

हस्तक्षेप उसी सीमा तक उचित है जहाँ तक नागरिकों को अपने व्यक्तित्व को सुधारने सम्बन्धी सामान्य अधिकारों का त्याग न करना पड़े। प्रतिरोधों (Restraints) की बुराई करते हुये उन्होंने लिखा है: "All restraint, qua restraint is an evil," अर्थात् सब प्रतिरोध बुराई हैं। मिल का कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार सोचने व कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। इस स्वतन्त्रता पर केवल उसी अंश में प्रतिरोध होना चाहिए कि यह अन्य व्यक्ति की समान स्वतन्त्रता में बाधा न बने। मिल का कहना है कि सामान्यरूप से व्यक्तिगत उत्पादन प्रणाली के द्वारा अच्छी वस्तुओं का कम व्यय पर उत्पादन किया जा सकता है क्योंकि अनुभव से यह भली प्रकार ज्ञात होता है कि सरकार व्यक्तिगत निजी उद्योग से बहुत कम प्रतियोगिता ले सकती है। प्रजातन्त्र समाज में राज्य का अत्यधिक नियन्त्रण लोकतन्त्र के हितों के लिये घातक होता है। मिल नौकरशाही (Bureaucracy) की बुराइयों से भली प्रकार परिचित थे। उनका विश्वास था कि मानव व्यक्तित्व सच्ची सामाजिक प्रगति का स्रोत है तथा इसको सरकारी हस्तक्षेप से पूरी तरह सुरक्षित रखना चाहिए। अपनी पुस्तक **On Liberty** में मिल ने नौकरशाही की बुराइयों का सविस्तार विवरण किया है तथा स्पष्टरूप से यह व्यक्त किया है कि नौकरशाही तथा प्रगति दो असंगत बातें हैं। अबन्ध नीति (Laissez faire) के पक्ष में अपने विचार व्यक्त करते हुये मिलने लिखा है कि सरकारी नीति का सामान्य उद्देश्य Laissez faire होना चाहिये, तथा इस नीति से प्रत्येक विचलन, जब तक कि यह सामाजिक हितों के दृष्टिकोण से अतिआवश्यक न हो, अवश्य ही बुराई है।"[19]

परन्तु मिल के राज्य हस्तक्षेप के विरोध में उपरोक्त विचारों से यह नहीं समझना चाहिये कि मिल की विचारधारा में सरकारी हस्तक्षेप का कोई स्थान नहीं है। मिल का कहना है कि सरकारी हस्तक्षेपों के कारण मानव के व्यक्तित्व की मृत्यु नहीं होनी चाहिये। मिल तानाशाही प्रकार की सरकार (authoritative form of government) के कट्टर आलोचक थे। उनका कहना है कि हस्तक्षेपों तथा प्रतिरोधों को देश में तानाशाही सरकार की स्थापना को जन्म नहीं देना चाहिये। परन्तु सामाजिक हितों की सुरक्षा के उद्देश्य से—उदाहरणार्थ उपभोक्ताओं को एकाधिकारी उत्पादक के शोषण से मुक्त करने के उद्देश्य से—सरकार मूल्यों के नियमन के रूप में हस्तक्षेप कर सकती है तथा इस प्रकार का हस्तक्षेप सामाजिक कल्याण के हित के दृष्टिकोण से पूर्णतया उचित होगा। इसी प्रकार से शिक्षा का विषय एक ऐसा विषय है जिसको व्यक्तियों पर नहीं छोड़ा जा सकता है तथा सर-

कार को चाहिये कि समाज मे शिक्षा की उचित व्यवस्था करे। समाज मे कमजोर व्यक्तियों तथा विवाहित स्त्रियों के अधिकारों व हितो को सुरक्षित रखना भी सरकार का परम कर्तव्य है इसके अतिरिक्त प्रकाश-स्तम्भो का निर्माण करना, अस्पतालो की व्यवस्था करना, तथा अन्य लोकसेवाये प्रदान करना भी सरकार का कर्तव्य है। सक्षेप मे इस क्षेत्र में मिल के विचार वर्तमान शताब्दी के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कीन्स के विचारो से कुछ-कुछ मिलते जुलते है। मिल के लिये सरकारी हस्तक्षेप समाज सुरक्षा तथा कमजोर को शक्तिशाली के अनुचित व्यावहार से बचाने का साधन है।

मिल के आर्थिक विचारो के उपरोक्त विवेचन से यह भली प्रकार स्पष्ट है कि मिल ने अपने पूर्वाधिकारियो के विचारों की नई परिस्थिति के अनुकूल पुनः व्याख्या करके उनको नई शक्ति प्रदान की। परन्तु मिल ने स्मिथ, माल्थस व रिकार्डो के आर्थिक विचारो की केवल पुनः व्याख्या ही नही की बल्कि उनमे महत्वपूर्ण सुधार भी किये। स्मिथ की **Laissez faire laissez passer** आर्थिक नीति के समर्थक होते हुये भी वे सरकारी हस्क्षेप के स्मिथ के समान कट्टर विरोधी न थे। सामाजिक हित मिल के लिये अन्य सभी हितो से अधिक प्रिय थे तथा सरकारी हस्तक्षेप की वांच्छनीयता को वे इसी कसोटी पर परखते थे। मिल अन्धविश्वासी नही थे। उनका कहना था कि यदि सरकारी हस्तक्षेप के कारण व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सुरक्षित रहती है तो सरकारी हस्तक्षेप समाज के लिये हानिकारक न बन कर हितकारी सिद्ध होगा। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मिल ने संस्थापित अर्थशास्त्र की कमियों को पूरा करके इसको १६ वी शताब्दी के विचित्र वातावरण मे नया जीवन प्रदान किया।

अब तक हमने मिल के योगदानों का अर्थशास्त्र सस्थापक के रूप मे अध्ययन किया है। यद्यपि अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **Principles of Political Economy** को लिखने के समय तक मिल के आर्थिक विचार अपने पूर्वाधिकारी स्मिथ, माल्थस व रिकार्डो के आर्थिक विचारो की ही एक लड़ी थे परन्तु तत्पश्चात् मिलके आर्थिक विचार समाजवाद की ओर झुक गये थे। यहाँ इन विचारो की एक झाकी का अध्ययन करना उपयुक्त होगा। यद्यपि मिल प्रतियोगिता की अच्छाई मे विश्वास रखते थे परन्तु उन्होंने अन्तिम वर्षों में कुछ ऐसे विचारो का प्रतिपादन किया कि समाजवाद को उनके विचारों से काफी शक्ति मिली है। मिल ने सरकारी हस्तक्षेप का समर्थन करने के अतिरिक्त निम्नलिखित चार सुधारों का सुझाव दिया तथा इन विचारो को समाजवादी आर्थिक विचारो की आधारशिला कहा जा सकता है।

(१) प्रथम, मिल ने वेतन प्रणाली को रद्द करने का सुझाव दिया है। वेतन प्रणाली के स्थान पर वे मजदूरों के एक ऐसे संघ के पक्ष में थे जहाँ मजदूर एक साथ मिलकर उत्पादन करेंगे तथा जहाँ पूंजीपति व श्रमिक का अन्तर समाप्त होकर सभी श्रमिक स्वयं अपने पूंजीपति होगे तथा उत्पादन का कार्य श्रमिक के प्रतिनिधि की देखरेख मे होगा।

(२) दूसरे, मिलने उत्पादन क्षेत्र मे प्रतियोगी प्रणाली के स्थान पर सहकारी प्रणाली का स्थानापन्न करने का सुझाव दिया है मिल के अनुसार सहकारिता पालन करने के लिये सबसे उत्तम आदर्श है।

(३) तीसरे, मिल कर के द्वारा लगान के सामाजीकरण के भारी समर्थक है।

(४) चौथे, मिल ने समाज मे आर्थिक असमानताओं को कम करने के उद्देश्य से रिक्थ कर (Inheritance tax) तथा रिक्थ विधान (Inheritance Law) मे उचित सुधार करने का सुझाव दिया है। रिक्थ विधान की आलोचना करते हुये मिल ने अपनी पुस्तक **Principles of Political Economy** मे निम्न प्रकार लिखा है —

"Were I framing a code of laws according to what seems to me best in its-lf, without regard to existing opinions and sentiments, I should prefer to restrict, not what any one might bequeath, but what any one should be permitted to acquire by bequest or inheri tance. Each person should have power to dispose by will of his or her whole property but not to lavish it in enriching some one individual beyond a certain maximum."

क्या कोई समाजवादी अपने विचारो मे मिल से अधिक दृढ़ हो सकता है ?

क्या मिल समाजवादी थे ?

यद्यपि मिल के विचार समाजवादी विचारों के अनुकूल हो गये थे परन्तु इससे इस निष्कर्ष पर पहुँचना कि मिल समाजवादी थे, एक भारी भूल होगी। मिल की आर्थिक विचारधारा मे व्यक्ति तथा उसके व्यक्तित्व का एक महान स्थान था। वे लोकतन्त्र के भारी समर्थक थे तथा तानाशाही सरकार के कट्टर आलोचक थे। समाजवाद उद्योगो के राष्ट्रीयकरण की आधारशिला पर आधारित है। परन्तु मिल की विचारधारा मे राष्ट्रीयकरण का कोई स्थान नही है। क्या मिल ने एक से अधिक बार नहीं कहा है कि व्यक्तिगत उत्पादन प्रणाली के द्वारा उत्पादन सस्ता तथा अच्छा होता है ? इसके अतिरिक्त समाजवाद मे राज्य तथा नौकरशाही का बोलबाला होता है। मिल नौकरशाही के पक्के विरोधी थे। समाजवाद मे **Laissez faire** तथा पूर्ण प्रतियोगिता को कोई स्थान प्राप्त नही होता है परन्तु, मिल सस्थापक सम्प्रदाय की परम्पराओ के अनुसार **Laissez faire** तथा पूर्ण प्रतियोगता के भारी समर्थक थे। पूर्ण प्रतियोगिता का समर्थन करते हुये उन्होने लिखा है कि "प्रतियोगिता पर प्रत्येक प्रतिबन्ध एक बुराई है तथा इसके विस्तार करने का प्रत्येक उपाय सदा एक अच्छाई है"। इस विषय पर समाजवादियो की कड़ी आलोचना करते हुये मिल ने लिखा है कि मै "उन (समाजवादियो) के इस विचार का कड़ा विरोध करता हूं कि प्रतियोगिता एक बुराई है। वे इस सत्य को भूल जाते हैं कि प्रतियोगिता के

फलस्वरूप ही उपभोग वस्तुयें कम कीमतों पर प्राप्त होती हैं। वे यह भूल जाते है कि प्रतियोगिता की अनुपस्थिति में एकाधिकारी विद्यमान होगा तथा एकाधिकारी चाहे वह किसी प्रकार का भी क्यों न हो समाज के लिये घातक होता है।" परन्तु मिल का कहना था कि श्रमिकों में अधिक प्रतियोगिता नही होनी चाहिये क्योंकि ऐसा होने से मजदूरी दर में कमी हो जाती है।

इससे यह भली प्रकार विदित है मिल अन्य कुछ भी क्यो न हो, परन्तु वे समाजवादी कदापि नही थे। मिल के लिये समाजवाद एक धर्म नही था जिसके वे समाजवादियों के समान उपासक होते। यद्यपि मिल श्रमिकों के प्रति सहानभुति रखते थे परन्तु उनको समाजवादी कहना उनके विचारो के प्रति अज्ञानता का ही प्रतीक, नही है बल्कि उनके साथ एक महान अन्याय भी करना है।

सारांश

जॉन स्टुग्रार्ट मिल १६ वी शताब्दी के महान अर्थशास्त्री थे। निसन्देह वे प्रथम श्रेणी के अर्थशास्त्री थे। यद्यपि उनके विचारों में स्मिथ, माल्थस व रिकार्डो के समान मौलिकता की उतनी प्रचुरता नहीं है परन्तु फिर भी उन्होंने अपने पूर्वाधिकारियों के विचारों की नई रोशनी में पुन: व्याख्या करके इनको जीवित रखने में महान योगदान दिया है। उन्होने लगान का सामाजीकरण करने तथा रिक्थ कर लगाने का सुझाव देकर भविष्य की आर्थिक विचारधारा में भी अपने लिये एक स्थान प्राप्त किया है।

विशेष अध्ययन सूची

1. Ruth Borchard : John Stuart Mill.
2. J. S. M. Bain : John Stuart Mill, a Criticism.
3. W. L. Courtney : Life of John Stuart Mill.
4. R. F. Harrod : John Stuart Mill and Mrs. Taylor.
5. O. H. Taylor : A History of Economic Thought, Chapters 9 and 10.
6. J. F. Bell : A History of Economic Thought, Chapter 13.
7. L H. Haney : History of Economic Thought, Chapter XXIII.
8. J. A. Schumpter : History of Economic Analysis, Part III, Chapter 5.
9. Leo Rogin : The Meaning and Validity of Economic Theory, Chapter 8.
10. Gide and Rist : A History of Economic Doctrines, Book III, Chapter II.

11. Eric Roll · A History of Economic Thought, Chapter VII.
12. Robert Lekachman : A History of Economic Ideas, Chapter 8.
13. J. S Mill ; Principles of Political Economy.
14. S H Patterson . Readings in the History of Economic Thought, Part III, 5.

प्रश्न

1. Indicate the chief contributions of John Stuart Mill to economic thought

(अलीगढ़, १९५७)

2 Show how far John Stuart Mill was a socialist

(अलीगढ़, १९५६)

3. Discuss J. S. Mill's attempt at compromise in economic theory and practice.

(कर्नाटक, १९५६)

4. State the principal tenets of the classical system as enunciated by J. S. Mill.

(कर्नाटक १९५८)

5. Analyse Mill's concept of stationary state.

(कर्नाटक, १९५८)

6. Examine critically J S Mill's views on the distribution of wealth.

(कर्नाटक, १९५६)

7. "John Stuart Mill's *Principles of Political Economy* heralds the end of one and the beginning of another era in the development of classical Economics." Comment.

(कर्नाटक, १९५७)

8 Show how Mill's writings perfected classical economics and at the same time made it vulnerable to attack from many sides.

(राजस्थान, १९४९)

9. Determine the place of John Stuart Mill in the history of economic thought.

(राजस्थान, १९५३)

10. "With J S. Mill Classical Economics may be said in some way to have attained its perfection, and with him begins its decay."

Discuss fully the reasons for the above statement.

(आगरा, १९४७; १९५८; १९६०; राजस्थान, १९५५; १९५७; १९५८)

11. "With Mill the older doctrines found new expression in language scientific in its precision and classical in its beauty." Comment.

(राजस्थान, १९५६; आगरा, १९५८)

12. Critically examine Mill's Individualist-Socialist programme.

(आगरा, १९४६)

13. "Mill's book exhibits the classical doctrines in their final crystalline form, but already they were showing signs of dissolving in the new current." (Gide and Rist)

Explain fully the above statament.

(आगरा, १९५०)

14. "Mill's *Principles of Political Economy* was pre-eminently a transitional work summing up and expounding what had been done before and opening the way for the new developments of the future." (Scott)

Explain carefully the above statement

(आगरा, १९५२; १९६२)

15. "Estimates of Mill's position have tended to two extremes. To many generations of students, his principles were the indisputed Bible of economic doctrines... ... Two influences helped to undermine that authority." (Eric Roll) Comment.

(आगरा, १९५५)

तृतीय खण्ड

संस्थापित अर्थशास्त्र के आलोचक

(Critics of Classical Economics)

अध्याय १५

जीन चार्ल्स ल्योनार्ड सिसमोन्डी

(Jean Charles Leonard Sismondi)

फ्रान्सीसी अर्थशास्त्री जीन चार्ल्स ल्योनार्ड सिसमोन्डी[1] का आर्थिक विचारों के इतिहास में कई कारणो से विशेष महत्व है। सिसमोन्डी एक ऐसे विचित्र अर्थशास्त्री हैं जो यद्यपि अपने प्रारम्भिक जीवन काल मे संस्थापित अर्थशास्त्र के समर्थक तथा स्मिथ व उनके अनुयायियों के आर्थिक विचारो के प्रशंसक थे परन्तु जिन्होंने अपना जीवन सस्थापित अर्थशास्त्र के प्रतिपक्षी के रूप में समाप्त किया। परन्तु उनके सस्थापित आर्थिक सिद्धान्तो का विरोधी होते हुये भी उनको समाजवादी नहीं कहा जा सकता है यद्यपि कुछ बातो के आधार पर जिनका आगे अध्ययन किया गया है उनको समाजवाद का जन्मदाता कहा जा सकता है।

---

1. जीन चार्ल्स ल्योनार्ड सिसमोन्डी (१७७३ ई०—१८४२ई०) का जन्म जनेवा में १७७३ ई० मे हुआ था। उनके पूर्वज इटली के रहने वाले थे जो १६ वी शताब्दी मे इटली को छोड फ्रान्स मे आकर बस गये थे तथा Revocation of the Edict of Nantes की घटना के पश्चात् फ्रान्स छोडकर जनेवा चले आये थे। यही पर सिसमोन्डी का जन्म हुआ था। सिसमोन्डी की प्रमुख पुस्तकें इतिहास के क्षेत्र मे हैं तथा इनमे फ्रान्स तथा इटली के गणतन्त्र राज्यो के इतिहासो मे उनको काफी प्रसिद्धि प्राप्त हुई थी। परन्तु एतिहासिक पुस्तकों के अतिरिक्त उन्होने अर्थशास्त्र पर भी दो प्रमुख पुस्तकें लिखी हैं। उनकी प्रथम पुस्तक **La Richesse Commerciale** १८०३ ई० मे प्रकाशित हुई थी। तत्पश्चात् १६ वर्ष पश्चात् १८१६ ई० में उनकी दूसरी पुस्तक **Nouveaux Principles de l' Economie politique** प्रकाशित हुई थी। प्रथम पुस्तक मे वे एडम स्मिथ के विश्वासनीय शिष्य तथा कट्टर स्वतन्त्र व्यापारी व सभी आर्थिक प्रतिबन्धो के विरोधी थे। इस पुस्तक मे सिसमोन्डी के विचारानुसार **Laissez faire** ही सर्वोत्तम आर्थिक नीति है। व्यक्ति अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर जो कार्य करता है वह साथ ही समाज के लिये भी हितकारी होता है।

परन्तु १८१६ ई० मे दूसरी पुस्तक लिखने के पूर्व १६ वर्ष के समय मे सिसमोन्डी ने ऐतिहासिक अध्ययन तथा देश व विदेशो का भ्रमण किया

विरोध का कारण—१६ वीं शताब्दी की प्रतिकूल आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियाँ

एडम स्मिथ ने जिस सम्प्रदाय का आरम्भ १७७६ ई० में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **Wealth of Nations** लिख कर किया था तथा जिसका माल्थस, रिकार्डो, जेम्स मिल, सीनियर आदि अर्थशास्त्रियों ने इंगलैंड में तथा जे० बी० से ने फ्रान्स में प्रचार किया था, वह सम्प्रदाय १८ वीं शताब्दी के अन्त तक विश्व प्रसिद्धि को प्राप्त कर चुका था। संस्थापित आर्थिक सिद्धान्त समस्त संसार में फैल गये थे।

परन्तु इससे यह कदापि नहीं समझ लेना चाहिये कि संस्थापित आर्थिक सिद्धान्त, जिनका संगठित रूप में सर्वप्रथम प्रतिपादन स्मिथ ने किया था, आलोचनाओं से मुक्त थे। वस्तुतः **Wealth of Nations** के प्रकाशन के थोड़े ही समय पश्चात् स्मिथ के परम मित्र व सहपाठी डेविड ह्यूम ने स्मिथ के लगान व मूल्य सिद्धान्तों के प्रति असन्तोष प्रकट किया था। इसी प्रकार जे० बी० से द्वारा की गई एडम स्मिथ के विचारों की व्याख्या में भी आलोचनाओं का अंश है। जेम्स मैतलैंड, (James Maitland) (१७५६ ई०—१८३८ ई०), जो लार्ड लाडरडेल के नाम से प्रसिद्ध हैं, ने १८०४ ई० में प्रकाशित अपनी पुस्तक **'An Enquiry into the Nature and Origin of Public Wealth'** में स्मिथ के विचारों की आलोचना की थी। संस्थापित अर्थशास्त्र की सबसे अधिक कटु आलोचना यह थी कि यह व्यक्तिवाद व भौतिकता पर आधारित है तथा इसमें नैतिकता को कोई स्थान प्राप्त नहीं है। संस्थापित अर्थशास्त्र की एकमात्र विषय सामग्री धन की प्राप्ति व आर्थिक मनुष्य है जो किसी एक राष्ट्र का नागरिक नहीं बल्कि सारे संसार का नागरिक है।

राष्ट्रवादी आलोचकों ने संस्थापित अर्थशास्त्र की आलोचना करते हुए कहा कि अर्थशास्त्र में राज्य तथा राष्ट्रीय शक्तियों के आर्थिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को बिल्कुल भुला दिया गया है। परन्तु आलोचनाओं का अर्थ यह नहीं है कि समय संस्थापित आर्थिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल था। कौनसी ऐसी पुस्तक है, कौनसा ऐसा महापुरुष है जिसकी आलोचना नहीं हुई है? व्यर्थ विचार अथवा

था। इटली, फ्रान्स तथा स्वीटजरलैंड में भ्रमण करने के कारण १६ वीं शताब्दी के प्रथम आर्थिक संकटों के वे स्वयं दर्शक थे। इन संकटों के फलस्वरूप इंगलैंड, बेलजियम तथा जर्मनी की अर्थव्यवस्थाओं को भी गहरा धक्का पहुँचा था तथा इसका सिसमोन्डी पर गहरा प्रभाव पड़ा। फलस्वरूप दूसरी पुस्तक लिखने के समय यद्यपि सिसमान्डी एडम स्मिथ के प्रति आदर की भावना रखते थे परन्तु पहले के समान अब वे स्मिथ के विचारों के अन्धविश्वासी समर्थक न थे। माल्थस के समान, जिसके सिसमोन्डी अब प्रशंसक थे, उनका भी यह कहना था कि संस्थापित आर्थिक सिद्धान्तों का व्यावहारिक जीवन की समस्याओं से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था।

व्यक्ति आलोचनाओं का विषय हो ही कैसे सकता है। इन थोडी बहुत आलोचनाओं को छोड़कर, यह कहा जा सकता है कि १८ वी शताब्दी की अन्तिम तीन दशाब्दियाँ तथा १६ वी शताब्दी की प्रथम तीन दशाब्दियाँ एडम स्मिथ तथा उनके समर्थको की दशाब्दियाँ थी, तथा स्मिथ के विचारो की आलोचना करना एक कठिन कार्य था।

परन्तु मानव समाज गतिशील है। Wealth of Nations के १७७६ ई० मे प्रकाशित होने के पश्चात् लगभग पाँच दशाब्दियो, विशेष रूप से १६ वीं शताब्दी के प्रथम तीस वर्षो मे आर्थिक ससार मे भारी परिवर्तन हो गये थे। यह सस्थापित अर्थशास्त्र के यौवन का युग था। समस्त ससार मे आर्थिक उदारतावाद (Economic Liberalism) तथा अबन्ध नीति (Laissez faire) का बोलबाला था। इगलैड की आर्थिक नीतियाँ तो स्मिथ के विचारो पर आधारित थी ही परन्तु फ्रान्स मे भी १८ वी शताब्दी की समाप्ति के कुछ वर्ष पूर्व निगमवाद (Corporatism) का अन्त हो गया था। पूर्ण प्रतियोगिता विश्वव्यापी आर्थिक विचारधारा बन गई थी। ससद द्वारा १८१० ई० मे नियुक्त आयोग की रिपोर्ट का निम्नलिखित वाक्य उस समय के अँगरेज विधायक (Legislator) के विधान सभा द्वारा हस्तक्षेप के सम्बन्ध मे विचारो को भली प्रकार स्पष्ट करता है।

"No interference of the legislature with the freedom of tade or with the perfect liberty of every individual to dispose of his time and of his labour in the way and on the terms which he may judge most conducive to his own interest, can take place without violating general principles of the first importance to the prosperity and happiness of the community."[2]

उपरोक्त वाक्य से यह विदित है कि उस समय प्रचलित विचारधारा के अनुसार प्रत्येक एक साधारण अँग्रेज विधायक हस्तक्षेप को बुराई तथा व्यापार की स्वतन्त्रता व सामान्य रूप से **laissez faire** नीति को अच्छाई समझता था।

आर्थिक उदारतावाद के इस वातावरण मे निर्माताओं को नया उत्साह मिलने के फलस्वरूप नये नये उद्योगो की स्थापना हुई तथा आविष्कारो के प्रयोग के कारण इग्लैड मे औद्योगिक समृद्धि के नये युग का निर्माण हुआ। इलैण्ड मे बरमिंघम, मेनचेस्टर, ग्लासगो तथा फ्रास मे सीदन (Sedan), लाईल (Lille) मलहाउस (Mulhouse) इत्यादि विश्व प्रसिद्ध के औद्योगिक केन्द्र बन गये।

परन्तु इस सुन्दर चित्र तथा आशाजनक दृश्य के साथ साथ दो अन्य नई

घटनाएँ भी विद्यमान हुई जिनको ओर सिसमाण्डी तथा अन्य लेखकों व समाज सुधारकों का ध्यान आकर्षित हुआ। निःसन्देह जबकि एक ओर तो औद्योगिक विकास अधिक उत्पादन के दृष्टिकोण से इंग्लैंड तथा फ्रान्स के लिए वरदान सिद्ध हुआ था, परन्तु दूसरी ओर यह अभिशाप भी था। इस औद्योगीकरण के दो ऐसे बुरे परिणाम हुये कि पुरानी आर्थिक विचारधारा व आर्थिक नीतियों के प्रति अविश्वास की भावना उत्पन्न हो गई।

औद्योगीकरण का प्रथम बुरा परिणाम तो यह हुआ कि मुट्ठी भर चन्द औद्योगिक नगरों मे, जो धन के केन्द्र भी थे, श्रमिक एकाग्र (concentrate) हो गये। इन श्रमिको की आर्थिक व सामाजिक स्थिति बहुत खराब थी। इनको अस्वस्थ्य स्थानो मे रहना पडता था तथा फलस्वरूप गन्दगी व खराब स्वास्थ्य की समस्यायें विद्यमान हो गई थी। गन्दे स्थानों व खराब मकानो में रहने के कारण इन श्रमिकों का मानसिक तथा शारीरिक विकास सम्भव न था। इससे भी अधिक चिन्ताजनक स्थिति तो इस सत्य से विदित होती थी कि एक ओर थोडे से मिल मालिकों व उद्योगपतियों का निवास स्थान विलाओ (Villas) व विस्तृत भवनों मे था तथा दूसरी ओर लाखो मिल मजदूरो को रहने के लिए स्थान प्राप्त न था। एक ओर तो कुछ थोडे मे वे भाग्यशाली व्यक्ति थे जो धनी थे तथा जिनको जीवन मे प्रत्येक इच्छित वस्तु प्राप्त थी परन्तु दूसरी ओर लाखों मजदूरो को दिन भर काम करने के पश्चात पेट भर भोजन भी न मिल पाता था। औद्योगीकरण ने उत्पादन मे तो अवश्य वृद्धि करदी थी परन्तु साथ ही साथ धन व आयों की असमानताओं को जन्म देकर एक नए वर्ग सघर्ष को भी जन्म देने के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर दिया था। एडम स्मिथ व उनके अनुयायीयों के आर्थिक सिद्धान्तो की व्यावहारिकता की परीक्षा का समय समीप आ पहुँचा था तथा दुर्भाग्यवश इस कठिन परीक्षा मे सस्थापित आर्थिक सिद्धान्त उत्तीर्ण न हो सके। मिल मालिकों द्वारा श्रमिकों के होने वाले शोषण तथा औद्योगीकरण के फलस्वरूप बढते हुये उत्पादन के मध्य गरीबी की कीचड मे डूबे हुए लाखों मिल मजदूरो की उपस्थित ने यह सिद्ध कर दिया था कि स्मिथवादी व्यक्तिगत व सामाजिक हितों की समरूपता का विचार एक कोरा भ्रम था।

एडम स्मिथ के शिष्य तथा सस्थापित अर्थशास्त्र के समर्थक फ्रान्सीसी अर्थशास्त्री जे० बी० से, जिन्होंने १८१५ ई० मे इगलैंड का भ्रमण किया था, ने यह घोषित किया था कि परिश्रमी मजदूर को भी दिन भर काम करने के पश्चात इतना कम वेतन मिल पाता है कि उसकी स्वय व उसके परिवार की कुल आधी अथवा तीन चौथाई आवश्यकताओं की पूर्ति ही हो पाती है। आर्थिक उदारतावाद उद्योगपति व मिल मालिको का मित्र व हितकारी था, परन्तु श्रमिको के हितो का यह शत्रु सिद्ध हुआ था।

मिलो मे बच्चो, स्त्रियो व श्रमिको के लिये अस्वस्थ वातावरण मे २० घन्टे प्रतिदिन काम करना एक साधारण बात थी।[3] इंगलैंड मे चिकित्सकीय रिपोर्टों, संसद की अनेक जाँचो, राबर्ट ओइन (Robert Owen) के लेखो तथा संसद मे अन्य सदस्यो के भाषणों से यह भली प्रकार विदित था कि मिलो मे श्रमिको की कार्य दशाये तथा उन की आर्थिक स्थिति चिन्ताजनक थी तथा उन मे शीघ्र व उचित सुधार करने की आवश्यकता थी।

फ्रान्स मे भी परिस्थिति कम चिन्ताजनक नही थी तथा डाक्टर विलिरमी (Dr. Villermi) ने १८४० ई० मे प्रकाशित अपनी **'Tableau de l' Etat physique et moral des ouvriers'** मे फ्रान्स मे मिलो मे काम करने वाले श्रमिको की खराब स्थिति की सविस्तार व्याख्या की थी। इसके अतिरिक्त Industrial Society of Mulhouse द्वारा १८२८ ई० मे प्रकाशित पत्रिका में यह समाचार छापा गया था कि Alsace तथा अन्य औद्योगिक केन्द्रो पर श्रमिको को दिन मे साधारणतया १५ घन्टे काम करना पडता था तथा कभी कभी तो १७ घन्टों तक काम करना भी कोई असाधारण बात न थी।

औद्योगीकरण तथा अबन्ध नीति की दूसरी बुरी घटना आर्थिक सकटो के रूप मे विद्यमान हुई जिस के कारण गरीब मजदूरो को और भी अधिक मुसीबतों का शिकार बनना पड़ा। इगलैंड मे १८१५ ई० के प्रथम आर्थिक सकट के परिणामस्वरूप काफी मजदूर—स्त्री व पुरुष—बेकार हो गये तथा फलस्वरूप उपद्रव होने के कारण काफी जानी व माली नुकसान हुआ। अभी प्रथम आर्थिक सकट के चिन्ह समाप्त भी न हुये थे कि १८१८ ई० में दूसरा वाणिज्य सकट विद्यमान हुआ तथा परिणामस्वरूप देश की अर्थव्यवस्था फिर अस्तव्यस्त हो गई। १८२५ ई० मे हुये तीसरे आर्थिक सकट का आकार पहले दोनो आर्थिक सकटो की अपेक्षा बहुत विस्तृत था तथा इंगलैंड मे लगभग ७० बैंक फैल हो गई थी।

इन आर्थिक घटनाओ ने सभी उन व्यक्तियों, जो आर्थिक समस्याओ पर सोच

---

3. १८३५ ई० मे लिखित Andrew Ure की पुस्तक **Philosophy of Manufactures** मे इगलैंड मे रूई, कपड़ा, वस्त्र, ऊन तथा सिल्क निर्माण उद्योगो म काम करने वाले बच्चो, स्त्रियो व पुरुषो के सम्बन्ध मे आकडे दिये हुये है। इन आकडों के अनुसार ११ वर्ष की आयु से कम के बालक व बालिकाओं की सख्या क्रमश ४८०० तथा ५३०८ थी; ११ वर्ष से लेकर १८ वर्ष की आयु के बीच क्रमश: सख्या ६७,००० तथा ८६००० थी। १८ वर्ष से अधिक आयु के पुरुषों व स्त्रियो की सख्या क्रमश: ८८००० तथा १०२,००० थी। इस प्रकार १६०,००० बालक व पुरुष तथा १६६,००० बालिकाये व स्त्रियाँ मिलों मे काम करती थी। (Taken from Gide & Rist: **A History of Economic Doctrines**, footnote P. 185

सकते थे, का ध्यान आकर्षित किया। विचारकों व लेखकों ने एडम स्मिथ के व्यक्तिगत स्वार्थ तथा समाजिक हितों के मध्य प्राकृतिक समरूपता के विचार की कड़ी आलोचना की तथा इस को काल्पनिक घोषित किया। ऐसे ही लेखकों में सिसमोन्डी भी थे जिन्होंने राजनैतिक अर्थशास्त्र का अध्ययन आर्थिक संकटों की व्याख्या तथा श्रमिकों की आर्थिक स्थिति में सुधार करने के हेतु किया। सिसमान्डी के आर्थिक विचारों का १९ वीं शताब्दी में आर्थिक नीति पर गहरा प्रभाव पड़ा।

सिसमान्डी के आर्थिक विचार

सिसमान्डी के आर्थिक विचार संस्थापित अर्थशास्त्र की आलोचना हैं। सिसमोन्डी ने एडमस्मिथ व रिकार्डो के आर्थिक सिद्धान्तों की आलोचना करते हुये कहा है कि ये व्यावहारिक जीवन की समस्याओं से सम्बन्धित नहीं है। वे माल्थस के प्रशंसक थे तथा माल्थस के समान उन्होंने भी संस्थापित निगमन रीति की आलोचना की है। सिसमोन्डी के मुख्य आर्थिक विचारों का निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है।

१. अर्थशास्त्र का लक्ष्य तथा अध्ययन रीति

यद्यपि अर्थशास्त्र के क्षेत्र में सिसमोन्डी ने अपना लेखन कार्य १८०३ ई० में एडम स्मिथ के समर्थक के रूप में आरम्भ किया था, परन्तु १८१९ ई० में अपनी दूसरी पुस्तक लिखते समय उन के विचारों में १८१५ ई० के आर्थिक संकट के फलस्वरूप भारी परिवर्तन हो गया था। सिसमोन्डी ने इटली, स्वीटजरलैंड तथा फ्रान्स में मिल मजदूरों की दुर्दशा को स्वयं अपनी आँखों से देखा था। १८१९ ई० में उन्होंने इंगलैंड का भ्रमण किया तथा भ्रमण के पश्चात उन के विचारों की दृढ़ता और भी अधिक हो गई। फलस्वरूप अपने इन विचारों को जिन के निष्कर्ष संस्थापित आर्थिक सिद्धान्तों के विपक्ष में थे सिसमोन्डी ने १८१९ ई० में प्रकाशित अपनी पुस्तक **Nouveaux Principles d economie politique** में व्यक्त किया। इस पुस्तक से वे एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री बन गये। १८०३ ई० में प्रकाशित **La Richesse Commerciale** पुस्तक का लेखक सिसमोन्डी १८१९ ई० में प्रकाशित **Nouveaux Principles of economie politique** पुस्तक के लेखक सिसमोन्डी से बिल्कुल भिन्न है। दोनों पुस्तकों का लेखक एक ही व्यक्ति होते हुये भी, दोनों पुस्तक इस सत्य को स्पष्ट करती है कि आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन होने पर अर्थशास्त्री के आर्थिक विचारों में भी आवश्यक रूप से परिवर्तन हो जाता है क्योंकि सभी व्यक्तियों के समान अर्थशास्त्री भी एक व्यक्ति है तथा अपने चारों ओर के वातावरण से प्रभावित होता है।

सिसमोन्डी का विरोध संस्थापित राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों के विरुद्ध न था। जहाँ तक सिद्धान्तों का प्रश्न था उन्होंने अपने आप को एडम स्मिथ

का शिष्य घोषित किया था। परन्तु सस्थापित राजनीतिक अर्थशास्त्र के लक्ष्य, रीति तथा निष्कर्षो मे वे सहमत न थे।

राजनीतिक अर्थशास्त्र के लक्ष्य के विषय पर उन का यह कहना था कि एडम स्मिथ ने राजनैतिक अर्थशास्त्र को धन मात्र का अध्ययन बना कर बड़ी भूल की थी। धन की परमवृद्धि (maximisation of wealth) को आर्थिक क्रियाओ का लक्ष्य निर्धारित करने के कारण शोषण व वर्ग सघर्ष की जटिल सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हो गई थी। सिसमोन्डी का कहना था, कि यद्यपि मानव सुख की प्राप्ति के लिये समाज मे धन की परम वृद्धि होना आवश्यक थी परन्तु इस के साथ साथ इस अधिक धन का समाज मे समानता के साथ वितरण होना भी समान आवश्यक था। धन की परम वृद्धि की वाच्छनीयता को सिद्ध करने के लिये यह सिद्ध करना आवश्यक था कि धन की परम वृद्धि के फलस्वरूप समाज के सुख अथवा कल्याण मे भी वृद्धि हुई है। सिसमोन्डी का कहना था कि यदि औद्योगीकरण तथा अबन्ध नीति (laissez faire) के फलस्वरूप धन की परम वृद्धि के साथ साथ समाज के अधिकाश लोगों की आर्थिक स्थिति सुधरने के स्थान पर अधिक खराब होती है तो इस मे निजी स्वार्थ व सामाजिक हितो की समरूपता सिद्ध नही होती है। सिसमोन्डी ने यह बताया कि स्मिथ की पुस्तक व विचार यद्यपि उस महान लेखक के समय मे उपयुक्त थे परन्तु १७७६ ई० मे पुस्तक लिखने के पश्चात आर्थिक ससार मे महत्व पूर्ण परिवर्तन हो जाने के कारण एडमस्मिथ के आर्थिक सिद्धान्त लगभग ५० वर्ष पश्चात १६ वी शताब्दी मे लागू नही हो सकते थे। सिसमोन्डी ने स्वय यह अनुभव किया था कि उत्पादन मे वृद्धि हो जाने पर भी आर्थिक समृद्धि का कहीं चिन्ह नही था क्योंकि किसी भी उस देश को, चाहे वह कितना भी धनी क्यो न हो, जिस मे लाखो व्यक्तियो को जीवन की न्यूनतम आवश्यक उपभोग वस्तुएँ भी प्राप्त नही होपाती है, आर्थिक दृष्टिकोण से कदापि सौभाग्यशाली (prosperous) नही कहा जा सकता है। यही स्थिति सिसमोन्डी के समय मे १८१८ ई० के लगभग इगलैंड, फ्रान्स, इटली तथा यूरोप के अन्य देशो की थी।

सिसमोन्डी ने एडमस्मिथ तथा अन्य अर्थशास्त्र संस्थापको के इस विचार की कडी आलोचना की कि अर्थशास्त्र धन का विज्ञान है तथा आर्थिक क्रियाओ का एकमात्र लक्ष्य धन की परम वृद्धि है। एडमस्मिथ की विचारधारा मे धन को इतना अधिक महत्व दिया गया था कि मनुष्य का महत्व धन के पश्चात था। यह स्मिथ की पुस्तक के शीर्षक **The Wealth of Nations** से भली प्रकार स्पष्ट है क्योंकि Wealth शब्द को प्रथम स्थान प्राप्त है तथा Nations का स्थान इस के पश्चात है। इस का अर्थ करीब करीब यही है कि व्यक्ति धन के लिये है धन व्यक्ति के लिये नहीं है। स्मिथ का विश्वास था कि समाज मे अधिक धन की उत्पत्ति अधिक सामाजिक समृद्धि का प्रतीक थी। सिसमोन्डी ने इस विचारधारा की आलोचना की

तथा यह व्यक्त किया कि अर्थशास्त्र का लक्ष्य धन की परम वृद्धि न हो कर मानव सुख की परम वृद्धि होना चाहिये।[4] अर्थशास्त्र का परम उद्देश्य तथा विषय सामग्री मानव कल्याण होना चाहिये। प्रत्येक आर्थिक क्रिया की वाञ्छनीयता को निर्धारित करते समय इस क्रिया के फलस्वरूप मानव कल्याण पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना आवश्यक है। यदि किसी विशेष आर्थिक क्रिया का मानव कल्याण पर घातक प्रभाव पड़ता है तो वह क्रिया व्यक्तिगत लाभ के दृष्टिकोण से कितनी भी अधिक लाभप्रद क्यों न हो समाज कल्याण के दृष्टिकोण से कभी वाञ्छनीय नहीं हो सकती है। उदाहरणार्थ मदिरा का उत्पादन निजी स्वार्थ के दृष्टिकोण से कितना भी अधिक लाभप्रद क्यों न हो मानव आर्थिक कल्याण के दृष्टिकोण से हानिकारक है क्योंकि मदिरा के उपभोग से श्रमिकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है तथा उन की कार्यक्षमता में कमी होने के कारण राष्ट्रीय उत्पादन पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

संक्षेप में सिसमोन्डी ने स्मिथवादी व्यक्तिगत स्वार्थ तथा मानव कल्याण की समरूपता के विचार को गलत बताया तथा अर्थशास्त्र की परिभाषा में सुधार करके यह घोषित किया कि राजनीतिक अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिस की विषय सामग्री मानव सुख की परम वृद्धि करना है। ऐसा कहना एक महान योगदान से कम न था क्योंकि इस से अर्थशास्त्र विज्ञान को एक नई शक्ति प्राप्त हुई तथा आर्थिक क्रियाओं में नैतिकता को भी महत्व प्राप्त हुआ।

इसके अतिरिक्त जब कि एडम स्मिथ ने उत्पादन को ही महत्व दिया था सिसमोन्डी के विचारानुसार वितरण की समस्या अन्य सभी आर्थिक समस्याओं से अधिक महत्वपूर्ण थी। सामाजिक न्याय के अध्ययन में वितरण के अध्ययन का विशेष महत्व है। आश्चर्य की बात है कि इस सम्बन्ध में सिसमोन्डी व रिकार्डो में एकता है क्योंकि रिकार्डो के लिये भी वितरण की समस्या अन्य समस्याओं की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण थी। परन्तु सिसमोन्डी रिकार्डो का निगमन रीति (Abstract Method) के आलोचक थे। सिसमोन्डी का कहना था कि अर्थशास्त्र सम्थापकों की यह भारी भूल थी कि वे कुछ सामान्य नियमों को सत्य विचार कर इन को सभी स्थितियों में लागू करते थे। अर्थशास्त्र के नियम अटल नहीं है। प्रत्येक समाज की अपनी-अपनी विचित्र स्थिति व समस्याएँ होती है जिन का अध्ययन करना आवश्यक है। रिकार्डो की निगमन रीति की आलोचना करके उन्होंने आगमन रीति का समर्थन किया। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि सिसमोन्डी ने इतिहासवादी सम्प्रदाय (histor cal school) का सर्व प्रथम सस्थापन किया।

स्मिथ तथा बैन्थम के आशावाद के विपरीत सिसमोन्डी ने दृढता के साथ

---

4 The aim of economics should not be the maximisation of wealth but the maximisation of human happiness.

यह व्यक्त किया कि पूँजीवाद में निजी व सामाजिक हितों के बीच कोई तालमेल नहीं होता है तथा बहुधा जो आर्थिक क्रिया निजि हित की दृष्टि से लाभप्रद होती है सामाजिक हितों—समाज कल्याण—की दृष्टि से हानिकारक सिद्ध होती है। सिसमोण्डी ने यह घोषित किया कि पूँजीवाद अथवा स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था मे धनी तथा निर्धन, पूँजीपति तथा श्रमिक दो भिन्न सामाजिक वर्ग होते हैं जिन के हित एक दूसरे से बिल्कुल विपरीत होते है तथा जिन के मध्य एकता होने के स्थान पर सदा वर्ग संघर्ष विद्यमान रहता है। श्रमिको का पूँजीपतियों के द्वारा शोषण होना तो पूँजीवाद की एक विशेषता है। वास्तव मे यह कहा जा सकता है कि सिसमोन्डी के विचार मार्क्स के विचारो से मिलते जुलते हैं।[5] सिसमोन्डी ने यह बताया कि किस प्रकार बड़े-बड़े उद्योगो मे काम करने के कारण श्रमिक के अपनी भूमि व सम्पत्ति से जुदा हो जाने के कारण समाज मे सम्पत्ति स्वामी तथा गरीबो (proletariats) की गम्भीर समस्या उत्पन्न हो जाती है।

मशीन सम्बन्धी विचार

एडम स्मिथ, रिकार्डो तथा सस्थापक सम्प्रदाय के अन्य लेखक उत्पादन क्षेत्र में मशीनों के प्रयोग को लाभदायक विचारते थे।[6] उन का विचार था कि मशीनों के प्रयोग के कारण उत्पादन व्यय मे कमी हो जाने से वस्तुओं के मूल्यों में कमी हो जाती है। ऐसा होने से इन वस्तुओं की माँग मे वृद्धि होने के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं की माँग भी उत्पन्न होती है क्योंकि मशीनो द्वारा निर्मित वस्तुओं की कीमतों मे कमी हो जाने के कारण उपभोक्ताओं की आय मे वृद्धि हो जाती है। सिसमोण्डी का कहना है कि इस कथन में वास्तविकता का भारी अभाव है। मशीनो के प्रयोग का तत्कालीन प्रभाव कुछ श्रमिकों को बेकार तथा अन्यो के मध्य प्रतियोगिता में वृद्धि करके मजदूरों की वेतन दरो मे कमी करना है। परिणामस्वरूप उपभोग तथा माँग मे कमी हो जाती है तथा अत्युत्पादन के आर्थिक सकट की समस्या आवश्यक रूप से उत्पन्न हो जाती है। सिसमोण्डी का कहना है कि मशीनो का प्रयोग केवल उसी अवस्था मे लाभप्रद सिद्ध हो सकता है जब कि एक उद्योग से मशीनो के प्रयोग के कारण निकाले गये श्रमिको को अन्य उद्योगों मे रोजगार प्राप्त हो सकता है। काफी श्रमिकों के बेकार हो जाने के अतिरिक्त सिसमोन्डी का कहना है कि जिन श्रमिको को काम प्राप्त होता है उन को मशीनो के प्रयोग के कारण हुये लाभो का पूरा हिस्सा प्राप्त नही होता है। संसारिक समाज मे जहाँ पर अत्यधिक जनसख्या के कारण श्रमिकों

---

5. मार्क्स व एंगिल्स ने अपनी पुस्तक **Communist Manifesto** में सिसमोन्डी के ऋण को स्वीकार किया है।
6. रिकार्डो ने अपनी पुस्तक के तीसरे सस्करण मे यह भय प्रकट किया था कि मशीनो के फलस्वरूप श्रमिको के हितो को हानि हो सकती है।

में सीमित रोजगार अवसरों के लिये प्रतियोगिता होती है, मशीनों के प्रयोग के कारण श्रमिकों के मध्य प्रतियोगिता और भी अधिक हो जाती है तथा फलस्वरूप वेतन दरों में कमी व काम करने के घन्टों मे वृद्धि हो जाती है। मशीन श्रमिकों की शत्रु है। सिसमोन्डी ने स्वयं देखा था कि किस प्रकार अधिक घन्टे प्रति दिन अस्वस्थ्य वातावरण में काम करने के कारण छोटी आयु के बालक तपेदिक के भयंकर रोग से ग्रस्त होने के कारण समय के पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे। समाज के लिये मशीनों की बुराई पर प्रकाश डालते हुये सिसमोन्डी ने लिखा है कि यद्यपि साहसियों को मशीनों के प्रयोग के कारण अधिक आय प्राप्त होती है परन्तु उनकी यह अधिक आय मजदूरों के अपहरण का सूचक है। लाभ की प्राप्ति का यह कारण नहीं है कि उद्योग में व्यय से अधिक उत्पादन होता है बल्कि इन के प्राप्त होने का यह कारण है कि श्रमिकों को उन की महनत से कम प्राप्त होता है। इस प्रकार का उद्योग निःसन्देह एक बड़ी बुराई है। सिसमोन्डी के इन प्रसिद्ध कथन में मार्क्स के श्रमिकों को शोषण (Workers' exploitation) तथा बेशी मूल्य (Surplus value) सिद्धान्तों के चिन्ह विद्यमान हैं। इतने से सन्तुष्ट न होते हुये सिसमोन्डी ने लिखा है कि आधुनिक समाज गरीबों का खून चूस कर जीवित रहता है क्योंकि यह उन की महनत के पारितोषिक में से कटौती करता है।[8] इस से भी अधिक प्रभावशाली शब्दों में उन्होंने लिखा है कि आधुनिक समाज में निस्सन्देह गरीबों का अपहरण होता है क्योंकि धनी गरीबों को लूटते हैं। क्या यह सत्य नहीं है कि एक ओर तो धनी भूस्वामी खेती से आय प्राप्त कर इस आय का आनन्द लेते हैं परन्तु दूसरी ओर वह कृषक जिस ने उस आय को खेत पर महनत करके प्राप्त किया है भूखा मरता है?[9]

आर्थिक संकटों के उत्पन्न होने के कारण

सिसमोन्डी १८१५ ई० तथा १८१८ ई० के आर्थिक संकटों के स्वयं दर्शक थे तथा इस कारण उन को संकटों के उत्पन्न होने के कारणों के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष ज्ञान था। उन के अनुसार समाज में कुछ थोड़े से व्यक्तियों के हाथों में अधिकांश धन केन्द्रित हो जाने तथा अधिकांश व्यक्तियों की गरीबी की स्थिति होने के कारण समस्त समय माँग (total effective demand) प्रचलित कीमतों पर उत्पादन की अपेक्षा कम होती है। परिणामस्वरूप कीमतें गिरती हैं, बेकारी उत्पन्न होती है, उपद्रव फैलते हैं तथा अन्त में ये सब तत्व संकट का रूप धारण कर लेते हैं। इसी विचार के आधार पर मार्क्स ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की थी कि पूँजीवादी समाज में आर्थिक संकट अवश्यम्भावी होते हैं।

सिसमोन्डी की सुधार योजना

सिसमोन्डी के मतानुसार समाज की बुराइयों के दो प्रमुख कारण श्रमिकों का सम्पत्ति से अलग होना तथा श्रमिको की आय की अनिश्चितता थे । इस कारण सिसमोन्डी का कहना है कि सरकारी नीतियों का उद्देश्य इन दोनों बुराइयों को दूर करना होना चाहिये । प्रथम समस्या का हल कृषकों को भूमि का स्वामी बनाकर समाज में कृषक सम्पत्ति स्वामी (Peasant Proprietorship) प्रणाली की स्थापना करने में है । सिसमोन्डी का कहना है कि ऐसा करने से श्रम तथा सम्पत्ति को एक साथ किया जा सकेगा । कृषकों के भूमि का स्वामी बन जाने से अनुत्पादक भूस्वामी वर्ग का पतन होगा तथा साथ ही सामन्तवाद का भी अन्त हो जायेगा । दूसरी समस्या का हल उद्योगों को स्वतन्त्र श्रमिको के हाथों में देकर हो सकता है । सिसमोन्डी का कहना है कि स्वतन्त्र कारीगरों द्वारा उद्योगों को चलाये जाने के कारण समाज में श्रमिकों व उद्योगपतियों के दो भिन्न विरोधी वर्गों की समस्या उत्पन्न नहीं होगी । उद्योगों के क्षेत्र में स्वतन्त्र कारीगर पद्धति के पक्ष में तर्क देते हुये सिसमोन्डी ने लिखा है कि "मैं नगरों तथा ग्रामों के उद्योगों को एक ऐसे व्यक्ति के हाथों में, जो लाखों व्यक्तियों के ऊपर स्वामित्व करता है, देखने के बजाय, साधारण साधनों वाले अनेकों छोटे-छोटे ऐसे उद्योगपतियों के हाथों में देखने का इच्छुक हूँ जो स्वतन्त्र कारीगर हों । मैं उस अवसर की प्रतीक्षा में हूँ कि जब श्रमिक का भी स्वामी के साथ उद्योग में हिस्सा होगा जिसमें कि वर्तमान के समान विवाह होने के पश्चात् उसको यह विश्वास हो सके कि उद्योग म हिस्सा होने के कारण उसको भविष्य में वृद्ध अवस्था में अनिश्चितता का सामना नहीं करना पड़ेगा ।"[10]

परन्तु इन सुधारों को व्यावहारिक रूप देने के लिए किन साधनों को अपनाया जाना चाहिये, इस प्रश्न पर सिसमोन्डी के विचार हिचकिचाहटों से पूर्ण हैं । समाजवादियों तथा साम्यवादियों के समान वे व्यक्तिगत सम्पत्ति की संस्था की समाप्ति के पक्ष में नहीं है । यद्यपि वे साम्यवाद के विरोधी हैं, रोबर्ट ओइन, चार्ल्स फोरियर तथा थोम्पसन की कल्पनावादी योजना उनके लिये व्यर्थ है परन्तु उन्होंने अपने स्वयं कोई सुधारों सम्बन्धी सुझाव नहीं दिये हैं । इसका एक कारण यही ज्ञात होता है कि संस्थापक सम्प्रदाय के लेखकों के आर्थिक सिद्धान्तों के आलोचक होते हुये भी वे अपने को समाजवादी कहलाना नहीं चाहते थे तथा एडम स्मिथ की विचारधारा का पूर्णतया खण्डन नहीं करना चाहते थे । सिसमोन्डी का कहना है कि उस समय तक जब तक कि यह सुधार सम्भव न हो सके सरकार बालश्रम (Child Labour) पर रोक लगाकर, सप्ताह में एक दिन की छुट्टी करके तथा काम करने के घन्टों को कम करके श्रमिकों की हालत में कुछ सुधार अवश्य कर सकती है ।

---

10. *Nouveaux Principles*, Vol. II. *pp.* 365 366,

सारांश

सिसमोन्डी का आर्थिक विचारों के इतिहास में नाम सदा अमर रहेगा। वे पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने संस्थापित आर्थिक सिद्धान्तों की आलोचना करने का सफलतापूर्वक साहस किया था। उन्होंने यह अपने अध्ययन तथा अनेक उदाहरणों द्वारा सिद्ध किया कि एडम स्मिथ तथा उनके अनुयायियों की laissez faire नीति सामाजिक हितों के लिये घातक सिद्ध हुई है तथा राज्य को आर्थिक क्षेत्र में, समाज को क्रान्तियों के खराब परिणामों से मुक्त रखने के लिए, हस्तक्षेप करना चाहिये। स्मिथ के समान अर्थशास्त्र को धन प्राप्ति का अध्ययन कहने के स्थान पर इसको सुख प्राप्ति का अध्ययन घोषित करके उन्होंने कल्याणवादी अर्थशास्त्र के अध्ययन को जन्म दिया तथा अर्थशास्त्र व नीतिशास्त्र के मध्य सम्बन्ध स्थापित किया। रिकार्डो की निगमन रीति की आलोचना करके उन्होंने अर्थशास्त्र अध्ययन की ऐतिहासिक अथवा आगमन रीति का श्रीगणेश किया।

वे श्रमिकों के हितैषी थे तथा उनके हितों की रक्षा करना वे अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। उन्होंने पूँजीपतियों की समाजवादियों से भी अधिक कड़े शब्दों में आलोचना की। उन्होंने मशीनों की आलोचना की तथा छोटे पैमाने के उद्योगों का, जिनमें श्रमिक स्वय अपनी छोटी फैक्ट्री का स्वामी भी होता है, समर्थन किया। उनके विचारों में इस अधिक अश तक समाजवाद की झलक मौजूद थी कि मार्क्स व ऐंगिल्स ने भी अपनी पुस्तक Communist Manifesto में उनके ऋण को स्वीकार किया है।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि सिसमोन्डी समाजवादी थे। वे साम्यवाद से घृणा करते थे क्योंकि साम्यवाद में व्यक्तिगत सम्पत्ति की संस्था, जो उनको प्रिय थी, का पतन हो जाता है। वे साम्यवादियों के समान सुधारों को हिंसात्मक उपायों द्वारा व्यावहारिक रूप देने के पक्ष में न थे। परन्तु समाजवादी न होते हुये भी समाजवादियों ने उनके विचारों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है तथा अपने सिद्धान्तों को इन विचारों पर आधारित किया है। इसमें आश्चर्य की कोई भी बात नहीं है क्योंकि उनके अधिकांश साहित्य में प्रतियोगिता तथा धन की असमानताओं की आलोचना तथा श्रमिकों के हितों का पक्ष है। समाजवादी लेखक लुई ब्लैंक (Louis Blanl), रॉडबर्टस (Rodbertus) तथा मार्क्स (Marx) ने प्रतियोगिता के विपक्ष में तथा सकट के सिद्धान्त के प्रतिपादन के सम्बन्ध में सिसमोन्डी से काफी विचार उधार लिये हैं।

विशेष अध्ययन सूची

1. Gide and Rist — A History of Economic Doctrine, Book II, Chapter I
2. Eric Roll — : A History of Economic Thought, Chapter V, pp. 225-240

3. L. H. Haney : History of Economic Thought, Chapter XX.
4. J. F Bell : A History of Economic Thought, Chapter 14, pp. 289-291.
5 J. M. Ferguson : Landmarks of Economic Thought, Chapter 14.
6 Spiegel & Allen : The Development of Economic Thought, article by Elic Halevy.
7 J. A. Schumpeter : History of Economic Analysis, pp 493-496.
8. Edmund Whittaker : Schools and Streams of Economic Thought, pp. 181-182.
9 Alexandar Gray : The Development of Economic Doctrine, Chapter VII, pp. 204-216.
10. Phillips C. Newman : The Development of Economic Thought, Chapter XV, pp 143-144.

प्रश्न

1 Critically examine Sismondi's theory of economic crises.

(कर्नाटक, १९५९)

2. Explain the theory of exploitation as developed by Sismondi.

(कर्नाटक, १९५८)

3. 'Sismondi though not himself a socialist, has been much read and carefully studied by socialists' Justify.

(आगरा, १९४७ ; १९५१ ; १९५६ ; राजस्थान, १९५९)

4. In what respects did Sismondi disagree with the method, the aim and the practical conclusions of the Classical School ?

(आगरा, १९५३ ; १९५५)

5. 'Sismondi began his career as an ardent supporter of economic liberalism, and though he fell into some disagreement in a latter *period of his life, with those* advocating it, he did not reject the theoretical principles of the classical school to the extent of becoming a socialist' (Neff). Comment.

(आगरा, १९५८ ; १९६१)

6. Give the important views of Sismondi and assign to him his proper place in the history of economic thought

(राजस्थान, १९५१)

सेंट साइमन के आर्थिक विचार

प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्री जे० ए० शुम्पीटर ने अपनी पुस्तक **History of Economic Analysis** में लिखा है कि सेंट-साइमन के संदेश की दो विशेषतायें हैं। प्रथम, सेंट-साइमन के आर्थिक विचारों की विशेषता यह है कि इनमें मानवतावादी आशावाद की झलक विद्यमान है। सिसमोन्डी की तरह से सेंट-साइमन निराशावादी नहीं है। सेंट-साइमन को औद्योगीकरण में मनुष्य जाति के उज्ज्वल भविष्य की झलक दिखाई देती है। दूसरे, सेंट-साइमन ने 'विज्ञान' तथा उद्योगवाद को अपनी विचारधारा में सबसे अधिक महत्त्व दिया है। शुम्पीटर का कहना है कि यद्यपि सेंट-साइमन के विचारों में विश्लेषण के गुणों का अभाव है परन्तु यह दोष होते हुये भी उन्होंने सामाजिक परिवर्तनों का अध्ययन करके इतिहास का आर्थिक अर्थनिरूपण किया है। इसके अतिरिक्त सेंट-साइमन ने वर्तमान वैज्ञानिक व औद्योगिक युग में औद्योगिक नेतृत्व के परम महत्त्व को भी समझा है।

सेंट-साइमन के अर्थशास्त्र को उद्योगवाद की गाथा कहना अनुचित न होगा। परन्तु उनके लिये उद्योग शब्द का अर्थ संकुचित न होकर काफी विस्तृत है। सेंट-साइमन का कहना है कि चिकित्सक, अभियंता, वैज्ञानिक, बैंक प्रबन्धक, उद्योगपति, व्यापारी, कृषक सभी देश के औद्योगिक विकास को अपने श्रम तथा योग्यता के द्वारा सम्भव बनाते हैं तथा इन सभी का देश की समृद्धि के लिये भारी महत्त्व है। किसी भी राष्ट्र की समृद्धि के लिये उस राष्ट्र का औद्योगिक विकास होना अत्यन्त आवश्यक है। औद्योगिक विकास के लिये देश में अच्छे व योग्य चिकित्सकों, अभियंताओं, वैज्ञानिकों, प्राविधिकों तथा परिश्रमी कृषकों का होना आवश्यक है। ये सभी व्यक्ति राष्ट्र की पूँजी हैं तथा राष्ट्रीय औद्योगिक विकास व आर्थिक समृद्धि का स्रोत है। इस सम्बन्ध में सेंट-साइमन के विचार

देशों में उनके शिष्यों तथा अनुयायियों ने उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट किया।

अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में सेंट-साइमन ने अर्थशास्त्र तथा तर्कशास्त्र का गहन अध्ययन किया था तथा इन शास्त्रों से सम्बन्धित विषयों पर अनेक पुस्तिकायें तथा लेख लिखे थे। समाजवाद के जनक होने के अतिरिक्त उनको Positivism का जनक होने का भी सौभाग्य प्राप्त है। उनके लेखों तथा पुस्तिकाओं में १८१७-१८ ई० में लिखित चार ग्रन्थों में **Industrie**; १८१९ ई० में लिखित **La politique**; १८२१ ई० लिखित **Le Syste'me industriel**, १८२३ २४ ई० में Auguste Comte के साथ लिखित **Le Catechisme des Industriels** तथा १८२५ ई० लिखित **Le Nouveaux Christianisme** के नाम विशेष रूप के उल्लेखनीय है। वे उद्योगवाद के भारी समर्थक थे तथा उनके अर्थशास्त्र को उद्योग का धर्म कहा जा सकता है।

जो सेंट-साइमन की कहावत के नाम से प्रसिद्ध हैं, इस प्रकार हैं। अपने विचारों को व्यक्त करने के हेतु सेंट साइमन ने फ्रान्स के नागरिकों को दो वर्गों में विभाजित किया है। प्रथम वर्ग मे चिकित्सक, अभियता, व्यापारी, अधिकोषक, कृषक इत्यादि उत्पादक व्यक्ति है। दूसरे वर्ग मे राजा, राज्य मत्री, पादरी, न्यायाधीश, सरकारी कर्मचारी, सैनिक अधिकारी तथा अन्य सभी वे व्यक्ति सम्मिलित है जो सेंट-साइमन के मतानुसार अनुत्पादक व निकम्मे है। फ्रान्स की समृद्धि के लिये प्रथम वर्ग के व्यक्तियो के महत्व को समझाने के लिये सेंट-साइमन ने निम्न प्रकार लिखा है।

"मान लीजिये कि फ्रान्स मे यकायक, प्रथम श्रेणी के पचास चिकित्सकों, पचास रासायनिको, पचास शरीर वैज्ञानिको, पचास अधिकोषको, दो सौ सबसे अच्छे व्यापारियो, छ सौ सबसे अधिक निपुण कृषकों व पाँच सौ सबसे अधिक योग्य लुहारो की मृत्यु हो जाती है। इन व्यक्तियो के फ्रान्स मे सभी आवश्यक वस्तुओं के उत्पादक होने के कारण फ्रान्स की समृद्धि के लिये इन सबकी उपस्थिति अनिवार्य है। इन व्यक्तियो के मरने के एक क्षण पश्चात् ही राष्ट्र भी आत्महीन शरीर के समान हो जावेगा तथा विदेशी राष्ट्रों की आँखों मे फ्रान्स एक कमजोर व शक्तिहीन राष्ट्र बन जायेगा। फ्रान्स उस समय तक कमजोर तथा अधीनस्थ राष्ट्र रहेगा जब तक इन उत्पादक व्यक्तियों के स्थान खाली रहेंगे। परन्तु इसके विपरीत यदि फ्रान्स के सब योग्य व्यक्ति, चाहे उनका सम्बन्ध विज्ञान से हो अथवा कला से, चाहे वे उद्योग मे काम करते हों या शिल्पकार हों, बच जाते है तथा इनके स्थान पर उसी दिन राजा के भ्राता, Duke of Augouleme तथा शाही परिवार के अन्य सदस्यो, राज्य के सभी बड़े-बड़े अधिकारियों, सभी मन्त्रियों, अन्त परिषद के सभी सदस्यो, सेनापतियों, पादरियो, सरकारी कर्मचारियो, न्यायाधीशो तथा लाखों जागीरदारो की मृत्यु हो जाती है तो राष्ट्र मे शोक तो अवश्य होगा परन्तु यह शोक भावनात्मक ही होगा। इन सब लोगो की मृत्यु मे समाज मे कुछ भी असुविधा नही होगी तथा उसकी समृद्धि पहले के समान बनी रहेगी"[2]

उपरोक्त वाक्य खण्ड से इस बात का स्पष्टीकरण होता है कि सरकार का कोई उपयोग नहीं है तथा सरकारी कर्मचारी समाज के अनुत्पादक वर्ग हैं। समाज बिना सरकार के जीवित रह सकता है तथा सरकार के अभाव के कारण इसके सुख मे किसी प्रकार की कोई कमी नही आवेगी। परन्तु विशेषज्ञो, औद्योगिक नेताओ, व्यापारियो, अधिकोषको, कृषको का होना समाज के सुख के लिये अनिवार्य है तथा इनकी अनुपस्थिति मे समाज का समस्त जीवन अस्तव्यस्त हो जावेगा। सेंट-साइमन का कहना है कि ये व्यक्ति राष्ट्रीय समृद्धि का स्रोत है तथा इनके बिना यह स्रोत जो समाज मे प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को रहने योग्य बनाता है सूख जावेगा। सेंट-साइमन के विचारानुसार वर्तमान समाज जिसमे लोग रहते है उद्योग की आधारशिला

2 *L' Organisateur*, Part 1, 1819, pp 10 12

पर आधारित है। वर्तमान आर्थिक जीवन उद्योग की कीली (pivot) पर आधारित है।

सेंट-साइमन का विश्वास था कि भविष्य में समाज मे उसी वर्ग का महत्व तथा स्थान होगा जो उद्योगवाद का समर्थक है। उपरोक्त उदाहरण मे दूसरे वर्ग के लोगो का कुछ समय पश्चात समाज से पतन हो जावेगा क्योकि समाज में केवल प्रथम वर्ग के लोगो के लिये ही स्थान है। प्रथम वर्ग मे कृषक, मजदूर, निर्माता, शिल्पकार, अधिकोषक तथा अभियताओं व चिकित्सकों के समान अन्य उत्पादक व्यक्ति सम्मिलित हैं। सेंट-साइमन सामन्तवद के विरोधी तथा अनुत्पादक भूस्वामी वर्ग के कट्टर आलोचक थे। सेंट-साइमन एक ऐसे आदर्श समाज का निर्माण करना चाहते थे जिसमे राज्य-शासन का कार्य साधारण सरकारी कर्मचारियों के हाथ मे न होकर उत्पादक औद्योगिक मुखियाओं के हाथों मे होगा। उनके नये समाज मे समाज की शक्तियो का उन लोक कार्यो व योजनाओं के निर्माण मे उपयोग किया जावेगा जिनके फलस्वरूप समाज के सदस्यों की शारीरिक व नैतिक शक्तियों मे सुधार हो सकेगा।

राज्य के शासन-संगठन की योजना का चित्रण करते हुये सेंट-साइमन ने लिखा है कि राज्य के कार्य का सचालन चेम्बर ऑफ डेप्युटीज (Chamber of Deputies) अथवा मण्डल के द्वारा होगा। परन्तु उनका कहना है कि इस मण्डल के सदस्य केवल निर्माता, अधिकोषक, कृषक, उद्योगपति, शिल्पकार आदि उत्पादक वर्ग के सदस्य ही होंगे। इस प्रकार भूस्वामियो तथा सामन्तवादियो का सरकार व शासन के काम मे कोई हाथ नही होगा। इस प्रकार सरकार का रूप व सगठन राजनैतिक होने के स्थान पर आर्थिक होगा। वर्तमान सत्ता व आज्ञा के स्थान पर प्रबन्ध व निर्देशन के द्वारा सरकार देश के औद्योगिक विकास के लिये उत्तरदायी होगी। सेंट-साइमन के समाज मे विभिन्न उत्पादक वर्गों के मध्य औद्योगिक समानता (Industrial Equality) होगी। इसका अर्थ यह है कि विभिन्न व्यक्तियो की आय मे अन्तर का आधार उन व्यक्तियो की उत्पादन-योग्यता ही होगी। औद्योगिक समानता का यह अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति समाज से अपनी योग्यता अनुसार आय प्राप्त कर सकेगा। सेंट-साइमन के इस आदर्श समाज मे, केवल उस असमानता को छोडकर जिस का आधार भिन्न लोगो की भिन्न योग्यता है, सभी प्रकार के सामाजिक भेद-भाव, ऊँच नीच समाप्त हो जावेगे। सेंट-साइमन की योजना को कार्यरूप देने पर फ्रान्स की काया पलट होकर समस्त राष्ट्र एक बड़ा औद्योगिक कर्मशाला बन जावेगा तथा ससार के राष्ट्रों के मध्य सम्मान प्राप्त कर सकेगा। प्राचीन सामान्तवादी प्रणाली का, जो उत्पादन व राष्ट्रीय आर्थिक समृद्धि के रास्ते मे बाधक होती है, सदा के लिये अन्त होकर फ्रान्स मे स्थाई औद्योगिक प्रगति का मार्ग सदा के लिये खुल जावेगा। सेंट-साइमन ने जिस औद्योगिक समाज का चित्रण

किया है ऐसे समाज मे सरकार का कर्तव्य श्रमिको को सस्ता तथा अनुत्पादक होने से रोकना तथा उत्पादक व निर्माता की रक्षा करना होगा।

यद्यपि सेंट साइमन के आदर्श समाज मे व्यक्तिगत योग्यता के लिये काफी स्थान है परन्तु इससे यह कदापि नहीं समझ लेना चाहिये कि एडम स्मिथ व जे० बी० से के समान सेंट-साइमन आर्थिक उदारतावाद व **Laissez faire** नीति के समर्थक थे। उनके नये समाज मे सरकार का परम कर्तव्य समाज मे उत्पादकों, श्रमिकों तथा उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना होगा तथा यह देखना होगा कि एक वर्ग दूसरे वर्ग का शोषण न कर सके। एडमस्मिथ के आर्थिक उदारतावाद मे राज्य का उद्देश्य तथा सगठन राजनैतिक है। इसके विपरीत सेंट-साइमनवादी समाज की सरकार के कार्य आर्थिक होंगे। यह स्मिथ के आर्थिक उदारतावाद तथा सेंट-साइमन के उद्योगवाद का मुख्य भेद है।

सेंट-साइमन तथा समाजवाद

यद्यपि सेंट-साइमन के औद्योगिक समाज का सगठन समाजवादी सिद्धान्तों पर आधारित है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि सेंट-साइमन समाजवादी अथवा साम्यवादी थे। समाजवाद का प्रमुख लक्ष्य व्यक्तिगत सम्पत्ति सस्था का अन्त करना है। परन्तु समाजवादियों के समान सेंट-साइमन सामान्य रूप से व्यक्तिगत सम्पत्ति के विरोधी नहीं थे। सेंट साइमन पूँजीपति से उसकी आय का अपहरण करने के इच्छुक नहीं थे। सेंट-साइमन को दो कारणों से समाजवादी कहा जाता है। प्रथम, वे श्रमिकों तथा गरीबों के हितैषी थे तथा दूसरे, उनका कहना था कि व्यक्तिगत सम्पत्ति की सस्था मे सुधार होना चाहिये। उनका कहना था कि सम्पत्ति का आधार ऐसा होना चाहिये कि इससे उत्पादन मे कमी नहीं होनी चाहिये तथा सम्पत्ति स्वामी इस का उचित रूप से प्रयोग कर सकें। परन्तु व्यक्तिगत सम्पत्ति में सुधार करने का अनुरोध करना इसका अपहरण करने के सुझाव देने से बिल्कुल भिन्न है।

परन्तु यह सब कुछ होते हुये भी सेंट-साइमन के उद्योगवाद मे समुदायवाद के चिन्ह विद्यमान है तथा इसी कारण लुई ब्लैंक (Louis Blanc), ऐन्टन मेंजर (Anton Menger) तथा सोरेल (G Sorel) आदि अनेक फ्रान्सीसी समाजवादियों ने सेंट-साइमन के समुदायवाद के विचार से प्रेरित होकर राज्य को कारखाने के समान सगठित करने की कल्पना की थी। इसके अतिरिक्त समाजवाद के नेता मार्क्स व एन्जिल्स भी सेंट-साइमन के विचारों से काफी प्रभावित हुये थे।

सेंट-साइमनवादी (Saint-Simonians)

यद्यपि सेन्ट साइमन की पुस्तकों व लेखों का बहुत अधिक अध्ययन नहीं किया गया था परन्तु व्यक्तिगत मित्रता व जान पहिचान के आधार पर उनके काफी शिष्य थे जिन्होंने उनके विचारों का प्रचार किया था। उनके अनेकों शिष्यों मे आगस्ट

काम्टे (Auguste Comte), एन्फैन्टिन (Enfantin), सेंट आमन्ड बजार्ड (St. Amand Bazard), ओलिन्ड रोड्रिग्स (Olinde Rodrigues) तथा आगस्टिन थियरी (Augustin Thierry) के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। आगस्टिन थियरी १८१४ ई० से लेकर १८१७ ई० तक अपने गुरु का सचिव रहा था तथा यह कहा जाता है कि सेंट साइमन ने उसे गोद ले लिया था। उनके शिष्य आगस्ट काम्टे ने उनके साथ कई पुस्तको मे सयुक्त लेखक के रूप में कार्य किया था। ओलिन्ड रोड्रिग्स जो एक अधिकोषक था तथा जिसने सेंट-साइमन को उनके अन्तिम वर्षो मे वित्तीय सहायता दी थी, सेंट साइमन के सबसे पहले शिष्यो मे था। सेंट साइमन की मृत्यु के पश्चात शीघ्र ही उनके अनुयायियो ने सेंट-साइमन के विचारों का प्रचार करने के उद्देश्य से **Le Producteur** नामक एक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। इस पत्रिका के लिए अर्थशास्त्र से सम्बन्धित लेख अधिकतर एन्फैन्टिन लिखते थे। दुर्भाग्यवश यह पत्रिका केवल एक वर्ष तक ही जीवित रही यद्यपि एक वर्ष के अल्पकाल मे ही नई विचारधारा के समर्थको की सख्या मे काफी वृद्धि हो गई थी।

अपना एक सुदृढ़ सगठन बनाने के उद्देश्य से सेंट-साइमनवादियो ने सेंट साइमन को पैगम्बर कह कर उनके विचारो का धर्म के समान प्रचार करना आरम्भ कर दिया। इन्होने एक सस्था स्थापित करने का प्रयास किया जिसके सदस्य सेंट-साइमन के अनुयायी थे तथा जिनका उद्देश्य सेंट-साइमन के धर्म का प्रचार करना था। १८२८ ई० मे सेंट-साइमन के एक प्रसिद्ध शिष्य ओलिन्ड रोड्रिग्स के नेतृत्व मे इन लोगो ने अपने आपको एक पंथ के रूप मे सगठित करके अपने आपको पादरी कहना आरम्भ कर दिया! इसी समय दूसरे शिष्य बजार्ड ने अपने गुरु के पवित्र विचारो का भाषणो के द्वारा प्रचार करना आरम्भ कर दिया। बजार्ड के भाषणो को जो उसने फ्रान्स के विभिन्न नगरो मे १८२८ ई० से लेकर १८३० ई० तक दिये थे काफी व्यक्तियो ने सुने। बजार्ड के भाषणों मे सुनने वालो में Ferdinand de Lesseps, A. Carrel, H. Carnot, Michel Chevalier आदि के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं क्योंकि इन व्यक्तियो ने कुछ समय पश्चात फ्रान्स के इतिहास को नया रूप देने मे विशेष कार्य किया था। ये भाषण १८२६ ई० में **Doctrine de Saint Simon, Exposition, Premiere Annee** नामक शीर्षक से पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुये थे।

परन्तु दुर्भाग्यवश सेंट-साइमनवादी सम्प्रदाय अधिक समय तक जीवित न रह सका। ऐन्फैन्टिन के प्रभाव के अंतर्गत दार्शनिक (*philosophical*) तथा गुप्त (mystical) तत्वों के प्रधान हो जाने के कारण सम्प्रदाय के पतन का क्रम शी[illegible] प्रारम्भ हो गया। सेंट-साइमनवादियों का यह दृढ विश्वास था कि अपने गुरु के वि[illegible] का प्रचार करने के लिए इनको धर्म व पंथ का रूप देना आवश्यक है त[illegible] किए बिना अन्य व्यक्तियो की विचार धाराओ के समान सेंट-साइमन के

का प्रभाव अस्थाई व अल्पकालीन सिद्ध होगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु सेंट-साइमनवाद ने एक विचित्र तथा नवीन धर्म का रूप धारण किया। इस धर्म की अपनी अलग नैतिक विधि-संग्रह (Moral Code) थी तथा धर्म का प्रचार करने के हेतु देश के भिन्न भिन्न भागो मे सभायें की जाती थी तथा गिर्जे स्थापित किये गये थे। परन्तु शीघ्र ही घटनाओ ने यह स्पष्ट कर दिया कि इस नये मत के सगठनकर्ता नये धर्म का प्रचार करने मे अयोग्य थे। आरम्भ मे बजार्ड इस नये धर्म के नेता थे। *इस नये धर्म का पतन सेंट-साइमनवादियो के आवश्यकता से अधिक उत्साह का परिणाम था।*

सेंट-साइमनवादियो के आर्थिक विचार

सेंट-साइमनवादी निजी सम्पत्ति के विरोधी थे तथा निजी सम्पत्ति की संस्था उनकी कड़ी आलोचनाओ का केन्द्र है। वास्तव मे सेंट-साइमनवाद को निजी सम्पत्ति के विरुद्ध आन्दोलन कहना गलत न होगा। बजार्ड की पुस्तक **Doctrine de Saint-Simon** को यदि निजी सम्पत्ति की आलोचनाओ का शब्द कोष कहा जाये तो अनुचित न होगा।

सेंट-साइमनवादियो ने व्यक्तिगत सम्पत्ति की सस्था की आलोचना दो आधारो पर की है—धन के उत्पादन तथा इसके वितरण के आधार पर इसकी आलोचना की गई है। एक प्रकार से यह कहना सत्य है कि सम्प्रदाय के संस्थापक सेंट-साइमन ने इस आलोचना को काफी सामग्री प्रदान की थी। सेंट-साइमन ने यह घोषित कर दिया था कि नये समाज मे उत्पादक व अनुत्पादक, श्रमिक व काहिल कदापि एक साथ नही रह सकते थे। सेंट-साइमन का कहना था कि उसके नये आदर्श समाज मे केवल एक--उत्पादक—वर्ग के लिए ही स्थान होगा। उद्योगवाद मे दूसरे वर्ग (अनुत्पादक वर्ग जिस मे जागीरदार, भूस्वामी, सम्पत्ति स्वामी तथा सामन्तवादी सरदार इत्यादि सम्मलित थे) के लिए कोई स्थान नही होगा। इस नये समाज मे प्रत्येक व्यक्ति की आय का आधार उसकी योग्यता तथा श्रम की मात्रा होगी। यद्यपि सेंट-साइमन की निजी सम्पत्ति की आलोचना निजी सम्पत्ति की संस्था मे केवल सुधार करने तक ही सीमित थी, परन्तु सेंट-साइमनवादियो का कहना है कि समाज मे उत्पादन मे वृद्धि करने तथा वितरण को सामाजिक न्याय के अनुसार सम्भव बनाने के लिए निजी सम्पत्ति की सस्था को समाप्त करना अनिवार्य है।

समाज मे धन के वितरण के दृष्टिकोण से व्यक्तिगत सम्पत्ति की संस्था को आलोचना करते हुए सेंट-साइमनवादियो का यह कहना है कि धन का वितरण केवल इसके वास्तविक उत्पादको के मध्य ही होना चाहिए तथा यह तभी सम्भव हो सकता है जब निजी सम्पत्ति की सस्था समाज मे उपस्थित न हो। सेंट-साइमन पूंजी को उत्पादन का आवश्यक व महत्वपूर्ण साधन विचारते थे तथा उनका कहना था कि

पूँजीपति को भी राष्ट्रीय आय मे हिस्सेदार होना चाहिए क्योंकि पूँजीपति को पूँजी एकत्र करने मे त्याग का अनुभव होता है। अपने गुरु के इस विचार को अस्वीकार करते हुये सेंट-साइमनवादियो का कहना है कि पूँजीपति ने राष्ट्रीय आय के उत्पन्न करने मे किसी प्रकार का श्रम नही किया था तथा उसका इस आय मे कोई हिस्सा नही होना चाहिए। परन्तु यह किस प्रकार सम्भव हो सकता है। सेंट-साइमनवादियो का यह कहना है कि जब तक निजी सम्पत्ति की सस्था समाज मे विद्यमान रहेगी तब तक पूँजीपति को राष्ट्रीय आय मे से हिस्सा प्राप्त होता रहेगा। पूँजीपति को जो भी आय प्राप्त होती है व स्वय उसकी महनत का प्रतिफल न होकर श्रमिकों के शोषण का प्रतीक होती है। निजी सम्पत्ति चाहे वह पूँजी के रूप मे हो अथवा चाहे भूमि के रूप मे हो समाज मे पूँजीपतियो द्वारा श्रमिको के शोषण का कारण बनती है। इस प्रकार लगान व ब्याज शोषण के दो साधन हैं। सेंट-साइमनवादियों के अनुसार शोषण उस समय होता है जब श्रमिको द्वारा उत्पादित भौतिक वस्तु उनको प्राप्त न होकर साधारण सामाजिक कारणो से भूस्वामियो व सम्पत्ति स्वामियों को उनके पारितोषिक के रूप मे प्राप्त होती है।[3] परन्तु वर्तमान अर्थशास्त्री ब्याज तथा लगान को स्वीकार करते हैं।

सेंट-साइमनवादियो ने धन के उत्पादन के दृष्टिकोण से भी निजी सम्पत्ति की आलोचना की है। उनका तर्क है कि वर्तमान युग मे पूँजी एक व्यक्ति से उसकी मृत्यु के पश्चात दूसरे व्यक्तियो को प्रचलित उत्तराधिकार के नियमो के कारण प्राप्त होती है। इसी नियम के समाज मे लागू होने के कारण कुछ व्यक्ति सौभाग्यवश जन्म से ही पूँजीपति होते है तथा उत्पादनो के साधनो पर स्वामित्व का अधिकार स्थापित करने की स्थिति मे हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में यह सम्भव है कि पूँजी अयोग्य व्यक्तियों को प्राप्त होने के कारण इसका सामाजिक दृष्टिकोण से उचित उपयोग न होने के कारण धन के उत्पादन मे वृद्धि सम्भव न हो। सामाजिक समृद्धि के लिए यह परम आवश्यक है कि पूँजी केवल योग्य व अनुभवी व्यक्तियों के हाथो मे हो जिसका समाज मे विभिन्न उद्योगों के विकास हेतु उचित प्रयोग किया जा सके।

---

3. इस सम्बन्ध में यह बताना उचित होगा कि सिसमोन्डी तथा मार्क्स के अनुसार शोषण का अर्थ थोडा भिन्न है। सिसमोन्डी ब्याज को उचित समझता था तथा उसके अनुसार शोषण की समस्या उस समय उत्पन्न होती है जब श्रमिकों को पर्याप्त मजदूरी प्राप्त नही होती है। इसके विपरीत मार्क्स के अनुसार शोषण की समस्या समाज मे उस समय उत्पन्न होती है जब श्रमिक के उत्पादन के एक हिस्से अथवा भाग का समाज मे विशेष सामाजिक संस्थाओ (व्यक्तिगत सम्पत्ति संस्था) अथवा विनिमय नियमो के कार्यवाहक होने के कारण पूँजीपति को पारितोषिक देने के लिये प्रयोग जाता है।

इस प्रकार सेंट साइमनवादियों के विचारानुसार उत्तराधिकारी कानून में उचित संशोधन करके निजी सम्पत्ति की संस्था को समाप्त करना आवश्यक है।

सेंट साइमनवादियों की विचारधारा, जिस में निजी सम्पत्ति की संस्था पर भारी आघात किया गया है तथा समुदायवाद का समर्थन किया गया है, एडम स्मिथ की विचारधारा के बिल्कुल विपरीत है।

सेंट-साइमनवादियों ने निजी सम्पत्ति की संस्था की केवल उत्पादन व वितरण के दृष्टिकोण से ही आलोचना नहीं की बल्कि उन्होंने ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी इसकी आलोचना की है। उनका कहना है कि निजी सम्पत्ति कोई प्राकृतिक संस्था नहीं है जैसा कि प्रकृतिवादी लेखक सोचते थे। वरन् यह सामाजिक विकास का परिणाम है। प्राकृतिक अवस्था में किसी व्यक्ति का सम्पत्ति पर स्वामित्व नहीं होता है। सेंट साइमनवादियों का कहना है कि समाज की अवस्था में परिवर्तन होने पर निजी सम्पत्ति के स्वभाव में भी परिवर्तन हुआ है। 'दास' अर्थव्यवस्था में दास भी अपने स्वामी की सम्पत्ति हुआ करता था, परन्तु आज यह कहना बिल्कुल अवास्तविक प्रतीत होता है। मानव सभ्यता में विकास होने के फल स्वरूप समाज दास प्रथा को बुरा विचारने लगा तथा दासता का सदा के लिए पतन हो गया। यही परिस्थिति आज सम्पत्ति की भी है। यह कहना सत्य है कि आज नहीं तो निकट भविष्य में वह समय आवेगा जब उत्तराधिकार नियमों में आवश्यक परिवर्तन करके निजी सम्पत्ति एक सीमित मात्रा के पश्चात मृतक के उत्तराधिकारियों को प्राप्त नहीं हो सकेगी।

सेंट-साइमनवादियों का कहना है कि वर्तमान समाज में साहसी के लाभ उस की योग्यता का प्रतिफल नहीं हैं। ये श्रमिकों के शोषण का प्रतीक हैं। पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकों के शोषण की प्रक्रिया को समझाते हुये प्रसिद्ध सेंट-साइमनवादी बजार्ड ने अपनी पुस्तक **Doctrine de Saint Simon** में इस प्रकार लिखा है। "वर्तमान समय में अधिकांश श्रमिकों का उनके द्वारा शोषण होता है जिनकी सम्पत्ति का श्रमिक प्रयोग करते हैं। सम्पत्ति स्वामियों के साथ अपने व्यावसायिक कारोबार में उद्योग के नेताओं को भी श्रमिकों के समान दबना पड़ता है। परन्तु वे भी समय समय पर शोषण की इस लूट में हिस्सा प्राप्त करते हैं तथा शोषण का सारा भार श्रमिकों अथवा अधिकांश मानव जाति को सहन करना पड़ता है।" परिणामस्वरूप से... ...इमनवादी एक ऐसे आदर्श समाज के निर्माण के इच्छुक हैं जिसमें असाधारण

सफल मनुष्य को सदा असाधारण पारितोषण प्राप्त हो सकेगा।

आलोचना कर साइमनवादियों का कहना है कि शोषण की समस्या निजी सम्पत्ति की
इसके वास्तवि त है। उत्पादन व वितरण के हित में इस समाज विरोधी संस्था का
स्वार्थ है। सेंट-साइमनवादी निजी सम्पत्ति की संस्था की आलोचना
सकता है जब नि हैं क्योंकि सम्पत्ति अपने स्वामियों को सुस्त व काहिल बनाती है तथा
को उत्पादन का प्र को श्रमिकों का शोषण करने के लिये प्रेरणा देती है। जितना

अतिशीघ्र इस संस्था का अन्त हो सके उतना ही समाज के हितों के लिये अधिक अच्छा होगा, ऐसा सेंट-साइमनवादियों का कहना है।

सेंट-साइमनवादियों की सुधार योजना

सेंट-साइमनवादी निजी सम्पत्ति की सस्था के कट्टर आलोचक थे तथा उनका विश्वास था कि इस संस्था के नष्ट हो जाने पर समाज की सभी बुराइयो का अन्त हो जावेगा। परन्तु इस सस्था को समाप्त करने तथा इसके स्थान पर अन्य किसी उपयोगी संस्था को किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है, इस सम्बन्ध मे सेंट-साइमनवादियो के दो सुझाव है। प्रथम, उनका कहना है कि सम्पत्ति की प्रचलित वर्तमान रिक्थ प्रथा को, जिसके अनुसार मृत्यु के पश्चात् मनुष्य की सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारियो को प्राप्त होती है, समाप्त करना होगा तथा मृत्यु के पश्चात् व्यक्ति की सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारियो को प्राप्त न होकर राज्य को प्राप्त होगी। ऐसा करने से राष्ट्र अथवा समाज समस्त सम्पत्ति का स्वामी बन सकेगा तथा व्यक्ति की व्यक्ति द्वारा शोषण की भयानक समस्या का अन्त हो जावेगा। जब सभी सम्पत्ति राज्य के पास राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप में होगी तो इस का प्रयोग किसी व्यक्ति विशेष के हितो के दृष्टिकोण से न होकर समस्त सामाजिक कल्याण के हित के दृष्टिकोण से किया जा सकेगा। राष्ट्र के सभी साधनों का उत्पादन कार्य में प्रयोग किया जा सकेगा तथा दूर स्थित भागों में भी कृषि की जा सकेगी। योग्य व परिश्रमी व्यक्तियो को उनकी योग्यता के अनुसार काम तथा आय प्राप्त हो सकेगी। इन सब बातो के अतिरिक्त सम्पत्ति स्वामियो को भी, जो अब कुछ काम नहीं करते हैं, काम करने की आदत पड़ेगी तथा इस प्रकार समाज में व्यक्तिगत सम्पत्ति के अन्त के साथ अनुत्पादक व काहिल वर्ग का भी अन्त हो सकेगा।

इस प्रकार सेंट-साइमनवादी विचारधारा का आधार निजी सम्पत्ति की समाप्ति तथा इसके स्थान पर समुदायवाद का निर्माण करना है। सामाजिक सम्पत्ति का प्रबन्ध राज्य योग्य, देशभक्त व परिश्रमी व्यक्तियो द्वारा करेगा। इन व्यक्तियो को इनकी योग्यता व कार्य के अनुसार 'प्रमुखो' (Generals) तथा 'नायकों' (Chiefs) का पद प्राप्त होगा। इस प्रकार सेंट-साइमनवादी समुदायवादी समाज मे आर्थिक क्रियाओ का निर्देशन व नियमन करना राज्य की जिम्मेदारी होगी। इस आदर्श समाज मे न कोई पूँजीपति होगा न कोई भूस्वामी होगा तथा न कोई व्यक्तिगत साहसी ही होगा। देश के सभी व्यक्ति समाज के लिये कार्य करेंगे तथा उनको राज्य समाज के प्रतिनिधि के रूप मे उनकी योग्यता व परिश्रम के अनुसार वेतन देगा।

सेंट-साइमनवाद की आलोचना

यद्यपि सेंट-साइमनवादियो की सुधार योजना उनके प्रति काफी परिश्र बुद्धि के प्रयोग का परिणाम थी तथा उनको अपनी योजना पर विश्वास था,

उनका कहना था कि विचारो तथा सिद्धान्तो के द्वारा सामाजिक परिवर्तन सम्भव था। इस बात में मार्क्सवाद सेंट-साइमनवादी विचारधारा से भिन्न है क्योंकि मार्क्सवाद मे उत्पादन की भौतिक शक्तियो के यत्र का एक विशेष स्थान है।

सेंट-साइमनवाद का आर्थिक विचारो के इतिहास में महत्व

सेंट-साइमन तथा उनके विचारो का आर्थिक विचारो के समस्त इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है। उनको तथा उनके शिष्यो को यदि समाजवाद का जन्मदाता कहा जाये तो अनुचित न होगा। समाज मे निजी सम्पत्ति को शोषण का आधार घोषित करके उन्होने समाजवाद की नीव स्थापित की। सेंट-साइमनवादियो की विचारधारा मे वास्तविकता तथा कल्पना के विचित्र मिश्रण के चिन्ह विद्यमान है। सेंट साइमनवादियो ने अपने देश के आर्थिक प्रशासन मे काफी भाग लिया था। ऐन्फैन्टिन ने फ्रान्स में पी० एल० एम० रेलवे कम्पनी की स्थापना मे भाग लिया था। Michel Chevalier ने सरकार की लोक-कार्यो को करने की नीति का समर्थन किया था। भूमि के राष्ट्रीयकरण तथा लाभ की साभेदारी के विचार जो वर्तमान युग मे बहुत महत्वपूर्ण है तथा जिनको आगे चलकर समाजवादियो ने अपनी योजनाओ में शामिल किया था सर्वप्रथम सेंट-साइमनवादियो के मस्तिष्क की ही उत्पत्ति थे। मार्क्स तथा एंगिल्स ने सेंट-साइमन व उनके शिष्यों की बहुत प्रशसा की है। सेंट-साइमनवादियो ने स्मिथवादी निजी व सामाजिक हितो की समरूपता के विचार को अवास्तविक व काल्पनिक घोषित करके व्यक्तिवाद के स्थान पर समुदायवाद के विचार को शक्ति प्रदान की तथा इसको व्यावहारिक रूप देने के उद्देश्य से अपने सुझाव प्रस्तुत किये। सेंट-साइमनवादियो ने अपने विचारो के माध्यम के द्वारा समाजवादियों के कठिन कार्य को सरल बनाने मे भारी योगदान दिया था तथा कुछ भी क्यो न हो सच्चे समाजवादी सेंट-साइमन व उनके अनुयायियो को कभी कदापि नही भूल सकते हैं।

विशेष अध्ययन सूची

1 Gide and Rist · A History of Economic Doctrines, Book II, Chapter II.

2 L H Haney · History of Economic Thought, pp 427-428

3 J. A Schumpeter : History of Economic Analysis, pp. 460 462

4. J F Bell : A History of Economic Thought, pp 363 364.

5, Phillips C. Newman · The Development of Economic Thought, Chapter XV, pp 139-143.

प्रश्न

1. On what grounds did the Saint-Simonians base their criticism of private property ? To what extent do you agree with their conclusions ?

   (आगरा, १६५३; १६६१)

2. How did the Simonians develop the ideas of St. Simon ?

   (कर्नाटक, १६५६)

3. Summarise the main ideas of St. Simon and his followers.

   (कर्नाटक, १६५८)

4. Examine critically the various arguments advanced by the Saint-Simonians against the institution of private property.

   (आगरा १६४६)

अध्याय १७

राष्ट्रवादी

(The Nationalists)

राष्ट्रवादी १६ वी शताब्दी के आरम्भिक काल मे आर्थिक समस्याओ पर लिखने वाले वे लेखक थे जिन्होने १८ वी शताब्दी मे प्रचलित सस्थापक सम्प्रदाय जिसका श्रीगणेश इगलैंड मे एडम स्मिथ के नेतृत्व मे हुआ था तथा जिसका प्रभाव सूर्य की किरणो के समान यूरोप के देशो मे फैल गया था, के विचारो की आलोचना की थी। इन लेखको ने एडम स्मिथ के व्यक्तिवाद, विश्वमित्रत्व तथा स्वतन्त्र व्यापार सिद्धान्तो की कडी आलोचना की थी तथा इनके स्थान पर राज्य राष्ट्रीयता तथा संरक्षण के विचारो का भारी प्रचार किया था। राष्ट्रवादियो के केन्द्र आरभ मे सयुक्त राष्ट्र आफ अमरीका तथा बाद मे जर्मनी था। राष्ट्रवादी लेखक व्यक्ति को राष्ट्र का ही अग समझते थे तथा उनके लिये राष्ट्रीय हितो मे ही व्यक्ति के हित निहित थे, जबकि स्मिथ के विचारानुसार व्यक्तिगत हितो मे राष्ट्रीय हित निहित थे। इस प्रकार राष्ट्रवादियो ने राष्ट्र को व्यक्ति के ऊपर रखा था। इसके अतिरिक्त एडम स्मिथ के धन के विचार के स्थान पर राष्ट्रवादियो ने राष्ट्र की उत्पादक शक्तियों (Productive Forces) के विचार का प्रचार किया था।

राष्ट्रवाद की भूमिका

१८ वी शताब्दी तथा १६ वी शताब्दी की प्रथम दो दशाब्दियो को एडम स्मिथ का युग का कहा जा सकता है क्योकि इस काल मे व्यक्तिवाद तथा अबन्ध नीति **Laissez faire** का सैद्धान्तिक विचारधारा के क्षेत्र तथा व्यावहारिक आर्थिक नीतियो के क्षेत्र मे भारी प्रचार था। परन्तु १६ वी शताब्दी के आरम्भ मे यह अनुभव किया गया कि व्यक्तिगत व सामाजिक हितो की एकरूपता का स्मिथवादी विचार केवल एक कोरी कल्पना है। समाज मे सामाजिक व आर्थिक असमानताओ श्रमिको के शोषण तथा आर्थिक सकटो की कठिन समस्याएं उत्पन्न हो गई थी। १८१५ ई० से लेकर १८२५ ई० तक लगभग १० वर्षों के अल्प समय मे संसार मे

---

1 सविस्तार अध्ययन के लिये अध्याय १५ का अध्ययन कीजिये।

तीन आर्थिक संकटों—१८१५ ई०, १८१८ ई० तथा १८२५ ई० के संकट—का सामना करना पड़ा था। यह भी सत्य था कि औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप उत्पादन अथवा धन में काफी वृद्धि हो जाने पर भी गरीबी के आकार मे निरन्तर वृद्धि होती जा रही थी। समाज में धनी व निर्धन दो भिन्न वर्ग उत्पन्न हो गये थे तथा वर्ग संघर्ष की कठिन समस्या के चिन्ह विद्यमान थे। ऐसी परिस्थिति मे व्यक्तिवाद तथा अबन्ध नीति (Laissez faire) के प्रति विचारको व समाज सुधारकों ने सन्देह प्रकट करना शुरू कर दिया था। सिसमोंडी तथा अन्य लेखको ने, जो आरम्भ में एडम स्मिथ के विचारो के समर्थक थे, अब इन विचारों को अवास्तविक तथा गलत घोषित करके नये विचारों व सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा राज्य से नई आर्थिक नीतियों को लागू करने का अनुरोध किया था। सस्थापित अर्थशास्त्र की त्रुटियों के फलस्वरूप समाज मे तीन प्रकार के विचारक उत्पन्न हो गये। प्रथम, उदार समाज सुधारक जो प्रचलित आर्थिक व सामाजिक सस्थाओं को नष्ट न करके केवल इनमें आवश्यक सुधार करके इनको नई परिस्थितियों के अनुकूल बनाना चाहते थे। दूसरे, समाजवादी जिनका लक्ष्य स्मिथवादी व्यक्तिवाद व अबन्ध नीति को समाप्त करके व्यक्तिगत सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण करके समाज मे आर्थिक समानता स्थापित करना था। तीसरे, राष्ट्रवादी जो राज्य को परम महत्त्व देते थे तथा व्यक्ति को राज्य के अधीन बना कर राष्ट्रीय हितो को व्यक्तिगत हितो की अपेक्षा अधिक महत्त्व देते थे।

राष्ट्रवाद की भावना को प्रेरणा देने वाला एक मात्र प्रमुख कारण ससार के राष्ट्रों की आर्थिक असमानता थी। एक ओर तो इंगलैंड था जो औद्योगिक व वाणिज्य दृष्टि से पूर्णतया विकसित देश था तथा दूसरी ओर सयुक्त राष्ट्र आफ अमरीका था जहाँ आर्थिक साधनो की प्रचुरता के होते हुये भी, औद्योगिक व वाणिज्य विकास नही हो पाया था। इस का यह कारण था कि १७७६ ई० तक अमरीका इंगलैंड का उपनिवेश था तथा इगलैंड से सभी औद्योगिक वस्तुओ का स्वतन्त्र रूप से आयात होता था। वर्तमान शताब्दी मे प्रचलित जर्मनी के नाजीवाद तथा अमरीका की 'न्यूडील' (New Deal) नीति मे भी राष्ट्रवाद के चिन्ह थे।

राष्ट्रवाद के अध्ययन के सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि आरम्भ से ही अमरीका के नागरिक उपनिवेशवाद के विरोधी थे। इस का कारण स्पष्ट है। जिन पाठको को इतिहास का कुछ ज्ञान है वे इस बात से भली प्रकार परिचित होंगे कि वर्तमान अमरीकी नागरिको के पूर्वज जिन को स्वतन्त्रता प्रिय थी इंगलैंड से, वहाँ उस समय के धार्मिक अत्याचारो से तग होकर, अपनी जान को खतरे मे डाल कर जगलो मे आकर बसे थे। स्वभाव से परिश्रमी होने तथा मानव भावनाओ का आदर करने वाले इन पूर्वजो ने जंगलो को साफ करके अपनी कला व दस्तकारी से वर्तमान अमरीका का निर्माण किया था। वे इस बात को कभी सहन नही कर सकते थे कि जिस इंगलैंड मे उन को अपने धार्मिक विचारो की स्वाधीनता

के कारण निकलना पड़ा था उस इंगलैंड का उन की भूमि पर उपनिवेश के रूप में अधिकार हो। फलस्वरूप लम्बे स्वतन्त्रता संग्राम के पश्चात ४ जुलाई, १७७६ ई० को स्वतन्त्रता की घोषणा (Declaration of Independence) की गई तथा स्वतन्त्र अमरीका का जन्म हुआ। आर्थिक विचारधाराओं के विद्यार्थी के लिये यह एक विशेष रूप से महत्वपूर्ण घटना है कि इसी वर्ष एडम स्मिथ की प्रसिद्ध पुस्तक Wealth of Nations भी प्रकाशित हुई थी।

यद्यपि अमरीका को १७७६ ई० मे राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई थी परन्तु अभी आर्थिक स्वतन्त्रता के प्राप्त होने मे कुछ समय शेष था। आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये राष्ट्र का औद्योगिक विकास होना अनिवार्य था फलस्वरूप अमरीकी विचारको व लेखकों ने राष्ट्रीय आर्थिक नीतियो मे परिवर्तन करने का अनुरोध किया। अमरीकी शिशु उद्योगो का विकास करने के लिये इन को इंगलैंड के सुदृढ उद्योगों की घातक स्पर्धा से मुक्त करना अनिवार्य था तथा यह सरक्षण के द्वारा ही सम्भव था। जिन अमरीकी लेखको ने इस आन्दोलन मे विशेष रूप से सक्रिय भाग लिया उन मे अलक्जेन्डर हैमिल्टन (१७५७ ई०-१८०४ ई०); अ० ऐच० ऐवेरेट (A. H. Everett), मैथिव कैरे (Matthew Carey);[2] डेन्यल रेमोड (Daniel Raymond), विल्यार्ड फिलिप्स (Williard Phillips); जेकब न्यूटन (Jacob Newton); जार्ज टकर (George Tucker); हैनरी चार्ल्स कैरे (१७९३ ई०-१८७९ ई०), प्रसिद्ध जर्मन अर्थशास्त्री फ्रैडरिक लिस्ट[3] तथा जॉन रे (John Rae)[4] के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। यहा हम इस अध्याय मे कुछ लेखकों की सक्षिप्त व्याख्या करते है।

अलैक्जेंडर हैमिल्टन (१७५६ ई०–१८०४ ई०)
(Alexandar Hamilton)

अलकजेडर हैमिल्टन वकील व प्रसिद्ध अमरीकी राजनीतिज्ञ थे। उन्होने सार्वजनिक ऋण, द्रव्य, राष्ट्रीय बैंक व उद्योगो के संरक्षण सम्बन्धी प्रश्नो पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। वे राष्ट्रीय बैंक, सरक्षण तथा द्विधातुमान के समर्थक थे। वे प्रकृतिवादी विचारो के आलोचक थे तथा जिस आर्थिक नीति के वे समर्थक थे

2. मैथिव कैरे अमरीकी अर्थशास्त्री हैनरी चार्ल्स कैरे के पिता थे। वह प्रकाशक थे। उन्होने Philadelphia Society की स्थापना मे महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

3. लिस्ट के आर्थिक विचारो का सविस्तार अध्ययन १८ वे अध्याय मे किया गया है।

4. जॉन रे स्काटलेंड के निवासी थे जो अमरीका जा बसे थे। उनकी पुस्तकों मे **Life of Adam Smith** तथा **Statement of Some New Principles on tne Subject of Political Economy (1834)** के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

वह नीति एडम स्मिथ की Laissez faire नीति के विपरीत थी। वे संरक्षण के भारी पक्षपाती थे। उन के विचारानुसार कृषि वस्तुओं की स्वयं देश मे माँग उत्पन्न करने के लिये उद्योगों को संरक्षण प्रदान करना आवश्यक है।

ए० एच० एवेरेट (१७९२ ई०-१८४७ ई०)
(A. H. Everett)

एवेरेट जिनको कैरे का अग्रसर कहा जा सकता है, संरक्षणवादी थे। १८२३ ई० मे प्रकाशित अपनी पुस्तक **New Ideas of Population** में उन्होने जनसख्या के सम्बन्ध मे आशावादी दृष्टिकोण को अपनाया था। उनके मतानुसार जनसख्या की वृद्धि हितकारी थी क्योंकि इसके फलस्वरूप श्रम विभाजन, प्रवीणता तथा आविष्कारो की उन्नति होती है।

विल्यार्ड फिलिप्स (१७८४ ई०-१८७३ ई०)
(Williard Phillips)

विल्यार्ड फिलिप्स एवेरेट के समकालीन लेखक थे। यद्यपि उनकी विचार-धारा सस्थापित आर्थिक सिद्धान्तो पर आधारित थी परन्तु उनके अध्ययन का प्रमुख विषय राष्ट्रीय उत्पादन था तथा वह संरक्षणवादी थे। उनकी पुस्तक **Protection and Free Trade** १८५० मे प्रकाशित हुई थी।

डेन्यल रेमोंड (१७८६ ई०-१८४९ ई०)
(Danieal Raymond)

डेन्यल रेमोंड का जन्म १७८६ ई० मे अमरीका मे Connecticut स्थान पर हुआ था। वे Baltimore नामक स्थान पर वकालत करते थे। परन्तु वकालत मे विशेषरूप से सफल न होने के कारण, अपने फालतू समय का उपयोग करने के हेतु उन्होने अर्थशास्त्र पर लिखना प्रारम्भ किया था। उन्होने दासता के विषय पर भी अपने विचार लिख कर व्यक्त किये थे।

रेमोड संस्थापित आर्थिक सिद्धान्तों के आलोचक तथा संरक्षणवादी थे। उनके विचार हैमिल्टन के विचारो से काफी मिलते जुलते है। वे स्मिथ के विश्वमित्रत्व विचार के आलोचक थे। वे आयात करों का पक्षपाती थे। उनकी **Thoughts on Political Economy** नामक पुस्तक १८२० ई० मे प्रकाशित हुई थी। पुस्तक मे धन, मूल्य, वणिकवादी प्रणाली, करारोपण, ऋण, दासता, एकाधिकार इत्यादि विषयों की व्यापक रूप मे व्याख्या की गई है। उन्होने माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त की आलोचना की है।

हेनरी चार्ल्स कैरे (१७९३ ई०—१८७६ ई०)[5]
(Henry Charles Carey)

जिस प्रकार इंगलैंड मे एडमस्मिथ के पूर्व आर्थिक विषयो पर लिखने वाले लेखको के होते हुये भी, एडमस्मिथ को ही राजनीतिक अर्थशास्त्र का जनक तथा अर्थशास्त्रियो के प्रथम सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक स्वीकार किया जाता है ठीक इसी प्रकार हैनरी चार्ल्स कैरे को भी अर्थशास्त्रियो के प्रथम अमरीकी सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक कहा जा सकता है।

कैरे के पूर्व अमरीकी लेखक पादरी, राजनीतिज्ञ, वकील अथवा अध्यापक थे जो आर्थिक समस्याओ पर समय मिलने व रुचि होने पर लिखते थे। परन्तु इन लेखकों को अर्थशास्त्री कहना भूल होगी क्योकि इन्होंने अर्थशास्त्रियो के समान आर्थिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन नही किया था तथा न ही आर्थिक सिद्धान्तो पर अँगरेज अर्थशास्त्रियो के समान कोई पुस्तक लिखी थी। इस दृष्टिकोण से अमरीका का प्रथम अर्थशास्त्री कहलाने का श्रेय हैनरी चार्ल्स कैरे को ही प्राप्त है।

यद्यपि कैरे एडम स्मिथ के प्रशसक थे, परन्तु वे माल्थस तथा रिकार्डो के विचारो के आलोचक थे। आरम्भ मे वे सस्थापित आर्थिक सिद्धान्तों के समर्थक थे

---

5. हैनरी चार्ल्स कैरे का जन्म १७९३ ई० मे Philadelphia मे हुआ था। वे Mathew Carey के पुत्र थे। पिता की पुस्तकों की दुकान थी तथा उनके पिता प्रसिद्ध प्रकाशक भी थे। इसका लाभ पुत्र को यह हुआ कि कैरे को पुस्तके पढने का अच्छा अवसर प्राप्त हो सका। २४ वर्ष की कम आयु मे अपने पिता के कार्य का भार सँभाल कर थोडे समय मे काफी धन प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने समाज विज्ञानो का अध्ययन प्रारम्भ किया। १८२५ ई०, १८५७ ई०, तथा १८५९ ई० मे उन्होने यूरोप की यात्रा की जिससे उनको काफी ज्ञान प्राप्त हुआ। वे अनेक लेखो, पुस्तिकाओ तथा निम्नलिखित पुस्तको के लेखक थे।
   1 **Principles of Political Economy**, तीन ग्रन्थो मे १८३७-१८४० ई० मे प्रकाशित हुई थी।
   2 **The Past, The Present, and The Future**, १८४८ ई० मे प्रकाशित हुई थी।
   3. **Principles of Social Sciences**, तीन ग्रन्थो मे १८५८-१८५९ ई० मे प्रकाशित हुई थी।
   4. **Essay on the Rate of Wage**, तीन ग्रन्थो मे १८३५ ई० मे प्रकाशित हुई थी।
   5 **The Harmony of interests**, १८५० मे प्रकाशित हुई थी।
   6. **The Unity of Law as Exhibited in the Relation of Physical, Social, Mental and Moral Science**, १८७२ ई० मे प्रकाशित हुई थी।

परन्तु बाद मे वे इन सिद्धान्तो के आलोचक बन गये थे। संस्थापित अर्थशास्त्र से जुदा होने के चिन्ह सर्वप्रथम उनकी पुस्तक **The Past, the Present and the Future** में, जो १८४८ ई० मे प्रकाशित हुई थी, विदित होते है। कैरे ने रिकार्डो के लगान के सिद्धान्त की कड़ी आलोचना की है। इस प्रकार कैरे की आर्थिक विचार-धारा में माल्थस के जनसख्या सिद्धान्त को कोई स्थान प्राप्त नही है। वे रिकार्डो तथा माल्थस के समान निराशावादी न होकर इसके विपरीत पूर्णतया आशावादी थे।

यद्यपि एक ओर कैरे एडम स्मिथ के प्रशंसक थे, परन्तु दूसरी ओर वे राष्ट्रवादी तथा संरक्षणवादी भी थे। जर्मन विचारक एडम मुलर के समान कैरे व्यक्तियो को समाज के छोटे-छोटे भागों के समान विचारते थे। उनके लिये राष्ट्र व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण था। कैरे के विचारो का भविष्य मे अमरीका मे आर्थिक विचारधारा के विकास पर गहरा प्रभाव पडा तथा आज वे अमरीकी सम्प्रदाय के नेता माने जाते हैं। उनके अमरीकी अनुयायियो, जिनकी सख्या घनी है, में सर्वश्री William Elder, E. P. Smith, H. C. Baird, Charles Nordhoff, Horace Greeley, Francis Bowen, Robert Ellis Thompson के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

सयुक्त राष्ट्र ऑफ अमरीका के अतिरिक्त यूरोप के जिस अन्य देश मे राष्ट्रवादियो का प्रभाव था वह जर्मनी था।[6] अमरीकी लेखको के समान जर्मन लेखकों ने भी संस्थापित विचारधारा की आलोचना की थी। वास्तव मे जर्मनी मे इस समय Romantic Movement का भारी प्रचार था तथा प्रसिद्ध जर्मन विचारक व दार्शनिक Immaneul Kant (१७२४ ई०-१८०४ ई०) तथा Fichte (१७६२ ई०-१८१४ ई०) ने संस्थापित विचारो की कडी आलोचना की थी। एडम स्मिथ ने धन को अर्थशास्त्र में परम महत्व दिया था। इन विचारकों ने नैतिकता तथा मनुष्य को महत्वपूर्ण घोषित किया। Fichte ने तो अपने **The Dignity of Man** (१७९४ ई०) नामक निबन्ध में मनुष्य को समस्त दर्शनशास्त्र का केन्द्र घोषित किया था। वे राज्य को एक प्राकृतिक संस्था मानते थे। Fichte ने अपने दर्शन-शास्त्र के द्वारा जर्मनी मे समाजवाद को दार्शनिक प्रेरणा प्रदान की थी।

एडम मुलर (१७७९ ई०–१८२९ ई०)
Adam Muller

लिस्ट के अतिरिक्त सबसे अधिक महत्वपूर्ण जर्मन राष्ट्रवादी एडम मुलर थे। उनका जन्म बर्लिन मे १७७९ ई० मे हुआ था। Gottingen में कानून तथा

6. जैसा कि स्वाभाविक है इंगलैंड मे कोई राष्ट्रवादी लेखक उत्पन्न नही हुआ था। इंगलेंड एडम स्मिथ तथा उसके विचारों का केन्द्र था।

धर्मशास्त्र का अध्ययन करने के पश्चात् वे कई राजनैतिक पदों पर नियुक्त रहे थे। उनकी प्रसिद्ध पुस्तकों में **On the Idea of the State (1809); The Elements of Politics** (3 vols. 1809); **The Theory of State Finance (1812)** तथा **An Essay on the New Theory of Money** (1816) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मुलर ने Fichte पर आक्रमण किया था। आरम्भ में वे एडम स्मिथ तथा उनके उदार विचारों के प्रशंसक थे, परन्तु शीघ्र ही वे उनके आलोचक बन गये।

मुलर के लिये राज्य एक जीवित प्राणी के समान था तथा व्यक्ति राज्य से भिन्न नहीं थे। राज्य एक ऐसे प्राणी के समान था जो सदा से जीवित है तथा सदा जीवित रहेगा। उनका कहना था कि किसी राष्ट्र का वास्तविक धन इस राष्ट्र के नागरिकों की निजी सम्पत्ति नहीं होता है, बल्कि इस राष्ट्र के राष्ट्रीय, नैतिक तथा मानसिक तत्व होते हैं। यह विचारधारा एडम स्मिथ की **Laissez faire** नीति तथा निजी हित के सिद्धान्त के बिल्कुल विपरीत है। मुलर की विचारधारा में एक शक्तिशाली राष्ट्र का विशेष महत्व है। फलस्वरूप मुलर की विचारधारा का उद्देश्य राष्ट्रवाद है। मुलर के विचारों ने नाजी राष्ट्र के निर्माताओं को काफी प्रभावित किया था।

विशेष अध्ययन सूची

1. L H. Haney . History of Economic Thought, Chapter XXI.
2. J F Bell . A. History of Economic Thought, Chapter 15.
3. Eric Roll : A History of Economic Thought, Chapter V.
4. Alexandar Gray : The Development of Economic Doctrine, Chapter VIII.
5. J. M. Ferguson : Landmarks of Economic Thought, Chapter XVII, pp 232-235
6. Phillips C. Newman : The Development of Economic Thought, Chapter XIII.

प्रश्न

1. Discuss briefly the contribution of Henry Charles Carey to economic thought.
2. What was the historical background that led to the emergence of the nationalist economists in the U. S A.

अध्याय १८

फ्रैडरिक लिस्ट

(Friedrich List)

प्रसिद्ध जर्मन अर्थशास्त्री फ्रैडरिक लिस्ट[1] का आर्थिक विचारधाराओं के इतिहास में एक विशेष स्थान है। वास्तव में लिस्ट को वर्तमान औद्योगिक जर्मनी का प्रवर्त्तक कहना अनुचित नही होगा। वे अर्थशास्त्रियों के राष्ट्रवादी सम्प्रदाय के उसी प्रकार प्रसिद्ध नेता है जिस प्रकार एडम स्मिथ अर्थशास्त्रियो के संस्थापक सम्प्रदाय के प्रसिद्ध नेता हैं।

---

1. राष्ट्रवादी जर्मन अर्थशास्त्री फ्रैडरिक लिस्ट (१७८६ ई०—१८४६ ई०) का जन्म जर्मनी मे Rentlingen Wurtemberg नामक स्थान पर १७८६ ई० में हुआ था। इसी स्थान पर उनकी प्रारम्भिक शिक्षा भी हुई थी। १७ वर्ष की कम आयु मे उन्होने Tubingen नगर मे क्लर्क के पद पर नौकरी आरम्भ की। यहाँ पर रहते हुये उन्होने Tubingen विश्वविद्यालय मे व्याख्यान सुनने आरम्भ किये थे। उन्होने सर्वप्रथम १८१७ ई० के लगभग एक निबन्ध लिखा था जिसमे उन्होने स्थानीय अधिकारियो से स्थानीय सरकार के प्रशासन सम्बन्धी सिद्धान्तो का अध्ययन करने का अनुरोध किया था। अपने इस निबन्ध मे उन्होंने इतने प्रभावशाली तर्क प्रस्तुत किये थे कि १८१८ ई० मे वे Tubingen विश्वविद्यालय मे राजनैतिक विज्ञान व लोक प्रशासन के नये विभाग मे प्रोफेसर नियुक्त किए गए। प्रोफेसर के पद से उन्होंने सरकारी नोकरशाही प्रणाली की आलोचना की तथा वैधानिक राजतन्त्र राज्य (Constitutional Monarchy) की स्थापना के पक्ष मे लेख लिखे थे। सरकार की आलोचना करने के कारण १८१६ ई० मे उनको अपने प्रोफेसरी के पद से त्यागपत्र देना पड़ा। तत्पश्चात् वे जर्मन वाणिज्य व औद्योगिक संघ के सलाहकार बन गए। इस संघ, जिसकी स्थापना मे उनका हाथ था, का उद्देश्य वस्तुओ पर जर्मन राज्यो के मध्य करो को समाप्त करना तथा समस्त जर्मनी के लिए एक सीमा कर लगाने की योजना का प्रचार करना था।

१८२० ई० मे वे Reutlingen के प्रतिनिधि के नाते जर्मन संसद के सदस्य निर्वाचित हुये तथा अपने भाषण मे सरकार की प्रचलित नीतियो की कड़ी आलोचना की तथा सरकारी आर्थिक नीतियों व प्रशासन प्रणाली

कोण से समान नही है अथवा एक देश विकसित तथा दूसरा देश अविकसित है तो ऐसी दशा मे स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के द्वारा प्राप्त होने वाले वास्तविक लाभ का अधिकाश भाग विकसित देश को ही प्राप्त होगा तथा अविकसित देश उद्योग के दृष्टिकोण से कभी विकसित न हो सकेगा। अविकसित देश का विकसित देश के हाथो आर्थिक शोषण होगा। लिस्ट का यह कहना था कि एक आर्थिक नीति जो

अमरीका मे लिस्ट ने वहाँ के सरक्षण आन्दोलन मे महत्वपूर्ण भाग लिया था तथा उस देश की प्रारम्भिक आयात-निर्यात कर सम्बन्धी नीति के बनाने मे लिस्ट का भारी योगदान था। अमरीका मे पाँच वर्ष तक रहने के पश्चात् वे जर्मनी मे अमरीका के वाणिज्य-दूत के पद पर नियुक्त होकर आये। यद्यपि लिस्ट को जर्मनी मे जर्मनी के वासियो का सम्मान प्राप्त न हो सका परन्तु भाग्यवश वे अमरीका को वापस नही आये। उन्होने जर्मनी के एकीकरण तथा राज्यो के मध्य शुल्क करो की समाप्ति के पक्ष मे काफी लिखा था। उन्होंने जर्मनी मे रेलो के विकास करने का भी भारी अनुरोध किया तथा इसी उद्देश्य को लेकर उन्होंने **Ueber ein Sachsische Eisenbahnsystem als Grundlage eines allgemeinan deutschen Eisenbahnsystems** नामक पुस्तिका भी लिखी थी जो Leipzig मे १८३३ ई० मे प्रकाशित हुई थी।

१८४१ ई० मे लिस्ट की प्रसिद्ध पुस्तक **The National System of Political Economy** प्रकाशित हुई जो एक प्रकार से लिस्ट के आर्थिक विचारो का सग्रह है। १८४६ ई० मे उनकी मृत्यु Tyrol मे जहाँ वे अवकाश प्राप्त करके आराम करने के लिये गये थे आत्महत्या करने के फलस्वरूप हुई।

लिस्ट ऐसे महापुरुषो का उदाहरण है जिनको यद्यपि उनके जीवन काल मे कोई सम्मान प्राप्त नही हुआ परन्तु जिनको मृत्यु के पश्चात राष्ट्रीय स्तर के नेताओ का सम्मान प्राप्त हुआ है। मृत्यु के पश्चात् जर्मनी मे वे अत्यधिक सम्मान के पात्र बने। जेना विश्वविद्यालय ने सम्मानार्थ डाक्टरी की उपाधि देकर स्वय को सम्मानित किया। उनके नाम पर अनेक स्कूलो व सडको के नाम रखे गए तथा उनकी याद को जीवित रखने के उद्देश्य से स्मारक बनाए गये।

लिस्ट के विचारो के अध्ययन को प्रोत्साहन प्रदान करने के हेतु १६२५ ई० मे हीडलबर्ग (Heidelberg) मे **Deutsche Friedrich List Gesellschaft** की स्थापना की गई। इसके अतिरिक्त जर्मनी की तानाशाही (Nazi) सरकार ने लिस्ट के लेखो का अपनी आर्थिक नीतियो के निर्माण मे प्रयोग किया। भाग्य की रेखाओ का भी अजीब चक्र है। लिस्ट को सम्मानित करने वाला यह वही जर्मन राष्ट्र था जिसने उनके जीवन काल मे देश मे उनके रहने को भी सहन नहीं किया था। परन्तु अन्त मे लिस्ट की देशभक्ति की भावना की ही विजय हुई।

किसी एक देश के लिये उपयुक्त सिद्ध हुई है यह आवश्यक नहीं है कि यह नीति किसी अन्य देश, जिसकी आर्थिक स्थिति पहले देश से भिन्न है, के लिये भी उपयुक्त सिद्ध हो। इसके विपरीत यह सम्भव है कि यह आर्थिक नीति दूसरे देश के राष्ट्रीय हितों के लिए घातक सिद्ध हो। इस सम्बन्ध मे लिस्ट ने इंगलैंड तथा जर्मनी का उदाहरण लेते हुए यह स्पष्ट किया कि यद्यपि इंगलैंड के लिए स्वतन्त्र व्यापार की नीति हितकारी है क्योंकि इस नीति के फलस्वरूप उसके उद्योगों को विदेशों के बाजार प्राप्त होने के कारण इंगलैंड का औद्योगिक विकास सम्भव हो पाया है परन्तु जर्मनी के आर्थिक विकास के लिये यह नीति घातक सिद्ध होगी। यदि जर्मनी का आर्थिक विकास करके जर्मनी को योरोप की उद्योगशाला बनाना है तो इसके लिए स्वतन्त्र व्यापार की नीति को न अपना कर संरक्षण की नीति को अनिवार्य रूप से अपनाना होगा। लिस्ट का कहना है कि जिन नीतियों व साधनों को अपना कर किसी एक देश का आर्थिक विकास होना है, यह आवश्यक नहीं है कि उन्हीं नीतियों व साधनों के उपयोग के द्वारा किसी अन्य देश का आर्थिक विकास भी सम्भव हो सकेगा। इस प्रकार लिस्ट ने सस्थापित आर्थिक सिद्धान्तों की सर्वव्यापकता की मान्यता को असत्य व गलत घोषित किया।

लिस्ट के मतानुसार राष्ट्रीय विकास के लिये राष्ट्रीय योजना के अनुसार राष्ट्रीय नीतियों का बनाना आवश्यक है। स्मिथ की विचारधारा इस के बिल्कुल विपरीत थी। स्मिथ के अनुसार समस्त ससार भिन्न राष्ट्रों के कुटुम्ब के समान था जिस मे जो नीति एक सदस्य के हित मे थी वही अन्य सदस्यों के लिये भी हितकारी थी। लिस्ट का कहना है कि समार राष्ट्रों का सघ तो अवश्य है परन्तु इस सघ के सदस्यों के हितों में एकरूपता का भारी अभाव होने के कारण कोई आर्थिक नीति सभी देशों के लिये हितकारी सिद्ध नहीं हो सकती है। ऐसा न कहना वास्तिविकता से दूर रह कर कल्पना के संसार मे रहने के समान है। लिस्ट ने एडम स्मिथ के विश्वमित्रत्व का विरोध किया तथा वे संरक्षण की नीति के पक्के प्रचारक थे। सस्थापक सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त की आलोचना करते हुये लिस्ट ने लिखा है कि सस्थापक सम्प्रदाय का अर्थशास्त्र "आधाररहित बेपेंदीदार विश्वमित्रत्व की मान्यता पर आधारित है तथा अनेकों दोषों से परिपूर्ण है इस के विपरीत मेरे अर्थशास्त्र की प्रमुख विशेषता 'राष्ट्रीयता' (Nationality) है। इस राष्ट्रीयता का स्थान व्यक्तिवाद (Individualism) व विश्वमित्रत्व (Cosmopolitanism), जो समस्त मानवता के विचार पर आधारित है, के मध्य है।"

लिस्ट ने यह भी स्पष्ट किया कि एडमस्मिथ तथा जे० बी० से ने राजनीतिक अर्थशास्त्र की गलत परिभाषा की थी। लिस्ट ने बताया कि सच्चे राजनीतिक अर्थशास्त्र का लक्ष्य तो यह बतलाना है कि "ससार की वर्तमान परिस्थिति तथा अपने विशेष राष्ट्रीय सम्बन्धों को ध्यान मे रखते हुये कोई राष्ट्र किस प्रकार अपनी आर्थिक

स्थति को सुधार सकता है। इसके विपरीत एडम स्मिथ का विश्वराजनीतिक अर्थशास्त्र इस मान्यता पर आधारित है कि विश्व के समस्त राष्ट्र एक समाज के रूप मे सदा शान्ति से रहते है।"[2]

लिस्ट की पुस्तक National System of Political Economy, जिसमे लिस्ट ने सरक्षण की नीति का समर्थन किया है उचित समय पर प्रकाशित हुई थी। लिस्ट ने पुस्तक मे संरक्षण के पक्ष मे इतिहास तथा अपने अनुभव के आधार पर काफी उदाहरण दिये है। उस समय जर्मनी की खराब आर्थिक अवस्था लिस्ट के विचारों के लिये एक प्रेरणा का स्रोत बनी थी। औद्योगीकरण के लिये आवश्यक साधन पर्याप्त मात्रा मे होते हुये भी जर्मन उद्योग अभी भी अविकसित शिशु अवस्था मे थे यद्यपि इन को स्थापित हुये लगभग दो दशाब्दी हो गई थी। इस का क्या कारण था? लिस्ट के अनुसार जर्मनी मे उद्योगो के विकसित न होने का एकमात्र कारण यह था कि इन उद्योगो को इगलैड के विकसित उद्योगों से प्रतियोगिता करनी पडती थी। इंगलैड की बनी वस्तुएँ जर्मनी के बाजारो मे सस्ती कीमतो पर प्राप्त हो जाती थी। लिस्ट इस सत्य से भली प्रकार परिचित थे कि जो स्वतन्त्र व्यापार की नीति इगलैड के लिये आर्थिक समृद्धि का स्रोत थी वही नीति जर्मनी के आर्थिक व औद्योगिक विकास के लिये शाप सिद्ध हो रही थी।

लिस्ट ने स्वय यह देखा था कि किस प्रकार फ्रान्स तथा संयुक्त राष्ट्र ऑफ अमरीका मे इगलैड की बनी वस्तुओ पर आयात कर लगा कर सरक्षण की नीति के द्वारा राष्ट्रीय उद्योगो का विकास सम्भव हो पाया था। फ्रान्सीसी सरकार को १७८६ ई० की एडन की सधि के खराब आर्थिक परिणाम भली प्रकार विदित हो गये थे तथा वहाँ की सरकार ने इंगलैड से वस्तुओ के आयातो पर निषेधार्थक आयात कर (Prohibitive Tariffs) लगा कर देश के उद्योगों को आवश्यक सरक्षण प्रदान किया था। यही सयुक्त राष्ट्र ऑफ अमरीका की भी स्थिति थी जहाँ पर इंगलैड की बनी वस्तुओ पर आयात कर लगाकर देश मे उद्योगो का विकास करना सरकार का परम कर्तव्य था। क्या जर्मनी के लिये अपने उद्योगो के विकास के हेतु आयात करो की नीति को अपनाना अनुचित था? लिस्ट के लिये इस प्रश्न का केवल एक ही उत्तर था और वह उत्तर था 'नही'।

इस के अतिरिक्त लिस्ट ने स्वय यह देखा कि इंगलैड के समान विकसित देश भी अपने राष्ट्रीय हितो के अनुसार एक ही समय दो विरोधी प्रकार की नीतियो को अपना रहा था। यो तो कहने को एडम स्मिथ का जन्म इगलैड मे हुआ था तथा इगलैड स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की नीति का परम भक्त था परन्तु एक ओर तो इगलैड के शासक इगलैड के उद्योगो के विकास के दृष्टिकोण से स्वतन्त्र व्यापार

2. *National System of Political Economy Book II, Chapter* XI, p. 99

किसी एक देश के लिये उपयुक्त सिद्ध हुई है यह आवश्यक नहीं है कि यह नीति किसी अन्य देश, जिसकी आर्थिक स्थिति पहले देश से भिन्न है, के लिये भी उपयुक्त सिद्ध हो। इसके विपरीत यह सम्भव है कि यह आर्थिक नीति दूसरे देश के राष्ट्रीय हितों के लिए घातक सिद्ध हो। इस सम्बन्ध में लिस्ट ने इंगलैंड तथा जर्मनी का उदाहरण लेते हुए यह स्पष्ट किया कि यद्यपि इंगलैंड के लिए स्वतन्त्र व्यापार की नीति हितकारी है क्योंकि इस नीति के फलस्वरूप उसके उद्योगों को विदेशों के बाजार प्राप्त होने के कारण इंगलैंड का औद्योगिक विकास सम्भव हो पाया है परन्तु जर्मनी के आर्थिक विकास के लिये यह नीति घातक सिद्ध होगी। यदि जर्मनी का आर्थिक विकास करके जर्मनी को योरोप की उद्योगशाला बनाना है तो इसके लिए स्वतन्त्र व्यापार की नीति को न अपना कर संरक्षण की नीति को अनिवार्य रूप से अपनाना होगा। लिस्ट का कहना है कि जिन नीतियों व साधनों को अपना कर किसी एक देश का आर्थिक विकास होता है, यह आवश्यक नहीं है कि उन्हीं नीतियों व साधनों के उपयोग के द्वारा किसी अन्य देश का आर्थिक विकास भी सम्भव हो सकेगा। इस प्रकार लिस्ट ने सस्थापित आर्थिक सिद्धान्तों की सर्वव्यापकता की मान्यता को असत्य व गलत घोषित किया।

लिस्ट के मतानुसार राष्ट्रीय विकास के लिये राष्ट्रीय योजना के अनुसार राष्ट्रीय नीतियों का बनाना आवश्यक है। स्मिथ की विचारधारा इस के बिल्कुल विपरीत थी। स्मिथ के अनुसार समस्त ससार भिन्न राष्ट्रों के कुटुम्ब के समान था जिस मे जो नीति एक सदस्य के हित में थी वही अन्य सदस्यों के लिये भी हितकारी थी। लिस्ट का कहना है कि ससार राष्ट्रों का सघ तो अवश्य है परन्तु इस सघ के सदस्यों के हितों में एकरूपता का भारी अभाव होने के कारण कोई आर्थिक नीति सभी देशों के लिये हितकारी सिद्ध नहीं हो सकती है। ऐसा न कहना वास्तविकता से दूर रह कर कल्पना के ससार मे रहने के समान है। लिस्ट ने एडम स्मिथ के विश्वमित्रत्व का विरोध किया तथा वे सरक्षण की नीति के पक्के प्रचारक थे। सस्थापक सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त की आलोचना करते हुये लिस्ट ने लिखा है कि सस्थापक सम्प्रदाय का अर्थशास्त्र "आधाररहित बेपेंदीदार विश्वमित्रत्व की मान्यता पर आधारित है तथा अनेकों दोषों से परिपूर्ण है इस के विपरीत मेरे अर्थशास्त्र की प्रमुख विशेषता 'राष्ट्रीयता' (Nationality) है। इस राष्ट्रीयता का स्थान व्यक्तिवाद (Individualism) व विश्वमित्रत्व (Cosmopolitanism), जो समस्त मानवता के विचार पर आधारित है, के मध्य है।"

लिस्ट ने यह भी स्पष्ट किया कि एडमस्मिथ तथा जे० बी० से ने राजनीतिक अर्थशास्त्र की गलत परिभाषा की थी। लिस्ट ने बताया कि सच्चे राजनीतिक अर्थशास्त्र का लक्ष्य तो यह बतलाना है कि "ससार की वर्तमान परिस्थिति तथा अपने विशेष राष्ट्रीय सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुये कोई राष्ट्र किस प्रकार अपनी आर्थिक

स्थति को सुधार सकता है। इसके विपरीत एडम स्मिथ का विश्वराजनीतिक अर्थ-शास्त्र इस मान्यता पर आधारित है कि विश्व के समस्त राष्ट्र एक समाज के रूप मे सदा शान्ति से रहते है।"[2]

लिस्ट की पुस्तक National System of Political Economy, जिसमें लिस्ट ने सरक्षण की नीति का समर्थन किया है उचित समय पर प्रकाशित हुई थी। लिस्ट ने पुस्तक मे सरक्षण के पक्ष मे इतिहास तथा अपने अनुभव के आधार पर काफी उदाहरण दिये हैं। उस समय जर्मनी की खराब आर्थिक अवस्था लिस्ट के विचारो के लिये एक प्रेरणा का स्रोत बनी थी। औद्योगीकरण के लिये आवश्यक साधन पर्याप्त मात्रा मे होते हुये भी जर्मन उद्योग अभी भी अविकसित शिशु अवस्था मे थे यद्यपि इन को स्थापित हुये लगभग दो दशाब्दी हो गई थी। इस का क्या कारण था? लिस्ट के अनुसार जर्मनी के उद्योगो के विकसित न होने का एकमात्र कारण यह था कि इन उद्योगो को इगलैंड के विकसित उद्योगो से प्रतियोगिता करनी पड़ती थी। इंगलैंड की बनी वस्तुएं जर्मनी के बाजारों में सस्ती कीमतों पर प्राप्त हो जाती थी। लिस्ट इस सत्य से भली प्रकार परिचित थे कि जो स्वतन्त्र व्यापार की नीति इगलैंड के लिये आर्थिक समृद्धि का स्रोत थी वही नीति जर्मनी के आर्थिक व औद्योगिक विकास के लिये शाप सिद्ध हो रही थी।

लिस्ट ने स्वय यह देखा था कि किस प्रकार फ्रान्स तथा सयुक्त राष्ट्र ऑफ अमरीका मे इगलैंड की बनी वस्तुओ पर आयात कर लगा कर सरक्षण की नीति के द्वारा राष्ट्रीय उद्योगों का विकास सम्भव हो पाया था। फ्रान्सीसी सरकार को १७८६ ई० की एडन की सधि के खराब आर्थिक परिणाम भली प्रकार विदित हो गये थे तथा वहाँ की सरकार ने इंगलैंड से वस्तुओ के आयातों पर निषेधार्थक आयात कर (Prohibitive Tariffs) लगा कर देश के उद्योगो को आवश्यक सरक्षण प्रदान किया था। यही सयुक्त राष्ट्र ऑफ अमरीका की भी स्थिति थी जहाँ पर इंगलैंड की बनी वस्तुओ पर आयात कर लगाकर देश मे उद्योगों का विकास करना सरकार का परम कर्तव्य था। क्या जर्मनी के लिये अपने उद्योगो के विकास के हेतु आयात करो की नीति को अपनाना अनुचित था? लिस्ट के लिये इस प्रश्न का केवल एक ही उत्तर था और वह उत्तर था 'नहीं'।

इस के अतिरिक्त लिस्ट ने स्वय यह देखा कि इगलैंड के समान विकसित देश भी अपने राष्ट्रीय हितों के अनुसार एक ही समय दो विरोधी प्रकार की नीतियों को अपना रहा था। यों तो कहने को एडम स्मिथ का जन्म इगलैंड मे हुआ था तथा इंगलैंड स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की नीति का परम भक्त था परन्तु एक ओर तो इंगलैंड के शासक इगलैंड के उद्योगो के विकास के दृष्टिकोण से स्वतन्त्र व्यापार

---

2. *National System of Political Economy Book II, Chapter XI, p. 99*

की नीति के समर्थक थे तथा दूसरी ओर Corn Laws की नीति के अन्तर्गत जर्मनी से खाद्य वस्तुओं के आयातों पर रोक लगा रहे थे। ऐसा क्यों ? एक ही देश एक ही समय दो भिन्न विपरीत नीतियों का प्रयोग क्यों करता है ? लिस्ट के लिये इसका कारण समझना कठिन नहीं था। इंगलैंड के किसानों व भूस्वामियों के हितों को Corn Laws की संरक्षण नीति तथा उद्योगपतियों के हितों को स्वतन्त्र व्यापार की नीति के द्वारा सुरक्षित रखा जा सकता था। जर्मनी को आर्थिक दासता से केवल संरक्षण की नीति के द्वारा ही मुक्ति प्राप्त हो सकती थी।

लिस्ट की यह विचारधारा जिस मे संरक्षण को केन्द्रीय स्थान प्राप्त था 'सस्थापक सम्प्रदाय' के तर्कों के बिल्कुल विपरीत थी। सस्थापक सम्प्रदाय—एडम स्मिथ तथा उनके अनुयायियों— का कहना था कि स्वतन्त्र व्यापार की नीति के द्वारा प्रत्येक राष्ट्र के लिये अपनी वस्तुओं को सबसे महगे बाजार मे बेचना तथा प्रत्येक राष्ट्र के लिये अपनी आवश्यकताओं की वस्तुओं को सबसे सस्ते बाजारों से खरीदना सम्भव है तथा फलस्वरूप उपभोग सम्बन्धी धन (Consumable Wealth) (अथवा लिस्ट के शब्दो मे विनिमय मूल्यों—Exchangeable Values)[3]—मे वृद्धि होती है। लिस्ट ने कहा कि ससार के देशो की आर्थिक समस्याओं को ठीक प्रकार से समझने के लिये इस विचारधारा का खण्डन करना अनिवार्य है।

राष्ट्रीयता का विचार

लिस्ट ने आर्थिक विचारो के इतिहास मे दो बिल्कुल नये विचारो का प्रतिपादन किया। प्रथम, एडम स्मिथ के विश्वमित्रत्व के विचार के स्थान पर लिस्ट ने राष्ट्रीयता के नये विचार का प्रतिपादन किया। लिस्ट ने बतलाया कि एडम स्मिथ समस्त ससार को एक मानव समाज समझते थे जिसमें मानव जाति शान्ति से रहती है। एडम स्मिथ ने इस महान सत्य को भुला दिया था कि व्यक्ति मानव समाज के सदस्य होने के पूर्व किसी राष्ट्र के सदस्य अवश्य होते हैं। लिस्ट का कहना है कि मनुष्य तथा विश्वव्यापी मानव समाज के मध्य राष्ट्रो का इतिहास होता है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी राष्ट्र का अग अवश्य होता है तथा उसकी समृद्धि उस राष्ट्र की समृद्धि, जिसका वह सदस्य होता है, पर निर्भर होती है।

लिस्ट का कहना है कि यद्यपि नि सन्देह विश्वमित्रत्व का विचार एक प्रशसनीय विचार है परन्तु इसको व्यावहारिक स्थाई रूप देने के लिये यह आवश्यक है कि विश्व के सभी राष्ट्र आर्थिक दृष्टिकोण से समान हों। जब तक ससार मे कुछ राष्ट्र अविकसित तथा अन्य कुछ राष्ट्र विकसित रहेंगे तब तक विश्वमित्रत्व का विचार कोरी कल्पना रहेगा। यदि हम राष्ट्रों के एक ऐसे सघ की स्थापना करना चाहते हैं

---

3. *Exchangeable Value* शब्द, जिस का लिस्ट ने प्रयोग किया है, का अर्थ भौतिक लाभ से है।

जहाँ सच्ची मित्रता के वातावरण में मानव जाति रहे तो इसके लिये यह आवश्यक है कि यह संघ समान आर्थिक शक्ति वाले राष्ट्रो का संघ होना चाहिये। असमान राष्ट्रों के संघ मे एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्रो द्वारा शोषण किये जाने की भयानक सम्भावना सदा बनी रहेगी। इस दृष्टिकोण से यदि देखा जाये तो राजनीतिक अर्थशास्त्र को वह विज्ञान कहा जायेगा जिसका उद्देश्य "यह शिक्षा प्रदान करना है कि संसार की वर्तमान अवस्था तथा अपने निजी राष्ट्रीय सम्बन्धो को ध्यान मे रखते हुये कोई राष्ट्र अपनी आर्थिक स्थिति को किस प्रकार सुधार सकता है।"[4]

लिस्ट ने राष्ट्र के आर्थिक विकास की प्रक्रिया मे भिन्न आर्थिक अवस्थाओं (Economic Stages) का चित्रण किया है। लिस्ट के विचारानुसार प्रत्येक राष्ट्र के आर्थिक विकास की निम्नलिखित पाँच अवस्थाए[5] अथवा सीडियाँ होती है, जिनसे होकर साधारणतया राष्ट्र आर्थिक विकास के शिखर को प्राप्त कर पाता है।

(१) जगली अवस्था (Savage Stage)

(२) चरागाह अवस्था (Pastoral Stage)

(३) कृषि अवस्था (Agricultural Stage)

(४) कृषि-निर्माण अवस्था (Agricultural-manufacturing Stage)

(५) कृषि-निर्माण-वाणिज्य अवस्था (Agricultural-manufacturing-Commercial Stage)

राष्ट्र आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से अन्तिम अवस्था को प्राप्त करने के के पश्चात् ही सुदृढ होता है। प्रत्येक राष्ट्र की आर्थिक नीति का लक्ष्य इस अवस्था को प्राप्त करना होना चाहिये। जब तक किसी राष्ट्र का वास्तविक आर्थिक विकास कृषि-निर्माण-वाणिज्य अवस्था को प्राप्त नही कर पाता है उस समय तक सरक्षण की नीति के द्वारा देश मे उद्योगो के विकास की आवश्यकता रहती है। लिस्ट ने आर्थिक विकास की उपरोक्त भिन्न अवस्थाओं की वास्तविकता को इतिहास के उदाहरणों द्वारा सिद्ध किया है। इसके अतिरिक्त राष्ट्र के विदेशी व्यापार के विकास के लिए नौ सेना (Navy) तथा उपनिवेशो का होना भी वाछनीय है।

परन्तु क्या सभी देश आर्थिक विकास की इस अन्तिम अवस्था को प्राप्त कर सामान्य स्थिति को पहुँच सकते है? इस सम्बन्ध मे लिस्ट के मतानुसार सभी राष्ट्र इस पूर्ण विकास की स्थिति को प्राप्त नही कर सकते है। विकास की अन्तिम अवस्था को प्राप्त करने के लिये कुछ बातों का होना आवश्यक है। इसके लिये देश

4. *National System*, . 99
5. *Ibid* : p. 143.

मे घने क्षेत्रफल, प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता तथा समशीतोष्ण जलवायु[6] (Temperate Climate) का होना आवश्यक है। जिस समय देश मे ये सभी बातें विद्यमान हो तो उस समय उस देश की सरकार का आर्थिक विकास की अन्तिम अवस्था को प्राप्त करना परम कर्त्तव्य होना चाहिये। लिस्ट के विचारानुसार केवल क्षेत्रफल को छोड, जर्मनी मे शेष वे सभी शक्तियाँ उपस्थित थी जो देश के पूर्ण आर्थिक विकास के लिये आवश्यक होती है। क्षेत्रफल की कमी को पूरा करने के हेतु लिस्ट ने हालैण्ड तथा डेनमार्क का जर्मनी के साथ एकीकरण करने का सुझाव दिया।[7] इस प्रकार राष्ट्रीय वाणिज्य नीति का उद्देश्य आर्थिक व औद्योगिक विकास करके समार मे एक शक्तिशाली राष्ट्र की स्थापना करना होना चाहिये।

लिस्ट ने जिस दूसरे नये आर्थिक विचार का प्रतिपादन किया वह उत्पादक शक्ति का विचार था। एडम स्मिथ तथा उनके अनुयायियो ने भौतिक धन की प्राप्ति को ही आर्थिक क्रियाओ व राष्ट्रीय आर्थिक नीतियो का एक मात्र लक्ष्य घोषित किया था। लिस्ट के विचारानुसार धन की अपेक्षा धन उत्पन्न करने की शक्ति अधिक महत्वपूर्ण होनी चाहिये। देश की सरकार की आर्थिक नीतियो का एक मात्र तथा परम उद्देश्य देश मे उत्पादन शक्तियो का निर्माण करना तथा इनको सुरक्षित रखना होना चाहिये क्योकि तभी राष्ट्र सच्चे शब्दो मे स्थाई रूप से शक्तिशाली तथा स्थाई आर्थिक समृद्धि को प्राप्त करने के योग्य बन सकेगा। राष्ट्र के जीवन मे वर्तमान की अपेक्षा भविष्य अधिक महत्वपूर्ण होता है तथा जो नीति भविष्य को भुलाकर केवल वर्तमान मे धन की प्राप्ति पर ही जोर देती है वह नीति सदा राष्ट्र के दीर्घकालीन हितो के लिये घातक सिद्ध होती है। लिस्ट ने इस सम्बन्ध मे लिखा है कि "किसी भी राष्ट्र को सभ्यता, प्रवीणता तथा संयुक्त उत्पादन शक्तियो को प्राप्त करने के हेतु *भौतिक समृद्धि को त्याग करना हितकारी सिद्ध होगा, भविष्य मे सुविधाओ को* प्राप्त करने के हेतु कुछ वर्तमान सुविधाओ का त्याग करना राष्ट्रीय हित मे

---

6 ऐसा प्रतीत होता है कि लिस्ट भी अन्य यूरोपीय लेखको के समान आर्थिक विकास की अन्तिम स्थिति को प्राप्त कर औद्योगीकरण को केवल यूरोप के समशीतोष्ण जलवायु वाले देशो का ही एकाधिकार समझता था। एशिया व अफ्रीका के उष्णकटिबन्ध मे स्थित देश निर्माण उद्योगो के विकास के अयोग्य थे क्योकि उष्ण जलवायु निर्माण उद्योगो के विकास मे बाधक सिद्ध होती है। ऐसा लिस्ट का विचार था। एशिया के देशो मे गत एक दशाब्दी मे हुये आर्थिक व औद्योगिक विकास से यह भली प्रकार विदित है कि लिस्ट का यह विचार असत्य है।

7 हालैंड व डेनमार्क प्राप्त हो जाने पर जर्मन राष्ट्र को नौसेना शक्ति, विदेशी व्यापार तथा उपनिवेश, जिन की इस को आवश्यकता है, प्राप्त हो जावेगी।

होगा।"[8] सक्षेप में लिस्ट की विचारधारा में वर्तमान की अपेक्षा भविष्य तथा उत्पादन अथवा भौतिक धन की अपेक्षा धन उत्पादन करने की शक्तियो का अधिक महत्व है।

परन्तु यहाँ पर प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि ये उत्पादक शक्तियाँ जिन को लिस्ट ने अपनी विचारधारा मे इतना अधिक महत्व दिया है क्या है ? लिस्ट के अनुसार उत्पादक शक्तियाँ वे सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक तत्व व सस्था है जो किसी राष्ट्र के नागरिको की उत्पादक शक्तियो तथा इन के द्वारा राष्ट्रीय समृद्धि व प्रगति का स्रोत होती है। लिस्ट के अनुसार किसी राष्ट्र मे विद्यमान नैतिक व राजनैतिक सस्थाएँ, उस राष्ट्र के नागरिको को प्राप्त विचार तथा अन्त करण की स्वतन्त्रता, ग्रन्थ छापने की स्वतन्त्रता, न्यायसभ्य (Jury) द्वारा मुकदमो की सुविधा, न्याय के प्रकाशन की स्वतन्त्रता, प्रशासन का नियन्त्रण तथा ससदीय सरकार उस राष्ट्र की उत्पादक शक्तियाँ होती है क्योकि इन सब का उस राष्ट्र के श्रमिको पर अच्छा तथा उत्तेजक प्रभाव पडने के कारण उन की कार्यक्षमता मे निस्सन्देह वृद्धि होती है। इस सम्बन्ध मे विचारो की स्वतन्त्रता को एक महत्वपूर्ण उत्पादक शक्ति बताते हुये लिस्ट ने इतिहास के पन्नो से फ्रान्स मे Revocation of Nantes तथा स्पेन मे Spanish Inquisition के उदाहरण प्रस्तुत किये है।

लिस्ट ने लिखा है कि किसी राष्ट्र की सबसे अधिक शक्तिशाली उत्पादक शक्ति वहा की दस्तकारियाँ होती है। दस्तकारियो के द्वारा राष्ट्र की नैतिक शक्तियों का सबसे अधिक विकास सम्भव हो पाता है। इस सम्बन्ध म लिस्ट ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये है : "मानसिक व शारीरिक शक्तियो मे वृद्धि करने के प्रयत्न, प्रतिस्पर्धा, तथा स्वतन्त्रता की भावनाये सभी दस्तकारियो व वाणिज्य की अवस्थाओ के प्रतीक होते है। जो देश केवल कच्ची सामग्री का उत्पादन करता है उस देश के लोगो की बुद्धि सुस्त व शरीर काहिल होता है तथा वे पुराने विचारो, रीति रिवाजो, विधियो व प्रक्रियाओ के अन्धविश्ववासी होते है। ऐसे देश मे सभ्यता, समृद्धि तथा स्वतन्त्रता का भारी अभाव होता है।"[9]

लिस्ट का कहना है कि केवल दस्तकारियो व उद्योगो के विकास के द्वारा ही राष्ट्र के उत्पादन साधनो का इष्टतम (optimum) उपयोग सम्भव हो सकता है। उद्योगो के द्वारा राष्ट्र के जल व वायु शक्ति, खनिज पदार्थ तथा अन्य साधनो का अच्छा उपयोग सम्भव हो जाता है। यही नही बल्कि उद्योग व दस्तकारी कृषि की पूरक होने के नाते देश के कृषि उद्योग के सन्तुलित विकास को सम्भव बनाती है। उद्योग कृषि वस्तुओं का उपभोग करते हैं। फलस्वरूप जिस राष्ट्र के उद्योग विकसित रूप मे होते है वहाँ की कृषि को कृषि उत्पादन की माँग के लिये विदेशो

---

8. *National System*, p. 117.
9. Ibid · Chapter, XVII

पर आश्रित नही होना पड़ता है। स्वयं देश में उद्योगों के उपस्थित होने के कारण देश की कृषि वस्तुओं की देश में ही माँग होने लगती है। देश के प्रत्येक भाग में दस्तकारी व उद्योगों का विकास हो जाने से देश के प्रायः सभी भागों में कृषि उत्पादन का भी विकास हो जाता है। इनके दो मुख्य अच्छे परिणाम होते हैं। प्रथम, देश की अर्थव्यवस्था सुदृढ़ तथा सन्तुलित बन जाती है तथा दूसरे, देश विदेशों के शोषण से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

लिस्ट के लिये उद्योग एक महान सामाजिक शक्ति है। यह राष्ट्र में पूँजी व श्रम की जननी है तथा यदि इनकी स्थापना व विकास के लिये राष्ट्र को वर्तमान में कुछ त्याग भी करना पड़े तो भी यह मूल्य अधिक नहीं है। औद्योगीकरण से देश की भविष्य उत्पादन शक्ति मे वृद्धि होती है। परन्तु राष्ट्र के इस औद्योगीकरण को किस प्रकार व्यावहारिक रूप दिया जा सकता है? लिस्ट के मतानुसार इस कार्य को करने का केवल एक ही उपाय है और वह है संरक्षण। संरक्षण राष्ट्र के औद्योगिक व आर्थिक विकास की कुँजी है। इस सम्बन्ध मे लिस्ट ने बड़ी सुन्दर उपमा के द्वारा संरक्षण की पवन से तुलना करते हुये इस प्रकार लिखा है: "यह सत्य है कि अनुभव हमें यह बतलाता है कि पवन बीज को एक क्षेत्र से दूसरे अन्य क्षेत्रों मे ले जाकर बखेर देती है तथा इस प्रकार बन्जर प्रदेश (moorland) भी घने वन बन गये हैं। परन्तु क्या वनाधिकारी के लिये पवन की घने समय तक प्रतीक्षा करना बुद्धिमानी होगी?" लिस्ट का कहना है कि आयात-कर के द्वारा इस पवन के शक्ति को उत्पन्न किया जा सकता है। इस प्रकार लिस्ट संरक्षण के सिद्धान्त के प्रतिपादक तथा राष्ट्रवादी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध नेता हैं।

लिस्ट के संरक्षण की विशेषता

लिस्ट की संरक्षण नीति एक साधारण प्रकार की आर्थिक नीति नहीं है जिसकी सुविधा सभी देशों को अथवा किसी देश को सब समय प्राप्त हो सकती है। राष्ट्र इस नीति की शरण विशेष परिस्थितियों मे ही ले सकता है। विकसित देशों का इस संरक्षण से कोई सम्बन्ध नहीं है। केवल अविकसित राष्ट्र ही इस संरक्षण की सुविधा को प्राप्त करके इसके द्वारा अपना औद्योगिक विकास कर सकते हैं। इतना ही नहीं बल्कि अविकसित राष्ट्रों को भी यह अधिकार सदा के लिये प्राप्त नहीं है। यह सुविधा एक सप्रतिबन्ध (conditional) सुविधा है जिसका प्रयोग केवल उसी समय तक किया जा सकता है जब तक राष्ट्र के उद्योग सुदृढ़ नहीं बन जाते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि लिस्ट की संरक्षण नीति अविकसित राष्ट्र मे उद्योगों को सुदृढ बनाने का साधन मात्र है। विकसित राष्ट्र संरक्षण की नीति को इस तर्क के आधार पर नहीं अपना सकता है कि अन्य अविकसित राष्ट्र ने संरक्षण की नीति को अपनाया है। लिस्ट ने स्वयं अपने इस संरक्षण की विशेषताओं की निम्न प्रकार व्याख्या की है।

(१) इस नीति का लक्ष्य राष्ट्र में औद्योगिक शिक्षा का प्रसार करना है। ऐसी दशा में यह स्पष्ट है कि इंगलैंड के समान राष्ट्र जहाँ औद्योगिक शिक्षा का पूर्ण प्रसार हो चुका है इस नीति को नहीं अपना सकते है।

(२) इस नीति का प्रयोग करने के पूर्व राष्ट्र के लिये यह सिद्ध करना आवश्यक है कि राष्ट्र के औद्योगिक विकास की प्रगति मे विदेशी प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्र के विकसित सुदृढ निर्माण उद्योगो की प्रतियोगिता बाधक सिद्ध हो रही है। ऐसी परिस्थिति मे यह उचित होगा कि राष्ट्रीय उद्योगों को आयात-करो के द्वारा सरंक्षण प्रदान किया जावे। ऐसी परिस्थिति मे सरक्षण की नीति की उपयुक्तता को स्पष्ट करते हुये लिस्ट ने लिखा है कि जिस प्रकार बच्चा पुष्ट मनुष्य से लडने मे विजयी नही हो सकता है तथा उसको संरक्षण की आवश्यकता होती है, ठीक इसी प्रकार शिशु अथवा अविकसित उद्योग पूर्णतया विकसित तथा दृढ उद्योगो से स्पर्धा मे कभी सफल नही हो सकते है तथा उनके जीवन व विकास को सम्भव बनाने के लिये उनको इस स्पर्धा से संरक्षण प्रदान करना अनिवार्य है। सक्षेप में लिस्ट की संरक्षण नीति शिशु उद्योग सरक्षण नीति (Infant Industry Protection Policy) है।

(३) किसी उद्योग को उस उद्योग की बाल अवस्था मे सरक्षण केवल उतने ही समय तक प्रदान किया जाना चाहिये जब तक वह उद्योग सुदृढ नही बन जाता है। एक बार पुष्ट बन जाने के पश्चात सरक्षण को समाप्त कर देना चाहिये क्योकि उद्योग विकसित व सुदृढ हो जाने के पश्चात दूसरे देशो मे स्थित समान उद्योगो से स्पर्धा का सामना कर सकता है।

(४) लिस्ट का संरक्षण केवल उद्योगो तक ही सीमित है। लिस्ट के मतानुसार कृषि सरक्षण का पात्र नही हो सकता है। लिस्ट ने अपने इस तर्क के पक्ष में दो कारण दिये है। प्रथम, उद्योगो को प्रदान किया सरक्षण अप्रत्यक्ष रूप मे कृषि को भी सरक्षण प्रदान करता है। कृषि की प्रगति देश मे उद्योगो की प्रगति पर निर्भर है तथा सरक्षण की नीति के अन्तर्गत हुये औद्योगिक विकास के फलस्वरूप कृषि की वस्तुओ की माँग मे वृद्धि होने के कारण कृषि की भी प्रगति होगी। इस प्रकार उद्योगो को प्रदान किया गया सरक्षण कृषि के हितों को भी सुरक्षित करता है। दूसरे, इसके अतिरिक्त लिस्ट का कहना है कि यदि कृषि को सरक्षण प्रदान किया जावेगा तो खाद्य सामग्री तथा अन्य औद्योगिक कच्ची सामग्री की कीमतो मे वृद्धि होगी जो स्वय राष्ट्र के उद्योगों के विकास के लिये घातक सिद्ध होगी।

यह ध्यान रहना चाहिये कि लिस्ट का सरक्षण तर्क वास्तविकता पर आधारित था। लिस्ट का परम उद्देश्य जर्मनी में उद्योगों व कृषि का विकास करना था। यहाँ पर प्रश्न उत्पन्न होता है कि लिस्ट के समान सरक्षण की नीति मे विश्वास करने

वाला व्यक्ति कृषि के सम्बन्ध मे स्वतन्त्र व्यापार की नीति का समर्थन क्यो करता है ? इस प्रश्न का उत्तर वही होगा जो इस प्रश्न का है कि इगलैड के समान स्वतन्त्र व्यापार देश Corn Laws की नीति के द्वारा खाद्य के आयातो पर क्यो प्रतिबन्ध लगा रहा था ? जबकि एक ओर इगलैड के उद्योगो के विकास के लिये स्वतन्त्र व्यापार नीति लाभप्रद थी दूसरी ओर इगलैड की कृषि अर्थव्यवस्था को सुदृढ बनाने के लिये इसको जर्मनी से सस्ती खाद्य सामग्री के आयातो से सुरक्षित रखना आवश्यक था। इसी उद्देश्य के हेतु Corn Laws की नीति को अपनाया गया था। लिस्ट के लिये भी एक ओर तो जर्मनी के उद्योगो को इगलैड के विकसित उद्योगो की स्पर्धा मे सुरक्षित रखने के लिये सरक्षण अनिवार्य था तथा दूसरी ओर कृषि के विकास के दृष्टिकोण से यह भी आवश्यक था कि इगलैड मे जर्मन खाद्य सामग्री के आयातों पर किसी प्रकार की रोक न लगाई जाये। इस के लिये कृषि वस्तुओ के क्षेत्र मे स्वतन्त्र व्यापार की नीति का समर्थन करना अनिवार्य था।

लिस्ट के विचारों की प्रेरणा के स्रोत

यद्यपि फासीसी लेखक दूपिन (Dupin) तथा चप्तल (Chaptel) के विचारो का लिस्ट पर सम्भवत कुछ प्रभाव पडा था[10] परन्तु लिस्ट पर प्रसिद्ध अमरीकी लेखक व राजनीतिज्ञ हैमिल्टन (Alexandar Hamilton) के विचारो का विशेष रूप से प्रभाव पडा था। लिस्ट के समान हैमिल्टन भी अमरीका मे सरक्षण के भारी समर्थक थे तथा १७६१ ई० मे अमीरीकी शिशु उद्योगो को अँगरेजी उद्योगो की घातक स्पर्धा से मुक्त रखने के उद्देश्य से उन्होने सरक्षण की नीति का प्रचार किया था। हैमिल्टन के सम्पर्क मे आने के अतिरिक्त सम्भवत लिस्ट ने सरक्षणवादी अमरीकी लेखक डेनियल रेमण्ड (Daniel Raymond) की १८२० मे प्रकाशित **Thoughts on Political Economy** नामक पुस्तक का अध्ययन भी किया था। रामबोड (Ram baud) ने तो अपनी पुस्तक **Histoire des Doctrines** मे यह लिखा है कि रेमोड लिस्ट के विचारो का एकमात्र प्रेरक था। लिस्ट का अमरीका मे स्थापित Philadelphia Society के सदस्यो से घनिष्ठ सम्पर्क था। इस सोसाइटी का उद्देश्य राष्ट्रीय उद्योगो के विकास को प्रोत्साहन प्रदान करना था। प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्री हैनरी कँरे (Henry Carey) के पिता मैथिव कँरे (Mathew Carey) आरम्भ मे इस सोसाइटी के अध्यक्ष थे तथा इगरसोल (Ingersoll) उपाध्यक्ष थे। लिस्ट इगरसोल के समीपी मित्र थे। लिस्ट के अमरीका पहुँचने के समय पर इस सोसाइटी ने अमरीकी उद्योगो को सुदृढ अँगरेजी उद्योगो की घातक स्पर्धा से मुक्त करने के उद्देश्य से आयात करो मे वृद्धि करने के आन्दोलन का श्रीगणेश किया था

10. यह उन पत्रो से विदित होता है जो लिस्ट ने अपने मित्र इगरसोल (Ingersoll) को लिखे थे तथा जिनमे लिस्ट ने इन लेखको के विचारो के प्रभाव की चर्चा की है।

तथा लिस्ट ने इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया था। लिस्ट की पुस्तक **National Economy** वस्तुत. लिस्ट द्वारा १८२७ ई० में अमरीकी संरक्षण आन्दोलन के सबध मे लिखित पत्रो का संग्रह है।

परन्तु हैमिल्टन, इंगरसोल तथा रेमोड के विचारो के प्रभावों से कही अधिक शक्तिशाली प्रभाव लिस्ट के विचारो पर वास्तविकता का पडा था। लिस्ट ने स्वयं इस सत्य का अनुभव किया था कि सरक्षण प्रदान करने के कुछ समय पश्चात् ही अमरीकी उद्योगो का आश्चर्यजनक गति मे विकास हुआ था। यदि संरक्षण के द्वारा सयुक्त राष्ट्र आफ अमरीका के राष्ट्रीय उद्योगो का विकास हो सकता है तो इसी संरक्षण की नीति के द्वारा जर्मनी के उद्योगो को भी सुदृढ बनाया जा सकता है, ऐसा लिस्ट का दृढ विश्वास था। इस प्रकार सर्व प्रथम हम देखते हैं कि अमरीका अथवा नये ससार की आर्थिक नीति का यूरोपीय आर्थिक विचारधारा व नीतियो पर प्रभाव पडा था।

क्या लिस्ट के संरक्षण व वणिकवाद में समानता है ?

लिस्ट की सरक्षण नीति को १९ वी शताब्दी मे वणिकवाद का पुन उदय कहना भारी भूल है। वणिकवादी अर्थिक विचारधारा का प्रेरणा स्रोत अनुकूल व्यापार शेष (favourable balance of trade) के विचार पर आधारित था। वणिकवादी एक शक्तिशाली औद्योगिक राष्ट्र के निर्माण की कल्पना नही करते थे। उनके सरक्षण का एकमात्र परम उद्देश्य बहुमूल्य धातुओ—स्वर्ण-की प्राप्ति तक ही सीमित था। इसके विपरीत लिस्ट की सरक्षण नीति का आधार औद्योगिक शिक्षा व उत्पादक शक्तियो के निर्माण मे निहित है। इसके अतिरिक्त १७ वी शताब्दी का वणिकवाद स्थाई नीति के हित मे अपनाया गया एक विशेष यत्र था। इसके विपरीत लिस्ट की सरक्षण नीति अस्थाई थी। तथा इसका उद्देश्य अविकसित राष्ट्र को विकसित बना कर समान राष्ट्रो के सघ के विचार को व्यावहारिक रूप देना था।

लिस्ट के विचारों का प्रभाव

इस सम्बन्ध मे निश्चय प्रकार से कुछ कहना कठिन है। जीड व रिस्ट ने इस सम्बन्ध मे लिखा है कि लिस्ट की सरक्षण नीति को वर्तमान सरक्षण का प्रेरक कहना उचित नही है। स्वयं जर्मनी मे उनके विचारो का व्यावहारिक प्रभाव लगभग नही के समान था, यद्यपि १८७९ ई० के लगभग यूरोप में सरक्षणवाद का उदय हुआ था तथा आयातकरों मे वृद्धि हुई थी। प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या ये आयातकर जो फ्रान्स तथा जर्मनी मे सफलतापूर्वक लगाये गये थे, लिस्ट के विचारो की प्रेरणा का परिणाम थे ? ऐसा विदित होता है कि इन आयात करो का लिस्ट के विचारो से कोई सम्बन्ध नही था क्योकि यद्यपि ये देश सरक्षण की पूर्ण

औद्योगिक शिक्षा को प्राप्त कर चुके थे, परन्तु फिर भी ये देश संरक्षण की नीति का पालन कर रहे थे। यदि लिस्ट जीवित हुये होते तो उन्होंने इस नीति का समर्थन कदापि न किया होता।[11]

लिस्ट के आर्थिक विचारों का सबसे अधिक प्रभाव अमरीकी अर्थशास्त्री हैनरी चार्ल्स कैरे (१८९३ ई०-१८८६ ई०), जो मेथियू कैरे (Mathew Carey) के पुत्र थे, पर पड़ा था। कैरे जो आरंभ में स्वतन्त्र व्यापार की नीति के समर्थक थे १८५८ ई० में संरक्षणवादी बन गये थे। १८५८-५९ ई० में प्रकाशित उनकी पुस्तक **The principles of Social Science** पर लिस्ट के विचारों की गहरी छाप है। लिस्ट के समान, कैरे ने भी इंगलैंड की औद्योगिक महानता पर आक्रमण किया है तथा एडम स्मिथ के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन के आदर्श के स्थान पर राष्ट्रीयता के विचार का समर्थन किया है।

लिस्ट को शिशु उद्योग संरक्षण (infant industry protection) के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने का श्रेय प्राप्त है। वर्तमान युग में संसार के अविकसित देश विकास संरक्षण (Development Protection) के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करते हुये लिस्ट के विचारों से प्रेरणा प्राप्त करते हैं। लिस्ट ने १८ वीं शताब्दी में प्रचलित संस्थापक सम्प्रदाय के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त की आलोचना की तथा स्मिथ के विश्वमित्रत्व के विचार के स्थान पर राष्ट्रीयता के नये विचार का प्रचार किया। लिस्ट के अनुयायी आज भी संसार में पाये जाते हैं यद्यपि वे कृषि को भी संरक्षण प्रदान करने के पक्ष में है।[12]

लिस्ट के आर्थिक विचारों ने राजनीतिक अर्थशास्त्र की परिभाषा, उद्देश्यों तथा आर्थिक नीतियों को एक नया रूप प्रदान किया। आर्थिक समस्याओं व नीतियों का इतिहास के द्वारा अध्ययन करके लिस्ट इतिहासवादी सम्प्रदाय के अग्रसर बन गये। लिस्ट को उनके आर्थिक विचारों की मौलिकता के आधार पर आर्थिक विचारधाराओं के इतिहास में सदैव एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त रहेगा।

विशेष अध्ययन सूची

1. Gide and Rist : A History of Economic Doctrines, Book II, Chapter, IV.
2. L. H. Haney : History of Economic Thought, Chapter, XXI
3. J. F. Bell : A History of Economic Thought, Chapter, 15
4. Eric Roll A History of Economic Thought, Chapter V, pp 227-230

11. Gide and Rist : *A History of Economic Doctrines, pp.* 288 289.
12. लिस्ट कृषि को संरक्षण प्रदान करने के पक्ष में नहीं थे।

5. Edmund Whittaker : Schools and Streams of Economic Thought, Chapter, 9.
6. Alexandar Gray : The Development of Economic Doctrine, Chapter VIII, pp 227-238
7. J. M. Ferguson : Landmarks of Economic Thought, (2nd Ed), Chapter, XI, pp. 149-150.
8. J. A. Schumpter · History of Economic Analysis, pp 504-505.
9. S. H. Patterson . Readings in the History of Economic Thought, Part V, 1.
10. Phillips C. Newman . The Development of Economic Thought, Chapter XIII.

प्रश्न

1. Discuss fully the influence of List on the development of economic thought. What were the sources of List's inspiration and what new ideas were introduced by him ? Explain fully.

(आगरा, १९४६, १९५०, १९५६, १९६१)

2. List introduced two ideas that were new to current theory. What were they ? How did his arguments in favour of protection differ from those used by Mercantilists ?

(आगरा, १९४७)

3. 'List introduced two ideas that were new to current theory, namely, the idea of nationality as contrasted with cosmopolitanism, and the idea of productive power as contrasted with that of exchange values List's whole system rests upon these two ideas ' (Gide and Rist). Discuss this statement fully

(आगरा, १९५४, १९५७, १९५९, राजस्थान, १९५९)

4. Discuss Frederick List's theory of protection

(कर्नाटक, १९५९)

5. What is the significance of List's National System of Political Economy ?

(कर्नाटक, १९५८)

6. Give a general account of List's theory of economic evolution and discuss the important features of his 'protectionism'.

(राजस्थान, १९५३)

7. Give the substance and the philosophy of Frederick List's economic nationalism

(राजस्थान, १९५५)

अध्याय १९

इतिहासवादी सम्प्रदाय
(The Historical School)

आर्थिक विचारधाराओं के इतिहास में इतिहासवादी सम्प्रदाय का एक विशेष स्थान है। साधारणतया इस सम्प्रदाय का तात्पर्य प्रमुख रूप से उन जर्मन अर्थशास्त्रियों की विचारधारा से है जिन्होंने १९ वी शताब्दी में संस्थापित आर्थिक सिद्धान्तों व विचारधारा की आलोचना की थी। यद्यपि इतिहासवादी सम्प्रदाय के सदस्य प्राय सभी जर्मन थे परन्तु इगलैंड में भी कुछ अर्थशास्त्रियों को इस सम्प्रदाय का समर्थक कहा जा सकता है तथा इन अर्थशास्त्रियों को अगरेज इतिहासवादी सम्प्रदाय (English Historical Schoo') के नाम से सकेत किया जाता है।

संस्थापक सम्प्रदाय के नेता एडमस्मिथ तथा उनके अनुयायियों रिकार्डो, माल्थस, सीनियर, जे० बी० से व मिल आदि ने अर्थशास्त्र को प्राकृतिक विज्ञान बनाने का भरसक प्रयास किया था। अर्थशास्त्र संस्थापकों ने अर्थशास्त्र को कुछ आर्थिक नियमों के अध्ययन मात्र परिवर्तित कर दिया था। वे इन नियमों को स्वतः सिद्ध सत्य (axiomatic truths) समझते थे जिनकी सत्यता को सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। परम्परागत अर्थशास्त्रियों के विचारानुसार ये मौलिक आर्थिक सिद्धान्त भौतिक विज्ञान के नियमों के समान अटल तथा विश्वव्यापी थे। ये नियम सभी स्थानों पर सभी परिस्थितियों में लागू होते हैं ऐसा इन अर्थशास्त्रियों का दृढ विश्वास था। इतिहासवादी सम्प्रदाय के लेखकों ने इस गलत विचारधारा का खण्डन करने का प्रयास किया। इस सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियों ने इस सत्य पर बल दिया कि अर्थशास्त्र समाज विज्ञान है तथा समाज में परिवर्तन होने के साथ-साथ इस विज्ञान के नियमों में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है। आर्थिक नियम भौतिक विज्ञान के समान अटल तथा निरपेक्ष कदापि नहीं हो सकते है। इतिहासवादी अर्थशास्त्रियों का कहना था कि आर्थिक नियमों का सम्बन्ध किसी विशेष सामाजिक व आर्थिक परिस्थिति से होता है तथा परिस्थिति में परिवर्तन होने पर जो आर्थिक नियम पहली परिस्थिति में लागू होता था बाद की परिस्थिति के लिये उपयुक्त नहीं होगा। इतिहासवादियों ने इस विचार का १८ वी व १९ वी शताब्दियों की भिन्न स्थितियों के उदाहरणों द्वारा स्पष्टीकरण किया।

इतिहासवादी सम्प्रदाय के सदस्यों का कहना है कि प्रत्येक अर्थशास्त्री के आर्थिक विचार केवल उसी समय व समाज के दृष्टिकोण से उपयुक्त होते है जिसके प्रभाव का वे विचार स्वय परिणाम होते हैं। एडमस्मिथ की पुस्तक **Wealth of Nations** को १७७६ मे लिखने के समय जो सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियाँ थी वे १९ वी शताब्दी मे विद्यमान परिस्थितियो से बिल्कुल भिन्न थी। फलस्वरूप एडमस्मिथ ने जिन आर्थिक सिद्धान्तो का अपने समय की परिस्थितियो के अनुकूल अपनी पुस्तक मे प्रतिपादन किया था वे सिद्धान्त ५० वर्ष पश्चात् १९ वी शताब्दी मे, परिस्थितियो मे भारी परिवर्तन हो जाने के फलस्वरूप, अनुपयुक्त थे। इतिहासवादी के लेखको ने आर्थिक नियमो तथा सस्थाओ की सापेक्षता (relativity) सापेक्षता की ओर ध्यान आकर्षित किया तथा इतिहास के अध्ययन पर जोर दिया। इन अर्थशास्त्रियो का कहना था कि प्रत्येक आर्थिक समस्या का अध्ययन करके उस अध्ययन के आधार पर उपयुक्त आर्थिक नीतियो का निर्माण करना अनिवार्य है। रिकार्डो की निगमन रीति (deductive method) के स्थान पर इतिहासवादी सम्प्रदाय के लेखको ने आगमन अथवा इतिहासवादी रीति (inductive or historical method) का प्रचार किया। उन्होने मानव प्रवृत्तियो व समाज विज्ञानों के मध्य पारस्परिकता का स्पष्टीकरण किया तथा वास्तविक ऐतिहासिक आधार सामग्री के अध्ययन पर जोर दिया। इतिहासवादी सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियो के विचारानुसार अर्थशास्त्र आर्थिक इतिहास का दर्शन (philosophy) था।

इतिहासवादी सम्प्रदाय को जन्म देने वाली परिस्थितियाँ

यद्यपि अर्थशास्त्र सस्थापक अपनी आर्थिक विचारधारा को व्यापक समझते थे परन्तु वास्तविकता इसके विपरीत थी। सत्य तो यह है कि सस्थापित अर्थशास्त्र इंगलैंड मे १८ वी शताब्दी की आर्थिक स्थितियो व सस्थाओं का विशेष परिणाम था। सस्थापित आर्थिक सिद्धान्त विशेष रूप से इंगलैंड की १८ वी शताब्दी की आर्थिक परिस्थितियो के सीमित अध्ययन पर आधारित थे। १५ वे अध्याय मे सिसमोडी के आर्थिक विचारो के अध्ययन के सम्बन्ध मे इस बात का अध्ययन किया गया है कि जिस प्रकार १९ वी शताब्दी के आरम्भ मे सस्थापित आर्थिक सिद्धान्तों की अनुपयुक्तता तथा अवास्तविकता स्पष्ट हो गई थी। इसी प्रकार १७ तथा १८ वें अध्यायो मे राष्ट्रवादियो के विचारो के अध्ययन के सम्बन्ध मे यह भली प्रकार स्पष्ट कर दिया गया है कि जर्मनी तथा सयुक्त राष्ट्र ऑफ अमरीका के समान राष्ट्रो, जिनकी परिस्थितियाँ इगलैड की परिस्थितियो से भिन्न थी, के लिए एडम स्मिथ तथा उसके अनुयायियो का अर्थशास्त्र उपयुक्त नही था।

सस्थापित अर्थशास्त्र अनेक दोषो से परिपूर्ण था। इसकी सरलता स्वय ही इसका दोष थी। १९ वी शताब्दी के मध्य के पश्चात् लगभग सभी संस्थापित आर्थिक सिद्धान्तों की कडी आलोचना की गई थी। मजदूरी के संस्थापित वेतन कोष

सिद्धान्त, मूल्य के उत्पादन-व्यय सिद्धान्त, रिकार्डो के लगान सिद्धान्त तथा घन, उत्पादन, ब्याज, लाभ, पूँजी इत्यादि सभी सस्थापित विचार कड़ी आलोचनाओं का विषय थे। सस्थापित अर्थशास्त्र का क्षेत्र तथा अध्ययन रीति भी इन आलोचनाओं के आक्रमणों से मुक्त न थे। समाजवादी, राष्ट्रवादी, समाज सुधारक, दार्शनिक, सेंट-साइमनवादी तथा इतिहासवादी सम्प्रदाय के सदस्य, सभी सस्थापित अर्थशास्त्र के आलोचक थे। यद्यपि एडम स्मिथ, माल्थस व मिल ने ऐतिहासिक सामग्री का अपने अर्थशास्त्र मे प्रयोग किया था, परन्तु यह सत्य है कि जिन स्थानो पर ऐतिहासिक सामग्री का प्रयोग किया गया था वहाँ लेखक का एकमात्र उद्देश्य आर्थिक नियमों की व्यापकता को सिद्ध करना था। उदाहरणार्थ माल्थस ने अपने जनसख्या सिद्धान्त की व्यापकता को सिद्ध करने के हेतु अनेक देशो मे भिन्न वर्षो मे जनसख्या सम्बन्धी आधार-सामग्री का प्रयोग किया है।

स्मिथ की पुस्तक **Wealth of Nations** के प्रकाशित होने के समय अर्थशास्त्र के अध्ययन की ऐतिहासिक रीति लोकप्रिय नही थी। सामाजिक व आर्थिक विकास न होने के कारण ऐतिहासिक सामग्री न तो पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध ही थी तथा न इसके विश्लेषण की विधि का ही विकास हो पाया था। इतिहासवादी रीति की प्रमुख विशेषता इस बात मे है कि इसके अन्तर्गत आर्थिक जीवन का अध्ययन मानव जीवन के प्रत्येक रूप के परीक्षण के द्वारा किया जाता है। इतिहासवादी सम्प्रदाय ने अर्थशास्त्री आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करते समय सदा इस सत्य से सतर्क रहते है कि समाज गतिशील है। इतिहासवादी अर्थशास्त्रियों ने इतिहास के अध्ययन के आधार पर आर्थिक सिद्धान्तो का पुनर्निर्माण करने का प्रयत्न किया था। इतिहासवादी अर्थशास्त्रियो का यह कहना था कि अर्थशास्त्र को इतिहास, कला, साहित्य, नीतिशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, भाषा, सस्कृति, कला, रीति-रिवाज, धर्म आदि तत्वों से अलग नही किया जा सकता है। आर्थिक समस्याएँ व सस्थायें समस्त मानव समस्याओं व सस्थाओं का ही एक रूप हैं तथा जिस प्रकार भाग के अध्ययन के लिए कुल का अध्ययन आवश्यक होता है, इसी प्रकार अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए इतिहास, कला, सस्कृति आदि मानव तत्वों का अध्ययन अनिवार्य होता है।

इतिहासवादी सम्प्रदाय की शाखाएँ

इतिहासवादी सम्प्रदाय, जो जर्मनी मे सक्रिय था, को साधारणतया दो सम्प्रदायों – प्राचीन इतिहासवादी सम्प्रदाय (Older Historical School)[1] तथा

1. प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्री प्रोफेसर जे० ऐ० शुम्पीटर के विचारानुसार प्राचीन इतिहासवादी सम्प्रदाय शब्द का प्रयोग उचित नहीं है। शुम्पीटर का कहना है कि हमको केवल एक ही इतिहासवादी सम्प्रदाय का विचार करना चाहिए जिसके गस्टेव वॉन श्मोलर (Gustav von Schmoller)

नवीन इतिहासवादी सम्प्रदाय (Younger Historical School)[2] मे विभाजित किया गया है। इन सम्प्रदायों के अतिरिक्त जो अँगरेज अर्थशास्त्री इतिहासवादी रीति के अनुयायी थे उन सब को ब्रिटिश इतिहासवादी सम्प्रदाय (British Historical-School) से सकेत किया गया है। सर्वप्रथम हम इन सम्प्रदायो के व्यक्तिगत सदस्यों के विचारो की सक्षिप्त व्याख्या करेंगे तथा तत्पश्चात् इतिहासवादी सम्प्रदाय के आलोचनात्मक (Critical) तथा रचनात्मक (Positive or Constructive) आर्थिक विचारो का अध्ययन करेंगे।

प्राचीन इतिहासवादी सम्प्रदाय (Older Historical School)

जर्मन इतिहासवादी सम्प्रदाय के आर्थिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन सर्वप्रथम तीन जर्मन अर्थशास्त्रियों ने किया था। ये तीन अर्थशास्त्री, जो प्राचीन इतिहासवादी सम्प्रदाय के तीन स्तम्भो के समान हैं, ब्रूनो हिल्डेब्रान्ड (Bruno Hildebrand), विल्हेम रोशर (Wilhelm Roscher) तथा कार्ल नीज (Karl Knies) थे। इन लेखको ने सस्थापित आर्थिक सिद्धान्तो की कडी आलोचना की थी। इनके मतानुसार अर्थशास्त्र के अध्ययन की रीति निगमन न होकर आगमन अथवा इतिहासवादी होनी चाहिए। अब प्राचीन इतिहासवादी सम्प्रदाय के इन तीनों अर्थशास्त्रियो के विचारो की क्रमशः सक्षिप्त व्याख्या की जा सकती है।

ब्रूनो हिल्डेब्रान्ड (१८१२ ई०–१८७८ ई०)
(Bruno Hildebrand)

हिल्डेब्रान्ड, जो प्राचीन इतिहासवादी सम्प्रदाय के तीन प्रतिनिधियो मे से एक थे, का जन्म १८१२ ई० मे हुआ था। उन्होने ब्रेसलो (Breslau) नामक स्थान पर इतिहास तथा अर्थशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी। उस समय की सरकार के साथ राजनैतिक मतभेद होने के कारण वे स्वीटजरलैंड चले गये थे जहाँ पर उन्होने ज्यूरिच (Zurich) तथा बरने (Berne) के विश्वविद्यालयो मे अध्यापक के पद पर कार्य

नेता थे। शुम्पीटर का कहना है कि वे तीन जर्मन अर्थशास्त्री—हिल्डेब्रान्ड (Hildebrand), नीज (Knies), तथा रोशर (Roscher)—जिनको प्राचीन इतिहासवादी सम्प्रदाय का निर्माता कहा जाता है, एक साथ मिलकर सम्प्रदाय तो क्या बल्कि दल भी नही बनाते है। (**History of Economic *Analysis* p. 507**)

2. शुम्पीटर ने प्राचीन तथा नवीन दो सम्प्रदायो के अतिरिक्त एक अन्य तीसरे नवीनतम इतिहासवादी सम्प्रदाय (Youngest Historical School) की भी व्याख्या की है। शुम्पीटर के विचारानुसार इस जर्मन नवीनतम इतिहासवादी सम्प्रदाय के तीन प्रमुख सदस्य आर्थर स्पीथॉफ (Arthur Spiethoff), वर्नर सोम्बर्ट (Werner Sombart-1863-1941) तथा मैक्स वैबर (Max Weber- 864 to 1920) थे। (Schumpeter, Ibid : p. 815-81).

किया था। १८६१ ई० मे जर्मनी वापस आने पर उनकी जेना (Jena) मे प्राध्यापक के पद पर नियुक्ति हो गई थी तथा इस पद पर वे अपने मृत्यु समय तक नियुक्त रहे।

१८६३ ई० मे हिल्डेब्रान्ड ने **Year Book for Economics and Statistics** नामक पत्रिका, जिसके वे लगभग एक दशाब्दी तक सम्पादक रहे थे, का श्रीगणेश किया था। वे समाज सुधार मे सदा सक्रिय रुचि रखते थे तथा १८७२ ई० मे सस्थापित **Verein fur Socialpolitik** नामक सस्था के प्रवर्तको मे थे। उनकी रुचि व्यापक थी तथा **Yearbook** के लिए उन्होने अनेक विषयो से सम्बन्धित लेख लिखे थे। १८४८ ई० मे प्रकाशित अपनी पुस्तक **Die Nationalokonomik der Gegenwart und Zukunft** (Economics of the Present and Future) मे उन्होने इतिहासवादी रीति के पक्ष मे विचार व्यक्त किये थे।

हिल्डेब्रान्ड ने सस्थापित अर्थशास्त्र की विषय सामग्री तथा रीति को अस्वीकार किया तथा सस्थापित आर्थिक सिद्धान्तो के प्राकृतिक नियमो तथा उनकी व्यापकता को गलत बतलाया। अन्य इतिहासवादी अर्थशास्त्रियो तथा अन्य जर्मन लेखक। व विचारको के समान हिल्डेब्रान्ड ने भी व्यक्ति को समाज का लक्ष्य स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। वे इतिहास के अध्ययन पर आधारित एक नये अर्थशास्त्र—सस्कृति के विज्ञान—की स्थापना करना चाहते थे। यह विज्ञान इतिहास के अध्ययन द्वारा सभी समाजो के पूर्ण आर्थिक विकास का सग्रह होना चाहिये। उनका विश्वास था कि इतिहास के अध्ययन द्वारा अर्थशास्त्र को न केवल नया जीवन ही मिल सकेगा बल्कि यह पहले की अपेक्षा अधिक वास्तविक तथा वैज्ञानिक रूप भी धारण कर सकेगा। अर्थशास्त्र के अध्ययन मे इतिहास के महत्व को हिल्डेब्रान्ड ने अपनी पुस्तक **Economics of The Present and Future** की भूमिका मे इस प्रकार व्यक्त किया है "इस पुस्तक का उद्देश्य राजनीतिक अर्थशास्त्र के अध्ययन के इतिहासवादी दृष्टिकोण को उत्तेजित करना तथा राजनीतिक अर्थशास्त्र विज्ञान को राष्ट्रो के आर्थिक विकास के सिद्धान्तो का ग्रन्थ बनाना है।"

हिल्डेब्रान्ड के विचार रोशर के विचारो की अपेक्षा अधिक दृढ थे। रोशर के समान वे सस्थापित सिद्धान्तो के प्रश्न पर समझौते के पक्ष मे न थे। हिल्डेब्रान्ड के विचारो का उस समय के जर्मन व विदेशी विचारो पर काफी प्रभाव पडा था। उन्होने अर्थशास्त्र का अनुसधान मे काफी प्रयोग किया था। सस्थापित अर्थशास्त्र के आलोचक होने के साथ साथ वे समाजवाद, जो उस समय यूरोप के राज्यो मे तेजी के साथ फैल रहा था, के भी कडे आलोचक थे।

विल्हेम रोशर (१८१७ ई०—१८९४ ई०)
(Wilhelm Roscher)

विल्हेम रोशर प्राचीन इतिहासवादी सम्प्रदाय के नेता तथा प्रवर्तक थे।

उनका जन्म १८१७ ई० मे हुआ था। उन्होने गोटिंगन (Gottingen) तथा बर्लिन (Berlin) के विश्वविद्यालयों मे विधिशास्त्र (Jurisprudence) तथा भाषा-की शिक्षा प्राप्त की थी। गोटिंगन मे चार वर्ष (१८४४-१८४७) तक पढाने के पश्चात उन्होने लगभग ५० वर्ष के दीर्घ काल तक लीपजिग (Leipzig) मे पढाया था। वाणिज्य,वन तथा कृषि अर्थव्यवस्था पर वे अनेक लेखक थे। अन्य पुस्तकों के अतिरिक्त वे **Grundriss zu Vorlesungen uber die Staatswirthschaft nach geschichtlicher Methode (Outline of Lectures on Political Economy according to the Historical Method);** १८५१ ई० में प्रकाशित **Zur Geschichte der englischen Volkswirthschaftslehre (History of English Political Economy in the 16th and 17th centuries)** १८७४ ई० मे प्रकाशित **Geschichte der Nationalokonomik in Deutschland (History of Political Economy in Germany** तथा १८८१ ई० मे प्रकाशित **Die Nationalokonomik des Handels und Gewerbefleisses (The Economics of Commerce and Industry)** प्रसिद्ध पुस्तकों के लेखक थे।

रोशर की इतिहासवादी रीति की रूप रेखा उनकी पुस्तक **Grundriss** मे पाई जाती है। यद्यपि वे सस्थापित सिद्धान्तो के आलोचक थे परन्तु उनकी आलोचनायें हिल्डेब्रान्ड के समान तीखी व असन्तुलित न थी। राजनीतिक अर्थशास्त्र के लक्ष्य की, अपनी पुस्तक **Grundriss** की भूमिका मे, व्याख्या करते हुये उन्होने लिखा है कि अर्थशास्त्र का लक्ष्य 'केवल यह व्याख्या करना है कि लोगों ने किस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कार्य किया है तथा आर्थिक मामलों पर उन्होने क्या सोचा है। किन उद्देश्यों का उन्होने पालन किया है तथा इन उद्देश्यो की पूर्ति मे उनको कितनी सफलता प्राप्त हुई है तथा लोगों ने किस कारण इन उद्देश्यों का पालन किया तथा क्यो उनको सफलता प्राप्त हुई है। इन सब बातों के सम्बन्ध मे हमको राष्ट्रीय जीवन से सम्बन्धित अन्य विज्ञानों—राष्ट्रीय, वैधिक तथा राजनैतिक इतिहास तथा राष्ट्र के सभ्यता के इतिहास—से समीपी सम्पर्क स्थापित करके ही ज्ञान प्राप्त हो सकता है।" इसी प्रकार अन्य स्थान पर रोशर ने इस प्रकार लिखा है: "हमारा उद्देश्य केवल मनुष्य की आर्थिक प्रकृति तथा उसकी आर्थिक आवश्यकताओं की व्याख्या करना तथा उन सस्थाओ, जिनके द्वारा इन आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है, के नियमो तथा विशेषताओं की जाँच करना है।"[3] रोशर का यह विश्वास था कि इतिहासवादी रीति ही व्यावहारिक व वैज्ञानिक रीति थी। उनके ऐतिहासिक लेखो तथा १८५४ ई०–१८९४ ई० के मध्य मे ग्रन्थों मे प्रकाशित उनकी पुस्तक System der Volkswirtschaft (System of Political Economy) में इति-

3. *Principle of Political Economy Vol I*, p. 111

वादी रीति के द्वारा अर्थशास्त्र का अध्ययन किया गया है। अपनी पुस्तक **Die Nationalokonomik des Handels-und gewerbefliesses** (**The Economics of Commerce and Industry**) में रोशर ने इतिहासवादी रीति का व्यावहारिक वाणिज्य व औद्योगिक समस्याओं के अध्ययन में प्रयोग किया है।

कार्ल गस्टव अडोल्फ नीज़ (१८२१ ई०-१८९८)
(Karl Gustav Adolf Knies)

प्राचीन इतिहासवादी सम्प्रदाय के तीसरे सदस्य कार्ल नीज का जन्म १८२२ ई० में हुआ था। उन्होंने अपने जीवन के तीस वर्षों (१८६५ ई० से लेकर १८९६ तक) अध्यापन कार्य किया। वे अनेक लेखों व पुस्तिकाओं के लेखक थे। उनकी प्रसिद्ध पुस्तकों में १८५३ ई० में प्रकाशित **Die politische Okonomie vom Standpunkt der geschichtlichen Methode** (**Political Economy from the Standpoint of the Historical Method**); १८७३ ई०-१८७९ ई० में प्रकाशित **Geld and Kredit** तथा १८५३ ई० में प्रकाशित **Die Eisenbahnan und ihre Wirkungen** (**The Railroads and Their Effects**) के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। नीज इतिहासवादी सम्प्रदाय के सब से अधिक प्रभावशाली प्रतिनिधि थे। उनका कहना था कि समाज की किसी समय पर आर्थिक संस्थायें तथा आर्थिक विचार उस समाज के ऐतिहासिक विकास का परिणाम होते हैं। सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र के नियमों की प्रकृति व्यापक नहीं हो सकती है। इन का महत्त्व केवल किसी विशेष स्थान तथा समय पर ही होता है। आर्थिक और सामाजिक संस्थाओं की धारणा में समय समय पर परिवर्तन होते रहने के कारण इनसे सम्बन्धित आर्थिक नियम भी परिवर्तनीय होते हैं।

प्राचीन इतिहासवादी सम्प्रदाय के तीनों प्रवर्त्तकों में सभी बातों पर सर्व सम्मति नहीं थी। उदाहरणार्थ नीज ने रोशर तथा हिल्डेब्रान्ड की आलोचना की है। परन्तु आपस में कुछ बातों पर मतभेद होते हुए भी—उदाहरण के लिए नीज रोशर के इस मत से सहमत नहीं थे कि कुछ आर्थिक नियमों की भौतिक विज्ञानों के नियमों के समान व्यापक प्रकृति होती है—तीनों में सस्थापित अर्थशास्त्र पर आक्रमण करने में एक मत था। इस सम्बन्ध में भी तीनों में एक मत था कि सत्य को ज्ञात करने के लिए पूर्ण जाँच करना तथा इतिहास का अध्ययन करना अनिवार्य था।

नवीन इतिहासवादी सम्प्रदाय (Younger Historical School)

यद्यपि रोशर, हिल्डेब्रान्ड तथा नीज ने सस्थापित आर्थिक विचारधारा का ... हासवादी सम्प्रदाय का सम्थापन करके अर्थशास्त्र के अध्ययन को ... ओर प्रेरित किया था, परन्तु वास्तविक ऐतिहासिक अनुसंधान विल्हेम रोशर एक दल के द्वारा ही किया गया था। यह दल जिसके नेता प्रसिद्ध

जर्मन अर्थशास्त्री गस्टेव वान शमोलर थे, आर्थिक विचारधाराओं के इतिहास मे नवीन इतिहासवादी सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। इस सम्प्राय के अन्य सदस्य लूजो ब्रेन्टानो (Lujo Brentano), कार्लबुचर (Karl Bucher), अडोल्फ हैल्ड (Adolf Held), एडोल्फ वागनर (Adolf Wagner) तथा जी० एफ० नैप (G. F. Knapp) थे। इस सम्प्रदाय के अन्य सभी सदस्यो के विचार अपने नेता शमोलर के विचारो से प्रभावित हुए थे। अब हम इस सम्प्रदाय के कुछ सदस्यों की सक्षिप्त व्याख्या करते है।

गस्टेव वॉन शमोलर (१८३८ ई०–१९१७ ई०)
(Gustav von Schmoller)

गस्टेव वान शमोलर नवीन इतिहासवादी सम्प्रदाय के नेता तथा जर्मनी के एक महान अर्थशास्त्री थे। वे बर्लिन विश्वविद्यालय मे लगभग ३५ वर्ष तक प्रोफेसर के पद पर नियुक्त रहे थे तथा यहां रह कर एक अच्छे अध्यापक व लेखक के रूप मे प्रसिद्धि प्राप्त की थी। वे १८७२ ई० मे सस्थापित **Verein fur Social poli tik** (Union for Social policy) नामक समाज सुधार सस्था के प्रवर्त्तको मे थे। शमोलर अनेक लेखको, पुस्तिकाओ व पुस्तको के लेखक थे। उनकी पुस्तको मे **Grundrissder allgemeinen Volkswirtschaftslehre (Outline of General Economic History)**, जिसका प्रथम ग्रन्थ १९०० ई० तथा द्वितीय ग्रन्थ १९०४ ई० मे प्रकाशित हुआ था, विशेषरूप से उल्लेखनीय है।

शमोलर सस्थापित सिद्धान्तो तथा प्राचीन इतिहासवादी सम्प्रदाय, विशेषरूप से रोशर के, विचारो, लेखो, पुस्तको इत्यादि से भली प्रकार परिचित थे यद्यपि अपने पूर्वाधिकारी प्राचीन इतिहासवादी सम्प्रदाय के विचारको के समान शमोलर भी आगमन रीत (inductive method) के समर्थक थे, परन्तु वे निगमन रीत के प्रयोग के विरोध मे न थे। उनके विचारानुसार अर्थशास्त्र समाजविज्ञान—जो स्वय इतिहास राजनीति शास्त्र नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र इत्यादि का सग्रह है—का ही एक अग था। शमोलर का यह पूर्ण विश्वास था कि आर्थिक सिद्धान्त इतिहास पर आधारित होने चाहिए।

समोलर की प्रसिद्ध पुस्तक **Grundriss**, जिसका प्रथम ग्रन्थ १९०० ई० तथा दूसरा ग्रन्थ १९०४ ई० मे प्रकाशित हुआ था, को इतिहासवादी सम्प्रदाय के विचारो—ऐतिहासिक अनुसधान—का सग्रह कहना अनुचित न होगा। अपनी इस पुस्तक के प्रथम ग्रन्थ के दो खण्डो मे शमोलर ने राजनीतिक अर्थशास्त्र तथा समाज के सामाजिक, ऐतिहासिक, नैतिक, कानूनी (legal) आधारो तथा साहित्य व विज्ञान की रीतियो की व्याख्या की है। दूसरे खण्ड मे साहित्य तथा राजनीतिक अर्थशास्त्र के ऐतिहासिक विकास की व्याख्या की गई है। इतिहास के अध्ययन के आधार पर शमोलर समाज की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर १९वी शताब्दी तक अर्थशास्त्र विज्ञान

के विकास की व्याख्या की है। इस सम्बन्ध मे शमोलर ने अर्थशास्त्र की समाजिक प्रकृति, इस के आरम्भ तथा वर्तमान अवस्था की व्याख्या की है। परिवार, सामाजिक दलो के रहन-सहन के ढग, राज्य व समाज का आर्थिक जीवन, सम्पत्ति की प्रकृति, सामाजिक व आर्थिक श्रमविभाजन आदि सभी विषयो पर लेखक ने प्रकाश डाला है।

पुस्तक के दूसरे ग्रन्थ के दो खण्डो मे विनिमय तथा समस्त आर्थिक जीवन के विकास के सम्बन्ध मे विवेचना की गई है। अर्थव्यवस्था के आर्थिक सकटो, वर्ग सघर्ष, कानून तथा सुधार सम्बन्धी विषयो पर लेखक ने अपने विचारों को व्यक्त किया है। शमोलर ने इस पुस्तक मे भिन्न भिन्न समयो पर ऐतिहासिक व अकशास्त्रीय सामग्री एकत्र करके सामाजिक-आर्थिक जीवन के प्रत्येक रूप की व्याख्या की है। शमोलर ने प्राचीन व समकालीन लेखको के सिद्धान्तो का अपने विचारो को व्यक्त करने के लिये उपयोग किया है। शमोलर को ही इतिहासवादी सम्प्रदाय का सच्चा प्रतिनिधि कहलाने का गौरव प्राप्त है क्योकि प्राचीन इतिहासवादी सम्प्रदाय के लेखको के विचारों मे परिपक्वता का भारी अभाव है। प्राचीन इतिहासवादी सम्प्रदाय के लेखकों, विशेष रूप से नीज व हिल्डेब्रान्ड, के समान शमोलर सस्थापित आर्थिक सिद्धान्तो व रीति के कट्टर आलोचक नहीं थे। उन की आलोचनाओं का रूप अनुचित न होकर वैज्ञानिक था। शमोलर ने इतिहासवादी सम्प्रदाय मे संस्थापित सिद्धान्तो के प्रति सहनशीलता की भावना को अपना कर यह स्पष्ट किया कि सब रीतियो का अपना अलग अलग महत्व है।

अपने समय के महान अर्थशास्त्री होने तथा इतिहासवादी सम्प्रदाय के नेता होने के अतिरिक्त शमोलर एक महान समाज सुधारक भी थे।

लूजो ब्रेन्टानो (१८४४ ई०–१९३१ ई०)
(Lujo Brentano)

लूजो ब्रेन्टानो, जिन का पूरा तथा असली नाम लडविग जॉसेफ ब्रेन्टानो (Ludwig Joseph Brentano) था लीपजिग (Lipzig), म्यूनिच (Munich), वियना (Vienna), ब्रेसलो आदि स्थानो पर प्राध्यापक रहे थे। अर्थशास्त्र के अतिरिक्त अपने शान्ति सम्बन्धी प्रयासों के कारण १९२७ ई० मे वे प्रसिद्ध Noble prize के प्राप्तकर्त्ता भी थे। अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे उन की पुस्तिकाओ व पुस्तकों मे १८७१--७२ ई० में दो भागो मे प्रकाशित **Die Arbeitergilden Gegenwart** (The Labour Guilds of the Present), १९२३ ई० मे प्रकाशित **Der wirtschafende Mensch in der Geschichte** (The Economic Man in History); १९२७-२९ ई० मे ३ भागो मे प्रकाशित **Geschichte der wirtschaftlichen Entwicklung Englands (Histony of Economic Development of England)**, १९०१ ई० मे प्रकाशित **Ethik und Volks-**

wirtschaft in der Geschichte (Ethics and Economics in History) तथा १६०८ ई० मे प्रकाशित **Die Entwicklung der Wertlehre (The Development of Value Theory)** विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

श्मोलर के समान लूजो ब्रेन्टानो भी एक बहुत कुशल शिक्षक थे । अर्थशास्त्री के नाते भी उनका स्थान प्रथम श्रेणी के जर्मन अर्थशास्त्रियों में है । राज्य के सम्बन्ध मे ब्रेन्टानो के विचार अन्य इतिहासवादी लेखकों के समान सकुचित न थे । उनके दृष्टिकोण मे व्यावहारिकता पाई जाती है । उनके मतानुसार राज्य सर्वशक्तिमान (Omnipotent) तथा व्यक्ति के ऊपर नही होना चाहिये । वे राज्य तथा राजनीतिज्ञो को पूर्ण सत्ता प्रदान करने के पक्ष मे न थे क्योकि उनका कहना था कि बहुधा राज्य तथा इसके कर्मचारी अपने पदो तथा शक्तियो को अपने स्वार्थ के हितों मे प्रयोग करते है । वे स्वतन्त्र व्यापार के पक्ष मे थे । इसका एक कारण यह था कि वे सरकारी विधान के विरुद्ध थे । उनका यह विश्वास था कि आयात करों के समान विशेष विधान कुछ विशेष वर्गों के हितो को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से लागू किये जाते है । आयात करो के द्वारा राष्ट्रीय हितो के स्थान पर वर्गीय हितो की सुरक्षा होती है । ब्रेन्टानो के श्रम, वेतन, उत्पादक क्षमता व श्रम सघ सम्बन्धी विचारो मे मौलिकता विद्यमान है । यद्यपि सामान्यत ब्रेन्टानो के विचार रोशर तथा प्राचीन इतिहासवादी सम्प्रदाय के सदस्यो के विचारो से काफी भिन्न है परन्तु उनके विचार तथा अनुसधान इतिहास के अध्ययन पर आधारित हैं । नवीन इतिहासवादी सम्प्रदाय के अन्य लेखको के समान ब्रेन्टानो ने भी संस्थापित अर्थशास्त्र के प्रति उदासीनता का दृष्टिकोण अपनाया है ।

जॉर्ज फ्रेडरिक नैप (१८४२ ई०–१९२६ ई०)
(George Friedrich Knapp)

जार्ज फ्रेडरिक नैप जर्मन नवीन इतिहासवादी सम्प्रदाय के एक प्रभावशाली सदस्य थे । उन्होंने जर्मन कृषि के क्षेत्र मे विशेष अध्ययन व लेखन कार्य किया था । उनकी दो प्रसिद्ध पुस्तके १८८७ ई० मे प्रकाशित **Die Bauernbefreiung und der ursprung der Landarbeiter** तथा १८६७ ई० मे प्रकाशित **Grundherrschaft und Rittergut** है । उनके विचारो का जर्मनी मे काफी प्रभाव हुआ । जर्मनी मे उनकी इन दोनों पुस्तकों की उच्च कोटि के ग्रन्थो मे गणना की जाती है ।

कार्ल बुचर (१८४७ ई०–१९३० ई०)
(Karl Bucher)

कार्ल बुचर लीपजिग मे अध्यापक थे । उन्होने बडी कुशलता के साथ निगमन व आगमन रीतियो का एकीकरण किया था । १८९३ ई० में प्रकाशित अपनी **Industrial Evolution** नामक पुस्तक मे उन्होने उन शक्तियो की व्याख्या

की है जिनके परिणामस्वरूप एक आर्थिक अवस्था से किसी राष्ट्र को दूसरी आर्थिक अवस्था प्राप्त होती है।

एडोल्फ वागनर (१८३५ ई०–१९१७ ई०)
(Adolf Wagner)

एडोल्फ वागनर बर्लिन विश्वविद्यालय मे ४६ वर्ष के दीर्घ समय (१८७० ई० मे लेकर १९१६ ई० तक) प्रोफेसर थे। कुशल अध्यापन तथा लेखन कार्य के द्वारा उनके विचारो का प्रभाव जर्मनी के अतिरिक्त विदेशो मे भी खूब फैला था। उनकी गणना इतिहासवादी सम्प्रदाय के सदस्यो के अतिरिक्त राज्य समाजवाद के समर्थको के मध्य भी की जाती है। उनके प्रकाशन की विस्तृत सूची मे अनेक लेख, पुस्तिकाएँ तथा पुस्तके सम्मिलित है। उनकी प्रसिद्ध पुस्तको मे १८७७ ई०–१९०८ ई० के मध्य चार खण्डो मे प्रकाशित **Finanzwissenschaft (Science of Finance)** तथा १८९६ ई० मे प्रकाशित **Grundlegung der Politischen Oekonomie** (Foundations of Political Economy) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रथम पुस्तक मे सार्वजनिक वित्त तथा दूसरी पुस्तक मे राजनीतिक अर्थशास्त्र की नवीन दृष्टिकोण से विवेचना की गई है। वागनर के लिये सार्वजनिक वित्त केवल राज्य की आय तथा व्यय का अध्ययन ही नही था। वे सार्वजनिक वित्त को समाज मे धन के पुनर्वितरण का एक महत्वपूर्ण साधन समझते थे। उनका कहना था कि सार्वजनिक वित्त के द्वारा राज्य समाज मे धन का पुनर्वितरण सामाजिक न्याय के नियम के अनुसार कर सकता है तथा सम्पत्ति स्वामियो से करो के द्वारा वह आय प्राप्त कर सकता है जो उनको बिना किसी परिश्रम के प्राप्त होने के कारण 'unearned income' है तथा जिस पर केवल समाज का ही अधिकार होना चाहिये। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वागनर सार्वजनिक वित्त के क्षेत्र मे वर्तमान कार्यात्मक वित्त सिद्धान्त (modern functional finance theory) के प्रतिपादक थे।

उन्होने संस्थापित अर्थशास्त्र, जिसमे व्यक्ति तथा उसके प्राकृतिक अधिकारो को परम महत्व दिया गया था, की आलोचना की थी। उनका कहना था कि मनुष्य, जो समाज का निर्माता है, के प्राकृतिक अधिकार नही हो सकते है। उनके अध्ययन की रीति आशिक रूप मे इतिहासवादी अथवा आगमन तथा आशिक रूप मे निगमन थी।

यद्यपि वागनर एक महान सुधारक थे परन्तु वे क्रान्तिवादी नही थे। उनका विश्वास था कि यदि आर्थिक समाज को जीवित रहना है तो इसका पुन सगठन करना अनिवार्य है। ऐसा करने के लिये सम्पत्ति पर निजी व्यक्तिगत स्वामित्व के स्थान पर राज्य के स्वामित्व का होना अनिवार्य है। इसी कारण उनको राज्य समाजवाद (State Socialism) का प्रवर्तक कहा जाता है। वे १८७२ ई० मे

सस्थापित प्रसिद्ध समाज सुधार सस्था **Verein fur Socialpolitik** के सगठनकर्ता थे। उनका कहना था कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर व्यक्तियो का नियंत्रण न होकर समान समाज का नियत्रण होना चाहिए। उनका कहना था कि राज्य को समाज के हित मे आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन तथा वितरण करना चाहिए। परन्तु राज्य का यह भी कर्तव्य है कि वह अपनी क्रियाओ को इस प्रकार से सपन्न करे कि व्यक्ति का विकास सम्भव हो सके। वागनर ने राज्य के कार्यों की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "राज्य समाजवाद के दो प्रमुख कार्य होने चाहिये। ये दोनो कार्य एक दूसरे से विशेष रूप से सम्बन्धित हैं। प्रथम, राज्य को श्रमिको की आर्थिक स्थिति मे सुधार करना चाहिए। दूसरे, राज्य को समाज मे केवल कुछ ही व्यक्तियो अथवा वर्गो के हाथों में धन को केन्द्रित होने से रोकना चाहिए। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के हेतु समाज मे सम्पत्ति तथा धनी वर्ग पर आरोही कर (progressive tax) लगाया जाना चाहिये।

यद्यपि वागनर के आर्थिक विचारो के प्रभाव की पूर्णतया माप करना सम्भव नही है, परन्तु वे जर्मनी के शक्तिशाली चान्सलर (Iron Chanceller) बिसमार्क के परम मित्र थे तथा इस कारण यह कहा जा सकता है कि बिसमार्क की आर्थिक नीतियो का प्रेरणा स्रोत वागनर के आर्थिक विचार थे।

नवीनतम इतिहासवादी सम्प्रदाय (Youngest Historical School)

प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्री जे० ऐ० शुम्पीटर के विचारानुसार जर्मन नवीनतम इतिहासवादी सम्प्रदाय के तीन प्रसिद्ध प्रतिनिधि आर्थर स्पीथौफ, वर्नर सोम्बर्ट तथा मैक्स वैबर हैं। इन अर्थशास्त्रियो ने शमोलर के सदेश का प्रचार किया था। यद्यपि ये सब अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र के लक्ष्यो व रीति के विषयो पर शमोलर से पूर्णतया सहमत न थे, परन्तु जहाँ तक मौलिक सिद्धान्तो का प्रश्न था, ये लोग शमोलर के विचारों के सच्चे अनुयायी थे।

आर्थर स्पीथौफ (१८७३ ई०–१९३८ ई०)
(Arthur Spiethoff)

आर्थर स्पीथौफ ने काफी वर्षों तक शमोलर के सहायक के रूप मे कार्य किया था। वे शमोलर द्वारा सस्थापित पत्रिका **Jahrbuch** के सम्पादक भी थे। वे बौन (Bonn) मे प्रोफेसर भी रहे थे। उनकी अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि उनके व्यापार चक्र सम्बन्धी ऐतिहासिक अनुसधान पर आधारित है। उनके विचारानुसार व्यापार चक्रो की समस्या का कारण अत्युत्पादन (overproduction) मे निहित है।

वर्नर सोमबर्ट (१८६३ ई०-१९४१ ई०)
(Werner Sombart)

सोम्बर्ट मनुष्य तथा विचार के दृष्टिकोण से शमोलर का प्रतिरूप था।

उसकी पुस्तक **Der Moderne Kapitalismus (Modern Capitalism)** में, जिसमें पूँजीवाद के विकास के इतिहास की व्याख्या की गई है, मौलिक अनुसंधान का कोई चिन्ह नहीं है। यह पुस्तक १९०२ ई० में प्रकाशित हुई थी। १९११ ई० में लिखित **The Jews and Modern Capitalism** नामक पुस्तक में सोम्बर्ट ने यहूदियों को सम्पत्ति एकत्रित करने की भावना, जो पूँजीवाद का केन्द्र है, के लिये जिम्मेदार घोषित किया था। अपने दीर्घ जीवन में सोम्बर्ट नाजी बन गये थे। यहूदियों के प्रति उनका दृष्टिकोण बहुत ही घृणात्मक था। उनका कहना था कि जो एक बार यहूदी पैदा होता है वह दूसरी तथा तीसरी पीढ़ी तक भी यहूदी ही रहता है।

मैक्स वेबर (१८६४ ई०-१९२० ई०)
(Max Weber)

मैक्स वेबर अर्थशास्त्री, इतिहासकार व समाजशास्त्री सभी अनेक दृष्टिकोणों से श्मोलर के समान सच्चे तथा प्रसिद्ध विद्वान थे। सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री के नाते १९०४ में प्रकाशित उनकी पुस्तक **The Protestant Ethic and the Spirit of Capitalism** विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस पुस्तक में वेबर ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जिस धार्मिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप प्रोटेस्टेन्टवाद (Protestantism) का जन्म हुआ था, उस क्रान्ति का पूँजीपतियों के मानसिक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ा था। वेबर के इस नवीन विचार का समाजशास्त्रियों पर गहरा प्रभाव पड़ा तथा इसने एक ऐसे महान विवाद को जन्म दिया जिसमें सभी देशों के समाजशास्त्रियों ने भाग लिया था।

अंगरेजी इतिहासवादी सम्प्रदाय

सस्थापित आर्थिक सिद्धान्तों की आलोचना तथा इतिहासवादी रीति का प्रचार केवल जर्मनी तक ही सीमित नहीं था। वास्तविकता तो यह है कि इंगलैंड में भी विद्वान् सस्थापित आर्थिक सिद्धान्तों की आलोचना में व्यस्त थे। इंगलैंड में काफी अर्थशास्त्रियों ने जर्मन इतिहासवादी अर्थशास्त्रियों के समान अपने अध्ययन में इतिहासवादी अथवा आगमन रीति का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया था। इंगलैंड में जिन अर्थशास्त्रियों ने इतिहासवादी रीति का प्रचार किया था उनमें रिचार्ड जोन्स (१७९० ई०-१८५५ ई०), वाल्टर बेजहॉट (१८२६ ई०-१८७७ ई०); थाम्स एडवर्ड क्लिफ लेस्ली (१८२५ ई०-१८८२ ई०), जॉन कैल्स इंग्राम (१८२३ ई०-१९०७ ई०), आर्नोल्ड योइनबी (१८५२ ई०-१८८३ ई०), विलियम कनिंगहम (१८४९ ई०-१९१९ ई०) तथा विलियम जेम्स ऐशले (१८६० ई०-१९२७ ई०) के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। इन अर्थशास्त्रियों के व्यक्तिगत योगदान की संक्षिप्त व्याख्या निम्नलिखित प्रकार है।

रिचार्ड जोन्स (१७९० ई०-१८५५ ई०)
(Richard Jones)

रिचार्ड जोन्स, जो हेलबरी कालेज में माल्थस के उत्तराधिकारी थे, इंगलैंड में

इतिहासवादी आन्दोलन के प्रवर्त्तक थे। १८३१ ई० में प्रकाशित अपनी **Essay on the Distribution of Wealth and on the Sources of Taxation** नामक पुस्तक में उन्होंने रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की अमूर्त मान्यताओं (abstract assumptions) की कड़ी आलोचना की थी। जोन्स का कहना था कि लगान की समस्या की व्याख्या किसी सिद्धान्त द्वारा नहीं की जा सकती है तथा इस के लिये "look and see" दृष्टिकोण को अपनाना अनिवार्य है।

वाल्टर बेजहोट (१८२६ ई०--१८७७ ई०)
(Walter Bagehot)

रिकार्डो के समान बेजहोट को भी फाटके तथा स्टाक एक्सचेन्ज (stock exchange) का भारी ज्ञान था। वे प्रसिद्ध अधिकोषक, विद्वान तथा लेखक थे। १८७३ ई० में प्रकाशित उनकी **Lomberd Street** नामक पुस्तक अधिकोषण व वित्त के क्षेत्र में आज भी प्रथम श्रेणी की प्रसिद्ध पुस्तक मानी जाती है। रिकार्डो के प्रशंसक होते हुये भी उन्होंने आर्थिक समस्याओं के अध्ययन में इतिहासवादी रीति के प्रयोग पर बल दिया था।

थामस ऐडवर्ड क्लिफ लेस्ली (१८२५ ई०-१८८२ ई०)
(Thomas Edward Cliffe Leslie)

थॉमस ऐडवर्ड क्लिफ लेस्ली को अनेक बातों में रिचार्ड जोन्स का उत्तराधिकारी कहा जा सकता है। उनकी शिक्षा Isle of Man नामक स्थान पर King William's College तथा Dublin में Trinity College में हुई थी। उन पर सर हैनरी मेन (Sir Henry Maine) का काफी प्रभाव पड़ा था तथा उनकी इतिहासवादी रीति का लेस्ली ने राजनीतिक अर्थशास्त्र में प्रयोग किया था। उनकी प्रसिद्ध पुस्तकों में १८७० ई० में प्रकाशित **Land Systems and Industrial Economy of Ireland, England and, Continental Countries** तथा १८७९ ई० में प्रकाशित **Essays in Moral and Political Philosophy** विशेषरूप से उल्लेखनीय है। **Essays in Moral and Political Philosophy** पुस्तक इतिहासवादी रीति का दार्शनिक विवेचन है तथा प्रोफेसर इंगराम ने इसकी बहुत प्रशंसा की थी। लेस्ली संस्थापित अर्थशास्त्र के सामान्यतः तथा रिकार्डो के अर्थशास्त्र के विशेषरूप से आलोचक थे। उनके विचारानुसार राजनीतिक अर्थशास्त्र विश्वव्यापी प्राकृतिक नियमों का विज्ञान न होकर उन सिद्धान्तों का सग्रह है जो किसी विशेष इतिहास का परिणाम होते है। ये नियम अपरिवर्तनीय न होकर भिन्न समय तथा परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तनीय होते हैं क्योंकि इतिहास की यह विशेषता रही है कि इसमें भिन्न युगों तथा देशों में तथा एक ही युग में भिन्न प्रतिपादकों के विचारानुसार परिवर्तन होते रहे हैं। लेस्ली विशेष संस्थापित आर्थिक सिद्धान्तों के आलोचक थे। वाकर (F. A. Walker) तथा थार्नटन (W. T. Thornton) के समान लेस्ली ने भी मजदूरी के वेतन कोष

सिद्धान्तो की आलोचना की थी। करारोपण के सम्बन्ध मे उन्होने उन सभी करो की आलोचना की थी जिनके फलस्वरूप आर्थिक असमानताओ में वृद्धि होती है। वे सभी अप्रत्यक्ष करो के विपक्ष तथा प्रत्यक्ष करों के पक्ष मे थे।

जान कैल्स इंगराम (१८२३ ई०-१९०७ ई०)
(Jonn Kells Ingram)

लेस्ली के समान इगराम ने भी ट्रीनीटी कालेज, डबलिन (Trinity College Dublin) मे शिक्षा प्राप्त थी। वे लेस्ली के परम मित्रो में थे तथा उनके विचार लेस्ली के समान थे। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक **History of Poltical Economy** से आर्थिक विचारो के इतिहास के सभी विद्यार्थी भली प्रकार परिचित है। सस्थापित अर्थशास्त्र की आलोचना करते हुए उन्होने कहा था कि यह अर्थशास्त्र धन की समस्या के अध्ययन मे इतना अधिक व्यस्त था कि इसने अन्य सामाजिक घटनाओ के अध्ययन की ओर बिल्कुल ध्यान नही दिया था। यह निगमन रीत पर इतना अधिक आधारित था कि इतिहास के अध्ययन को इसमे कोई महत्व ही नहीं दिया गया है। उनका कहना था कि सस्थापित अर्थशास्त्र अवास्तविक था तथा इसका विज्ञान के विकास तथा सामाजिक परिवर्तनों से कोई सबन्ध नही था।

आर्नोल्ड टोइनबी (१८५२ ई०-१८८३ ई०)
(Arnold Toynbee)

आर्नोल्ड टोइनवी को इतिहास का विस्तृत ज्ञान था। वे प्रथम समाज सुधारक थे तथा इसके पश्चात एक अर्थशास्त्री थे। इतिहास के अपने विस्तृत ज्ञान की सहायता से उन्होने रिकार्डो के अर्थशास्त्र, विशेषरूप से रिकार्डोवादी लगान सिद्धान्त की बडी आलोचना की थी। वे श्रम सघो, चर्च आन्दोलन व शहरी समाज सुधारको के प्रति बहुत उदार दृष्टिकोण रखते थे। वे एक कुशल अध्यापक थे। बेल्योल कालेज, आक्सफोर्ड (Balliol College, Oxford) मे नियुक्ति की अवधि मे उन्होने पूँजीवाद के विकास तथा समस्याओ पर व्याख्यान दिये थे जिनमे उन्होने पूँजीवाद के ऐतिहासिक विकास पर प्रकाश डाला था। उनकी मृत्यु के पश्चात उनके व्याख्यान १८८४ ई० मे **Lectures on the Industrial Revolution o the Eighteenth Century in England** नामक पुस्तक के रूप मे प्रकाशित हुए थे। उनका कहना था कि अर्थशास्त्र तथा इतिहास मे एक विशेष गहरा सबन्ध था उनका विचार था कि आर्थिक सिद्धान्तो का आधार इतिहास होना चाहिए। इतिहास अर्थशास्त्र का पूरक है तथा इसके बिना अर्थशास्त्र का अध्ययन अधूरा तथ अवास्तविक है, ऐसा टोइनबी का दृढ विश्वास था।

विल्यम कनिंगहम (१८४९ ई०-१९१९ ई०)
(William Cunningham)

विलियम कनिंगहम प्रसिद्ध अगरेज अर्थशास्त्री एलफ्रेड मार्शल के केम्ब्रिज

विश्वविद्यालय मे समकालीन थे तथा मार्शल उनसे सदा सतर्क रहते थे।[4] १८७८ ई० मे उन्होने केम्ब्रिज विश्वविद्यालय मे सर्वप्रथम आर्थिक इतिहास पढाना आरम्भ किया था। १८८२ ई० मे उनकी प्रसिद्ध पुस्तक **The Growth of English Industy and Commerce** प्रकाशित हुई थी। यह पुस्तक आर्थिक इतिहास के क्षेत्र मे प्रसिद्ध है। उन्होने अपने लेखो तथा पुस्तको मे इस महान सत्य को स्पष्ट किया है कि आर्थिक, औद्योगिक तथा राजनैतिक इतिहासो मे पारस्परिक निर्भरता होती है। अपनी पुस्तक **Western Civilisation in its Economic Aspects,** जो दो खण्डो मे १८९८ ई० व १९०० ई० मे प्रकाशित हुई थी, मे कनिंगहम ने सभ्यता के उद्विकासात्मक विकास (evolutionary development) पर विशेष बल दिया है।

विलियम जेम्स ऐशले (१८६० ई० १९२७ ई०)
(William James Ashley)

आर्थिक विचारो के इतिहास मे विलियम जेम्स ऐशले का नाम कनिंगहम की अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध तथा परिचित है। ऐशले ने Balliol, College Oxford मे शिक्षा प्राप्त की थी तथा Sir Henry Main व Arnold Toynbee उनके अध्यापक रहे थे। ऐसी स्थिति मे ऐशले पर Sir Henry Main व Arnold Toynbee की इतिहासवादी विचारधारा का प्रभाव पडना स्वाभाविक ही था। वे जर्मन इतिहासवादी सम्प्रदाय के लेखको के लेखन कार्यो से पूर्णतया भली प्रकार परिचित थे। १८९२ ई० में अमरीका मे हरबर्ड विश्वविद्यालय मे आर्थिक इतिहास विभाग के स्थापित होने पर वे इस विभाग के प्रथम अध्यक्ष नियुक्त हुये थे तथा इस पद पर वे १९०१ ई० तक नियुक्त रहे थे। उनकी पुस्तकों मे **An Introduction to English Economic History and Theory** को विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई थी। १८८८ ई० व १८९३ ई० मे दो खण्डो मे प्रकाशित इस पुस्तक का शीघ्र ही जर्मन, रूसी, फ्रान्सीसी, व जापानी भाषाओ मे अनुवाद किया गया था। १९१७ ई० मे साहित्यिक तथा लोक क्षेत्रो मे उल्लेखनीय कार्य करने के हेतु उनको Knight की उपाधि प्रदान करके सम्मानित किया गया था। वे आगमन अथवा इतिहासवादी रीति के समर्थक थे।

---

4. ऐसा कहा जाता है कि मार्शल ने, जो आलोचनाओ से सदा डरते थे, अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **Priniciples of Economics** को कनिंगहम की आलोचनाओ का निशाना होने से बचाने के उद्देश्य से प्रकाशको को प्रकाशन के लिये देने के पूर्व कई बार सुधारा था तथा प्रकाशको को देने के पश्चात् भी फिर एक पुस्तक की हस्तलिपि को वापस लेकर उसको पुनः दोहराया था।

इतिहासवादी सम्प्रदाय के आलोचनात्मक विचार (Critical Ideas of the Historical School)

इतिहासवादी सम्प्रदाय तथाइस की विचारधारा दीर्घकाल मे प्रतिपादित अनेक अर्थशास्त्रियो के विचारो का सग्रह है। इस सम्प्रदाय के प्राचीन व नवीन सम्प्रदायो के सदस्यो के विचारो मे भिन्नता होते हुये भी, इनमे मौलिक समानता विद्यमान है। सामान्यरूप से इतिहासवादी सम्प्रदाय के सभी लेखक—चाहे वे प्राचीन सम्प्रदाय के सदस्य हो, चाहे नवीन अथवा नवीनतम सम्प्रदाय के सदस्य हो -सस्थापित आर्थिक सिद्धान्तो—निगमन रीति, अर्थशास्त्र के लक्ष्यो—के कड़े आलोचक थे। इतिहासवादियो का कहना था कि सस्थापित अर्थशास्त्र का व्यावहारिक जीवन की आर्थिक व सामाजिक समस्याओ से कोई सम्बन्ध नही है। इतिहासवादी सम्प्रदाय के लेखको ने अर्थशास्त्र सस्थापको (Classical Economists) की विचारधारा पर तीन निम्नलिखित आरोप लगाये है।

(१) इतिहासवादी सम्प्रदाय के लेखको ने अर्थशास्त्र सस्थापको के इस मत को गलत बताया कि जिन आर्थिक सिद्धान्तो का अर्थशास्त्र सस्थापको ने प्रतिपादन किया था वे प्राकृतिक नियमो के समान अटल तथा विश्व-व्यापी-थे। इतिहासवादियो का कहना था कि आर्थिक नियमो की प्रकृति सापेक्ष (Relative) होने के कारण ये नियम किसी विशेष परिस्थिति व देश से ही सम्बन्धित हो सकते थे तथा इनके आधार पर सभी समय व परिस्थितियो मे निष्कर्ष निकालना कदापि उचित नही था। उदाहरणार्थ स्वतन्त्र-व्यापार का सिद्धान्त जो इगलैंड के लिये उपयुक्त था यह आवश्यक नही कि अन्य देशों के लिये भी उपयुक्त हो। इतना ही नहीं, बल्कि उसी देश के लिये परिस्थिति मे परिवर्तन होने पर यह सिद्धान्त अनुपयुक्त सिद्ध हो सकता था। इतिहासवादियो का तर्क था कि अर्थशास्त्र की विषय सामग्री मनुष्य की आर्थिक क्रियाएँ हैं तथा समाज के विकास के फलस्वरूप मनुष्य के विकास के साथ-साथ इन आर्थिक क्रियाओ की प्रकृति मे भी परिवर्तन होते है। इस कारण अर्थशास्त्र के नियम परिवर्तनीय है। ये नियम किसी विशेष स्थान व समय मे ही क्रियाशील हो सकते है। अर्थशास्त्र सस्थापकों की यह बडी भारी भूल थी कि वे सदा अपने नियमों की सत्यता को "अन्य बातें समान रहते हुये" (other things remaining the same) की मान्यता के अन्तर्गत परखने का प्रयास करते थे। वास्तविकता इस मान्यता के बिलकुल विपरीत है तथा प्रवेगिक समाज मे अन्य बातो मे सदा परिवर्तन होते रहने के कारण आर्थिक सिद्धान्तो व नियमो मे भी परिवर्तनो का अश सदा उपस्थित रहेगा। उदाहरणार्थ क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम (Law of Diminishnig Utility) केवल उसी विशेष परिस्थिति मे लागू हो सकता था जब उपभोक्ता की आय, उस की आदतें, वस्तु के गुण इत्यादि बातो मे कोई परिवर्तन न हो तथा वस्तु की भिन्न इकाइयो के उपभोग के समय मे कोई

परिवर्तन न हो। इस प्रकार यह भली प्रकार विदित है कि इतिहासवादियों की यह आलोचना सही थी कि अर्थशास्त्र के नियम अटल तथा विश्वव्यापी नहीं हैं।

(२) दूसरे इतिहासवादियों ने सस्थापित आर्थिक सिद्धान्तो की यह कह कर आलोचना की थी कि ये सिद्धान्त मनुष्य की मनोवृत्ति के गलत अध्ययन पर आधारित थे। अर्थशास्त्र सस्थापकों का यह दृढ विश्वास था कि प्रत्येक मनुष्य एकमात्र स्वार्थ अथवा निजी हित की भावना से प्रेरित होता है। इस विचारधारा ने आर्थिक मनुष्य (Economic Man) के गलत विचार को जन्म दिया। यद्यपि प्रत्येक मनुष्य अपने स्वार्थ की भावना को ध्यान मे रखता है तथा यह भावना उस को आर्थिक क्रियायें करने के लिये प्रेरणा प्रदान करने की एक प्रमुख शक्ति है, परन्तु सामाजिक प्राणी होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति अन्य भावनाओ से भी प्रभावित होता है। इतिहासवादियो ने स्मिथवादी निजी हित के सिद्धान्त की कडी आलोचना करके यह सिद्ध किया कि आर्थिक जगत मे भी मनुष्य केवल स्वार्थ की भावना से प्रेरित नही होता है। स्वार्थ के अतिरिक्त मनुष्य को आर्थिक क्रियाओं के करने में अन्य आकाक्षाओं से भी प्रेरणा प्राप्त होती है। दया, प्रेम, देश भक्ति, आत्म सम्मानता स्वाभिमानता तथा इसी प्रकार की अन्य भावनाये प्रत्येक मनुष्य को आर्थिक जगत मे स्वार्थ की भावना की तुलना मे कम प्रेरणा प्रदान नही करती है। अर्थशास्त्र सस्थापक जीवन के इस महान सत्य को भूल गये कि लाभ प्राप्त करने के अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते दूसरो की सहायता करने व मित्रता प्राप्त करने का भी इच्छुक रहता है। सस्थापित अर्थशास्त्र मानव मनोवृत्ति के अपूर्ण अध्ययन की भ्रमात्मक आधारशिला पर आधारित होने के कारण अवास्तविक व अव्यावहारिक था।

(३) तीसरे, इतिहासवादी सम्प्रदाय के लेखकों ने एकमत होकर अर्थशास्त्र सस्थापकों के अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे निगमन रीति के प्रयोग की आलोचना की थी। इतिहासवादियो ने उन सामान्य सत्यो को गलत घोषित किया जिन पर सस्थापित आर्थिक सिद्धान्त आधारित थे। सस्थापित अर्थशास्त्र मे अध्ययन की निगमन रीति का प्रयोग किया गया था। इतिहासवादियो ने इस रीति के स्थान पर आगमन रीति का प्रयोग किया तथा व्यावहारिक समस्याओ का अध्ययन परम्परावादी काल्पनिक सामान्य सत्यो के द्वारा न करके, वास्तविकता के आधार पर किया।

यद्यपि इतिहासवादियो ने परम्परावादा निगमन रीति की कडी आलोचना की थी, परन्तु वर्तमान अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र के पूर्ण अध्ययन के लिये निगमन तथा आगमन दोनो रीतियों को समान रूप में महत्वपूर्ण विचारते है। उनके विचारानुसार अर्थशास्त्र अध्ययन के लिये निगमन व आगमन दोनो रीतियो का प्रयोग उतना ही

आवश्यक है जितना कि दाईं व बांई दोनो टाँगो का प्रयोग चलने के लिये आवश्यक है ।

इतिहासवादी सम्प्रदाय के धनात्मक विचार (Positive Ideas of the Historical School)

इतिहासवादी सम्प्रदाय का योगदान केवल आलोचनात्मक विचारो तक ही सीमित नही था । आलोचनात्मक विचारो के अतिरिक्त इतिहासवादियो ने धनात्मक अथवा रचनात्मक विचारो का प्रतिपादन करके भी आर्थिक विचारो के इतिहास को दृढ बनाया है । अर्थशास्त्र संस्थापकों ने आर्थिक समस्याओं व घटनाओं के अध्ययन में केवल अमूर्त (Abstact) रीति का ही प्रयोग किया था । उनका विश्वास था कि वास्तविक संसार मे होने वाली आर्थिक घटनाओ का अध्ययन कुछ व्यापक सिद्धान्तों के द्वारा किया जा सकता था । परिणामस्वरूप संस्थापित अर्थशास्त्र मे स्थाई अत्युत्पादन संकट की समस्या का कोई स्थान नही था ।

इतिहासवादियो ने इस प्रकार की अव्यावहारिक विचारधारा की कड़ी आलोचना की । उन्होंने व्यावहारिक जगत मे होने वाली प्रत्येक आर्थिक समस्या व संकट का वास्तविक रूप से अध्ययन करने पर विशेष बल दिया । अर्थशास्त्र संस्थापकों की अमूर्त रीति का परित्याग करके इतिहासवादियो ने अध्ययन की वास्तविक रीति (Con rete me.hod) के द्वारा आर्थिक जगत मे विद्यमान होने वाली प्रत्येक घटना का अध्ययन किया ।

इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र संस्थापको ने अपने अध्ययन को मनुष्य की केवल आर्थिक क्रियाओ तक ही सीमित रखा था । उन्होने मनुष्य तथा उसकी आर्थिक क्रियाओं पर पड़ने वाले सामाजिक वातावरण के प्रभावो की ओर कोई ध्यान नही दिया था । परिणामस्वरूप उनके अर्थशास्त्र मे व्यावहारिकता का भारी अभाव था । इतिहासवादियो ने राष्ट्रीय सामाजिक व आर्थिक संस्थाओ का विशेष रूप से अध्ययन करके अर्थशास्त्र को एक नया रूप प्रदान किया । इतिहासवादियों ने इस सत्य को स्पष्ट किया कि राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओ पर उस राष्ट्र की भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक व मानव साधनों, नागरिको की शिक्षा व उनके चरित्र, शासन प्रणाली, रीति रिवाजों तथा धार्मिक शक्तियो का गहरा प्रभाव पड़ता है । ये सब बाते जिनका किसी राष्ट्र विशेष की आर्थिक संस्थाओ पर गहरा प्रभाव पड़ता है, प्रवेगिक है, अर्थात समय व युग के व्यतीत होने के साथ इनमें भी परिवर्तन होते रहते हैं । इतिहासवादियों का कहना था कि राष्ट्रीय जीवन शरीर के समान है जिस को समझने के लिये इसके विभिन्न भागो का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक था । इतना ही नही बल्कि इस के किसी एक भाग को समझने के लिये भी अन्य भागो अथवा अंगों का अध्ययन आवश्यक था । किसी राष्ट्र के अर्थशास्त्र को समझने के लिये न केवल उस राष्ट्र की आर्थिक संस्थाओ का अध्ययन आवश्यक था, बल्कि इसके अतिरिक्त उस राष्ट्र की भाषा, कला, धर्म, विज्ञान, कानून, राजनीति आदि का अध्ययन करना भी

समान आवश्यक था। इस प्रकार इतिहासवादियों ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र को विस्तृत बनाया था।

उपरोक्त योगदान के अतिरिक्त इतिहासवादियों ने यह भी स्पष्ट किया कि सामाजिक वातावरण, जिसका आर्थिक संस्थाओं पर गहरा प्रभाव पड़ता है, परिवर्तनशील है। इतिहास इस सत्य का साक्षी है कि कभी दो युगों का सामाजिक वातावरण समान नहीं रहा है। वास्तव में दो युगों की परिभाषा का आधार इन युगों का भिन्न सामाजिक वातावरण ही है। इतिहास के अध्ययन से यह भली प्रकार ज्ञात होता है कि चरागाह युग का सामाजिक वातावरण कृषि युग के सामाजिक वातावरण से तथा औद्योगिक युग का सामाजिक वातावरण चरागाह व कृषि युगों के सामाजिक वातावरणों से मौलिक रूप से भिन्न था। इतना ही नहीं बल्कि वर्तमान युग का वातावरण भविष्य युग के वातावरण से भिन्न होगा। परिवर्तन प्रकृति का महान नियम है तथा सामाजिक वातावरण भी अन्य तत्वों के समान इस नियम के अधीन है।

इतिहासवादियों ने सामाजिक वातावरण के प्रवेगिक स्वभाव को स्पष्ट करने के अतिरिक्त यह भी बतलाया कि यद्यपि दो युगों का सामाजिक वातावरण एक दूसरे से भिन्न होता है, परन्तु भिन्नता का यह अर्थ कदापि नहीं है कि दोनों युगों के वातावरणों में कोई सम्बन्ध नहीं है। वास्तविकता इसके विपरीत है। वर्तमान को समझने के लिये भूत का अध्ययन करना आवश्यक है। किसी युग-विशेष का सामाजिक वातावरण कुछ बातों में उससे पूर्व युग के सामाजिक वातावरण से प्रभावित होता है। इस प्रकार इतिहासवादियों ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र में इतिहास के अध्ययन के महत्व को समझाया था तथा आर्थिक इतिहास (Economic History) के विषय के अध्ययन की नींव डाली थी। इतिहासवादी सम्प्रदाय की आर्थिक विचारों के इतिहास को सबसे अधिक महत्वपूर्ण धनात्मक देन इस सत्य में निहित है कि इतिहासवादियों ने अर्थशास्त्र के सीमित क्षेत्र को विस्तृत बना कर इस विज्ञान को अधिक व्यावहारिकता प्रदान की तथा यह घोषित किया कि राष्ट्र के आर्थिक विकास का अध्ययन करने के लिये न केवल वर्तमान आर्थिक व सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन करना आवश्यक है, वरन् इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक विकास का ज्ञान प्राप्त होना भी अत्यन्त आवश्यक है। इतिहासवादी सम्प्रदाय के जन्म, इसके वर्गीकरण तथा विचारों को निम्नलिखित चार्ट द्वारा समझाया जा सकता है।

संस्थापित आर्थिक सिद्धान्तो की अव्यावहारिकता व आलोचनाओ ने
इतिहासवादी सम्प्रदाय को जन्म दिया
विचार
वर्गीकरण
धनात्मक
आलोचनात्मक
अंगरेज सम्प्रदाय
जर्मन सम्प्रदाय
(वाल्टर वेजहोट, रिचार्ड जोन्स, क्लिफ लेस्ली, आर्नोल्ड टोईनवी, इ गराम, जेम्श ऐशले इत्यादि)
निगमन रीति की आलोचना
आर्थिक नियमो की विश्वव्यापी व निर्पेक्ष प्रकृति की आलोचना
'अन्य बाते समान है' मान्यता का खण्डन
स्वार्थ मनोवृत्ति की आलोचना
विश्वमित्रता के विचार की आलोचना
आगमन अथवा इतिहासवादी रीति का प्रतिपादन
इतिहास के अध्ययन का महत्व
आर्थिक नियमो की सापेक्षता
राष्ट्रीयता के विचार का आरम्भ
सामाजिक वातावरण के अध्ययन का महत्व
अनार्थिक तत्वो के अध्ययन का महत्व
प्राचीन सम्प्रदाय (रोशर, हिल्डेब्रेड तथा नीज)
नवीन सम्प्रदाय (श्मोलर, वागनर, बुचर, नैप ब्रेन्टानो)
नवीनतम सम्प्रदाय (स्पीथौफ, सोम्बर्ट, मैक्स वेवर)

सारांश

इतिहासवादी सम्प्रदाय का आर्थिक विचारों के इतिहास में एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि जर्मनी इतिहासवादियों की क्रियाओं का विशेष केन्द्र था परन्तु इतिहावादी सम्प्रदाय का प्रभाव केवल जर्मनी तक ही सीमित नहीं था। इंगलैंड, जिसकी जलवायु एडम स्मिथ के अर्थशास्त्र के विकास के लिये अनुकूल सिद्ध हुई थी, में भी इतिहासवादी सम्प्रदाय के प्रभाव के चिन्ह विद्यमान थे। इतिहासवादियों ने अर्थशास्त्र के अध्ययन को इतिहासवादी रीति का प्रयोग करके अधिक वास्तविक बनाया। उन्होने एडम स्मिथ तथा उसके अनुयायियों के गलत आर्थिक सिद्धान्तों की आलोचना करके अर्थशास्त्र विज्ञान को अधिक दृढ बनाने में भारी योगदान दिया। इतिहासवादी सम्प्रदाय एक प्रकार से नव-संस्थापक सम्प्रदाय, जिसके नेता अलफ्रेड मार्शल थे, के अभ्युदय के लिये उत्तरदायी था। इतिहासवादी सम्प्रदाय के प्रभाव के कारण ही आर्थिक संस्थाओं के अध्ययन को एक नया रूप तथा महत्व दिया गया था। आज अर्थशास्त्र के विद्यार्थी अर्थशास्त्र के अध्ययन में इतिहासवादी अथवा आगमन रीति के महत्व से भली प्रकार परिचित है। आर्थिक योगदान के दृष्टिकोण से वर्तमान अर्थशास्त्री इतिहासवादी सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियों के भी उतने ही ऋणी हैं जितने कि वे एडम स्मिथ तथा उनके अनुयायियो के हैं।

विशेष अध्ययन सूची

1. L H. Haney : History of Economic Thought, Chapters XXVI & XXVII.
2. Gide and Rist : A History of Economic Doctrines, Book IV, Chapter I.
3. J F. Bell : A History of Economic Thought, Chapter 16.
4. Eric Roll : A History of Economic Thought, Chapter VII, pp 303-311.
5. Robert Lekachman A History of Economic Ideas, Chapter 12
6. J. M. Ferguson : Landmarks of Economic Thought, Chapter XI.
7. J. A. Schumpeter : *History of Economic Analysis*, Part, IV, Chapter 4, pp. 807-821.
8. Edmund Whittaker : Schools and Streams of Economic Thought, Chapter 9.
9. Phillip C. Newman : The Development of Economic Thought, Part Three, Chapter XIX

प्रश्न

1. Give a brief account of the critical and positive ideas of

the Historical School

(आगरा, १९४६,१९५२; १९६२, राजस्थान, १९५६; १९५७)

2. Give a brief account of the origin and development of the Historical School How far have their critical and positive ideas influenced economic thought.

(आगरा १९४८; १९५८, १९६०, राजस्थान, १९४८)

3. Give the critical and positive ideas of the Historical School and point out the difference between the old and the new representatives of this School.

(राजस्थान, १९५०)

4. Point out the leading ideas of the German Historical School and assess their influence on the development of economic thought.

(राजस्थान, १९५३)

5 *Assess the contribution of the Historical School to the* growth of economic theory.

(राजस्थान, १९६०, १९६१)

6. Show how far the German Historical School has influenced economic thought.

(अलीगढ, १९५७, १९५७)

7. Examine the grounds on which the Historical School challenges classical political economy

(बनारस, १९५८)

8. State and evaluate the contribution of the Historical School of political economy.

(बनारस, १९५७)

9. State and criticise the main tenets of the Historical School

(कर्नाटक, १९५६)

चतुर्थ खण्ड

समाजवादी सम्प्रदाय

(Socialist Schools)

अध्याय २०

समाजवाद का अर्थ तथा इस के प्रकार

(Meaning and Kinds of Socialism)

अंग्रेजी भाषा का socialism (समाजवाद) शब्द लेटिन भाषा के 'socius' शब्द, जिस का अर्थ साथी comrade है, से प्राप्त हुआ है। वास्तव मे समाजवादी तथा साम्यवादी विचार एक प्रकार से उतने ही अधिक पुराने है जितनी अधिक पुरानी स्वयं मानव जाति है । आदि काल से ही समाज सुधारकों, लेखकों, विचारकों, तत्वज्ञानियों तथा धर्म प्रचारकों ने उन विचारों का प्रचार किया है जो समाजवाद की प्रमुख विशेषता है। बहुत प्राचीन समय से ही मनुष्य संसार मे एक ऐसे आदर्श समाज का निर्माण करने मे प्रयत्नशील रहा है जिस मे शोषण की समस्या विद्यमान न हो, जो वर्ग संघर्ष की बुरी घटना से मुक्त हो तथा जिसमे जीवन सुखमय हो। प्राचीन तथा मध्यकाल मे समाज सुधारकों व तत्वज्ञानियो ने मानवतावाद का प्रचार किया था। सभी धार्मिक ग्रन्थों मे शोषण को अधार्मिक क्रिया घोषित किया गया है । प्राचीन ईसाई तथा हिन्दू धर्मों मे ब्याज का लेना बुरा समझा जाता था। ईसा मसीह ने मानव सहायता का सदेश दिया तथा शोषण का विरोध किया था। वे ससार मे परमेश्वर-राज्य (Kingdom of God) स्थापित करना चाहते थे, जिस मे सब व्यक्तियो को सच्चा सुख प्राप्त हो सके तथा जिसमे सामाजिक सम्बन्धो का आधार मानव-श्रम हो। प्लेटो ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Republic' तथा १५१६ ई० मे सर थोमस मूर ने अपनी पुस्तक 'Utopia' मे आदर्श समाजवादी राज्य का चित्रण किया था। कुछ समय पश्चात १६२७ ई० मे फ्रान्सिस बेकन ने अपनी पुस्तक New Atlantis, १७६२ ई० मे रूसो ने अपनी पुस्तक 'The Social Contract', तथा प्रसिद्ध उपन्यासकार एच. जी. वेल्स ने अपनी पुस्तक 'New Worlds for Old' मे आदर्श समाज की कल्पना की थी। यद्यपि इन तथा अन्य लेखकों के विचार काल्पनिक थे तथा आज इन को कल्पनावादी कहकर पुकारा जाता है, परन्तु उन के ये विचार उस समय की सामाजिक व आर्थिक बुरी परिस्थितियों के स्वाभाविक परिणाम थे।

यद्यपि फ्रास मे व्यक्तिनिष्ट समाजवादी दल (Radical Socialist Party) की स्थापना १८ वी शताब्दी के मध्य मे हुई थी परन्तु सक्रिय समाजवादी आन्दोलन

का आरम्भ १८ वी शताब्दी के अन्तिम वर्षों मे उस समय हुआ था जब Francois Babeuf ने सामाजिक व आर्थिक समानता स्थापित करने के उद्देश्य से फ्रान्स मे राज्य-शासन मे नियम विरुद्ध विप्लव करने का असफल प्रयास किया था। परन्तु यह सब कुछ होते हुये भी १८ वी शताब्दी एडम स्मिथ तथा उनके पूर्वाधिकारी प्रकृतिवादियो की शताब्दी थी। व्यक्तिवाद तथा अबन्ध नीति (laissez faire) १८वी शताब्दी की मुख्य विशेषताए थी।

सच्चे रूप से वर्तमान समाजवाद का जन्म १९ वी शताब्दी मे ही हुआ था। वर्तमान समाजवाद १९ वी शताब्दी की विशेष सामाजिक घटना है। इस को जन्म देने वाली दो प्रमुख शक्तिया थी। प्रथम शक्ति फ्रान्स मे १७८९ ई० मे हुई प्रसिद्ध फ्रान्सीसी क्रान्ति थी जिस का न केवल फ्रान्स वरन् यूरोप के अन्य देशो के आर्थिक व सामाजिक ढाचो पर भी गहरा प्रभाव पड़ा था। समाजवाद को जन्म देने वाली दूसरी शक्ति जो पहली शक्ति से किसी भी प्रकार से कम महत्वपूर्ण नही थी इगलैंड मे हुई प्रसिद्ध औद्योगिक क्रान्ति थी। एक प्रकार से यह कहना गलत न होगा कि वर्तमान समाजवाद प्रसिद्ध फ्रान्सीसी तथा औद्योगिक क्रान्तियो का परिणाम था।

१९ वी शताब्दी मे औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप यद्यपि उत्पादन मे प्रचुरता का अनुभव किया गया था परन्तु इसके साथ ही इंगलेंड, फ्रॉस तथा यूरोप के अन्य देशो म जहाँ बड़े पैमाने के उद्योगो का विकास हुआ था करोडो श्रमिको की आर्थिक स्थिति चिन्ताजनक थी। औद्योगीकरण के फलस्वरूप धन तथा पूँजी समाज मे केवल थोडे से पूँजीपतियो के हाथो मे केन्द्रित हो गये थे। पूँजीवाद मे श्रमिको की आर्थिक कठिनाइयो मे वृद्धि हो गई थी तथा वर्ग संघर्ष की गम्भीर समस्या समाज में तीव्रता के साथ विद्यमान हो रही थी। एडम स्मिथ के व्यक्तिवाद व सामाजिक हितो मे समानता कदापि नही थी। १९ वी शताब्दी की प्रथम तीन शताब्दियो मे १८१५ ई०, १८१८ ई० तथा १८२५ ई० मे तीन महान आर्थिक सकट विद्यमान हुए थे जिनके फलस्वरूप बेकारी, अत्युत्पादन, शोषण आदि गम्भीर आर्थिक व सामाजिक समस्यायें समाज की शान्ति को भग कर रही थी। समाज मे स्थाई संतुलन व शान्ति स्थापित करने के लिये राज्य-हस्तक्षेप अनिवार्य था। सिसमोन्डी, सेंट साइमन, फ्रान्कस एमाइल बेव्योफ (Francois Emile Babeuf), एटिनी कैबट (Etienne Cabet) इत्यादि फ्रान्सीसी लेखको ने संस्थापित आर्थिक सिद्धान्तो की व्यावहारिकता मे सदेह प्रकट किया तथा स्मिथवादी अबन्ध नीति (Laissez faire) की आलोचना की। इन लेखको ने यह स्पष्ट किया कि समाज मे शोषण की समस्या पर विजय प्राप्त करने के लिए व्यक्तिगत सम्पत्ति की सस्था पर नियत्रण व रोक लगानी अनिवार्य थी। इन लेखको ने राज्य के कार्य क्षेत्र के विस्तार के पक्ष मे तर्क प्रस्तुत करके वर्तमान समाजवाद की नीव डाली थी।

१९ वी शताब्दी के मध्य तक का समाजवाद एक प्रकार से यूटोपियाई (कल्पनावादी) समाजवाद था। इस युग के लेखक क्रान्ति मे विश्वास नही करते

थे। इनका विचार था कि केवल कानून मे सुधार करके समाज की बुराइयों पर विजय प्राप्त की जा सकती थी। इन लेखको का कहना था कि मनुष्य सामाजिक वातावरण से प्रभावित होता है तथा सामाजिक वातावरण मे उपयुक्त परिवर्तन करके मानव स्वार्थ तथा लालच को समाप्त किया जा सकता है। फलस्वरूप इन लेखको ने अपनी-अपनी सुधार योजनाएँ प्रस्तुत की थी। व्यक्तिगत सम्पत्ति, जो संस्थापित अर्थशास्त्र की आधारशिला थी, के स्थान पर इन लेखको ने सम्पत्ति पर सामूहिक स्वामित्व (Collective Ownership) का सुझाव दिया तथा व्यक्तिगत उत्पादन प्रणाली (Individualistic Productive System) के स्थान पर उत्पादन की सहकारी प्रणाली, जिसके अन्तर्गत श्रमिको के शोषण तथा एकाधिकार की समस्याओ का अन्त हो जाता है, का सुझाव दिया। आर्थिक असमानताओ को दूर करके इन लेखको ने विधान द्वारा समानता स्थापित करने का सुझाव दिया। संक्षेप मे इन लेखको की योजनाओ का उद्देश्य समाज मे आर्थिक तथा नैतिक सुधार करके एक ऐसे नवीन समाज का निर्माण करना था जिससे धनी तथा निर्धन के बीच कोई अन्तर न हो तथा जहाँ आय प्राप्ति का आधार निजी सम्पत्ति न होकर व्यक्ति की योग्यता हो।

समय के व्यतीत होने के साथ-साथ समाजवाद की शाखाएँ भी बरगद के वृक्ष के समान फैलती गई तथा समाजवादी अनेक भिन्न दलो मे बँट गये। यूटोपियाई समाजवाद (Uptopian Socialism), फेबियन समाजवाद (Fabian Socialism), राज्य समाजवाद (State Socialism); ईसाई समाजवाद (Christian Socialism); मार्क्सवादी समाजवाद (Marxian Socialism), नवमार्क्सवादी समाजवाद (Neomarxian Socialism); रिकार्डोवादी समाजवाद (Ricardian Socialism); व्यक्तिनिष्ठ समाजवाद (Radical Socialism) साहचर्य समाजवाद (Associative Socialism); पुनरीक्षक समाजवाद (Rivisionist Socialism); अनुग्र समाजवाद (Professional Socialism), संघ समाजवाद (Guild Socialism) इत्यादि सभी समाजवाद की शाखायें है। इनमे से कुछ प्रमुख प्रकार के समाजवाद की विशेषताओ तथा समाजवादियों के योगदानो का सविस्तार अध्ययन इस तथा अगले चार अध्यायो मे किया जावेगा। समाजवाद के भिन्न प्रकारो को निम्नलिखित चित्र द्वारा समझाया गया है।

समाजवाद की अन्य शाखाएँ	←——|——→	मार्क्सवादी समाजवाद
नवमार्क्सवादी समाजवाद	←——|——→	राज्य समाजवाद
फेबियन समाजवाद	←——|——→	पुनरीक्षक समाजवाद
ईसाई समाजवाद	←——|——→	रिकार्डोवादी समाजवाद
संघ समाजवाद	←——|——→	साहचर्य समाजवाद
अनुग्र समाजवाद	←——|——→	यूटोपियाई समाजवाद
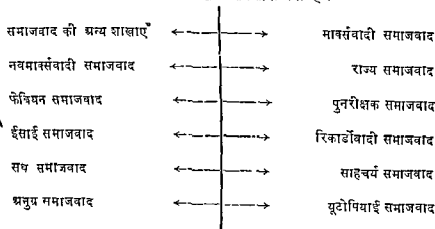
समाजवाद की परिभाषा

यद्यपि हम सब 'समाजवाद' शब्द से परिचित है परन्तु फिर भी समाजवाद की ठीक प्रकार परिभाषा करना एक अति कठिन कार्य है क्योकि समाजवाद की उतनी ही अधिक परिभाषायें हो सकती हैं जितने अधिक समाजवादी संसार मे है। समाजवाद शब्द इतना अधिक लचीला है कि इसको बहुत सी बातो से सबोधित किया गया है। समाजवाद शब्द को परिभाषित करने का कठिनाई को बताते हुये ऐ० शेडवेल (A. Shadwell) ने जुलाई १६४६ की **Quarterly Review** नामक पत्रिका मे अपने लेख मे इस प्रकार लिखा था। "यह (समाजवाद) भाववाचक भी है तथा साकार भी, सैद्धान्तिक भी है तथा व्यावहारिक भी, आदर्शवादी भी है तथा भौतिकवादी भी, बहुत पुराना भी है तथा पूर्णतया नया भी, यह केवल भावना से लेकर कार्य के एक निश्चित कार्यक्रम तक व्यापक है, कुछ व्यक्तियो के अनुसार यदि यह जीवन का दर्शन है तो कुछ अन्य व्यक्तियों के विचारानुसार यह धर्म है, यदि कुछ व्यक्तियों ने इसको आर्थिक प्रणाली कहा है तो अन्य कुछ व्यक्तियों ने इसको नीतिशास्त्र का नियम बताया है; यदि कुछ के अनुसार यह ऐतिहासिक विलक्षणता है तो अन्य कुछ व्यक्तियों के अनुसार न्यायिक सिद्धान्त है, यह लोकप्रिय आन्दोलन भी है तथा वैज्ञानिक विश्लेषण भी, यह अतीत की व्याख्या भी है तथा भविष्य का स्वप्न भी, यह प्यार का उपदेश भी है तथा घृणा व लालच के विरुद्ध आन्दोलन भी, यह मानव जाति की आशा भी है तथा सभ्यता का अन्त भी, यह युद्ध की आवाज भी है तथा युद्ध का विरोध भी, यह भयानक क्रान्ति भी है तथा अच्छी क्रान्ति भी है।" यह सब कुछ कहने का तात्पर्य यह है कि समाजवाद सक्षेप मे सब कुछ है। एक लेखक के अनुसार समाजवाद उस टोप (hat) के समान है जिसकी शकल इतनी अधिक बिगड़ी हुई है कि उसको पहिचानना कठिन है।

डिकिन्सन के अनुसार समाजवाद "समाज के उस आर्थिक सगठन को कहते है जिसके अन्तर्गत उत्पादन के साधनो पर समस्त समाज का स्वामित्व होता है तथा जहां साधनो का प्रयोग समाज के प्रतिनिधियो द्वारा—सरकार द्वारा जो अपनी सभी क्रियाओ के लिये समाज के प्रति उत्तरदायी होती हैं—तैयार की गई योजना के अनुसार किया जाता है तथा जिसके लाभो को प्राप्त करने के अधिकारी समाज के सब सदस्य होते हैं।" एक अन्य परिभाषा के अनुसार "समाजवाद वह आन्दोलन है जिसका उद्देश्य उत्पत्ति के सभी प्राकृतिक तथा मनुष्यकृत साधनो के स्वामित्व व प्रबन्ध पर समाज का अधिकार स्थापित करना तथा व्यक्तिगत व्यवसाय तथा उपभोग सम्बन्धी स्वतन्त्रता का खण्डन किये बिना राष्ट्रीय आय का समाज मे समानता के सिद्धान्त के अनुसार वितरण करना होता है।" अप्रेल, १६४० ई० मे वाशिंगटन मे हुई समाजवादी दल की राष्ट्रीय सभा मे समाजवाद की परिभाषा इस प्रकार की गई थी। समाजवाद का अभिप्राय "उद्योग मे प्रजातन्त्र नियन्त्रण तथा सामाजिक

स्वामित्व, व्यक्तिगत लाभ के स्थान पर समाज कल्याण व लोकसेवा से है। इसके अन्तर्गत श्रमिको को व्यावसायिक, उपभोक्ताओ को उपभोग सम्बन्धी तथा अन्य सभी कार्यात्मक वर्गों (functional groups) को संघ बनाने की स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्री जे० ए० शुम्पीटर के अनुसार "समाजवादी समाज उस समाज को कहते है जिसमे उत्पत्ति के साधनो तथा उत्पादन के ऊपर केन्द्रिय शक्ति (central authority) का नियन्त्रण होता है, अथवा जहाँ समाज की आर्थिक क्रियाये व्यक्तिगत निजी क्षेत्र मे न होकर सार्वजनिक क्षेत्र मे होती है।"[1]

यद्यपि भिन्न लेखको की समाजवाद की परिभाषाओ मे अन्तर पाया जाता है परन्तु फिर भी सभी परिभाषाओं मे कुछ बातो मे समानता पाई जाती है। सभी समाजवादी लेखक इस बात मे एकमत है समाजवाद मुख्य रूप से एक आर्थिक आन्दोलन है जिसका लक्ष्य समाज मे शोषण समाप्त करके आर्थिक समानता स्थापित करना है। समाजवाद, चाहे वह किसी भी प्रकार का क्यो न हो, का लक्ष्य धन व सम्पत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व को समाप्त अथवा सीमित करना है। सभी समाजवादी चाहे उनका सम्बन्ध किसी भी समाजवादी दल मे क्यो न हो, इस प्रश्न पर एकमत है कि उत्पत्ति के साधनो के ऊपर व्यक्ति का अधिकार न होकर समाज का अधिकार होना चाहिये। इसके अतिरिक्त समाजवाद में आर्थिक क्रियाओं का लक्ष्य लाभ प्राप्त करना न होकर समाज कल्याण मे वृद्धि करना होता है। संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि उत्पत्ति के साधनो पर समाज का स्वामित्व होना, व्यक्तिगत सम्पत्ति को समाप्त करना अथवा सीमित रखना तथा लाभ के स्थान पर समाज कल्याण के द्वारा आर्थिक क्रियाओ का किया जाना समाजवाद की तीन प्रमुख विशेषतायें हैं।

समाजवाद के प्रमुख प्रकारों की सविस्तार व्याख्या

ऊपर यह बताया जा चुका है कि समाजवाद के अनेक प्रकार है। वास्तव में ये प्रकार इतने अधिक है कि यहाँ पर एक अध्याय मे इन सबकी सविस्तार व्याख्या करना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। परिणामस्वरूप यहाँ हम समाजवाद के कुछ मुख्य प्रकारो की विशेषताओं की संक्षिप्त व्याख्या करते हैं।

१. साहचर्य समाजवाद (Associative Socialism)

साहचर्य समाजवाद अथवा साहचर्यवाद का विशेष सम्बन्ध उन लेखकों के विचारों तथा साहित्य से है जिनके विचारानुसार श्रमिकों के सहकारी संघ अथवा साहचर्य सामाजिक बुराइयो को दूर करने के एकमात्र उपाय थे। इन समाजवादियों, जिनमें

---

1 "By socialist society we shall designate an institutional pattern in which the control over means of production and over production itself is rested with a central authority—or, as we may say, in which, as a matter of principle, the economic affairs of the society belong to the public and not to the private sphere" (J A Schumpeter : *Capitalism, Socialism and Democracy*, p. 167)

राबर्ट ओविन, चार्ल्स फोरियर, लुई ब्लैंक, सेंट साइमन, प्रोधों आदि के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है, को इनके विचारों तथा योजनाओं की अव्यावहारिकता के कारण कल्पनावादी (Uptopian) अथवा आदर्शवादी भी कहा जाता है। इस समाजवादी सम्प्रदाय के लेखकों के व्यक्तिगत विचारो व योजनाओ मे अन्तर होते हुये भी साहचर्य समाजवाद की निम्नलिखित पाँच विशेषतायें है।

(१) साहचर्य समाजवाद के अन्तर्गत व्यक्तियो के सहकारी संघ पूर्णतया ऐच्छिक होते हैं। राज्य तथा दूसरी अन्य बाह्य शक्ति का इन संघो को स्थापित करने मे कोई हाथ नही होता है। इसका प्रमुख लक्ष्य समाज मे सहकारी व्यवसाय प्रणाली का विकास करना है।

(२) साहचर्य समाजवादी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा साहस (Initiative) के सिद्धान्त मे विश्वास रखते थे।

(३) साहचर्य समाजवादी भविष्य समाज को अपनी आदर्शवादी योजनाओ के अनुरूप बनाने के इच्छुक थे। उन की अधिकाश योजनाएँ काल्पनिक आदर्शलोक के समान थी तथा इन मे व्यावहारिकता का भारी अभाव होने के कारण कार्यरूप देने पर ये असफल सिद्ध हुई थी।

(४) साहचर्य समाजवाद का जन्म १८ वी शताब्दी के अन्त तथा १९ वी शताब्दी के आरम्भ मे विद्यमान स्मिथवादी उदारतावाद, जिस के अन्तर्गत स्वतन्त्र प्रतियोगिता को आर्थिक प्रगति के लिये अनिवार्य समझा जाता था, के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप मे हुआ था। साहचर्य समाजवादी प्रतियोगिता को सामाजिक बुराइयो की जड समझते थे तथा उन के अनुसार सहकारी साहचर्य उन सब सामाजिक बुराइयो को दूर करने का व्यावहारिक उपाय था जो समाज के आर्थिक जीवन मे स्वतन्त्र प्रतियोगिता के फलस्वरूप उत्पन्न हुई थी।

(५) साहचर्य समाजवाद फ्रान्सीसी क्रान्ति की व्यक्तिवादी विचारधारा के विरुद्ध भी प्रतिक्रिया था। फ्रान्सीसी क्रान्तिवादियो के विचारानुसार किसी भी प्रकार की परिषद एक प्रकार के दासत्व के समान थी।

(२) रिकार्डोवादी समाजवाद (Ricardian Socialism)

रिकार्डोवादी समाजवाद उन अगरेज लेखको के विचारो का सग्रह है जिनके विचारानुसार श्रम मूल्य का निर्धारक था। इस प्रकार रिकार्डोवादी समाजवादी मार्क्सवादी समाजवाद के संस्थापक कहे जा सकते हैं क्योकि इन लेखको ने मार्क्स के वेशी मूल्य (Surplus Value) सिद्धान्त को प्रत्याशित किया था। इन लेखको को रिकार्डोवादी इस कारण से कहा जाता है क्योकि रिकार्डो के समान इन लोगों ने रिकार्डो के मूल्य के श्रम सिद्धान्त, जिस के अनुसार पूर्ण प्रतियोगिता मे वस्तु का विनिमय मूल्य उस वस्तु को तैयार करने मे व्यय हुये श्रम की मात्रा के द्वारा निर्धारित होता है, का समर्थन किया था। इन लेखको मे विलियम थोम्पसन (१७८५ ई०

१८३३ ई०), चार्ल्स हल (१७४५ ई०--१८२५ ई०), थामस होजस्किन (१७८७ ई०-१८६९ ई०), जान ग्रे (१७६६ ई०-१६५० ई०) व जॉन फ्रान्सिस ब्रे (१८०६ ई०-१८६५ ई०) के नाम उल्लेखनीय हैं।

(३) राज्य समाजवाद (State Socialism)

राज्य समाजवाद आर्थिक विचारधारा के क्षेत्र मे १६ वी शताब्दी के मध्य आरम्भ हुये उस आन्दोलन का नाम है जिस का लक्ष्य राज्य को उत्पत्ति के साधनों का स्वामित्व प्रदान करके समाज में आर्थिक शोषण तथा धन की असमानता की समस्याओं पर विजय पाना था। राज्य समाजवादियों का कहना था कि समाज सरक्षक के रूप मे समाज मे गरीबो की आर्थिक स्थिति में सुधार करना राज्य का अनिवार्य परम कर्त्तव्य था।

आर्थिक सिद्धान्त के रूप मे राज्य समाजवाद का उद्देश्य सभी प्रकार के आर्थिक तथा सामाजिक अपव्यय को समाप्त करना, एकाधिकार तथा मुनाफाखोरी पर रोक लगाना तथा गरीबो का धनी व्यक्तियो द्वारा शोषण करने के सब अवसरो को समाप्त करना है।

अन्य प्रकार के समाजवाद के समान, राज्य समाजवाद का जन्म भी अबन्ध नीति (laissez faire) के विरुध प्रतिक्रिया के रूप मे हुआ था। राज्य समाजवाद के विकास के इतिहास को दो युगों मे विभाजित किया जा सकता है। प्रथम युग रचना का युग है। इस युग के प्रमुख समाजवादी विचारक जाहान कार्ल रोडबर्टस (१८०५ ई०-१८७५ ई०) तथा फर्डिनेन्ड लसाले (१८२५ ई०-१८६४ ई०) थे। दूसरा युग जो १८७२ ई० को Eisenach Congress के समय से आरम्भ होता है राज्य समाजवाद के विकास का युग है। इसके प्रमुख समाजवादी लेखक प्रसिद्ध जर्मन अर्थशास्त्री अडोल्फ वागनर (Adolf Wagner) थे।[2] वागनर के अनुसार राज्य समाजवाद को विशेष रूप से दो कार्य, जो एक दूसरे से सम्बन्धित है, सम्पन्न करने चाहिये। प्रथम, राज्य को समाज में निम्न श्रेणी के लोगो की आर्थिक स्थिति मे सुधार करना चाहिये। दूसरे, राज्य को धनी वर्गों के द्वारा धन व सम्पत्ति के अत्यधिक सचय पर रोक लगानी चाहिये। उत्पादन के क्षेत्र मे, वागनर के विचारानुसार राज्य को उन उद्योगो का प्रबन्ध तथा संचालन करना चाहिये जो व्यक्तिगत हाथों मे एकाधिकार का समाज विरोधी रूप धारण कर लेते है तथा उन वस्तुओ का उत्पादन करना चाहिये जो समाज के हितो के दृष्टिकोण से आवश्यक हैं।

(४) विज्ञानवादी समाजवाद (*Scientific Socialism*)

विज्ञानवादी समाजवाद मार्क्सवादी समाजवाद का ही दूसरा नाम है।

---

2. वागनर के योगदान के सविस्तार अध्ययन के लिये अध्याय १६ का अध्ययन करिये।

विज्ञानवादी समाजवाद का २० वी शताब्दी मे अत्यधिक विकास हुआ है तथा एक प्रकार से वर्तमान शताब्दी को विज्ञानवादी समाजवाद की शताब्दी कहा जा सकता है। विज्ञानवादी समाजवाद समाजवाद के अन्य प्रकारो से एक से अधिक बातो मे भिन्न है। प्रथम, विज्ञानवादी समाजवादियो का कहना है कि विज्ञानवादी समाजवाद के सिद्धान्त विज्ञान के नियमो के समान सही तथा पूर्ण हैं।

विज्ञानवादी अथवा मार्क्सवादी सम्प्रदाय के लेखको ने रोबर्ट ओवन तथा चार्ल्स फोरियर आदि विचारको की योजनाओ के प्रति अविश्वास प्रकट करके इन योजनाओ को काल्पनिक आदर्शलोक की योजनाएँ घोषित किया है, जिन का व्यावहारिक जगत से कोई सम्बन्ध नही है। विज्ञानवाद के प्रमुख नेता कार्ल मार्क्स तथा फ्रेडरिक एंगिल्स थे।

प्रथम मार्क्सवादी सम्प्रदाय का कहना है कि उनका समाजवाद फ्रान्सीसी समाजवाद की अपेक्षा अधिक उत्तम तथा व्यावहारिक है। दूसरे, विज्ञानवादी समाजवाद अथवा मार्क्सवाद सस्थापित अर्थशास्त्र—विशेषकर रिकार्डो के अर्थशास्त्र—के वृक्ष पर लगाई गई टहनी के समान है क्योकि मार्क्स के दो मुख्य आर्थिक विचार—मूल्य का श्रम व्यय सिद्धान्त तथा वेशी मूल्य का सिद्धान्त—रिकार्डो के मूल्य के श्रम व्यय सिद्धान्त से प्राप्त किये गये हैं। तीसरे, मार्क्सवाद मे वर्ग सँघर्ष का विशेष महत्व है तथा मार्क्सवादियो के विचारानुसार वर्ग सघर्ष पूँजीवादी समाज मे सदा विद्यमान रहेगा तथा यह पूँजीवाद के पतन का एकमात्र कारण बनेगा। विज्ञानवादी समाजवाद श्रमिक वर्ग का आन्दोलन है। यह वर्ग सघर्ष मे विश्वास करता है। इस की सदस्यता धनी व्यक्तियो को प्राप्त नही हो सकती है। 'वर्ग सघर्ष' तथा 'ससार के मजदूरो एक हो जाओ' विज्ञानवादी समाजवाद के नारे है। चौथे, विज्ञानवादी समाजवाद स्वभाव से क्रान्तिकारी है। विज्ञानवादी समाजवादियों के मतानुसार व्यावहारिक जगत मे समाजवाद केवल क्रान्ति के द्वारा ही सम्भव है। पाचवे. मार्क्सवादियो का कहना है कि समाजवाद की स्थापना मे अनेक प्रकार की कठिनाइयो का सामना करना अनिवार्य है।

इन सब विशेषताओ के अतिरिक्त जब कि पूर्व-मार्क्सवादी समाजवाद व पूँजीवाद के मध्य तालमेल सम्भव था, विज्ञानवादी समाजवाद पूँजीवाद का पूर्णतया निषेध है। मार्क्सवाद तथा पूँजीवाद दो असगत तत्व है।

(५) संघ समाजवाद (Guild Socialism)

सघ समाजवाद, जो अराजकतावाद (Anarchism) तथा समाजवाद का एक अजीब मिश्रण है, का जन्म इगलैंड मे प्रथम महायुद्ध के पूर्व हुआ था। सघ समाजवाद का लक्ष्य उत्पादन की पूँजीवादी प्रणाली के स्थान पर उत्पादको के संघो की स्थापना करना है। सघाधिपत्यवाद (Syndicalism) के समान सघ समाजवाद भी एक आर्थिक आन्दोलन था। A. J. Penty, S. G Hobson तथा 'New

Age' नामक पत्रिका के सम्पादक A. R. Orage संघ समाजवाद के प्रमुख नेता थे। १६२३ ई० में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री G. D. H. Cole भी इसके सदस्य बन गये थे।

संघ समाजवाद उन अनेक कारणों का परिणाम था, जो इंगलैंड में प्रथम महायुद्ध के पूर्व विद्यमान थे। एक ओर तो व्यक्तिनिष्ट समाजवादियों ने सरकार की वैधानिक नीतियों से असन्तुष्ट होकर सघाधिपत्यवाद की ओर झुकना आरम्भ कर दिया था तथा दूसरी ओर G. K. Chesterton व Belloc के समान व्यक्तिवादी शक्तिशाली राज्य की स्थापना को व्यक्ति के व्यक्तित्व के लिये घातक विचारने लगे थे। J. N. Figgis ने अराजकवादी विचारकों के सम्प्रदाय की नींव डाली थी। संघ समाजवाद इन दोनों विपरीत विचारधाराओं के सकलन का परिणाम था।

संघ समाजवादी मजदूरी प्रणाली के कट्टर आलोचक थे। उन के विचारानुसार मजदूरी प्रथा श्रमिकों के नैतिक पतन व बुरी आर्थिक स्थिति का कारण थी। फलस्वरूप संघ समाजवादी मजदूरी प्रथा के विरोधी तथा सहकारी उत्पादन प्रथा के समर्थक हैं। वे उद्योगों के राष्ट्रीकरण के पक्ष मे भी हैं क्योंकि उनके विचारानुसार ऐसा करने से समाजवाद को अधिक शीघ्र प्राप्त किया जा सकता है। सघ समाजवादी उद्विकासात्मक परिवर्तन के द्वारा ही समाजवाद को स्थापित करना चाहते हैं। इस सम्बन्ध मे संघ समाजवाद मार्क्सवाद से भिन्न है क्योंकि मार्क्सवादी समाजवाद को क्रान्तिकारी उपायों द्वारा स्थापित करना चाहते हैं। सघ समाजवाद मे श्रमिकों के सघ स्थानीय, क्षेत्रिय तथा राष्ट्रीय स्तरों पर संगठित किये जाते हैं। संघ समाजवादी भविष्य के समाजवादी समाज को सघ राष्ट्र मण्डल कहते थे। [वर्तमान समय मे सघ समाजवाद का प्रभाव बहुत कम हो गया है।

(६) फेबियन समाजवाद (Fabian Socialism)

फेबियन समाजवाद, जिस के नेता Fabius Cunctator थे, का जन्म इंगलैंड मे हुआ था। इस समाजवाद का प्रचार १८८३ ई० मे संस्थापित Fabian Society के द्वारा किया गया था। फेबियन समाजवादी क्रान्ति के समर्थक नहीं थे। उन के मतानुसार समाजवादी समाज की स्थापना शान्तिजनक उपायों द्वारा की जा सकती है। फेबियन समाजवादियों मे प्रसिद्ध उपन्यासकार George Bernard Shaw, Sidney Webb, Graham Wallas, H. G. Wells, Beatric Potter (later Mrs. Webb), Ramsay McDonald, Pethic Lawrence आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

फेबियन समाजवादी अर्थशास्त्र रिकार्डो के लगान सिद्धान्त पर आधारित है। फेबियन समाजवादियों के मतानुसार सरकार को लगान का अपहरण करना चाहिये क्योंकि यह अनुचित आय है जिसको प्राप्त करने के लिये प्राप्तकर्त्ता कोई परिश्रम नहीं करता है। इसके अतिरिक्त फेबियनवादियों का यह भी कहना है कि सार्वज-

निक उपयोगिता सेवाओं का निर्माण करने वाले उद्योगों का सचालन राज्य द्वारा किया जाना चाहिये ।

फेबियन समाजवाद नीतिशास्त्र पर आधारित है तथा इसमें वर्ग संघर्ष को कोई मान्यता प्राप्त नही है । फेबियन समाजवादी मार्क्स के इस विचार से सहमत नही हैं कि धन के अत्यधिक केन्द्रीकरण के फलस्वरूप सकटो का जन्म होगा जो स्वयं पूँजीवाद के लिये घातक सिद्ध होंगे । फेबियन समाजवाद उद्विकासात्मक समाजवाद (evolutionary socialism) का ही एक रूप है ।

(७) ईसाई समाजवाद (Christian Socialism)

ईसाई समाजवाद के समर्थकों के विचारानुसार ईसाई धर्म के सिद्धान्तों का पालन करने से पूँजीवाद के दोषों को दूर किया जा सकता था । प्राचीन ईसाई समाजवादियो के विचार मुख्यत नैतिकता पर आधारित थे तथा उनका कोई आर्थिक सिद्धान्त न था । वे पूँजीवाद मे सुधार करना चाहते थे । प्रमुख ईसाई समाजवादियो मे इगलैंड मे Fredrick Maurice, Charles Kingley आस्ट्रिया मे Carl Lueger, तथा फ्रान्स मे Fredick le Play तथा Charles Gide के नाम उल्लेखनीय हैं ।

समाजवाद का प्रभाव (Influence of Socialism)

वर्तमान आर्थिक व राजनैतिक जगत मे समाजवाद का प्रभाव इतना अधिक व्यापक है कि इसको सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नही है । ससार के समाजवादी देशों का तो कहना ही क्या है, वरन् इगलैंड तथा अमरीका, जो पूँजीवाद के प्रतिरूप हैं, के समान देशो मे भी आज १८ वी शताब्दी का पूँजीवादी समाज देखने मे नही आता है । आज समाजवाद ने एक ऐसी विचित्र शक्ति का रूप धारण कर लिया है जिसके सम्बन्ध मे प्रत्येक व्यक्ति—चाहे वह श्रमिक हो या पूँजीपति, चाहे वह विद्यार्थी हो या शिक्षक, चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित—के अपने, विचार हैं । यद्यपि समाजवादियो के लिये समाजवाद एक धर्म है परन्तु पूँजीवाद के समर्थक भी आज इसके प्रति उदासीन नही हैं । वास्तविक जगत में आज सभी विश्वविद्यालयो मे समाजवाद अध्ययन का एक महत्वपूर्ण विषय है । बहुत से विश्वविद्यालयो मे तो मार्क्सवादी अर्थशास्त्र का उच्च स्तर पर अध्ययन कराया जाता है ।

वर्तमान युग मे ऐसी कोई क्रिया नही है जिसको राज्य नही कर सकता है । आज ससार के पूँजीवादी देशो मे भी राज्य अनेक प्रकार की आर्थिक क्रियायें सम्पन्न करता है । वर्तमान युग मे सामाजिक दृष्टिकोण से आवश्यक सभी वस्तुओ व सेवाओ—लोहा व स्पात, सीमेंट, एटमी शक्ति, हथियार व बारूद, रेल तथा तार व डाक सेवायें इत्यादि—का उत्पादन ससार के सभी देशो मे या तो प्रत्यक्ष रूप से राज्य द्वारा किया जाता है या राज्य इन वस्तुओ व सेवाओं के उत्पादन व वितरण का सामाजिक हितो के अनुसार नियमन करता है । ससार के सभी देशो मे आज

न्यूनतम वेतन, बेरोजगारी तथा स्वास्थ्य बीमा अधिनियम कार्यशील है। इनके अन्तर्गत श्रमिकों को अनेक सुविधाएँ प्राप्त है। इसके अतिरिक्त कार्य के घन्टे भी राज्य द्वारा अधिनियमों के अनुसार निर्धारित कर दिये गये है। एडम स्मिथ तथा उनके अनुयायियों द्वारा प्रतिपादित सस्थापित अर्थशास्त्र का वर्तमान युग में केवल ऐतिहासिक महत्व है।

विशेष अध्ययन सूची

1. R. H. Blodgett : Comparative Economic Systems, Chapter, I.
2. G. D. H. Cole : Socialism and Fascism.
3. Paul M. Sweezy , Socialism, Chapters 1. and 5.
4. Friedrich Engels : Socialism.
5 A. C. Pigou · Socialism Versus Capitalism.
6. Edmund Whittaker : A History of Economic Ideas, Chapter, V.
7. J. A. Schumpter · Capitalism , Socialism and Democracy, Part III & Part V.
8. J. F. Bell · A History of Economic Thought, Chapter, 7
9. P. Charles Newman : The Development of Economic Thought, Chapters, XV, XVII & XVIII.
10 O. H. Taylor : A History of Economic Thought, Chapter 5.

प्रश्न

1. Distinguish between 'Associative Socialism', 'State Socialism' and 'Scientific Socialism.'

(आगरा, १६५०)

2. Write short notes on (a) Guild Socialism, and (b) Fabian Socialism.

(आगरा, १६५२)

3. Compare Utopian Socialism with Scientific Socialism and bring out the main issues between them.

(राजस्थान, १६५०)

4. Give a brief account of the general character of the Marxian School. In what important respects does it differ from the other socialist schools which preceded it ?

(आगरा, १६४६, १६५३)

अध्याय २१

साहचर्य समाजवादी

(Associative Socialists)

१६ वीं शताब्दी के आरम्भ से ही स्मिथ के आर्थिक विचारों के प्रति विरोध का आन्दोलन आरम्भ हो गया था। सिसमोन्डी, सेंट साइमन तथा उसके शिष्यों ने स्मिथ के व्यक्तिवाद तथा उदारतावाद की आलोचना की थी। जिस प्रकार १८ वीं शताब्दी स्मिथ तथा उनके अनुयायियों की शताब्दी थी उसी प्रकार १६ वीं शताब्दी समाजवादियों के जन्म तथा विकास की शताब्दी थी। साहचर्य समाजवादी वे विचारक तथा लेखक थे जो पूंजीवाद के दोषों को समाज की आर्थिक संस्थाओं के संगठन में परिवर्तन करके दूर करने के इच्छुक थे। इन विचारकों ने कुछ ऐसी सुधार योजनाओं का प्रतिपादन किया था जिन में व्यावहारिकता का भारी अभाव था। फलस्वरूप इन योजनाओं व कार्यक्रमों को कार्य रूप देने के लगभग सभी प्रयत्न असफल सिद्ध हुये थे। साहचर्य समाजवादियों की विचारधारा में व्यावहारिकता का अभाव होने के कारण इन को यूटोपियाई समाजवादी भी कहते है। साहचर्य समाजवादियों में रोबर्ट ओविन (१७७१ ई०–१८५८ ई०), चार्ल्स फोरियर (१७७२ ई०–१८३७ ई०), लुई ब्लैंक (१८१३ ई०–१८८२ ई०), इटीने कैबट (१७८८ ई०–१८५६ ई०) के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है तथा यहां इन लेखकों के व्यक्तिगत योगदानों का सविस्तार अध्ययन किया जा सकता है।

रोबर्ट ओविन (१७७१ ई०–१८५८ ई०)

(Robert Owen)

इंगलैंड में फैक्ट्री विधान व समाजवाद के जनक तथा सहकारी आन्दोलन के संस्थापक रोबर्ट ओविन का जन्म १७७२ ई० में उत्तरी वेल्स में एक शिल्पकार परिवार में हुआ था। अपने दीर्घ जीवन काल में अपने परिश्रम तथा योग्यता के कारण वे शीघ्र ही धनी बन गये थे। परन्तु सौभाग्यवश अधिक धन की प्राप्ति ने उन को पूंजीवाद का समर्थक न बनाकर अंग्रेजी समाजवाद आन्दोलन का संस्थापक बनाया था। जब वे स्काटलैंड में न्यू लेनार्क (New Lanark) नामक स्थान पर सूती वस्त्र मिल के प्रबन्धक थे तो उन्होंने श्रमिकों की स्थिति में सुधार

करने के हेतु 'कल्याणकारी कार्य' का श्रीगणेश करके न्यू लेनार्क में स्थित मिल को अन्य उद्योगपतियो के लिये एक आदर्श नमूना बना दिया था। श्रम कल्याण कार्य के सम्बन्ध मे विशेष ध्यान देने योग्य यह बात है कि उन्होने श्रम कल्याण योजनाओ का श्रीगणेश उस युग मे किया था जब श्रमिको के कल्याण के विषय मे बात करना भी बुराई विचारा जाता था। अपनी योग्यता तथा विचारने की शक्ति के परिणामस्वरूप ३० वर्ष की कम आयु में ओविन न्यू लेनार्क मिल के साझेदार बन गये थे। मालिक होते हुये भी वे सदा कर्मचारियो के हितो को ध्यान में रखते थे।

अपनी न्यू लेनार्क की सुधार योजनाओ की सफलता से प्रभावित होकर उन्होने समाज का सुधार करने के उद्देश्य से अपने सुझावों को अपनी दो पुस्तकों— **A New View of Society (1813–1814)** तथा **The Book of the New Moral World**—मे व्यक्त किया था। उन की अन्य पुस्तको में १८३८ ई० तथा १८४१ ई० मे लिखित **Catechism of the New Moral World** तथा **What is Socialism ?** उल्लेखनीय है। उन का नाम सहकारी आदोलन तथा ब्रिटिश समाजवाद के इतिहास मे सदा जीवित रहेगा। उनकी मृत्यु ८७ वर्ष की आयु मे व्यस्त तथा सक्रिय जीवन व्यतीत करने के पश्चात हुई थी।

रोबर्ट ओविन के आर्थिक विचार

ओविन के आर्थिक विचारो को अच्छी तरह से समझने के लिए उनके विचारो का अध्ययन निम्नलिखित दो शीर्षको के अन्तर्गत करना उपयुक्त होगा।

(१) उनकी काल्पनिक (यूटोपियाई) योजनाएँ।
(२) उनकी व्यावहारिक सुधार योजनाएँ।

रोबर्ट ओविन की विचारधारा मे वातावरण का एक विशेष महत्व था। उनका यह दृढ विश्वास था कि मनुष्य अपने वातावरण का दास है तथा मनुष्य की मनोवृति मे परिवर्तन करने के लिये उसके रहन सहन के वातावरण मे परिवर्तन करना आवश्यक है। १८१५ ई० में वाणिज्य सकट के पश्चात् वे उस समय की आर्थिक व्यवस्था के दोषों को सुधार के द्वारा दूर करने के लिए आतुर थे। इस बात मे पक्का विश्वास रखते हुए कि मनुष्य अपनी परिस्थिति का दास होता है तथा सामाजिक वातावरण ही उसके भलेपन व बुरेपन का कारण होता है, रोबर्ट ओविन की सुधार योजनाओ, जो असफल सिद्ध हुई थी, का लक्ष्य सामाजिक वातावरण मे सुधार करके मनुष्यों का सुधार करना था। उस समय श्रमिको की दयनीय दशा तथा मिल मालिक वर्ग व श्रमिक वर्ग के मध्य सघर्ष का कारण भी वह दूषित वातावरण था जिसमे श्रमिक व पूँजीपति रहते थे। रोबर्ट ओविन का विश्वास था कि सामाजिक परिस्थितियो, जो स्वय वातावरण से प्रभावित होती है, मे परिवर्तन करके श्रमिको की दशा मे सुधार किया जा सकता था। इस प्रकार ओविन रोग-

निदान विज्ञानशास्त्र (Etiology) के जनक थे। रोगनिदान शास्त्र समाज शास्त्र का ही एक अंग है, जिसके अनुसार मनुष्य का अच्छा अथवा बुरा आचरण उसके अच्छे अथवा बुरे वातावरण का परिणाम होता है।

रोबर्ट ओविन अपने इन विचारों को व्यावहारिक जगत में कार्यरूप देने के उद्देश्य से ऐसे आदर्श उपनिवेशों की स्थापना करने के इच्छुक थे जहां का वातावरण उस समय की सामाजिक बुराइयों से मुक्त हो तथा जहां श्रमिकों को अच्छे निवास स्थान प्राप्त हो सकें जो उनके व्यक्तित्व के विकास के लिये अनुकूल सिद्ध हों। परन्तु दुर्भाग्यवश वे अपने इन विचारों को कार्य रूप देने में असफल सिद्ध हुये। उनके सभी क्रियात्मक कार्य तथा लगभग सभी नवीन आदर्श वातावरण वाले स्थापित उपनिवेश अल्पकालीन सिद्ध हुये। उनकी इन योजनाओं की असफलता का एक कारण यह था कि उनकी सुधार योजनायें उनके समय से बहुत आगे थीं। वातावरण में परिवर्तन करके नवीन समाज की स्थापना करने में जो असफलता प्राप्त हुई उसे ओविन ने स्वयं स्वीकार किया था। यद्यपि ओविन को वातावरण में परिवर्तन करने सम्बन्धी अपनी योजनाओं में सफलता प्राप्त न हो सकी थी परन्तु कुछ समय पश्चात् ओविन के विचारों का रस्किन तथा मोरिस के समान विद्वानों पर गहरा प्रभाव पड़ा था तथा इन विचारों के ही आधार पर 'उपवन नगर आन्दोलन' (Garden City movement) का श्रीगणेश हुआ था।

पहली योजना के समान ओविन की दूसरी योजना भी, जिसका लक्ष्य समाज में लाभ की समाज विरोधी संस्था का अन्त करना था, असफल सिद्ध हुई थी। ओविन के विचारानुसार लाभ समाज की सभी विद्यमान बुराइयों का कारण था तथा समाज में सुधार करने के पूर्व इस बुराई को समाप्त करना अनिवार्य था। ओविन के विचारानुसार अत्युत्पादन के आर्थिक संकटों के उत्पन्न होने का मुख्य कारण पूँजीवादी समाज की लाभ संस्था थी। लाभ प्राप्ति की भावना के कारण वस्तुओं की कीमतें इतनी अधिक कर दी जाती हैं कि श्रमिक इन वस्तुओं का, जिनका निर्माण उन्होंने स्वयं अपने श्रम द्वारा किया है, उपभोग करने में असमर्थ रहते हैं। परिणामस्वरूप एक ओर तो श्रमिकों को वस्तुओं का उपभोग करने का अवसर प्राप्त नहीं होता है तथा दूसरी ओर बाजार में वस्तुओं की ऊँची कीमतों के फलस्वरूप कम माँग होने के कारण बिन बिकी वस्तुओं के अंबार लग जाने के कारण अत्युत्पादन के गम्भीर संकट की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

लाभ की बुराई को दूर करके एक ऐसे आदर्श समाज की स्थापना करने के हेतु जो आर्थिक संकटों की समस्या से मुक्त हो, ओविन ने लाभ तथा प्रतियोगिता की संस्थाओं को समाप्त करने का असफल प्रयास किया। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति करने के लिऐ ओविन ने उत्पादन की प्रतियोगी संस्था के स्थान पर सहकारी

सघ तथा लाभ का उन्मूलन करने के उद्देश्य से द्रव्य[1] की सस्था को समाप्त करने का सुझाव दिया। द्रव्य के स्थान पर ओविन ने 'श्रम-पत्रों' (Labour Notes) का सुझाव दिया। ओविन के विचारानुसार 'श्रम-पत्रो' को द्रव्य—स्वर्ण सिक्को—के स्थान पर चालू करने की यह योजना मेक्सीको तथा पीरू की स्वर्ण व रजत की सारी खानो से भी अधिक मूल्यवान थी तथा यह सत्य भी है कि सफल सिद्ध होने पर यह योजना एक महान खोज से किसी भी प्रकार कम महत्वपूर्ण सिद्ध नहीं हुई होती। परन्तु भाग्य ने इस समय भी ओविन का साथ नही दिया तथा आदर्श उपनिवेश स्थापित करने की पहली योजना के समान उनकी यह योजना भी असफल रही।

अपनी योजना को कार्यरूप प्रदान करने तथा इसकी व्यावहारिकता की परख करने के उद्देश्य से ओविन ने लन्दन मे केन्द्रीय सहकारी डीपो के रूप मे एक National Equitable Labour Exchange की स्थापना की। श्रमिक इस सस्था के सदस्य थे। वास्तव मे यह एक प्रकार की उत्पादकों की सहकारी समिति थी। समिति का प्रत्येक सदस्य अपनी वस्तु को इस डीपो को बेचकर उस वस्तु को बनाने में व्यय हुये श्रम की मात्रा के आधार पर श्रम नोट प्राप्त कर सकता था जिनसे वह अपने परिवार की आवश्यकताओ की पूर्ति करने के लिये अन्य उपभोग वस्तुये प्राप्त कर सकता था।

National Equitable Labour Exchange की स्थापना सितम्बर, १८३२ ई० मे की गई थी तथा आरम्भ मे इसको कुछ सफलता भी प्राप्त हुई थी। परन्तु दुर्भाग्यवश यह सफलता अस्थाई व अल्पकालीन सिद्ध हुई। Labour Exchange के लगभग ८५० सदस्य थे तथा आरम्भ मे इसकी शाखाएँ भी स्थापित की गई थीं। परन्तु कुछ ही समय पश्चात् ओविन की यह योजना उनकी पहली योजना के समान फेल हो गई। इसके फेल होने के निम्नलिखित कारण थे।

(१) ओविन की यह नवीन योजना इस नवीन मान्यता पर आधारित थी कि सभी मनुष्य स्वभाव से ईमानदार तथा सदा सत्य बोलते है। इस मान्यता मे विश्वास रखते हुये National Equitable Labour Exchange के सगठनकर्ताओ की Labour Exchange के सदस्यो पर विश्वास करने की नीति के अनुसार प्रत्येक सदस्य अपनी वस्तुओ के श्रम मूल्य को स्वयं बताता था तथा उसके बताने के अनुसार उसको श्रम नोट दे दिये जाते थे। इस नीति का परिणाम शीघ्र ही यह

---

1. ओविन के विचारानुसार द्रव्य एक गम्भीर सामाजिक बुराई था। लाभ द्रव्य के रूप मे ही प्राप्त किया जाता था। उनका कहना था कि मुद्रा समाज मे अधिकाश अपराधो, अन्यायो, मुसीबतो तथा चरित्रहीनता का प्रमुख कारण थी।

हुआ कि लोगो ने अपनी वस्तुओ के मूल्य को झूठ बोलकर अधिक बताकर Labour Exchange को धोखा देना तथा हानि पहुँचाना शुरू कर दिया।. परिणामस्वरूप सस्था को चलाने तथा जीवित रखने के लिये विशेषज्ञो द्वारा सदस्यो द्वारा निर्मित वस्तुओं का मूल्यन कराना आवश्यक हो गया। परन्तु दुर्भाग्यवश ये विशेषज्ञ ओविन के तत्व ज्ञान से परिचित न थे। विशेषज्ञो ने वस्तुओ का मूल्यन प्रथम द्रव्य के रूप मे किया तथा तत्पश्चात मूल्यो को श्रम नोटो के रूप मे ६ पेंस प्रति घन्टा श्रम के आधार पर परिवर्तित किया। ऐसा करने से ओविन की समस्त योजना अस्तव्यस्त तथा उलटी हो गई क्योकि वस्तु के मूल्यो का निर्धारण श्रम मान के द्वारा करने के स्थान पर श्रम के मूल्य का निर्धारण द्रव्य की इकाइयो के रूप मे किया गया था। इस प्रकार द्रव्य का वस्तुओ के मूल्य निर्धारक के रूप मे उन्मूलन न होकर इसका प्रयोग ओविन की योजना मे प्रचलित रहा।

(२) ओविन द्वारा स्थापित इस नवीन सहकारी समिति का एक अन्य दुर्भाग्य यह था कि स्थापना के कुछ ही समय पश्चात् बेईमान कारीगर भी इस सस्था के काफी मात्रा मे सदस्य बन गये थे। इन लोगो का हित सस्था को सफल बनाना नहीं था। ये लोग स्वार्थी थे। इन बेईमान तथा दुराचारी कारीगरो के सदस्य बन जाने के फलस्वरूप समिति के भण्डारगृह मे ऐसी वस्तुयें इकट्ठी हो गई जो इन कारीगरो ने बनाई थी तथा जिनकी कीमत कारीगरो के झूठ बोलने के कारण उचित से बहुत अधिक निर्धारित की गई थी। ये वस्तुये बाजार मे अन्य स्थानो पर कम कीमत पर प्राप्त होने के कारण समिति से कोई भी व्यक्ति इनको नही खरीदता था। एक ओर तो इन अनैतिक शिल्पकारो द्वारा निर्मित वस्तुओ की कोई माँग नही थी तथा दूसरी ओर ये शिल्पकार अन्य ईमानदार शिल्पकारो द्वारा निर्मित वस्तुओ, जिनकी कीमत ईमानदारी के आधार पर निर्धारित होने के कारण अधिक नही थी, को क्रय करते थे। परिणामस्वरूप थोडे ही समय पश्चात समिति के गोदामो मे ऐसी व्यर्थ वस्तुओ के ढेर लग गये जिनकी बिक्री करना असम्भव था। इस प्रकार बेईमान व अनैतिक शिल्पकार सदस्य समिति के लिये दोहरे अभिशाप सिद्ध हुये।

(३) समिति को असफल बनाने मे लन्दन के व्यापारियों का भी हाथ था। इन व्यापारियो ने अपनी वस्तुओ के बदले मे शिल्पकारो से श्रम नोटो का क्रय करके स्वय समिति की दुकान पर जाकर अच्छी-अच्छी उन वस्तुओं को, जिनकी बाजार मे तैयार माँग थी तथा जिनकी कीमत समिति ने उचित से कम निर्धारित की थी, क्रय करके बाजार मे ऊँची कीमतो पर बेचकर लाभ कमाना आरम्भ कर दिया था। लन्दन के लगभग ३,००० व्यापारी इस प्रकार की अनैतिक क्रियाओ के द्वारा अपनी जीविका प्राप्त करते थे। अन्त मे जब व्यापारियो को यह ज्ञात हो गया कि समिति मे अब केवल व्यर्थ वस्तुये ही शेष रह गई हैं तो उन्होने श्रम नोटो

को लेना बन्द कर दिया। लन्दन के व्यापारियों की यह छल योजना सफल सिद्ध हुई।

यद्यपि ओविन की यह योजना शिल्पकार सदस्यों का सहयोग प्राप्त न होने तथा लन्दन के व्यापारियों के कपट करने के कारण फेल हो गई थी, परन्तु उनकी सहकारी संघ की इस योजना को इंगलैण्ड में वर्तमान सहकारी आन्दोलन की जननी कहा जा सकता है क्योंकि १८४४ ई० में Rochdale Pioneers ने सहकारी भण्डार-घरों (Cooperative Stores) को स्थापित करके जिस सहकारी आन्दोलन का श्रीगणेश किया था उसका मुख्य उद्देश्य लाभ का उन्मूलन करना था। सहकारी संघ तथा इससे सम्बन्धित लाभ रहित विचार ओविन की सहकारी आन्दोलन को सदैव एक महत्वपूर्ण देन रहेगी तथा उनका नाम सहकारी आन्दोलन के इतिहास में सदा जीवित रहेगा।

रोबर्ट ओविन की कल्पनावादी योजनाओं की उपरोक्त व्याख्या के पश्चात् अब हम ओविन के व्यावहारिक सुधारों की व्याख्या कर सकते है। रोबर्ट ओविन अपने New Lanark Mill में श्रमिकों की स्थिति में सुधार करने के हेतु कई व्यावहारिक सुधार कार्यक्रम लागू किये। प्रथम, उन्होंने अपने श्रमिकों के रहने के लिये स्वस्थ तथा हवादार गृहों का निर्माण किया तथा उनके कल्याण की देखभाल करने के लिये श्रम कल्याण अधिकारियों की नियुक्ति की। दूसरे, इसके अतिरिक्त ओविन ने कार्य करने के घन्टों को १७ घन्टे प्रतिदिन से घटाकर १० घन्टे प्रतिदिन कर दिया था। तीसरे, उन्होंने दस वर्ष में कम आयु के बच्चों को अपने मिल में काम करने से मना किया तथा श्रमिकों के बच्चों की निशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध किया। चौथे, उन्होंने श्रमिकों पर अनेक प्रकार के जुर्माने, जो उस समय मिल मालिक अपने श्रमिकों पर रोजगार अवधि में लगाते थे, न लगाने का कड़ा आदेश दिया।

भले ही ओविन के ये व्यावहारिक सुधार आज, जब कि कल्याणवादी राज्य का संसार के सभी देशों में निर्माण हो चुका है, हमको विशेष महत्वपूर्ण प्रतीत नहीं होते हैं, परन्तु जिस समय ओविन ने इन सुधारों को अपने मिल में कार्यरूप दिया था, उस समय निस्सन्देह ये एक क्रान्ति से कम महत्वपूर्ण नहीं थे। १६ वीं शताब्दी में जब सामाजिक विधान तथा श्रम कल्याण योजनाओं के विचार का जन्म भी नहीं हुआ था तथा श्रम कल्याण योजनाओं को व्यावहारिक रूप से लागू करने का तो कहना ही क्या बल्कि समाज कल्याण की बात करना भी एक प्रकार का पाप विचारा जाता था, एक ऐसे युग में जब श्रमिकों से २० घन्टे प्रतिदिन काम कराना मिल मालिक अपना अधिकार समझते थे, इन सुधारों को लागू करने के लिये एक महान साहस की आवश्यकता थी जो केवल रोबर्ट ओविन में ही था। मिल मालिक वर्ग ने ओविन को पागल घोषित किया तथा उनको मिल मालिक वर्ग अपना विरोधी समझने लगे।

परन्तु शीघ्र ही सत्य विदित होगया। ओविन के मिल मे उत्पादन तथा लाभों में वृद्धि होती देखकर अन्य मिल मालिकों को आश्चर्य हुआ। कुछ ही समय पश्चात् ओविन की मिल मालिकों के लिए एक तीर्थ स्थान के समान बन गई जिसको देखने के लिये देश के सभी भागो से लोग आते थे तथा प्रभावित होकर वापस जाकर अपने मिलों में भी इन सुधारों को लागू करते थे। जो मिल मालिक उनके सुधारों की बुराई करते थे उनको ओविन सुधारों की आवश्यकता का महत्व बताते हुये निम्नलिखित उत्तर देते थे। "अनुभव ने तुम पर वह अन्तर भली प्रकार विदित कर दिया होगा जो एक अच्छे मिल, जिसकी मशीन साफ तथा अच्छी सन्तोष जनक स्थिति में है, तथा बुरे मिल, जिसकी मशीन पुरानी, खराब तथा मरम्मत योग्य नहीं है, के मध्य होता है। यदि मशीन के प्रति थोड़ा ध्यान देने के परिणाम स्वरूप उत्पादन में वृद्धि हो सकती है तो क्या यह सत्य नहीं हो सकता है कि यदि मनुष्यों की स्थिति की ओर ध्यान देने तथा उसमें सुधार करने पर उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि हो सकती है? यह निष्कर्ष पूर्णतया सत्य है कि सुधारों के फल-स्वरूप इन पेचीदा मानव यन्त्रो (श्रमिकों) की शक्ति तथा कार्यक्षमता मे वृद्धि होगी तथा इनको अच्छी स्थिति मे रखना सदा इनके साथ दया का व्यवहार करना लाभ-दायक सिद्ध होगा। इस दया तथा सदाचार के परिणामस्वरूप मानसिक क्षोभ, जो स्वयं पर्याप्त मात्रा में खुराक न मिलने के कारण दुर्बलशरीरी का परिणाम होता है, का अन्त हो जावेगा।"

निःसन्देह रोबर्ट ओविन पूँजीपति व मिल मालिक होते हुये सभी अर्थों में एक सच्चे समाजवादी थे वे मानव कल्याण के हितैषी तथा उदारता के देवता थे। श्रमिक वर्ग के कल्याण के लिये उन्होने जो सब कुछ किया उसके लिये श्रमिक वर्ग सदा उनका ऋणी रहेगा।

चार्ल्स फोरियर (१७७२ ई०–१८३७ ई०)
(Charles Fourier)

कल्पनावादी समाजवादी फ्रांसीसी लेखक चार्ल्स फोरियर का जन्म फ्रान्स मे १७७२ ई० मे Bensancon नामक स्थान मे हुआ था। कल्पनाओं के संसार में वे प्रसिद्ध अंगरेज कल्पनावादी लेखक व विचारक सर थोमस मूर से किसी प्रकार कम नहीं थे। उनके पिता कपड़े के व्यापारी थे। जीवन के प्रारम्भिक वर्षो मे ही उनको गरीबी का सामना करना पड़ा था तथा अपनी प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये स्कूल में उन्होंने चपरासी के स्थान पर काम किया था। तत्पश्चात वे कुछ समय तक (Travelling Salesman) भी रहे थे तथा उन्होंने स्वयं अपना व्यापार भी आरम्भ किया था जिसमें दुर्भाग्यवश उनको सफलता प्राप्त नहीं हो सकी थी। व्यापार में असफल सिद्ध होने के पश्चात् फोरियर ने अपनी शक्तियों को समाज सुधार कार्य में लगा दिया था।

फोरियर की योजनाएँ उनके पागलपन का प्रतीक है। यद्यपि उनके विचार सामान्यत: सेंट-साइमनवादियों के विचारो के समान थे परन्तु सेंट-साइमनवादी उनमें घृणा करते थे। वे सदा अपनी अजीब कल्पनाओ के ससार मे रहते थे तथा उनकी योजनाएँ शब्दाडम्बरी, असङ्गत, तथा विलक्षण थी। इतना ही नही बल्कि उनकी पुस्तकों के शीर्षको मे भी उनका पागलपन, तथा विषमता ज्ञात होते हैं। उन्होने क्रमश: १८०८ ई०, १८२२ ई० तथा १८२६ ई० मे निम्नलिखित तीन पुस्तकें लिखी थीं।

(1) Theory of the Four Movements and the General Destinies.

(2) The Theory of Universal Unity.

(3) The New Industrial and Social World

विद्वान् तथा सहृदय होते हुये भी, अपनी कमियो के कारण उनको प्रसिद्धि प्राप्त न हो सकी। शर्मीली प्रकृति होने तथा अपने विचारों का प्रचार करने की शक्ति का अभाव होने के कारण उनको समाज मे सम्मान प्राप्त न हो सका तथा उनके विचारो का भी सामाजिक वातावरण पर कोई प्रभाव न पड सका। फोरियर की विचारधारा आक्रमण की शक्ति पर आधारित है। उनका विश्वास था कि संसार मे कोई ऐसी प्रभावशाली शक्ति है जिसके प्रभाववश होकर मनुष्य एक साथ मिलकर काम करते हैं। परन्तु कृत्रिम मनुष्यकृत बाधाये इस प्राकृतिक नियम को कार्यशील नही होने देती है तथा ये बाधायें समाज विरोधी है जिनको दूर किया जाना सामाजिक हितों में होगा। फोरियर का कहना था कि उनकी योजना को व्यावहारिक जीवन मे लागू करने के परिणामस्वरूप समाज विरोधी बाधायें समाप्त हो जावेगी, समाज मे एकता व मेल का एक ऐसा अनुकूल वातावरण स्थापित हो जावेगा जिसके अन्तर्गत मनुष्य अधिक कार्य करेगे तथा समाज मे उत्पत्ति मे वृद्धि होगी जिसके फलस्वरूप सामाजिक कल्याण मे वृद्धि होगी। फोरियर के विचारानुसार मनुष्य मे १२ उत्कण्ठा भाव (passions) होते है जिनमे ५ चेतना शक्तियाँ (senses) होती है। ये १२ उत्कण्ठा भाव मित्रता, प्रेम, परिवार भावना तथा अभिलाषा के चार समुदायो मे विभाजित है। इन १२ उत्कण्ठा भावो का ही बन्धुता प्रेम का सर्वश्रेष्ठ उत्कण्ठा भाव परिणाम है।

फोरियर अपने समय की आर्थिक प्रणाली के विरोधी थे तथा इस मे सुधार करने के लिये उत्सुक थे। यह विचार कर कि वर्तमान व्यावहारिक प्रणाली में मानव उत्कण्ठा भावो का अनुरूपता के साथ कार्यशील होना सम्भव नही था वे नये आर्थिक व सामाजिक सगठन का निर्माण करना चाहते थे। इस उद्देश्य से उन्होने अपनी फलेन्सटियर अथवा फलेंक्स (Phalanstere or Phalanx) की योजना का प्रतिपादन किया। अपनी इस योजना के अनुसार वे मनुष्यो को ४०० से लेकर

२००० व्यक्तियों तक के समुदायो मे संगठित करना चाहते थे जिस का नाम फलेंक्स था। प्रत्येक फलेंक्स दलो (groups) तथा श्रेणियो (series) मे उपविभाजित था। व्यक्ति अपनी इच्छानुसार किसी भी दल तथा श्रेणी के सदस्य बन सकते थे। इस सामाजिक इकाई मे एकता व सद्भावना का वातावरण सदा विद्यमान रहेगा, ऐसा फौरियर का विश्वास था।

फौरियर के फलेंक्स के विचार को एक वर्तमान होटल, जिसमे रहने के लिये अनेक कमरे होते हैं तथा जहाँ भोजन, सफाई तथा प्रबन्ध आदि की केन्द्रित व्यवस्था होती है, की कल्पना करके समझा जा सकता है। फौरियर का विश्वास था कि एक साथ भोजन तैयार करने के कारण सब को समान प्रकार का भोजन प्राप्त होने के अतिरिक्त सदस्यो के समय मे भी बचत सम्भव हो सकेगी जिसका उत्पादक उपयोग करके उत्पादन मे वृद्धि की जा सकती थी। फलेंक्स के अनुकूल वातावरण मे व्यक्ति १८ वर्ष से लेकर ४८ वर्ष की आयु तक इतना अधिक उत्पादन कर सकेगा कि वह अपने शेष जीवन को सुख के साथ व्यतीत कर सकेगा। रोबर्ट ओविन के समान चार्ल्स फौरियर भी इस बात मे पूर्ण विश्वास रखते थे कि वातावरण का मनुष्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है तथा वातावरण मे उपयुक्त व पर्याप्त मात्रा मे परिवर्तन करके मनुष्य की प्रकृति मे परिवर्तन किया जा सकता है।

फौरियर की फलेंक्स योजना केवल उपभोक्ताओ के सहकारी सगठन तक ही सीमित नही थी। इसमे उत्पादन के भी एक नवीन सगठन की व्यवस्था की गई थी। प्रत्येक फलेंक्स मे, जिस का क्षेत्रफल ४०० एकड के लगभग था समुदाय की सामूहिक आवश्यकताओ की पूर्ति करने के हेतु उत्पादन करने के लिये औद्योगिक व्यवसायो तथा खेती की व्यवस्था की गई थी। प्रत्येक फलेंक्स मे उपभोग की प्रत्येक वस्तु का उत्पादन तथा प्रत्येक उत्पादित वस्तु का उपभोग होना था। इस प्रकार फलेंक्स एक स्वत पूर्ण अर्थव्यवस्था (self-sufficient economy) के समान था। सम्मिलित पूंजी कम्पनियो के सगठन के समान प्रत्येक सदस्य फलेंक्स का अंशधारी था तथा प्राप्त लाभो का सदस्यो मे निम्नलिखित आधार पर वितरण किया जाना था। श्रमिक, पूंजीपति तथा व्यवस्थापक को कुल लाभो का क्रमशः $\frac{५}{१२}$, $\frac{४}{१२}$ तथा $\frac{३}{१२}$ भाग प्राप्त होना था।

फौरियर का यह विश्वास था कि उत्पादन मे वृद्धि करने के लिये श्रमिको का व्यवसाय मे कुछ हित होना चाहिये तथा उन्होंने श्रमिक को व्यवसाय का सहभागी मालिक (cooperative owner) बनाने का सुझाव दिया। इस प्रकार फौरियर को वर्तमान लाभ-विभाजन (Profit-Sharing) योजना का प्रतिपादनकर्त्ता कहा जा सकता है। फौरियर इस सत्य से भली प्रकार परिचित थे कि सभी सभ्य समाजो मे सम्पत्ति प्राप्त करने की भावना मनुष्य को उत्पादन करने की एक महान प्रेरणा प्रदान करती है। इस प्रकार यदि श्रमिक का भी व्यवसाय मे कुछ

स्वामित्व होगा तो वह अधिक रुचि के साथ अपने कार्य को करेगा तथा फलस्वरूप उत्पादन में वृद्धि सम्भव हो सकेगी। यह उत्पादन की सहकारी प्रणाली के द्वारा सम्भव हो सकता था।

इस क्षेत्र में फोरियर की विचारधारा अन्य समाजवादियों, जो व्यक्तिगत सम्पत्ति के उन्मूलन के भारी पक्ष में है, से भिन्न थी। व्यक्तिगत सम्पत्ति को उन्मूलन करने के स्थान पर फोरियर समाज को इस प्रकार पुनर्संगठित करना चाहते थे कि श्रमिक को भी पूंजीपति बनने का अवसर प्राप्त हो सके तथा इस प्रकार समाज में सम्पत्ति अधिकारों के आधार पर वर्ग विभाजन तथा वर्ग संघर्ष का अन्त हो सके। उनका यह विश्वास था कि जब उनकी योजना संसार के सभी देशों में लागू हो जावेगी तो समस्त संसार अनेकों फलेंक्सो, दलों तथा श्रेणियों का एक समुदाय बन जावेगा जहाँ सभी व्यक्ति पूंजीपति तथा सभी व्यक्ति श्रमिक होंगे तथा जहाँ वर्ग संघर्ष की समाज विरोधी घटना कभी उपस्थिति न होगी।

फोरियर की योजनाओं को व्यावहारिक रूप में प्रयोग करने पर वे असफल सिद्ध हुई थीं। यद्यपि फ्रान्स में उनके विचारों पर विशेष गम्भीरता के साथ ध्यान नहीं दिया गया था परन्तु थोड़ा बहुत जो भी उनके विचारों को व्यावहारिक रूप में प्रयोग करने का प्रयास किया गया उसका केवल असफल परिणाम ही प्राप्त हुआ। अमरीका में उनके विचारों का फ्रान्स की अपेक्षा अधिक प्रचार हुआ। उनके विचारों के प्रचारकों में Victor Considerant, Albert Brisbane, Margaret Fuller, Nathaniel Hawthorn, Horace Greeley, John Greenleaf Whillier आदि के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। फोरियर के विचारों के इन अमरीकी अनुयायियों के परिश्रम के फलस्वरूप अमरीका में फलेंक्स स्थापित करने के आन्दोलन का श्री गणेश किया गया तथा थोड़े से ही समय में लगभग ३४ फलेंक्स समुदायों की स्थापना की गई। इनमें Massachusetts में स्थापित Brook Farm नामक फलेंक्स बहुत प्रसिद्ध था। परन्तु ये सब ३४ समुदाय अल्पकालीन सिद्ध हुये तथा सभी फोरियर की योजना की अव्यावहारिकता व असफलता का एक महान उत्तम उदाहरण थे।

लुइ ब्लैंक (१८१३ ई०–१८८२ ई०)
(Louis Blanc)

रोबर्ट ओविन तथा चार्ल्स फोरियर के विचारों की संक्षिप्त व्याख्या के पश्चात अब साहचर्य समाजवाद के तीसरे स्तम्भ लुई ब्लैंक की विचारधारा पर प्रकाश डाला जा सकता है। जीन जोसफ लुई ब्लैंक, जिन को फ्रान्सीसी समाजवाद में एक अनुपम स्थान प्राप्त है, का जन्म १८१३ ई० में स्पेन के मेड्रिड नामक स्थान में हुआ था। कोरसीका तथा पेरिस में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात उन्होंने एक पत्रकार के रूप में अपनी जीवन-चर्या का क्रम आरम्भ किया था। २६ वर्ष की आयु में उन्होंने **Revue du Progres** नामक पत्रिका का संस्थापन किया था।

यद्यपि न तो वे प्रसिद्ध विद्वान ही थे तथा न ही उनका स्थान फ्रान्स के प्रथम श्रेणी के लेखकों में था परन्तु फिर भी उनको काफी यश प्राप्त हुआ था। १८४८ ई० की क्रान्ति के पश्चात वे फ्रान्स की अस्थाई सरकार (Provisional Government) के एक प्रभावशाली सदस्य थे। उनके प्रमुख विचार सेंट-साइमन, चार्ल्स फोरियर तथा अन्य समाजवादियों के विचारों पर ही आधारित थे तथा उनमें मौलिकता का कोई चिह्न नहीं था। परन्तु यह सब कुछ होते हुये भी उनके पक्ष में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अपनी कल्पनावादी योजनाओं को सफलतापूर्वक व्यावहारिक रूप देने वाले वे प्रथम समाजवादी थे। १८४० ई० में उनकी पुस्तक **Organisation du Travail** प्रकाशित हुई थी। संक्षेप तथा सरल होने के कारण इस पुस्तक की बहुत प्रशंसा की गई थी।

ब्लेंक के आर्थिक विचार

ब्लेंक के विचारानुसार समाज में विद्यमान दरिद्रता, अपराधों, वेश्यागमन, मन्दी तथा अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों आदि का दायित्व प्रतियोगिता पर था। ब्लेंक का कहना था कि प्रतियोगिता ने दरिद्र को तो बरबाद कर ही दिया है परन्तु कुछ समय पश्चात यह धनियों को भी बरबाद कर देगी। ब्लेंक ने अपने इस विश्वास तथा तर्क के पक्ष में इतिहास, सरकारी लेख पत्रों तथा अपने निजी अनुभव से उदाहरण प्रस्तुत किये। उन्होंने प्रतियोगिता के स्थान पर सहकारिता का सुझाव दिया। परन्तु उनके सुझावों में फोरियर तथा अन्य कल्पनावादियों का पागलपन नहीं था। उनकी योजना सरल तथा प्रत्यक्ष होने के कारण अधिक प्रभावशाली थी।

फ्रान्स में १८४८ ई० की अस्थाई सरकार का सदस्य होने के नाते ब्लेंक ने राज्य से श्रम व विकास मंत्रालय (Labour and Progress Ministry) स्थापित करने का अनुरोध किया था। समाज में प्रत्येक बेकार व्यक्ति को रोजगार प्रदान करना श्रम तथा विकास मंत्रालय का कर्तव्य था। ब्लेंक का कहना था कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति को काम करने का समान अवसर प्राप्त होना चाहिये जिससे कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मानसिक, नैतिक तथा शारीरिक शक्तियों का सन्तुलित विकास करने का अवसर प्राप्त हो सके। ब्लेंक का विश्वास था कि इस महान उद्देश्य की पूर्ति अबन्ध नीति (laissez faire) के अन्तर्गत नहीं हो सकती थी क्योंकि यह—laissez faire —घातक प्रतियोगिता को जन्म देती है, जिसके परिणामस्वरूप समाज में दरिद्रता, बेरोजगारी व शोषण इत्यादि गम्भीर घटनायें उपस्थित हो जाती हैं।

समाज को इन बुराइयों से मुक्त करने के हेतु ब्लेंक ने सरकार को सहकारी सामाजिक कर्मशालाओं को स्थापित करने का सुझाव दिया। सामाजिक कर्मशालाओं में श्रमिक राज्य द्वारा प्रदान की गई उत्पादन सामग्री के द्वारा उत्पादन करेंगे तथा इस प्रकार पूंजीपति का अन्त हो सकेगा। राज्य इन कर्मशालाओं को ब्याजरहित ऋण देकर वित्तिय सहायता प्रदान करेगा तथा राज्य का यह भी कर्तव्य

होगा कि वह इस बात को देखे कि इन कर्मशालाओं का शासन जनसाधारण के हितों के अनुकूल है। सामाजिक कर्मशालाओं की स्थापना के प्रथम वर्ष में प्रबन्धकों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर होगी। परन्तु श्रमिकों के परिशिक्षित हो जाने पर इन कर्मशालाओं के प्रबन्ध का कार्य वे स्वय करेगे। कर्मशालाओं की स्थापना करने के लिये आवश्यक पूजी की मात्रा राज्य करो तथा सरकारी व्यवसायो द्वारा प्राप्त करेगा। कर्मशालाओं के संस्थापन मे लगी पूँजी पर ब्याज का भुगतान सरकार को किया जाना था। कर्मशाला द्वारा प्राप्त सकल लाभ मे से सरकार को ब्याज का भुगतान करने के पश्चात शेष लाभ को तीन हिस्सो मे विभाजित किया जाना था। शुद्ध लाभ का प्रथम हिस्सा कर्मशाला के कर्मचारियों को भत्ते (bonus) के रूप मे बांटा जाना था। लाभ का दूसरा हिस्सा वृद्ध, बीमार तथा दुर्बल श्रमिको की देखरेख पर व्यय किया जाना था। लाभ के तीसरे हिस्से का उपयोग कर्मशाला के विकास तथा कर्मशाला के लिये यत्रों तथा मशीनो का क्रय करने पर व्यय किया जाना था।

इस प्रकार ब्लैक की ये सामाजिक कर्मशालाएँ जिन की उत्पादन क्षमता पूँजीपति की निजी कर्मशालाओं की अपेक्षा बहुत अधिक थी, उत्पादन के क्षेत्र मे पूँजीपति से प्रतियोगिता कर सकती थीं तथा ये अन्त मे पूँजीपति पर विजयी सिद्ध हो सकती थी। इस प्रकार सामाजिक कर्मशाला पूँजीपति के अस्तित्व को समाप्त करने का एक साधन थी। ब्लैक की इस योजना का लक्ष्य घातक प्रतियोगिता का, कर्मशालाओं के माध्यम द्वारा अधिक समर्थ प्रतियोगिता (more effective competition) से, अन्त करना था। अन्त मे सारे समाज मे केवल सामाजिक कर्मशालाएँ ही जीवित रह पाएँगी तथा पूँजीवाद की घातक प्रतियोगिता की समस्या का समाज के जीवन से सदा के लिये अन्त हो जावेगा।

१८४८ ई० की क्रान्ति के पश्चात फ्रान्स की अस्थाई सरकार मे सदस्य बन जाने पर लुइ ब्लैक ने सरकार से अपनी इस कर्मशालाओं की योजना को व्यावहारिक रूप प्रदान करने का भारी अनुरोध किया था। इस विषय पर उन को श्रमिक वर्ग का भारी सहयोग प्राप्त था। यद्यपि मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य ब्लैक की योजना से सहमत नही थे फिर भी श्रमिको को सान्त्वना प्रदान करने के उद्देश्य से सरकार ने ब्लैक की कर्मशाला योजना को एक प्रयोग के स्तर पर लागू किया। परन्तु दुर्भाग्य-वश यह प्रयोग असफल सिद्ध हुआ।

यद्यपि ब्लैक की योजना को उनके समय मे सफलता प्राप्त नही हो सकी परन्तु उन को वर्तमान सार्वजनिक निर्माण कार्य तथा अन्य सार्वजनिक व्यवसाय सम्बन्धी योजनाओं का सच्चा प्रवर्तक कहा जा सकता है। उन की मृत्यु १८८२ ई० मे हुई तथा राज्य की ओर से उन का अन्तिम सस्कार (state funeral) किया गया था। यह उन के महान सम्मान का प्रतीक था।

इटीने कैबट (१७८८ ई०-१८५६ ई०)
(Etienne Cabet)

चार्ल्स फोरियर के समान कैबट भी एक महान् कल्पनावादी थे। वे रोबर्ट ओविन के अनुयायी तथा प्रशसक थे। उन्हों ने अपनी **The Voyage to Icaria** नामक पुस्तक १८४० ई० मे सर थोमस मूर की पुस्तक **Utopia** का अध्ययन करने के पश्चात लिखी थी। अपने विचारो की व्यावहारिकता को सिद्ध करने के हेतु कैबट ने १५०० साथी एकत्र किये तथा उनके साथ १८४८ ई० मे अपना आदर्श समुदाय स्थापित करने के लिये अमरीका के लिये चल दिये थे। परन्तु आपस मे मतभेद होने के कारण ये लोग अपने ठिकाने तक न पहुँच पाये थे। कैबट की मृत्यु अमरीका मे Missouri प्रान्त मे St Louis नामक स्थान मे १८५६ ई० मे हुई थी।

साहचर्य समाजवादियों को यद्यपि अपने विचारो को व्यावहारिक रूप देने मे विशेष सफलता प्राप्त नहीं हो सकी परन्तु समाजवाद के इतिहास तथा आर्थिक विचारो के इतिहास मे उन के इन अव्यावहारिक विचारो का एक विशेष महत्व है क्योंकि इन विचारो से राज्य समाजवाद, सहकारी आन्दोलन तथा अन्य सामाजिक व आर्थिक आन्दोलनो को महत्वपूर्ण शक्ति प्राप्त हुई थी।

विशेष अध्ययन सूची

1. Charles Gide and Rist : A History of Economic Doctrines, Book II, Chapter. III.
2. Philip Charles Newman : The development of Economic Thought, Chapter, XV.
3. Lewis H. Haney History of Economic Thought, Chapter, XXII
4. John Fred Bell · A History of Economic Thought, Chapter, 17.
5. J M. Ferguson : Landmarks of Economic Thought, Chapter, XV.
6. Eric Roll · A History of Economic Thought, Chapter, V.
7. Edmund Whittaker Schools and Streams of Economic Thought, Chapter, 10.

प्रश्न

1. Name the principal utopian socialists and give an analytical review of their main concepts

(राजस्थान, १९५०)

2. Why are the Utopian Socialists so called ?

(कर्नाटक, १६५६)

3. Discuss the contribution of Robert Owen to socialist thought.

(कर्नाटक, १६५८)

4. Examine the important ideas of Robert Owen.

(आगरा, १६६२)

5. 'Robert Owen's experiments in his factory at New Lanark had the distinction of serving as a model for the factory legislation of the next fifty years.' Justify the above statement.

(आगरा, १६४६, राजस्थान, १६६२)

6 'Robert Owen of all socialists has the most strikingly original, not to say unique, personality.' (Gide and Rist) Discuss the above statement, with special reference to the practical reforms initiated by Owen.

(आगरा, १६५२; १६६०)

7. What is meant by the term 'Associative Socialists.' Give a brief account of some of the important socialist ideas of Robert Owen.

(आगरा, १६५६)

8 "The British counterpart of Charles Fourier was Robert Owen, who may be called the very symbol of what later came to be labelled Utopian Socialism." (Newman) Discuss.

(आगरा, १६५८)

9. Discuss the organisation and objectives of the Social Workshop of Louis Blanc.

10 Describe clearly Fourier's Phalanx with special reference to aims and organisation.

अध्याय २२

पेरी जोसफ प्रोधों

(Pierre-Joseph Proudhon)

पेरी जोसफ प्रोधो[1] का जन्म १८०६ ई० मे फ्रान्स मे Bresancon नामक स्थान मे हुआ था। उनके पिता एक ईमानदार व्यक्ति थे तथा शराब बनाने का काम करते थे। वे इतने ईमानदार थे कि शराब को सदा उचित मूल्य पर बेचते थे। सम्भवत यह ईमानदारी ही उनकी गरीबी का कारण थी। यद्यपि प्रोधो एक देदीप्यमान विद्यार्थी थे परन्तु गरीबी के कारण उनको शिक्षा प्राप्त करने के लिये काम करना पडता था। गरीबी के कारण उनको अपनी शिक्षा समाप्त करने के पूर्व ही कालिज को छोडकर मुद्रक के रूप मे नौकरी करने के लिये विवश होना पडा था। कुछ समय पश्चात् वजीफा मिल जाने के कारण उनको शिक्षा प्राप्त करने का पुन अवसर प्राप्त हो सका था।

३१ वर्ष की कम आयु मे १८४० ई० मे उनकी प्रथम पुस्तक **Quest-ce que la propriete ?** (What is Property) प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक से उन को प्रसिद्ध प्राप्त हुई थी। इस पुस्तक मे प्रोधो ने व्यक्तिगत निजी सम्पत्ति की कड़ी आलोचना की थी तथा इसको चोरी से सम्बोधित किया था। उनकी दूसरी पुस्तक **Systeme des Contradictions Economiques Ou Philosophie de la misere (System of Economic Contradictions or the Philosophy of poverty)** जो १८४६ ई० मे प्रकाशित हुई थी समाजवाद व साम्यवाद की कडी आलोचना थी। १८४८ ई० मे उनकी दो पुस्तके **Organisation du credit et de la circulation et solution du probleme social** तथा **Resume de la Question sociale Banque d' Exchange**, १८४६ ई० मे **Les Confessions d' un Revolu-**

---

1. कुछ लेखको का कहना है कि प्रोधो का पूरा नाम क्या था यह कहना कठिन है। उदाहरणार्थ Philip Charles Newman ने अपनी पुस्तक **The Developemnt of Economic Thought** मे प्रोधो के विचारो की व्याख्या करते हुये प्रथम वाक्य मे यही लिखा है कि प्रोधो के नाम के प्रथम शब्द क्या है यह कहना कठिन है तथा केवल प्रोधो कहना ही उपयुक्त है।

tionnaire ; १६५० ई० मे **Interet et Principal** तथा १८५८ ई० मे तीन खण्डो मे **De la Justice dans la Revolution et dans I'Eglise** प्रकाशित हुई थी।

प्रोधो एक विचित्र प्रकृति के व्यक्ति थे। आलोचना करना तो उनके लिये एक प्रकार के धर्म के समान था जिसका पालन करना वे अपना परम कर्तव्य समझते थे। पूंजीवाद, साम्यवाद तथा समाजवाद सभी प्रोधो की कड़ी आलोचनाओं का विषय थे। यद्यपि वे कल्पनावादियो के कट्टर आलोचक थे परन्तु उनकी स्वय योजनाएँ कल्पनाओं से मुक्त नही थी। उनकी मृत्यु १८६५ ई० मे हुई थी।

प्रोधों के आर्थिक विचार

यद्यपि आर्थिक विचारो के समस्त इतिहास मे प्रोधो को एक विशेष स्थान प्राप्त है परन्तु उनको यह विशेष स्थान अन्य अर्थशास्त्रियों के समान उनके विचारो की विशेषता के कारण प्राप्त नही है वरन् यह स्थान उनको इस कारण प्राप्त है कि वे एक ऐसे विचित्र लेखक तथा व्यक्ति थे कि आज भी यह कल्पना करना कठिन है कि वे क्या थे। वे पूंजीवाद के कट्टर आलोचक थे क्योकि उनके लिये निजी सम्पत्ति, जो पूंजीवाद की प्रमुख सस्था है, चोरी (theft) थी। परन्तु इसमे यह समझ लेना भारी भूल होगी कि वे समाजवादी अथवा साम्यवादी थे। समाजवाद को वे व्यर्थ विचारते थे। प्रोधो निरपेक्ष स्वतन्त्रता को आवश्यक समझते थे तथा इस कारण वे सभी साहचर्यवादी (associationist) तथा राज्य सामूहिकवादी (collectivist) योजनाओ के प्रतिपक्षी थे। वे साम्यवादी भी न थे क्योकि साम्यवाद को भी वे निजी सम्पत्ति के समान ही चोरी समझते थे। उनका कहना था कि जिस प्रकार निजी सम्पत्ति के द्वारा कमजोर (श्रमिको) का ताकतवर (पूँजीपति) शोषण करता है, ठीक उसी प्रकार साम्यवाद मे कमजोर के द्वारा ताकतवर का शोषण किया जाता है। प्रोधो स्वतन्त्र साहचर्य (free association) के पक्ष मे थे। उनके आदर्श समाज मे राज्य का कोई स्थान नही था। वे स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुता (liberty, equality and fraternity) के प्रचारक थे। उनका कहना था कि उनके समाज मे पूर्ण व्यवस्था होने के कारण सभी समान होगे, उनके समाज मे न स्वामी होगा तथा न राज्य ही होगा। परन्तु इससे यह नही समझ लेना चाहिये कि प्रोधो अराजकतावादी (anarchist) थे। उन्होने फरवरी १८४८ ई० की क्रान्ति मे, जिसका एकमात्र उद्देश्य फ्रास की पुरानी सरकार को समाप्त करके नई सरकार स्थापित करना था, कोई भाग नही लिया था क्योकि उनके विचारानुसार सरकार चाहे वह पुरानी हो या नई हो, सदा बुराई थी। यद्यपि वे राज्य को एक बुराई समझते थे, परन्तु वे १८४८ ई० के क्रान्तिवादियो के समान समाज मे अव्यवस्था व क्रान्ति उत्पन्न करने

के पक्ष मे नही थे । अधिक से अधिक वे एक दार्शनिक अराजकतावादी (philosophical anarchist) थे जिनकी राज्य के प्रति आलोचना विचारो के ससार तक ही सीमित थी ।

उपरोक्त व्याख्या से यह भली प्रकार विदित होता है कि प्रोधो न तो पूँजीवाद के समर्थक ही थे तथा न वे समाजवादी अथवा साम्यवादी ही थे । वे राज्य के आलोचक अवश्य थे, परन्तु वे सच्चे अर्थ मे अराजकतावादी भी न थे । वे क्या थे ? यह आज भी उतना ही गूढ प्रश्न है जितना गूढ यह आज से लगभग एक शताब्दी पूर्व था । यही कारण है कि प्रोधो का अर्थशास्त्रियो के किसी विशेष सम्प्रदाय मे वर्गीकरण करना एक कठिन कार्य है ।

प्रोधो समाज मे न्याय व्यवस्था स्थापित करना चाहते थे । इस दृष्टिकोण मे उन्होने निजी सम्पत्ति की कडी आलोचना की थी । उनके विचारानुसार निजी सम्पत्ति चाहे वह किसी भी रूप मे हो, समाज मे इस महान बुराई—अन्याय—का स्रोत थी। वे समाज मे उपस्थित असमानताओ को निजी सम्पत्ति का एकमात्र परिणाम समझते थे तथा उनके विचारानुसार इस सामाजिक बुराई को दूर करने का एकमात्र उपाय समाज से निजी सम्पत्ति की समाज विरोधी सस्था का उन्मूलन था । १८४० ई० मे प्रकाशित अपनी पुस्तक **Qu'est-ce la Propriete** (What is Property) मे प्रोधो ने निजी सम्पत्ति पर कडा आक्रमण किया था । उनके विचारानुसार सभी सम्पत्ति[2] चोरी के समान है । जिस प्रकार कि चोर चोरी के परिणामस्वरूप जो सम्पत्ति प्राप्त करता है वह गैरकानूनी होती है ठीक उसी प्रकार सम्पत्ति स्वामी भी चोर के समान है जो समाज मे कमजोरो (श्रमिको) का शोषण करके सम्पत्ति प्राप्त करता है जो वास्तव मे चोरी से किसी भी प्रकार भिन्न नही है तथा जो चोरी के समान गैरकानूनी घोषित की जानी चाहिये । निजी सम्पत्ति समाज मे सम्पत्तिस्वामी को दूसरो का शोषण करने का अवसर प्रदान करती है । 'Property is Theft' उनका प्रसिद्ध नारा था तथा इस नारे से यह प्रतीत होता है कि प्रोधो के रूप मे कोई मार्क्स बोल रहा है । परन्तु ऐसा कदापि नही था क्योकि प्रोधो को समाजवाद तथा साम्यवाद के प्रति उतनी ही कम या अधिक घृणा थी जितनी कि उनको पूँजीवाद के प्रति थी ।

प्रोधो समाज को निजी सम्पत्ति के नाप मे, समाजवाद के पागलपन से बचा कर, मुक्त करना चाहते थे । वे सभी प्रकार की काल्पनिक योजनाओ के आलोचक थे तथा उनके लिये ऐसे व्यक्तियो का कोई महत्व नही था जो समाज की तुलना मशीनो से करते थे । प्रोधो सम्पत्ति के आलोचक इसलिये नही थे कि उन

---

2 Proudhon's definition of property was thus : "The right to enjoy the fruits of industry, or of the labour of others, or to dispose of thos e fruits to others by will," was property.

शक्ति एक उत्पादक शक्ति है तथा इसके कारण कुल उत्पादन में वृद्धि होती है। इस शक्ति की उत्पादकता इस सत्य से ज्ञात होती है कि जब कर्मचारी एक साथ मिलकर काम करते हैं तो प्राप्त कुल उत्पत्ति उस उत्पत्ति की तुलना में अधिक होगी जो कर्मचारियों के एक साथ मिलकर काम करने के बजाय उनके अलग-अलग काम करने से प्राप्त होगी। यह अतिरिक्त उत्पत्ति पूँजीपति नियोक्ता को बेशी के रूप में प्राप्त होती है क्योंकि उसके लिये वह कर्मचारियों को कुछ नहीं देता है। प्रोधों का कहना था कि यद्यपि नियोक्ता प्रत्येक कर्मचारी को उसके व्यक्तिगत श्रम के अनुपात में भुगतान (वेतन) करता है परन्तु वह सामूहिक शक्ति (collective force) के परिणाम-स्वरूप प्राप्त उत्पत्ति को स्वयं रख लेता है। यही अतिरिक्त उत्पत्ति उसका अनर्जित लाभ है। सामूहिक शक्ति जितनी अधिक बलवान होती है तथा इसके कारण पूँजीपति के लाभ (उत्पादन) में जितनी अधिक वृद्धि सम्भव हो सकती है, इस बात को प्रोधों ने निम्नलिखित वाक्य खण्ड में एक उदाहरण द्वारा समझाया है।

"यह कहा जाता है कि पूँजीपति अपने श्रमिकों को प्रतिदिन के अनुसार वेतन देता है। परन्तु *ऐसा न कह कर यह कहना अधिक सही होगा कि वह—पूँजी-*पति—प्रति दिन एक निर्धारित कुल वेतन, जो वेतन दर व कुल श्रमिकों की संख्या के गुणनफल के बराबर होता है, देता है। उस महान शक्ति के लिये जो श्रमिकों के संगठित रूप में एक साथ काम करने के कारण उत्पन्न होती है, वह श्रमिकों को कुछ नहीं देता है। यह शक्ति कितनी अधिक प्रभावशाली तथा उत्पादक है यह इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है। दो सौ गोला फेंकने वाले सिपाही (Grenadiers) Louqsor statue के आधार—नींव—को थोड़े से ही घण्टों में छिन्न भिन्न कर सकते हैं। यह एक ऐसा कार्य है जो एक व्यक्ति के लिये, यदि वह दो सौ दिन तक भी काम करे, करना असम्भव है। पूँजीपति के अनुसार कार्य की दोनों ही दशाओं में वेतन की मात्रा समान होगी तथा श्रमिक भी यह विश्वास करता है कि उसके काम का पारितोषिक उसको वेतन के रूप में प्राप्त हो गया है। परन्तु वास्तव में श्रमिक को उसके कुल पारितोषिक का केवल एक भाग ही वेतन के रूप में प्राप्त होता है। वेतन प्राप्त करने के पश्चात भी उत्पादित वस्तुओं में उसका सम्पत्ति अधिकार होता है।[3]

परन्तु पूँजीपति को सामूहिक शक्ति (collective force) के कारण प्राप्त उत्पादन को श्रमिकों के शोषण से सम्बोधित करना उचित नहीं है। अर्थशास्त्र के विद्यार्थी यह जानते हैं कि उत्पादन कराने के हेतु श्रमिकों को वेतन देकर उनको एकत्र तथा संगठित करना उद्यमकर्ता (entrepreneur) का एक आवश्यक

3 Propriete, Ier Memoire, pp 91 and 64

कार्य है तथा जो भी लाभ उसको प्राप्त होता है वह उसके इस कार्य का पारितोषिक है।

क्या प्रोधों समाजवादी अथवा साम्यवादी थे ?

प्रोधों पूँजीवाद तथा सम्पत्ति के कट्टर आलोचक थे। इतिहास इस बात का साक्षी है कि वे सभी विचारक तथा लेखक जो पूँजीवाद के आलोचक थे सामान्यतः किसी न किसी रूप में समाजवाद के समर्थक थे। परन्तु यह बात प्रोधों के सम्बन्ध में सत्य नहीं है। जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं प्रोधो एक विचित्र प्राणी थे। पूँजीवाद के कट्टर आलोचक होते हुये भी वे न तो समाजवादी ही थे तथा न वे साम्यवादी ही थे। प्रोधो ने चार्ल्स फोरियर, जो उनके समय में समाजवादी सम्प्रदाय के प्रभावशाली सदस्य थे, पर कड़े आक्रमण किये थे। लुई ब्लैक[4], इटिने कैबट (Etienne Cabet) तथा अन्य समाजवादी भी उनके आक्रमणों से नहीं बच सके थे। समाजवाद की आलोचना करते हुये प्रोधो ने लिखा है कि "समाजवाद कुछ भी नहीं है। न तो यह पहले कभी कुछ था तथा न यह भविष्य में ही कुछ होगा।"[5] वे साम्यवाद के भी कट्टर आलोचक थे। साम्यवाद में राज्य श्रमिकों का शोषण करता है तथा स्वतन्त्रता का उन्मूलन हो जाता है। साम्यवाद की निन्दा करते हुये साम्यवादियों को संकेत करते हुये प्रोधो ने इस प्रकार लिखा था: "साम्यवादियो तुम्हारी उपस्थिति मेरी नाक के नथुनों (nostrils) के लिये बदबू के समान है तथा तुम्हारी दृष्टि मुझ में घृणा उत्पन्न करती है।" पूँजीपति भी साम्यवादियों के लिये इतने अधिक सख्त तथा घृणाजनक शब्द प्रयोग करने की कल्पना नहीं कर सकते हैं।

प्रोधो के विचारानुसार श्रमविभाजन, सामूहिक कार्य, प्रतियोगिता, साख, सम्पत्ति तथा आर्थिक स्वतन्त्रता का समाज की प्रगति में महान महत्व था। वे इन सबको जीवित रखने के इच्छुक थे। समाजवाद में प्रतियोगिता, सम्पत्ति तथा आर्थिक स्वतन्त्रता का सदा के लिये अन्त हो जाता है। प्रोधो के मतानुसार समाजवाद विनाशकारी आन्दोलन था तथा समाजवादियों का लक्ष्य वर्तमान अच्छी आर्थिक संस्थाओं का विनाश करना था। प्रतियोगिता के स्थान पर समाजवादियों का लक्ष्य श्रमिकों का साहचर्य संगठन स्थापित करना था जो प्रोधो के विचारानुसार श्रमिकों की स्वतन्त्रता के लिये घातक था। प्रोधो के मतानुसार जिस प्रकार राजनैतिक पूर्णता नागरिकों को पूर्ण स्वतन्त्रता के द्वारा प्राप्त होती है ठीक इसी प्रकार आर्थिक

पूर्णता को प्राप्त करने के लिये श्रमिकों का पूर्ण स्वतन्त्रता का प्राप्त होना आवश्यक है। १८४८ ई० में Seine विभाग के निर्वाचक-गण के समक्ष भाषण देते हुये प्रोधो ने इस प्रकार कहा था : "स्वतन्त्रता—विचारों की स्वतन्त्रता, धर्मो की स्वतन्त्रता, श्रम की स्वतन्त्रता, व्यापार की स्वतन्त्रता, शिक्षण की स्वतन्त्रता, उद्योग व श्रम द्वारा निर्मित वस्तुओं को बेचने की स्वतन्त्रता—स्वतन्त्रता जो निरपेक्ष हो, असीमित हो तथा सब स्थानों पर सदा विद्यमान हो, मेरी आर्थिक प्रणाली की आधारशिला है।"

साम्यवाद को अस्वीकृत करते हुये प्रोधो ने कहा था कि इसमें निजी सम्पत्ति, जो श्रमिक को उत्साह प्रदान करने के लिये आवश्यक है, जो परिवार-जीवन का आधार है तथा जो सच्ची आर्थिक व सामाजिक प्रगति के लिये आवश्यक है, का सदा के लिये अन्त हो जाता है। साम्यवाद में श्रमिक नौकर होते हैं तथा राज्य उन का मालिक तथा भाग्यविधाता होता है। "साम्यवाद निजी सम्पति का केवल उल्टा रूप है। साम्यवाद भी असमानताओं को जन्म देता है, यद्यपि ये असमानताएँ सम्पत्ति के कारण विद्यमान होने वाली असमानताओं से भिन्न होती है। सम्पत्ति ताकतवर द्वारा कमजोर का शोषण कराती है, साम्यवाद कमजोर द्वारा ताकतवर का शोषण कराता है।"[6] यह भी सम्पत्ति के समान बदमाशी है। "साम्यवाद गरीबी का धर्म है।"[7] "निजी सम्पत्ति की संस्था तथा साम्यवाद में बहुत अन्तर है।"[8]

विनिमय बैंक का सिद्धान्त (The Exchange Bank Theory)

यद्यपि प्रोधो ने १८४८ ई० की क्रान्ति में बहुत कम भाग लिया था, परन्तु उन्होंने इस अवसर का उपयोग फ्रान्स में राज्य बैंक स्थापित करने का सुझाव देकर किया था। यह ऊपर बताया जा चुका है कि प्रोधो, केवल श्रम को ही उत्पादक साधन विचारते थे। उनका विश्वास था कि भूस्वामी के समान, पूँजीपति नियोक्ता भी वस्तु के मूल्य में उचित से अधिक वृद्धि करके समाज का शोषण करता है। प्रोधो का विश्वास था कि विनिमय बैंक स्थापित करके वे अपने इस श्रम सिद्धान्त को कार्य रूप दे सकते थे। बैंक का कार्य पत्र नोटों की निकासी करना था। ये नोट धातु मुद्रा में अपरिवर्तनशील थे। इस बैंक का कार्य एक विनिमय अभिकर्ता (exchange agent) का कार्य करना था। बैंक का कार्य श्रमिकों को वस्तुओं के बदले नोट देना था। इन नोटों के द्वारा वस्तुओं का क्रय किया जा सकता था क्योंकि ये नोट विधि ग्राह्य (legal tender) थे। बैंक की पूँजी को प्राप्त करने के लिये प्रोधो ने सरकारी अधिकारियों तथा सम्पत्ति पर आरोही कर (progressive tax) लगाने का सुझाव दिया था। इस बैंक का एक केन्द्रीय कार्यालय होना था तथा सारे फ्रान्स में इसकी शाखाएँ स्थापित की जानी थीं। राज्य का कर्तव्य बैंक को ब्याज रहित ऋण

6 *Propriete ler Memoire p* 204.
7 *Contradictions Vol, II, p* 203
8 *Organisation du Credit et de la Circulation, p* 131

प्रदान करना था। श्रमिक इस बैंक के सरक्षक (patron) थे। श्रमिक बैंक से अपनी निर्मित वस्तुओं के बदले मे समान मूल्य की वस्तुएँ प्राप्त कर सकते थे। इस प्रकार श्रमिकों का शोषण न हो सकेगा तथा उनके प्रति न्याय किया जा सकता था।

प्रोधो की विनिमय बैंक की यह योजना रोबर्ट ओविन, ब्रे (Brey) तथा रोडबर्टस (Rodbertus) के काल्पनिक बैंकों की योजनाओं से भिन्न नहीं थी। प्रोधो की विनिमय बैंक की योजना को १८४६ ई० मे कार्य रूप देने का प्रयास किया गया था परन्तु यह फेल हो गई।

प्रोधों का प्रभाव

प्रोधो एक विचित्र विचारक थे तथा इस कारण उनके प्रभाव का सही अनुमान लगाना कठिन है। उनकी प्रथम पुस्तक **What is Property ?** से उनको प्रसिद्धि प्राप्त हुई थी। उनके विचारों का उनके समय के अर्थशास्त्रियों पर भी प्रभाव पड़ा था। Blanqui तथा Garnier प्रोधों के प्रशसक थे। Blanqui ने तो प्रोधो की प्रशसा करते हुए लिखा था कि मेरे लिये आप (प्रोधो) के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति का आप से अधिक सम्मान करना असम्भव है। जो लोग उनके विचारों से सहमत न थे वे भी उनसे डरते थे। उनकी आलोचनाये बहुत तीखी होती थी तथा कोई भी समझदार व्यक्ति उनको अप्रसन्न नही करना चाहता था।

वे साम्यवाद के कट्टर विरोधी थे तथा इसी कारण मार्क्स ने प्रोधो की १८४७ ई० मे लिखित अपनी पुस्तक **Misere de la Philosophie** (Poverty of Philosophy) मे आलोचना की थी। मार्क्स का कहना था कि प्रोधों श्रमिकों को गलत मार्ग पर ले जा रहे थे तथा क्रान्ति के बिना श्रमिकों की स्थिति मे सुधार करना सम्भव नहीं था। मार्क्स के अनुसार प्रोधो 'petit bourgeois' थे जो श्रमिकों के हितों की कभी भी रक्षा नहीं कर सकते थे।

विशेष अध्ययन सूची

1. Gide and Rist — A History of Economic Doctrines, Book II, Chapter, V
2. John Fred Bell — : A History of Economic Thought, Chapter, 17, pp. 366 368
3. L. H. Haney — . History of Economic Thought, Chapter, XXII, pp. 434-437
4. P. C Newman — : The Development of Economic Thought, Chapter XV, pp 149-149.
5. J. M Ferguson — Landmarks of Economic Thought, Chapter, XV.
6. S H. Paterson — Readings in the History of Economic Thought, pp. 592-609.

7. Eric Roll : A History of Economic Thought, Chapter, V, pp. 240-245.
8. Edmund Whittaker Schools and Streams of Economic Thought, Chapter, X.

प्रश्न

1. "All property is theft" Comment on this statement outlining the attack on property by Proudhon

(कर्नाटक १९५८)

2. 'Prodhon is better known than Sismondi and has had a vastly more important influence on socialist thought' (Roll).

   Do you agree with this statement ? Did Proudhon offer a revolutionary solution to social problems ?

(राजस्थान, १९६१)

अध्याय २३

राज्य समाजवादी
(State Socialists)

यद्यपि १८ वी शताब्दी तथा १९ वी शताब्दी के कुछ प्रथम आरम्भिक वर्षो तक एडम स्मिथ व उन के अनुयायियों के संस्थापित आर्थिक सिद्धान्तो की कोई विशेष आलोचना नही हुई थी परन्तु १९वी शताब्दी के लगभग प्रथम २० वर्ष पश्चात लेखको तथा समाज सुधारको ने सस्थापित अर्थशास्त्र की व्यावहारिक्ता के प्रति सदेह प्रकट करना तथा तत्पश्चात इस की आलोचना करना शुरू कर दिया था। स्मिथ तथा उन के सस्थापित अनुयायियो—रिकार्डो, माल्यस, सीनियर, मिल, से, इत्यादि—की आर्थिक विचाराधारा मे आर्थिक क्षेत्र मे राज्य-हस्तक्षेप (state intervention) को कोई स्थान प्राप्त नही था। वास्तव मे समाज मे राज्य हस्तक्षेप की कभी कोई आवश्यकता नही थी क्योकि सामाजिक व व्यक्तिगत हितो मे सदा एकरूपता थी। ऐसा अर्थशास्त्र सस्थापको का दृढ विश्वास था।

१९ वी शताब्दी के आरम्भ मे ही यह विदित होता जा रहा था कि सामाजिक व व्यक्तिगत हितो की समानता केवल एक भ्रम थी बहुदा पूँजीपति नियोक्ता अपने निजी आर्थिक हित मे प्रेरित हो कर जो कार्य करता था वह सामाजिक हितो के लिये घातक था। यह भी देखा गया था कि पूँजीपति के द्वारा श्रमिको का शोषण होने के कारण समाज मे दरिद्रता तथा आर्थिक असमानताओ की गम्भीर घटनायें उत्पन्न हो गई थी जो समाज की शान्ति व स्थाई आर्थिक प्रगति के लिये घातक थी। औद्योगिक क्रान्ति के कारण एक ओर तो उत्पादन तथा राष्ट्रीय आय मे निस्सन्देह वृद्धि हुई थी परन्तु दूसरी ओर श्रमिकों की आर्थिक दरिद्रता मे भी वृद्धि हुई थी। बेरोजगारी, अस्वस्थ रहने की व्यवस्था, कम वेतनो के रूप मे आर्थिक शोषण की घटनाओ के फलस्वरूप वर्ग सघर्ष की समस्या विद्यमान थी।

१९ वी शताब्दी की नई गम्भीर स्थिति मे समाज मे बढती हुई आर्थिक असमानताओ तथा श्रमिको के शोषण की समस्याओ को समाप्त करने के लिये आर्थिक क्षेत्र मे राज्य का हस्तक्षेत्र समाज हितो की सुरक्षा के लिये अनिवार्य था। सिसमोन्डी, सेंट साईमन, सेंट साईमनवादियो, फ्रान्सिस बेन्योफ, इटिने कैबट, रोबर्ट ओविन, चार्ल्स फोरियर, लुइ ब्लैंक इत्यादि समाजवादी लेखकों ने प्रारम्भिक १९ वी

शताब्दी मे समाज के दोषो को दूर करने के उद्देश्य से सुधार योजनायें प्रस्तुत की थी। यद्यपि इन लेखको की योजनाओ मे व्यावहारिकता का अभाव होने के कारण ही इन को कल्पनावादी तथा साहचर्य समाजवादी कहा जाता है परन्तु सभी योजनाओ का एकमात्र लक्ष्य सस्थापित आर्थिक विचारो की आलोचना करके आर्थिक क्षेत्र मे राज्य हस्तक्षेप की आवश्यकता को स्पष्ट करना था।

राज्य समाजवादी लेखको ने, जिन मे कार्ल जाहन रोडब्रटस (Karl Johann Rodbertus), फर्डिनन्ड लासाली (Ferdinand Lassalle) तथा अडोल्फ वागनर (Adolf Wagner)[1] के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं, मेन्चेस्टर सम्प्रदाय (Manchester School) की अबन्ध नीति (laissez faire) की कड़ी आलोचना की थी तथा श्रमिको व कृषको के हितो को सरक्षण प्रदान करने के हेतु राज्य हस्तक्षेप की आवश्यकता पर भारी बल दिया था। राज्य समाजवादियो का कहना था कि नागरिको की शिक्षा, श्रमिको को पूँजीपतियो के शोषण से मुक्त करने, श्रमिको के कार्य के घन्टो को निर्धारित करने तथा उन के रहने के लिये स्वस्थ गृहस्थानो की व्यवस्था करने का उत्तरदायित्व राज्य पर था तथा इन सब उद्देश्यो की पूर्ति के लिये आर्थिक क्षेत्र मे राज्य हस्तक्षेप अनिवार्य था। सक्षेप मे राज्य समाजवादियो का लक्ष्य राज्य हस्तक्षेप द्वारा समाज को आर्थिक सकटो से मुक्त करना तथा पूँजीपति नियोक्ताओ द्वारा कम शक्तिशाली तथा असगठित उपभोक्ता तथा श्रमिक वर्गों के शोषण को समाप्त करना था।

यद्यपि राज्य समाजवादी समाज मे आर्थिक क्षेत्र मे राज्य हस्तक्षेप के सिद्धान्त के प्रतिपादक थे परन्तु उनकी विचारधारा मार्क्सवादियो की विचारधारा तथा रोबर्ट ओविन, चार्ल्स फोरियर व लुई ब्लेंक आदि के साहचर्य समाजवाद से भिन्न थी। मार्क्सवाद एक अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी आन्दोलन था। क्रान्ति के द्वारा निजी सम्पत्ति का उन्मूलन तथा उद्योगो का राष्ट्रीयकरण करना मार्क्सवाद की दो मुख्य विशेषतायें हैं। राज्य समाजवादी मार्क्सवाद की इन विशेषताओ के समर्थक नहीं थे। राज्य समाजवादी क्रान्ति तथा वर्ग सघर्ष मे विश्वास नहीं रखते थे। राज्य समाजवाद को आन्दोलन के रूप मे १९ वीं शताब्दी मे सर्वप्रथम श्रीगणेश हुआ था। राज्य समाजवाद के सम्बन्ध मे यहाँ हम रोडब्रटस तथा लसाले के आर्थिक योगदान की सक्षिप्त व्याख्या करते हैं।

जोहान कार्ल रोडब्रटस (१८०५ ई०–१८७५ ई०)
(Johann Karl Rodbertus)

जोहान कार्ल रोडब्रटस[2] राज्य समाजवाद के सुप्रसिद्ध नेता था। वास्तविकता तो यह है कि उनको 'समाजवाद का रिकार्डो' कहा गया है तथा इसमें सत्य भी है क्योंकि जिस प्रकार रिकार्डो ने एडम स्मिथ व माल्थस के आर्थिक सिद्धान्तों में सुधार तथा विकास करके सस्थापित अर्थशास्त्र को नया रूप प्रदान किया था ठीक उसी प्रकार रोडब्रटस ने भी अपने समाजवादी पूर्वाधिकारियों के आर्थिक विचारों में आवश्यक सुधार करके समाजवाद को नया जीवन प्रदान किया था। रोडब्रटस ने उन—पूर्वाधिकारियों—के आर्थिक विचारों का अतिशय वर्णन किया था तथा उनके मूल सिद्धान्तों का प्रचार किया था। आर्थिक विचारों के प्रभाव के आधार पर समाजवाद के इतिहास में रोडब्रटस का स्थान केवल मार्क्स के पश्चात् तथा अन्य सभी समाजवादियों के पहले आता है।

रोडब्रटस के आर्थिक विचार

एडम स्मिथ के समान रोडब्रटस भी समाज को श्रम विभाजन द्वारा रचित एक शरीर के समान समझते थे। उन्होंने एडम स्मिथ की पुस्तक **Wealth of**

---

2. जोहान कार्ल रोडब्रटस का जन्म १८०५ ई० में जर्मनी के प्रूसिया प्रान्त में हुआ था। वे वकील थे तथा पूर्वी प्रूसिया में उनकी Jagetzow नामक भूसम्पत्ति (Estate) थी। इसी कारण उनका पहला नाम Rodbertus Von Jagetzow था। वे अन्य समाजवादियों से स्वभाव से भिन्न थे। वे शान्त स्वभाव वाले सज्जन पुरुष थे तथा क्रान्ति से डरते थे। क्रान्ति के द्वारा समाज में शीघ्र सुधार करने की अपेक्षा वे शान्त उपायों द्वारा सुधारों को समाज में धीरे-धीरे लाने को अच्छा विचारते थे। उन्होंने अपना अधिकांश जीवन अपनी भूसम्पत्ति का प्रबन्ध करने में व्यतीत किया था। १८४८ ई० में वे कुछ अल्प समय के लिए प्रूसिया की राष्ट्रीय विधान सभा के भी सदस्य थे।

   रोडब्रटस के लेखन कार्यों में १८४२ ई० में प्रकाशित पुस्तक **To a Knowledge of our Economic Condition**, १८५४ ई० में २ ग्रन्थों में प्रकाशित पुस्तक **To the Illumination of the Social Question**, १८७१ ई० में प्रकाशित पुस्तक **The Normal Work Day** तथा १८५०-५१ ई० में प्रकाशित पुस्तक **Overproduction and Crises** विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनकी प्रथम पुस्तक उनके मुख्य आर्थिक विचारों का सग्रह है।

   यद्यपि रोडब्रटस के जीवनकाल में उनकी पुस्तकों तथा विचारों की ओर लोगों का अधिक ध्यान आकर्षित नहीं हुआ था, परन्तु जर्मनी में उनका प्रभाव काफी था तथा प्रसिद्ध जर्मन अर्थशास्त्री वागनर ने तो उनको समाजवाद का रिकार्डो कहा है।

Nations में व्याख्यात उस प्रारम्भिक वाक्य-खण्ड का स्पष्टीकरण तथा सुधार किया जिस के अनुसार "प्रत्येक राष्ट्र का वार्षिक श्रम वह कोष है जो राष्ट्र को जीवन की उन आवश्यक तथा आराम सम्बन्धी वस्तुओं की पूर्ति प्रदान करता है जिन का वह राष्ट्र वार्षिक उपभोग करता है"। एक आदर्श संगठित समाज में तीन बातों का होना आवश्यक है। प्रथम, समाज के उत्पादन का लक्ष्य समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति होना चाहिये। दूसरे, उत्पादन का स्तर इतना अधिक ऊँचा होना चाहिये कि उत्पत्ति के साधनों का इष्टतम उपयोग सम्भव हो सके। तीसरे, कुल राष्ट्रीय उत्पत्ति का भिन्न सामाजिक वर्गों—श्रमिकों, व्यापारियों, पूँजीपतियों, भूस्वामियों इत्यादि—के मध्य उचित तथा समानतापूर्ण वितरण होना चाहिये।

अर्थशास्त्र संस्थापकों का कहना था कि समाज में उपरोक्त तीनों मौलिक बातें आर्थिक स्वतन्त्रता व पूर्ण प्रतियोगिता के अनुकूल वातावरण के अन्तर्गत ही विद्यमान हो सकती थीं। संक्षेप में इस का अर्थ यह है कि अर्थशास्त्र संस्थापक राज्य हस्तक्षेप को अनावश्यक तथा समाज की आर्थिक समृद्धि के हितों के लिये घातक समझते थे। अर्थशास्त्र संस्थापकों की इस दूषित विचारधारा के विपरीत रोडबर्टस का कहना था कि बिना राज्य हस्तक्षेप के केवल आर्थिक स्वतन्त्रता व पूर्ण प्रतियोगिता के द्वारा समाज में उत्पादन को इष्टतम स्तर पर रखना तथा वितरणिय न्याय (distributive justice) की अवस्था को स्थापित करना सम्भव नहीं था। १६ वीं शताब्दी का इतिहास इस सत्य को भली प्रकार सिद्ध करता था कि पूर्ण प्रतियोगिता तथा आर्थिक स्वतन्त्रता के अन्तर्गत उत्पादन न तो सदा सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार ही होता है तथा न समाज के भिन्न वर्गों के मध्य राष्ट्रीय आय का उचित तथा न्यायपूर्ण ढंग से वितरण ही होता है क्योंकि उपस्थित वर्ग संघर्ष समाज में ऐसा न होने के पक्ष में एक स्पष्ट प्रमाण था। स्मिथ का यह पूर्ण विश्वास था कि समाज की अर्थ व्यवस्था में स्वयं सचालकता का गुण होना है। परन्तु स्मिथवादी इस मिथ्या (myth) के विपरीत रोडबर्टस का कहना था कि स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था में स्वयं सचालकता के गुण का भारी अभाव था तथा अर्थव्यवस्था को सन्तुलित अवस्था में रखने के लिये राज्य हस्तक्षेप अनिवार्य था। रोडबर्टस ने यह स्पष्ट किया कि ऐसी स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था में, जहां आर्थिक क्षेत्र में राज्य हस्तक्षेप शून्य होता है, सदा श्रमिकों का पूँजीपति नियोक्ताओं द्वारा असीमित मात्रा में शोषण होता है जो कुछ समय पश्चात वर्ग संघर्ष तथा आर्थिक संकटों की घटनाओं को जन्म देकर समाज की शान्ति व आर्थिक समृद्धि के लिये घातक सिद्ध होता है। इस प्रकार रोडबर्टस ने समाज में वितरणिय न्याय को स्थापित करने तथा समाज को आर्थिक संकटों के भयानक रोग से मुक्त रखने के उद्देश्य से आर्थिक क्षेत्र में राज्य हस्तक्षेप की नीति का समर्थन किया। राज्य हस्तक्षेप की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुये रोडबर्टस ने लिखा है कि संसार का "कोई भी राज्य ऐसा भाग्यशाली नहीं है कि वहाँ समाज

को आवश्यकताओं की पूर्ति केवल प्राकृतिक नियमों के द्वारा सम्भव हो सकी है। राज्य के अगो का विकास स्वयं नही होता है। इन का विकास तो आवश्यकता के अनुसार राज्य द्वारा किया जाता है।" रोडब्रटस के लिये राज्य तथा समाज की कल्पना केवल एक साथ ही की जा सकती थी।

रोडब्रटस की आर्थिक विचारधारा की दो प्रमुख विशेषताये है। प्रथम, रिकार्डो के समान रोडब्रटस के विचारानुसार भी श्रम उत्पादन का एकमात्र साधन था। दूसरे, उन का विश्वास था कि राष्ट्रीय उत्पादन का जो हिस्सा श्रमिक को वेतनों के रूप मे प्राप्त होता है उस मे गिरने अथवा कम होने की प्रवृति थी। यह विचार रोडब्रटस के वेतन के जीवन निर्वाह सिद्धान्त मे विश्वास करने का परिणाम था।

प्रथम विचार के अनुसार समाज मे केवल श्रम ही आर्थिक वस्तुओं के, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से, उत्पादन का एकमात्र स्रोत था। रोडब्रटस का कहना था कि केवल उन्ही वस्तुओं को आर्थिक वस्तु कहा जा सकता था जिन का उत्पादन श्रम के द्वारा किया गया है तथा अन्य सभी वस्तुये प्राकृतिक अथवा स्वतन्त्र (natural or free) वस्तुयें थी। श्रम को आर्थिक वस्तुओं के उत्पादन का एकमात्र साधन स्वीकार करने के अतिरिक्त रोडब्रटस का यह भी कहना था कि राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि होती रही है तथा यह वास्तविकता भी थी। परन्तु जब कि एक ओर तो राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि हुई थी, रोडब्रटस का कहना था कि श्रमिको की वेतन दरे पहले के समान अब भी उन के जीवन निर्वाह स्तर पर स्थिर थी। दूसरे शब्दों मे इस का अर्थ यह है कि बढते हुये राष्ट्रीय उत्पादन के साथ-साथ श्रमिको का इस बढते हुये राष्ट्रीय उत्पादन मे हिस्सा यथास्थिर ही रहा है। ऐसा होने के कारण श्रमिकों का राष्ट्रीय लाभांश मे सापेक्ष हिस्सा (relative share) कम हो गया है। राष्ट्रीय लाभांश का इस प्रकार वितरण सामाजिक न्याय के सिद्धान्त के प्रतिकूल था।

इस का अर्थ यह नही है कि वेतनों मे निरपेक्ष रूप से कोई वृद्धि नही होती है। मजदूरी की निरपेक्ष दरों मे वृद्धि होते हुये भी राष्ट्रीय लाभांश का जो हिस्सा श्रमिकों को प्राप्त होता है वह कुल राष्ट्रीय लाभांश के प्रतिशत के रूप मे निरन्तर कम होता जाता है। ऐसा इसलिये होता है कि श्रमिकों को बढते लाभांश का उचित से कम हिस्सा प्राप्त होता है।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि यद्यपि आर्थिक विकास के साथ-साथ अर्थव्यवस्था मे उत्पत्ति मे वृद्धि होती है परन्तु श्रमिको के लिये यह बढती हुई उत्पत्ति निषिद्ध फल (forbidden fruit) के समान होती है क्योंकि उन की मजदूरी सदा के लिये जीवन निर्वाह स्तर पर स्थिर रहती है। इस प्रकार स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था मे औद्योगीकरण के फलस्वरूप वितरणीय अन्याय पूँजीपति के पक्ष मे तथा गरीब श्रमिको के विपक्ष मे होने के कारण पूँजीपति के धन तथा श्रमिकों की गरीबी के मध्य की खाई का आकार कम न होकर निरन्तर बढता रहता है। एक ओर तो

धनी अधिक धनी बनते जाते है तथा दूसरी ओर दरिद्र श्रमिक अधिक दरिद्रता की दलदल मे फसते चले जाते है। यह प्रवृत्ति समाज मे आर्थिक असमानताओ, वर्ग सघर्ष, कम उपभोग (underconsumption) तथा अत्युत्पादन (overproduction) की गम्भीर घटनाओ को जन्म देकर समाज की अर्थव्यवस्था को अस्तव्यस्त करके आर्थिक विकास व समृद्धि के लिये घातक सिद्ध होती है।

यहाँ स्वभाविक प्रश्न यह उठता है कि समाज को उपरोक्त बुराईयो से किस प्रकार मुक्त रखा जा सकता है ? बिना किसी सकोच के रोडब्रटस राज्य हस्तक्षेप के पक्ष मे अनुरोध करते हैं। रोडब्रटस का कहना था कि राष्ट्रीय लाभाश का समाज मे समानतापूर्ण ढग मे वितरण करना ही समाज को वर्गसघर्ष, आर्थिक असमानताओ अत्युत्पादन व कम उपभोग आदि घटनाओ से मुक्त करने का एकमात्र उपाय था। परन्तु यह समाज के आर्थिक जीवन मे राज्य हस्तक्षेप के द्वारा ही सम्भव हो सकता था। समाज के आर्थिक जीवन मे राज्य-हस्तक्षेप के बिना समाज मे विप्लव व व्यग्रता (chaos and confusion) की समस्या स्वाभाविक परिणाम के रूप मे विद्यमान होगी। सक्षेप मे इनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि समाज मे स्थाई आर्थिक शान्ति बनाये रखने तथा वर्गसघर्ष की समस्या पर विजय प्राप्त करने के लिए राज्य द्वारा आर्थिक क्षेत्र मे हस्तक्षेप अनिवार्य था। राज्य का कर्तव्य था कि उद्योगो के उचित नियमन व नियत्रण के द्वारा समाज मे उत्पत्ति के साधनो के इष्टतम उपयोग को सम्भव बनाकर समाज मे रोजगार के इष्टतम स्तर की स्थिति को स्थापित करे तथा श्रमिकों की वेतन दरो को राष्ट्रीय लाभाश की मात्रा से सम्बन्धित करके श्रमिको, भूस्वामियों, व्यापारियो व पूँजीपतियों के मध्य वितरणिय न्याय (distributive justice) करे क्योंकि ऐसा करने से ही शोषण व वर्गसघर्ष पर स्थायी विजय प्राप्त की जा सकती थी।

समाज मे राष्ट्रीय आय के वितरण पर अपने विचार व्यक्त करते हुए रोडब्रटस का कहना है कि राष्ट्रीय आय, जिस मे वे सभी आर्थिक वस्तुये सम्मिलित होती हैं जो जीवन के लिए प्रत्यक्षरूप मे महत्वपूर्ण होती हैं, का विभाजन वेतन तथा लगान के रूप मे दो भागों मे होता है। लगान का पुन विभाजन भूलगान तथा पूँजी लगान मे होता है। रोडब्रटस के विचारानुसार लगान के उत्पन्न होने के दो मुख्य कारण हैं। प्रथम, लगान के उत्पन्न होने का यह कारण है कि श्रमिक अपने जीवन निर्वाह सामग्री से अधिक उत्पादन करते हैं। यह वेशी उत्पादन भूस्वामियो व पूँजीपतियोको लगान के रूप मे प्राप्त होता है। दूसरे, भूमि तथा पूँजी के निजी सम्पत्ति होने के कारण भूस्वामी तथा पूँजीपति श्रमिकों का शोषण करके उनसे इस वेशी उत्पादन को छीन लेते है। रोडब्रटस के ये विचार सिसमोन्डी, प्रोधो व सेंट साइमनवादियो के विचारो मे मिलते जुलते है।

उपरोक्त विचारो से यह निष्कर्ष निकलता है कि समाज मे अधिकांश व्यक्तियो को अपने परिश्रम के फलों के उपभोग से वचित रहना पडता है तथा इन

फलो के उपभोग का अवसर समाज के थोडे से व्यक्तियो को, जो श्रमिको का शोषण करने मे सफल होते हैं, ही प्राप्त होता है । वह अवस्था जो इस भयानक स्थिति को जन्म देती है निजी सम्पत्ति की संस्था है । रोडबर्टस का कहना है कि आर्थिक विकास व स्थाई सामाजिक प्रगति के हित मे इस स्थिति मे पर्याप्त सुधार करना अनिवार्य है । इस सबन्ध मे रोडबर्टस का सबसे अधिक महत्वपूर्ण व उपयोगी योगदान यह है कि उन्होने वितरणिय न्याय (distributive justice) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है ।

रोडबर्टस का आर्थिक सकटों का प्रसिद्ध सिद्धान्त भी वितरणिय न्याय के विचार पर आधारित है। रोडबर्टस के विचारानुसार समाज मे आर्थिक सकटो के विद्यमान होने का प्रमुख कारण यह था कि वेतनो के गिरने के कारण श्रमिको, जो समाज की जनसख्या का घना भाग होते है, की क्रयशक्ति कम होती है । परिणामस्वरूप श्रमिकों—दूसरे शब्दों मे अधिकाश समाज को—विवश होकर आवश्यकता मे कम उपभोग करने के लिए बाध्य होना पडता है । इस प्रकार बाजार मे वस्तुओं का क्रय उतनी अधिक मात्रा मे सभव नही हो पाता है जितनी अधिक मात्रा मे यह होनी चाहिए ताकि समाज मे अत्युत्पादन की घटना उत्पन्न न हो । इस प्रकार समाज मे एक ओर तो कम उपभोग तथा दूसरी ओर अत्युत्पादन की दो विपरीत व भ्रमात्मक घटनाये उपस्थित हो जाती हैं, क्योकि ऐसी अवस्था मे जब समाज मे करोडो व्यक्ति भूख से पीडित हो, जब देश मे अधिकाश अर्धनग्न जनसख्या मानव सभ्यता के विकास की मिथ्या को स्पष्ट करती हो, अत्युत्पादन की घटना सामाजिक दृष्टिकोण से केवल एक कल्पना ही हो सकती है । रोडबर्टस का आर्थिक सकटो का सिद्धान्त सरल तथा स्पष्ट है तथा समाज को इन सकटो से मुक्त रखने का उपाय भी बडा सरल तथा सीधा है—बढते हुए राष्ट्रीय लाभाश मे श्रमिको का हिस्सा भी बढना चाहिए । रोडबर्टस के आर्थिक घटनाओं के सिद्धान्त को निम्न प्रकार समझाया जा सकता है ।

मजदूरी श्रमिको के जीवन निर्वाह स्तर पर स्थिर है ।	——→	इसका परिणाम यह होना है कि राष्ट्रीय लाभाश मे वृद्धि होने पर भी श्रमिको का हिस्सा यथास्थिर रहता है ।	——→	इसके परिणामस्वरूप श्रमिको की क्रय-शक्ति कम हो जाती है ।
				↓
मिलो को उत्पादन कम अथवा समाप्त करना पडता है तथा श्रमिको को बेरोज-गारी का सामना करना पडता है । इससे उनकी मजदूरी तथा क्रयशक्ति और अधिक कम हो जाती है तथा बाजार मे माँग और अधिक कम हो जाती है ।	←——	बाजार मे वस्तुओ का क्रय कम होने से मदी तथा बिना बिकी वस्तुओ की घटना उत्पन्न हो जाती है ।	←——	श्रमिको को कम उपभोग करने पर विवश होना पडता है ।

रोडब्रटस के आर्थिक संकटों की घटना के इस विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि इस घटना को समाप्त करने का एकमात्र उपाय यह है कि समाज में राष्ट्रीय आय का वितरण सामाजिक न्याय के अनुसार किया जाना चाहिये। परन्तु यह निजी सम्पत्ति का सामाजीकरण करके ही सम्भव हो सकता था। इस प्रकार रोडब्रटस के विचारानुसार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि निजी सम्पत्ति का सामाजीकरण समाज की सभी आर्थिक समस्याओं—वर्गसंघर्ष, आर्थिक संकट (economic crises) असमान वितरण—का रामबाण है।

परन्तु इस सम्बन्ध में प्रश्न यहाँ यह उत्पन्न होता है कि निजी सम्पत्ति का सामाजीकरण किस प्रकार किया जा सकता है? इसको क्रान्तिकारी (revolutonary) तथा उद्विकासकारी (evolutionary) विधियों के द्वारा किया जा सकता था। निजी सम्पत्ति के सामाजीकरण की प्रथम विधि—क्रान्तिकारी विधि—मार्क्सवादी विधि है तथा रोडब्रटस सामाजिक परिवर्तन की इस विधि को अपनाने के पक्ष में नहीं थे। वे सम्पत्ति का सामाजीकरण उद्विकासकारी विधि के द्वारा करना चाहते थे क्योंकि सामाजिक परिवर्तन की यह विधि शान्तिमय थी तथा इसके द्वारा सम्पत्ति के सामाजीकरण के लक्ष्य को समाज की अर्थव्यवस्था को अस्तव्यस्त किये बिना प्राप्त किया जा सकता था। रोडब्रटस का कहना था कि इतिहास इस बात का साक्षी है कि उद्विकासकारी विधि के द्वारा सम्पत्ति का सामाजीकरण हो सकता था। रोडब्रटस का कहना था कि इतिहास से विकास की तीन महान् अवस्थाओं का पता चलता है। प्रथम अवस्था में, जो प्राचीन काल में विद्यमान थी, मनुष्यों का श्रमिकों पर सम्पत्ति के समान अधिकार था तथा श्रमिकों—दासों—को वस्तुओं के समान खरीदा तथा बेचा जाता था। इस अवस्था में भूस्वामी श्रमिकों का शोषण करना अपना अधिकार समझते थे। विकास की दूसरी अवस्था, जो वर्तमान में उपस्थित है, में भूमि तथा पूँजी व्यक्तिगत निजी सम्पत्ति है तथा इनके स्वामियों को लगान के रूप में बिना परिश्रम किये आय प्राप्त होती है। विकास की तीसरी अवस्था, जो भविष्य में विद्यमान होगी में भूमि व सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण होगा तथा श्रम निजी सम्पत्ति का आधार होगा। रोडब्रटस का विश्वास था कि लगभग ५०० वर्ष पश्चात् (आज से लगभग ४०० वर्ष पश्चात्) इस अवस्था का श्रीगणेश होगा। रोडब्रटस के इन विचारों के ध्यानपूर्वक अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि वे सामाजिक संस्थाओं की सापेक्षता (relativity)—समय से परिवर्तन होने के साथ-साथ सामाजिक संस्थाओं में भी परिवर्तन होता है—में विश्वास रखते थे।

रोडब्रटस की सुधार योजनायें

रोडब्रटस का समाजवाद मार्क्स के समाजवाद के समान नहीं था जिसको क्रान्ति के द्वारा शीघ्र तथा निकट भविष्य में प्राप्त किया जा सकता था। परिवर्तन की उद्विकासकारी विधि की गति धीमी होती है। उनके समाजवाद की स्थापना

दीर्घकालीन युग की समस्या थी। इसकी स्थापना में ६ शताब्दियों का लम्बा समय लगता था। परन्तु समाज मे श्रमिको की दरिद्रता व शोषण की समस्याएँ तो तत्कालीन समस्याएँ थी। श्रमिको की आर्थिक स्थिति मे सुधार करने के उद्देश्य से रोडब्रटस ने श्रमिको की राष्ट्रीय आय के हिस्से मे वृद्धि करने का अनुरोध किया। इस सम्बन्ध मे उन्होने श्रम संविदा (Labour Contract) का राज्य द्वारा नियमन करने का सुझाव दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने श्रमिकों के प्रतिदिन काम के सामान्य घन्टो तथा काम की मात्रा का श्रम नियमो द्वारा नियमन करने का भी सुझाव दिया। रोडब्रटस वेतन वस्तुओं (wage goods) की कीमतो के भी राज्य द्वारा निर्धारित करने के पक्ष मे थे।

रोडब्रटस का समाजवाद के विकास मे भारी योगदान है। अपने जर्मन अनुयायियों—विशेषरूप से एडोल्फ वागनर तथा फर्डिनेन्ड लसाले—के लिये उनके विचार विद्वान के विचारो के समान थे। वे क्रान्ति में विश्वास नही रखते थे और यही कारण था कि मार्क्स, जो अपने जीवन मे समाज मे समाजवाद को स्थाई रूप से स्थापित करने के लिये आतुर था, के लिये रोडब्रटस के विचारो की कोई उपयोगिता नही थी।

फर्डिनेन्ड लसाले (१८२५ ई०–१८६४ ई०)
(Ferdinand Lassalle)

रोडब्रटस तथा वागनर के अतिरिक्त राज्य समाजवाद के तीसरे प्रमुख नेता जर्मन अर्थशास्त्री फर्डिनेन्ड लसाले थे जिनको जर्मन समाजवाद का प्रमुख प्रचारक कहा जाता है। लसाले का जन्म जर्मन यहूदी परिवार मे १८२५ ई० मे हुआ था। उनकी शिक्षा ब्रेसलो (Breslau) तथा बर्लिन मे हुई थी। उनकी पुस्तके, जिनमे १८६१ ई० मे प्रकाशित पुस्तक **The System of Acquired Rights** उल्लेखनीय है, उनके पाण्डित्य का प्रतीक है। प्रसिद्ध साम्यवादी नेता कार्ल मार्क्स के गहरे सम्पर्क मे आने तथा १८४८ ई० मे प्रकाशित **Communist Manifesto** से प्रभावित होने के कारण आरम्भ मे वे मार्क्सवादी थे। परन्तु मार्क्स से उनका कुछ बातो मे गहरा मतभेद था। उनके भाषणो मे भी, जो वे श्रमिकों के दलो के बीच करते थे, मार्क्स की विचारधारा के गहरे चिन्ह विद्यमान थे।

लसाले ने रिकार्डो के वेतन सिद्धान्त को स्वीकार किया था। उन्होने यह स्पष्ट किया कि एक ओर तो श्रमिको को इतना कम वेतन प्राप्त होता है कि वह केवल उनके जीवन निर्वाह के लिये भी मुश्किल से काफी हो पाता है, परन्तु दूसरी ओर पूँजीपति नियोक्ता को शेष सारा उत्पादन प्राप्त हो जाता है लसाले ने अपने इस विचार का प्रचार मजदूरी के लोह सिद्धान्त—Iron Law of Wages—के के द्वारा किया।

यद्यपि लसाले मार्क्स से समाजवादी मूल्य व वेतन सिद्धान्तो पर सहमत थे परन्तु समाज मे राज्य का क्या महत्व होना चाहिये, इस विषय पर दोनो मे भारी मतभेद था। वे श्रमिकों के संघो को स्थापित करके उनको पूँजीपतियो के शोषण से मुक्त कराना चाहते थे। उनका विचार था कि श्रमिको के सघो (associations) के द्वारा ही श्रमिको को उनकी कुल उत्पादकता का फल प्राप्त हो सकता था। लसाले ने श्रमिको को यह उपदेश दिया कि वे स्वय राज्य थे तथा इस कारण कार्य कर सकते थे। वे मार्क्स के इस विचार से सहमत नही थे कि एक बार श्रमिको की तानाशाही स्थापित हो जाने के पश्चात् राज्य को समाज कल्याण के हित मे उत्पादन व वितरण को स्वय अपने हाथो मे रखना चाहिये।

लसाले का योगदान समाजवादी सिद्धान्त के क्षेत्र मे न होकर समाजवादी क्रिया के क्षेत्र मे था। उन्होने जर्मनी मे श्रमिक सघो को स्थापित करने मे भारी योगदान दिया। वे General Association of German Workers, जिसकी इकाइयाँ जर्मनी के सभी बड़े नगरो मे स्थापित थीं, के संस्थापक थे। इसी आन्दोलन के फलस्वरूप जर्मनी मे Social Democratic Party का जन्म हुआ था। इस प्रकार जर्मनी में इस दल को सस्थापन करने का श्रेय लसाले को ही था। लसाले की मृत्यु १८६४ ई० मे द्वन्द्वयुद्ध (duel) के परिणामस्वरूप उस समय हुई थी जब वे अपनी प्रसिद्धि के शिखर पर थे।

विशेष अध्ययन सूची

1. Gide and Rist — A History of Economic Doctrines, Book IV Chapter, II
2. J. F Bell : A History of Economic thought, Chapter, 17
3. L H Haney — History of Economic Thought, Chapter, XXIV
4. J M. Ferguson — Landmarks of Economic Thought, Chapter, XV, pp 211-212.

प्रश्न

1 Give a brief account of the socialist forerunners of Karl Marx

(अलीगढ़, १९५७)

2. Why is Rodbertus called the 'Ricardo of Socialism' ? What has been his contribution to economic thought ?

(आगरा, १९४९, १९६१)

3 Rodbertus has been called 'Ricardo of Socialism'. What do you understand by this phrase and to what extent do you agree with the views expressed by Rodbertus on State Socialism ?

(आगरा, १९५३)

अध्याय २४

कार्ल मार्क्स

(Karl Heinrich Marx)

यदि आज एडम स्मिथ को अर्थशास्त्र का जनक स्वीकार किया जाता है तो कार्ल मार्क्स[1] को समाजवाद आन्दोलन का प्रभावशाली नेता तथा मार्क्सवाद का प्रवर्तक कहा जा सकता है। समाजवाद के सम्पूर्ण इतिहास मे विचारको व

---

1. मार्क्सवादी समाजवाद के प्रवर्तक कार्ल मार्क्स का जन्म राहिनलैंड जर्मनी (Rhineland, Germany) मे Coblenz नामक स्थान के समीप Treves नामक स्थान मे ५ मई, १८१८ ई० मे एक यहूदी परिवार मे हुआ था। जब मार्क्स की आयु ६ वर्ष की थी तो उनके माता पिता ने यहूदी मत का परित्याग करके ईसाई धर्म को अपना लिया था। वे आरम्भ से ही बहुत होनहार तथा देदीप्यमान बालक थे। स्थानीय स्कूलों मे प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने १८३५ ई० मे बौन विश्वविद्यालय (Bonn University) मे विधि शास्त्र (Jurisprudence) का अध्ययन करने के लक्ष्य से प्रवेश किया। परन्तु यहाँ वे केवल एक वर्ष ही रहे तथा १८३६ ई० मे बर्लिन विश्वविद्यालय मे प्रवेश किया। यहाँ रह कर उन्होंने अपना अध्ययन कार्य आरम्भ किया। बर्लिन विश्वविद्यालय उस समय हीगल केदर्शनशास्त्र के अध्ययन के लिये प्रसिद्ध था तथा मार्क्स पर इसका काफी गहरा प्रभाव पड़ा। मार्क्स ने १८४८ ई० मे जेना विश्वविद्यालय (University of Jena) से अपनी डाक्ट्री की उपाधि प्राप्त की।

यद्यपि मार्क्स को यह आशा थी कि उनकी बौन (Bonn) मे शिक्षण कार्य पर नियुक्ति हो जायेगी परन्तु ऐसा न होने के कारण वे Cologne मे **Rheinische Zeitung** नामक पत्रिका के सम्पादक बन गये। दुर्भाग्यवश यह पत्रिका जो जनवरी १८४२ ई० मे शुरू की गई थी तथा जिसकी उदार विचारधारा थी, उस समय की परिवर्तन विरोधी (Conservative) सरकार द्वारा मार्च १८४३ ई० मे बन्द कर दी गई। इसी बीच मे उन्होंने Jenny von Westphalen नामक एक महिला सभासद (quakeress) से विवाह कर लिया था।

अक्टूबर १८४३ ई० मे मार्क्स पैरिस चले आये। यहाँ आकर वे फ्रान्सीसी-जर्मन वार्षिक सूचना पुस्तक (Franco-German Year-book)

लेखकों की सूची में कार्ल मार्क्स का प्रथम स्थान है। वास्तविकता तो यह है कि सभी समाजवादी, विशेषरूप से मार्क्सवादी समाजवादी, मार्क्स को अपना पैगम्बर मानते हैं तथा उनके लिये मार्क्स की विचारधारा धर्म तथा मार्क्स की प्रसिद्ध पुस्तक **'Das Capital'** मान्यिय धार्मिक ग्रन्थ के समान है। यह सत्य है कि मार्क्स १६ वी

के सम्पादक बन गये। परन्तु भाग्य ने यहाँ भी उनका साथ नही दिया। प्रथम वर्ष मे प्रथम अक के प्रकाशित होने के पश्चात् इस साहसिक कार्य का भी अन्त हो गया। वार्षिक सूचना पुस्तक मे एक लेख लिखने के कारण मार्क्स की जान पहचान फ्रेड्रिक एगिल्स (Friedrich Engels) से हुई थी तथा यही जान पहिचान दोनो पुरषो के मध्य जीवन मित्रता का कारण बनी। वार्षिक सूचना पुस्तक में मार्क्स ने एक लेख लिखा था जिसका शीर्षक 'Introduction to a Critique of the Hegelian Philosophy of Right' था। इसी बीच मार्क्स ने हीगल के मूल दर्शनशास्त्र का परित्याग करके इतिहास को अपने दर्शनशास्त्र का आधार बनाया। इसके अतिरिक्त मार्क्स ने पुराने धार्मिक विचारो की भी आलोचना की। धर्म की आलोचना करते हुये मार्क्स ने अपने लेख मे इस प्रकार लिखा था। "Religion is the sigh of the oppressed creature, the feelings of a heartless world, just as it is the spirit of unspiritual condition. It is the opium of the people."

हीगलवादी दर्शनशास्त्र की आलोचना करने के अतिरिक्त मार्क्स ने श्रमिको की दशा में सुधार करने तथा उनको प्रतिकारी शक्तियो से मुक्त करने के उद्देश्य से क्रान्तिकारी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। पेरिस मे *मार्क्स का सम्पर्क कैरट, प्रोधो तथा समाजवादी आन्दोलनो के अन्य नेताओ* से हुआ। पेरिस मे रहना एक प्रकार से मार्क्स के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ क्योकि यहाँ पर रह कर उन्होने समाजवाद के विषय में बहुत ज्ञान प्राप्त किया। परन्तु शीघ्र ही उनको अपनी क्रियाओ के कारण पेरिस छोड़ना पड़ा। पेरिस से भाग कर वे ब्रुसेल्स (Brussels) आ गये जहाँ पर वे १८४८ ई० की क्रान्ति आरम्भ होने के समय तक रहे।

ब्रुसेल्स से भी मार्क्स को सरकारी अधिकारियों ने निर्वासन का आदेश दिया। ब्रुसेल्स छोड़कर मार्क्स पेरिस आये जहाँ थोड़े से समय के लिये रहने के पश्चात वे राइनलैंड में Cologne नामक नगर में चले आये। Cologne में उस समय बलवे हो रहे थे। यहाँ मार्क्स ने **Neue rheinische Zeitung** नामक क्रान्तिकारी पत्रिका चालू की। परन्तु यहाँ भी सफलता मार्क्स से दूर थी तथा पत्रिका केवल एक वर्ष तक ही जीवित रह सकी। यहाँ से पुलिस के डर से भाग कर वे जून, १८४९ ई० मे पेरिस आये। पेरिस आते ही मार्क्स को फ्रांसीसी सरकार ने ग्रामीण ब्रीटेनी (Brittany) को देश निकाला दे दिया। यहाँ से मार्क्स लन्दन चले आये तथा वहाँ वे अपने जीवन के शेष वर्षों तक रहे।

शताब्दी के एक प्रसिद्ध तथा प्रथम श्रेणी के विचारक तथा लेखक थे। स्मिथ की प्रसिद्ध पुस्तक **Wealth of Nations** के समान मार्क्स की **'Das Capital'** नामक पुस्तक की गिनती भी ससार के उच्च कोटि के ग्रन्थो मे की जाती है।

मार्क्स तथा मार्क्सवाद पर काफी साहित्य लिखा गया है तथा रिकार्डो के समान मार्क्स के विचार भी कडे वादविवाद का विषय रहे है। समाजवादियो के मार्क्सवादी सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक होने के अतिरिक्त मार्क्स को मार्क्स-पश्चात् समाजवाद (Post-Marxian Socialism) का प्रेरक बनने का भी श्रेय प्राप्त है क्योकि मार्क्स के पश्चात समाजवाद के क्षेत्र मे जो भी प्रगति हुई है—चाहे वह मार्क्स की आलोचनाओ के रूप मे हुई है तथा चाहे वह मार्क्स के विचारो के समर्थन के रूप मे हुई है—उसका कारण प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मार्क्स की विचारधारा है।

ससार मे सभी महान पुरषो के विचार आलोचनाओ का विषय रहे है तथा मार्क्स के विचार भी इस नियम के अधीन है। परन्तु आलोचको की आलोचनाओ से सभी महान विचारकों की विचारधारा के समान मार्क्स की विचारधारा को भी

लन्दन मे तीन दशाब्दियो से अधिक का समय मार्क्स के जीवन का सबसे अधिक रचनात्मक समय सिद्ध हुआ। लन्दन मे रह कर उनका अधिकाश समय British Museum के पुस्तकालय मे अन्वेषण (Research) कार्य मे व्यतीत हुआ। यद्यपि मार्क्स **New York Tribune** पत्रिका के लिये लेख लिखते थे परन्तु इस स्रोत से प्राप्त आय उनके परिवार की आवश्यकता के लिये बहुत कम तथा अनियमित थी। उनके जीवन व परम मित्र एंगिल्स नियमित रूप से उनको वार्षिक वित्तिय सहायता देते रहते थे। अपने मित्र की यह सहायता ही मार्क्स व उनके परिवार को भूखो मरने से बचाने मे सहायक सिद्ध होती थी। १८६७ ई० मे मार्क्स की युग-निर्माणी (epoch-making) प्रसिद्ध पुस्तक **'Das Capital'** का प्रथम खण्ड प्रकाशित हुआ था। इस पुस्तक के लिये मार्क्स ने अपना सब कुछ त्याग कर दिया था। यह पुस्तक मार्क्स के लगभग तीस वर्ष के कडे परिश्रम व अन्वेषण का परिणाम थी। यह पुस्तक मार्क्स की विद्वानता का प्रमाण थी। इस पुस्तक के दूसरे व तीसरे खण्डो का सम्पादन मार्क्स के परम मित्र एँगिल्स ने किया था तथा ये मार्क्स की मृत्यु के पश्चात् क्रमश. १८८५ ई० तथा १८९४ ई० मे प्रकाशित हुये थे।

मार्क्स के मित्र बहुत कम थे। सम्भवत उनके परिवार से बाहर केवल एंगिल्स ही उनके पक्के मित्र थे। स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण (वैसे तो उनको स्वास्थ्य कभी भी अच्छा नही था)। उनकी १४ मार्च १८८३ ई० में मृत्यु हो गई तथा उनको Highgate के कब्रिस्तान मे दफ़न कर दिया गया। केवल आठ व्यक्तियो की उपस्थिति मे अन्तिम सस्कार वक्तृता (Funeral Oration) मार्क्स के परममित्र एंगिल्स ने दिया।

शक्ति तथा प्रसिद्धि प्राप्त हुई है तथा आज मार्क्स तथा उनके विचारों पर आधारित मार्क्सवाद पहले की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ है।

मार्क्स पर प्रभाव डालने वाला वातावरण

मार्क्स स्वयं एक ऐसे असाधारण युग मे रहे थे जो समस्त यूरोप तथा विशेषरूप मे जर्मन इतिहास मे अशान्ति व विप्लवों का युग था। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप इगलैंड, फ्रास, जर्मनी तथा अन्य यूरोपीय देशों मे धन तथा दरिद्रता की प्रचुरता विद्यमान थी। मार्क्स स्वय इस सत्य के दर्शक थे कि पूँजीवाद के अनियमित विकास के परिणामस्वरूप समाज मे निम्न (Proletariat) तथा उच्च (bourgeosie) श्रेणियो के दो पारस्परिक विरोधी वर्ग उत्पन्न हो गये थे। एक ओर तो करोडो की सख्या मे दरिद्र श्रमिक थे जिनको दो समय पेट भर खाना तथा रहने के लिये स्थान प्राप्त था तथा दूसरी ओर थोडे से वे भाग्यशाली व्यक्ति थे जिनके पास धन की प्रचुरता थी। समाज मे इन पारस्परिक विरोधी वर्गों की उपस्थिति पूँजीवाद के लिये घातक सिद्ध होगी। मार्क्स का यह दृढ विश्वास था कि पूँजीवाद स्वय अपने नाश को जन्म देता है क्योकि समाज मे करोडो दरिद्र असीमित समय तक दरिद्रता जो उन पर पूँजीपतियो के शोषण का अभिशाप था, को सहन नही कर सकते थे। पूँजीवादी समाज मे सामाजिक उद्विकास के साथ आर्थिक क्रान्ति अनिवार्य थी। करोडो दरिद्र इस सत्य का प्रतीक थे कि अनियन्त्रित स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था (Laissez faire economy) के अन्तर्गत मनुष्य मनुष्य का शोषण करता है तथा दरिद्रता व आर्थिक दुर्गति इस शोषण का स्वाभाविक परिणाम थे। श्रमिको की बढती दरिद्रता स्वय प्रचलित पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के लिये एक घातक आक्रमण सिद्ध होगा।

मार्क्स स्वय फ्रास मे हुई १८४८ ई० की प्रसिद्ध क्रान्ति के दर्शक थे। इसका भी मार्क्स की विचारधारा पर गहरा प्रभाव पडा था। इसके अतिरिक्त मार्क्स की स्वय आपबीती बातो का भी मार्क्स के विचारों पर प्रभाव पडा था। जिस समाज ने स्वय मार्क्स को आर्थिक दुर्गति का सामना तथा अनुभव करने पर विवश कर दिया था, ऐसे पूँजीवादी समाज के प्रति मार्क्स कभी भी सहानुभूति प्रकट नही कर सकते थे।

मार्क्स के कुछ अङ्गरेज समाजवादी पूर्वाधिकारी

इगलैंड मे कुछ ऐसे लेखक थे जो सस्थापित अर्थशास्त्र के आलोचक थे तथा जिन्होंने रिकार्डो के सिद्धान्तो से समाजवादी निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया था। इन लेखको, जिनमे जॉन ग्रे (John Gray) विलियम थाम्पसन (William Thompson) तथा थोमस हाजस्किन (Thomas Hodgskin) के नाम उल्लेखनीय है, को मार्क्स के विज्ञानवादी समाजवाद का अग्रसर कहा जा सकता है। मार्क्स के समान इन अर्थशास्त्रियो ने भी रिकार्डो के मूल्य के श्रम सिद्धान्त से बेशी मूल्य तथा शोषण के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था। सम्भवत: मार्क्स पर इन अर्थशास्त्रियो के

विचारो का गहरा प्रभाव पड़ा था। जॉन ग्रे ने तो पूँजीवाद की कड़ी आलोचना करते हुये श्रम को ही उत्पादन का स्रोत मात्र घोषित किया था तथा मार्क्स ने ग्रे के विचारों का अध्ययन किया था। अंग्रेज समाजवादी लेखक थामस हाजस्किन की विचारधारा का, ऐसा प्रतीत होता है, मार्क्स के विचारों पर गहरा प्रभाव पड़ा था। हाजस्किन श्रम संघ आन्दोलन के भारी समर्थक थे। उनका कहना था कि श्रम संघों का उद्देश्य अनुत्पादक पूँजीवादी वर्ग से श्रमिकों के अधिकारो के लिये लड़ना था।

मार्क्स का लेखन कार्य

मार्क्स ने अपना लेखन कार्य १८४३ ई० मे वार्षिक सूचना पुस्तक मे एक लेख लिख कर आरम्भ किया था। इस लेख का शीर्षक **'Einleitung zur Kritik des Hegalschen Rechtsphilosophie'** (Introduction to a Critique of Hegel's Philosophy of Rights) था। इस लेख मे इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या (Materialistic Interpretation of history) के चिन्ह विद्यमान थे। १८४४ ई० तथा १८४५ ई० मे मार्क्स ने अपने मित्र एंगिल्स के साथ मिलकर **Die Heilige Familie** (The Holy Family) तथा **Die deutsche Ideologie**' (The German Ideology) नामक दो पुस्तके लिखी थी। १८४७ ई० मे मार्क्स ने प्रोधों की पुस्तक **'Philosophie de la miserre'** (The Philosophy of Poverty), जिस मे प्रोधों ने मार्क्स की विचारधारा की आलोचना की थी, के जवाब मे अपनी **'Misere de la Philosophie'** (The Poverty of Philosophy) नामक पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक मे मार्क्स से प्रोधों के विचारों की आलोचना करते हुए यह स्पष्ट किया था कि प्रोधों के विचार काल्पनिक थे तथा प्रोधो को इतिहास के उद्विकासात्मक प्रभाव व वर्ग संघर्ष के सम्बन्ध मे कोई ज्ञान नही था। इस पुस्तक मे मार्क्स ने यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया था कि सामाजिक उद्विकास तथा आर्थिक क्रान्ति अनिवार्य थी।

जनवरी १८४८ ई० मे मार्क्स तथा एंगिल्स[2] की सम्मिलित पुस्तिका 'Communist Manifesto' प्रकाशित हुई थी। यह पुस्तिका जो लगभग ३० पृष्ठों मे है, समा-

---

2 फ्रेडरिक एंगिल्स (१८२० ई०--१८९५ ई०) कार्ल मार्क्स के परम मित्र तथा हितैषी थे। वे मार्क्स से केवल दो वर्ष छोटे थे तथा उनके पिता एक धनी जर्मन सूती वस्त्र उद्योगपति थे। मार्क्स से उनकी मित्रता पेरिस मे १८४४ ई० मे हुई थी तथा यह मित्रता स्थाई सिद्ध हुई थी। १८४५ ई० मे उनकी **The Condition of the working Class in England** नामक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। १८४८ ई० मे उन्होंने अपने मित्र कार्ल मार्क्स के साथ मिलकर **Communist Manifesto** नामक पुस्तिका लिखी थी। मार्क्स की प्रसिद्ध पुस्तक **Das Capital** के दूसरे तथा तीसरे खण्डो का सम्पादन भी एंगिल्स ने ही किया था। आज मार्क्स के साथ एंगिल्स को भी विज्ञानवादी समाजवाद का प्रवर्तक स्वीकार किया जाता है।

जवादी साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है क्योंकि यह साम्यवादी दल के सिद्धान्तों व व्यावहारिक कार्यक्रम की व्याख्या है। सदा की भांति आज भी प्रत्येक मार्क्सवादी **Das Capital** का अध्ययन करने के पूर्व **Communist Manifesto** का अध्ययन करता है। **Communist Manifesto** का प्रत्येक साम्यवादी के लिये वही महत्व है जो एक मुसलमान के लिये कुरान तथा एक ईसाई के लिये बाइबल (Bible) का महत्व है। यह उनके लिये एक महत्वपूर्ण धार्मिक ग्रन्थ के समान है जो उसके साथ सदैव रहता है। हां, उनमें उसके अध्ययन करने की शक्ति है अथवा नहीं यह बिल्कुल अलग बात है।

तत्पश्चात १८४८ ई० में **'Discours sur la question du libre exchange'** (Discourse upon the Question of Free Exchange); १८५८ ई० में **Zur Kritik der Politischen OeKonomie** (A Contribution to the Critique of Political Economy) नामक पुस्तक तथा १८६७ ई० में प्रसिद्ध पुस्तक **Das Capital** का प्रथम खण्ड प्रकाशित हुआ था। Das Capital का दूसरा तथा तीसरा खण्ड मार्क्स की मृत्यु के पश्चात क्रमशः १८८५ ई० तथा १८९४ ई० में प्रकाशित हुआ था। इन खण्डों का सम्पादन मार्क्स के मित्र एंगिल्स ने किया था।

मार्क्स की यह प्रसिद्ध पुस्तक—Das Capital—अन्य महान ग्रन्थों के समान अनेकों प्रशंसाओं तथा आलोचनाओं का विषय रही है। यदि प्रशंसकों ने इसको विज्ञानवादी समाजवादियों की बाइबल कहा है तो रोडब्रटस के समान आलोचकों ने इस पुस्तक को 'समाज पर आक्रमण' कहकर सम्बोधित किया है। यदि स्मिथ की प्रसिद्ध पुस्तक **Wealth of Nations** वणिकवाद की कड़ी आलोचना है तो मार्क्स की पुस्तक **Das Capital** अनियमित पूंजीवाद को कड़ी चुनौती है। **Das Capital** का लक्ष्य पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली को उलट देना था। यह पुस्तक मार्क्स के क्रान्तिकारी कार्यक्रम की सैद्धान्तिक व्याख्या थी।

क्या मार्क्स मूल (Original) विचारक थे ?

आर्थिक विचारों के इतिहास में कार्ल मार्क्स के विशेष योगदान का आधार उनके विचारों की मौलिकता नहीं है। अपनी पुस्तक **Das Capital** में व्यक्त किये गये आर्थिक विचारों के लिये मार्क्स अपने समाजवादी पूर्वाधिकारियों तथा अर्थशास्त्र संस्थापकों के भारी ऋणी हैं। अर्थशास्त्र के जनक एडम स्मिथ के समान मार्क्स ने भी अपने पूर्वाधिकारियों के विचारों को अपने अर्थशास्त्र की आधारशिला बनाया था। अपनी पुस्तक को लिखने के पूर्व मार्क्स ने लगभग सभी प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों के लेखन कार्यों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया था तथा सभी के विचारों से उन्होंने अपने कार्य के लिये उपयोगी सामग्री प्राप्त की थी। परन्तु अपने पूर्वाधिकारियों के आर्थिक विचारों को मार्क्स ने अपनी बुद्धि का प्रयोग करके एक नया अर्थनिरूपण प्रदान

करके श्रमिक-शोषण की घटना तथा पूंजीवाद के दोषों को अपनी प्रभावशाली भाषा मे व्यक्त किया। यह कार्य मार्क्स के पूर्व अन्य किसी अर्थशास्त्री ने इतनी अधिक स्पष्टता के साथ नही किया था।

मार्क्स अर्थशास्त्र सस्थापको, विशेष रूप से रिकार्डो, के इतने अधिक ऋणी हैं कि प्रो० जीड व रिस्ट ने मार्क्सवाद को सस्थापित अर्थशास्त्र के पेड के तने पर लगाई गई शाखा कहा है। एक प्रकार से यह सत्य भी है क्योंकि मार्क्स के लगभग सभी प्रमुख आर्थिक सिद्धान्तो—विशेष रूप मे मार्क्स का मूल्य का श्रम सिद्धान्त (Labour Theory of Value) तथा वेशी मूल्य (Theory of Surplus Value) का सिद्धान्त—का प्रत्यक्ष स्रोत स्मिथ तथा रिकार्डो का अर्थशास्त्र है। स्मिथ व रिकार्डो से ही मार्क्स ने अपने वर्गसघर्ष सिद्धान्त को प्राप्त किया था। इसी प्रकार अपने आर्थिक सकट के सिद्धान्त (Theory of Economic Crisis) के लिये मार्क्स माल्थस के ऋणी है। यदि मार्क्स को रिकार्डो का शिष्य कहा जाये तो अनुचित न होगा क्योकि मार्क्स के सिद्धान्त रिकार्डो के सिद्धान्तो से आरम्भ होते है। इस महान सत्य के अतिरिक्त मार्क्स ने रिकार्डो मे शास्त्रार्थ (argument) तथा कल्पना (theoris-) करने की कला भी उधार ली है। मार्क्स का मूल्य सिद्धान्त रिकार्डोवादी है।[3] रिकार्डो तथा मार्क्स दोनो का ही यह कहना है कि पूर्ण सन्तुलन व पूर्ण प्रतियोगिता मे प्रत्येक वस्तु का मूल्य उस वस्तु को निर्मित करने मे व्यय हुये श्रम की मात्रा के अनुसार निर्धारित होता है। पूंजीवादी समाज मे औद्योगिकी विकास का विरोध करने मे भी मार्क्स रिकार्डो की मशीनो की आलोचना से प्रभावित हुये थे।

रिकार्डो के अतिरिक्त मार्क्स पर अन्य अर्थशास्त्रियो के विचारो का भी प्रभाव पडा था। प्रसिद्ध प्रकृतिवादी विचारक क्वेसने से मार्क्स ने समाज मे आर्थिक प्रक्रिया (economic process) के मौलिक विचार को प्राप्त किया था। इसके अतिरिक्त जान मिल, सिसमोन्डी, रोडब्रटस, विलियम थोम्पसन तथा अन्य रिकार्डोवादी समाजवादी अर्थशास्त्रियो के लेखन कार्यों के भी मार्क्स ऋणी थे, यद्यपि मार्क्स ने इस ऋण को स्वीकार नही किया है। सिसमोन्डी ने मार्क्स के लिखने के पूर्व यह भली प्रकार स्पष्ट किया था कि पूंजीवाद मे कुछ थोडे से व्यक्तियो—पूंजीपति नियोक्ताओ—के हाथो मे धन के सकेन्द्रण (Concentration) तथा श्रमिको के शोषण की प्रवृतियां उपस्थित होती

---

3. अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो० टासिग (F. W. Taussig) इस विचार से सहमत नही है। उनका कहना है कि रिकार्डो तथा मार्क्स के मूल्य सिद्धान्तो मे काफी अन्तर है। परन्तु यहाँ पर यह कहना उपयुक्त सिद्ध होगा कि दोनो अर्थशास्त्रियो के सिद्धान्तो मे शब्दो, रीति तथा सामाजिक निष्कर्षो के भिन्न होते होते हुये भी दोनो सिद्धान्तो मे श्रम को ही मूल्य का एकमात्र निर्धारक कहा गया है।

है। रोडब्रटस तथा मार्क्स की आर्थिक सकटो की व्याख्याओं मे काफी समानता पाई जाती है।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि मार्क्स के विचारों मे मौलिकता की बहुत अधिक मात्रा नही है तथा इस दृष्टिकोण से मार्क्स का बहुत अधिक योगदान नही है। परन्तु मार्क्स ने अपने पूर्वाधिकारियों के विचारों को एक स्थान पर एकत्र करके इनके आधार पर नवीन क्रान्तिकारी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके समाजवाद को नई शक्ति प्रदान की तथा समाजवादियों के मार्क्सवादी सम्प्रदाय का—जो आज भी जीवित है—सस्थापन किया। मार्क्स की विचारधारा के प्रभाव से ही रूस मे प्रसिद्ध क्रान्ति सम्भव हो पाई थी तथा रूस व चीन तथा यूरोप के अन्य देशों मे साम्यवादी राज्यों की स्थापना हुई है।

मार्क्स के आर्थिक विचार

कार्ल मार्क्स के प्रमुख आर्थिक विचार उनकी प्रसिद्ध पुस्तक **Das Capital** के तीन खण्डो मे पाये जाते हैं। मार्क्स के क्रान्तिकारी कार्यक्रम का लक्ष्य पूँजीवादी उत्पादन प्रथा को उलट देना था। इस लक्ष्य को वास्तविक रूप प्रदान करना ही **Das Capital** का व्यावहारिक लक्ष्य था। पुस्तक का मार्क्स के शब्दों मे उद्देश्य "वर्तमान समाज की गति के आर्थिक नियमों की स्पष्ट व्याख्या करना था।" मार्क्स के आर्थिक विचारों का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत करना उपयोगी सिद्ध होगा।

(१) इतिहास की भौतिकवादी अथवा आर्थिक व्याख्या (Materialistic or Economic Interpretation of History)

(२) द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism)

(३) पूँजीवाद का क्षय तथा सामाजिक क्रान्ति (Collapse of Capitalism and Social Revolution)

(४) धन का सकेन्द्रण (Concentration of Wealth) तथा आर्थिक सकट (Economic Crisis)

(५) मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Value)

(६) बेशी मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Surplus Value)

(१) इतिहास की भौतिकवादी अथवा आर्थिक व्याख्या

मार्क्स के विचारानुसार इतिहास भौतिक अथवा आर्थिक कारणों द्वारा निर्धारित होता है। पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के रूप मे आर्थिक कारण अन्य सभी बातों को निर्धारित करते है। समाज का वह ढाचा जिसमे व्यक्ति रहते है, धर्म कला, कानून तथा साहित्य इत्यादि सभी युग-विशेष की आर्थिक दशाओ, जो स्वयं उत्पादन प्रणाली द्वारा निर्धारित होती है, का परिणाम होते हैं। मार्क्स का कहना

है कि भौतिक जीवन मे उत्पादन प्रणाली जीवन के सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक क्रमो को निर्धारित करती है। सभी सामाजिक संस्थायें, आर्थिक परिस्थितियो, विशेषरूप से उत्पादन प्रणाली, के द्वारा निर्धारित तथा प्रभावित होती है। मार्क्स का दृढ विश्वास था कि उत्पादन की दशाओ का समाज के ढाचे को, जो स्वय समाज मे लोगो की क्रियाओ, मनोवृत्ति, सस्कृति तथा सभ्यता को प्रभावित करता है, निर्धारित करने मे एक विशेष महत्व था। परन्तु यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि किस प्रकार उत्पादन प्रणाली एक विशेष सामाजिक ढाचे को जन्म देती है? मार्क्स ने इसको एक प्रसिद्ध उदाहरण द्वारा समझाने का प्रयास किया है। मार्क्स का कहना है कि "hand-mill" ने सामन्तवादी समाज तथा "steam-mill" ने पूंजीवादी समाज[4] को उत्पन्न किया है। इसका यह अर्थ है कि उत्पादन की प्रविधियो (techniques of production) मे परिवर्तन होने के साथ सामाजिक ढाचे मे भी परिवर्तन होते है। Steam-mill का श्रीगणेश तथा विकास होने के फलस्वरूप नये सामाजिक कार्य तथा स्थितिया, नये वर्ग तथा नये विचार उत्पन्न होते है। इस प्रकार आर्थिक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तनो को जन्म देते है। मार्क्स के विचारानुसार आर्थिक वातावरण सभ्यता को मुख्यत: निर्धारित करता है। किसी भी ऐतिहासिक युग का अध्ययन करने के लिये उस युग की उत्पादन तथा वितरण प्रणालियो का अध्ययन करना अनिवार्य है।

मार्क्स की इतिहास की भौतिकवादी अथवा आर्थिक व्याख्या मे केवल आर्थिक कारणो को ही इतिहास के अध्ययन मे महत्व दिया गया है। इतिहास की ऐसी व्याख्या जिसमे केवल आर्थिक तत्वो को ही महत्व दिया जाता है, अधूरी तथा एक तरफा (one-sided) व्याख्या होती है। किसी भी युग को भली प्रकार समझने के लिये उस युग की न केवल आर्थिक प्रणाली वरन् उस युग मे प्रचलित राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक प्रथाओ तथा उस युग की कला तथा साहित्य का अध्ययन करना अनिवार्य होता है। इतिहास की आर्थिक व्याख्या आवश्यक रूप से अधूरी व्याख्या होती है। आर्थिक कारणो के अतिरिक्त इतिहास पर धार्मिक तथा नैतिक शक्तियो का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। Eduard Bernstein ने मार्क्स द्वारा की गई इतिहास की इस भौतिवादी व्याख्या की आलोचना करते हुये कहा है कि मार्क्स ने इस महान सत्य को भुला दिया है कि मनुष्यो मे बुद्धि होती है जो स्वतन्त्र होती है तथा जिस पर भौतिक वातावरण का कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नही पडता है। इसी बुद्धि—मस्तिष्क—से मनुष्य विचार कर कार्य करते हैं।

---

4. मार्क्स ने पूँजीवाद की परिभाषा एक समाजशास्त्री के दृष्टिकोण से की है। उनके विचारानुसार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसमे उत्पत्ति के साधनो के स्वामित्व पर व्यक्तिगत नियत्रण होता है। मार्क्स के विचारानुसार पूँजीवाद का आरम्भ १६ वी शताब्दी मे ससार मे वाणिज्य के विकास के साथ हुआ था।

प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्री शुम्पीटर ने मार्क्स का पक्ष लेते हुये यह कहा है कि मार्क्स की इतिहास की आर्थिक व्याख्या का यह अर्थ कदापि नहीं है कि मनुष्य अपनी क्रियाओं को करने में अभिज्ञता अथवा अज्ञानता से (consciously or unconsciously) केवल आर्थिक उद्देश्यों (economic motives) से ही प्रेरित होते हैं। इसके विपरीत मार्क्स के सिद्धान्त में उन अनार्थिक कारणों (uneconomic motives) का, जो व्यक्ति की आत्मा को प्रभावित करते है, एक विशेष महत्व है। मार्क्स के कहने का यह तात्पर्य नहीं था कि मनुष्यों के धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक विचार तथा उनकी राजनैतिक इच्छायें सामाजिक वातावरण को प्रभावित नहीं करती है तथा इन सबका आर्थिक तत्वों के रूप में अध्ययन किया जा सकता है। मार्क्स का उद्देश्य तो केवल उन आर्थिक परिस्थितियों को स्पष्ट करना था जो अनार्थिक शक्तियों—धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक विचार इत्यादि—पर प्रभाव डालती हैं तथा इनमें परिवर्तन करती है।[5]

(२) द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद[6]

मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद परिवर्तनों के उस क्रम की व्याख्या है जिसके अनुसार भौतिक संसार में परिवर्तन होते है। मार्क्स के विचार हीगलवादी तत्वज्ञान (Hegelian Philosophy) पर आधारित है। हीगल के विचारानुसार प्रत्येक परिस्थिति विरोधी शक्तियों अथवा हितों के संघर्ष का परिणाम थी। प्रत्येक क्रिया (Action) प्रतिक्रिया (Reaction) को जन्म देती है तथा दोनों में संघर्ष होने के फलस्वरूप नई परिस्थिति उत्पन्न होती है। प्रत्येक प्रारम्भिक स्थिति (Thesis) दूसरी विरोधी स्थिति (Antithesis) को जन्म देती है। इन दोनों के संघर्ष के परिणामस्वरूप तीसरी स्थिति (Synthesis) विद्यमान होती है। इस प्रकार संसार में परिवर्तनों का क्रम संघर्ष पर आधारित है।

मार्क्स के विचारानुसार परिवर्तन अनिवार्य था तथा पूँजीवाद इस परिवर्तन का एक रूप था। पूँजीवाद स्वयं विरोधी शक्तियों के मध्य संघर्ष का परिणाम था। पूँजीवाद ने समाज के दो विरोधी दलों—पूँजीपति तथा श्रमिक—को जन्म दिया है जिन के संघर्ष के फलस्वरूप भविष्य में एक नई आर्थिक स्थिति—समाजवाद—का उत्पन्न होना अनिवार्य था। मार्क्स का कहना था कि इतिहास के अध्ययन से यह भली प्रकार ज्ञात होता है कि पूँजीवाद तथा इसकी आर्थिक व सामाजिक संस्थायें अस्थाई हैं। १८४८ ई० में मार्क्स ने **'Communist Manifesto'** में इस सम्बन्ध में इस

---

5 J. A Schumpeter: Capitalism, Socialism and Democracy, PP, 10 11

6 कार्ल मार्क्स के विचारानुसार इतिहास विरोधी पक्षों का संघर्ष है। वर्तमान सामाजिक वातावरण भी पूँजीपतियों, जो शोषण करके लाभ प्राप्त करते है, श्रमिकों, जो शोषण का विरोध करते हैं, के बीच निरन्तर संघर्ष का परिणाम है।

प्रकार लिखा है : "मानव समाज का सम्पूर्ण प्राचीन तथा वर्तमान इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास है। स्वतन्त्र व्यक्ति तथा दास, शिष्ट पुरुष तथा साधारण मनुष्य, नवाब, तथा गुलाम—संक्षेप में अत्याचार करने वाले तथा अत्याचार सहन करने वाले एक दूसरे के विरोधी रहे हैं। इनके मध्य निरन्तर युद्ध—कभी गुप्त तथा कभी स्पष्ट—सदा विद्यमान रहा है। इस युद्ध के अन्तिम परिणाम ने या तो समाज के सम्पूर्ण ढांचे में क्रान्तिकारी परिवर्तन का रूप धारण किया है या इस युद्ध के अन्तिम परिणामस्वरूप विरोधी वर्गों की बरबादी हुई है। वर्तमान पूंजीवादी अथवा बुर्जुआ समाज (Bourgeois society), जो सामन्तवादी समाज के नाश का परिणाम है, वर्ग शत्रुता को समाप्त करने में असफल रहा है। इसने केवल पुराने वर्गों के स्थान पर नये वर्गों की स्थापना की है। पुराने अत्याचारों के स्थान पर नये अत्याचारों तथा पुराने संघर्षों के स्थान पर नये संघर्षों की स्थापना हुई है। हमारे (मार्क्स) अपने युग—बुर्जवा युग—की यही विशेषता है कि इसने वर्ग शत्रुता को तीव्र बना दिया है। वर्तमान समाज अधिकाधिक दो विरोधी दलों में—धनी पूंजीपति (Bourgeoise) तथा दरिद्र श्रमिक (Proletariat)—जो एक दूसरे को मारने के लिये सदा तैयार रहते है, में विभाजित है।[7]

संक्षेप में मार्क्स के विचारानुसार सम्पूर्ण मानव इतिहास प्राचीन समय से लेकर वर्तमान समय तक वर्गसंघर्ष का एक लिखित अभिलेखा है। प्राचीन इतिहास शोषकों व शोषितों, स्वामियों व दासों, धनी व दरिद्रों, पूंजीपतियों तथा श्रमिकों के मध्य संघर्ष की व्याख्या है। मध्य युग में दासों तथा गुलामों ने अपने स्वामियों नवाबों के विरुद्ध बलवे किये थे। वर्तमान युग में बुर्जवा (पूंजीपति) ने सामन्तवाद से सफल संघर्ष करके पूंजीवाद को स्थापित किया तथा भविष्य में श्रमिक पूंजीपति के विरुद्ध संघर्ष में सफलता प्राप्त करके वर्गहीन समाजवादी राष्ट्र-मण्डल, जिसमें उत्पत्ति के सभी साधनों पर समाज का अधिकार होगा, की स्थापना करेंगे। मार्क्स के विचारानुसार समाज जिस समय साम्यवाद को प्राप्त कर लेगा तो यह परिस्थिति स्थाई सिद्ध होगी, अर्थात् इसके पश्चात कोई परिवर्तन नहीं होगा। एक बार श्रमिकों की तानाशाही स्थापित हो जाने के पश्चात्, राज्य कुछ समय पश्चात् स्वय लुप्त हो जावेगा। मार्क्स के विचारानुसार इतिहास इस सत्य को सिद्ध करता है कि प्रत्येक सामाजिक प्रथा स्वय अपने नाश की शक्तियों को जन्म देती है। सामन्तवाद, जो एक समय बहुत शक्तिशाली था, ने पूंजीवाद को जन्म दिया तथा निःसन्देह पूंजीवाद भी स्वय अस्थाई है यद्यपि आज जब यह अपनी उन्नति के शिखर पर है तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसका कभी अन्त नहीं होगा। परन्तु इतिहास पर विश्वास करने से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि अन्य सामाजिक ढांचों के समान इसका भविष्य भी

---

7 Karl Marx : *Communist Manefesto*

सीमित है तथा समाजवाद का जन्म होना अनिवार्य है। ऐसा मार्क्स का दृढ़ विश्वास था।

(३) पूँजीवाद का क्षय तथा सामाजिक क्रान्ति

मार्क्स के विचारानुसार पूँजीवाद का भविष्य उज्जवल नहीं था। पूँजीपति द्वारा स्थापित पूँजीवादी समाज में स्वयं अपने नाश के अकुर निहित हैं। पूँजीपति नियोक्ता श्रमिकों से अधिक घन्टों तक कार्य करा कर तथा उनको कम वेतन देकर श्रमिकों का शोषण करते हैं तथा अधिक शक्ति प्राप्त करते है। परन्तु पूँजीपति नियोक्ताओं के मध्य अधिक प्रतियोगिता होने के कारण वे उत्पादन के क्षेत्र में नई-नई तकनीकों का प्रयोग करके तथा मूल्यों में कमी करके छोटे उत्पादकों को उत्पादन के क्षेत्र से बाहर आने के लिये विवश कर देते है तथा भूमि व पूँजी का समाज में केवल थोड़े से ही व्यक्तियों के हाथों में सकेन्द्रण (Concentration) हो जाता है। कुछ समय पश्चात् इसका परिणाम यह होता है कि पूँजीवादी समाज से मध्यमवर्ग लुप्त हो जाता है तथा समाज मे बुर्जुआ तथा प्रोलिटेरिअट दो विरोधी वर्ग शेष रह जाते है। मध्यमवर्ग श्रमिक वर्ग से मिल जाता है। इस प्रकार पूँजीवादी समाज में एक ओर तो श्रमिकों की संख्या में मध्यम वर्ग के लुप्त हो जाने के कारण वृद्धि हो जाने तथा दूसरी ओर श्रमिकों की माग कम हो जाने से बेशी श्रमिक संख्या (Industrial Researve Army) की गम्भीर समस्या उत्पन्न हो जाती है। वस्तुओं की कीमतों मे कमी होने का परिणाम यह होता है कि मजदूरों की मजदूरी दरों में जो पहले ही कम थी, और अधिक कमी हो जाती है तथा पूँजीपतियों को अधिक बेशी मूल्य प्राप्त होने लगता है। श्रमिकों की मजदूरी में कमी हो जाने से उनकी उपभोग शक्ति में और अधिक कमी हो जाती है तथा समाज मे कम उपभोग तथा अत्युत्पादन की विरोधी घटनायें उत्पन्न हो जाती हैं। यह सब पूँजीवाद के दोषों के कारण होता है।

कुछ समय तक तो श्रमिक दरिद्रता को सहन करते हैं। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति के समान उनकी सहन शक्ति की भी एक सीमा है। जब श्रमिकों की बढ़ती हुई दरिद्रता उनकी सहन शक्ति की सीमाओं को पार कर जाती है तो वे बलवा कर देते है तथा पूंजीपतियों, जिनकी संख्या श्रमिकों की संख्या की अपेक्षा बहुत कम होती है, के हाथों से सत्ता अपने हाथों मे लेकर समाजवाद का श्रीगणेश कर देते है। इस प्रकार अत्याचारी स्वयं अपने अत्याचारों का शिकार बन जाते हैं तथा सम्पत्ति छीनने वालो से स्वयं सम्पत्ति छीनली जाती है। मार्क्स ने इन सब बातों को बड़े सुन्दर शब्दों में निम्नलिखित वाक्य खण्ड में व्यक्त किया है।

"Along with the constantly diminishing number of the magnates of capital, who usurp and monopolise all advantages of this process of transformation, grows the mass of misery, oppression, slavery, degradation, exploitation, but with this too grows the

revolt of the working-class, a class always increasing in number, and disciplined, united, organised by the very mechanism of the process of capitalist production itself. The monopoly of capital becomes a fetter and the mode of production which has sprung up and flourished along with it and under it Centralisation of the means of production and socialisation of labour at least reach a point where they become incompatible with their capitalist integument This integument is burst asunder. The knell of capitalist private property sounds The expropriators are expropriated".[8]

पूंजीवाद का क्षय मार्क्स के लिये एक महान सामाजिक क्रान्ति थी। परन्तु इस सामाजिक क्रान्ति को, जिसके अन्तर्गत पूँजीपति के हाथो से सत्ता को छीन लिया जाता है तथा यह सत्ता समाज को प्राप्त हो जाती है, किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता था। मार्क्स इस सम्बन्ध मे उन समाज सुधारको से सहमत नही थे जिनका यह विश्वास था कि लोक-तान्त्रिक तथा संविधानीय रीतियो द्वारा पूंजीवाद के दोषो को समाप्त करके समाजवाद को व्यावहारिक रूप दिया जा सकता था। वे रोडबर्टस के इस विचार से भी सहमत नही थे कि समाजवाद को उद्विकास (Evolution) के द्वारा स्थापित किया जा सकता था। मार्क्स के विचारानुसार लक्ष्य साधनो की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण था तथा लक्ष्य की उपयुक्तता पर ही साधनो की उपयुक्तता निर्भर होती है। मॉर्क्स का दृढ विश्वास था कि पूंजीपति के हाथो से सत्ता को क्रान्ति के द्वारा ही छीना जा सकता था। इसके लिये आवश्यकता पड़ने पर हिंसात्मक साधनो का प्रयोग करने मे कोई दोष नही है। उनका लोकतन्त्रिय तथा वैधानिक रीतियों मे कोई विश्वास नही था। मार्क्स के विचारानुसार समाजवाद को प्राप्त करने के लिये हिंसात्मक क्रान्ति (Violent Revolution) अनिवार्य थी। अपने शोषण की घटना को सदा के लिये समाप्त करने तथा अपने अधिकारो को प्राप्त करने के लिये दरिद्र श्रमिको को सेना के रूप मे सगठित हो कर पूँजीपतियो पर उपयुक्त समय पर कड़ा आक्रमण करना होगा। पूँजपतियों को समाप्त करने के लिये उन सभी रीतियो को प्रयोग मे लाया जा सकता था जिन के प्रयोग के कारण वे अब तक स्वयं जीवित थे। पूँजीवाद के क्षय होने के उपरान्त श्रमिको की तानाशाही स्थापित होगी जो कुछ समय पश्चात् समाजवादी राष्ट्र-मण्डल में परिवर्तित हो जावेगी। इस प्रकर पूँजीवाद व समाजवाद के मध्य श्रमिको की तानाशाही (dictatorship of the proletariat) का कुछ समय तक के लिये उत्पन्न होना अनिवार्य था।

मार्क्स का कहना था कि पूँजीवादी समाज मे श्रमिको को स्वयं अपनी शक्ति बढ़ानी पड़ेगी। उन को अन्य वर्गों से कुछ आशा नही करनी चाहिये। मार्क्स ने Communist Manifesto मे लिखा है कि पूंजीवादी समाज मे केवल श्रमिक ही

8 Karl Marx : *Capital* Vol I, P. 836 837

क्रान्तिकारी होते है। जहाँ तक पूँजीपतियों का प्रश्न है उन के विरुद्ध तो क्रान्ति करनी ही है तथा इस कारण क्रान्ति में पूँजीपतियो के सहयोग का कोई प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता है। कोई भी व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को स्वय को मारने मे सहयोग नही दे सकता है। जहा तक मध्यम वर्ग का प्रश्न है मार्क्स का कहना है कि इस वर्ग से किसी क्रान्ति अथवा क्रान्ति मे सहयोग देने की आशा करना व्यर्थ है क्योंकि मध्यम वर्ग प्रतिक्रारी (Reactionary) होता है।

(४) संकेन्द्रण तथा आर्थिक सकट

मार्क्स का कहना है कि पू जीवाद के आरम्भ होने के पूर्व अधिकाश श्रमिकों का उत्पत्ति के साधनो पर अधिकार था परन्तु पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे बूर्जुआ वर्ग ने श्रमिकों से यह अधिकार छीन लिया है। परिणामस्वरूप श्रमिको को बाजार मे अपने श्रम को वस्तु के समान बेचने के लिये विवश होना पड़ता है। इसके अतिरिक्त पूँजीवाद की एक अन्य विशेषता यह है कि उत्पादन मे मशीनो के अधिक प्रयोग तथा उत्पादन के बडे पैमाने पर होने के कारण अनुचित प्रतियोगिता के फलस्वरूप छोटे पूँजपति नियोक्ताओ की सख्या निरन्तर कम होती जाती है। इस का परिणाम यह होता है कि पूँजीवादी समाज मे उत्पत्ति के साधनो का स्वामित्व केवल थोडे से बडे पूँजीपतियो के हाथों मे सकेन्द्रित हो जाता है। मार्क्स का कहना है कि पूँजीवाद मे बडे पूँजीपति छोटे पूँजीपतियो के अस्तित्व को ठीक इसी प्रकार समाप्त कर देते हैं जिस प्रकार कि जल मे बड़ी मछली छोटी मछलियों को हडप कर जाती है। पूजीवादी समाज मे छोटे पूँजीपतियो को अपने व्यवसायो मे, बडे पूँजीपतियो की अनुचित प्रतियोगिता के कारण, फेल हो जाने पर श्रमिक बनने पर विवश होना पडता है। इस का परिणाम यह होता है कि बुर्जुआ (पूँजीपति) वर्ग के शत्रुओ की सेना की सख्या मे वृद्धि होती जाती है। यही शत्रु अन्त मे पूँजीवाद की कब्र खोद कर इसको सदा के लिये दफनाते है।

पूँजीवाद मे एक ओर अनुचित प्रतियोगिता, मशीनों का अधिक प्रयोग तथा [illegible] उनके [illegible] इस का [illegible] होने के कारण उन की क्रय शक्ति कम होती है। इस का परिणाम यह होता है कि बाजार मे वस्तुओ की मांग उत्पादन की अपेक्षा कम होती है तथा समाज मे अत्युत्पादन[9]

9. वास्तव मे इसे अत्युत्पादन कहना गलत है। ऐसी स्थिति मे जब समाज मे श्रमिक, जो कुल जनसख्या का बहुत अधिक भाग होते है, कम उपभोग (Under-consumption) के कष्ट का अनुभव करते हैं, अत्युत्पादन की कल्पना करना असत्य है। समाज के दृष्टिकोण से अत्युत्पादन की घटना केवल उसी परिस्थिति मे उत्पन्न हो सकती है जब समाज मे प्रत्येक व्यक्ति की उपभोग आवश्यकताओ की पूर्ति होने के पश्चात् वेशी उत्पादन (Surplus production) शेष रह जाता है। पूँजीवाद मे अभी तक ऐसी परिस्थिति का अनुभव नही हुआ है।

की जटिल समस्या उपस्थित हो जाती है। इस का दुष्परिणाम यह होता कि अधिक श्रमिको को बेरोजगारी का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार पूँजीवाद मे बेरोजगार श्रमिको की एक भारी सेना का कोष (मार्क्स ने इस को industrial reserve army कहा है) उपस्थित रहता है। इस स्रोत से पूँजीपति अपनी इच्छानुसार कम वेतन पर श्रमिक प्राप्त करते रहते हैं।

मार्क्स का कहना है कि पूँजीवाद मे स्वय इस के विनाश की शक्तिया उपस्थित रहती है तथा उपयुक्त अवसर की प्राप्ति पर ये विनाशकारी शक्तिया सक्रिय बनकर पूँजीवाद का अवश्य नाश कर डालेगी। मार्क्स के विचारानुसार पूँजीवाद की एक ऐसी विनाशकारी शक्ति, जो पूँजीवाद की अन्तर्वर्ती विशेषता (inherent characteristic) है, व्यापार सकट (business crisis) की घटना है। पूँजीपति के श्रम के स्थान पर मशीनों का निरन्तर स्थानापन्न करने के कारण चल पूँजी (variable capital) की मात्रा कम तथा अचल पूँजी (constant capital) की मात्रा हो जाती है। परिणामस्वरूप पूँजीपति के बेशी मूल्य मे निरन्तर कमी होती रहती है तथा उस के लाभो मे कमी होने की प्रवृति उपस्थित हो जाती है। व्यवसाय मे रहने के लिये पूँजीपति लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से उत्पादन मे वृद्धि करता है। परन्तु दूसरी ओर प्रचलित कीमतो पर बाजार मे वस्तुओ की माँग उत्पादन की अपेक्षा कम रहती है। बाजार मे माँग के कम होने का कारण यह है कि पूँजीपति श्रमिक को सदा उसके उत्पादन मे कम वेतन देता है। फलस्वरूप वस्तुओ की कीमतो मे और अधिक कमी हो जाती है। बाजार मे मन्दी के कारण पूँजीपति कुछ श्रमिको को काम पर से हटा देता है तथा उत्पादन व्यय मे कमी करने के उद्देश्य से नई मशीनो तथा उत्पादन की नई तकनीकों का प्रयोग करता है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यापार सकट के आकार मे और अधिक वृद्धि हो जाती है। बैंको तथा सम्मिलित पूँजी वाली कम्पनियो के विकास के परिणामस्वरूप धन के सकेन्द्रण की गति और अधिक तीव्र हो जाती है। परन्तु ज्यो-ज्यो धन का सकेन्द्रण अधिक होता जाता है त्यो-त्यो लाभ की औसत दर भी कम होती जाती है क्योकि कुल पूँजी मे अचल पूँजी का अनुपात अधिक तथा चल पूँजी का अनुपात कम होता जाता है।

इस प्रकार मार्क्स ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि पूँजीवाद मे लाभ की दर मे गिरने की प्रवृति होती है। मार्क्स का यह विचार रिकार्डो के विचार के समान है क्योकि मार्क्स के समान रिकार्डो ने भी यह सिद्ध किया था कि समाज के विकास के साथ-साथ लाभ की दर कम होती जाती है। यहा यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि मार्क्स तथा रिकार्डो दोनो का निष्कर्ष समान है, परन्तु दोनो विचारको के इस समान निष्कर्ष के कारण भिन्न है। रिकार्डो के विचारानुसार लाभ की दर मे कमी होने का कारण भूमि की उर्वरा शक्ति की

कमी थी परन्तु मार्क्स के विचारानुसार यह—लाभ दर मे कमी होने की प्रवृत्ति—पूँजीवाद की अन्तर्वर्ती विशेषता थी।

(५) मूल्य का सिद्धान्त

मार्क्स का मूल्य का सिद्धान्त मौलिक रूप से रिकार्डो के मूल्य के श्रम सिद्धान्त पर आधारित है। रिकार्डो के अतिरिक्त मार्क्स ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करने मे एडम स्मिथ के विचार भी उधार लिये हैं। मार्क्स के मूल्य-सिद्धान्त का प्रमुख उद्देश्य वस्तु के मूल्य के निर्धारण की व्याख्या करना नही था। मूल्य के श्रम सिद्धान्त का प्रतिपादन करने का *एकमात्र उद्देश्य यह स्पष्ट करना था कि पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था मे श्रमिको का शोषण होता है।* इस सम्बन्ध मे प्रसिद्ध मार्क्सवादी अर्थशास्त्री जी. डी. एच. कोल ने सत्य ही लिखा है कि "यह (मार्क्स का मूल्य सिद्धान्त) मूल्य का सिद्धान्त नही, बल्कि पूँजीवादी शोषण का सिद्धान्त है।"[10]

मार्क्स ने वस्तु के 'उपयोग मूल्य' (Use-value) तथा विनिमय मूल्य (Exchange value) के मध्य भेद किया है। यद्यपि प्राचीन लेखको ने (अरस्तू, एडम स्मिथ आदि ने) *भी वस्तु के उपयोग मूल्य तथा विनिमय मूल्य के भेद को समझाया था, परन्तु मार्क्स के अनुसार इनका अर्थ भिन्न है।* प्राचीन लेखको के विचारानुसार वस्तु का उपयोग मूल्य गुणात्मक तथा इसका विनिमय मूल्य परिमाणात्मक विचार था। प्राचीन लेखको के विचारानुसार यद्यपि मूल्यवान होने के लिए वस्तु मे उपयोगिता का होना आवश्यक था परन्तु वस्तु की उपयोगिता का इसके मूल्य से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही था। मार्क्स के विचारानुसार वस्तु का उपयोग मूल्य उपयोगिता से सम्बन्धित है जो वस्तु के उपभोग अथवा उपयोग होने पर वास्तविकता मे परिवर्तित हो जाता है। मार्क्स के विचारानुसार वस्तुओ के विनिमय मूल्य[11] *उस सामान्य (common) वस्तु का सूचक होते हैं जो सभी वस्तुओ मे भिन्न अनुपात मे पाई जाती हैं तथा जो स्वयं उन वस्तुओ से भिन्न होती है। उदाहरणार्थ जब यह कहा* जाता है कि A वस्तु की एक इकाई B वस्तु की एक इकाई के समान है तो इसका अर्थ यह है कि इन दोनो वस्तुओ मे किसी सामान्य वस्तु की समान मात्रा है। यह सामान्य वस्तु दोनो वस्तुओ को बनाने मे व्यय हुये अमूर्त श्रम (abstract labour) की मात्रा है। वस्तु की श्रम शक्ति ही वस्तु का मूल्य है। किसी वस्तु का मूल्य श्रम

---

10. G. D. H. Cole *What Marx Really Meant*, p. 206

11. मार्क्स के विचारानुसार किसी वस्तु के विनिमय मूल्य तथा उस वस्तु के बाजार विनिमय मूल्य मे सदा सम्बन्ध नही था। वस्तु का बाजार विनिमय मूल्य अनेक परिस्थितियो के कारण वस्तु के विनिमय मूल्य (Exchange Value) से भिन्न हो सकता था। इसके विपरीत परम्परावादी विचारधारा मे वस्तु के विनिमय मूल्य का अर्थ उस मूल्य से था जो वस्तु को बाजार मे बेचकर प्राप्त होता था।

की वह मात्रा होती है जो सामाजिक रूप से उस वस्तु के उत्पादन के लिए आवश्यक होती है। इसका अर्थ यह है कि किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु को बनाने मे व्यय हुये श्रम की उस न्यूनतम मात्रा के समान होता है जो सामाजिक दृष्टिकोण से उस वस्तु को बनाने के लिए आवश्यक होती है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि किसी वस्तु को बनाने में श्रम का व्यय करने से ही वस्तु को विनिमय मूल्य प्राप्त नहीं हो सकता है। विनिमय मूल्य की प्राप्ति के पूर्व वस्तु में उपयोग मूल्य अथवा उपयोगिता का होना आवश्यक है। परन्तु यदि वस्तु उपयोगी है तब उस वस्तु को बनाने मे व्यय हुई सामाजिक दृष्टि से आवश्यक श्रम की मात्रा उस वस्तु के मूल्य को निर्धारित करती है। सामाजिक दृष्टि से *आवश्यक श्रम* (*"Socially necessary labour"*) श्रम की वह *न्यूनतम मात्रा* है जो वस्तु के बनाने के लिए आवश्यक होती है। यदि किसी वस्तु को बनाने मे श्रमिक न्यूनतम आवश्यक समय से अधिक समय लगा देते है तो ऐसी दशा मे वस्तु का मूल्य वस्तु पर व्यय हुये कुल श्रम के समान न होकर सामाजिक दृष्टि से आवश्यक—न्यूनतम—श्रम के समान होगा। उदाहरणार्थ यदि एक खिलौने को बनाने के लिये सामाजिक दृष्टि से एक घन्टे के श्रम की आवश्यकता है तथा श्रमिक उस खिलौने को बनाने पर २ घन्टे व्यय कर देता है तो ऐसी स्थिति मे वस्तु का मूल्य केवल एक घन्टे के श्रम के समान होगा भले ही श्रमिक ने उसको बनाने मे दो घन्टे क्यो न व्यय किये हो। जिन वस्तुओ को बनाने मे श्रम की समान मात्रायें व्यय होती है, *अर्थात् जिनको समान समय मे बनाया जा सकता है, उन वस्तुओ के मूल्य समान* होगे। एक वस्तु के मूल्य का दूसरी वस्तु के मूल्य से वही सम्बन्ध होता है जो उस वस्तु को बनाने में व्यय हुये न्यूनतम श्रम-समय का सम्बन्ध दूसरी वस्तु को बनाने में व्यय हुये न्यूनतम श्रम-समय से होता है। मूल्यों के रूप मे सभी वस्तुयें उन वस्तुओं का उत्पादन करने मे व्यय हुये सामाजिक दृष्टिकोण से आवश्यक श्रम-समय का वस्तुपरक रूप है।[13] मार्क्स के विचारानुसार केवल श्रम ही सब मूल्यो का निर्माता (creator) है। उनके अनुसार पूँजी उस श्रम का प्रतीक है जो पूँजीपतियों ने श्रमिको से चुराकर स्वय प्राप्त कर लिया है।

मार्क्स का मूल्य सिद्धान्त अनेक त्रुटियो का भण्डार है। प्रथम, मार्क्स ने *अनेक प्रकार के मानव श्रम को एकरूपता प्रदान करने के हेतु अमूर्त रूप मे आका है।*

वास्तव मे ऐसा करना असम्भव है। स्मिथ व रिकार्डो को इस कठिनाई का भली प्रकार ज्ञान था। दूसरे, सम्भवत प्राथमिक समाज, जहाँ पूँजी का निर्माण न होने के कारण श्रम ही उत्पादन का एकमात्र साधन होता है तथा जहाँ मुद्रा का आविष्कार न होने के कारण वस्तु विनिमय प्रथा प्रचलित होती है, मे श्रम-व्यय वस्तुओ के मूल्य निर्धारण का आधार हो सकता है। परन्तु आज के विकसित समाज मे जहाँ पूँजी साधनों के उपयोग का वस्तुओं के उत्पादन मे विशेष महत्व है, मार्क्स का सिद्धान्त लागू नही हो सकता। तीसरे, यदि किसी प्रकार यह सम्भव भी हो कि अनेक श्रमिको के श्रम को समान अमूर्त रूप मे अध्ययन किया जा सकता है तब भी मार्क्स का यह सिद्धान्त उपयुक्त सिद्ध नही हो सकता है क्योकि यह मूल्य की समस्या का अध्ययन केवल पूर्ति अथवा व्यय के द्वारा ही करता है। अर्थशास्त्र के सभी विद्यार्थी इस सत्य से भली प्रकार परिचित हैं कि किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु की माग (उपयोगिता) तथा पूर्ति (उत्पादन व्यय) से निर्धारित होता है। मूल्य का कोई भी वह सिद्धान्त जो केवल पूर्ति पर ही आधारित होता है, अधूरा सिद्धान्त होता है। मार्क्स के सिद्धान्त पर भी यही आलोचना लागू होती है। चौथे, मार्क्स का मूल्य सिद्धान्त केवल पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत ही लागू हो सकता है। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत भी इस सिद्धान्त के लागू होने के लिये दो बातो का होना आवश्यक है, प्रथम, यह केवल उसी परिस्थिति मे लागू हो सकता है जब श्रम ही उत्पादन का एकमात्र साधन हो, दूसरे, जब सब श्रम एक ही समान प्रकार का हो। जैसा कि हम सभी जानते है व्यावहारिक जगत मे न तो पूर्ण प्रतियोगिता ही पाई जाती है तथा न श्रम ही उत्पादन का एकमात्र साधन है। इसके अतिरिक्त ससार मे सब श्रमिको का श्रम भी समान प्रकार का नही होता है।

(६) बेशी मूल्य का सिद्धान्त

मार्क्स का बेशी मूल्य ~~का~~ सिद्धान्त मार्क्स के मूल्य के श्रम सिद्धान्त से ही प्राप्त हुआ है। यद्यपि समाज मे वस्तुओ को निर्मित करने का एकमात्र साधन है परन्तु पूँजीवाद मे श्रमिक पूँजीपति की दया पर आश्रित था। श्रमिक पूँजीपति नियोक्ता को अपना श्रम बेचता है। पूँजीपति इस श्रम के उपयोग से वस्तुओ का उत्पादन करता है। प्रतिदिन निश्चित समय तक काम करने के कारण श्रमिक कुछ वस्तुओ का उत्पादन करता है। परन्तु दिन के अन्त मे पूँजीपति श्रमिक को उसके श्रम का पूरा पारितोषिक नही देता है। वह श्रमिक को उसके कुल उत्पादन का केवल वह भाग ही मजदूरी के रूप मे देता है जो उसके जीवन निर्वाह के लिये आवश्यक होता है। ऐसा करके पूँजीपति श्रमिक का शोषण करके स्वय धनी बन जाता है। इसको एक उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है।

मान लीजिये एक श्रमिक दिन मे १० घन्टे काम करता है। उसके श्रम द्वारा बनाई गई वस्तु का विनिमय मूल्य १० घन्टे के श्रम अथवा इस समय के मूल्य के समान होगा। परन्तु श्रमिक को उसके श्रम के विनिमय मूल्य के समान मजदूरी

प्राप्त नही होती है। पूँजीपति के दृष्टिकोण से श्रम एक वस्तु के समान है जिसका मूल्य श्रम के उन घन्टो के बराबर होता है जो उसके उत्पादन के लिये आवश्यक होते हैं। यदि श्रमिक ६ घन्टों मे उतना उत्पादन कर लेता है जो उसकी कार्यक्षमता में कमी हुये बिना, उसके जीवन निर्वाह के लिये काफी है तो ऐसी स्थिति मे शेष चार घन्टों का उत्पादन पूँजीपति को वेशी मूल्य के रूप मे प्राप्त हो जाता है। इस बेशी मूल्य के प्राप्त होने का मुख्य कारण पूँजीपति द्वारा श्रमिक का शोषण है। यदि श्रमिक को उसके श्रम का पूरा मूल्य वेतन के रूप मे प्राप्त हो जाता तो पूँजीपति को वेशी मूल्य कदापि प्राप्त नही हुआ होता। इस प्रकार वेशी मूल्य श्रमिक के श्रम द्वारा बनाई गई वस्तुओ के मूल्य तथा श्रमिक के वेतन के अन्तर के बराबर होता है। इम वेशी मूल्य की मात्रा श्रमिक के जीवन निर्वाह व्यय तथा श्रमिक द्वारा बनाई गई वस्तु के उस मूल्य से, जो पूँजीपति को प्राप्त होता है, निर्धारित होती है। इस विचार को निम्नलिखित समीकरण के रूप मे व्यक्त किया जा सकता है।

ब = म—व

ब = वेशी मूल्य

म = वस्तु का मूल्य जो पूँजीपति को प्राप्त होता है

व = वेतन

पूँजीपति श्रमिको से अधिक घन्टे कार्य करा कर तथा मशीनों का प्रयोग करके श्रमिको की प्रति घन्टा उत्पादन शक्ति मे वृद्धि करके वेशी मूल्य मे वृद्धि करने का प्रयास करते हैं। मार्क्स का दृढ विश्वास था कि पूँजीपति के लाभो मे वेतनो मे कमी करके ही वृद्धि की जा सकती थी तथा इस कारण पूँजीपति तथा श्रमिको के मध्य वर्ग सघर्ष अनिवार्य था।

यद्यपि मार्क्स की वेशी मूल्य की व्याख्या बहुत प्रभावशाली है, परन्तु यह आलोचनारहित नही है। मार्क्स के सिद्धान्त मे कई त्रुटियाँ हैं। प्रथम, ऐसा प्रतीत होता है कि मार्क्स ने पूँजीपति साहसी के कार्य को काफी महत्व नही दिया है। पूँजीपति को, श्रमिक को वेतन देने के पश्चात, जो शेष बचता है उस सब को वेशी-मूल्य कहना उचित नही है। साहसी को भूस्वामी को भी लगान के रूप मे तथा पूँजीपति को उसकी पूँजी के उपयोग के पारितोषिक के रूप मे ब्याज देना पडता है। इसके अतिरिक्त बडे पैमाने की उत्पादन प्रणाली के अन्तर्गत वर्तमान उत्पादन का उपभोग भविष्य मे किया जाता है तथा साहसी को भविष्य सम्बन्धी अनिश्चितताओ को सहन करना होता है। इस कारण जो भी पूँजीपति नियोक्ता को उत्पादन के साधनो को भुगतान करने के पश्चात् प्राप्त होता है, वह उसका वाणिज्य लाभ होता है।

क्या मार्क्स की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई है ?

यद्यपि मार्क्स ने पूँजीवाद की व्याख्या व श्रमिको के शोषण इत्यादि घटनाओं की बहुत उपयुक्त व्याख्या की है परन्तु कई बातो मे उनकी भविष्यवाणी अभी तक सत्य सिद्ध नही हो पाई है। मार्क्स का यह विश्वास कि पूँजीवाद मे मध्यम वर्ग समाप्त हो जावेगा तथा पूँजीपति व श्रमिको के मध्य सदा सघर्ष रहेगा पूर्णतया सत्य सिद्ध नही हुआ है। यद्यपि पूँजीवाद का मार्क्स के समय के पश्चात विकास हुआ है, परन्तु इस विकास के साथ-साथ पूँजीवादी समाजो मे मध्यम वर्ग के लोगो की सख्या पहले से अधिक हो गई है।

इसके अतिरिक्त मार्क्स का यह भी कहना है कि पूँजीवाद के विकास के साथ साथ श्रमिको की दरिद्रता मे भी वृद्धि होती है। परन्तु अनुभव इस कथन के पक्ष मे नही है। आज पूँजीवादी समाजो मे श्रमिको के कार्य के घन्टे सीमित है, उनके कार्य की दशाओ मे भी भारी सुधार हुये है, उनके वेतनो मे वृद्धि हुई है, श्रमिको को औद्योगिक नियमो के अन्तर्गत छुट्टियाँ मिलती है, आज उनको बोनस, प्राविडेंट फड तथा स्वास्थ्य बीमा योजनाओ के लाभ प्राप्त हैं, तथा बडे-बड़े उद्योगो मे आज प्रबन्ध समितियो मे श्रमिको के प्रतिनिधियो को लिया जाता है।

मार्क्स का यह भी कहना कि पूँजीवाद मे बडे पैमाने की उत्पादन प्रणाली छोटे उद्योगो के लिये घातक सिद्ध होती है, आज गलत सिद्ध किया जा रहा है। बीसवी शताब्दी के नियमित पूँजीवाद मे छोटे उद्योगो को बडे उद्योगो का पूरक बनाया जा रहा है जिसके कारण बडे उद्योगो के विकास के साथ छोटे उद्योगो का भी विकास सम्भव हो सकेगा। इसके अतिरिक्त मार्क्स का सकेन्द्रण नियम कृषि अर्थव्यवस्था के क्षेत्र मे, जहाँ आज भी अमरीका के समान विकसित पूँजीवादी देशो मे कृषि उत्पादन छोटे पैमाने पर किया जाता है तथा उत्पादन के मुख्य साधन भूमि पर कुछ पूँजीपतियो का अधिकार न होकर अधिक सख्या मे छोटे कृषको का अधिकार है, लागू नही हो सका है।

मार्क्स के विचारानुसार समाजवाद का उदय इग्लैंड तथा जर्मनी के समान विकसित पूँजीवादी देशो मे होना चाहिये था। परन्तु आशा के विपरीत हम देखते कि इग्लैंड व जर्मनी मे पूँजीवाद की जड आज मार्क्स के समय की अपेक्षा अधिक मजबूत है तथा साम्यवाद रूस तथा चीन के समान उन अर्ध विकसित देशो मे उदय हुआ है जहाँ पूँजीवाद का विकास नही हुआ है। यदि आज मार्क्स जीवित हुए होते तो उनको यह देखकर बडा आश्चर्य हुआ होता कि साम्यवाद का उदय उन देशो मे हुआ है जिनकी वे स्वप्न मे भी कल्पना नही कर सकते थे। इसके साथ ही उनको यह देखकर दुख भी हुआ होता कि पूँजीवादी देशो मे पूँजीवाद की जड़ें कमजोर होने के स्थान पर मजबूत होती जा रही है। मार्क्स को यह भी देखकर कोई कम आश्चर्य नही हुआ होता कि २० वी शताब्दी का पूँजीवाद १६ वी शताब्दी के पूँजीवाद से बहुत सी बातो मे भिन्न है। आज पूँजीपति इस सत्य के

महत्व को भली प्रकार समझता है कि उसके निजी हित में यह आवश्यक है कि वह अपने श्रमिकों के प्रति उदारता का व्यवहार करे। आज का पूँजीपति यह जानता है कि सन्तुष्ट श्रमिक उसके लाभों में वृद्धि करते है।

जहाँ तक साम्यवाद का सम्बन्ध है मार्क्स का यह विश्वास था कि समाजवाद में वर्गहीन समाज की स्थापना होती है तथा कुछ समय पश्चात् राज्य लुप्त हो जावेगा। परन्तु अनुभव इस कथन की पुष्टि नही करता। इस सम्बन्ध में रूस का अनुभव यह बताता है कि साम्यवाद में भी साम्यवादी वर्ग होते हैं तथा उच्च वर्ग के साम्यवादी निम्न वर्ग के साम्यवादियों पर राज्य करते है।

मार्क्स के विचारों का प्रभाव

मार्क्स के आर्थिक विचारों का ससार के सभी देशों की नीतियों पर गहरा प्रभाव पड़ा है। रूस, चीन, अल्बानिया, हंगरी इत्यादि जिन देशों में साम्यवाद है उन का तो कुछ कहना ही नही है, परन्तु पूँजीवादी देशों में भी सरकारी आर्थिक नीतियों में मार्क्स के विचारों के चिन्ह विद्यमान है। २०वी शताब्दी में विद्यमान उदार आर्थिक विचारधारा का विकास मार्क्सवाद के प्रभाव के कारण ही सम्भव हो पाया है। आज पूँजीवादी समाज में मार्क्सवाद के उदय होने के भय से श्रमिकों की स्थिति में अनेक योजनाओं द्वारा सुधार किये जाते हैं। यह निश्चय है कि यदि मार्क्स ने पूँजीवाद पर आक्रमण न किया होता तो वर्तमान पूँजीवाद में उदारता कभी विद्यमान नही हुई होती। यदि यह कहा जाये तो अनुचित न होगा कि शत्रु के रूप में मार्क्स पूँजीवाद के लिये वरदान सिद्ध हुये हैं।

जहां तक साम्यवाद का प्रश्न है यह पहिले कहा जा चुका है कि मार्क्स समाजवाद के सच्चे अर्थ में प्रवर्त्तक है। मार्क्स ने समाजवाद को अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप प्रदान किया तथा उन्हीं के विचारों के कारण आज समाजवाद को अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन का उच्च स्तर तथा प्रतिष्ठा प्राप्त है। आज जो अर्थशास्त्री समाजवाद की आलोचना करते है, उनको भी अपनी अर्थशास्त्र की पुस्तक में समाजवाद की व्याख्या करनी पड़ती है। समाजवाद का अर्थशास्त्र के अध्ययन में उतना ही अधिक महत्व है जितना अधिक महत्व संस्थापित अर्थशास्त्र के अध्ययन का है। बिना मार्क्सवाद की व्याख्या के आर्थिक विचारों का इतिहास अधूरा ही रहेगा।

इतना ही नहीं बल्कि समाजवादियों के जो सम्प्रदाय मार्क्स के क्रान्तिकारी समाजवाद के विरोधी है उनको जन्म देने का श्रेय भी मार्क्सवाद के प्रवर्त्तक मार्क्स को ही है क्योंकि यदि मार्क्स न हुए होते तो मार्क्स के विरोधी (anti-Marxists) भी उत्पन्न न हुए होते। मार्क्स ने मार्क्सवाद के अतिरिक्त नवमार्क्सवाद (neo-Marxism) तथा पुनरीक्षणवाद[13] (revisionism) को भी जन्म दिया है।

---

13. पुनरीक्षणवादी मार्क्स के क्रान्तिकारी समाजवाद के मौलिक सिद्धान्तों का विरोध करते हैं।

निष्कर्ष

मार्क्स के आर्थिक विचारो के उपरोक्त सक्षिप्त विवेचन से यह भली प्रकार ज्ञात हो जाता है कि मार्क्स १६ वी शताब्दी के एक महान अर्थशास्त्री थे जिनके जीवन का ध्येय ससार के करोडो दरिद्र श्रमिको के हितो के लिए लडना था। इसके लिए उनको जगह जगह मारा फिरना पडा तथा देश छोडकर विदेश मे गरीबी का जीवन व्यतीत करना पडा। यदि मार्क्स चाहते तो अपनी असाधारण बुद्धि का प्रयोग पूँजीवाद के पक्ष मे करके अच्छा जीवन व्यतीत कर सकते थे। परन्तु वे एक महानपुरुष थे तथा सभी महान पुरुषो के समान उनके लिए व्यक्तिगत जीवन के सुख की अपेक्षा करोडो श्रमिको की दरिद्रता का अन्त करना अधिक महत्वपूर्ण था। मार्क्स को उनके इस महान त्याग का उनकी मृत्यु के पश्चात् उचित पारितोषिक प्राप्त हो सका है। आज उनका नाम आर्थिक ससार मे अमर है तथा ससार के श्रमिक, समाज सुधारक उनके प्रति बडी श्रद्धा रखते हैं। मार्क्स के आलोचक भी उनकी महानता को स्वीकार करते है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रोफेसर सेलिगमन (Seligman) ने मार्क्स के सम्बन्ध मे लिखते हुए ठीक ही कहा है कि "हम मार्क्स के औद्योगिक समाज के विश्लेषण से सहमत हो अथवा न हो, परन्तु इस सत्य से कभी इन्कार नही हो सकता है कि बिना इस सत्य को जाने हुये कि सम्भवत केवल रिकार्डो को छोडकर मार्क्स से अधिक मौलिक (original), अधिक शक्तिशाली तथा अधिक बुद्धिमान विचारक अर्थशास्त्र विज्ञान के सम्पूर्ण इतिहास मे अन्य कोई नही हुआ है, हम मार्क्स का अध्ययन उस प्रकार से नही कर सकते हैं जिस प्रकार से इस महान् विचारक का अध्ययन किया जाना चाहिये।"[14]

अन्त मे इस महान जर्मन अर्थशास्त्री की इस सक्षिप्त व्याख्या को हम प्रसिद्ध अर्थशास्त्री बॉम बावर्क (Bohm Bawerk) के इस प्रसिद्ध कथन के साथ समाप्त करते हैं। मार्क्स के सम्बन्ध मे अपनी पुस्तक **Karl Marx and the Close of His System** मे लिखते हुये बॉम बावर्क ने इस प्रकार लिखा है: "मार्क्स को समाज विज्ञानो के इतिहास मे हीगल (Hegel) के समान स्थायी स्थान प्राप्त रहेगा। दोनो ही अपूर्वबुद्धि के दार्शनिक थे। दोनो का ही अपने अपने क्षेत्र मे अपने युग की विचारधारा पर गहरा प्रभाव पडा था।"[15]

विशेष अध्ययन सूची

1 Gide and Rist , A History of Economic Doctrines, *Book IV, Chapter, III.*
2. J. F. Bell A History of Economic Thought, : Chapter, 17.

14. E. A. G. Seligman: *Economic Interpretation of History, P. 56*
15. Bohm Bawerk *Karl Marx and the Close of His System, P. 221*

3. L. H. Haney : History of Economic Thought, Chapter XXIV.
4. P. C. Newman : The Development of Economic Thought, Chapter, XVII.
5. Eric Roll : A History of Economic Thought, Chapter, VI.
6. Robert Lekachman : A History of Economic Ideas, Chapter, 9.
7. J. M. *Ferguson* · *Landmarks of* Economic Thought, Chapter XVI.
8. Edmund Whittaker · Schools and Streams of Economic Thought, Chapter, 11.
9. Alexander Gray ; *The Development of Economic* Doctrine, Chapter XII.
10. J. A. Schumpeter : Capitalism, Socialism and Democracy, Part I, Chapters 1 to IV.
11. O. H Taylor A History of Economic Thought, Chapter, 11
12. Leo Rogin : The Meaning and Validity of Economic Theory, Chapter, 9.
13. Spengler and Allen (edited) Essays in Economic Thought, Article No 18 by Bernice Shoul, entitled 'Karl Marx and Say's Law'.
14. G. D H. Cole : The Meaning of Marxism.
15. S. H. Patterson : Readings in the History of Economic Thought, Part VIII, 3 and 4
16. H. W. Laidler : Social *Economic* Movements, Chapter XIII-XVII (New York, 1944)
17 Sidney Hook : Towards the Understanding of Karl Marx (New York, 1933.)

प्रश्न

1. Compare Marx's theory of surplus value with the physiocratic *conception of 'Produit Net.'*

(अलीगढ, १९५७)

2. Trace the arguments on which Marx bases his theory of falling rate of profits, and examine thair validity

(अलीगढ, १९५६; कर्नाटक, १९५८)

3. In what respects was Marxian Economics a challange to contemporary economic thought ?

(बनारस, १९५७)

4. In what important respects have the teachings of Karl Marx influenced the trend of economic thought and practice in Europe ?

(आगरा, १६४६)

5 'The greatest and the most influential name in the history of socialism is Karl Marx.'

Explain carefully the above statement, with special reference to the important theories advocated by Karl Marx

(आगरा, १६४८; १६६०; राजस्थान, १६४८)

6 'The two essential doctrines of Karl Marx are his theory of surplus labour and value, and his law of automatic appropriation or concentration of capital.' Examine critically these two doctrines

(आगरा, १६५०; करनटिक, १६५८; राजस्थान, १६५५)

7. 'The Marxian theories are derived directly from the theories of the leading economists of the early nineteenth century, especially Ricardo'. (Gide and Rist)

Explain fully the above statement

(आगरा, १६५२)

8 'Marxism is simply a branch grafted on the classical trunk ' (Gide and Rist)

Explain fully the above statement

(आगरा, १६५६, १६६२; कर्नाटक, १६५८, १६५६, राजस्थान, १६५८)

9 'It is safe to say that no one can study Marx as he deserves to be studied without recognising the fact that, perhaps with the exception of Ricardo, there has been no more original, no more powerful and no more acute intellect in the entire history of economic science' (Newman)

Comment

(आगरा, १६५७)

10 "Marx fell in with the ordinary run of the theorists of his own and also of a later epoch by making a theory of value the cornerstone of his theoretical structure" (Schumpeter).

Examine critically the above statement.

(आगरा, १६५८)

11 Estimate the place of Karl Marx in the history of economic thought.

(कर्नाटक, १६५८, राजस्थान, १६५१)

12. Give a brief and connected account of the Marxian philosophy and theory of economic development

(कर्नाटक, १६५८)

13. How far do you agree that with the view that Marx belongs to the genealogy of the classical school ?

(कर्नाटक, १६५६)

14. Explain the concepts of Surplus Labour and Surplus Value as developed by Karl Marx. What are the causes of crisis according to him ?

(राजस्थान, १६५७)

15. "The indubitable fact is that all subsequent socialism has been dominated by Marx, and that even when subsequent schools have disowned him they have owed their existence to a reaction from Marx." (Gray)

Elucidate the above statement.

(राजस्थान, १६६०)

पञ्चम खण्ड

आस्ट्रियन, गणितिय व केम्ब्रिज सम्प्रदाय

तथा

संस्थानिक अर्थशास्त्र

(Austrian, Mathematical & Cambridge Schools

And

Institutional Economics)

अध्याय २५

आस्ट्रियन अथवा मनोविज्ञानवादी सम्प्रदाय

(The Austrian or Psychological School)

आस्ट्रियन अथवा मनोविज्ञानवादी सम्प्रदाय का तात्पर्य उन तीन अर्थशास्त्रियों से है जो वियना विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे तथा जिनको सीमान्त उपयोगिता अर्थशास्त्र का विकास करने का श्रेय प्राप्त है। अपने योगदानों तथा विचारों की महानता के कारण आस्ट्रियन सम्प्रदाय को आर्थिक विचारों के इतिहास में संस्थापक सम्प्रदाय के समान सम्मान प्राप्त है। अपने आर्थिक विचारों के द्वारा सीमान्त उपयोगिता अर्थशास्त्र का विकास करके आस्ट्रियन सम्प्रदाय के लेखकों ने संस्थापक सम्प्रदाय के विचारों के अधूरेपन को दूर करके अर्थशास्त्र विज्ञान को सन्तुलित बनाने में भारी योगदान दिया तथा इस दृष्टिकोण से उनके अर्थशास्त्र को स्मिथवादी संस्थापित अर्थशास्त्र का पूरक कहा जा सकता है। आस्ट्रियन सम्प्रदाय के सदस्यों ने १८७१ ई० से लेकर १८८९ ई० तक जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया उनके लिये अर्थशास्त्र विज्ञान सदा उनका ऋणी रहेगा। इस सम्प्रदाय के तीन प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जो सम्प्रदाय के स्तम्भ हैं तथा जिन के आर्थिक विचार आस्ट्रियन सम्प्रदाय के अर्थशास्त्र की विषय सामग्री हैं, कार्ल मैंगर (१८४० ई०–१९२१ ई०); फ्रेड्रिक वॉन वीजर (१८५१ ई०–१९२६ ई०) तथा यूजन वान बाम बावर्क (१८५१ ई०–१९१४ ई०) है। इन तीनों अर्थशास्त्रियों के व्यक्तिगत आर्थिक योगदानों की व्याख्या करने के पूर्व यहा पर आस्ट्रियन सम्प्रदाय की कुछ सामान्य विशेषताओं की संक्षिप्त व्याख्या करना उपयुक्त होगा।

आस्ट्रियन सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र में मूल्य के सिद्धान्त को उपयोगिता के विचार के आधार पर पुनर्निर्माण करने का भरसक प्रयास किया। उनका यह प्रयास संस्थापक सम्प्रदाय के मूल्य के सिद्धान्त, जो व्यय के विचार पर आधारित था, से बिल्कुल भिन्न था। अर्थशास्त्र संस्थापकों के विपरीत, जिन्होंने व्यय तथा पूर्ति को ही वस्तु के मूल्य के निर्धारण में महत्व दिया था, आस्ट्रियन सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियों ने मांग तथा उपयोगिता को अपने मूल्य सिद्धान्त का केन्द्र बनाया था। इन अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र संस्थापकों के उस विचार की कड़ी आलोचना

प्रतिपादन करके कान्डिलेक तथा व्हेटली के उपयोगिता सम्बन्धी विचारों को पुनर्जीवित किया। मूल्य के उपयोगिता सिद्धान्त का प्रतिपादन करके आस्ट्रियन सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियो ने मनुष्य की मनोवृत्ति का अध्ययन करने का प्रयास किया। इसके अतिरिक्त मूल्य के व्यक्तिपरक सिद्धान्त (subjective theory), जिसका आधार वस्तु की सीमान्त उपयोगिता थी, के द्वारा इस रहस्य का भी ज्ञान हो गया कि दो पक्षों को विनिमय के द्वारा पारस्परिक लाभ क्यो प्राप्त होता है। ऐसा इसलिये होता है कि एक पक्ष दूसरे पक्ष को वह वस्तु देकर जिसकी सीमान्त उपयोगिता उसके लिये कम होती है (तथा दूसरे पक्ष के लिये अधिक होती है) विनिमय मे वह अन्य वस्तु प्राप्त कर लेता है जिसकी सीमान्त उपयोगिता उसके लिये अधिक होती है (तथा दूसरे पक्ष के लिये कम होती है)।

अर्थशास्त्र विज्ञान के क्षेत्र मे आस्ट्रियन सम्प्रदाय का दूसरा विशेष योगदान स्थानापत्ति का नियम (Law of Substitution) है। सीमान्त उपयोगिता के विचार का उपयोग केवल मूल्य निर्धारण तक ही सीमित नही है बल्कि वितरण, उत्पादन व उपभोग के क्षेत्रो मे भी इस विचार का एक विशेष महत्व है। वर्तमान अर्थशास्त्रियो ने, विशेषरूप से अमरीका मे प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो० जान बेटस क्लार्क (J. B. Clark) ने उपयोगिता के सिद्धान्त के आधार पर व्याज, वेतन तथा लगान के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। उपयोगिता के विचार के समान स्थानापत्ति के नियम का प्रयोग भी अर्थशास्त्र के सभी क्षेत्रो मे किया जाता है। अब हम आस्ट्रियन सम्प्रदाय के तीनो अर्थशास्त्रियों के आर्थिक विचारो की सक्षिप्त व्याख्या कर सकते हैं।

कार्ल मेंगर (१८४०-१९२१ ई०)
(Carl Menger)

कार्ल मेंगर[5] को सच्चे रूप से आस्ट्रियन अथवा मनोविज्ञानवादी सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक कहा जा सकता है क्योकि उनके मूल सिद्धान्तो की आधार शिला पर ही आस्ट्रियन अर्थशास्त्र के भवन का निर्माण हुआ है।

---

5. कार्ल मेंगर का जन्म १८४० ई० मे गलीस्या (Galicia) में हुआ था। उनके पिता आस्ट्रिया के उच्च कुल से थे तथा उनकी माता एक धनी व्यापारी की पुत्री थी। प्रेग तथा वियना के विश्वविद्यालयो मे शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् मेंगर ने आस्ट्रिया की जनपद सेवा (Austrian Civil Service) मे प्रवेश किया परन्तु शीघ्र ही उन्होंने अर्थशास्त्र का अध्ययन आरम्भ कर दिया तथा १८७१ ई० मे उनकी प्रसिद्ध पुस्तक **Grunsatze** प्रकाशित हुई। इस पुस्तक मे वे प्रसिद्ध हो गये तथा १८७३ ई० मे उनकी नियुक्ति वियना विश्वविद्यालय मे प्रोफेसर के पद पर हो गई। १८७६ ई० से लेकर १८७८ ई० तक वे, रिमथ के समान राजकुमार रूडोल्फ (Crown

मैंगर ने सस्थापित अर्थशास्त्र के दोषों को दूर करके अर्थशास्त्र को कारण व परिणाम पर आधारित एक युक्त विज्ञान का रूप प्रदान किया। मैंगर ने धन के स्थान पर मनुष्य को आर्थिक क्रियाओं का केन्द्र घोषित किया। मैंगर का कहना था कि वस्तुओं का मूल्य इस लिये होता है क्योंकि उनमे उपयोगिता होती है तथा उनमे उपयोगिता इसलिये होती हैं क्योंकि उनके द्वारा मानव आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होती है। इस कारण किसी वस्तु की उपयोगिता उस वस्तु की मानव आवश्यकताओ की पूर्ति करने की शक्ति होती है। मैंगर का मूल्य सिद्धान्त पूर्णतया व्यक्तिपरक है। उनके मतानुसार उत्पादन व्यय का वस्तु के मूल्य पर प्रत्यक्ष रूप से कोई प्रभाव नही पडता है। अपने इस तर्क को मैंगर ने एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझाने का प्रयत्न किया है। नदी के तट पर रेत के ढेर लगाने मे काफी मानव श्रम का व्यय होता है परन्तु इसका कुछ भी मूल्य नही होता है। परन्तु इसके विपरीत स्वर्ण की अगूठी, जो सडक पर पडी हुई पाई जाती है, का मूल्य होता है यद्यपि व्यक्ति के लिये इसको प्राप्त करने का उत्पादन व्यय शून्य है। एक ओर तो अत्यधिक परिश्रम करके

Prince Rudolph) के राजनीतिक अर्थशास्त्र के व्यक्तिगत शिक्षक नियुक्त रहे। राजकुमार के साथ व्यक्तिगत शिक्षक होने के नाते वे इगलैंड, फ्रान्स तथा स्वीटजरलैंड की यात्रा पर भी गये थे।

यात्रा से लौटने के पश्चात १८७६ ई० मे उनकी नियुक्ति वियना विश्वविद्यालय मे राजनीतिक अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष के पद पर हो गई। इस पद पर वे १६०३ ई० तक नियुक्त रहे। तत्पश्चात् उन्होने अपने समय तथा शक्ति का प्रयोग लेखन कार्य तथा अनुसधान मे व्यतीत किया। वे प्रसिद्ध शिक्षक तथा लेखक थे। उनके पास अपना निजी पुस्तकालय था जिसमे उच्च कोटि की लगभग सभी पुस्तकें थी। उनके प्रसिद्ध लेखन कार्यो मे निम्नलिखित पुस्तकों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

1. **Grundsatze der Volkswirthschaftslehre** (Foundations of Political Economy), 1871.

2 **Untersuchungen uber die Methode der Sozialwissenschaften, und der politischen Oekonomie insbesondere** (Inquiries in the Method of Social Sciences and particularly Political Economy), 1883.

3. **Die Irrthumer des Historismus in der deutschen Nationalokonomie** (The Errors of Historismus in Geraman Political Economy), 1884

4. **Zur Theorie des Kapital** (On the Theory of Capital), 1888.

१६२१ ई० मे उनकी मृत्यु हो गई। आर्थिक विचारो के इतिहास मे उनका नाम आस्ट्रियन सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक के रूप मे सदा अमर रहेगा।

भी मूल्य उत्पन्न नही होता है तथा दूसरी ग्रोर बिना किसी परिश्रम के मूल्य प्राप्त हो जाता है। इसका क्या कारण है। मैंगर को इस प्रश्न का उत्तर देने मे कोई कठिनाई नही है। इसका सीधा, सरल तथा सच्चा कारण यह है कि जब कि नदी के तट पर रेत के ढेर की कोई उपयोगिता नही है, स्वर्ण ग्रगूठी की भारी उपयोगिता है। मूल्य की परिभाषा करते हुये मैंगर ने लिखा है कि मूल्य 'साकार वस्तुग्रो अथवा साकार वस्तुग्रों के समूह का हमारे लिये वह महत्व है जो इस सत्य के कारण उत्पन्न होता है कि उनके उपभोग द्वारा हम को सन्तोष प्राप्त होता है।"[6]

मैंगर का दूसरा विशेष योगदान वस्तुग्रो का वर्गीकरण है। दुर्लभता अथवा प्रचुरता के ग्रनुसार वस्तुएँ दो प्रकार की होती है—ग्रार्थिक वस्तुएँ तथा ग्रनार्थिक वस्तुएँ। किसी वस्तु को ग्रार्थिक ग्रर्थ मे वस्तु कहलाने के लिये चार निम्नलिखित बातो का होना ग्रावश्यक है।

१. प्रथम, मानव ग्रावश्यकता होनी चाहिये।
२. वस्तु मे ऐसे गुण होने चाहिये कि उसके द्वारा मानव ग्रावश्यकता की पूर्ति हो सके।
३. मनुष्य को यह ज्ञान होना चाहिये कि वस्तु-विशेष में ग्रावश्यकता-विशेष की पूर्ति करने का गुण है।
४. वस्तु विशेष पर मनुष्य का पर्याप्त ग्रधिकार ग्रथवा नियत्रण होना चाहिये जिससे कि ग्रावश्यकता-विशेष की पूर्ति सम्भव हो सके।

ग्रार्थिक वस्तुग्रों का वर्गीकरण का ग्राधार ग्रार्थिक वस्तुग्रो की उपभोक्ता से समीपता है। प्रथम श्रेणी की वस्तुएँ वे ग्रार्थिक वस्तुएँ हैं जो उपभोक्ता के निकटतम होती हैं तथा जिनका उपभोक्ता प्रत्यक्षरूप से उपभोग करके अपनी ग्रावश्यकताग्रो की पूर्ति करता है। दूसरी, तीसरी तथा चौथी श्रेणियों की वस्तुएँ उपभोक्ता से दूर होती चली जाती हैं। इस प्रकार ग्रार्थिक वस्तुग्रों के वर्गीकरण का ग्राधार वस्तुग्रो की उपभोक्ता के साथ निकटता तथा सम्बन्ध की प्रत्यक्षता है। उदाहरणार्थ, दूध जो उपभोक्ता की ग्रावश्यकता की प्रत्यक्ष रूप से पूर्ति करने के कारण उपभोक्ता के निकटतम है प्रथम श्रेणी की वस्तु कहलायेगी। परन्तु दूध गाय द्वारा प्राप्त होता है तथा इस कारण गाय दूसरी श्रेणी की वस्तु होगी। यह उपभोक्ता से दूध के द्वारा सम्बन्धित है। परन्तु गाय चारा खा कर दूध देती है। इस कारण चारा तीसरी श्रेणी की ग्रार्थिक वस्तु होगी। परन्तु चारा खेत मे उगाया जाता है तथा इस कारण खेत चौथी श्रेणी की ग्रार्थिक वस्तु होगी। इन सब वस्तुग्रो मे दूध उपभोक्ता से निकटतम तथा खेत उपभोक्ता से दूरतम है। वस्तुग्रो के वर्गीकरण की इस योजना को निम्न प्रकार समझाया जा सकता है।

---

6 Value is "the significance which concrete goods or group of goods gain for us through the fact that in the satisfaction we are conscious of a dependence upon the disposal of them"
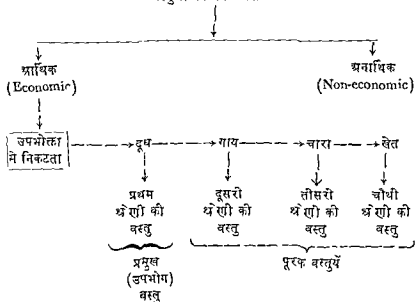
वस्तुओं के वर्गीकरण के द्वारा मैंगर ने Theory of Imputation का प्रतिपादन किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार नीची श्रेणी (lower orders) की वस्तुओं का मूल्य प्रथम श्रेणी अथवा उपभोग वस्तुओं के मूल्य अथवा महत्व से प्राप्त होता है। यदि उपभोक्ता दूध का उपभोग करना बन्द कर देंगे तो गाय, चारा तथा खेत इत्यादि सभी वस्तुओं का वह गुण समाप्त हो जावेगा जिसके कारण वे आर्थिक वस्तुयें कहलाती हैं।

अर्थशास्त्र के अध्ययन की रीतियों के विषय पर मैंगर ने इतिहासवादी सम्प्रदाय, जिसने रिकार्डोवादी निगमन प्रणाली को समाप्त करके एकमात्र आगमन प्रणाली का प्रयोग करना आरम्भ किया था, की कड़ी आलोचना की। इस सम्बन्ध में मैंगर-श्मोलर वाद-विवाद ने आर्थिक विचारों के इतिहास में काफी प्रसिद्धि प्राप्त करली है। अपनी १८८३ ई० में प्रकाशित पुस्तक **'Inquiries into the Method of Social Sciences and particularly Political Economy'** में मैंगर ने निगमन तथा आगमन रीतियों के लाभों की विस्तृत रूप से व्याख्या की तथा प्रसिद्ध जर्मन अर्थशास्त्री गस्टेव वान श्मोलर तथा अन्य जर्मन इतिहासवादी अर्थशास्त्रियों की निगमन रीति का विरोध करने के लिये कड़ी आलोचना की। मैंगर का कहना था कि अर्थशास्त्र विज्ञान के सही प्रकार से अध्ययन करने के लिये दोनों ही रीतियों का प्रयोग समान आवश्यक था। इस प्रकार मैंगर ने निगमन रीति को इसकी खोई हुई प्रतिष्ठा फिर से प्रदान कराने में काफी महत्वपूर्ण कार्य किया। इस प्रकार मैंगर ने

संस्थापक सम्प्रदाय तथा इतिहासवादी सम्प्रदाय को पारस्परिक रूप के पूरक बना कर एक दूसरे के निकटतम लाने का प्रयास किया।

२. फ्रिड्रिक वान वीज़र (१८५१ ई०-१९२६ ई०)
(Freidrich Von Wieser)

वीजर[7] को आस्ट्रियन सम्प्रदाय का दूसरा स्तम्भ कहा जा सकता है। वे मैंगर के दामाद थे तथा मैंगर के वियना विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्षता के पद से १९०३ ई० में अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् स्वय इस पद पर नियुक्त हुये थे। इस प्रकार वे वियना विश्वविद्यालय मे अर्थशास्त्र विभाग के

---

7. वीजर का जन्म १८५१ ई० मे वियना मे हुआ था तथा उनके जीवन का अधिकाश समय भी वियना मे ही व्यतीत हुआ था। विद्यार्थी काल मे उनकी इतिहास तथा समाज विज्ञान मे रुचि होते हुये भी उन्होने व्यवहार शास्त्र का अध्ययन किया था तथा १८७४ ई० मे वियना विश्वविद्यालय से बी० ए० की उपाधि प्राप्त की थी। तत्पश्चात् उन्होंने २ वर्ष तक बाम बावर्क के साथ जर्मनी मे इतिहासवादी सम्प्रदाय के नेताओ, विशेष रूप मे नीज, हिल्डब्राण्ड तथा रोशर, की देख रेख मे अर्थशास्त्र का अध्ययन किया था। ऐतिहासिक अनुसन्धान मे रुचि होने हुये भी वीज़र इतिहासवादी सम्प्रदाय के अनुयायी तथा समर्थक नही थे। १८८४ ई० मे वे प्रेग विश्वविद्यालय मे नियुक्त हो गये तथा इसी विश्वविद्यालय मे १८८९ ई० मे वे राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रोफेसर बन गये थे। १९०३ ई० मे जब मैंगर ने वियना विश्वविद्यालय से राजनीतिक अर्थशास्त्र के अध्यक्ष पद से अवकाश प्राप्त किया तब वीज़र को वियना विश्वविद्यालय मे राजनीतिक अर्थशास्त्र विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया तथा इस पद पर वे १९२२ ई० तक नियुक्त रहे।

१९१७ ई० मे उनकी आस्ट्रिया के संसद (Upper House) मे नियुक्ति हुई तथा Austro-Hungarian Empire के अन्तिम दो मंत्रि मण्डलो मे उन्होंने बडी योग्यता के साथ वाणिज्य मंत्री का कार्य सम्पन्न किया था। वे एक मूल विचारक थे तथा उनका दृष्टिकोण मैंगर व बॉम बावर्क की तुलना मे अधिक विस्तृत था।

उनके लेखन कार्यो मे निम्नलिखित पुस्तके उल्लेखनीय हैं।

1 **Ursprung und Hauptgesetze des Wirtschaftlichen Werthes** (*The Origin and Principal Laws of Economic Values*), 1884.

2 **Der Naturliche Werth** (Natural Value), 1889. इस पुस्तक का १७९३ ई० मे अगरेजी भाषा मे विलियम स्मार्ट द्वारा अनुवाद किया गया था।

3. **Theorie der gesellschaftlichen Wirthschaft** (Theory of Social Economics), 1914. इस पुस्तक का भी १९२७ ई० मे अनुवाद किया गया था। उनकी मृत्यु १९२६ ई० मे हुई थी।

अध्यक्ष के रूप में मैंगर के उत्तराधिकारी थे। सामान्यतः आस्ट्रियन सम्प्रदाय का सदस्य होने के नाते वीज़र ने मैंगर के व्यक्तिपरक विश्लेषण (subjective analysis) का ही समर्थन किया था।

वीजर की प्रथम महत्वपूर्ण पुस्तक **'Ursprung und Hauptgesetze des wirtschaftlichen Werthes (The Origin and Political Laws of Economic Value)** थी। इस पुस्तक में वीजर ने मैंगर के सामान्य विचारों का समर्थन किया है। परन्तु वीजर ने मेंगर के विचारों का केवल समर्थन ही नहीं किया बल्कि उनमें सुधार करके उनका विकास भी किया। सर्वप्रथम वीजर ने Grenznutzen शब्द, जिसका अर्थ सीमान्त उपयोगिता है, का प्रयोग किया तथा आस्ट्रियन सम्प्रदाय को सीमान्त उपयोगिता सम्प्रदाय का दूसरा नाम देने का श्रेय वीजर को ही प्राप्त है।

वीजर ने मैंगर के इस मौलिक कथन का समर्थन किया कि किसी वस्तु का मूल्य इस कारण होता है क्योंकि वह प्रत्यक्ष रूप से आवश्यकता की पूर्ति करती है तथा इस कारण उपभोग वस्तु होती है। उत्पादन वस्तुओं को मूल्य प्राप्त होने का एकमात्र कारण यह है कि इनके द्वारा उपभोग वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। इस प्रकार वीजर ने मैंगर की Theory of Imputation का समर्थन किया। परन्तु वीजर ने Theory of Imputation में महत्वपूर्ण सुधार भी किये। उन्होंने इस सिद्धान्त का उत्पत्ति के साधनों—भूमि, श्रम, पूँजी—के पारितोषिकों—वेतन, ब्याज, लगान—की व्याख्या करने के लिये भी प्रयोग किया तथा यह स्पष्ट किया कि उत्पत्ति के साधनों की पूर्ति व माग में परिवर्तन होने पर उनके मूल्यों—पारितोषिकों—में भी परिवर्तन हो जावेंगे।

मूल्य का सिद्धान्त

वस्तुओं को मूल्य कहा से प्राप्त है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुये वीजर कहते हैं कि यह उनकी उपयोगिता से प्राप्त होता है। परन्तु वीजर ने यह बतलाया कि परिस्थितियों में परिवर्तन होने पर वस्तुओं की उपयोगिता में भी परिवर्तन हो जाते है तथा परिणामस्वरूप वस्तु के मूल्य में भी परिवर्तन हो जाते हैं। वीजर के विचारानुसार वस्तु का मूल्य उपभोक्ता की आवश्यकता की तीव्रता तथा वस्तु की आवश्यकता की पूर्ति करने की शक्ति पर आधारित होता है। वीजर ने यह बतलाने का प्रयास किया कि जैसे-जैसे उपभोक्ता को वस्तु की अधिक इकाईयां प्राप्त होती जाती है वैसे-वैसे उपभोक्ता की आवश्यकता की सन्तुष्टि होने के कारण सन्तोष की मात्रा कम होती जाती है तथा एक सीमा ऐसी आ जाती है कि सन्तोष घृणा में बदल जाता है। परन्तु आर्थिक वस्तुओं की पूर्ति सीमित होने के कारण इनकी मात्रा इतनी अधिक नहीं होती है कि उपभोक्ता को इस स्थिति का अनुभव हो। पूर्ति के सीमित होने के कारण आर्थिक वस्तुओं का उपभोग केवल 'सीमान्त उपयोगिता' की उस सीमा तक ही हो पाता है

जहाँ पर वस्तु का मूल्य उसकी सीमान्त उपयोगिता के समान होता है। इस प्रकार वीजर ने मूल्य के व्यक्तिपरक अथवा मनोविज्ञानवादी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

मूल्य के सिद्धान्त के क्षेत्र में वीजर का विशेष योगदान मैंगर द्वारा प्रतिपादित Theory of Imputation में उपयुक्त सुधार करना था। मैंगर ने इस प्रमुख सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था कि प्रथम क्रम (First order) की वस्तुओ, अथवा जिन वस्तुओ का प्रत्यक्ष रूप से उपभोग किया जाता है, मे मूल्य प्राप्त करने की विशेषता होती है। उत्पत्ति के उन सभी साधनो का मूल्य, जो प्रथम क्रम की वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, नीचे क्रम (lower order) की वस्तुओ व साधनों के मूल्य के रूप मे व्यक्त होता है। इस सम्बन्ध मे वीजर ने निम्न प्रकार लिखा है।

"उत्पत्ति का प्रत्येक साधन, प्रत्येक यन्त्र, प्रत्येक भूखण्ड अथवा कच्ची सामग्री का टुकडा, श्रम की प्रत्येक सेवा उद्योग मे सभी साधनों के प्रथक-प्रथक योगदान का प्रतीक है। इस योगदान का उद्योग मे वस्तु के उत्पादन के रूप मे कुछ परिणाम प्राप्त होता है तथा प्रत्येक सहयोगी साधन को परिणाम का कुछ हिस्सा प्राप्त होता है। इस हिस्से के मूल्य पर ही साधन का मूल्य निर्भर होता है"।[8] वीजर ने आस्ट्रियन सम्प्रदाय के मूल्य के व्यक्तिपरक सिद्धान्त को व्यक्ति तक ही सीमित नही रखा था; बल्कि उन्होने इस सिद्धान्त को समस्त समाज की अर्थव्यवस्था मे भी लागू करने का भरसक प्रयास किया था।

वीजर मूल्य के श्रम सिद्धान्त के कट्टर आलोचक थे। वे प्रत्येक उस सिद्धान्त को जिसमे उत्पादन व्यय को मानव श्रम के रूप मे विचारा जाता था एक बहुत ही गलत विचार समझते थे। उनका कहना था कि उत्पत्ति के अन्य साधनो के समान श्रम को भी इसकी वस्तुओ—श्रम द्वारा बनी वस्तुओ—से मूल्य प्राप्त होता है। उन्होने वस्तुओ के व्यय को सीमान्त उपयोगिता के रूप मे विचारा है। उनका कहना था कि "जहाँ व्यय का नियम लागू होता है वहा उपयोगिता मूल्य का स्रोत होती है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण सत्य यह है कि सीमान्त उपयोगिता मूल्य का मापक होती हैं। इसी प्रकार वीजर ने लिखा है कि "जो व्यक्ति व्यय का विचार किये बिना उपयोगिता का विचार करता है वह इस सत्य को भूल जाता है कि एक वस्तु की उपयोगिता मे अन्यो की उपयोगिता होती है।" वीजर का कहना था कि वस्तुओ का मूल्य सीमान्त इकाई के उत्पादन व्यय द्वारा निर्धारित होता है, जो वस्तु की सीमान्त उपयोगिता का प्रतीक होता है। इसका अर्थ यह है कि सस्थापित उत्पादन व्यय मूल्य के सामान्य सीमान्त उपयोगिता नियम का ही एक विशेष रूप है।

---

8 "Every means of production, every tool, every piece of land or raw material, every service of labour, represents a share in an undertaking This share contributes to the result of the undertaking and consequently gets ascribed to it a quota of the result, and upon the amount of this result its value must depend" (Weiser · *Der naturliche Werth p. 71,*

वीजर ने अर्थशास्त्र का विस्तृत अर्थ लिया है। इस सम्बन्ध मे वीजर की पुस्तक **Theorie der gesellschaftlichen Wirthschaft** (Theory of Social Economics) उनकी सर्वोत्तम पुस्तक थी। आस्ट्रियन सम्प्रदाय के साहित्य मे इस पुस्तक को वही उच्च स्थान प्राप्त है जो स्थान मिल की पुस्तक Political Economy को संस्थापक सम्प्रदाय के आर्थिक साहित्य में प्राप्त है। इस पुस्तक की प्रशसा करते हुये प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्री W. C. Mitchell ने इस पुस्तक के अँगरेजी भाषा मे A. F Hinrichs द्वारा किये गये अनुवाद की प्रस्तावना मे इस प्रकार लिखा है

"Wieser's **Social Economics** holds a place in the literature of the Austrian school such as John Stuart Mill's **Political Economy** *holds in the literature of classical theory. It sums up, systematizes*, and extends the doctrines developed by the founder of the school, the author and his fellow workers"[9]

एक प्रकार से वीजर की यह पुस्तक मिल की पुस्तक की तुलना मे उत्तम थी क्योंकि मिल की पुस्तक सस्थापित सिद्धान्तो की पुनर्व्याख्या ही थी परन्तु वीजर की पुस्तक मूल लेखन कार्य था तथा लेखक के प्रति विषय के गहन अध्ययन का प्रतीक थी। परन्तु दुर्भाग्यवश पुस्तक के १९१४ ई० मे लडाई के समय मे प्रकाशित होने के कारण इसकी ओर पाठकों का पर्याप्त मात्रा मे ध्यान आकर्षित नही हुआ। १९२४ ई० मे जब पुस्तक का दूसरा सस्करण प्रकाशित हुआ तथा जब १९२७ ई० मे पुस्तक का अगरेजी भाषा मे अनुवाद प्रकाशित हुआ तब अर्थशास्त्रियो का ध्यान पुस्तक की ओर आकर्षित हुआ तथा लेखक को प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

वीजर की यह पुस्तक चार पुस्तकों अथवा खण्डो मे विभाजित है। प्रथम पुस्तक सरल अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त (The Theory of Simple Economy) की, *जिसकी आधारशिला आर्थिक मनुष्य है*, विवेचना है। इस पुस्तक मे मानव आवश्यकताओ, इनकी पूर्ति तथा भविष्य आवश्यकताओ आदि व्यक्तिपरक तत्वो की व्याख्या तथा आर्थिक विश्लेषण मे इन तत्वो के महत्व की व्याख्या की गई है। सरल अर्थव्यवस्था, जिसका केन्द्र व्यक्ति है, का लक्ष्य यथासभव अधिकतम उपयोगिता की प्राप्ति है। वीजर की सरल अर्थव्यवस्था मे मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करना है। जिस सरल अर्थव्यवस्था का चित्रण वीजर ने किया है उसमे मूल्य के नियम व एकाधिकार की समस्या नही हैं तथा व्यक्ति विवेकशील है तथा वह आन्तरिक व बाह्य प्रभावो से मुक्त है। लेखक ने ऐसी अर्थव्यवस्था के

अन्तर्गत व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन किया है तथा व्यक्ति के इस व्यवहार को व्यापक घोषित किया है जो सभी स्थानों पर पाया जाना चाहिये।

दूसरी पुस्तक, जिसका शीर्षक 'Theory of Social Economy' है, मे वीजर ने उस पेचीदा अर्थव्यवस्था का अध्ययन किया है जिसमे प्रत्येक व्यक्ति अपने निजी हित अथवा स्वार्थ का पालन करता है, जहाँ अनेक सामाजिक वर्ग है, जहाँ वस्तुओ के मूल्य प्रतियोगी व एकाधिकारी बाजारो मे निर्धारित होते है, जहाँ द्रव्य व साख के समान पूँजीवादी विनिमय की सस्थाये उपस्थित हैं तथा जहाँ राज्य व्यक्ति के निजी हित के रास्ते मे कोई बाधाये उपस्थित नही करता है। यह पुस्तक अन्य पुस्तको की तुलना मे अधिक लम्बी (इसमे २५६ पृष्ठ है) तथा अधिक सगठित है। इस पुस्तक मे वीजर ने पेचीदा पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे आर्थिक सस्थाओ की प्रकृति तथा उनके अन्तसम्बन्धो का अध्ययन किया है।

तीसरी पुस्तक, जिसका शीर्षक "Theory of the State Economy" है तथा जिसमे कुल केवल १४ पृष्ठ है, मे वीजर ने समाज मे राज्य हस्तक्षेप की व्याख्या की है तथा व्यक्ति इस राज्य हस्तक्षेप के अधीन होता है। राज्य समाज मे जन साधारण के हित मे अनेक आर्थिक क्रियाओ को सपन्न करता है। राज्य इन कार्यो पर हुये व्यय को करो के द्वारा प्राप्त करता है। वीजर का कहना है कि राज्य-नियमित अर्थव्यवस्था मे भी उपयोगिता सिद्धान्त ठीक उसी प्रकार से लागू होता है जिस प्रकार से यह सरल अर्थव्यवस्था मे, जिसमे राज्य किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही करता है, लागू होता है। अधिकतम उपयोगिता के सिद्धान्त के आधार पर राज्य यह निर्णय करता है कि इसे कौनसे कार्यो को समाज मे सपन्न करना चाहिये तथा व्यय को पूरा करने के लिये किन साधनो द्वारा आगम प्राप्त करना चाहिये।

चौथी पुस्तक, जिसका शीर्षक "Theory of World Economy" है तथा जिसमे कुल २५ पृष्ठ हैं, मे वीजर ने वस्तुओ के अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यो, स्वर्ण प्रवाह—आयात व निर्यात—, भुगतानाशेष, आयात-निर्यात करो इत्यादि उन आर्थिक समस्याओं की विवेचना की है जो एक विदेशी-व्यापार अर्थव्यस्था (open economy) मे उत्पन्न होती है। वे स्वदेशी उद्योगो को सरक्षण प्रदान करने के पक्ष मे थे तथा उनके विचारानुसार यह आयात करो के द्वारा किया जा सकता था। इस प्रकार वीजर की पुस्तक 'Social Economics' एक व्यापक लेखन कार्य है जिसमे लेखक ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मनुष्य की आर्थिक क्रियाओ का लक्ष्य, न केवल सरल अर्थव्यवस्था मे बल्कि जटिल अर्थव्यवस्था मे भी, अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति करना होता है। यह लक्ष्य व्यक्ति का ही नही बल्कि समाज के प्रतिनिधि के रूप मे राज्य का भी होता है।

३. यूजिन वान बॉम-बावर्क (१८५१-१९१४ ई०)
(Engen Von Bohm Bawerk)

बॉम बावर्क[10] *आस्ट्रियन सम्प्रदाय के तीसरे स्तम्भ अर्थशास्त्री थे। अँगरेजी भाषीविद्वान बावर्क के नाम से मेंगर तथा वीजर की अपेक्षा अधिक परिचित हैं।* वे मार्क्सवादी अर्थशास्त्र पर आक्रमण करने तथा व्याज के सिद्धान्तो का आलोचनात्मक व्यापक इतिहास लिखने के लिये प्रसिद्ध हैं।

अपनी १८८४ ई० मे प्रकाशित पुस्तक **'Geschichte und Kritik der Kapitalzins Theorien'** (History and Criticism of Interest Theories) *मे बावर्क ने व्याज के समस्त प्राचीन सिद्धान्तो की आलोचना की थी।* चार वर्ष पश्चात १८८८ ई० मे प्रकाशित अपनी दूसरी पुस्तक **'Positive Theorie des Kapitales'** (Positive Theory of Capital) मे बावर्क ने अपने नये ब्याज के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। बावर्क के ब्याज के सिद्धान्त को प्रतिपादित करने के दो मुख्य कारण थे। प्रथम, वे ब्याज के निर्धारण मे सीमान्त उपयोगिता के सिद्धान्त का प्रयोग करने के इच्छुक थे। दूसरे, वे मार्क्स के बढते हुये प्रभाव को नष्ट करने के इच्छुक थे।

---

10 *बाम बावर्क का जन्म १८५१ ई० मे मोराव्या (Moravia) नामक स्थान मे हुआ था।* बावर्क ने वियना विश्वविद्यालय से कानून की उपाधि प्राप्त की थी। उन्होंने जेना, हीडलबर्ग तथा लेपजिग विश्वविद्यालयो मे राजनीतिक अर्थशास्त्र का अध्ययन किया था। १८८१ ई० से लेकर १८८६ ई० तक वे University of Innsbruck मे प्रोफेसर रहे थे। वे १८९५ ई० मे वित्तमत्री नियुक्त हुये तथा इस पद पर वे १९०४ ई० तक रहे। वित्तमत्री के रूप मे उन्होंने अपनी योग्यता का परिचय दिया तथा वे एक सफल वित्तमत्री सिद्ध हुये। १९०४ ई० मे सरकारी नौकरी को छोडकर वे वियना विश्वविद्यालय मे प्रोफेसर नियुक्त हो गये। उनकी प्रसिद्ध पुस्तको मे २ खण्डो मे प्रकाशित **Capital und Kapitalzins** (Capital and Interest Theories, 2 Vols) उल्लेखनीय है। प्रथम खण्ड जिसका शीर्षक **Geschichte und Kritik der Kapitazins Theoria** (History and Criticism of Interest Theories) है, १८८४ ई० मे तथा दूसरा खण्ड जिसका शीर्षक **Positive Theorie des Kapitales** (Positive Theory of Capital) है १८८८ ई० मे प्रकाशित हुआ था। *ये दोनो पुस्तकें काफी सफल सिद्ध हुई थी तथा बावर्क के जीवन काल मे ही इनके कई सस्करण हो चुके थे।* दोनों ही पुस्तको का ग्लास्गो विश्वविद्यालय के प्रोफेसर विल्यम स्मार्ट ने १८९० ई० व १८९१ ई० मे अनुवाद किया था। प्रथम खण्ड के अनुवाद का शीर्षक 'Capital and Interest' तथा दूसरे खण्ड के अनुवाद का शीर्षक 'Postive Theory of Capital' था। बावर्क का प्रसिद्ध लेख 'Outlines of the Theory of Commodity Value' १८८६ मे प्रकाशित हुआ था। उनकी पुस्तिका 'Karl Marx and the Close of His System' मार्क्सवाद की आलोचना है। उन्होंने अमरीका व यूरोप की अनेक आर्थिक पत्रिकाओं मे लेख लिखे थे।

बॉम बावर्क के ब्याज के सिद्धान्त का साराश यह है कि ब्याज की उत्पत्ति मनुष्यो द्वारा वर्तमान उपभोग को भावी उपभोग की अपेक्षा अधिक महत्त्व देने के कारण होती है। प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव अथवा मनोवृत्ति ऐसी होती है कि उसके लिये वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति भावी आवश्यकताओं की पूर्ति से अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। दूसरे शब्दो मे *वर्तमान सन्तोष अथवा उपभोग की अपेक्षा भविष्य सन्तोष अथवा* उपभोग पर कुछ बट्टा लगता है, अर्थात् मनुष्य को अपने वर्तमान उपभोग को भविष्य मे स्थगित करने के लिये कुछ प्रलोभन देना आवश्यक हो जाता है। यही बट्टा अथवा प्रलोभन ब्याज है जो बचतकर्त्ताओ को बचत करने के लिये प्रेरित करने के लिये प्राप्त होना चाहिये।

परन्तु प्रश्न यह है कि मनुष्य वर्तमान उपभोग अथवा सन्तोष को भावी उपभोग अथवा सन्तोष की अपेक्षा क्यो अधिक महत्व देते है? बॉम बावर्क के मतानुसार मनुष्यो के ऐसा करने के निम्नलिखित तीन कारण है।

(१) भविष्य के अनिश्चित होने के कारण भविष्य की आशा का पूर्णरूप से मूल्याकन करना सम्भव नही है। मनुष्य स्वभाव से ऐसा प्राणी है कि वह निश्चित को अनिश्चित की अपेक्षा अधिक महत्व देता है। इसी कारण मनुष्य वर्तमान सन्तोष अथवा उपभोग को अनिश्चित भविष्य के लिये स्थगित करने के लिये तैयार नही होते हैं। मनुष्य वर्तमान के सम्बन्ध मे निश्चित रूप से यह जानते हैं कि वे उपभोग करके सन्तोष प्राप्त कर सकते है। परन्तु भविष्य का कुछ पता नही होता है, मनुष्य उपभोग कर सकेगा अथवा नही, इस बारे मे कुछ नही कहा जा सकता है। मृत्यु पर अभी भी मनुष्य का अधिकार नही हो पाया है तथा वर्तमान की अपेक्षा भविष्य मे मृत्यु की सम्भावना अधिक होती है।

(२) वर्तमान आवश्यकताये भविष्य की आवश्यकताओ की अपेक्षा अधिक बलवान होती है तथा मनुष्य को उनकी सन्तुष्टि न होने पर कष्ट का अनुभव होता है।

(३) वर्तमान वस्तुये भावी वस्तुओ से विशिष्ट रूप से श्रेष्ठ होती हैं।

उपरोक्त प्रथम तथा दूसरे कारणो का सम्बन्ध बचतकर्त्ताओ की मनोवृत्ति से होने के कारण इस सिद्धान्त को ब्याज का मनोविज्ञानवादी सिद्धान्त भी कहा जाता है।

ब्याज का यह सिद्धान्त कम से कम दो कारणो से महत्त्वपूर्ण है। प्रथम, यह सिद्धान्त उत्पादक तथा अनुत्पादक दोनो प्रकार के ऋणों पर ब्याज प्राप्त होने के कारण को समझाता है। ब्याज के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त ने ब्याज की केवल उत्पादक ऋणो के सम्बन्ध मे व्याख्या की है; जबकि ऋण लेने वाला ऋण को उत्पादक प्रयोग मे न लाने पर भी ब्याज देता है। इस प्रकार के ब्याज के बारे मे सीमान्त

उत्पादकता का सिद्धान्त कुछ नहीं कहता है। यह अभाव इस सिद्धान्त में दूर हो जाता है। उत्पादक तथा अनुत्पादक पूँजी पर व्याज इसीलिये देना पड़ता है क्योंकि ऋण-दाता दोनों प्रकार के ऋण देने में वर्तमान सतोष का त्याग करता है। उसे इससे कोई तात्पर्य नहीं है कि उसके त्याग के फलस्वरूप प्राप्त ऋण को ऋण लेने वाले ने किस प्रकार प्रयोग किया है। दूसरे यह सिद्धान्त इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि यदि साहसी अपनी ही व्यक्तिगत बचत को अपने कामों में लगाये तो उस धन पर व्याज क्यों दिया जाना चाहिये।

आस्ट्रियन व सस्थापक सम्प्रदायों के मध्य सम्बन्ध

यद्यपि आस्ट्रियन सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियों ने स्मिथ, रिकार्डो तथा अन्य अर्थशास्त्रियों के मूल्य के उत्पादन व्यय सिद्धान्तों की आलोचना करके उनके स्थान पर मूल्य के व्यक्तिपरक सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, परन्तु उनका अर्थशास्त्र सस्थापित अर्थशास्त्र से बहुत अधिक भिन्न नहीं है। आस्ट्रियन अर्थशास्त्री सस्थापित मूल्य सिद्धान्त के आलोचक होते हुये भी समाजवादी नहीं है। सस्थापित अर्थशास्त्र के समान आस्ट्रियन सम्प्रदाय के अर्थशास्त्र में भी व्यक्ति को महान महत्व दिया गया है। यदि आस्ट्रियन अर्थशास्त्री सस्थापित अर्थशास्त्र के विरोधी हुये होते तो मैंगर ने निगमन रीति का कदापि समर्थन न किया होता। मैंगर-श्मोलर प्रसिद्ध वाद-विवाद तथा आस्ट्रियन सम्प्रदाय का समाजवाद के प्रति कड़ा विरोध (बॉम बावर्क ने मार्क्सवाद की अपनी पुस्तिका 'Karl Marx and the Close of His System' में कड़ी आलोचना की थी) इस बात के प्रतीक हैं कि आस्ट्रियन सम्प्रदाय तथा सस्थापक सम्प्रदाय में, कुछ विषयों पर मूल मतभेद होते हुये भी, विरोध नहीं था। इसके विपरीत काफी बातों में दोनों सम्प्रदायों में समानता थी।

आस्ट्रियन अर्थशास्त्रियों का मुख्य उद्देश्य सस्थापित अर्थशास्त्र में सुधार करके इसको दोषों से मुक्त करना था। उनके सिद्धान्त सस्थापित आर्थिक सिद्धान्तों के पूरक है, प्रतियोगी नहीं। सस्थापित अर्थशास्त्र के दोषों को दूर करके वास्तव में उन्होंने नव सस्थापकवाद के उस आन्दोलन का श्रीगणेश किया जिसका विकास नट विक्सेल (Knut Wicksell), एल्फ्रेड मार्शल (Alfred Marshall) तथा पीगू (A. C. Pigou) के कुशल हाथों द्वारा हुआ था। मार्शल ने अपने मूल्य सिद्धान्त में उत्पादन व्यय तथा उपयोगिता दोनों को समान महत्व दिया था। इस सत्य की *व्याख्या करते हुये कि सस्थापित अर्थशास्त्र तथा आस्ट्रियन सम्प्रदाय के अर्थशास्त्र में* कोई विरोध नहीं है प्रो० हैने ने अपनी पुस्तक 'History of Economic Thought' में निम्न प्रकार लिखा है।

"After all has been said, it is nevertheless true that the Austrian School's economics is essentially "Classical" This appears in their

opposition to Socialism and Historicism. It appears in the fact that their main ideas were soon to be combined with classical doctrines to establish a Neo-classicism. After all, classicism rested upon a philosophy and a psychology. The Austrians in their large element of materialism, their individualism, and their hedonism, were at one with the classical economics."[11]

आस्ट्रियन सम्प्रदाय का प्रभाव

यद्यपि आज आस्ट्रियन सम्प्रदाय की विचारधारा लगभग एक शताब्दी पुरानी है परन्तु आज भी अर्थशास्त्र विज्ञान में इस विचारधारा के गहरे प्रभाव के चिन्ह विद्यमान हैं। सीमान्त उपयोगिता का विचार आज भी वर्तमान मूल्य सिद्धान्त में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आज अर्थशास्त्र की सभी पाठ्य पुस्तकों में सीमान्त उपयोगिता के सिद्धान्त की व्याख्या पाई जाती है। यह इस सत्य का परिणाम है कि आस्ट्रियन सम्प्रदाय के अर्थशास्त्र में इसको १०० वर्ष पश्चात् भी जीवित रखने वाले मूल तत्व विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त आस्ट्रियन सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियों ने इतिहासवादी सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियों से काफी समय तक सफल टक्कर लेकर तथा मार्क्सवाद का कड़ा विरोध करके सस्थापित अर्थशास्त्र को खण्डित होने से बचाकर सस्थापित अर्थशास्त्र तथा पूँजीवाद की महत्वपूर्ण सेवा की है। आर्थिक विचारों के इतिहास में आस्ट्रियन सम्प्रदाय को सदा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त रहेगा।

विशेष अध्ययन सूची

1. L H. Haney : History of Economic Thought, Chapter, XXXI.
2. P. C. Newman The Development of Economic Thought, Chapter, XXI.
3. Leo Rogin : The Meaning and Validity of Economic Theory, Chapters, 12 and 13
4. J. F. Bell A History of Economic Thought, Chapter, 19.
5. Robert Lekachman : A History of Economic Ideas. Chapters 10 and 11.
6. Spengler & Allen : Essays in Economic Thought, Essays Nos. 24 and 24.
7. Eric Roll ; A History of Economic Thought Chapter, VII.

---

11 L. H. Haney · *History of Economic Thought*, p 630.

8 J. M Ferguson : Landmarks of Economic Thought, Chapter, XII
9. S. H. Patterson . Readings in the History of Economic Thought, Part IV, 2.
10. J A. Schumpeter : History of Economic Analysis, pp 827 and 844-850.
11. W. A Scott : Development of Economics, Chapter, XXI
12. George J. Stigler : Production and Distribution Theories, Chapter, VII.

प्रश्न

1. "In the early seventies began a noteworthy series of attempts to reconstruct some of the leading doctrines of political economy on a basis in many respects different from that on which the classical economists built". (Scott)
   Explain fully the above statement, with special reference to the contribution made by the Austrian School to economic thought.
   (आगरा, १६५०; १६६०; राजस्थान, १६५५)
2. Bring out clearly the contribution to economic thought of the Austrian School with special reference to Menger
   (आगरा, १६५१)
3. Give a brief and critical account of the theories of the Austrian School.
   (आगरा, १६५४, १६५६)
4. Explain the view that in respect of fundamentals the Austrian School was complementary rather than antagonistic to the Classical School.
   (आगरा, १६५८)
5. *Evaluate the contributions of the Marginal Utility School.*
   (कर्नाटक, १६५६)
6. Discuss Bohm Bawerk's contributions to the theory of value and capital
   (कर्नाटक, १६५६)
7. Explain the subjective theory of value of the Austrian School
   (कर्नाटक, १६५८)

8. Critically examine Bohm Bawerk's theory of roundabout methods of production. In what manner does it lead to the emergence of interest ?

(अलीगढ, १९५९)

9. Assess the positive contributions of Austrian School to the development of economic theories.

राजस्थान, १९४९; १९६०)

10. 'But among the great achievements of which our science can be proud his (Bohm Bawerk's) was one of the greatest.' (Schumpeter)

Examine this statement and assign to Bohm Bawerk his proper place in the history of economic thought.

(राजस्थान, १९६१)

11. Explain Bohm-Bowerk's theory of capital and interest.

(अलीगढ, १९५८)

12. Bring out the salient characteristics of the theory of capital of Austrian School.

(अलीगढ १९५६)

अध्याय २६

गणितय सम्प्रदाय

(The Mathematical School)

गणितय सम्प्रदाय सीमान्त उपयोगिता अथवा व्यक्तिपरक सम्प्रदाय की ही एक शाखा है। इस सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियो, जिनमे फ्रांसीसी अर्थशास्त्री ऑगस्टिन कोर्नो (Augustin Cournot), अंगरेज अर्थशास्त्री विलियम स्टैन्ले जेवन्स (William Stanley Jevons), जर्मन अर्थशास्त्री हरमन हेन्रिक गौसन (Herman Heinrich Gossen), प्रसिद्ध फ्रांसीसी अर्थशास्त्री लियुन वालरस (Leon Walras), स्वीडन के अर्थशास्त्री गस्टव कैसल (Gustav Cassel) तथा प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्री इर्विंग फिशर (Irving Fisher) इत्यादि सम्मिलित हैं, के अर्थशास्त्र की प्रमुख विशेषता यह है कि इन अर्थशास्त्रियो ने अर्थशास्त्र मे गणित का क्रमबद्ध प्रयोग किया है। इस अध्याय का उद्देश्य गणितय अर्थशास्त्र के विकास तथा गणितय सम्प्रदाय के प्रमुख सदस्यों के आर्थिक विचारो की व्याख्या करना है।

एन्टोइन ऑगस्टिन कोर्नो (१८०१ ई०–१८७७ ई०)

(Antoine Augustin Cournot)

प्रसिद्ध फ्रांसीसी गणित-शास्त्रज्ञ व दार्शनिक ऑगस्टिन कोर्नो गणितय अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अन्वेषक थे। आज सभी यह स्वीकार करते हैं कि गणितिय सम्प्रदाय का श्रीगणेश १८३८ ई० मे कोर्नो की प्रसिद्ध पुस्तक **'Recherches sur les Principles mathematiques de la theorie des richesses'**[1]

---

1. कोर्नो की यह पुस्तक उन पुस्तको की असफलता का, जो अपने समय से आगे होती है, उत्तम उदाहरण है। कई वर्ष तक इस पुस्तक की एक प्रति की भी बिक्री नही हो सकी थी। १८६३ ई० में जनता का ध्यान अपनी पुस्तक की ओर आकर्षित करने के उद्देश्य से लेखक ने इसको सरल करके **Principles de la theorie des richesses** के शीर्षक से छपवाई थी, परन्तु लेखक को अपने उद्देश्य मे सफलता प्राप्त न हो सकी। १८७६ ई० मे पुस्तक को पुन अधिक सरल रूप मे **'Revue Sommaire des Doctrines economiques'** नामक शीर्षक से छापा गया परन्तु परिणाम पहले के समान ही प्राप्त हुआ। मृत्यु के केवल कुछ ही समय पूर्व जेवन्स द्वारा पुस्तक की प्रशसा की जाने के पश्चात् ही कोर्नो की पुस्तक की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित हो पाया था।

(Researches into the Mathematical Principles of the Theory of Wealth) के प्रकाशन के साथ हुआ था। १८३८ ई० मे इस महान पुस्तक को लिख कर उन्होने सामान्य सतुलन विश्लेषण की गणितिय रूप में व्याख्या की थी। एकाधिकार की मान्यता के आधार पर कोर्नो ने माँग के नियम को—वस्तु की माँग उसके मूल्य पर निर्भर करती है—गणितिय समीकरण के द्वारा निम्नलिखित प्रकार व्यक्त किया था।

$$D=F(p)$$

कोर्नो ने यह स्पष्ट किया कि अधिकतम कुल मूल्य अथवा आगम वस्तु की माँग की गई कुल मात्रा को उसके मूल्य से गुणा करके प्राप्त हो सकता है। अपने मूल्य निर्धारण के विश्लेषण को एकाधिकारी फर्म की मान्यता से आरम्भ करके कोर्नो ने द्वयधिकार (duopoly) के अन्तर्गत भी मूल्य निर्धारण की समस्या का अध्ययन किया था। कोर्नो के विचारानुसार द्वयधिकार मे वस्तु का मूल्य एकाधिकार की तुलना मे कम होगा तथा यह मूल्य एकाधिकार मूल्य तथा शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत विद्यमान मूल्य के मध्य कही होगा। कोर्नो के मतानुसार वस्तु के प्रति इकाई उत्पादन व्यय के कम होने के कारण उद्योग मे एकाधिकार स्थापित हो जावेगा तथा पूर्ण प्रतियोगिता की उपस्थिति असम्भव थी।

यद्यपि कोर्नो का प्रयास प्रशंसनीय था क्योकि पूर्ण प्रतियोगिता (जो केवल एक मिथ्या है) की मान्यता को न लेकर कोर्नो ने मूल्य निर्धारण की समस्या का अध्ययन एकाधिकार व द्वयधिकार की वास्तविक परिस्थितियो की मान्यता के अन्तर्गत किया था, परन्तु फिर भी कोर्नो के विचारो का प्रचार न हो सका। १८८३ ई० मे बर्टरेंड (Bertrand) ने **Journal des Savants** नामक पत्रिका मे कोर्नो के विचारो की आलोचना की थी। १८९० ई० मे प्रकाशित अपनी पुस्तक **Principles of Economics** मे मार्शल ने भी इस की आलोचना की थी। १८९६ ई० परेटो (Vilfredo Pareto) तथा १८९७ई० मे ऐजवर्थ (Edgeworth) ने भी, यह तर्क प्रस्तुत करके कि उस स्थिति मे जहाँ केवल दो विक्रेता होते है मूल्य अस्थिर (unstable) होगा तथा पूर्ति मे असीमित मात्रा मे वृद्धि होने की स्थिति मे मूल्य शून्य भी हो सकता था, कोर्नो की आलोचना की थी।

कोर्नो की पुस्तक का १८९७ ई० मे अंगरेजी भाषा मे अनुवाद हो पाया था। कोर्नो के विश्लेषण मे दोष होते हुये भी यह कहना सत्य है कि कोर्नो प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होने मूल्य निर्धारण का द्वयधिकार के अन्तर्गत अध्ययन करने का प्रयास किया था। उन्होने यह भी स्पष्ट किया था कि मूल्य का जो सिद्धान्त एकाधिकार व द्वयधिकार की परिस्थितियो मे मूल्य निर्धारण की व्याख्या करता है, वही सिद्धान्त अल्पाधिकार (oligopoly) तथा द्विपक्षिय एकाधिकार (bilateral monopoly) की परिस्थितियो मे भी लागू हो सकता है। इस प्रकार यह कहना अनुचित

नहीं होगा कि कोर्नो ने वर्तमान एकाधिकारी प्रतियोगिता सिद्धान्त (monopolistic competition theory) के विकास का सर्वप्रथम श्रीगणेश किया था।

हरमन हेन्रिक गौसन (१८१० ई० १८५८ ई०)
(Hermann Heinrich Gossen)

जर्मन लेखक गौसन को सीमान्तवाद (marginalism) का जनक कहा जा सकता है। उन की पुस्तक **'Entwicklung der Gesetze des menschlichen Verkehrs und der daraus fliessenden Regeln fur menschliches Handeln'** (The Development of the Laws of Exchange among Men and of the Consequent Rules of Human Action), जो १८५४ ई० मे प्रकाशित हुई थी, ने लोगों का विशेष ध्यान आकर्षित नहीं किया था। यद्यपि यह पुस्तक लेखक के २० वर्षों के परिश्रम का परिणाम थी परन्तु दुर्भाग्यवश समय पुस्तक के अनुकूल सिद्ध न हो सका। अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों का ध्यान गौसन की पुस्तक की ओर काफी समय पश्चात उस समय आकर्षित हुआ था जब जेवन्स ने १८७९ ई० मे अपनी पुस्तक 'Theory of Political Economy' के दूसरे सस्करण की प्रस्तावना मे इस की चर्चा की थी। गौसन की पुस्तक को १८८९ ई० मे जर्मन भाषा में पुनमुद्रित किया गया था। गौसन की पुस्तक अर्थशास्त्र को गणितिय रूप प्रदान करने का एक उत्तम प्रयास है। गौसन का दर्शन शास्त्र मुख्यता उपयोगितावादी (utilitarian) तथा आनन्दजीववादी (hedonistic) है। जीवन मे समस्त मानव आर्थिक क्रियाओं का लक्ष्य उपयोगिता अथवा सन्तोष प्राप्त करना होता है। गौसन का कहना था कि आर्थिक सिद्धान्तों का मुख्य दोष उन मे गणित का अभाव था। यद्यपि वे इस सत्य से परिचित थे कि उपयोगिता अथवा सन्तोष को निरपेक्ष मात्राओं के रूप मे मापना सम्भव नहीं है परन्तु रेखागणितिय सिद्धान्तों के द्वारा इस की तुलना की जा सकती है तथा अज्ञात मात्राओं का ठीक उसी प्रकार मापन किया जा सकता है जिस प्रकार ज्योतिष शास्त्र मे दूरी की माप की जाती है।

अर्थशास्त्र मे गौसन का विशेष योगदान उस सिद्धान्त की व्याख्या करने मे है जो कुछ समय पश्चात् सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। गौसन ने सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त की व्याख्या करने के अतिरिक्त यह भी स्पष्ट किया कि यह सिद्धान्त वस्तु के मूल्य निर्धारण का आधार है। सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त के क्षेत्र मे गौसन ने बीजगणितिय समीकरणों तथा रेखाचित्रों के द्वारा यह व्यक्त किया कि उपभोक्ता के पास वस्तु की मात्रा,मे वृद्धि होने के साथ उसको प्रत्येक अगली वस्तु द्वारा प्राप्त होने वाले सन्तोष की मात्रा मे कमी होती जाती है तथा एक बिन्दु अथवा स्थिति ऐसी आ जाती है जहा सीमान्त इकाई की उपयोगिता उपभोक्ता के लिये शून्य हो जाती है। इसके पश्चात् उपभोक्ता के लिये वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों की उपयोगिता (अथवा सन्तोष), अनुपयोगिता (अथवा असन्तोष) मे

परिवर्तित हो जाती है। इस सम्बन्ध मे गौसन ने निम्नलिखित तीन प्रसिद्ध नियमो का प्रतिपादन किया है।

(१) प्रथम नियम, जो उपयोगिता ह्रास नियम की स्पष्ट व्याख्या है, का सार यह है कि वस्तु के उपभोग द्वारा प्राप्त होने वाले सन्तोष (उपयोगिता) की मात्रा उस वस्तु की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के साथ कम होती जाती है। ऐसा सन्तुष्टता का विन्दु प्राप्त होने तक होता रहता है।[2]

(२) दूसरे नियम का सार यह है कि उपभोक्ता को अधिकतम सन्तोष (उपयोगिता) उसी स्थिति मे प्राप्त होता है जब प्रत्येक अनेक वस्तुओं, जिनका उपभोक्ता उपभोग करता है, से प्राप्त सीमान्त सन्तोष (उपयोगिता) की मात्रा समान होती है। दूसरे शब्दो मे यह प्रसिद्ध समसीमान्त उपयोगिता का नियम है।[3]

(३) तीसरा सिद्धान्त, जो प्रथम तथा दूसरे सिद्धान्तो से प्राप्त होता है, यह है कि वस्तु को व्यक्तिपरक (उपयोग) मूल्य केवल उसी स्थिति मे प्राप्त होता है जब इसकी पूर्ति इसकी माग की अपेक्षा कम होती है। वस्तु की मात्रा में वृद्धि होने के साथ वस्तु की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई (marginal unit) के मूल्य मे उस समय तक निरन्तर कमी होती जाती है जब तक की यह घट कर शून्य नही हो जाता है।[4]

यद्यपि गौसन ने 'सीमान्त उपयोगिता' शब्द का प्रयोग नही किया है परन्तु उन्होने 'Werth der letzten Atome' शब्द का प्रयोग किया है जिसकी सार सीमान्त उपयोगिता से ही है। गौसन के व्यय सम्बन्धी विचार भी व्यक्तिपरक है। उनके लिये 'व्यय' असन्तोष अथवा अनुपयोगिता (disutility) अथवा कष्ट (pain) की वह मात्रा है जो उत्पादक वस्तु को बनाने मे सहन करता है। वस्तु का मूल्य उस विन्दु पर स्थिर होता है जहाँ पर वस्तु की सीमान्त इकाई को उत्पादन करने में अनुभव हुये त्याग अथवा दुख की मात्रा उस वस्तु के उपभोग के कारण प्राप्त हुये सन्तोष अथवा सुख की मात्रा के समान होती है। इस प्रकार गौसन के विचारानुसार अर्थशास्त्र व्यक्ति को आर्थिक क्रियाओ के क्रम मे अनुभव होने वाले दुख सुख का कलन (calculus) है।

उपयोगिता अथवा सन्तोष के आधार पर ही गौसन ने वस्तुओ का वर्गीकरण किया है। प्रथम श्रेणी की वस्तुएँ, जिन को गौसन ने उपभोग वस्तुओ (Genussmittel) का नाम दिया है वे वस्तुएँ हैं जिनमे सन्तोष प्रदान करने के गुण हैं। दूसरी श्रेणी मे वे वस्तुएँ हैं जिनमें सन्तोष प्रदान करने के पूर्ण गुणों का अभाव होता है तथा जो उपभोग वस्तुओ अथवा प्रथम श्रेणी की वस्तुओ की पूरक होती है। तीसरी श्रेणी मे उत्पादन वस्तुएँ तथा उत्पत्ति के वे साधन—भूमि, श्रम, पूँजी-हैं जिनका मूल्य उनकी प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी की वस्तुओ का उत्पादन करने की योग्यता पर निर्भर होता है। गौसन द्वारा किया गया वस्तुओ का यह वर्गीकरण मैंगर के वस्तुओ के वर्गीकरण से मिलता जुलता है। गौसन ने मूल्य सिद्धान्त के व्यक्तिपरक रूप का प्रतिपादन किया था। उन्होने यह स्पष्ट किया कि वस्तु का मूल्य इसकी सीमान्त उपयोगिता द्वारा निर्धारित होता है तथा इसके साथ ही साथ मूल्य निर्धारण मे सीमान्त अनुपयोगिता (marginal disutility) के महत्व पर भी प्रकाश डाला था। यह गौसन का दुर्भाग्य था कि उनका सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र विज्ञान के विकास मे इतना अधिक तथा महत्वपूर्ण योगदान होते हुये भी अपने जीवन काल मे वे प्रसिद्धि का पात्र न बन सके।

विलियम स्टैनले जेवन्स (१८३५ ई०–१८८२ ई०)
(William Stanley Jevons)

प्रसिद्ध अंगरेज अर्थशास्त्री विलियम स्टैन्ले जेवन्स[5] को केवल सीमान्त विश्लेषण (Marginal Analysis) के विकास मे ही प्रथम श्रेणी का स्थान प्राप्त

5. विलियम स्टैन्ले जेवन्स का जन्म १७३५ ई० मे लिवरपूल, इगलैंड मे हुआ था। १८५१ ई० मे जेवन्स ने University College, London मे प्रवेश किया। कॉलिज मे २ वर्ष तक अध्ययन करने के पश्चात् १८५४ ई० मे उनकी नियुक्ति आस्ट्रेलिया मे टकसाल मे सिक्को को परख करने वाले के पद पर हो गई। १८५९ ई० तक वे इस पद पर नियुक्त रहे। इगलैंड वापिस लौटने पर उन्होने अपना अध्ययन पुन. आरम्भ किया था तथा १८६३ ई० मे एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। तत्पश्चात् उनकी नियुक्ति Owens College, Manchester मे शिक्षक के पद पर हो गई तथा इसी कालेज मे १८६६ ई० मे वे राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त हो गये। १८७६ ई० में वे University College, London मे प्रोफेसर नियुक्त हो गये।

   जेवन्स की रुचि व्यापक थी। वे दर्शनशास्त्र, तर्कशास्त्र, प्राकृतिक विज्ञान तथा राजनीतिक अर्थशास्त्र विषयो मे काफी रुचि रखते थे। वे गणितिय अकशास्त्र के क्षेत्र मे अन्वेषक थे। वे व्यापार चक्र के प्रसिद्ध सूर्य चिन्ह (Sunspot) सिद्धान्त के प्रतिपादक थे। गौसन की प्रसिद्ध पुस्तक **Development of the Laws of Exchange among Men** का अध्ययन सर्वप्रथम उन्होने १८७८ ई० मे किया था तथा अपनी पुस्तक **'Theory of Political Economy'** के दूसरे सस्करण मे, जो १८७९

नही है बल्कि अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे वे अपने अन्य अनेक योगदानों के लिये भी प्रसिद्ध हैं। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक **Theory of Political Economy** जो १८७१ ई० में प्रकाशित हुई थी मिल की १८४८ ई० मे प्रकाशित पुस्तक **Principles of Political Economy** तथा मार्शल की १८९० ई० मे प्रकाशित पुस्तक **Principles of Economics** के मध्य लिखित एक महत्वपूर्ण प्रथम श्रेणी का लेखन कार्य है।

जेवन्स ने राजनीतिक अर्थशास्त्र के अध्ययन को एक नया रूप प्रदान किया। राष्ट्रों के धन को वे ससार मे दरिद्रता को समाप्त करके मानव सुख का साधन बनाना चाहते थे। उन्होने उत्पादन व वितरण की अपेक्षा अपने अर्थशास्त्र मे उपभोग को प्रधानता दी। इस सम्बन्ध मे उनकी पुस्तक **Theory of Political Economy** मिल की पुस्तक **Principles of Political Economy,** जिसमे उपभोग की कोई व्याख्या नही की गई थी, के बिल्कुल विपरीत थी।

जेवन्स के अर्थशास्त्र मे आवश्यकताओ तथा उनकी पूर्ति को बहुत महत्व दिया गया है। अर्थशास्त्र मे आवश्यकताओ के महत्व के सम्बन्ध मे जेवन्स ने लिखा है कि "सम्पूर्ण राजनीतिक अर्थशास्त्र मे मानव आवश्यकताओ की विभिन्नता का नियम सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यद्यपि प्रत्येक आवश्यकता की सन्तुष्टि हो सकती है, परन्तु आवश्यकतायें अनन्त है। एक आवश्यकता की सन्तुष्टि अन्य आवश्यकताओ को जननी होती है। आवश्यकताओं मे एक प्रकार का उत्तराधिकार नियम (law of suc-

---

ई० मैं प्रकाशित हुआ था, उन्होने गौसन के विचारो की मौलिकता को स्वीकार किया था।

अनेक लेखो तथा निबन्धो के लेखक होने के अतिरिक्त जेवन्स कई पुस्तको के भी कुशल लेखक थे। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक Theory of Political Economy सर्वप्रथम अक्टूबर, १८७१ ई० मे प्रकाशित हुई थी। १९११ ई० तक इसके चार सस्करण हो चुके थे। उनके अन्य लेखन कार्यों मे निम्नलिखित पुस्तकें उल्लेखनीय है।

1. The Coal Question (1865)
2. Elementary Lessons in Logic (1870)
3. Principles of Science (1874)
4. Money and Mechanism of Exchange (1875)
5. The State in Relation to Labor (1882)

शिक्षण कार्य के अतिरिक्त अन्य कार्यों मे भी व्यस्त रहने के कारण उनका स्वास्थ्य खराब हो गया तथा ४७ वर्ष की कम आयु में ही डूबने के फलस्वरूप उनकी अगस्त, १८८२ ई० मे मृत्यु हो गई। यदि भाग्य ने जेवन्स को कुछ और अधिक वर्षो तक जीवित रहने दिया होता तो नि.सन्देह जेवन्स ने अर्थशास्त्र को अपने आर्थिक विचारों से और अधिक सुशोभित किया होता।

ession) लागू होता है जिसके अन्तर्गत भिन्न आवश्यकताओ को उनकी तीव्रता के अनुसार व्यवस्थित क्रम मे सूची के रूप मे रखा जा सकता है।

जेवन्स ने 'उपयोगिता' शब्द का प्रयोग किया है। किसी वस्तु की उपयोगिता इस वस्तु का वह अमूर्त गुण है जिसके द्वारा यह हमारी आवश्यकता की पूर्ति करती है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं किसी वस्तु की उपयोगिता उस वस्तु का सुख प्रदान करने अथवा दुःख को रोकने का गुण होता है। सुख दुःख राजनीतिक अर्थशास्त्र के कलन के अन्तिम लक्ष्य हैं। प्रत्येक व्यक्ति न्यूनतम कार्य अथवा कष्ट के द्वारा अधिकतम सन्तोष प्राप्त करने मे प्रयत्नशील रहता है। दूसरे शब्दो मे सुख अथवा सन्तोष को अधिकतम करना अर्थशास्त्र की केन्द्रिय समस्या है।

जेवन्स के विचारानुसार उपयोगिता वस्तु मे निहित नहीं होती है। इसका सम्बन्ध मानव की आवश्यकता से होता है तथा उसी वस्तु की मात्रा मे वृद्धि हो जाने पर उपयोगिता कम हो जाती है तथा मात्रा मे अत्यधिक वृद्धि होने पर उपयोगिता के स्थान पर अनुपयोगिता की समस्या उत्पन्न हो जाती है। मात्रा मे वृद्धि होने के साथ उपयोगिता मे कमी होती जाती है। इस प्रकार कुल उपयोगिता तथा सीमान्त उपयोगिता मे अन्तर है। क्रमानुसार इकाइयो की उपयोगिता घटती जाती है परन्तु कुल उपयोगिता मे वृद्धि होती है यद्यपि यह वृद्धि घटती हुई दर पर होती है।

उपयोगिता की अन्तिम मात्रा (final degree of utility) वस्तु की अन्तिम इकाई की उपयोगिता होती है। यह प्रसिद्ध सीमान्त उपयोगिता का विचार है गोसन के समान जेवन्स के विचारानुसार भी उपभोग मे विभिन्न वस्तुओ की अन्तिम अथवा सीमान्त उपयोगिताओ मे समान होने की प्रवृत्ति होती है। जेवन्स के अनुसार कुल उपयोगिता तथा अन्तिम इकाई की उपयोगिता—सीमान्त उपयोगिता— मापनीय थी।

जेवन्स के विचारानुसार किसी वस्तु का मूल्य पूर्णतया उसकी उपयोगिता द्वारा निर्धारित होता है। इस सम्बन्ध मे जेवन्स ने बडे सुन्दर शब्दो मे अपनी पुस्तक **Theory of Political Economy** म निम्न प्रकार लिखा है।

"Repeated reflection and inquiry have led me to the somewhat novel opinion that value depends entirely upon utility. Prevailing opinions make labor rather than utility the origin of value and there are even those who distinctly assert that labor is the cause of **value**" labour is found to deteremine value, but only in an indirect manner by varying the degree of utility of the commodity through an increase or limitation of the supply."

जेवन्स के विचारानुसार वस्तु की सीमान्त उपयोगिता ही वस्तु के मूल्य का कारण थी। श्रम व्यय, जो रिकार्डो तथा अन्य परम्परावादी अर्थशास्त्रियो के मूल्य

सिद्धान्तो का केन्द्र बिन्दु था, जेवन्स के विचारानुसार कदापि मूल्य का निर्धारण नही करता है यद्यपि यह अप्रत्यक्ष रूप से वस्तु की पूर्ति के द्वारा वस्तु की सीमान्त उपयोगिता में परिवर्तन करके वस्तु के मूल्य पर प्रभाव डाल सकता था। इस सम्बन्ध मे जेवन्स ने मूल्य पर उत्पादन व्यय के प्रभाव को इस प्रकार व्यक्त किया है।

उत्पादन व्यय पूर्ति को निर्धारित करता है।
पूर्ति सीमान्त उपयोगिता को निर्धारित करती है।
सीमान्त उपयोगिता मूल्य को निर्धारित करती है।

परन्तु मूल्य पर श्रम (व्यय) का अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पडने की सभावना होते हुये भी जेवन्स के विचारानुसार श्रम का स्वयं मूल्य (वेतन) वस्तु के मूल्य द्वारा निर्धारित होता है, वस्तु का मूल्य श्रम के मूल्य द्वारा निर्धारित नही होता है। जेवन्स ने रिकार्डो के इस विचार की कडी आलोचना की थी कि श्रम व्यय पूर्ति की शक्ति की तरफ से वस्तु के मूल्य को निर्धारित करता है। रिकार्डो का मूल्य का उत्पादन व्यय सिद्धान्त बिल्कुल गलत था। इस प्रकार जेवन्स ने रिकार्डो वादी मजदूरी के वेतन-कोष सिद्धान्त को भी गलत घोषित किया। जेवन्स का *कहना था कि यदि हम अर्थशास्त्र को सच्चा तथा व्यावहारिक जीवन की समस्याओ से सम्बन्धित विज्ञान बनाना चाहते है तो हमारे लिये अर्थशास्त्र को सदा के लिये रिकार्डोवादी सम्प्रदाय की गलत मान्यताओ तथा अन्य मूर्खताओ से मुक्त करना अनिवार्य है। अगरेजी अर्थशास्त्री मूर्खो के काल्पनिक संसार मे रहते रहे है।*[6]

जेवन्स के मूल्य के सिद्धान्त का केन्द्रिय विचार यह है कि वस्तु का मूल्य सीमान्त उपयोगिता द्वारा निर्धारित होता है। यदि किसी वस्तु की पूर्ति कम होती है तो वस्तु के दुर्लभ होने के कारण वस्तु की उपभोग की जाने वाली अन्तिम इकाई की उपयोगिता अधिक होगी तथा इस कारण उसका मूल्य भी अधिक होगा। इसके विपरीत यदि वस्तु की अत्यधिक मात्रा उपलब्ध हैं (दुर्लभ अथवा अत्यधिक सापेक्ष विचार है। इनका सम्बन्ध सदा आवश्यकता अथवा माग से होता है। ये विचार वस्तु की निरपेक्ष मात्रा को सबोधित नही करते हैं क्योकि कोई वस्तु निरपेक्ष रूप मे अधिक मात्रा मे होते हुये भी दुर्लभ हो सकती है यदि माग की अपेक्षा यह निरपेक्ष अधिक मात्रा कम है। इसके विपरीत निरपेक्ष रूप मे कम मात्रा में होते हुये भी वस्तु की मात्रा अत्यधिक सिद्ध हो सकती है) तो अन्तिम इकाई की उपयोगिता के कम होने के कारण इसका मूल्य भी कम होगा। इस प्रकार वस्तु का मूल्य एक निश्चित पूर्ति की अवस्था मे माग की स्थिति के अनुसार निर्धारित होता है।

प्रत्येक वस्तु का मूल्य सीमान्त उपयोगिता के द्वारा निर्धारित होने के कारण किन्हीं दो वस्तुओं के मध्य विनिमय अनुपात उन दोनों वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिताओं के अनुपात का उलटा होता है। इसी विचार को जेवन्स ने गणितिय समीकरण के रूप में स्पष्ट किया है। इस विचार को एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझाया जा सकता है। यदि दो व्यक्ति अ तथा ब आपस में दूध तथा चीनी का विनिमय करते हैं तो ऐसी परिस्थिति में जेवन्स के विचारानुसार विनिमय मूल्य अथवा विनिमय अनुपात निम्नलिखित आधार पर निर्धारित होगा।

(अ को दूध की सीमान्त उपयोगिता) × (विनिमय के पश्चात् दूध की उपलब्ध मात्रा) चीनी की विनिमय की गई मात्रा

—————————————— = ——————————————

(अ को चीनी की सीमान्त उपयोगिता) × (चीनी की विनिमय की गई मात्रा) दूध की विनिमय की गई मात्रा

(ब के लिये दूध की सीमान्त उपयोगिता) × (विनिमय किये गये दूध की मात्रा)

= ——————————————

(ब के लिये चीनी की सीमान्त उपयोगिता) × (विनिमय के पश्चात् उपलब्ध चीनी की मात्रा)

अन्त में यह कहना अनुचित न होगा कि जेवन्स ने उपयोगिता ह्रास तथा सीमान्त उपयोगिता के नियमों का प्रतिपादन करके आर्थिक विचारों के इतिहास में एक विशेष मूल योगदान दिया है तथा उन का नाम उपयोगिता विश्लेषण के क्षेत्र में आस्ट्रियन सम्प्रदाय, गौसन तथा वालरस के साथ सदा जीवित रहेगा।

लियुन वालरस (१८३४ ई०—१९१० ई०)

(Leon Walras)

यद्यपि प्रसिद्ध फ्रान्सीसी अर्थशास्त्री लियुन वालरस[7] का नाम अर्थशास्त्रियों के

---

7. मेरी एस्प्रिट लियुन वालरस (Marie Esprit Leon Walras) का जन्म फ्रान्स में Evreux नामक स्थान में १६ दिसम्बर १८३४ ई० में हुआ था। उनके पिता स्वयं एक अर्थशास्त्री थे तथा उनसे वालरस ने अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में काफी ज्ञान प्राप्त किया था। वालरस ने प्रसिद्ध अर्थशास्त्री आगस्टिन कोर्नो की पुस्तक **The Mathematical Principles of the Theory of Wealth** में ही अपना गणितिय अर्थशास्त्र का अध्ययन आरंभ किया था। वे गणित के विद्यार्थी रह चुके थे तथा ८५३ ई० में उन्होंने B. Sc की उपाधि प्राप्त की थी। कई स्थानों पर नौकरी करने के पश्चात वालरस की नियुक्ति स्वीटरजलैंड में लासेन विश्वविद्यालय १८७० ई० में राजनीतिक अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष के पद पर हुई तथा इस पद पर वे १८९२ ई० तक नियुक्त रहे। वालरस के पश्चात् इटली के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री विलफ्रेडो पैरेटो (१८४८ई०—१९२३ई०) लासेन विश्वविद्यालय में

लासेन सम्प्रदाय (Lausanne School) से सम्बन्धित है, परन्तु यूरोप मे गणितय अर्थशास्त्र के विकास मे उन का विशेष योगदान होने के कारण उन की गणितय सम्प्रदाय मे गणना करना उचित है। एक प्रकार से वालरस को प्रसिद्ध गणित-शास्त्रज्ञ कोर्नो के उत्तराधिकारी होने के नाते गणितय सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त वालरस को ही सर्व प्रथम सामान्य सन्तुलन अर्थशास्त्र (General Equilibrium Economics) का श्रीगणेश करने का भी श्रेय प्राप्त है।

वालरस ने अर्थशास्त्र मे गणितय विश्लेषण का विकास किया तथा उनका विश्लेषण आगस्टिन कोर्नो व जेवन्स की अपेक्षा अधिक पूर्ण तथा उत्तम था। वास्तव मे उनके हाथो द्वारा अर्थशास्त्र मे गणित का इतना अधिक प्रयोग किया गया था कि यदि यह कहा जावे कि गणितय सम्प्रदाय वालरस के समय से आरम्भ होता है तो गलत नही होगा। वालरस की पुस्तक **Elements d' economie politique pure** (Elements of Pure Economics) मैंगर व जेवन्स[8] की पुस्तको के

राजनीतिक अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष थे। वालरस तथा पैरेटो दोनो लासेन सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक तथा नेता है तथा लासेन सम्प्रदाय का अर्थ इन्ही दोनो अर्थशास्त्रियो से है। लासेन विश्वविद्यालय का राजनीतिक अर्थशास्त्र विभाग गणितय अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिये प्रसिद्ध था।

वालरस अनेक लेखो, पुस्तिकाओं, निबन्धो तथा पुस्तको के लेखक थे। उनकी पुस्तको मे निम्नलिखित विशेषरूप से उल्लेखनीय है।

1. **Elements d' economie politique pure** (Elements of Pure Economics) यह पुस्तक दो भागो मे है। प्रथम भाग जिसका शीर्षक **Theory of Exchange** है १८७४ई० मे तथा दूसरा भाग जिसका शीर्षक **Theory of Production** है १८७७ ई० मे प्रकाशित हुये थे।

2. **Theorie mathematique de la richesse sociale** (Mathematical Theory of Social Wealth) published in 1883.

3 Studes d' economie sociale (Studies in Social Economics) published in 1896. यह पुस्तक साम्यवाद, व्यक्तिवाद, भूमिका राष्ट्रीकरण, सार्वजनिक वित्त इत्यादि विषयो से सम्बन्धित थी।

4. ***Studes d' economie politique appliquee*** (Studies in Applied Economices) published after retirement from Laussane university in 1898. इस पुस्तक मे लेखक ने व्यावहारिक आर्थिक समस्याओ की व्याख्या की है। द्विधातुमान व एकधातुमान, एकाधिकार व पूर्णप्रतियोगिता, स्वतन्त्र व्यापार, बैंकिंग व साख का महत्व इत्यादि विषयो पर वालरस ने इस पुस्तक मे अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनकी संक्षिप्त आत्मजीवनी १९०८ ई० मे प्रकाशित हुई थी। उनका देहान्त ६ जनवरी, १९१० मे हुआ था।

8. Both Menger's Book *Grundsatze von Wirtschaft slehre* and Jevons's book *Theory of Political Economy* were published in 1871.

प्रकाशित होने के कुछ समय पश्चात् १८७४ ई० मे प्रकाशित हुई थी। सीनियर गोसन तथा जेवन्स के समान वालरस ने भी अर्थशास्त्र को अमूर्त विज्ञान बनाने का प्रयास किया तथा परिकल्पित अर्थशास्त्र (pure economics) को प्रयुक्त अर्थशास्त्र (applied economics) से अलग करने की चेष्टा की थी। इस प्रकार वालरस के विचारानुसार अर्थशास्त्र की तीन शाखायें थी। प्रथम, परिकल्पित अर्थशास्त्र (pure economics) जिसके अन्तर्गत सामान्य आर्थिक सिद्धान्तो का अध्ययन किया जाना चाहिये। दूसरे, प्रयुक्त अर्थशास्त्र (applied economics) जिसके अन्तर्गत परिकल्पित अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो के व्यावहारिक जीवन मे लागू होने का अध्ययन किया जाना चाहिये। तीसरे, सामाजिक अर्थशास्त्र (social economics) जिसका सम्बन्ध आर्थिक नीतियो के सामाजिक प्रभावो का अध्ययन करना है। वालरस के लेखन कार्यों मे अर्थशास्त्र के इन तीनो अगो का अध्ययन किया गया है।

वालरस का प्रमुख उद्देश्य विनिमय के गणितिय सिद्धान्त की व्याख्या करना था। वालरस के विचारानुसार सामाजिक सम्पत्ति उन सब भौतिक तथा अभौतिक वस्तुओं का समूह है जिनमे उपयोगिता का गुण होता है तथा जिनकी पूर्ति सीमित होती है। उनके अनुसार वस्तु का मूल्य उसकी सीमान्त उपयोगिता (**rarete**) द्वारा निर्धारित होता है। इस प्रकार जिन वस्तुओं की अन्तिम सन्तुष्टित आवश्यकता की तीव्रता (**rarete**) समान होती है तो उन वस्तुओं का विनिमय मूल्य भी समान होगा। किसी वस्तु का विनिमय मूल्य उस वस्तु की अन्तिम सन्तुष्टित आवश्यकता की तीव्रता—सीमान्त उपयोगिता—के कम अथवा अधिक होने के अनुसार कम अथवा अधिक होता है। इसके अतिरिक्त उनका विशेष योगदान यह है कि उन्होने गणितिय समी करणों (simultaneous equations) के द्वारा यह स्पष्ट किया था कि समाज मे बाजार मे अनेक वस्तुओं के बाजार मूल्य एक ही समय पर किस प्रकार निर्धारित होते हैं। इसी कारण उनको वर्तमान सामान्य सन्तुलन विश्लेषण (general equilibrium analysis) का प्रवर्त्तक स्वीकार किया जाता है।

वालरस केवल परिकल्पित अर्थशास्त्री ही नही थे। वे समाज सुधारो मे भी काफी रुचि रखते थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि अर्थशास्त्र एक अच्छे समाज की स्थापना करने मे सहायक सिद्ध हो सकेगा। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके विचार भी समाजवादी थे क्योकि उन्होने भूमि के राष्ट्रीयकरण का समर्थन किया है। उनका यह भी विश्वास था कि राज्य हस्तक्षेप के द्वारा जन साधारण की आर्थिक स्थिति मे सुधार किया जा सकता था।

गस्टव कैसल (१८६६ ई०—१९४५ ई०)
(Gustav Cassel)

गस्टेव कैसल, जिनका नाम स्वीडन अथवा स्टाकहोम सम्प्रदाय से सम्बन्धित है एक अभियन्ता थे जो बाद मे अर्थशास्त्री बन गये थे। इस सम्बन्ध मे उनकी तुलना प्रसिद्ध

भारतीय अभियन्ता-अर्थशास्त्री डा० मोक्षगुन्दम विश्वेश्वरैया से की जा सकती है। यद्यपि डा० विश्वेश्वरैया की गस्टेव कैसल के समान उच्चकोटि के अर्थशास्त्रियों में गणना नहीं की जाती है। कैसल ने वालरस के सिद्धान्त का विकास करके इसको विस्तृत रूप से द्रव्य व वितरण के क्षेत्रों में लागू किया। अर्थशास्त्र के विद्यार्थी प्रो० कैसल के विनिमय दर के क्रय शक्ति समता सिद्धान्त से भली प्रकार परिचित हैं। वालरस के **rarete** विचार के समान कैसल ने दुर्लभता के विचार को अपनाया है।

कैसल के आर्थिक विचार उनके १८९९ ई० में प्रकाशित निबन्ध **Outline of an Elementary Theory of Prices**; १९०३ ई० में प्रकाशित पुस्तक **Nature and Necessity of Interest** तथा १९१८ ई० में प्रकाशित प्रसिद्ध पुस्तक **Theory of Social Economy** में पाये जाते है। उनकी पुस्तक **Theory of Social Economy** का १९२३ ई० में अँगरेजी भाषा में अनुवाद हुआ था। इस पुस्तक में कैसल ने वालरस के सामान्य सन्तुलन के विचार को व्यापार चक्र, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा अन्य सभी आर्थिक समस्याओं के क्षेत्र में लागू करने का प्रयास किया है। यह पुस्तक चार खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में, जिस का शीर्षक 'General Survey of Social Economy' है, कैसल ने अर्थशास्त्र के लक्ष्यों की व्याख्या करते हुये यह बताया है कि आर्थिक साधनों के सीमित तथा आवश्यकताओं के असीमित होने के कारण अर्थशास्त्र का लक्ष्य असीमित आवश्यकताओं तथा सीमित अथवा दुर्लभ साधनों के मध्य समायोजन स्थापित करना है। कैसल के विचारानुसार दुर्लभता सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की केन्द्रिय समस्या है। यह समायोजन आवश्यकताओं को सीमित रखकर ही सम्भव हो सकता है। कैसल के विचारा- नुसार अर्थव्यवस्था में मूल्य प्रणाली का कार्य आवश्यकताओं को सीमित करके दुर्लभ साधनों व असीमित आवश्यकताओं के मध्य सन्तुलन स्थापित करना है।

कैसल के विचारानुसार मूल्य की व्याख्या करने के लिये सीमान्त उपयोगिता के विचारों की शरण लेना आवश्यक नहीं है। वे मूल्य की घटना की व्याख्या दुर्लभता के आधार पर करते हैं। इस प्रकार कैसल के अर्थशास्त्र में निम्नलिखित तीन विचार मुख्य हैं।

(१) आर्थिक साधनों तथा वस्तुओं की सीमित पूर्ति तथा असीमित मानव आवश्यकताएं।
(२) विनिमय की आवश्यकता।
(३) मूल्य के द्वारा असीमित माग तथा सीमित पूर्ति के मध्य सन्तुलन स्थापित होता है।

उपरोक्त विचारों को समझाने के लिये कैसल ने अमूर्त गणितिय रीति तथा माग, पूर्ति तथा मूल्य की तालिकाओं का प्रयोग किया है।

इर्विंग फिशर (१८६७ ई०–१९४७ ई०)
(Irving Fisher)

प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्री इर्विंग फिशर के नाम से अर्थशास्त्र के सभी विद्यार्थी परिचित हैं। वे अमरीका मे येल विश्वविद्यालय (Yale University) मे अर्थशास्त्र के प्रोफेसर थे। उन्होने मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त के नकद व्यवसाय समीकरण (cash-transactions equation) $P = \frac{MV + M^1V^1}{T}$ का प्रतिपादन किया था। उन्होंने अर्थशास्त्र मे गणित रीति का काफी मात्रा मे प्रयोग किया है। फिशर व्याज के प्रसिद्ध Agio or Time Preference सिद्धान्त के भी प्रतिपादक थे। इस सम्बन्ध मे वे आस्ट्रियन सम्प्रदाय के अर्थशास्त्री बॉम बावर्क के विचारो से काफी प्रभावित हुये थे। वे आर्थिक समस्याओ का विश्लेषण गणितिय समीकरणों के द्वारा करने मे विशेष रुचि रखते थे। इस प्रकार फिशर अमरीकी गणितय अर्थशास्त्री थे।[9]

फिशर अनेक लेखों तथा प्रसिद्ध पुस्तको के कुशल लेखक थे। उनकी रचनाओ मे निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं।

1. Mathematical Investigations in the Theory of Value and Prices (1892)
2. The Nature of Capital and Income (1906)
3. The Rate of Interest (1907)
4. Elementary Principles of Economics (1912)
5. Stabilising the Dollar (1920)
6. The Making of Index Numbers (1928)
7. The Money Illusion (1928)
8. The Theory of Interest (1930)
9. Inflation (1933)
10. 100% Money (1935)

गणितीय सम्प्रदाय के सदस्यो के योगदानो की उपरोक्त संक्षिप्त व्याख्या से यह भली प्रकार ज्ञात हो जाता है कि इस सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियो का अर्थशास्त्र विज्ञान के विकास मे भारी योगदान होने के कारण इनको आर्थिक विचारो के इतिहास मे सदा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त रहेगा।

---

9. अन्य अमरीकी गणितय अर्थशास्त्रियों मे H. L. Moore तथा H. Schultz (1893-1938) के नाम उल्लेखनीय है।

विशेष अध्ययन सूची

1. P. C. Newman : The Development of Economic Thought, Chapter, XXIV.
2. J. F. Bell . A History of Economic Thought, Chapters 18 & 20.
3. R. Lakachman : A History of Economic Ideas, Chapters 10 & 11.
4. L. H. Haney History of Economic Thought, Chapter, XXX
5. Gide and Rist : A History of Economic Doctrines, Book V, Chapters, 1 and III.
6. Leo Rogin : The Meaning and Validity of Economic Theory, Chapters, 10 and 11.
7. J. M. Ferguson : Landmarks of Economic Thought, Chapter, XII.
8. J. A. Schumpeter : History of Economic Analysis, Part IV, Chapter, 5.
9. H. S. Jevons. . Letters and Journals of W. S. Jevons.

प्रश्न

1. Assess the positive contributions of the Mathematical School to the development of economic theories.

   (राजस्थान, १९४९; १९५६)

2. Describe the importance of the contributions of W. S. Jevons to economic thought.

   (राजस्थान, १९५३)

अध्याय २७

एल्फ्रेड मार्शल

(Alfred Marshall)

इगलेंड मे अर्थशास्त्रियो के केम्ब्रिज सम्प्रदाय (Cambridge School of Economists) के प्रवृर्तक तथा नवसस्थापकवाद (Neoclassicism) के महान नेता डा० एल्फ्रेड मार्शल[1] की गणना वर्तमान युग के महान अर्थशास्त्रियो मे की जाती

---

1. एल्फ्रेड मार्शल का जन्म २६ जुलाई, १८४५ ई० को क्लेपहेम लन्दन (Clapham) मे एक मध्यम वर्गीय अँगरेज परिवार मे हुआ था। उनके पिता विलयम मार्शल बैंक आफ इंगलैंड मे खजान्ची थे। ६ वर्ष की आयु मे वे Merchant Taylors School मे शिक्षण के लिये भेजे गये। उनके पिता का विचार उनको चर्च के लिये तैयार करना था। परन्तु मार्शल को गणित मे रुचि थी। सर्वप्रथम अध्यात्मशास्त्र (Metaphysics) तथा तत्पश्चात् नीतिशास्त्र (Ethics) का अध्ययन करने के पश्चात् मार्शल ने १८६७ ई० के लगभग अर्थशास्त्र का अध्ययन आरम्भ किया था। १८६१ ई० मे यद्यपि मार्शल को St John's College Oxford मे वजीफा मिल सकता था, परन्तु उन्होने इस वजीफे को अस्वीकार करके St. John's College, Cambridge मे प्रवेश किया जहाँ से उन्होंने बी० ए० की उपाधि गणितशास्त्र मे honours के साथ प्राप्त की थी। यहाँ पर यह लिखना उपयुक्त होगा कि मार्शल के पिता को गणितशास्त्र से घृणा थी तथा उनके वित्तिय साधनो मे इतनी अधिक प्रचुरता नही थी कि वे सेंट जॉन्स कालेज केम्ब्रिज मे मार्शल की शिक्षा का वित्तिय भार सहन करते। सौभाग्यवश मार्शल के चाचा चार्ल्स ने उनको ऋण देकर (जिसका मार्शल ने शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् भुगतान कर दिया था) उनके Career को बनाने मे सहायता की। सम्भवत. यदि चाचा ने उस समय मार्शल की सहायता न की होती तो उनको St John's College, Oxford के वजीफे को विवश होकर स्वीकार करना पडा होता तथा मार्शल का जीवन तथा Career भिन्न ही हुआ होता।

१८६५ ई० मे मार्शल **सेंट जान्स कालेज केम्ब्रिज मे** Second Wrangler बन गये तथा fellowship के लिये निर्वाचित हो गये। केम्ब्रिज मे १८६७ ई० मे 'Grote Club' की सदस्यता प्राप्त हो जाने मे मार्शल को F. D Maurice, Henry Sidgwick, Aldis Wright W. K. Clifford,

है तथा उनको उनके योगदान के आधार पर आर्थिक विचारों के इतिहास मे एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

लेखन कार्य

मार्शल प्रथम श्रेणी के लेखक-अर्थशास्त्री थे। मार्शल अनेक लेखो के लेखक थे। उनके लेखो के विषय भिन्न थे तथा जिन पत्रो तथा पत्रिकाओ मे ये प्रकाशित हुये थे उनकी संख्या घनी थी। इन पत्रिकाओ मे **The Times; Academy; Bristol Mercury and Daily Post, Fortnightly Review; Western Daily Press, Cooperative Annual, Contemporary Review; The Economist; Quarterly Journal of Economics** इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। लेखो के अतिरिक्त मार्शल ने अनेक पुस्तको

Fletcher Moulton, J. B. Mayor तथा John Venn के समान बुद्धिमान प्रसिद्ध व्यक्तियो के सम्पर्क मे आने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। केम्ब्रिज मे उन्होंने १८७७ ई० मे विवाह करने के पूर्व ६ वर्ष तक गणितशास्त्र पढाया था। मार्शल की पत्नी Mary Paley उनकी शिष्या रह चुकी थी तथा Newnham College मे अध्यापक थी। १८७७ ई० मे विवाह हो जाने के उपरान्त fellowship का परित्याग करने पर मार्शल University College, Oxford के प्रथम प्रधानाचार्य तथा अर्थशास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त हो गये। इस पद पर वे १८८१ ई० तक रहे। स्वभाव से वे प्रधानाचार्य के शासन सम्बन्धी कार्य को पसन्द नही करते थे। यहाँ पर मार्शल सायंकाल में युवक व्यापारियो की कक्षा को तथा श्रीमती मार्शल प्रातःकाल मे युवतियों की कक्षा को व्याख्यान देते थे। स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण १८८१ ई० में मार्शल अपनी पत्नी सहित एक वर्ष के लिये इटली की यात्रा करने के लिये गये तथा कालेज के प्रधानाचार्य पद का भार प्रोफेसर रेमसे ने सभाला। इटली से लौटने पर मार्शल कालेज मे केवल अर्थशास्त्र के प्रोफेसर ही रहे क्योकि वे प्रधानाचार्य बनना नही चाहते थे। आर्नोल्ड टायनबी की मृत्यु के पश्चात् मार्शल Balliol College Oxford मे १८८३ ई० से लेकर १८८५ ई० तक रहे। १८८५ ई० मे जब प्रोफेसर Henry Fawcett की मृत्यु हो जाने पर केम्ब्रिज विश्वविद्यालय मे राजनीतिक अर्थशास्त्र विभाग की अध्यक्षता खाली हुई तो मार्शल की इस पद पर नियुक्ति की गई। इस पद पर वे १९०८ ई० तक नियुक्त रहे। अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् भी उनका लेखन कार्य जारी रहा। उनकी मृत्यु १९२४ ई० मे हुई।

मार्शल का अर्थशास्त्र का अध्ययन सच्चे रूप से १८६६ ई० मे आरम्भ हुआ था। उनके समय मे रिकार्डो तथा मिल की पुस्तकें Principles of Political Economy ही अधिकाश विश्वविद्यालयो मे पढाई जाती थी। मिल तथा रिकार्डो के अतिरिक्त इतिहासवादी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री गरटेव श्मोलर का भी उनके ऊपर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा था।

की समीक्षा (Review) तथा प्रस्तावना (Preface) भी लिखी थी। प्रो० जेवन्स की 'Theory of Political Economy' नामक पुस्तक की समीक्षा १ अप्रैल, १८७२ मे Academy नामक पत्रिका मे प्रकाशित हुई थी। इसी प्रकार ऐजवर्थ की पुस्तक Mathematical Psychics की समीक्षा अप्रेल १८८१ ई० मे Academy नामक पत्रिका मे प्रकाशित हुई थी। पुस्तको की समीक्षा करने के अतिरिक्त मार्शल ने अनेक लेखको की पुस्तको के लिये भूमिकायें भी लिखी थी। उदाहरणार्थ प्रसिद्ध अग्रेज वित्तिय विशेषज्ञ तथा अर्थशास्त्री वाल्टर वेजहाट की पुस्तक **Postulates of English Political Economy** तथा प्रो० प्राइस (**L. L. F. R Price**) की पुस्तक **Industrial Peace** की प्रस्तावनाएँ मार्शल ने लिखी थी।

मार्शल की पुस्तकों मे यद्यपि सफलता तथा प्रसिद्धि के आधार पर सर्वप्रथम स्थान उनकी पुस्तक Principles of Economics का है परन्तु पुस्तक लेखन क्रम मे इसका स्थान मार्शल की **The Economics of Industry** नामक पुस्तक के पश्चात् आता है। **The Economics of Industry** १८७९ ई० मे प्रकाशित हुई थी तथा मार्शल के साथ श्रीमती मार्शल भी इस पुस्तक की लेखिका थी। दो वर्ष पश्चात् इस पुस्तक का दूसरा सस्करण प्रकाशित हुआ तथा इसका दस बार पुनः मुद्रण हुआ था। इस से पुस्तक की लोकप्रियता सिद्ध होती है। १८७९ ई० मे ही मार्शल की एक अन्य

प्रसिद्ध फ्रासीसी अर्थशास्त्री आगस्टिन कारनो (Augustin Cournot) की १८३८ ई० मे लिखित पुस्तक **Principles mathematiques de la Theorie des Richesses** का मार्शल पर विशेष प्रभाव पडा था तथा इस प्रभाव को मार्शल ने स्वय अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **Principles of Economics** के प्रथम सस्करण की भूमिका मे स्वीकार किया है। यह एक महत्वपूर्ण बात है कि जिस वर्ष मार्शल ने अर्थशास्त्र का सच्चे रूप से अध्ययन आरम्भ किया था उसी वर्ष मार्क्स की प्रसिद्ध पुस्तक **Das Capital** का प्रथम खण्ड प्रकाशित हुआ था।

मार्शल सच्चे तथा परिश्रमी मानव थे। वे अपने आलोको की आलोचनाओ के प्रति सचेत रहते थे। मानवता के वे सच्चे पुजारी थे। यद्यपि उनका स्वास्थ्य अच्छा नही रहता था, परन्तु बहुत मजबूत will power होने के कारण वे सदा कार्य करते रहते थे। साल भर तक काम करते रहने के कारण वे इतना अधिक थक जाते थे कि दीर्घावकाश प्राप्त होने पर वे बाहर, विशेषकर यूरोप Alps मे घूमने के लिये जाया करते थे। १८७५ ई० मे मार्शल सयुक्त राष्ट्र ऑफ अमेरिका भी गये थे। उनके लेखन कार्यों मे अनेक पुस्तकें, पुस्तिकायें तथा पत्रिकाओ मे समय-समय पर लिखे अनेक लेख सम्मिलित है। १८९१ ई० से लेकर १८९४ ई० तक मार्शल राजकीय श्रम आयोग (Royal Commission on Labour) के सदस्य रहे थे। वे Royal Economic Association के भी प्रवर्तक थे।

पुस्तक 'Pure Theory of Foreign Trade and Domestic Values' प्रकाशित हुई थी।

मार्शल की प्रसिद्ध पुस्तक **'Principles of Economics'** जिसकी गणना आज आर्थिक साहित्य के क्षेत्र मे ससार के उच्चकोटि के ग्रन्थो मे की जाती है, १८९० ई० मे प्रकाशित हुई थी। यह पुस्तक परिश्रमी तथा बुद्धिमान लेखक के लगभग २० वर्षों के कठोर परिश्रम का परिणाम थी। यह पुस्तक आर्थिक साहित्य के जगत मे मार्ग दर्शक सिद्ध होने के अतिरिक्त प्रकाशको के दृष्टिकोण से भी विशेष महत्व रखती थी क्योकि प्रकाशन के व्यापार के क्षेत्र मे उस समय प्रचलित कटौती रीति (discount practice) पर पुस्तक बेचने के विपरीत प्रकाशकों ने इस पुस्तक को शुद्ध मूल्य पर बेचने का निर्णय किया था तथा इस निर्णय मे प्रकाशको को पुस्तक विक्रेताओ का सहयोग प्राप्त न होते हुये भी भारी सफलता प्राप्त हुई थी तथा मार्शल को प्रसिद्धि तथा प्रकाशको को अत्यधिक लाभ प्राप्त हुये थे। प्रकाशको का यह निर्णय एक प्रकार से लेखक की योग्यता की परीक्षा थी तथा मार्शल इस परीक्षा मे सदा की भाँति बहुत सफल सिद्ध हुये थे। पुस्तक की लोकप्रियता तथा लेखक की महान योग्यता का अनुमान इस सत्य से लगाया जा सकता है कि १८९० ई० से लेकर १९२० ई० तक (मार्शल की मृत्यु से चार वर्ष पूर्व) पुस्तक के आठ सस्करण प्रकाशित हो चुके थे जिनमे कुल मिलाकर पुस्तक की ३२,००० प्रतियो का मुद्रण किया गया था। पुस्तक के आठवे सस्करण को अब तक १२ दफा पुनः मुद्रित किया जा चुका है। सक्षेप मे यह कहा जा सकता हे कि अब तक मार्शल की इस प्रसिद्ध पुस्तक की लगभग १ लाख प्रतियों की बिक्री हो चुकी है। इस प्रकार आर्थिक साहित्य के जगत मे पुस्तक को Best Seller कहलाने का गौरव प्राप्त है।

मार्शल की पुस्तक Principles of Economics कितनी अधिक लोकप्रिय थी तथा साहित्यिक जगत मे इसका प्रभाव कितना अधिक था यह वर्तमान समय की प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्रीमती जॉन रॉबिनसन, जो १९२२ ई० मे केम्ब्रिज मे मार्शल की शिष्या थी, के निम्नलिखित शब्दो से स्पष्ट है।

"When I came up to Cambridge, in 1922, and started reading economics, Marshall's '*Principles*' was the Bible, and we knew little beyond it Jevons, Cournot even Ricardo, were figures in the footnotes We heard of Pareto's Law, but nothing of the general equilibrium system Sweden was represented by Cassel, America by Irving Fisher, Austria and Germany were scarcely known Marshall was economics.[2]

Principles of Economics के समान मार्शल की अन्य पुस्तके भी सफल

2. Joan Robinson : *Collected Economics Papers, Introduction, p.* VII.

तथा लोकप्रिय सिद्ध हुई। वास्तव में यह कहना गलत न होगा कि मार्शल द्वारा लिखित कोई भी पुस्तक प्रकाशकों के लिये असफल सिद्ध नहीं हुई। मार्शल के लिये प्रत्येक नई प्रकाशित पुस्तक प्रसिद्धि का द्योतक थी। उनकी पुस्तकें इस सत्य का भी सूचक थीं कि मार्शल की विचारशक्ति तथा उनका व्यावहारिक समस्याओं का ज्ञान व्यापक था। १८९२ ई० में उनकी पुस्तक 'Elements of Economics of Industry' प्रकाशित हुई थी तथा १९१३ ई० तक इसके चार संस्करण हुये थे। प्रथम संस्करण १८९३ ई० व १८९४ ई० में, दूसरा संस्करण १८९८ ई० व १८९९ ई० में, तीसरा संस्करण ८ बार तथा चौथा संस्करण ८ बार पुनः मुद्रित किये गये थे। १९१९ ई० में उनकी 'Industry and Trade' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। अपनी पूर्वाधिकारी पुस्तक 'Principles of Economics' के समान यह पुस्तक भी काफी लोकप्रिय सिद्ध हुई। १९१९ ई० से लेकर १९२३ ई० तक ५ वर्ष के अल्प समय में पुस्तक के पांच संस्करण प्रकाशित हो चुके थे। १९२३ ई० में मृत्यु के एक वर्ष पूर्व मार्शल की अन्तिम पुस्तक 'Money, Credit and Commerce' प्रकाशित हुई थी। मार्शल की सभी पुस्तकें, पुस्तिकायें, लेख तथा भाषण उनकी महानता तथा उनके अर्थशास्त्र ज्ञान की व्यापकता के प्रतीक है।

आर्थिक विचारों की भूमिका (Background of Economic Ideas)

मार्शल के आर्थिक विचारों का प्रमुख उद्देश्य प्राचीन आर्थिक सिद्धान्तों को नया रूप प्रदान करना था। उन्होंने अपनी पुस्तक **Principles of Economics** के प्रथम संस्करण की प्रस्तावना में स्वयं लिखा है कि "वर्तमान पुस्तक नई सामग्री तथा हमारे (वर्तमान) समय की नई समस्याओं के आधार पर प्राचीन सिद्धान्तों को व्याख्या का वर्तमान रूप प्रदान करने का एक प्रयास है।"[3] एडम स्मिथ तथा उनके संस्थापित अनुयायियों ने अर्थशास्त्र को केवल धन प्राप्ति का अध्ययन बताकर तथा केवल उत्पादन पर ही ध्यान केन्द्रित करके अर्थशास्त्र विज्ञान को आलोचकों की आलोचनाओं के आक्रमण का विषय बना दिया था। १९ वीं शताब्दी में समाजवादी तथा इतिहासवादी सम्प्रदायों के लेखकों ने संस्थापित अर्थशास्त्र तथा इसकी अवास्तविक मान्यताओं की कड़ी आलोचना की थी। यह पहले ही बताया जा चुका है कि किस प्रकार सिसमोन्डी, सेंट साइमन, प्रोधो, रोडबर्टस, वागनर तथा मार्क्स आदि समाजवादी लेखकों ने स्मिथ तथा उनके अनुयायियों द्वारा व्याख्यात संस्थापित आर्थिक विचारों की कड़ी आलोचना की थी। इतिहासवादी सम्प्रदाय के लेखकों ने रिकार्डो तथा अन्य अर्थशास्त्र संस्थापकों द्वारा अपनाई गई अर्थशास्त्र अध्ययन की निगमन रीति (Deductive Method) तथा आर्थिक नियमों की निर्पेक्ष प्रकृति की आलोचना करके इसके स्थान

3 "The present treatise is an attempt to present a modern version of old doctrines with the aid of the new work, and with reference to the new problems of our own age" *(Principles, Preface to the Edition, p. V.)*

पर इतिहासवादी अथवा आगमन रीति (Historical or Inductive Method) तथा आर्थिक नियमों की सापेक्षता का प्रचार किया था।

मार्शल स्वय एक दूरदर्शी मनुष्य थे। वे स्वयं संस्थापित अर्थशास्त्र के गम्भीर दोषो के प्रति सचेत थे। उन्होने स्वय यह अनुभव किया कि १६ वी शताब्दी मे औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप यद्यपि एक ओर तो उत्पादन मे बहुत वृद्धि हुई थी परन्तु इसके साथ ही साथ उत्पादन मे वृद्धि करने वाले करोडो श्रमिको की दरिद्रता मे भी वृद्धि हुई थी। यदि स्मिथ के सामाजिक तथा व्यक्तिगत हितो की समरूपता पर विश्वास किया जावे तो १६ वी शताब्दी मे श्रमिको की आर्थिक स्थिति मे सुधार होना चाहिए था। परन्तु दुर्भाग्यवश स्थिति इसके विपरीत थी। मार्शल इस सत्य से भली प्रकार परिचित थे कि स्मिथ के आर्थिक मनुष्य (economic man) के विचार का कोई व्यावहारिक अस्तित्व नही था। यह विचार एक कोरी कल्पना थी।

मार्शल को संस्थापित अर्थशास्त्र के प्रति सहानुभूति थी। परन्तु समाजवादियो के सच्चे आक्रमणो के सम्मुख संस्थापित अर्थशास्त्र को जीवित रखने के लिये केवल सहानुभूति ही काफी नही थी। मार्शल इस सत्य से भली प्रकार परिचित थे कि स्मिथवादी संस्थापित अर्थशास्त्र अनेक दोषो का भण्डार था तथा इसको जीवित रखने के लिये इसमे वर्तमान परिस्थितियो के अनुकूल पर्याप्त सुधार करना अनिवार्य था। परन्तु ऐसा करना एक महान् कठिन कार्य था जिसको मार्शल ने बड़ी कुशलता के साथ सम्पन्न करके नवसंस्थापकवाद (Neoclassicism) की नीव डाली। मार्शल ने अर्थशास्त्र की परिभाषा, इसकी अध्ययन रीति तथा विषय सामग्री मे समय के अनुसार परिवर्तन करके संस्थापित अर्थशास्त्र को खण्डित होने से बचाकर अर्थशास्त्र विज्ञान की भारी सेवा की। स्मिथ की अर्थशास्त्र की परिभाषा, जिसमे धन को प्रधान महत्व दिया गया था, मे पर्याप्त सुधार करके मार्शल ने मानव कल्याण पर महत्व दिया। इसके अतिरिक्त मार्शल ने यह भी स्वीकार किया कि अर्थशास्त्र के अध्ययन मे रिकार्डो की निगमन रीति के साथ-साथ आगमन रीति का भी समान महत्व था। मार्शल ने उत्पादन के साथ-साथ वितरण के अध्ययन पर भी काफी महत्व दिया क्योकि आर्थिक कल्याण उत्पादन के अतिरिक्त वितरण पर भी आश्रित होता है। यदि उत्पादन का अत्यधिक भाग समाज के थोडे से व्यक्तियो के हाथो मे केन्द्रित हो जाने के कारण जन-साधारण को उपभोग के लिये प्राप्त नही होता है तो ऐसी दशा में उत्पादन मे वृद्धि होते हुये भी समाज के आर्थिक कल्याण मे वृद्धि सम्भव नही हो सकेगी। ऐसी परिस्थिति मे समस्या कम उत्पादन की नही है बल्कि उत्पादन के असमान वितरण की है। १६वी शताब्दी मे, जब कि औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप बडे पैमाने की उत्पादन प्रणाली के प्रयोग के कारण समाज मे उत्पादन की प्रचुरता थी, श्रमिको की आर्थिक दरिद्रता का कारण समाज मे आय का असमान

वितरण था। मार्शल ने परिस्थिति का सही अध्ययन करके पुराने आधार पर अपने नये अर्थशास्त्र की रचना की।

मार्शल के आर्थिक विचारो पर, १६ वी शताब्दी के आर्थिक व सामाजिक वातावरण का प्रभाव पडने के अतिरिक्त, उन लेखकों तथा विचारकों की विचारधारा का भी प्रभाव पडा था जिनका उन्होंने अपने विद्यार्थीकाल मे अध्ययन किया था। मार्शल ने १८६७ ई० मे अर्थशास्त्र का अध्ययन मिल की पुस्तक **'Principles of Political Economy'**, जो १६ वी शताब्दी के मध्य प्रसिद्ध पाठ्यपुस्तक थी, से आरम्भ किया था। मिल पर बेंथम का प्रभाव पडने के कारण, मार्शल भी मिल के समान समाज सुधार आन्दोलनो तथा मानवता मे विश्वास रखते थे। उनके जीवन का मुख्य ध्येय समाज मे श्रमिको तथा निम्न श्रेणी के लोगो की आर्थिक स्थिति मे सुधार करना था। परन्तु वे मिल के समान उदार तथा समाज सुधारक नही थे। वे प्रचलित सरकार तथा सामाजिक व आर्थिक संस्थाओं को बदलने के पक्ष मे नही थे। उनके विचारानुसार इनमें उपयुक्त सुधार करके गरीबो की दरिद्रता को समाप्त किया जा सकता था।

मिल के अतिरिक्त मार्शल ने प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक इमान्युल कान्ट (Immanuel Kant) चार्ल्स डार्विन (Charles Darwin), हरबर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) आदि प्रसिद्ध विचारको का अध्ययन किया था। डार्विन की पुस्तक **'Origin of Species'** तथा स्पेन्सर की पुस्तक **'First Principles'** तथा हीगल की पुस्तक **'Philosophy of History'** का मार्शल के विचारो पर गहरा प्रभाव पडा था। मार्शल जर्मन इतिहासवादी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियो, विशेषरूप से रोशर, के लेखन कार्यो से भी भली प्रकार परिचित थे। अपने लेखन कार्य मे उन्होंने ऐतिहासिक सामग्री तथा ऐतिहासिक रीति का काफी प्रयोग किया है। अपनी पुस्तक **Principles of Economics** की प्रस्तावना मे मार्शल ने स्पेन्सर के जीवविद्या सम्बन्धी (biological) तथा हीगल के ऐतिहासिक व दार्शनिक (historical and Philosophical) प्रभावो के ऋण को स्वीकार करते हुये लिखा है कि "इन दोनो प्रकार के प्रभावो का वर्तमान पुस्तक मे व्याख्यात विचारो पर विशेष प्रभाव पडता है।" स्पेनसर की Biological विचारधारा का तो मार्शल पर इतना अधिक प्रभाव पडा था कि मार्शल ने **Principles** के आठवें संस्करण की प्रस्तावना मे लिखा है कि "The Mecca of the economist lies in economic biology rather than in economic dynamics"[4]

इन विचारको के विचारो के प्रभाव के अतिरिक्त मार्शल पर प्रसिद्ध अर्थशास्त्री आगस्टिन कार्नो (Augustin Cournot) का भी प्रभाव पडा था। कार्नो की प्रसिद्ध पुस्तक **Principles Mathematiques de la theorie des Richesses.'**

4 *Principles Preface to the Eighth Edition, p XII*

(१) अर्थशास्त्र की परिभाषा तथा अध्ययन रीतियाँ।

(२) निरन्तरता का सिद्धान्त (Principle of Continuity)

(३) माँग व पूर्ति की मूल्यसापेक्षता का विचार (Concept of the Elasticity of Supply and Demand)

(४) अधिशेषवत् का विचार (Concept of Quasi-rent)

(५) उपभोक्ता की बेशी का विचार (Concept of Consumer's Surplus)

(६) प्रतिनिधि फर्म का विचार (Concept of Representative Firm)

(७) माँग व पूर्ति सन्तुलन विश्लेषण (Supply and Demand Equilibrium Analysis)

(८) अन्य आर्थिक विचार

(१) अर्थशास्त्र की परिभाषा तथा अध्ययन रीतियाँ

मार्शल ने अर्थशास्त्र की प्रचीन परिभाषा में उपयुक्त सुधार करके अर्थशास्त्र को दैनिक जीवन में मनुष्य की क्रियाओं का अध्ययन बताया। मार्शल ने अर्थशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार की है, "राजनैतिक अर्थशास्त्र अथवा अर्थशास्त्र मनुष्य जाति के जीवन की साधारण क्रियाओं का अध्ययन है। यह व्यक्ति तथा समाज के कार्य के उस भाग का परीक्षण करता है जिसका सम्बन्ध विशेष रूप से भौतिक कल्याण से होता है। एक ओर तो यह धन का अध्ययन है तथा दूसरी ओर- जो *अधिक महत्वपूर्ण है, यह मनुष्य के अध्ययन का एक भाग है।*"[7] इस प्रकार मार्शल ने अर्थशास्त्र के अध्ययन में धन के साथ मनुष्य तथा कल्याण को अधिक महत्व देकर रस्किन, कार्लाइल, समाजवादियों व अन्य आलोचकों की आलोचनाओं से अर्थशास्त्र को मुक्त करने का प्रयास किया। मार्शल के विचारानुसार अर्थशास्त्रकी विषय सामग्री मनुष्य था।

रिकार्डो तथा उनके अनुयायियों ने अर्थशास्त्र के अध्ययन में केवल निगमन रीति का प्रयोग किया था। अध्ययन की यह रीति दूषित थी तथा इतिहासवादी सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियों ने इसकी कड़ी आलोचना की। मार्शल अर्थशास्त्र के अध्ययन में इतिहास के अध्ययन के महत्व को समझते थे तथा उन्होंने यह कह कर सन्तुलित बनाने का प्रयास किया कि अर्थशास्त्र के अध्ययन में निगमन व आगमन दोनों रीतियों का प्रयोग उतना ही अधिक आवश्यक है जितना कि चलने के लिये दाहिनी तथा बाईं टाँगें आवश्यक होती है।

२ निरन्तरता का सिद्धान्त

निरन्तरता का सिद्धान्त मार्शल के अर्थशास्त्र की मुख्य विशेषता है तथा स्वयं मार्शल ने अपनी पुस्तक 'Principles of Economics' के प्रथम सस्करण की प्रस्तावना में इस प्रकार लिखा है "यदि इस पुस्तक की स्वयं कोई विशेष विशेषता है तो

7. Ibid : *Book I, Chapter I, p* 1

वह सम्भवतः इस बात मे है कि इसमे निरन्तरता के सिद्धान्त के प्रयोगो का उल्लेख किया गया है।" पुस्तक को खोलते ही पुस्तक के शीर्षक के प्रथम पृष्ठ पर ही पाठक **'Natura non facit saltum'** लिखा हुआ देख सकते है। इसका अर्थ यह है कि प्रकृति छलाँग लगाकर नही, वरन धीमे-धीमे पगो के द्वारा चलती है (Nature does not move by leaps but by steps)। पुस्तक पर लिखा यह आदर्श वाक्य इस सत्य का सूचक है कि आर्थिक जगत मे मानव की विभिन्न क्रियाये एक दूसरे से निरन्तरता के सूत्र द्वारा जुडी है। पुस्तक की प्रस्तावना मे मार्शल ने आर्थिक क्षेत्र मे निरन्तरता के सिद्धान्त के अनेक उदाहरण दिये है। मार्शल ने इस सम्बन्ध मे लिखा है कि नगर के उन व्यक्तियों की क्रियाओ, जो सोच विचार कर की जाती है तथा साधारण मनुष्यों की क्रियाओ, जो नियोजित नही होती है, के मध्य निरन्तरता होती है। एक दूसरे से भिन्न होते हुये भी वे आवश्यक रूप से समान होती है। इसी प्रकार बाजार मूल्य तथा सामान्य मूल्य मे भी निरन्तरता होती है। एक घन्टे के समय के आधार पर जो मूल्य सामान्य होता है वही मूल्य एक वर्ष के समय के आधार पर बाजार मूल्य हो जाता है। इसी प्रकार एक वर्ष के समय के आधार पर जो मूल्य सामान्य होता है वही मूल्य एक शताब्दी के समय के आधार पर बाजार मूल्य हो जाता है। इस प्रकार बाजार मूल्य तथा सामान्य मूल्य के अन्तर का आधार समय है। परन्तु यह समय जो सभी आर्थिक समस्याओ की जटिलता का केन्द्र है स्वय एक निरन्तर क्रम है। प्रकृति के अनुसार अल्प तथा दीर्घकाल मे कोई निरपेक्ष अन्तर नही है, बल्कि दोनो एक दूसरे मे धीरे से मिल जाते है। जो समय एक समस्या अथवा घटना के लिये अल्प समय होता है वही समय दूसरी समस्या के सम्बन्ध मे दीर्घकाल हो जाता है। अल्प तथा दीर्घ काल के मध्य कोई खडी खाई नहीं होती है। *अल्प काल आभास दीर्घ काल (quas-long period) के द्वारा के दीर्घ काल मे* मिल जाता है। पल-पल मिल कर युग बनता है। युग तथा पल एक दूसरे से भिन्न होते हुये भी आपस मे समय की अटूट कडी द्वारा जुडे है। दोनो मे जो भी अन्तर है वह केवल एक अश (degree) का है, प्रकार (Kind) का कदापि नही। इसी प्रकार बाजार मूल्य तथा सामान्य मूल्य मे केवल अश का ही अन्तर है।

इसी प्रकार लगान तथा ब्याज के अन्तर का आधार भी समय है। मार्शल ने इस सम्बन्ध मे लिखा है कि *"जो आय चल पूँजी (Floating Capital) अथवा पूँजी के नये विनियोगो के सम्बन्ध मे ब्याज कहलाती है, वही आय पूँजी के पुराने विनियोगो के दृष्टिकोण से एक प्रकार का लगान—अधिशेषवत (quasi-rent)—होती है।* परन्तु चल तथा अचल पूँजी तथा नये व पुराने विनियोगो के मध्य विभाजन की कोई स्पष्ट रेखा नही होती है। एक प्रकार की आय दूसरे प्रकार की आय मे मिल जाती है। इस प्रकार भूमि का लगान भी, यद्यपि इसकी अपनी अलग विशेषताएँ है

जो सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है, स्वयं एक अलग तत्व न होकर एक बड़ी जाति के एक वर्ग के समान है।[8]

"इसी प्रकार यद्यपि मनुष्य तथा उन यंत्रों में, जिन का वह प्रयोग करता है, अन्तर की एक स्पष्ट रेखा है तथा मानव श्रम की पूर्ति तथा माँग की कुछ विचित्र विशेषतायें होती हैं जो भौतिक वस्तुओं की पूर्ति तथा माँग में नहीं पाई जाती है, परन्तु यह सब कुछ अन्तर होते हुये भी भौतिक वस्तुयें मानव श्रम की ही सूचक है। श्रम के मूल्य के सिद्धान्तों को श्रम द्वारा बनी वस्तुओं के मूल्य के सिद्धान्तों से अलग नहीं किया जा सकता है क्योंकि ये सम्पूर्ण के ही भाग हैं। इसके अतिरिक्त दोनों में जो कुछ भी अन्तर हैं विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि ये अन्तर केवल अंश के ही अन्तर हैं प्रकार के कदापि नहीं है। जिस प्रकार कि चिड़ियों व चौपायों के मध्य रूप में अन्तर होते हुये भी सभी ढाँचों में एक मूलभूत विचार (Fundamental Idea) होता है इसी प्रकार वितरण तथा विनिमय की केन्द्रीय समस्या के सभी भागों में माँग तथा पूर्ति के सन्तुलन का एक मूलभूत विचार विद्यमान है।"[9]

"निरन्तरता के सिद्धान्त का अन्य उदाहरण आर्थिक शब्दों के क्षेत्र में पाया जाता है। वास्तविक जीवन में आवश्यक तथा अनावश्यक वस्तुओं, उन वस्तुओं में जो पूँजी हैं तथा जो पूँजी नहीं है, तथा उत्पादक व अनुत्पादक श्रम में स्पष्ट अन्तर नहीं है। यह सब कुछ केवल अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से ही किया जाता है।

(३) मूल्य सापेक्षता का विचार

मूल्यसापेक्षता का विचार मार्शल की अर्थशास्त्र विज्ञान को सबसे अधिक महत्वपूर्ण देन है तथा अर्थशास्त्र का प्रत्येक विद्यार्थी इसके लिये मार्शल का सच्चे रूप से सदा आभारी रहेगा। **Principles of Economics** में Book III के चौथे, अध्याय में, जिसका शीर्षक 'The Elasticity of Wants' है, मार्शल ने माँग की मूल्य सापेक्षता की निम्न प्रकार परिभाषा की है।

"बाजार में माँग की मूल्यसापेक्षता वस्तु के मूल्य में एक निश्चित कमी हो जाने के परिणामस्वरूप माँग में अधिक अथवा कम वृद्धि होने के अनुसार

अधिक अथवा कम होती है तथा मूल्य में एक निश्चित वृद्धि होने के परिणामस्वरूप अधिक अथवा कम कमी होने के अनुसार अधिक अथवा कम होती है। हम कह सकते है कि यदि मूल्य मे थोडी सी कमी हो जाने के फलस्वरूप वस्तु की माँग मे भी समान अनुपात मे वृद्धि हो जाती है तो माँग की मूल्यसापेक्षता एक (unity) है: अर्थात् मूल्य मे एक प्रतिशत की वृद्धि होने पर वस्तु की माँग मे भी एक प्रतिशत की वृद्धि होती है। इसी प्रकार यदि मूल्य मे एक प्रतिशत की कमी होने के कारण माँग मे २ प्रतिशत अथवा ½ प्रतिशत की वृद्धि होती है तो माँग की मूल्यसापेक्षता २ अथवा ½ होगी।" आगे चलकर अध्याय मे मार्शल ने उन अनेक तत्वो की व्याख्या की है जिनका माँग की मूल्यसापेक्षता पर प्रभाव पडता है। भिन्न-भिन्न मूल्यो पर माँग की मूल्यसापेक्षता की व्याख्या करते हुये मार्शल ने लिखा है कि "साधारणतया माँग की मूल्यसापेक्षता अधिक ऊँची कीमतो पर अधिक, तथा मध्यम कीमतो पर काफी होती है। यह कीमतो की गिरावट के साथ कम होती चली जाती है तथा शनैः शनैः जब कीमत माँग के सन्तुष्टि स्तर (satiety level) पर पहुँच जाती है तो मूल्यसापेक्षता शून्य हो जाती है।[11]

पुस्तक की समाप्ति पर गणितीय परिशिष्ट (Mathematical Appendix) मे, जिसको साधारण विद्यार्थी के लिये समझना कठिन है, मार्शल ने माँग की मूल्यसापेक्षता को मापने की विभिन्न रीतियो की व्याख्या की है। पुस्तक मे पृष्ठ ३७८ पर मार्शल ने पूर्ति की मूल्यसापेक्षता को समझाया है।

मार्शल द्वारा प्रतिपादित माँग व पूर्ति की मूल्यसापेक्षता के विचार का सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक जगत मे बहुत महत्व है। प्रत्येक उत्पादक अपनी वस्तु का मूल्य निर्धारित करते समय वस्तु की माँग की मूल्यसापेक्षता को ध्यान मे रखता है। वित्त मन्त्री भी वस्तु-कर लगाते समय वस्तुओ की माँग की मूल्यसापेक्षता का अध्ययन करता है।

(४) अधिशेषवत का विचार[12]

अधिशेषवत (Quasi-rent) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम मार्शल ने अपनी पुस्तक **Principles of Economics** की प्रस्तावना मे समय के प्रभाव की विवेचना करते हुये किया था। अधिशेषवत मशीनो तथा अन्य मनुष्यकृत यन्त्रो द्वारा प्राप्त वह आय है जो इनके स्वामियो को अल्पकाल मे इन यन्त्रो का पूर्ति के सीमित होने के कारण प्राप्त होती है। मार्शल का कहना है कि कोई मशीन एक विशेष प्रकार की आय प्राप्त कर सकती है जो लगान के समान होती है तथा जिसको

11. "The elasticity of demand is great for high prices, and great, or at least considerable, for medium prices, but it declines as the price falls, and gradually fades away if the fall goes so far that satiety level is reached" *(Principles, Book III, Chapter, IV, p, 87)*

12. सविस्तार अध्ययन के लिये अध्याय ११ का अध्ययन कीजिये।

अधिशेष (rent) कहा जा सकता है तथापि इसको अधिशेषवत कहना अधिक उपयुक्त है। अधिशेषवत अचल पूँजी पर अल्पकाल में प्राप्त हुई आय होती है। मार्शल का कहना है कि लगान का अंश वेतनों में भी पाया जा सकता है। किसी श्रमिक को अल्पकाल में उसमें दुर्लभ प्राकृतिक गुण होने के कारण लगान प्राप्त हो सकता है।

मार्शल ने अधिशेषवत के विचार का प्रतिपादन उत्पत्ति के अचल साधनों को अल्पकाल में प्राप्त होने वाली आय के कारणों को समझाने के उद्देश्य से किया था। मार्शल ने यह स्पष्ट करके कि अधिशेष उत्पत्ति के मनुष्यकृत साधन को भी प्राप्त हो सकता है, इस सत्य को स्पष्ट किया कि उत्पत्ति के सभी साधनों में समय-समय पर भूमि की वह विशेषता जिसके कारण इसको अधिशेष प्राप्त होता है—पूर्ति की सीमितता—पाई जा सकती है तथा इनको भी भूमि के अधिशेष के समान आय प्राप्त हो सकती है जो इनकी सामान्य आय (normal earnings) के ऊपर वेशी होती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मार्शल ने लगान को अलग आय न विचार कर इसको सामान्य आर्थिक विश्लेषण का ही एक विशेष अग विचारा है। मार्शल ने यह स्पष्ट किया कि भूमि के अधिशेष का अध्ययन माँग व पूर्ति के सामान्य सिद्धान्त के द्वारा किया जा सकता है।

(५) उपभोक्ता की वेशी का विचार

मूल्य सापेक्षता के विचार के अतिरिक्त मार्शल की अर्थशास्त्र विज्ञान को दूसरी विशेष देन उपभोक्ता की वेशी का विचार है। वास्तव में उपभोक्ता की वेशी का विचार वेशी के व्यापक विचार का ही एक भाग है। Principles of Economics, Book III, Chapter VI में उपभोक्ता की वेशी तथा पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट K में अन्य प्रकार की वेशियों की व्याख्या की गई है। उपभोक्ता की वेशी की परिभाषा मार्शल ने इस प्रकार की है : 'The excess of the price which he would be willing to pay rather than go without the thing, over that which he actually does pay, is the economic measure of this surplus satisfaction It may be called **consumer's surplus**'[13]

कोई उपभोक्ता कितनी उपभोक्ता की वेशी को प्राप्त कर पायेगा यह उसके वातावरण (conjuncture) पर निर्भर होती है अर्थात् यह इस बात पर निर्भर करता है कि उपभोक्ता को वस्तु उपभोग के लिये प्राप्त हो सकती है अथवा नहीं। उदाहरणार्थ जगल में रहते हुये उपभोक्ता को अनेक वस्तुओं के उपभोग से वंचित रहना पड़ता है तथा ऐसी स्थिति में उसका वातावरण अधिक उपभोक्ता की वेशी की प्राप्ति के अनुकूल नहीं कहा जा सकता है।

मार्शल ने उपभोक्ता की वेशी के विचार को चाय के एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझाया है। चाय की कीमत २ शिलिंग प्रति पौंड है। हम एक

13. Principles, 8th ed p 103

ऐसे मनुष्य को लेते है जो यदि चाय की कीमत २० शिलिंग प्रति पौंड होती तो वर्ष मे एक पौंड चाय का; यदि चाय की कीमत १४ शिलिंग प्रति पौंड होती तो वर्ष मे २ पौंड चाय का; यदि कीमत १० शिलिंग प्रति पौंड होती तो वर्ष मे ३ पौंड चाय का, यदि कीमत ६ शिलिंग प्रति पौंड होती तो वर्ष मे ४ पौंड चाय का; यदि कीमत ४ शिलिंग प्रति पौंड होती तो वर्ष मे ५ पौंड चाय का, यदि कीमत ३ शिलिंग प्रति पौंड होती तो वर्ष मे ६ पौंड चाय का तथा यदि चाय की कीमत प्रति पौंड २ शिलिंग होती है तो वर्ष मे ७ पौंड चाय का उपभोग करता है। ऐसी स्थिति मे उपभोक्ता की वेशी ४५ शिलिंग के बराबर होगी। उपभोक्ता को प्राप्त हुई वेशी की यह मात्रा सर्वप्रथम तो चाय की कीमत पर तथा दूसरे उपभोक्ता को प्राप्त हुये अनुकूल वातावरण पर आधारित है। यदि उपभोक्ता का आर्थिक वातावरण इतना प्रतिकूल हुआ होता कि उसे चाय का उपभोग करने का अवसर ही प्राप्त न हुआ होता तो उपभोक्ता को वेशी प्राप्त होने का कोई प्रश्न ही उत्पन्न न हुआ होता।

यद्यपि मार्शल का उपभोक्ता की वेशी का विचार अनेक त्रुटियो का भण्डार है तथा मार्शल अपने विचार की इन त्रुटियो से परिचित थे, परन्तु यह सब कुछ होते हुये भी इस सत्य को नही भुलाया जा सकता है कि सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र मे मार्शल के उपभोक्ता की वेशी के विचार का एक विशेष महत्व है।

(६) प्रतिनिधि फर्म का विचार[14]

प्रतिनिधि फर्म का विचार भी मार्शल के अर्थशास्त्र की एक प्रमुख विशेषता है। प्रतिनिधि फर्म के विचार का प्रतिपादन वस्तु के पूर्ति मूल्य (supply price) को निर्धारित करने की कठिनाई को हल करने के उद्देश्य से किया गया था। वस्तु का मूल्य बाजार मे वस्तु की मॉग (उपयोगिता) तथा पूर्ति (उत्पादन व्यय) के पारस्परिक प्रभाव द्वारा निर्धारित होना है। परन्तु एक उद्योग मे अनेक फर्म होती है तथा प्रत्येक फर्म का वस्तु की इकाई को उत्पादन करने का व्यय समान नही होता है। ऐसी दशा मे प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि कौन-सी फर्म के उत्पादन व्यय द्वारा वस्तु का मूल्य निर्धारित होना चाहिये। उदाहरणार्थ यदि उद्योग मे A, B, C, D, E, F, G, H आठ फर्म हैं (व्यावहारिक जगत मे उद्योग मे कई सौ फर्म—उदाहरण के लिये सूती वस्त्र तथा चीनी मिल उद्योग—होती है) तो प्रश्न उठता है कि इनमें से किस एक फर्म के उत्पादन व्यय को मूल्य निर्धारण का आधार माना जाना चाहिये। इस कठिनाई पर विजय प्राप्त करने के लिये मार्शल ने प्रतिनिधि फर्म के विचार का प्रतिपादन किया था।

प्रतिनिधि फर्म एक ऐसी फर्म होनी है "जिसका उद्योग मे काफी लम्बा

---

14. प्रतिनिधि फर्म के विचार की व्याख्या सर्वप्रथम १८६१ ई० मे Principles of Economics के दूसरे संस्करण में की गई थी।

जीवन रहा है, जिसको उचित सफलता प्राप्त होती है तथा जिसका प्रबन्ध सामान्य योग्यता से किया जाता है तथा जिसको दिये हुये उत्पादन के आकार की सामान्य आन्तरिक व वाह्य किफायते प्राप्त है।[15] प्रतिनिधि फर्म का आकार वन मे प्रतिनिधि वृक्ष के आकार के समान सदा समान रहता है तथा इसके अपने साधनो से प्राप्त किफायते भी समान रहती है।'[16] इस प्रतिनिधि फर्म के व्यय, जिसका प्रबन्ध सामान्य योग्यता से होता है तथा जिसको उत्पादन के पैमाने की आन्तरिक व वाह्य किफायते सामान्य रूप से प्राप्त होती है, को उद्योग का सामान्य उत्पादन व्यय स्वीकार किया जा सकता है।"[17]

यद्यपि प्रतिनिधि फर्म के व्यावहारिक महत्व के सम्बन्ध मे अर्थशास्त्रियों मे घना मतभेद है—कुछ का कहना है कि ऐसी फर्म व्यावहारिक जगत मे उपस्थित होती है, अन्यो का कहना है कि इसका कोई व्यावहारिक महत्व नहीं है—परन्तु निःसन्देह प्रतिनिधि फर्म के विचार का सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र मे मूल्य विश्लेषण के क्षेत्र मे एक विशेष महत्व है।

(७) मॉग व पूर्ति सन्तुलन विश्लेषण

स्मिथ, रिकार्डो तथा अन्य अर्थशास्त्र सस्थापको ने मूल्य के पूर्ति सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। इन अर्थशास्त्रियो के विचारानुसार किसी वस्तु का मूल्य उसके उत्पादन व्यय द्वारा निर्धारित होता था। स्पष्ट है कि मूल्य का यह सिद्धान्त अधूरा था तथा इसकी १६ वी शताब्दी मे कडी आलोचना की गई थी। इगलैंड मे विलियम स्टेन्ले जेवन्स तथा आस्ट्रियन मनोविज्ञानवादी सम्प्रदाय के लेखको—मेगर, वाम बावर्क, वीजर इत्यादि—ने अर्थशास्त्र सस्थापको के मूल्य के इस उत्पादन व्यय सिद्धान्त की कडी आलोचना की थी तथा यह स्पष्ट रूप से व्यक्त किया था कि वस्तु का मूल्य उसकी मॉग—उपयोगिता—द्वारा निर्धारित होता है। इन अर्थशास्त्रियो ने मूल्य के प्राचीन वस्तुपरक सिद्धान्त (theory of objective value) के स्थान पर मूल्य के आत्मपरक सिद्धान्त (theory of subjective value) का प्रतिपादन किया था।

मार्शल ने इन दोनों विरोधी विचारधाराओ का सकलन किया। मार्शल के विचारानुसार मूल्य मॉग व पूर्ति के मध्य स्थापित सन्तुलन का स्वाभाविक परिणाम था। किसी समय विशेष पर स्थाई मूल्य उसी बिन्दु पर स्थापित होता है जहाँ वस्तु की कुल मांग उसकी कुल पूर्ति के समान होती है। मार्शल ने यह भी स्पष्ट किया कि यद्यपि सन्तुलन मूल्य मॉग व पूर्ति के सन्तुलन का परिणाम होता है, परन्तु समय की अवधि के अनुसार मॉग व पूर्ति की शक्तियो का मूल्य पर असमान प्रभाव पडता है। जिस मूल्य पर आकर वस्तु की मॉग व पूर्ति समान होती हैं वह मूल्य सन्तु-

15 *Principles, 8th ed p* 317
16 *Ibid p.* 367
17. *Ibid. p.* 497

लन मूल्य कहलाता है तथा ऐसी स्थिति मे सन्तुलन स्थाई होता है। परन्तु स्थाई का तात्पर्य स्थिर से नही होता है। यदि वस्तु का माँग-मूल्य उसके पूर्ति-मूल्य की अपेक्षा अधिक होता है तो उत्पादन अथवा पूर्ति मे वृद्धि होने के कारण नया सन्तुलन मूल्य स्थापित हो जायेगा।

समय की अवधि के कम अथवा अधिक होने के अनुसार मूल्य पर पूर्ति का कम तथा माँग का अधिक प्रभाव पडता है। मार्शल ने इस सम्बन्ध मे कहा है कि यदि समय कम हो तो मूल्य पर माँग का पूर्ति की अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव पडता है। अल्प काल[18] मे पूर्ति के सीमित होने के कारण मूल्य पर माँग का ही सक्रिय प्रभाव पडता है। जैसे-जैसे समय की अवधि मे वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे मूल्य पर माँग के साथ पूर्ति के सक्रिय प्रभाव के महत्व मे भी वृद्धि होती जाती है। दीर्घकाल मे पूर्ति के पूर्णतया मूल्यसापेक्ष होने के कारण मूल्य पर माँग व पूर्ति का समान प्रभाव पड़ता है।

यद्यपि अल्प समय मे पूर्ति के सीमित होने के कारण वस्तु के मूल्य मे, माँग मे परिवर्तन होने के अनुसार परिवर्तन होते है--अर्थात् यदि माँग बढकर दुगुनी हो जाती है तो मूल्य भी बढकर दुगना हो जाता है। इसके विपरीत माँग के घट कर आधा हो जाने पर मूल्य भी पहले की अपेक्षा आधा हो जाता है। परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि अल्पकाल मे मूल्य निर्धारण मे पूर्ति का कोई स्थान नहीं है। यद्यपि पूर्ति अल्प काल मे सीमित होने के कारण मूल्य के उन परिवर्तनो पर, जो माँग मे परिवर्तन होने के परिणामस्वरूप होते है, अपना कोई प्रभाव नही डालती है परन्तु इसका यह अर्थ नही है कि इसका मूल्य निर्धारण मे कोई महत्व नही है। वास्तविकता इसके विपरीत है। समय की किसी भी अवधि मे—चाहे अल्पकाल हो जिसमे पूर्ति सीमित तथा निष्क्रिय होती है, अथवा चाहे दीर्घकाल हो जिसमे पूर्ति परिवर्तनीय तथा सक्रिय होती है—पूर्ति के बिना मूल्य की कल्पना करना व्यर्थ है। माँग व पूर्ति के बिना मूल्य की घटना कदापि उत्पन्न नही हो सकती है।

मूल्य निर्धारण मे माग व पूर्ति की शक्तियो के महत्व को मार्शल ने बडे अच्छे ढग से केंची के फलको का उदाहरण देकर समझाया है। मार्शल ने इस सम्बन्ध मे यह कहा है कि जब केंची का एक फलका स्थिर रखकर दूसरे फलके को चलाकर कागज काटा जाता है तो हम यह साधारण रूप से कह सकते है कि केंची के चलते फलके ने ही कागज काटा है। परन्तु ऐसा कहना गलत है क्योकि यदि केंची के स्थिर फलके को अलग कर दिया जाता है तो चलते फलके की कागज काटने की शक्ति समाप्त हो जाती है। वास्तविकता यह है कि केंची के चलने तथा कागज काटने के लिये दोनो

---

18. अल्पकाल वह काल अथवा समय की वह अवधि है जिसमे पूर्ति पूर्णतया सीमित होती है, अर्थात् इसमे माँग के परिवर्तनो के अनुसार परिवर्तन करना सम्भव नही है।

फलकों का होना समान आवश्यक है। ठीक इसी प्रकार मूल्य निर्धारण के लिये भी माग व पूर्ति का समान महत्व है, भले ही पूर्ति स्थिर क्यों न हो। इस सम्बन्ध में यहा मार्शल के शब्दों को निम्नलिखित दोहराना उपयुक्त होगा।

"We might as reasonably dispute whether it is the upper or the under blade of a pair of scissors that cuts a piece of paper, as whether value is governed by utility or cost of production. It is true that when one blade is held still, and the cutting is effected by moving the other, we may say with careless brevity that the cutting is done by the second, but the statement is not strictly accurate, and it is to be excused only so long as it claims to be merely a popular and not a strictly scientific account of what happens."[19]

(८) अन्य आर्थिक विचार

मार्शल के उपरोक्त प्रमुख आर्थिक विचारों के अतिरिक्त, जो उनकी प्रसिद्ध पुस्तक **Principles of Economics** में व्याख्यात हैं, अन्य आर्थिक विषयों पर भी मार्शल ने अपना योगदान दिया है। मौद्रिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र में भी मार्शल के विचार प्रसिद्ध हैं। मार्शल ने द्रव्य के परिमाण सिद्धान्त के केम्ब्रिज अथवा नकद शेष समीकरण (Cambridge or Cash-balances equation) को प्रतिपादित किया था। इसके अतिरिक्त मार्शल ने ब्याज की द्रव्य दर (money rate) तथा वास्तविक दर (real rate) के अन्तर को भी स्पष्ट किया तथा यह भी बताया कि इनका व्यापार चक्र से क्या सम्बन्ध है। इसके अतिरिक्त १८८८ ई० में स्वर्ण तथा रजत आयोग को प्रस्तुत स्मृतिपत्र में मार्शल ने क्रयशक्ति समता सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। इन सब के अतिरिक्त देशनाक (index numbers) बनाने की शृङ्खला रीति (chain method) तथा दीर्घकालीन संविदाओं में प्रयोग के लिये सारणीमान (Tabular Standard) के सुझाव भी मार्शल ने ही दिये थे।

उपरोक्त योगदानों के अतिरिक्त मौद्रिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र में मार्शल का सब से अधिक महत्वपूर्ण सुझाव द्विधातुमान के दोषों को दूर करने से सम्बन्धित था। द्विधातुमान में स्वर्ण तथा चांदी के मूल्यों में परिवर्तन होने के कारण यह मान चांदी अथवा स्वर्ण का एक धातुमान ही रहता है। इस दोष को दूर करने के उद्देश्य से मार्शल ने स्वर्ण व रजत के मिश्रित मान (gold and silver symmetallism) का सुझाव दिया था। अपनी इस योजना को द्विधातुमान की अपेक्षा अच्छी बताते हुए मार्शल ने निम्न प्रकार लिखा था

"I submit that, if we are to have a great disturbance of our currency for the sake of bimetallism, we ought to be sure that we

19. *Ibid* p. 348

get it ..My alternative scheme is got from his (Ricardo's) simply by wedding a bar of silver of, say, 2000 grammes to a bar of gold of say, 100 grammes, the government undertaking to be always ready to buy or sell a wedded pair of bars for a fixed amount of currency. This plan could be started by any nation without waiting for the concurrence of others."

परन्तु मार्शल के सुझाव मे व्यावहारिकता का अभाव होने के कारण इसको लागू करना कठिन है। लन्दन की प्रसिद्ध पत्रिका **The Economist** ने मार्शल के Symmetallism के सुझाव की कडी आलोचना की थी।

मार्शल की पुस्तक Principles का मूल्यांकन

मार्शल ने की अपनी पुस्तक **Principles of Economics** मे अर्थशास्त्र के जिस ढाचे का निर्माण किया है, उस के अन्य दोषों के अतिरिक्त दो मुख्य दोष प्रतीत है। प्रथम, Principles मे आर्थिक समस्याओ व सिद्धान्तों के विश्लेषण का स्वभाव स्थिर (static) है। एक प्रवैगिक ससार के लिए एक स्थिर विश्लेषण की विशेष उपयोगिता नही हो सकती है। प्रत्येक आर्थिक समस्या को सन्तुलन व दीर्घ काल के ढाँचे मे ढाला गया है। परन्तु जीवन के दृष्टिकोण से अल्पकाल ही महत्व पूर्ण है क्योकि दीर्घकाल मे तो हम सब मर जाते है। मार्शल के अर्थशास्त्र को static बताते हुए स्वय मार्शल की प्रसिद्ध शिष्या श्रीमती जॉन रॉबिन्सन ने इस प्रकार लिखा है :

There is a deep seated conflict in the Principles, of which Marshall himself was uneasily aware, between the analysis which is purly static and the conclusions drawn from it, which apply to an economy developing through time with accumulation going on; but some how we managed to swallow it."[20]

पुस्तक की यह आलोचना इसलिये और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है क्योकि मार्शल ने पुस्तक के आठवें सस्करण की प्रस्तावना मे इस आलोचना को गलत बताते हुये लिखा है :

'In fact it is concerned throughout with the forces that cause movement : and its key-note is that of dynamics, rather than statics

पुस्तक का दूसरा दोष यह है कि मार्शल ने अपने विश्लेषण में "अन्य बातें समान रहते हुये" मान्यता का बहुत अधिक प्रयोग किया है। वस्तु के मूल्य पर

20. Joan Robinson · *Collected Economic Papers, Introduction*, P.

केवल उस वस्तु की माग व पूर्ति की शक्तियों के प्रभावों का ही अध्ययन किया गया है। परन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है जब हम शेष अर्थव्यवस्था को स्थिर मान ले। परन्तु यह मान्यता करना वास्तविकता से दूर रहना है। मार्शल का विश्लेषण वालरस (Leon Walras) के सामान्य सन्तुलन विश्लेषण (General Equilibrium Analysis) के समान नही है। मार्शल का विश्लेषण आंशिक अथवा विशिष्ट सन्तुलन-विश्लेषण (Partial or Particular Equilibrium Analysis) है तथा इस कारण व्यावहारिक रूप से इसकी उपयोगिता सीमित है।

परन्तु मार्शल के अर्थशास्त्र मे उपरोक्त दोषो के होते हुये भी नये सिद्धान्तो के विकास मे मार्शल का योगदान बहुत अधिक है तथा उनकी पुस्तक Principles of Economics नि सन्देह १६वी शताब्दी के महान लेखन कार्यों मे से एक है तथा आज इसको उच्चकोटि के ग्रन्थो का स्थान प्राप्त है। मार्शल के अर्थशास्त्र का आर्थिक विचारधारा तथा नीति क्षेत्र मे अब तक गहरा प्रभाव पडा है तथा निकट भविष्य मे इस प्रभाव के समाप्त होने के कोई चिन्ह उपस्थित नही हैं।

निष्कर्ष

मार्शल के आर्थिक विचारों की उपरोक्त सक्षिप्त व्याख्या से यह भली प्रकार विदित हो जाता है कि मार्शल गत १०० वर्षों के एक महान अर्थशास्त्री थे तथा उन के समर्थकों तथा शिष्यों की सख्या काफी घनी है। यह मार्शल के लिये एक विशेष गर्व की बात है कि उनके शिष्य इगलैंड, यूरोप व अमरीका म विश्वविद्यालयों मे प्रोफेसर बन कर अपने गुरु के अर्थशास्त्र के प्रभाव को सूर्य की व्यापक किरणों के समान जगत मे फैलाते रहे हैं। जिस प्रकार मार्क्स के समर्थकों को मार्क्सवादी कहा जाता है, उसी प्रकार आज भी इगलैंड, यूरोप व अमरीका मे अनेक मार्शलवादी अर्थशास्त्री मौजूद हैं। मार्शल को आर्थिक विचारों के इतिहास मे सदा प्रथम श्रेणी का स्थान प्राप्त रहेगा। एक वैज्ञानिक के नाते, गत १०० वर्षों मे उनके शिष्य जॉन मेनार्ड कीन्स को छोडकर उनकी महानता को चुनौती देने वाला अन्य कोई अर्थशास्त्री नही है।

विशेष अध्ययन सूची

1.	Alfred Marshall	Principles of Economics.
2.	J. F Bell	A History of Economic Thought, Chapter, 24
3.	P C. Newman	The Development of Economic Thought, Chapter, XXVI
4	A. C Pigou (Ed)	. Memorials of Alfred Marshall
5.	J. A Schumpeter	The Ten Great Economists.
6	Spengler & Allen	: Essays in Economic Thought,

7. L. H. Haney : History of Economic Thought, Chapter, XXXII.
8 Leo Rogin : The Meaning and Validity of Economic Theory, Chapter 14.
9. 7. M. *Ferguson* : *Landmarks of Economic, Thought*, Chapter, XIII
10. O. H. Taylor : A History of Economic Thought, Chapter, 13.
11. Eric Roll : A History of Economic Thought, *Chapter, VIII, pp, 394-402.*
12. A. C. Pigou : Alfred Marshall and Current Thought.
13. Robert Lekachman : A History of Economic Ideas, Chapter, 11.

प्रश्न

1. Assess Marshall's place in the history of economic thought.
(अलीगढ़, १९५८)
2. Explain Alfred Marshall's contribution to the theory of value
(कर्नाटक, १९५९)
3. Discuss the main contribution of Alfred Marshall to economic thought
(कर्नाटक, १९५८, आगरा, १९४६; १९५२; १९५५)
4. "Marshall simply reconciled Recardo and Jevons." Discuss
(कर्नाटक, १९५८)
5. 'In a study of contemporary economic theory, Marshall stands out as perhaps our most important figure.'
Explain clearly the above statement, and point out the chief contribution which Marshall has made to economic science.
(आगरा, १९४८; १९६०; राजस्थान, १९४८)
6. 'Marshall succeeded in a very high degree in the performance of the task which he set himself, namely, that of *presenting a modern version of old doctrines with the aid* of the new work and with reference to the new problems of our age'. (Scott). Justify.
(आगरा, १९५१; १९५८)

6. 'There is more than enough of the Marshallian neo-classical edifice remaining to permit its outline to be clearly identifiable throughout the whole body of contemporary economic literature' Justify by supporting your arguments on the basis of the contributions made by Marshall to economic science.

(सागरा, १९५८)

7. Explain clearly what is 'neo-classicism', In this connection analyse the contribution of Alfred Marshall to economic theory

(राजस्थान, १९५०)

8. Assess Marshall s main contributions in the reconstruction of economic science. Was he simply an eclectic ?

(राजस्थान, १९५१)

9. Determine the place of Alfred Marshall in the evolution of economic theory.

(राजस्थान, १९५३, १९५२)

10. 'Alfred Marshall will stand in the history of economic thought as one who made more progress towards a united and consistent theory of value and distribution than any predecessor" (Haney)

Examine fully the above statement.

(राजस्थान, १९५५)

11. 'With understanding, depth of insight, and great logical consistency he (Marshall) saw truth in disconnected or seemingly antithetic doctrines, and put them together as a connected whole' (Haney)

Critically examine the above statement.

(राजस्थान, १९६२)

12. 'Compared with the work of many of his contemporaries Marshall's system appears eclectic, or even lacking in internal consistency' (Cole).

In the light of the above statement point out *Marshall's main contribution* to the *reconstruction* of economic science.

(राजस्थान, १९६०)

अध्याय २८

केम्ब्रिज सम्प्रदाय के अन्य सदस्य

(Other Members of Cambridge School)

केम्ब्रिज सम्प्रदाय, जिसके प्रवर्तक प्रसिद्ध अगरेज अर्थशास्त्री डा० एल्फ्रेड मार्शल थे, का विकास मार्शल के शिष्य तथा समकालीन अर्थशास्त्रियों द्वारा किया गया है। वर्तमान शताब्दी के 'बीसा' के युग मे जिन अर्थशास्त्रियो का दल कैम्ब्रिज मे मार्शल के समीप केन्द्रित हुआ था उसमे प्रो० पीगू, श्रीमती जॉन रोबिन्सन, वर्तमान युग के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जान मेनार्ड कीन्स[1], प्रो० रोबर्टसन, प्रो० मोरिस डोब[2] (Maurice Dobb) तथा पीरु सराफा[3] (Piero Sraffa) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

---

1. सविस्तार अध्ययन के लिये अध्याय २९ को पढ़िये।
2. प्रो० मोरिस डोब, जो वर्तमान शताब्दी के प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियो मे मे है, के लेखनकार्यो मे निम्नलिखित पुस्तके विशेषरूप से उल्लेखनीय है।
   1. Some Aspects of Economic Development.
   2. Essays on Economic Growth and Planning.
   3. On Economic Theory of Socialism.
   4. Political Economy and Capitalism.
   5. Soviet Economic Development Since 1917.
   6. Studies in the Development of Capitalism.
   7. Wages

   प्रो० डोब का विशेष अध्ययन क्षेत्र आर्थिक विकास (economic growth) तथा समाजवाद रहा है।
3. यद्यपि पीरू सराफा का नाम उतना अधिक परिचित नही है जितना कि अन्य केम्ब्रिज अर्थशास्त्रियो का है परन्तु वे प्रथम श्रेणी के अर्थशास्त्री है। वे अपने १९२६ ई० मे लिखित **'The Laws of Returns under Competitive Conditions'** नामक लेख के लिये जो **Economic Journal** मे प्रकाशित हुआ था, प्रसिद्ध हैं। उनकी पुस्तको मे **(1) Production of Commodities for Commodities (2) Works and Correspondence of David Ricardo (ed.)** विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

सम्प्रदाय के प्रवर्तक मार्शल के समान केम्ब्रिज सम्प्रदाय के सभी अर्थशास्त्रियों का प्रयास अर्थशास्त्र को सामाजिक प्रगति का साधन बनाना रहा है। परन्तु मार्शल की मृत्यु के पश्चात केम्ब्रिज अर्थशास्त्रियों ने **laissez faire** के दोषों की काफी कड़ी आलोचना की तथा कीन्स व मोरिस डोब के समान अर्थशास्त्रियों ने १६ वी शताब्दी के व्यक्तिवाद के विपरीत राज्य-हस्तक्षेप की नीति का प्रतिपादन किया।

मार्शल के समान, केम्ब्रिज अर्थशास्त्रियो ने भी अनेक विचारधाराओं का सकलन किया। केम्ब्रिज सम्प्रदाय नवसस्थापकवाद का सग्रह रहा है। इस सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियो का द्रव्य, आर्थिक समष्टिवाद (macroeconomics) तथा विदेशी व्यापार के क्षेत्र मे विशेष योगदान रहा है। सम्प्रदाय की सदस्य श्रीमती जान रोबिन्सन का परिकल्पित अर्थशास्त्र (Pure Economics) के क्षेत्र मे भी विशेष योगदान है। अब *केम्ब्रिज सम्प्रदाय के कुछ प्रसिद्ध सदस्यों के व्यक्तिगत योगदान* की सक्षिप्त व्याख्या की जा सकती है।

१. आर्थर सेसिल पीगू (१८७७ ई०--१९५९ ई०)
(Arthur Cecil Pigou)

प्रोफेसर पीगू केम्ब्रिज विश्वविद्यालय मे अर्थशास्त्र के प्रोफेसर तथा मार्शल की मृत्यु के पश्चात अर्थशास्त्र विभाग मे मार्शल के उत्तराधिकारी थे। प्रो० पीगू को मार्शल के विचारो का सच्चा समर्थक कहना गलत न होगा। वे सस्थापक सम्प्रदाय के अन्तिम प्रतिनिधि थे तथा कीन्स के साथ वाद-विवादो मे वे सस्थापक विचारधारा की प्रतिरक्षा किया करते थे। प्रो० पीगू उदार वृत्ति के अर्थशास्त्री थे तथा उनके विचारो मे लचीलापन था। अपने जीवनकाल मे वे अर्थशास्त्र के सच्चे विद्यार्थी होने के नाते अर्थशास्त्र को जन कल्याण का साधन बनाने मे व्यस्त रहे थे।

उनकी प्रसिद्ध पुस्तक **'The Economics of Welfare'**, जिसका कल्याणवादी अर्थशास्त्र मे उच्च कोटि के ग्रन्थों मे स्थान है, सर्वप्रथम १९२० ई० मे प्रकाशित हुई थी। मार्शल की प्रसिद्ध पुस्तक **Principles of Economics** के समान पीगू की यह पुस्तक भी काफी लोकप्रिय सिद्ध हुई तथा १९३२ ई० तक इसके चार सस्करण हो चुके थे। पुस्तक से लेखक को आय तथा यश दोनो ही प्राप्त हुये। पुस्तक मे राष्ट्रीय लाभाश, भौतिक कल्याण, राष्ट्रीय लाभाश के पुनः वितरण, उद्योगो का नियमन तथा नियन्त्रण इत्यादि समस्याओ की व्याख्या की गई है।

प्रो० पीगू ने द्रव्य के परिमाण सिद्धान्त के केम्ब्रिज समीकरण मे सुधार किया। अर्थशास्त्र के विद्यार्थी उनके निम्न दो समीकरणो से भली प्रकार परिचित हैं।

$$P = \frac{KR}{M}$$

$$P=\frac{KR}{M}\{c+h(1-c)\}$$

इसके अतिरिक्त उन्होने व्यापार चक्र के मनोवृत्ति सिद्धान्त (psychological theory) का भी प्रतिपादन किया था। प्रो० पीगू केवल एक सैद्धान्तिक अर्थशास्त्री ही नही थे वरन उनकी व्यावहारिक आर्थिक समस्याओं के अध्ययन में भी काफी रुचि थी। यह इस सत्य से भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने "The Food Subsidies"; "Inflation"; "The Gold and Doller Reserve" आदि व्यावहारिक महत्व के विषयो पर पत्रिकाओं मे लेख लिखकर अपने विचारो तथा सुझावो को व्यक्त किया था। वे अनेक आयोगो तथा समितियो के भी सदस्य थे। १९१८-१९ ई० मे वे Cuncliffe Committee, १९१९-२० ई० मे Royal Commission on Income Tax तथा १९२४-२५ ई० मे Chamberlin Committee के सदस्य रहे थे।

अनेक लेखो के अतिरिक्त, जो समय-समय पर भिन्न उच्च कोटि की आर्थिक पत्रिकाओं मे प्रकाशित होते रहते थे, प्रो० पीगू की पुस्तकों मे निम्नलिखित विशेष रूप मे उल्लेखनीय हैं।

क्रम संख्या	पुस्तक का शीर्षक	प्रथम प्रकाशन का वर्ष
१	Wealth and Welfare	१९१२ ई०
२	The Economics of Welfare	१९२० ई०
३	Memorials of Alfred Marshall (ed.)	१९२५ ई०
४	Industrial Fluctuations	१९२७ ई०
५	Theory of Unemployment	१९३३ ई०
६	Economics in Practice	१९३५ ई०
७	Economics of Stationery States	१९३५ ई०
८	Socialism versus Capitalism	१९३७ ई०
९	The Political Economy of War	१९३९ ई०
१०	Employment and Equilibrium	१९४१ ई०
११	Income	१९४५ ई०
१२	Lapses from Full Employment	१९४५ ई०
१३	A Study in Public Finance	१९४६ ई०
१४	Keynes' General Theory	
१५	Aspects of British Economic History	१९४६ ई०
१६	The Veil of Money	१९४९ ई०
१७	Wage Statistics and Wage Policy	१९४९ ई०
१८	Essays in Economics	१९५५ ई०
१९	Alfred Marshall and Current Thought	१९५३ ई०

उनका देहान्त ७ मार्च, १९५९ को ८२ वर्ष की दीर्घ आयु में हुआ था। वे सभी दृष्टिकोणों से वर्तमान शताब्दी के एक महान अर्थशास्त्री तथा केम्ब्रिज सम्प्रदाय के एक प्रभावशाली सदस्य थे। वास्तव में यह कहना अनुचित न होगा कि यदि मार्शल केम्ब्रिज सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक थे तो पीगू केम्ब्रिज सम्प्रदाय के केन्द्रिय स्तम्भ थे।

२. डेनिस होल्म रोबर्टसन

(Dennis Holme Robertson)

प्रो० रोबर्टसन भी प्रसिद्ध केम्ब्रिज अर्थशास्त्रियों में से है। उनको सर की पदवी प्राप्त हुई तथा वे Trinity College, Cambridge के Fellow थे। वे केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर रहे थे तथा अवकाश प्राप्त करने के पश्चात Emeritus Professor of Political Economy के पद पर रह चुके है। अर्थशास्त्र के सभी विद्यार्थी उनसे परिचित है। उनका विशेष लेखन कार्य मौद्रिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र में है। अर्थशास्त्र के अधिकांश विद्यार्थी उनकी छोटी सी पुस्तक **'Money'** से भली प्रकार परिचित है। पीगू के समान रोबर्टसन ने भी मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त के केम्ब्रिज समीकरण का निम्न प्रकार प्रतिपादन किया है।

$$P = \frac{M}{KT}$$

प्रो० रोबर्टसन ने बचत तथा विनियोग का विश्लेषण करते समय वास्तविक (ex-post) तथा प्रत्याशित (ex-ante) बचत व विनियोग के भेद को समझाया है। प्रो० रोबर्टसन ने परिकल्पित अर्थशास्त्र (Pure Economics) पर भी पुस्तकें लिखी है। अनेक लेखों के अतिरिक्त, जो आर्थिक पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित हुये है, उनकी पुस्तकों में निम्नलिखित पुस्तकें उल्लेखनीय हैं।

१. Essays in Monetary Theory (१९४० ई०)
२. Money
३. Control of Industry
४. Study of Industrial Fluctuations
५. Britain in the World Economy (१९५४ ई०)
६. Utility and All That and Other Essays (१९५२ ई०)
७. Economic Commentaries (१९५६ ई०)
८. Lectures on Economic Principles, Vol. I and II (१९५७ ई०)
९. Growth, Wages, Money (१९६१ ई०)

१९५३ ई० में प्रो० रोबर्टसन ने अमरीका में वरजीनिया विश्वविद्यालय

मे Page-Barbour Lectures के अन्तर्गत व्याख्यान दिये थे। १६६० ई० में उन्होने केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में Marshall Memorial Lectures दिये थे।

३. श्रीमती जॉन रोबिन्सन (१६०३ ई०)

(Mrs. Joan Robinson)

श्रीमती जॉन रोबिन्स का जन्म १६०३ ई० मे हुआ था। श्रीमती जॉन रोबिन्सन का केम्ब्रिज विश्वविद्यालय से प्रथम सम्प्रक १६२२ ई० मे उस समय हुआ था जब उन्होंने King's College, Cambridge मे विद्यार्थी के रूप मे प्रवेश किया था। उन्होंने केम्ब्रिज विश्वविद्यालय मे १६२६ ई० मे अध्यापन कार्य आरम्भ किया था। वे मार्शल की शिष्या रही है तथा अर्थशास्त्र मे भिन्न विषयो पर उन्होने अनेक उच्च कोटि के लेख लिख कर अपनी बुद्धिमानी को सिद्ध किया है। उनकी १६३३ ई० मे प्रकाशित प्रसिद्ध पुस्तक **'The Economics of Imperfect Competition'** आज भी हमारे देश के कई विश्वविद्यालयो मे पाठ्य पुस्तक के रूप मे प्रयोग की जाती है। उनकी पुस्तको मे निम्नलिखित पुस्तके उल्लेखनीय है।

१. Economics of Imperfect Competition (१६३३ ई०)
२. Essays *in* the Theory *of Employment* (१६३७ ई०)
३. Essays on Marxian Economics (१६४२ ई०)
४. Collected Economic Papers (१६५१ ई०)
५. The Rate of Interest and Other Essays (१६५२ ई०)
६. Accumulation of Capital (१६५५ ई०)
७. Exercises in Economic Analysis (१६६० ई०)

नि सन्देह श्रीमती जॉन रोबिन्सन इङ्गलैंड मे वर्तमान समय के प्रथम श्रेणी के अर्थशास्त्रियो मे से हैं तथा उनको उनके लेखन कार्यो के आधार पर आर्थिक विचारो के इतिहास मे एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त रहेगा।

विशेष अध्ययन सूची

1. P. C. Newman : The Development of Economic Thought, Chapter, XXVII.
2. Joan Robinson : The Economics of Imperfect Competition.
3. A C. Pigou : The Economics of Welfare.
4 D. H. Robertson : Lectures on Economic Principles.

5. Edmund Whittaker : A History of Economic Ideas, (1940) pp. 167-167 ; 239-230 ; 711-712.

6. Economic Weekly, March 5, 1960, pp. 415-417, Article by I G Patel. 'Professor A. C. Pigou : A Memoir'.

प्रश्न

1. Discuss briefly the contributions of Professors A. C. Pigou and D. H. Robertson to economic thought.
2. What contribution has Mrs. Joan Robinson made in the sphere of economic theory ?

अध्याय २९

जॉन मेनार्ड कीन्स

(John Maynard Keynes)

वर्तमान शताब्दी के विश्व प्रसिद्ध अगरेज अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड कीन्स[1] नवीन अर्थशास्त्र (New Economics) के नेता तथा वर्तमान प्रसिद्ध कीन्स प्रेरित क्रान्ति (Keynesian Revolution) के जन्मदाता हैं। उनका आर्थिक समष्टिभाव (Macroeconomics) के विकास मे एक विशेष योगदान है। वास्तविकता तो यह है कि कीन्स का वर्तमान समय की आर्थिक विचारधारा तथा आर्थिक नीतियो पर

---

1 वर्तमान शताब्दी के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड कीन्स (१८८३ ई०—१९४६ ई०), जिनकी मृत्यु २१ अप्रेल, १९४६ ई० को हुई थी, का जन्म केम्ब्रिज, इगलैंड मे ५ जून, १८८३ ई० मे हुआ था। वे अपने माता पिता की तीन सन्तानो—दो पुत्र तथा एक पुत्री—मे सबसे बडे थे। उनके पिता जान नेवाइल कीन्स (John Neville Keynes) स्वय एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री व तर्कशास्त्री थे। अर्थशास्त्र के विद्यार्थी उनकी पुस्तक **Scope and Method of Political Economy** (१८९१) के नाम से परिचित है। वे केम्ब्रिज विश्वविद्यालय मे प्रोफेसर थे। इस सम्बन्ध मे यह कहना गलत न होगा कि १९ वी शताब्दी के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जान स्टुवार्ट मिल, जो प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जेम्स स्टवार्ट मिल के पुत्र थे, के समान २० वी शताब्दी के इस प्रसिद्ध अर्थशास्त्री को भी एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री पिता का विश्व प्रसिद्ध अर्थशास्त्री पुत्र बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। कीन्स की माता केम्ब्रिज की निगमाध्यक्ष (Mayor) थी। इस प्रकार कीन्स को आरम्भ से ही अपने अध्ययन तथा अपनी मानसिक शक्तियो के विकास के लिये अनुकूल वातावरण प्राप्त हुआ था।

कीन्स King's College, Cambridge के छात्र थे जहाँ पर उन्होने गणित मे वजीफा प्राप्त करके १९०२ ई० मे प्रवेश किया था। वे केम्ब्रिज मे १२ वे wrangler थे तथा केम्ब्रिज सघ (Cambridge Union) के प्रधान थे। कीन्स प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एल्फ्रेड मार्शल के सच्चे शिष्य थे तथा वे मार्शलवादी परम्पराओ मे पले थे। केम्ब्रिज मे कीन्स पर मार्शल के अतिरिक्त W. E. Johnson, G E. Moore, Whitehead तथा Sidgwick इत्यादि महापुरुषों का भी प्रभाव पडा था। केम्ब्रिज में रह कर उन्होने

बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। शायद ही किसी अन्य अर्थशास्त्री के विचार इतने अधिक विद्योचित वादविवाद का विषय रहे हो, जितना कि कीन्स के विचार रहे हैं, तथा शायद ही किसी अन्य अर्थशास्त्री के विचारों को सरकारी आर्थिक नीतियो के रूप में इतना अधिक सम्मान प्राप्त हुआ हो जितना कीन्स के विचारों को प्राप्त हुआ है। समय के बीतने के साथ कीन्स की प्रसिद्धि कम न होकर अधिक हुई है। ऐसा होना किसी अर्थशास्त्री की वास्तविक महानता का प्रतीक है। आज इंगलैंड में ही नहीं बल्कि, ससार के सभी देशों मे कीन्सवादी अर्थशास्त्री, जो कीन्स के आर्थिक विचारों के भारी समर्थक है, घनी सख्या मे पाये जाते है। सयुक्त राष्ट्र आफ अमे-

---

मार्शल की पुस्तक Principles को लगभग २० वर्ष तक पढा तथा पढाया था। आरम्भ से ही वे अर्थशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र के अध्ययन मे गहरी रुचि रखते थे।

१६०६ ई० मे कीन्स ने भारतीय जानपद भृत्या (Indian Civil Service) की परीक्षा मे दूसरा स्थान प्राप्त करके अपनी जीवनचर्या आरम्भ की। आश्चर्यकी बात है कि परीक्षा मे कीन्स के अर्थशास्त्र, जिसमे कीन्स दक्ष थे, सबसे कम नम्बर आये। सम्भवत ऐसा होने का कारण कीन्स के विचारानुसार यह था कि परीक्षक का ज्ञान अर्थशास्त्र मे कीन्स के ज्ञान से कम था।

परन्तु कीन्स को तो जीवन मे कुछ और ही बनना था। यदि सरकारी नौकरी मे वे रहे होते तो विश्व मे उनको किसी ने न जाना होता तथा उनकी योग्यता का प्रभाव केवल सरकारी फाइलों पर ही पडा होता। भारतीय जानपद भृत्या के सदस्य के नाते भारतीय कार्यालय (India Office) मे केवल दो वर्ष (१६०६ ई०—१६०८ ई०) तक काम करने के पश्चात कीन्स भारतीय जानपद भृत्या से इस्तीफा देकर King's College, केम्ब्रिज को लौट आये। उनका ऐसा करना, विधाता की यही इच्छा थी, स्वय के लिए, कालेज के लिये तथा विद्योचित जगत के लिये हितकारी सिद्ध हुआ।

कीन्स को केम्ब्रिज वापस बुलाने का श्रेय उनके सच्चे गुरु महान मार्शल को प्राप्त है क्योंकि fellowship की धनराशि के अतिरिक्त मार्शल अपने पास से कीन्स को १०० पौंड प्रतिवर्ष देते थे। कीन्स ने भी अपने गुरू की इच्छाओं का आदर सत्कार जानपद भृत्या के उच्च पद से इस्तीफा देकर किया था। आज के समाज मे ऐसे गुरु तथा ऐसे सच्चे शिष्य देखने में नही आते है।

केम्ब्रिज मे कीन्स ने मुद्रा पर व्याख्यान दिये थे। १६११ ई० में वे **Economic Journal** के सम्पादक बन गये तथा इस कार्य को वे १६४५ ई० तक करते रहे। वे Royal Economic Society के मन्त्री भी नियुक्त रहे थे। इन दोनों कार्यों को सफलता तथा कुशलता के साथ करके कीन्स ने अपनी योग्यता को सिद्ध किया।

१६१५ ई० मे कीन्स कालेज से छुट्टी प्राप्त करके British Treasury मे परामर्शदाता के पद पर नियुक्त हो गये। इस पद पर वे

रीका मे, जहाँ कीन्स की विचारधारा का विधोचित तथा राज्य की आर्थिक नीतियों के क्षेत्रो मे काफी प्रभाव हुआ है, A. H. Hansen, A. P. Lerner, A. Smithies, Paul A. Samuelson, L. R. Klein, S. E. Harris, Dudley Dillard, Kenneth Kurihara, Wassily Leontief के नाम कीन्सवादी अर्थशास्त्रियो की

१९१९ ई० तक नियुक्त रहे। Paris Peace Conference मे वे कोषागार के प्रमुख प्रतिनिधि थे। १९१९ ई० मे Treaty of Versailles के सम्बन्ध मे सरकार से कडे मतभेद होने के कारण उन्होने इस पद से इस्तीफा दे दिया तथा Kings College मे आकर अपने शिक्षण कार्य को पुन सभाल लिया। इस सधि की आलोचना करते हुये उन्होने १९१९ ई० मे अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **The Economic Consequences of Peace** लिखी थी। इस पुस्तक से कीन्स को अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त हुई तथा शीघ्र ही पुस्तक के पाँच सस्करण तथा ११ भाषाओं मे अनुवाद किये गये थे।

कालेज के कोषाध्यक्ष (bursar) के रूप मे कीन्स ने कालेज की वित्तिय स्थिति मे काफी सुधार किया। कीन्स को अनेक सरकारी आयोगो तथा समितियों के सदस्य बनने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था। वे १९१४ ई० मे Royal Commission on Indian Currency and Finance तथा १९३१ ई० मे प्रसिद्ध Macmillan Committee on Finance and Indusry के सदस्य थे। १९४० ई० मे कीन्स Chancellor of the Exchequer की Consultative Council के सदस्य थे। वे बैंक आफ इगलैंड के संचालक भी थे। १९४२ ई० मे वे Lord Keynes of Tilton बना दिये गये थे। ससद के सदस्य होने के नाते उन्होने House of Lords मे *वादविवाद तथा व्याख्यान के स्तर को ऊँचा उठाने मे भारी योगदान दिया* था। House of Lords के समक्ष अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सम्बन्ध मे २३ *मई १९४४ ई० को दिया गया उनका भाषण, सामग्री, शैली तथा योग्यता* के लिये सदा प्रसिद्ध रहेगा।

कीन्स केवल एक अर्थशास्त्री ही नही थे, बल्कि वे अनेक सामाजिक तथा सास्कृतिक सस्थाओ मे भी सम्बन्धित थे। वे अपने समय की प्रसिद्ध साहित्यिक मण्डली "Bloomsbury" के सक्रिय सदस्य थे तथा Lytton Strachey, Virginia Woolf उनके मित्र थे। वे प्रसन्न स्वभाव के व्यक्ति थे। वे Cambridge Arts Theatre के सस्थापक थे तथा इसको वित्तिय सहायता प्रदान करते रहते थे। १९२१ ई० से लेकर १९३८ ई० तक वे National Mutual Life Assurance Society के अध्यक्ष थे। १९४२ ई० मे वे C. E. M. A तथा १९४५ ई० मे वे Arts Council के अध्यक्ष नियुक्त हुये थे। वे **Nation** तथा **New Statesman and Nation** नामक पत्रिकाओं के अध्यक्ष भी थे। जुलाई, १९४४ ई० मे Bretton Woods Monetary Conference मे वे ब्रिटिश प्रतिनिधि-मण्डल के नेता बन कर गये थे तथा *इंगलैंड की ओर से प्रस्तुत प्रसिद्ध कीन्स योजना (Keynes Plan)* के लेखक थे। वे इंगलैंड की ओर से अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व-

लम्बी सूची मे विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे कीन्स का योगदान इतना अधिक है कि इसकी व्याख्या करने के लिये अलग सम्पूर्ण पुस्तक भी अपर्याप्त सिद्ध होगी। आज कीन्सवादी अर्थशास्त्र पर काफी घनी मात्रा मे उच्चकोटि का साहित्य उपलब्ध है। अब हम कीन्स के लेखन कार्यों तथा विचारो की संक्षिप्त व्याख्या करने का प्रयास करते हैं।

लेखन कार्य तथा आर्थिक विचार

कीन्स प्रथम श्रेणी के सफल महान लेखक-अर्थशास्त्री थे। उन का दृष्टिकोण सकुचित न था तथा वे सदा आर्थिक समस्याओ पर अपने विचार प्रस्तुत किया करते थे। उन की अनेक पुस्तके, पुस्तिकायें, अन्य लेखको की पुस्तको की समीक्षायें, तथा अनेक पत्रिकाओ मे प्रकाशित सैकडो लेख उन की महान योग्यता की अथाह गहराई का प्रतीक है। अनेक आर्थिक विषयो पर लिखित अनेक लेखो, लगभग २० पुस्तको की समीक्षाओ, आयोगो व समितियो की रिपोर्टो, जिन की यहा पर व्याख्या करना कठिन है, के अतिरिक्त कीन्स लगभग २० प्रसिद्ध पुस्तको व पुस्तिकाओ के कुशल लेखक थे।

सर्व प्रथम १९१३ ई० मे कीन्स की **'Indian Currency and Finance** नामक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक मे कीन्स के परम्परावादी मौद्रिक सिद्धान्त के विरोध के चिन्ह उपस्थित हैं। यह पुस्तक कीन्स की मुद्रा तथा विदेशी विनिमय मे विशेष रुचि रखने का परिणाम थी। कुछ विशेषज्ञो के विचारानुसार यह पुस्तक कीन्स की सर्वश्रेष्ठ रचना है। तत्पश्चात कीन्स की दूसरी पुस्तक **The Economic Consequences of the Peace'** १९१९ ई० मे प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक मे कीन्स ने Treaty of Versailles की कडी आलोचना की थी।

१९२१ ई० मे कीन्स की **'A Treatise on Probability'** नामक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। यह पुस्तक दर्शनशास्त्र के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण लेखन कार्य है। इस पुस्तक की शैली सरल तथा भाषा साफ तथा प्रभावशाली है। १९२२ ई० मे कीन्स

बैंक के गवर्नर नियुक्त हुये थे। स्वास्थ्य के खराब होते हुये भी वे राष्ट्र को अपनी सेवायें प्रदान करते रहे थे। उन्होने १९२५ ई० मे प्रसिद्ध रूसी नृतिका लिडिया लोपोकोवा (Lydia Lopokova) से विवाह किया था। श्रीमती मार्शल के शब्दो मे यह कीन्स द्वारा किया गया अच्छा कार्य था—"The best thing Maynard ever did"। कीन्स को पुस्तको का सग्रह करने का भी शौक था तथा उनके निजी पुस्तकालय मे उच्च श्रेणी की काफी पुस्तके थी।

उनकी मृत्यु ६२ वर्ष की आयु मे दिल का दौरा पडने के कारण १९४६ ई० मे हुई थी।

की पुस्तका **'A Revision of the Treaty'** तथा १६२३ ई० में **'A Tract on Monetary Reform'** नामक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। ***'A Tract on* Monetary Reform'** में कीन्स ने मौद्रिक प्रबन्ध के पक्ष में तर्क प्रस्तुत किये हैं। इसी पुस्तक में कीन्स ने स्फीति तथा अवस्फीति की भी व्याख्या की है तथा स्फीति को अवस्फीति की अपेक्षा अच्छा बताया है।

१६२५ में ई० कीन्स की **'The Economic Consequences of Mr. Churchill**[2] नामक पुस्तिका प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तिका में कीन्स ने चर्चिल की प्रथम महायुद्ध के पश्चात स्वर्ण मान को पुरानी समता दर पर पुनः अपनाने की नीति की कड़ी आलोचना की थी। चर्चिल की नीति को 'Cold-blooded income deflation' घोषित करते हुये कीन्स ने यह कहा था कि पुरानी समता दर पर युद्ध पश्चात समय में विद्यमान ऊंचे मूल्य-स्तर पर पौंड-स्टर्लिंग का अधिमूल्यन होने के कारण इंगलैंड को भुगतानाशेष के प्रतिकूल असन्तुलन की गम्भीर समस्या का सामना करना पड़ेगा तथा इस के कारण देश की अर्थव्यवस्था अस्तव्यस्त हो जावेगी। कीन्स की भविष्यवाणी १६३१ ई० में उस समय सत्य सिद्ध हुई जब इंगलैंड को स्वर्णमान को त्यागना पड़ा था। १६२६ ई० में कीन्स की पुस्तिका **'The End of Laissez faire'** प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तिका में कीन्स ने laissez faire पूँजीवाद की कड़ी आलोचना करते हुये यह सिद्ध किया था कि व्यक्तिगत तथा सामाजिक हितों के मध्य एकरूपता का विचार एक कोरी मिथ्या बात थी। बहुदा व्यक्तिगत तथा सामाजिक हित एक दूसरे के विरोधी होते है। Laissez faire पूँजीवाद की आलोचना करते हुये तथा पूँजीवाद में व्यक्तिगत तथा सामाजिक हितों के मध्य प्रतिकूलता को व्यक्त करते हुये कीन्स ने अपनी इस पुस्तिका में निम्न प्रकार लिखा था।

"The world is not so governed from above that private and social interests always coincide. It is not so managed here below that in practice they coincide. It is not a correct deduction from the principles of economics that enlightened self interest always operates in the public interest nor it is true that self interest generally is enlightened. More often individuals acting separately to promote their own ends are too ignorant or too weak to attain even these. Experience does not show that individuals when they make up a social unit are always less clear sighted than when they act separately"

---

2. The American edition was entitled *'The Consequences of the Sterling-Parity'*

उपरोक्त वाक्य-खण्ड से यह भली प्रकार ज्ञात होता है कि कीन्स laissez faire के पक्ष में नहीं थे तथा वे राज्य हस्तक्षेप को पूँजीवाद की बुराइयों को दूर करने के लिये आवश्यक समझते थे। परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि कीन्स पूँजीवाद के शत्रु थे। ऐसा कहना कीन्स के प्रति महान अन्याय करना है। वास्तविकता इस गलत विचार के बिल्कुल विपरीत है। कीन्स पूँजीवाद के सच्चे हितैषी थे। वे इसको *साम्यवाद के घातक आक्रमणों से मुक्त करना चाहते थे।* ऐसा पूँजीवाद को इसके दोषों से मुक्त करके ही सम्भव था। वे नियमित पूँजीवाद, जिसमें व्यक्ति को सीमित आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है तथा राज्य को सामाजिक हितों के अनुकूल आर्थिक क्रियाओं को नियमन करने का अधिकार प्राप्त होता है, के पक्ष में थे। वे साम्यवाद के कट्टर आलोचक थे। साम्यवाद के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था कि *यदि साम्यवाद को सफलता प्राप्त हो सकती है तथा यदि इसका संसार के कुछ* देशों में प्रचार हो सकता है तो यह केवल धार्मिक आधार पर ही सम्भव हो सकता है, आर्थिक आधार पर कदापि सम्भव नहीं हो सकता है। कीन्स के विचारानुसार मार्क्स की पुस्तक **'Das Kapital'** अप्रचलित आर्थिक पाठ्यपुस्तक (obsolete economic textbook) के समान थी तथा वे Silvio Gesell के मार्क्सविरोधी समाजवाद के प्रशंसक थे। इस प्रकार कीन्स पूँजीवाद के शत्रु न होकर इसके सच्चे प्रतिरक्षक थे।

१९३० ई० में कीन्स की पुस्तक **'A Treatise on Money'** दो खण्डों अथवा पुस्तकों में प्रकाशित हुई थी। प्रथम पुस्तक में, Pure Theory of Money तथा दूसरी पुस्तक में Applied Theory of Money की व्याख्या की है। कीन्स की यह पुस्तक उस समय लिखी गई थी जब इंगलैंड तथा अन्य राष्ट्र युद्ध पश्चात् मन्दी का अनुभव कर चुके थे। यह पुस्तक इतनी व्यापक नहीं है जितना कि इसके शीर्षक से ज्ञात होता है। यह पुस्तक मुद्रा की सम्पूर्ण व्याख्या नहीं है। पुस्तक में व्यापार चक्र के मौद्रिक सिद्धान्त की व्याख्या की गई है तथा लेखक के विचारानुसार केन्द्रीय बैंक की ब्याज दर नीति में उपयुक्त परिवर्तन करके आर्थिक स्थिरता को प्राप्त किया जा सकता है। Treatise में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को मुद्रारूपी धुरी पर आधारित करने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त पुस्तक में मौलिक समीकरणों (Fundamental Equations) की भी व्याख्या की गई है जो लेखक के अनुसार द्रव्य के प्राचीन परिमाण सिद्धान्त के समीकरणों से भिन्न है। परन्तु स्वयं लेखक ने यह स्वीकार किया है कि सन्तुलन की अवस्था में—जब बचत व विनियोग (S and I) समान होते हैं—*मौलिक समीकरणों तथा परिमाण सिद्धान्त में कोई अन्तर नहीं है।* यद्यपि Treatise में कीन्स ने बचत तथा विनियोग के विचारों की व्याख्या की है परन्तु यह व्याख्या असंगत है। Treatise लिखने के लगभग ६ वर्ष पश्चात् ही कीन्स बचत तथा विनियोग के विचारों की सही व्याख्या करने में सफल सिद्ध हो पाये थे। कीन्स

की यह पुस्तक कीन्स के विचारों के परिवर्तन काल (transitional period) का लेखन कार्य है। ट्रीटाइज मे कीन्स का प्रमुख लक्ष्य प्रवेगिक समाज, जो स्थिर सन्तुलन की स्थिति से दूर होता है, मे आर्थिक प्रक्रियाओ का विश्लेषण करना था। परन्तु कीन्स इस महान् कार्य मे सफल न हो सके क्योकि पुस्तक का ढाचा स्थिर है। छ वर्ष पश्चात् १९३६ ई० मे प्रसिद्ध पुस्तक **'General Theory'** को लिखने पर ही कीन्स प्रवेगिक अर्थव्यवस्था के अध्ययन हेतु प्रवेगिक आर्थिक ढाचे का निर्माण करने में सफल हो सके थे।

१९३० ई० के अन्त में Treatise के प्रकाशित होने के तत्काल पश्चात् ही एक महान विवाद उत्पन्न हो गया। यह विवाद जो 'buckets-in-the well theory' के नाम से प्रसिद्ध है इस बात से सम्बन्धित था कि उपभोग वस्तुओ की माग कम होने के परिणामस्वरूप बचत मे वृद्धि होने पर पूँजी वस्तुओ (विनियोग) की मांग बचत के समान मात्रा मे किस प्रकार बढती है? १९३१ ई० तथा १९३३ ई० मे कीन्स की दो अन्य पुस्तके **'Essays in Persuasion'** तथा **'Essays in Biography'** प्रकाशित हुई थी। **'Essays in Biography'**, जो प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों व राजनीतिज्ञों के जीवन वृत्तान्त की व्याख्या है, एक प्रसिद्ध रचना है तथा इस बात को स्पष्ट करती है कि एक महान अर्थशास्त्री होने के अतिरिक्त कीन्स एक कुशल गद्य लेखक भी थे।

१९३६ ई० मे कीन्स की युग-निर्माणनी पुस्तक **'General Theory of Employment, Interest and Money'** प्रकाशित हुई थी। यह पुस्तक कीन्स की विश्व प्रसिद्धि की आधारशिला है। इस पुस्तक की सक्षिप्त व्याख्या इस अध्याय मे आगे की गई है। १९४० ई० मे कीन्स की अन्तिम पुस्तिका **'How To Pay For War'** प्रकाशित हुई थी। यह पुस्तिका आज भी उसी महत्व से पढी जा सकती है जिस महत्व से यह द्वितीय युद्ध काल मे पढी जाती है। इस पुस्तक मे कीन्स ने युद्ध की भारी व्यय को पूरा करने के विभिन्न उपायो तथा साधनों की व्याख्या की है। इसी पुस्तक मे कीन्स ने अपनी प्रसिद्ध 'Deferred Pay Plan', जिस को आज भारत सरकार ने अपनाया है, का सुझाव दिया था।

उपरोक्त रचनाओं के अतिरिक्त कीन्स ने १९२९ ई० मे अपने अर्थशास्त्री मित्र D. H. Henderson के साथ मिलकर **'Can Lloyd George Do It ?'** नामक पुस्तिका लिखी थी। इस पुस्तिका मे कीन्स ने Lloyed George, जो Liberal Party की ओर से १९२९ ई० के चुनाव मे उम्मीदवार थे तथा जिनके विरोधी Labour Party के श्री Ramsay MacDonald तथा Conservative Party के श्री Stanley Baldwin थे, की सार्वजनिक निर्माणकार्य योजनाओ की प्रतिरक्षा की थी। पुस्तिका मे लेखको ने यह सिद्ध करने का भरसक प्रयास किया था कि इन सार्वजनिक निर्माणकार्य योजनाओ को लायड जार्ज जनता पर बिना कोई नया कर लगाये पूरा

कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त १९३२ ई० में कीन्स Sir A. Salter, Sir J. Stamp, Sir Blacket, H. Clay तथा Sir W H Beveridge के साथ मिलकर **'The World's Economic Crises and the Way of Escape'** नामक पुस्तक के संयुक्त लेखक थे।

कीन्स के प्रमुख लेखन कार्यों को इनके प्रकाशन की तिथिक्रमानुसार निम्न-लिखित प्रकार एक चार्ट द्वारा विवेचना की जा सकती है।

५ जून १८८३ ई०
कीन्स की जन्म तिथि
↓
'Indian Currency and Finance'
(1913)
↓
'The Economic Consequences of the Peace' (1919)
↓
'A Treatise on Probability'
(1921)
↓
'A Revision of the Treaty'
(1922)
↓
'A Tract on Monetary Reform'
(1923)
↓
'The Economic Consequences of Mr. Churchill' (1925)
↓
'A Short View of Russia'
(1925)
↓
The End of Laissez-Faire'
(1926)
↓
'Laissez-Faire and Communism'
(1926)
↓
'A Treatise on Money'
(2 Vols.) (1930)
↓
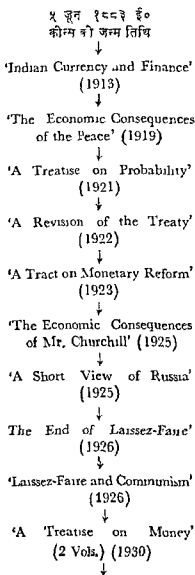
'Essays in Persuasion'
(1931)
↓
'Essays in Biography'
(1933)
↓
'The Means to Prosperity'
(1933)
↓
'The General Theory'
(1936)
↓
How to pay For War'
(1940)
↓
मृत्यु तिथि
२१ अप्रेल, १९४६ ई०

General Theory of Employment, Interest and Money

कीन्स की 'General Theory of Employment, Interest and Money' नामक प्रसिद्ध पुस्तक, जो सामान्य रूप से General Theory के नाम से प्रसिद्ध है, १९३६ ई० मे प्रकाशित हुई थी। यह पुस्तक अर्थशास्त्र मे एक से अधिक दृष्टिकोण से एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। प्रथम, इसके प्रकाशन की तिथि स्वय मे महत्वपूर्ण है, क्योकि इससे यह प्रकट होता है कि लेखक १९३० ई० की विश्व-व्यापी मन्दी के काल मे अपनी इस महत्वपूर्ण पुस्तक को लिख रहा था। वास्तव में यह सस्थापित अर्थशास्त्र का पूर्ण प्रतिरूप है। दूसरे, यह पुस्तक सस्थापित अथवा हस्तक्षेप-रहित अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो का अनुमोदन नही करती है। कीन्स की यह पुस्तक तीसा की महान मन्दी का ही परिणाम थी। 'जनरल थ्योरी' के प्रकाशन के साथ-साथ आर्थिक विचारधारा तथा नियमो के एक नवीन युग का प्रारम्भ होता है। इसका विषय प्राचीन अर्थशास्त्र के विशाल महल के ऊपर पूर्ण रूप से छा गया है। इसने प्रचीन अथवा परम्परावादी अर्थशास्त्र के स्थान पर नवीन अथवा कीन्सवादी (Keynesian) अर्थशास्त्र को जन्म दिया है। यह पुस्तक वर्तमान अर्थशास्त्र विज्ञान के क्षेत्र मे वर्तमान युग की प्रसिद्ध कीन्सप्रेरित क्रान्ति (Keynesian Revolution) की जननी है। पूर्ण रोजगार का सन्तुलन सिद्धान्त, जो प्राचीन अर्थशास्त्र मे अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखता था, के विरुद्ध नवीन अर्थशास्त्र पूर्ण रोजगार से कुछ कम स्थिति पर सन्तुलन की समस्या का अध्ययन करता है। 'जनरल थ्योरी' के प्रकाशन से १२५ वर्षो का कट्टरवादी अर्थशास्त्र—परम्परावादी अर्थशास्त्र—पूर्णरूप से समाप्त

हो गया। पुस्तक के प्रकाशन के समय जहाँ बहुत से अर्थशास्त्रियों ने इस पुस्तक को नवीन मन्त्रणा (Gospel) स्वीकार किया, वहाँ पुराने विचार के बहुत से अर्थशास्त्री इसे सन्देहात्मक दृष्टि से देखते हुए भौचक्के खड़े रहे। इस पुस्तक ने विद्वानों, राजनीतिज्ञों, नीति निर्माताओं तथा साधारण जनता, सभी में एक बहुत बड़ी लहर उत्पन्न कर दी और सबकी इस पुस्तक के दर्शन के प्रति भिन्न प्रतिक्रिया रही। यद्यपि कुछ आलोचकों ने इस पुस्तक के लेखक कीन्स को नास्तिक कहा है परन्तु सत्य तो यह है कि १८ वीं शताब्दी में एडमस्मिथ की प्रसिद्ध पुस्तक 'वेल्थ आफ नेशन्स' तथा १९ वीं शताब्दी में कार्ल मार्क्स की प्रसिद्ध पुस्तक 'दास कैपीटल' के समान कीन्स की प्रसिद्ध पुस्तक 'General Theory' भी वाद-विवाद तथा आलोचनाओं का केन्द्र बन गई है। यदि स्मिथ की पुस्तक वणिग्वाद की बड़ी चुनौती है तथा मार्क्स की पुस्तक पूँजीवाद की कड़ी आलोचना है तो कीन्स की पुस्तक संस्थापकवाद की अबन्ध नीति (laissez faire) की आधारशिला का एक बड़ा प्रत्याख्यान (repudiation) है।

जनरल थ्योरी में कुल २४ अध्याय हैं जो निम्नलिखित ६ पुस्तकों अथवा खण्डों में विभाजित हैं।

(१) प्रथम पुस्तक जिसका शीर्षक 'परिचय' (Introduction) है, में ३६ पृष्ठों में लिखित तीन अध्याय हैं।

(२) दूसरी पुस्तक जिसका शीर्षक 'परिभाषाएँ एवं विचार' (Definitions and Ideas) है, में चार अध्याय तथा एक परिशिष्ट (appendix) है। इन अध्यायों में जो लगभग ५० पृष्ठों में हैं कीन्स ने बचत, विनियोग, आय इत्यादि की परिभाषाओं व रोजगार तथा उत्पादन पर आशाओं (expectations) के पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या की है।

(३) तीसरी पुस्तक, जिसका शीर्षक 'उपभोग प्रवृत्ति' (The Propensity to Consume) है, में लगभग ४५ पृष्ठों में तीन अध्याय हैं। पहले दो अध्यायों में उपभोग प्रवृत्ति तथा इसको निर्धारित करने वाले वस्तुपरक (objective) तथा व्यक्तिपरक (subjective) कारणों तथा तीसरे व अन्तिम अध्याय में सीमान्त उपभोग प्रवृत्तिवगुणक (multiplier) की व्याख्या की गई है।

(४) चौथी पुस्तक का शीर्षक 'विनियोग की प्रेरणा' (The Inducement to Invest) है। इस पुस्तक के लगभग १२० पृष्ठों में ८ अध्याय है तथा एक परिशिष्ट है। इन अध्यायों में पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (marginal efficiency of capital), दीर्घकालीन आशयकाओं की अवस्था, ब्याज की दर के सामान्य तथा संस्थापित सिद्धान्तों, ब्याज तथा द्रव्य की आवश्यक विशेषताओं, रोजगार के सामान्य सिद्धान्त आदि विषयों की व्याख्या की गई है। यह पुस्तक अन्य पाँच पुस्तकों की अपेक्षा आकार में, बड़ी है।

(५) पाँचवीं पुस्तक का शीर्षक 'द्रव्य-वेतन तथा मूल्य' (Money Wages

And Prices) है तथा इसमें तीन अध्याय तथा एक परिशिष्ट हैं। पृष्ठों की संख्या ६० के लगभग है।

(६) छठी तथा अन्तिम पुस्तक के तीन अध्यायों में वणिकवाद व्यापार चक्र तथा पुस्तक के सामाजिक दर्शन आदि विषयों की व्याख्या की गई है।

जनरल थ्योरी,' जिसमें आर्थिक विषयों पर कीन्स के बहुत से महत्त्वपूर्ण विचार सम्मिलित हैं, लेखक के लिये जीवन निर्माण की पुस्तक सिद्ध हुई है। वास्तव में पुस्तक प्रकाशन के पश्चात इसके विभिन्न पहलुओं पर विचार स्पष्ट करते हुए इतना अधिक साहित्य प्रकाशित हो गया है कि पुस्तक के सभी पहलुओं का एक अध्याय मे वर्णन करना प्राय असम्भव है। परन्तु फिर भी 'जनरल थ्योरी' मे विश्लेषण किये गये अधिक महत्त्वपूर्ण विषयों पर कुछ पृष्ठों मे विचार करना तथा उनके सैद्धान्तिक अर्थ तथा व्यावहारिक महत्व के सम्बन्ध मे कुछ व्याख्या करना उपयोगी सिद्ध होगा।

समर्थ मांग का सिद्धान्त (Principle of Effective Demand)

कीन्स की 'जनरल थ्योरी' मे प्रयोग की जाने वाली धारणाओं मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण धारणा समर्थ माँग का सिद्धान्त है। वास्तव मे समर्थ माँग का सिद्धान्त कीन्स के रोजगार सिद्धान्त का तर्कयुक्त प्रारम्भिक बिन्दु है। कीन्स के अनुसार, पूर्ण रोजगार, सम्पूर्ण समर्थ माँग (जो आय के व्यय होने के द्वारा स्पष्ट होती है) पर निर्भर होता है। समाज में बेकारी समर्थ माँग की कमी के कारण उत्पन्न होती है। व्यक्ति तथा समाज दोनों के बारे में यह आधारभूत सत्य सिद्धान्त है कि यद्यपि समाज की वास्तविक आय मे वृद्धि होने के साथ उपभोग भी बढ़ता है; परन्तु उपभोग इस सीमा तक नहीं बढ़ता है जिस सीमा तक आय बढ जाती है। इस प्रकार बढ़ती हुई आय के साथ समाज की उपभोग प्रवृत्ति म समाज की कुल वास्तविक आय से पीछे रहने की प्रवृत्ति होती है। अर्थव्यवस्था मे रोजगार को ऊचे स्तर पर बनाये रखने के लिये अथवा कार्य करने के अधिक अवसर प्राप्त होने के लिये वास्तविक विनियोग में इतनी अधिक वृद्धि होनी चाहिये, कि आय तथा उस आय मे सम्बन्धित उपभोक्ताओं की माँग के मध्य का अन्तर शून्य रहे। दूसरे शब्दों मे इस का अर्थ यह है कि कुल विनियोग तथा कुल उपभोग की मात्रा मिलकर कुल आय की मात्रा के समान रहनी चाहिये। इससे यह स्पष्ट होता है कि धनवान समाजों मे कुल वास्तविक विनियोग मे वृद्धि किये बिना रोजगार नहीं बढ़ सकता है। यह समर्थ माँग के सिद्धान्त का सार है।

अन्य धारणाओं के समान 'जनरल थ्योरी' मे प्रयोग की गई माँग की धारणा भी सम्पूर्ण से सम्बन्ध रखती है। इसका तात्पर्य सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की माँग से है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि यह माँग विभिन्न फर्मों अथवा विभिन्न उद्योगों की माग, जो प्राय. पूर्ति तथा माँग के चित्रों में प्रदर्शित की जाती है से

भिन्न होती है क्योकि एक फर्म अथवा एक उद्योग की माँग उत्पादन की उन विभिन्न मात्राओं की सूची होती है जो विभिन्न कीमतों पर खरीदी जाती हैं। कीमत का तात्पर्य द्रव्य की उस मात्रा से होता है जो किसी वस्तु की एक इकाई के बेचने से प्राप्त होती है। परन्तु सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की उत्पादन मात्रा सरल भौतिक इकाइयों मे प्रकट नही की जा सकती है, क्योंकि वस्तुयें भिन्न-भिन्न होती है। कुछ वस्तुओं की माप मनों मे और अन्य कुछ की माप गजों मे होती है। इसलिये कीन्स ने सारी उत्पादन मात्रा के मापदण्ड के लिये श्रम का प्रयोग किया है। कीन्स के अनुसार किसी निश्चित रोजगार की उत्पादन मात्रा की कुल माँग-कीमत वह धनराशि होती है जो किसी उत्पादित वस्तु के विक्रय से प्राप्त होती है। कुल माँग वक्र (aggregate demand function) जिसे नीचे चित्र–१ मे DD के द्वारा दिखलाया गया है "उस धनराशि की सारिणी होती है जो विनियोग अथवा रोजगार की विभिन्न मात्राओं से उत्पादित वस्तुओं की बिक्री से प्राप्त होती है।"[3] जैसे ही अधिक श्रमिकों का विनियोग किया जाता है उत्पादन की मात्रा मे भी वृद्धि हो जाती है और इससे कीमत के रूप मे प्राप्त अधिक धनराशि भी बढ़ जाती है। दूसरे शब्दों मे कुल माँग-कीमत रोजगार की मात्रा मे वृद्धि होने के साथ बढ़ जाती है।

रेखा चित्र–१ मे कुल माँग-कीमत अथवा प्राप्त धनराशि लम्बवत् अक्ष पर दिखलाई गई है तथा रोजगार की मात्रा समानान्तर अक्ष पर दिखलाई गई है। कुल माँग वक्र दाहिनी ओर उर्द्धगामी ढालू है। इससे यह प्रमाणित होता है कि अर्थव्यवस्था मे विनियोग के अधिक होने से कुल माँग बढ़ जाती है। यह एक उद्योग अथवा एक फर्म के सामान्य माँग-वक्र के बिलकुल विपरीत है, क्योंकि वह यह दिखलाते हुए कि माँग की मात्रा वस्तु की कीमत के गिरने से बढ़ती है दाहिनी ओर अधोमुखी होकर ढालू होता है। कुल पूर्ति वक्र ZZ दाहिनी ओर उर्द्धमुखी ढालू है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि जैसे ही
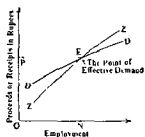
चित्र–१

बिक्री से प्राप्त किया हुआ कुल धन बढ़ता जाता है वैसे ही कुल रोजगार की मात्रा भी बढ़ती जाती है। E समर्थ माँग का बिन्दु है जिसे पूर्ण रोजगार की स्थिति मे कुल पूर्ति-वक्र तथा कुल माँग वक्र का सन्तुलन बिन्दु भी कह सकते हैं। कीन्स के अनुसार से (Say) का यह प्रसिद्ध नियम कि 'पूर्ति स्वयं अपनी माँग उत्पन्न करती है' केवल E बिन्दु पर ही सत्य होता है, विनियोग के अन्य सब स्तरों पर नही।

3 Dudley Dillard *The Economics of John Maynard Keyness*, pp 30 31.

समाज में कुल समर्थ मांग कुल उपभोग (C) तथा कुल विनियोग (I) के योगफल के समान होती है। उपभोग समाज में व्यक्तियों की आय (disposable income) की मात्रा तथा लोगों की उपभोग-इच्छा अथवा प्रवृत्ति पर निर्भर होता है। विनियोग पूँजी की सीमान्त उत्पादकता तथा ब्याज दर पर निर्भर होता है। इस प्रकार से 'जनरल थ्योरी' की रूपरेखा में निम्नलिखित मुख्य धारणाओं का समावेश होता है।

१—उपभोग प्रवृत्ति (Propensity to Consume)
२—पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Efficiency of Capital)
३—ब्याज दर (Rate of Interest)
अब हम प्रत्येक का पृथक-पृथक वर्णन करेंगे।

उपभोग प्रवृत्ति

उपभोग आय की मात्रा तथा इसके उस भाग पर, जो उपभोग के लिये प्राप्त होता है, निर्भर होता है। राष्ट्रीय आय की प्रत्येक मात्रा के लिये आय का प्राय एक स्थिर अनुपात होता है, जो जनता द्वारा उपभोग पर व्यय किया जाता है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक समाज में औसत उपभोग प्रवृत्ति प्राय स्थिर होती है। उपभोग प्रवृत्ति एक ऐसा सम्बन्ध है जो यह प्रदर्शित करता है कि आय में परिवर्तन होने पर उपभोग में किस प्रकार परिवर्तन होता है। यह सम्बन्ध व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक उपभोग की इकाई के बारे में होता है। परन्तु कीन्स के सिद्धान्त में यह सम्बन्ध कुल सामाजिक उपभोग तथा कुल सामाजिक आय से सम्बन्धित है और इसे ध्यान में रखना आवश्यक है।

कीन्स की औसत उपभोग प्रवृत्ति के बारे में यह मान्यता, कि यह अल्पकाल में अपेक्षाकृत स्थिर होती है, एक ऐसा निष्कर्ष है जो वास्तविक अनुभव पर आधारित है और यह 'जनरल थ्योरी' की व्याख्या का एक महत्वपूर्ण अंग है। किसी एक निश्चित समय में वास्तविक उपभोग प्रवृत्ति क्या होगी, यह प्राय समाज की प्रचलित रीतियों, समाज में आय की वितरण प्रणाली, समाज में प्रचलित कर प्रणाली तथा अन्य बहुत से कारणों पर निर्भर होता है।

ऊँची उपभोग प्रवृत्ति समाज में अधिक रोजगार के लिये अनुकूल होती है क्योंकि इसके ऊँचा होने के कारण रोजगार के भिन्न स्तरों पर प्राप्त होने वाली कुल आय तथा इस आय के उस भाग के मध्य, जिसको उपभोग पर व्यय किया जाता है, कम अन्तर होता है तथा रोजगार को ऊँचे स्तर पर रखने के लिये अपेक्षाकृत कम विनियोग की आवश्यकता होती है। यदि उपभोग प्रवृत्ति की सारिणी अपेक्षाकृत नीची होती है तो आय तथा उपभोग के बीच का अन्तर अधिक होता है और अर्थव्यवस्था में रोजगार को ऊँचे स्तर पर बनाये रखने के लिये अपेक्षाकृत विनियोग की अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है। यदि आय के सम्पूर्ण स्तरों पर उपभोग

की प्रवृत्ति शत प्रतिशत हो तो आय तथा उपभोग के मध्य समस्या नहीं रहेगी और विनियोग के बिना ही पूर्ण रोजगार के स्तर को प्राप्त करना सम्भव होगा। इस प्रकार की आदर्श स्थिति मे पूर्ति स्वय अपनी मांग को निर्मित कर लेती है और 'से' (Say) का नियम क्रियाशील हो जाता है। परन्तु वास्तविक ससार मे ये बातें इतनी सरल नहीं है। औसत उपभोग प्रवृत्ति सभी सभ्य समाजो मे शत प्रतिशत से बहुत कम रहती है तथा सदैव कुल आय तथा उस आय पर हुये कुल उपभोग की मात्रा मे काफी अन्तर रहता है। इस अन्तर विनियोग के माध्यम के द्वारा पूरा करना पड़ता है।

कीन्स के विचारानुसार समाज मे उपभोग प्रवृत्ति को केवल आय के पुर्नवितरण के द्वारा ही एक निश्चित स्तर से अधिक नहीं बढाया जा सकता है क्योंकि इससे धनी व्यक्तियो मे असन्तोष तथा विरोध उत्पन्न होने की सम्भावना होती है। इसी प्रकार एक बहुत ही उन्नतिशील विकसित पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे वस्तुओ के अत्यधिक सचय होने के कारण व्यक्तिगत विनियोग की मात्रा मे अधिक वृद्धि न होने के कारण रोजगार की स्थिति में सुधार करने की आशा बहुत कम हो जाती है। यद्यपि यह एक प्रकार का व्यय ही है, फिर भी, पूर्ण रोजगार बनाये रखने में युद्ध बहुत ही उपयुक्त तथा लाभकारी सिद्ध होते हैं क्योंकि युद्धकाल में जो सामग्री बनाई जाती है वह उसी समय युद्ध में उपभोग हो जाने के कारण इकट्ठी नहीं होती है। इसमे नवीन विनियोगो के लिये प्रतिस्पर्धा का प्रश्न ही नहीं उठता है तथा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता ऊँची रहती है। इस सम्बन्ध मे कीन्स धनी अर्थव्यवस्था से निर्धन अर्थव्यवस्था को अधिक अच्छा समझते हैं क्योंकि निर्धन अर्थव्यवस्था मे आय में कम तथा उपभोग प्रवृत्ति के ऊँचा होने के कारण कुल उपभोग का स्तर कुल आय के अधिक निकट होता है, तथा औसत उपभोग तथा आय के मध्य अन्तर बहुत कम अथवा नहीं के बराबर होता है तथा विनियोग की समस्या महत्वपूर्ण नहीं होती है। इस प्रकार कीन्स के अनुसार समाज जितना अधिक धनी होगा उस समाज की आर्थिक प्रणाली मे उतने ही अधिक स्पष्ट तथा अवाछनीय अवगुण होगे।

यह बात कुल सामाजिक आय, उपभोग तथा विनियोग से सम्बन्धित निम्नाकित तालिका से भली प्रकार स्पष्ट है। जब समाज की कुल आय केवल १०० मिलियन रुपये है तो समाज मे विनियोग की कोई समस्या नहीं है। परन्तु जब कुल आय बढ कर १७५ मिलियन रुपये हो जाती है तो उपभोग के केवल १५० मिलियन रुपये होने के कारण अर्थव्यवस्था असन्तुलन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। समाज मे आय को १७५ मिलियन रुपयो के स्तर पर स्थिर रखने के लिये यह आवश्यक है कि या तो कुल उपभोग मे वृद्धि हो अथवा २५ मिलियन रुपये की धनराशि का विनियोग होना आवश्यक है। जब कुल आय २०० मिलियन रुपये हो जाती है तो कुल केवल १६० मिलियन रुपये के समान होने के कारण समाज की आय को इस स्तर

पर रखने के लिये ४० मिलियन रुपये का विनियोग करना आवश्यक हो जाता है।

	मिलियन रु०	मिलियन रु०	मिलियन रु०	मिलियन रु०
आय	५०	१००	१७५	२००
उपभोग	८०	१००	१५०	१६०
विनियोग (अन्तर)	−३०	०	+२५	+४०

उपर्युक्त तालिका को निम्नांकित रेखा चित्र के द्वारा और भी अधिक स्पष्ट किया जा सकता है।

रेखाचित्र–२ से यह भली प्रकार स्पष्ट है कि जैसे-जैसे समाज की आय बढ़ती जाती है CC वक्र से प्रदर्शित उपभोग भी बढ़ता जाता है। परन्तु उपभोग में वृद्धि की गति आय की अधिकाधिक वृद्धियों के साथ कम होती जाती है। फलतः बढ़ती हुई आय तथा बढ़ते हुये उपभोग के मध्य अन्तर अधिक होता जाता है। चित्र से यह स्पष्ट है कि १७५ मिलियन रुपयों की आय के स्तर पर कुल आय तथा कुल उपभोग का अन्तर A E है। परन्तु आय जब बढ़कर २०० मिलियन रुपये हो जाती है तो आय तथा उपभोग के मध्य का यह अन्तर बढ़कर F B हो जाता है। समाज में आय को ऊँचे स्तर पर स्थिर बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि आय तथा उपभोग के
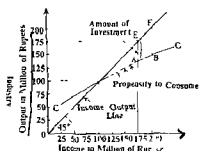
चित्र–२

मध्य बढ़ते हुए अन्तर को पाटने के लिये विनियोग की मात्रा में बराबर वृद्धि होती रहे। इस प्रकार एक धनवान समाज में—विकसित औद्योगिक अर्थव्यवस्था में—कुल विनियोग की मात्रा को उचित सामाजिक कार्यवाही द्वारा सदैव इतने ऊँचे स्तर पर रखना पड़ता है कि समाज में पूर्ण रोजगार तथा समृद्धि की स्थिति बनी रहे। इससे हम कीन्स की दो अन्य सम्बन्धित धारणाओं पर आते हैं—पूँजी की सीमान्त उत्पादकता तथा ब्याज की दर।

पूँजी की सीमान्त उत्पादकता

कीन्स के अनुसार समाज में कुल विनियोग पूँजी की सीमान्त उत्पादकता तथा ब्याज पर निर्भर होता है। पूँजी की सीमान्त उत्पादकता व्यापक दृष्टि से वह अनुमानित लाभ दर होती है जिसकी व्यवसायी नवीन विनियोग से आशा करते

है। यह कीन्स के सिद्धान्त की सम्पूर्ण व्याख्या में रोजगार की मात्रा को प्रभावित करने के लिये अधिकतम क्रियाशील तथा महत्वपूर्ण कारण है। यह विनियोजको की मनोवृत्ति, जो प्रायः युक्तिसगत नही होती है, पर निर्भर होती है। इसलिये व्यापारिक ससार मे व्यापारिक चक्रो तथा आर्थिक उच्चावचनो की समस्या को समझाने के लिये कीन्स के अनुसार पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एक उत्तम साधन है। पूँजी की सीमान्त उत्पादकता—जिसका तात्पर्य एक निश्चित विनियोग की मात्रा से प्राप्त होने वाले अनुमानित लाभ-दर से होता है—मे अल्पकाल मे अस्थिर रहने तथा दीर्घकाल में गिरने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। परिस्थिति विशेष मे समाज मे भण्डारी वस्तुओ का अत्यधिक सचय हो जाने के कारण पूँजी की सीमान्त उत्पादकता पूर्ण रूप से समाप्त अथवा विनष्ट हो सकती है। यह अवस्था व्याज दर की बढती हुई सारिणी से और भी शीघ्र प्राप्त हो सकती है। पूँजी की सीमान्त उत्पादकता की अल्पकालीन अस्थिरता तथा दीर्घकालीन गिरावट की प्रवृत्ति वास्तव मे औद्योगिक तथा व्यापारिक ससार मे गम्भीर उथल-पुथल उत्पन्न कर देती है। फलस्वरूप सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था चक्रीय परिवर्तनो से दूषित हो जाती है।

साधारणतया पूँजी की सीमान्त उत्पादकता तथा व्याज की दर स्वभाव से प्रतिस्पर्धात्मक होती है परन्तु ऐसा होते हुये भी पूँजी की सीमान्त उत्पादकता इतनी अधिक शक्तिशाली होती है कि यह व्याज की दर के प्रभावो का निराकरण कर देती है। जब पूँजी की सीमान्त उत्पादकता, विनियोजको की मनोवृत्ति आशावादी प्रवृत्ति से प्रभावित होने के कारण, बहुत अधिक ऊँची उठती जाती है तो व्याज की अत्यधिक ऊँची दर भी विनियोजको को अपनी नियोजन क्रियाओ को बढाने से रोकने मे असमर्थ हो जाती है। इसके विपरीत विनियोजको की निराशावादी मनोवृत्ति दशा के कारण पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को धक्का लगता है तो व्याज दर की कमी (चाहे वह शून्य ही क्यो न हो जाय, यद्यपि व्यवहार मे यह सम्भव नही है) से भी विनियोगी क्रियाओ को प्रोत्साहन नही मिल सकता है। इस प्रकार पूँजी की सीमान्त उत्पादकता बहुत ही अनिश्चित होती है। कीन्स ने घटती हुई सीमान्त उत्पादकता की एक ऐसी बतख से तुलना की है जो झील की तली की ओर बहुत ही गहरी डुबकी लगाती है और जिसको पानी की सतह पर ऊपर लाने के लिये एक बहुत ही कुशल व चतुर कुत्ते की आवश्यकता पडती है। दुर्भाग्यवश व्याज की दर इस प्रकार के चतुर कुत्ते का कार्य करने मे असमर्थ रहती है। सयोगवश इस सबने कीन्स को देश मे केन्द्रीय बैंक के द्वारा व्यापार चक्रो के रोकने की सीमाओ को स्पष्ट करने के लिये पर्याप्त सामग्री प्रदान की है।

व्याज की दर

व्याज की दर 'जनरल थ्योरी' से सम्बन्धित तीसरी प्रमुख तथा अन्तिम धारणा है। कीन्स के द्वारा व्याज केवल द्राव्यिक तथ्य माना गया है। यह लोगो की तरलता पसन्दगी के त्याग करने का पारितोषिक है। यह वह कीमत है जो धन की

प्राप्य मात्रा तथा, धन, के रूप मे रखने की इच्छा के मध्य सन्तुलन स्थापित करती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने धन को नकदी के रूप में रखने के लिये आतुर रहता है। व्याज की दर वह पारितोषिक है जो व्यक्ति को अपने धन को नकदी के रूप मे रखने की इच्छा का परित्याग करने हेतु प्राप्त होती है। परन्तु महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि मनुष्य अपनी धन राशि को नकदी के रूप मे रखना क्यो पसन्द करते हैं और व्याज की दर कैसे नियोजित होती है ? मनुष्य अपनी धन राशि को निम्नांकित उद्देश्यो से नकदी के रूप में रखते है।

१ व्यापार सम्बन्धी उद्देश्य (Transactional Motive)
२. सुरक्षात्मक उद्देश्य (Precautionary Motive)
३. सट्टेबाजी का उद्देश्य (Speculative Motive)

उपरोक्त तीनो उद्देश्यो मे से तीसरा अर्थात् सट्टेबाजी का उद्देश्य द्रव्य की मात्रा के सहित व्याज की दर के निर्धारण मे अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। पहले दोनों उद्देश्य पर्याप्त स्थिर तथा समान रहते हैं और वे व्याज की दर पर बहुत थोडा प्रभाव डालते है। सट्टेबाजी का उद्देश्य मुख्यतया ऋण देने वाले की मनोवैज्ञानिक दशा पर निर्भर होता है। कीन्स ने सट्टेबाजी के उद्देश्य की परिभाषा करते हुये लिखा है कि यह किसी सट्टेबाज को "बाजार के अन्य व्यक्तियो की अपेक्षा भविष्य के बारे मे अधिक ज्ञान प्राप्ति के द्वारा लाभ प्राप्त करने की इच्छा है।" इस प्रकार व्याज की दर दो निर्धारकों—सट्टेबाजी के उद्देश्य (I_2) और उसकी पूर्ति के लिये द्रव्य की प्राप्य मात्रा (M_2)—से निर्धारित होती है। यह निम्नांकित रेखा चित्र ३ तथा ४ के द्वारा स्पष्ट किया गया है।
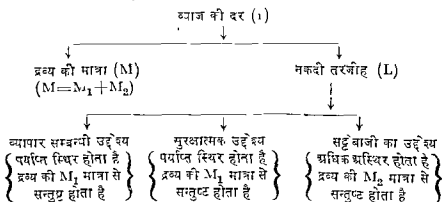
यह स्पष्ट है कि यदि लोगो की नकदी पसन्दगी मे कोई परिवर्तन न हो तो व्याज की दर द्रव्य की मात्रा मे होने वाले परिवर्तनो की विपरीत दिशा मे गतिशील होगी। नकदी पसन्दगी के यथास्थिर रहने हुये द्रव्य की मात्रा मे वृद्धि हो जाने पर व्याज की दर कम हो जायगी और द्रव्य की मात्रा मे कमी हो जाने से व्याज की दर अधिक हो

जायगी। परन्तु यदि द्रव्य की मात्रा मे परिवर्तन होने के साथ-साथ नक्दी पसन्दगी की मांग्णी मे भी परिवर्तन होते है तो व्याज की वास्तविक दर इन दोनो शक्तियों के अन्तिम फल पर निर्भर होगी। इसके सम्बन्ध मे पहले से निश्चित रूप मे यह कुछ नहीं कहा जा सकता है कि व्याज की दर क्या होगी द्रव्य की मात्रा मे वृद्धि होने के उपरान्त व्याज की दर पहले की अपेक्षा अधिक होगी अथवा कम होगी यह नक्दी (द्रव्यता) पसन्दगी के वक्र की स्थिति पर निर्भर होगा। यह नीचे रेखाचित्र ३ व ४ के द्वारा स्पष्ट किया गया है।
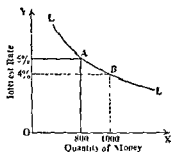
चित्र–३
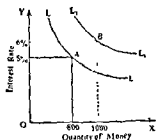
चित्र–४

रेखा चित्र–३ मे केन्द्रीय बैंक के द्वारा मुद्रा की मात्रा ८०० करोड़ रुपये से १००० करोड रुपये तक बढा देने के परिणामस्वरूप व्याज की दर ५% से घट कर ४% हो जाती है। इस दशा में नक्दी पसन्दगी यथास्थिर है। रेखा चित्र–४ में मुद्रा की मात्रा मे ८०० करोड रुपये से १००० करोड रुपये तक वृद्धि होने के साथ हो साथ नक्दी पसन्दगी मे भी वृद्धि होती है और यह वृद्धि इतनी अधिक है कि इसमे मुद्रा की मात्रा की वृद्धि का प्रभाव ही समाप्त नहीं होता वरन् व्याज दर ५% से बढकर ६% हो जाती है। यह एक ऐसी स्थिति है जहा केन्द्रीय बैंक की शक्ति मुद्रा आगार तथा विनियोग का नियन्त्रण करने मे सीमित रहती है और फलस्वरूप आर्थिक परिवर्तनो को रोकने मे भी केन्द्रीय बैंक की शक्ति सीमित रहती है।

उपभोग तथा व्याज मे सम्बन्ध

विनियोग वस्तुओं के उत्पादन तथा उपभोग वस्तुओ के उत्पादन मे एक निश्चित सम्बन्ध होता है, जिस पर व्यवसायियो को उत्पत्ति करना लाभदायक होता है। एक निश्चित उपभोग प्रवृत्ति के साथ उपभोग वस्तुओ की मांग की मात्रा आय की मात्रा पर निर्भर होती है। समाज की कुल आय उपभोग तथा विनियोग की मात्रा मे मिलकर बनती है अर्थात ($Y = C + I$)। विनियोग की मात्रा विनियोग के प्रोत्साहन पर निर्भर होती है, जो स्वय बाजार मे दोनो प्रकार की—उपभोग तथा पूँजीगत—वस्तुओ की कुल माँग की मात्रा पर निर्भर होता है। यदि उपभोग प्रवृत्ति

अधिक होती है तो कुल आय तथा समर्थ माँग के बीच के अन्तर को पाटने के लिये विनियोग की कम मात्रा की आवश्यकता होगी। उदाहरण के लिये यदि भारतवर्ष मे उपभोग की प्रवृत्ति ⅘ है और कुल उपभोग वस्तुओं के उत्पादन का मूल्य १६० मिलियन रुपये है तो ४० मिलियन रुपये का विनियोग होना चाहिये जिससे कि कुल आय (कुल माँग) २०० मिलियन रुपये के स्तर पर बनी रहे।

व्यापार चक्र का सिद्धान्त

कीन्स ने व्यापार चक्र के सिद्धान्त की व्याख्या **General Thory** मे छटी पुस्तक के अध्याय २२ मे, जिसका शीर्षक 'Notes on the Trade Cycle' है, की है। कीन्स ने व्यापार चक्र को वर्तमान समाज मे होने वाली अत्यधिक पेचीदा घटना कहा है। यह घटना इतनी अधिक पेचीदा है कि इसकी व्याख्या करने के लिये हमको अपने विश्लेषण मे अनेक तत्वों की व्याख्या करनी होगी। परन्तु फिर भी कीन्स के विचारानुसार व्यापार चक्र की घटना की व्याख्या पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के चक्रवत परिवर्तनो की व्याख्या के द्वारा की जा सकती है। कीन्स के अनुसार व्यापार-चक्र के उत्पन्न होने का मुख्य कारण विनियोग वस्तुओं (investment goods) के उन परिवर्तनो मे निहित है जो पूँजी की सीमान्त उत्पादकता मे परिवर्तन होने के कारण उत्पन्न होते है। कीन्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'General Theory' मे इसको स्पष्ट करते हुए कहा है कि व्यापार-चक्र की व्याख्या पूँजी की सीमान्त उत्पादकता तथा ब्याज की दर के परिवर्तनो के द्वारा की जा सकती है।[4] ब्याज की दर मुद्रा की मात्रा व नकदी पसन्दगी (Liquidity Preference) पर निर्भर होती है। पूँजी की सीमान्त उत्पादकता पूँजी आदर्शों (capital assets) अथवा वर्तमान विनियोग सम्बन्धी व्यय तथा वर्तमान मे होने वाले विनियोग के द्वारा भविष्य मे लाभ प्राप्त करने की आशा पर निर्भर होती है। उपरोक्त व्याख्या को निम्न प्रकार समझाया जा सकता है।
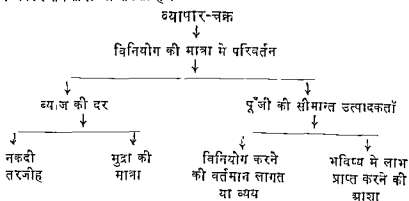
4. The Trade Cycle is best regarded, I think, as being occasioned by a cyclical change in marginal efficiency of capital, though complicated and often aggravated by associated changes in the other significant short-period variables of economic system. (*The General Theory*, p 313)

कीन्स के व्यापार-चक्र के सिद्धान्त में पूँजी की सीमान्त उत्पादकता का महत्व ब्याज की दर की तुलना में अधिक है। वास्तव में कीन्स के विचारानुसार पूँजी की सीमान्त उत्पादकता सभी प्रकार के आर्थिक परिवर्तनों को उत्पन्न करती है। ब्याज की दर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता में अस्थिरता उत्पन्न करने में सहायता करती है। इन दोनों शक्तियों के अतिरिक्त कीन्स के सिद्धान्त में विनियोग गुणक (Investment Multiplier) का भी महत्त्व है क्योंकि इसके बिना व्यापार-चक्र की घटना का आकार बहुत छोटा हुआ होता।

मन्दी की अवस्था में जबकि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता अनेक कारणों से ऊँची होती है और ब्याज की दर भी बहुधा कम होती है, विनियोग गुणक की क्रिया के कारण विनियोग व रोजगार में शीघ्र ही वृद्धि होना आरम्भ हो जाता है। सारी अर्थव्यवस्था आर्थिक क्रियाओं में व्यस्त हो जाती है और शीघ्र ही पूर्ण रोजगार अवस्था को पहुँच कर अभिवृद्धि की अस्थिर अवस्था को जन्म दे देती है। अर्थव्यवस्था में चारों ओर आशा का वातावरण दिखाई देने लगता है। परन्तु दुर्भाग्यवश यह अवस्था अस्थाई सिद्ध होती है। कुछ ही समय पश्चात् वस्तुओं का अत्यधिक उत्पादन होने के कारण साहसियों को हानि का अनुभव होने लगता है और वे निराशावादी बन जाते हैं। इस भावना का आर्थिक परिणाम यह होता है कि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता कम हो जाती है और विनियोग के क्षेत्र में मन्दी विद्यमान हो जाती है। इसके कारण साधनों में बेकारी फैल जाती है। वस्तुओं की माँग कम हो जाती है। इस अवस्था में गुणक के विपरीत दिशा में क्रियाशील होने के कारण मन्दी की अवस्था शीघ्र ही अधिक गम्भीर बन जाती है।

कीन्स का सिद्धान्त काफी सन्तोषजनक रूप में व्यापार-चक्र की पेचीदा घटना की व्याख्या करता है। परन्तु सब कुछ गुण होते हुए भी कीन्स का सिद्धान्त दोष-रहित नहीं है। कीन्स के सिद्धान्त में जैसा कि ऊपर कहा गया है दो मुख्य शक्तियाँ हैं—एक तो ब्याज की दर और दूसरी पूँजी की सीमान्त उत्पादकता। कीन्स के विचार में मन्दी की अवस्था में यदि ब्याज की दर में काफी कमी कर दी जावे तो अर्थव्यवस्था को मन्दी से मुक्ति प्राप्त हो सकती है। परन्तु यह विचार सत्य से काफी दूर है क्योंकि वर्तमान अध्ययनों से ज्ञात होता है कि ब्याज की दर का विनियोग की मात्रा पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। इस सम्बन्ध में बेन्हम (Benham) ने सत्य को स्पष्ट करते हुये कहा है कि "साहसी अपने पुराने व्यवसायों में तभी वृद्धि अथवा नये व्यवसायों को तभी स्थापित करेंगे जबकि वे भविष्य में माँग में वृद्धि होने की आशा करते हैं जिसके कारण वे अधिक उत्पादन को अधिक मूल्य पर बेच कर अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।"[5] क्राउथर के विचार में भी ब्याज का विनि-

---

5. "Entrepreneurs will expand their business, or start new ones only if they expect the demand for their products to increase or the costs of making and selling them to diminish sufficiently for them to sell a greater output than before at a profit" (Benham)

योग की मात्रा पर कोई विशेष प्रभाव नही पडता है। इसके अतिरिक्त कीन्स के अनुसार पूँजी की सीमान्त उत्पादकता का विनियोगी वर्ग पर बड़ा गहरा प्रभाव पडता है। परन्तु कीन्स यह नही बताते हैं कि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता किन बातो पर निर्भर होती है। कीन्स के विचार मे यह विनियोगियो की मनोभावना (Psychology) पर निर्भर होती है। यदि यह सत्य है तो हम कह सकते हैं कि कीन्स का सिद्धान्त पीगू के व्यापार चक्र मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के समान है।

मूल्यों का सिद्धान्त

कीन्स ने अपने मूल्यो के सिद्धान्त की व्याख्या 'General Theory' की पाँचवी पुस्तक मे अध्याय २१, जिसका शीर्षक 'The Theory of Prices' है, मे की है।

मूल्यों का प्राचीन सिद्धान्त मूल्य के परिवर्तनो का अध्ययन द्रव्य की मात्रा के परिवर्तनो के आधार पर करता है। प्राचीन अर्थशास्त्र मे मूल्य-स्तर (अथवा द्रव्य की सामान्य क्रय-शक्ति) यथा-क्रम मुद्रा की उस कुल चलन-मात्रा से सम्बन्धित है जिसके द्वारा वस्तुओ का क्रय-विक्रय होता है। सामान्य मूल्य-स्तर और द्रव्य की मात्रा का यह विशेष सम्बन्ध इस प्रकार का है कि यदि द्रव्य की मात्रा मे वृद्धि हो जाती है तो मूल्य-स्तर मे भी वृद्धि हो जाती है और इसके विपरीत द्रव्य की मात्रा के कम होने पर मूल्य-स्तर भी कम हो जाता है। द्रव्य की मात्रा व मूल्य-स्तर के बीच यह हेतुक (causal) सम्बन्ध द्रव्य के परिमाण सिद्धान्त का, जिसको प्राचीन अर्थशास्त्र (Orthodox Economics) मे विशेष स्थान प्राप्त है, केन्द्रीय विचार है।

कीन्स ने इस सम्बन्ध मे एक नवीन सिद्धान्त का निर्माण किया है। प्राचीन सिद्धान्त की तुलना मे कीन्स का मूल्यो का सिद्धान्त अधिक विस्तृत प्रकार का है। कीन्स की इस क्षेत्र मे यह विशेष नवीनता है कि जबकि प्राचीन अर्थशास्त्र मे द्रव्य के मूल्य का सिद्धान्त और सामान्य मूल्य व उत्पत्ति का सिद्धान्त एक दूसरे से अलग-अलग थे कीन्स ने इन दोनो सिद्धान्तो को एक दूसरे से बहुत अच्छे ढग से जोड़ दिया है। इस नवीनता के अतिरिक्त कीन्स के सिद्धान्त की दूसरी विशेषता यह है कि यद्यपि कीन्स द्रव्य के प्राचीन परिमाण सिद्धान्त के इस निष्कर्ष से कि द्रव्य की मात्रा मे वृद्धि या कमी मूल्यो की वृद्धि या कमी का कारण होती है, इन्कार नही करते है परन्तु वे परिमाण सिद्धान्त के इस वर्णन से सहमत नही हैं कि द्रव्य की मात्रा व मूल्यो के बीच एक सीधा व हेतुक सम्बन्ध है। कीन्स के विचारानुसार मुद्रा की मात्रा के परिवर्तनों का प्रभाव मूल्यो पर इतना प्रत्यक्ष व हेतुक नही होता है जितना कि द्रव्य के परिमाण सिद्धान्त की व्याख्या से ज्ञात होता है। कीन्स के विचार मे द्रव्य की मात्रा मे परिवर्तनो का प्रभाव सामान्य मूल्य स्तर पर अप्रत्यक्ष रूप मे व्याज की दर, विनियोग की मात्रा, रोजगार की स्थिति, आय व उत्पादन की मात्रा इत्यादि तत्वो के द्वारा पडता है। कीन्स इस बात पर जोर देते है कि द्रव्य की

मात्रा व इसके परिवर्तनो मे और सामान्य मूल्य-स्तर मे कोई भी इस प्रकार का सीधा व हेतुक सम्बन्ध नही है, जैसा कि द्रव्य का प्राचीन परिमाण सिद्धान्त विश्वास दिखाने की चेष्टा करता है। उनके विचारानुसार यह सम्बन्ध अप्रत्यक्ष व दूर का है।

मुद्रा की मात्रा मे वृद्धि होने का प्रभाव आरम्भ मे ब्याज की दर पर पड़ता है, जो मुद्रा की मात्रा मे वृद्धि हो जाने के कारण कम हो जाती है। द्रव्य की मात्रा अधिक हो जाने के कारण लोगो को अपने सट्टे-बाजी के उद्देश्य (speculative motive)[6] की पूर्ति करने के लिए द्रव्य की अधिक मात्रा प्राप्त हो जाती है। जब द्रव्य की मात्रा मे वृद्धि हो जाने के कारण ब्याज की दर कम हो जाती है तो पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Efficiency of Capital) के *यथास्थिर रहने पर समाज मे कुल विनियोग की मात्रा मे भी वृद्धि हो जाती है।* इसके परिणामस्वरूप समाज ने आय, रोजगार व उत्पादन की मात्रा मे भी वृद्धि होने लगती हैं। जैसे ही द्रव्य की मात्रा मे वृद्धि होने के कारण समाज मे कुल आय, रोजगार और उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि होना आरम्भ हो जाता है वैसे ही मूल्य-स्तर भी श्रमिको के वेतनो मे वृद्धि हो जाने, क्रमश उत्पत्ति ह्रास नियम के कार्यशील होने तथा उत्पत्ति के क्षेत्र मे और बहुत सी कठिनाइयां अनुभव होने के कारण बढने लगता है। इस प्रकार समाज *मे रोजगार और मूल्य स्तर दोनो मे वृद्धि होती है। यद्यपि आरम्भ मे यह वृद्धि* केवल रोजगार तक ही सीमित रहती है परन्तु जैसे-जैसे पूर्ण-रोजगार की स्थिति समीप आती जाती है यह वृद्धि क्रमश. मूल्यो की वृद्धि के रूप मे विद्यमान होने लगती है। पूर्ण रोजगार की आदर्श स्थिति प्राप्त हो जाने के पश्चात् समज मे रोजगार में किसी प्रकार की भी वृद्धि करना असम्भव हो जाता है और इस आदर्श स्थिति के पश्चात् मुद्रा की मात्रा मे वृद्धि होने के कारण केवल मूल्यो मे ही वृद्धि होती है। उत्पादन व रोजगार की मात्रा पर इस वृद्धि का कोई प्रभाव नही पडता है।

कीन्स की विशेष *योग्यता यह है कि उन्होंने इस* प्राचीन भ्रम का कि द्रव्य की मात्रा और मूल्यों के बीच एक सीधा व हेतुक सम्बन्ध है, सदा के लिये अन्त कर दिया है। कीन्स का सिद्धान्त हमारा ध्यान सदा के लिये इस सत्यता पर केन्द्रित करता है कि मूल्य मुख्यतया वस्तुओ के उत्पादन-व्यय से निर्धारित होत है। उनका सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि द्रव्य की मात्रा के परिवर्तनों का प्रभाव आरम्भ मे प्रत्यक्ष रूप में मूल्यो पर नही बल्कि ब्याज की दर पर पड़ता है। मूल्यो पर तो केवल यह प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप मे कारण-परिणाम की एक बडी लम्बी

---

6. Keynes defines Speculative Motive as 'the desire of earning profit by knowing better than the market what the future will bring forth'

लडी के द्वारा पडता है। द्रव्य की मात्रा के परिवर्तनों का प्रभाव मूल्यों पर अप्रत्यक्ष रूप से ब्याज की दर के द्वारा पडता है क्योंकि ब्याज की दर रोजगार व उत्पत्ति की मात्रा पर अपना प्रभाव डालती है। ब्याज की दर मे परिवर्तन होने पर उत्पत्ति की मात्रा मे परिवर्तन होते है, और उत्पत्ति मे परिवर्तन होने पर उत्पादन-व्यय मे परिवर्तन होने के कारण मूल्यो मे परिवर्तन होते है। कीन्स का सिद्धान्त इस सत्यता को भली प्रकार स्पष्ट करता है कि मूल्यों मे परिवर्तन प्रत्यक्षत द्रव्य की मात्रा के परिवर्तनो के कारण नही होते है बल्कि इसके विपरीत ये परिवर्तन अप्रत्यक्ष रूप से अनेको आर्थिक तत्वो के द्वारा विद्यमान होते है। कीन्स के विचार मे द्रव्य की मात्रा के परिवर्तनो का मूल्यो के परिवर्तनो से निम्न प्रकार का अप्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

द्रव्य की मात्रा ——→	ब्याज की दर ——→	विनियोग ——→	रोजगार, ——→	मूल्यो मे
मे परिवर्तन होने के फलस्वरूप	मे परिवर्तन होते है तथा इन के कारण	की मात्रा मे परि-वर्तन होते है। ये परिवर्तन	आय और उत्पत्ति की मात्रा मे परिवर्तन उत्पन्न करते है जो	परिवर्तन उत्पन्न करते है।

द्रव्य की मात्रा और मूल्यो के सम्बन्ध की उपरोक्त कडी से यह भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि द्रव्य की मात्रा और मूल्यो के बीच किसी भी प्रकार का सीधा, अनुपाती व निश्चित सम्बन्ध नही है। इसके विपरीत यह सम्बन्ध अप्रत्यक्ष, अधूरा, बहुत दूर और अनिश्चित प्रकार का है क्योंकि यह ब्याज की दर व उससे सम्बन्धी शक्तियो पर निर्भर है। ब्याज की दर मे परिवर्तनो के हेतु विनियोग, रोजगार, आय और उत्पत्ति की मात्रा मे भी परिवर्तन होगे अथवा नही, यह ब्याज की दर के अतिरिक्त पूंजी की सीमान्त उत्पादकता और उपभोग की प्रवृत्ति (Propensity to Consume) पर भी निर्भर होता है। उदाहरण के लिये यदि पूंजी की सीमान्त उत्पादकता किसी कारण कम हो जाती है तो यद्यपि मुद्रा की मात्रा मे वृद्धि होने से ब्याज की दर कम हो जाती है परन्तु फिर भी विनियोग, रोजगार और मूल्यों मे कोई वृद्धि नही होगी। इसी प्रकार यदि उपभोग की प्रवृत्ति कम हो जाती है तो द्रव्य की मात्रा मे वृद्धि हो जाने पर भी यह सम्भव है कि मूल्यो मे किसी प्रकार की वृद्धि न हो। उपरोक्त वर्णन से यह भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि द्रव्य की मात्रा और मूल्यो के बीच एक पेचीदा (complex) सम्बन्ध है।

कीन्स के सिद्धान्त की एक महान् विशेषता यह है कि यह मुद्रा के सिद्धान्त को सामान्य मूल्य के सिद्धान्त से जोडने मे सफल हुआ है। दूसरे शब्दों मे कीन्स का सिद्धान्त द्रव्य के सिद्धान्त को अर्थशास्त्र के सामान्य सिद्धान्तो से मिला देता है। प्राचीन अर्थशास्त्र मे द्रव्य के सिद्धान्त का अर्थशास्त्र के सामान्य सिद्धान्तो से कोई

सम्बन्ध नहीं था। मूल्य के सामान्य सिद्धान्त के अनुसार किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु की माँग व पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है। वह सीमा जहाँ तक कि किसी वस्तु का उत्पादन सम्भव होता है, उस वस्तु के सीमान्त-व्यय और सीमान्त-आगम की समानता के बिन्दु द्वारा निर्धारित होती है। इस प्रकार वस्तु के मूल्य के सिद्धान्त के अध्ययन में सीमान्त-व्यय व सीमान्त-आगम और अल्प-कालीन माँग व पूर्ति की लोच के सामान्य विचारों का विशेष महत्त्व है। कीन्स सामान्य मूल्य-स्तर या मूल्यों की व्याख्या करते समय भी उत्पादन व्यय, माँग व पूर्ति की लोच और दूसरे उन अन्य विचारों को जो किसी एक वस्तु के मूल्य निर्धारण में महत्त्वपूर्ण होते है, महत्त्व देते है। कीन्स इस बात को भली प्रकार स्पष्ट करते हैं कि मूल्य उत्पादन-व्यय की वृद्धि के कारण बढ़ते है और उत्पादन-व्यय इसलिये बढ़ते हैं क्योंकि उत्पत्ति व रोजगार की पूर्ति अल्पकाल में मूल्य निरपेक्ष (inelastic) होती है।

अपने मूल्यों के सिद्धान्त के द्वारा मौद्रिक सिद्धान्त को मूल्य के सिद्धान्त से जोड़ने के अतिरिक्त कीन्स ने मुद्रा के सिद्धान्त को उत्पत्ति के सिद्धान्त (Theory of Output) से भी सफलतापूर्वक जोड़ दिया है। वास्तव मे उत्पत्ति के सिद्धान्त के द्वारा कीन्स ने मुद्रा और मूल्य के सिद्धान्तों को एक दूसरे से सटा दिया है। द्रव्य की मात्रा के परिवर्तन ब्याज की दर पर प्रभाव डाल कर विनियोग की मात्रा मे परिवर्तन उत्पन्न करके उत्पत्ति की मात्रा मे भी परिवर्तन उत्पन्न कर देते है। उत्पत्ति की मात्रा मे परिवर्तन होने के साथ-साथ उत्पादन-व्यय मे भी परिवर्तन होते है और परिणाम-स्वरूप मूल्यों (अर्थात् कीमतों) पर भी इसका प्रभाव पड़ता है।

कीन्स के सिद्धान्त की उपरोक्त व्याख्या को समझने के पश्चात् द्रव्य के प्राचीन परिमाण सिद्धान्त के दोषों का पता लगाना कठिन नही रहता है। मूल्यों के सिद्धान्त की प्राचीन व्याख्या इस कारण दोषपूर्ण है क्योंकि इसमे द्रव्य की मात्रा के उन प्रभावों को जो ब्याज की दर, विनियोग, उत्पत्ति व रोजगार की मात्रा इत्यादि पर पड़ते है बिल्कुल भुला दिया गया है। इसके विपरीत प्राचीन विचारधारा मे केवल द्रव्य की मात्रा और मूल्यों पर ही समस्त ध्यान केन्द्रित किया गया है। सक्षेप मे प्राचीन सिद्धान्त मे द्रव्य की मात्रा और मूल्य के बीच की चारों स्थितियों (stages)—ब्याज की दर, विनियोग की मात्रा, आय, रोजगार व उत्पत्ति की मात्रा, और उत्पादन-व्यय—को भुला दिया गया है। प्राचीन सिद्धान्त मे इस भूल के विद्यमान होने का मुख्य कारण पूर्ण रोजगार की मान्यता से सम्बन्धित है। पूर्ण-रोजगार की स्थिति के पश्चात द्रव्य की मात्रा मे वृद्धि होने के कारण न तो उत्पत्ति मे वृद्धि होती है और न रोजगार की मात्रा मे ही कोई वृद्धि सम्भव होती है। यह वृद्धि केवल मूल्यों मे ही होती है। समाज मे पूर्ण रोजगार की स्थिति को विद्यमान करके उत्पत्ति की मात्रा मे परिवर्तनों की सम्भावना बिल्कुल समाप्त हो जाती है और इस कारण सीमान्त-व्यय और सीमान्त-आगम, माँग और पूर्ति की मूल्यसापेक्षता

इत्यादि विचारो की, जो कीन्स के मूल्य के सिद्धान्त के अध्ययन मे विशेष महत्त्व रखते है, प्राचीन सिद्धान्त मे कोई आवश्यकता नही पड़ती है। ऐसी स्थिति मे द्रव्य के सिद्धान्त को मूल्य के सिद्धान्त से जोडने की कोई आवश्यकता नही होती है और यही कारण है कि प्राचीन अर्थशास्त्रियो के लेखन कार्यो मे द्रव्य का सिद्धान्त अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो के मुख्य अङ्ग के रूप मे विद्यमान नही होता है। यदि एक बार पूर्ण रोजगार की स्थिति को समाज मे विद्यमान मान लिया जावे तो मुद्रा का केवल मूल्यों पर ही प्रभाव पड़ सकता है और अन्य तत्त्वों पर कदापि नही पड़ेगा। ऐसी स्थिति मे मुद्रा की मात्रा व मूल्यो के बीच की कड़ियों को बिना किसी हानि के अध्ययन से मुक्त किया जा सकता है क्योंकि मुद्रा की मात्रा के परिवर्तनों का उन पर पूर्ण रोजगार की स्थिति मे कोई प्रभाव नही पडता है। डडले डिलार्ड (Dudley Dillard) ने द्रव्य के प्राचीन सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि "प्राचीन सिद्धान्त का यह निष्कर्ष कि मुद्रा की मात्रा की वृद्धि स्फीति की स्थिति को जन्म देती है, उत्पत्ति के साधनो की पूर्ण रोजगार की आदर्श स्थिति में तो पूर्णतः सत्य है, परन्तु यदि इस स्थिति की मान्यता का अन्त करके वास्तविकता पर ध्यान केन्द्रित किया जावे तो यह निष्कर्ष सर्वथा गलत प्रतीत होता है। पूर्ण-रोजगार की आदर्श स्थिति मे वस्तुओ के मूल्यो का सिद्धान्त सामान्य मूल्य स्तर अथवा द्रव्य के मूल्य का सिद्धान्त बन जाता है। द्रव्य समाज की आर्थिक प्रणाली की मशीन के लिये एक विशेष प्रकार का तेल (Lubricant) है क्योंकि इसके द्वारा प्राचीन वस्तु-विनिमय प्रथा की कठिनाइयो का अन्त हो जाता है। प्राचीन सिद्धान्त मे मुद्रा की मात्रा के परिवर्तनो और रोजगार की स्थिति के परिवर्तनो के विशेष सम्बन्ध का कहीं भी वर्णन नही किया गया है। प्राचीन अर्थशास्त्र मे व्यक्तिगत वस्तुओ के मूल्य के सिद्धान्त का वस्तुओ के सामान्य मूल्य स्तर के सिद्धान्त से किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नही है। मुद्रा का सिद्धान्त अर्थशास्त्र के उस सिद्धान्त के मुख्य शरीर से अलग रहता है जिसका मूल्य और उत्पत्ति से सम्बन्ध है। पूर्ण रोजगार की अवास्तविक मान्यता का ही यह परिणाम है।"[7]

कीन्स ने सफलता के साथ द्रव्य के नवीन परिमाण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। कीन्स का यह सिद्धान्त निम्नलिखित दो मान्यताओ पर आधारित है :

---

7. It leads to the conclusion that all increases in the quantity of money [illegible]

extremely important relations between changes in the quantity of money and changes in employment are ignored The theory of value of individual commodities is divorced from the theory of prices of commodities in general Monetary theory remains outside the main body of economy which is concerned with value and output" (Dudley Dillard : *Economics of John Maynard Keynes*. pp. 225 226)

(१) उत्पत्ति के साधनों की पूर्ति देश में पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त होने के पूर्व सर्वथा मूल्य सापेक्ष है और पूर्ण रोजगार की स्थिति के पश्चात् पूर्ण रूप से मूल्य निरपेक्ष है।

(२) माँग की मात्रा की वृद्धि द्रव्य की मात्रा की वृद्धि से अनुपाती रूप में सम्बन्धित है।

उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर द्रव्य के नवीन परिमाण सिद्धान्त की, जो बेरोजगारी की सामान्य व पूर्ण रोजगार की विशेष परिस्थितियों में समान रूप से लागू होता है, व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है "जब तक समाज में बेरोजगारी की अवस्था विद्यमान है तब तक रोजगार की मात्रा में द्रव्य की मात्रा के ठीक अनुपात में परिवर्तन होंगे परन्तु जब समाज में पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त हो जाती है तब मूल्यों में मुद्रा के ठीक अनुपात में परिवर्तन होंगे।"[8]

उपरोक्त मान्यताओं पर आधारित होने के कारण कीन्स की द्रव्य का यह नवीन परिमाण सिद्धान्त यद्यपि सर्वथा दोष-रहित नहीं है, परन्तु दोष-रहित न होते हुए भी यह सिद्धान्त द्रव्य के प्राचीन परिमाण सिद्धान्त से निश्चित रूप से उत्तम है तथा व्यवहारिक क्षेत्र में आर्थिक नीतियों का अच्छा पथ-प्रदर्शक है। जब कि प्राचीन सिद्धान्त द्रव्य की मात्रा की प्रत्येक वृद्धि को निश्चित रूप से स्फीति व मूल्यों की वृद्धि का कारण समझता था, वर्तमान सिद्धान्त इस भ्रम को दूर करने की चेष्टा करता है और स्पष्टतया यह बताता है कि द्रव्य की मात्रा में वृद्धि होने के कारण स्फीति का भय केवल पूर्ण-रोजगार की स्थिति के पश्चात् ही उत्पन्न होता है। कीन्स का सिद्धान्त हमको यह बतलाता है कि जब तक देश में उत्पत्ति के साधन बेरोजगारी की अवस्था में रहते हैं तब तक द्रव्य की मात्रा में वृद्धि होने के कारण मूल्यों में वृद्धि होने के कारण मूल्यों में नहीं बल्कि रोजगार में वृद्धि होगी। दूसरे शब्दों में यह सिद्धान्त हमको यह बतलाता है कि यदि देश में बेरोजगारी व अवस्फीति (Deflation) की गम्भीर समस्याएँ विद्यमान है तब ऐसी स्थिति में साख उत्पन्न करके समाज की आर्थिक स्थिति में सुधार किया जा सकता है। ऐसी असाधारण स्थिति में द्रव्य की मात्रा की वृद्धि समाज के लिये घातक नहीं बल्कि आर्थिक स्थिरता (Economic Stability) का साधन बनकर समाज के आर्थिक हितों को सुरक्षा प्रदान करेगी। यह सिद्धान्त प्राचीन परिमाण सिद्धान्त की तरह से एक-तरफा (One-sided) नहीं है। कीन्स प्रसिद्ध अर्थशास्त्री होने के अतिरिक्त एक सामाजिक व्यक्ति भी थे जो सदा इस सत्य को जानते थे कि संसार

---

8. "So long as there is unemployment, ... [illegible] ... ne ... nt ... [illegible] ... 16

की प्रत्येक वस्तु गुणों और अवगुणों का मिश्रण होती है। यदि कीन्स संसार को केवल अर्थशास्त्री की दृष्टि से ही देखते तो उनके सिद्धान्त में भी वे सब दोष विद्यमान हुए होते जो प्राचीन सिद्धान्त में विद्यमान है। यही कारण है कि कीन्स का सिद्धान्त हमको यह चेतावनी देता है कि जब समाज में पूर्ण रोजगार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तब मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होने का परिणाम निश्चय रूप से स्फीति (Inflation) होता है। इस प्रकार कीन्स का नवीन परिमाण सिद्धान्त हमको स्फीति के भय से उस समय तक मुक्त रखता है जब तक समाज में बेरोजगारी की अवस्था विद्यमान रहती है, परन्तु पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त होने पर यह हमको स्फीति की स्पष्ट रूप से चेतावनी देता है।

यद्यपि कीन्स का सिद्धान्त प्राचीन सिद्धान्त की तुलना में अधिक उत्तम है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि यह सर्वथा दोष-रहित है। यह सिद्धान्त सर्वथा सत्य नहीं है। सिद्धान्त की यह प्रस्तावना कि जब तक समाज में बेरोजगारी विद्यमान है तब तक रोजगार की स्थिति में द्रव्य की मात्रा के ठीक अनुपात में परिवर्तन होते है, परन्तु पूर्ण रोजगार की स्थिति के पश्चात् केवल मूल्यों में ही द्रव्य की मात्रा के अनुपात में परिवर्तन होते है, पूर्ण रूप से सत्य नहीं है। यह प्रस्तावना बहुत सी मान्यताओं से सुरक्षित किया हुआ वर्णन है जिसकी सत्यता में संदेह है। वास्तव में मूल्य समाज में पूर्ण रोजगार की स्थिति विद्यमान होने के पूर्व भी बढ़ सकते है और वास्तविक जीवन में बढ़ते भी है। डिलार्ड (Dillard) कीन्स के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहते है कि "मूल्यों की यह वृद्धि आवश्यक क्रम में उस समय होती है जब कि उत्पत्ति में वृद्धि होती है और इसका विश्लेषण अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों के द्वारा किया जा सकता है।[9] रोजगार के स्तर में वृद्धि होने के साथ-साथ मूल्यों और उत्पादन-व्यय में जो वृद्धि होती है उसके निम्नलिखित तीन मुख्य कारण है।

(१) समाज में जैसे-जैसे रोजगार की स्थिति में सुधार होता है तो बेरोजगारी कम अथवा अधिक रोजगार प्राप्त होने के कारण श्रमिकों की सौदा करने की शक्ति (bargaining power) में भी वृद्धि हो जाती है और इसका परिणाम यह होता है कि वेतनों की दरों में भी वृद्धि हो जाती है। ऐसी स्थिति में उत्पादन-व्यय की वृद्धि एक सामान्य सत्य बन जाती है।

(२) उत्पत्ति के क्षेत्र में विशेष रूप से अल्पकाल में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) कार्यशील होने लगता है।

---

9 "These are not mere chance increases from fortuitous circumstances The increases in prices that occur as output expands are more or less inevitably associated with expanding output and can be explained in terms of well established principles of economic analysis." (Dudley Dillard . *Economics of John Maynard Keynes*, p 227)

(३) *समाज में आर्थिक प्रणाली की अपूर्णताओं के कारण उत्पादन के* क्षेत्र में अनेकों कठिनाइयों के विद्यमान होने के कारण—उत्पत्ति के साधनों की मात्रा के बीच आदर्श संगठन का अभाव, साधनों में गतिशीलता का अभाव, ज्ञान का अभाव, उत्पत्ति के किसी साधन की बहुत कम मात्रा इत्यादि—उत्पत्ति की मात्रा व्यय के अनुपात से कम बढ़ती है।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि कीन्स का सिद्धान्त भी अन्य सभी सिद्धान्तों के समान आलोचना-रहित नहीं है। यह सिद्धान्त हमको यह नहीं बताता है कि पूर्ण रोजगार की स्थिति के पूर्व भी मूल्यों में वृद्धि होने लगती है। सभी सिद्धान्तों का यह दुर्भाग्य रहा है कि वे किसी घटना के आर्थिक कारणों की पूर्ण व्याख्या नहीं करते हैं और कीन्स का सिद्धान्त भी इस दोष से मुक्त नहीं है। परन्तु इस दोष के होते हुए भी हम यह निस्संदेह कह सकते हैं कि उनका सिद्धान्त द्रव्य के प्राचीन परिमाण सिद्धान्त की तुलना में अधिक वास्तविक व उत्तम है और यही कीन्स का अर्थशास्त्र विज्ञान को द्रव्य के सिद्धान्त के रूप में विशेष साहित्यिक उपहार है।

'जनरल थ्योरी' का व्यावहारिक महत्व

'जनरल थ्योरी' का वास्तविक महत्व इसका व्यावहारिक नीतियों में निर्देशक होने में है। यह वास्तविक संसार की व्यावहारिक समस्याओं के सुलझाने के लिये परम्परावादी अर्थशास्त्रियों की अवास्तविक व्याख्या के विरुद्ध कीन्स की प्रतिक्रिया को स्पष्ट करती है। 'जनरल थ्योरी' उन सब व्यक्तियों के सम्मुख एक व्यापक योजना की रूपरेखा प्रस्तुत करती है, जो इसके अध्ययन के द्वारा वर्तमान आर्थिक समस्याओं का बहुत ही सूक्ष्म हल निकालना चाहते हैं।

'जनरल थ्योरी' अपने निर्माता को पाठकों के सामने एक ऐसे व्यावहारिक *मनुष्य के रूप में प्रस्तुत करती है जो संसार की आर्थिक समस्याओं को आँखें खोलकर* देखना है। इसके प्रकाशन ने प्राचीन अर्थशास्त्र के सम्पूर्ण ढाचे पर कठोर प्रहार किया। 'जनरल थ्योरी' का अत्यन्त महत्वपूर्ण रूप समाज में बेकारी की समस्या को युक्तिसंगत तथा वास्तविक रीति से सुलझाने में है। लेखक ने अन्तिम रूप से यह सिद्ध कर दिया है कि स्वतन्त्र आर्थिक प्रणाली के द्वारा पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त नहीं की जा सकती है। पूँजीवादी स्वतन्त्र समाज में पूर्ण रोजगार की अवस्था को प्राप्त करने के लिये राज्य को कुछ धनात्मक कार्यों को करने की आवश्यकता होती है। कीन्स ने धनात्मक राज्य योजना की आवश्यकता का समर्थन किया है। राज्य *के द्वारा सार्वजनिक निर्माण कार्यों की ऐसी योजना बनाई जानी चाहिये जो सभी* स्वतन्त्र अर्थव्यवस्थाओं में उपभोग के स्तर तथा अधिक आय के स्तरों के मध्य बढ़ती

हुई खाई को पाटने मे सहायक सिद्ध हो सके। राज्य को सस्ती मुद्रा की ऐसी योजना बनानी चाहिये जिससे अर्थव्यवस्था ब्याज की दर इतनी कम हो जाय कि वह समाज मे विनियोग की मात्रा मे वृद्धि करने मे सहायक सिद्ध हो सके इसके अतिरिक्त उपयुक्त प्रशुल्क तथा कर प्रणाली के द्वारा समाज मे आयो के पुर्नवितरण की ऐसी उपयुक्त योजना बनाई जानी चाहिये, जिससे अर्थव्यवस्था मे रोजगार के ऊँचे स्तर पर स्थिरता प्राप्त सके।

कीन्स सार्वजनिक निर्माण कार्यों की नीति के बडे समर्थक थे। सार्वजनिक निर्माण कार्यों में उनका इतना अधिक विश्वास था कि उन्होने यहाँ तक सकेत किया है कि यदि परम्परावादी अर्थशास्त्रीय मान्यताओं की शिक्षा पर आधारित नीति निर्माताओं की राजस्व सम्बन्धी बुद्धिमत्ता, उत्पादक प्रकार के सार्वजनिक निर्माण कार्यो के सम्बन्ध मे नही विचार सकती है तो पिरेमिड निर्माण, पत्तियाँ तोडना अथवा जमीन मे गड्ढे खोदना और फिर उनको भरना आदि व्यर्थ प्रकार के कार्य भी अर्थव्यवस्था के पूर्ण रोजगार के स्तर तक पहुँचने मे बहुत सहायक सिद्ध होगे।

कीन्स का यह दृढ विश्वास रोजगार गुणक की धारणा पर आधारित है। रोजगार गुणक (Employment Multiplier) के अनुसार एक व्यक्ति को प्राप्त हुआ प्रारम्भिक कार्य समाज मे दूसरे, तीसरे तथा चौथे व्यक्ति के लिये कार्यो को उत्पन्न करता है और इस प्रकार बहुत से व्यक्तियों को अतिरिक्त कार्य दिलाने मे सफल सिद्ध होता है। गुणक बचत प्रवृत्ति (Propensity to Save) का उल्टा होता है। उदाहरणार्थ यदि बचत प्रवृत्ति $\left(\frac{\Delta S}{\Delta Y}\right)$ $\frac{१}{५}$ है तो गुणक ५ होगा। गुणक का उपभोग प्रवृति से भी निश्चित सम्बन्ध होता है। गुणक एक (१) मे से उपभोग प्रवृति को घटाने के पश्चात् जो सख्या शेष बचती है उस का उल्टा होता है। उदाहरणार्थ यदि उपभोग प्रवृति $\frac{४}{५}$ है तो गुणक $१-\frac{४}{५}$ अथवा $\frac{१}{५}$ का उल्टा अथवा ५ होगा। अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कीन्स ने अपनी 'जनरल थ्योरी' मे यह सिद्ध किया है कि जैसे जैसे आय बढती है सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति कम होती जाती है, यद्यपि निस्सन्देह निरपेक्ष उपभोग आय की वृद्धि के साथ बढता है तथा आय की कमी के साथ घटता है। ऊचे रोजगार गुणक तथा ऊँची सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति के मध्य प्रत्यक्ष सीधा सम्बन्ध है। इस प्रकार उर्ध्वगामी प्रवृत्ति अर्थात् बढती हुई आय के साथ सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति कम होती है और इसके साथ गुणक भी कम हो जाता है। आय के कम होने की अवस्था मे इसका उल्टा होता है।

'जनरल थ्योरी' स्फीति को रोकने तथा पूर्ण रोजगार की दशा को बनाये रखने का प्रयत्न करती है। इसके लिए कीन्स ने मूल्य नियन्त्रण, राशनिंग, प्रति-

गामी कर, अनिवार्य बचत योजना, बचत-बजट-नीति, ब्याज की दर मे वृद्धि आदि उपायों का समर्थन किया है।

मूल्यांकन

आलोचकों के द्वारा प्राय यह कहा गया है कि कीन्स ने अपनी 'जनरल थ्योरी' में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के विनाश के लिए कुछ भी उठा नही रक्खा था। परन्तु यह बिलकुल गलत है और इससे 'जनरल थ्योरी' के विषय के बारे मे आलोचकों का अज्ञान स्पष्ट होता है। स्वतन्त्र उद्योग की प्राचीन प्रथा को बनाये रखने के लिये इतना अधिक उत्सुक और कोई व्यक्ति नही था जितना कि 'जनरल थ्योरी' का निर्माता था। वह साम्यवाद से घृणा करता था और समाजवाद, विशेष रूप से रूस की आर्थिक प्रणाली, से उसे बहुत अरुचि थी। रूस की नीति के वह इतना अधिक विरुद्ध था कि उसने कहा है. "...... यदि साम्यवाद को कुछ सफलता प्राप्त हो सकेगी तो भी उसे यह सफलता एक उन्नतशील आर्थिक प्रणाली के रूप मे नही वरन् एक धर्म के रूप मे प्राप्त हो सकेगी।" यह कथन पूँजीवाद के प्रति कीन्स के अटल विश्वास को प्रकट करता है। कीन्स ने निजी उद्योग का कभी विद्रोह नही किया परन्तु वह राज्य का एक संरक्षक के समान कार्य करना पसन्द करता था और यदि अर्थव्यवस्था गलत रास्ते पर जा रही हो तो राज्य को नियन्त्रित करने वाले प्रतिनिधि के समान समझता था। पूँजीवाद के विरुद्ध उसके द्वारा की गई आलोचनायें शत्रु की आलोचनाओं के समान नही है वरन् एक मित्र तथा प्रशंसक की आलोचनाओं के समान है, जिनका मुख्य उद्देश्य यही है कि पूँजीवाद संसार में सदैव श्रेष्ठतम आर्थिक प्रणाली बना रहे।

कीन्स के द्वारा राज्य को सार्वजनिक निर्माण कार्यों को प्रारम्भ करने की दी गई छूट ऐसी नही है कि इस प्रकार के कार्य अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र मे और प्रत्येक समय किये जा सकते है। ऐसे कार्यों को तो कभी-कभी व्यक्तिगत विनियोग के पूरक के समान करना चाहिये। इस प्रकार जब सार्वजनिक निर्माण कार्यों को प्रारम्भ करने की आवश्यकता आर्थिक क्रियाओं को पूर्ण रोजगार स्तर पर रखने की हो तब भी वह उन्ही दशाओं मे प्रारम्भ की जानी चाहिये, जिनमे व्यक्तिगत विनियोग बिलकुल नही होता है अथवा कम मात्रा में होता है, अथवा जिसके प्रारम्भ करने मे इतने अधिक व्यय की आवश्यकता होती है कि कोई भी व्यक्तिगत साहसी (चाहे वह कितना ही धनवान क्यों न हो) उसे नहीं कर सकता है। उदाहरण के लिये बड़े-बड़े बाँधों का निर्माण सरकार के द्वारा ही होना चाहिये। कीन्स के मस्तिष्क मे पूर्ण रोजगार की समस्या अधिक महत्वपूर्ण थी और वह इसका अस्तित्व वास्तव मे देखना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने अपनी 'जनरल थ्योरी' मे सामाजिक कार्य की योजना को सम्मिलित किया है।

'जनरल थ्योरी' में कीन्स ने हस्तक्षेप न करने अथवा आर्थिक स्वतन्त्रता के

पुराने सिद्धान्तो को पूर्ण रूप से अस्वीकार कर दिया है। पूर्ण रोजगार, बचत आय तथा और भी बहुत सी प्राचीन आर्थिक धारणायें महत्वहीन कर दी गई हैं क्योकि उनका कोई व्यावहारिक महत्व अथवा उपयोगिता नही है। परन्तु यह सब कुछ उस युग में करना जबकि परम्परावादी आर्थिक सिद्धान्तों का सारे संसार मे बोलबाला था कोई साधारण बात नही थी। इसे क्रान्ति मे कुछ कम नही समझना चाहिये। वर्तमान समय में जबकि अर्थशास्त्रियो मे परम्परावादी भावना मृतप्राय हो गई है, हम परम्परावादी अर्थशास्त्र के दृढ भवन पर कीन्स के हमले के महत्व को तुच्छ समझ सकते हैं। परन्तु कीन्स का सिद्धान्त परम्परावादी सिद्धान्तो की जडो पर आघात करता है क्योकि परम्परावादी अर्थशास्त्र सदैव हस्तक्षेप के विरुद्ध रहा है और कीन्स की क्रान्तिकारी 'जनरल थ्योरी' सदैव हस्तक्षेप के सिद्धान्त को खुले रूप मे स्वीकार करती है। कीन्स ने बेकारी, द्रव्य, ब्याज, मुद्रा स्फीति, मूल्य, व्यापार चक्र, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, विनियोग तथा अन्य अनेक आर्थिक सिद्धान्तो के नवीन दृष्टिकोण को जन्म दिया है।

कीन्स के विचारो का प्रभाव केवल आर्थिक सिद्धान्तो तक ही सीमित नही था। व्यावहारिक आर्थिक नीतियो पर भी कीन्स के आर्थिक दृष्टिकोणो तथा विचारो की प्रभावशाली छाप है। व्यक्तिगत अर्थव्यवस्था की कमियो को पूरा करने के लिये कीन्स की विचारधारा को स्वीकार करते हुये कुछ देशो की सरकारी नीतियो के उदाहरणो मे अमरीका मे अपनाई गई न्यूडील (Newdeal) की आर्थिक नीति, इंगलैण्ड, कनाडा, आस्ट्रेलिया की बेकारी-नीति सम्बन्धी श्वेत पत्र (White Paper); अमेरिका मे १९४५ ई० का 'Murray Full Employment Bill तथा १९४६ ई० का रोजगार अधिनियम, नवीन फ्रांसीसी विधान का वह उपनियम जिसके अनुसार वार्षिक रोजगार बजट आवश्यक है, इत्यादि विशेषरूप से उल्लेखनीय है। प्रशुल्क नीति के क्षेत्र म अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, अन्तर्राष्ट्रीय विकास तथा पुनर्निर्माण बैंक आदि नई विचारधारा के उदाहरण है। ये दोनो सस्थायें कीन्स के सिद्धान्तो के अनुसार अपना कार्य सफलतापूर्वक चला रहे हैं। यह बिलकुल स्पष्ट है कि उन देशो मे जहाँ आर्थिक क्षेत्र मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की प्रधानता है कीन्स के विचारो का ही अनुसरण किया जायगा। कीन्स के विचारो का स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था के लिए पूर्ण एकाधिकार है, परन्तु उनके बहुत से विचार तथा बहुत से सिद्धान्त समाजवादी आर्थिक संगठन मे भी लागू किये जा सकते हैं यद्यपि कीन्स का मौलिक समाज दर्शन स्वभाव से मार्क्स विरोधी है।

विशेष अध्ययन सूची

1. J. M. Keynes : The General Theory of Employment, Interest and Money (1936).

2. Dudley Dillard The Economics of John Maynard Keynes (1950), especially Chapters 2, 3, 5, 6, 7, 8, 9 & 12.
3. Lawrence R. Klein : The Keynesian Revolution (1952), especially Chapters 1 to 6.
4. A. H. Hansen : Monetary Theory and Fiscal Policy (1949), Chapters 2, 9 & 11.
5. A. H. Hansen : A Guide to Keynes.
6. H. L. McCracken Keynesian Economics in the Stream of Economic Thoughts.
7. R. F. Harrod · The Life of John Maynard Keynes, (1951).
8. J. F. Bell A History of Economic Thought, Chapter, 25.
9. Mabel F. Timlin : Keynesian Economics (1942)
10. Seymour E Harris John Maynard Keynes (1955).
11. Council of King's College, Cambridge John Maynard Keynes, 1883-1946
12. S. E. Harris : The New Economics.
13. L. H. Haney · History of Economic Thought, Chapter, XXXVII.
14. R. Lekachman : A History of Economic Ideas, Chapter, 14.
15. Eric Roll : A History of Economic Thought, Chapter, X.
16. Leo Rogin The Meaning and Validity of Economic Theory, Chapter, 15

प्रश्न

1. Outline briefly the main content of the Keynesian Revolution and evaluate its influence upon economic policy and social reform.

(राजस्थान, १९५२, १९५४.)

2. Assess the influence of Keynesian teaching on economic theory and economic policy during recent years

(राजस्थान, १९५३)

3. How is Keynesian theory of employment different from the chassical theory ? Explain clearly.

(राजस्थान, १९५६)

4. "Keynes's thought is similar in several respects to exactly those schools of economics which Adam Smith undertook

to overthrow, Mercantilism and Physiocracy." (Haney) Comment.

(राजस्थान, १६५७)

5. What is meant by 'Keynesian Revolution'? Point out some of the fundamental ideas constituting this revolution.

(बनारस, १६५६)

9. 'Keynes' book (General Theory) is a repudiation of the foundation of laissez-faire' (Dillard) Justify.

(आगरा, १६५१)

7. Point out the chief contribution which Keynes has made to economic thought.

(आगरा, १६५४, राजस्थान, १६५८)

8. 'His book 'The Economic Consequences of the Peace' was published in 1919 Thence forth he (Keynes) assumed the role of the challenger of the whole tradition of economic orthodoxy, a bitter critic of capitalistic laissez-faire and a constant ally of the liberal party Many of his theories have been put into practice in Great Britain and other countries'. (Neff)

In the light of this statement describe Keynes' important contribution and his influence on administration of England or the U. S A.

(आगरा, १६५५)

9. 'The opinion may be ventured that Keynes' approach represents a return to classieal political economy and a sharp departure from the general direction of modern economics' (Eric Roll)

In the light of this statement examine the contribution of Keynes to economic thought

(आगरा, १६५७; १६६०)

10. Keynesian Economics cannot be regarded as a complete substitute for Marshallian Economics for the Keynesian world is different from the Marshallian world. Discuss

संस्थानिक अर्थशास्त्र

(The Institutional Economics)

संस्थानिक अर्थशास्त्र वर्तमान शताब्दी की घटना है। सस्थावाद का सम्बन्ध आर्थिक विचारधारा की उस प्रणाली से है जिसका श्रीगणेश बीसवी शताब्दी के आरम्भ में वेबलन की १८९९ ई० मे प्रकाशित पुस्तक 'The Theory of the Leisure Class' के साथ हुआ था। सस्थानिक आर्थिक विचारधारा की प्रमुख विशेषता यह है कि व्यक्ति के स्थान पर संस्थाओं के अध्ययन को अर्थशास्त्र की केन्द्रिय विषय सामग्री स्वीकार किया जाता है। सस्थानिक अर्थशास्त्रियों के विचारानुसार आर्थिक सस्थाओं —*रीतिरिवाज, आदत, कानूनी प्रणाली इत्यादि*—के अध्ययन का अर्थशास्त्र विज्ञान मे एक विशेष स्थान है क्योंकि किसी देश की आर्थिक प्रगति उस देश के नागरिकों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण, उनकी आर्थिक दशा, आर्थिक क्रियाएं इत्यादि सभी मुख्य रूप मे उस देश की आर्थिक व सामाजिक सस्थाओं का परिणाम होते हैं।

संस्थावाद की प्रमुख विशेषतायें

यद्यपि विभिन्न सस्थानिक अर्थशास्त्रियों के विचारों मे थोडा बहुत मतभेद पाया जा सकता है परन्तु सस्थावाद की निम्नांकित विशेषताओं के सम्बन्ध मे सभी सस्थानिक अर्थशास्त्रियों में एकमतता पाई जाती है।

(१) सस्थानिक अर्थशास्त्रियों के विचारानुसार समुदाय-व्यवहार (Group-behaviour) *का अध्ययन अर्थशास्त्र का केन्द्रिय विषय है।*

(२) सस्थावादियों का कहना है कि मनुष्य के व्यवहार मे निरन्तर परिवर्तन होते रहते है तथा आर्थिक नियमों का सम्बन्ध किसी विशेष समय तथा स्थान से होता है। ये नियम निरपेक्ष नहीं है तथा सभी परिस्थितियों मे लागू नहीं हो सकते हैं। इसके विपरीत आर्थिक नियम सापेक्ष हैं तथा ये विशेष परिस्थितियों का परिणाम होते हैं। इस प्रकार सस्थावादियों ने अर्थशास्त्र सस्थापकों के इस विचार को गलत बताया है कि आर्थिक नियम प्राकृतिक विज्ञानों के नियमों के समान निरपेक्ष

है तथा सदा सब परिस्थितियों मे लागू होते है। इस सम्बन्ध मे संस्थावादियों के विचार जर्मन इतिहासवादियो के विचारों से मिलते जुलते है।

(३) संस्थानिक अर्थशास्त्रियो के विचारानुसार आर्थिक जीवनके सगठन को निर्धारित करने मे रीति रिवाजो, आदतो तथा कानूनी प्रथा आदि का एक विशेष महत्व है।

(४) मनुष्य को प्रेरित करने वाले अनेक कारणों की माप करना संभव नही है।

(५) अर्थशास्त्र संस्थापकों के विचारानुसार अर्थव्यवस्था सामान्यतः सन्तुलन की स्थिति में रहती है। परम्परावादी आर्थिक विचारधारा में मे के प्रसिद्ध बाजार नियम—पूर्ति स्वयं अपनी माग उत्पन्न करती है—का विशेष महत्व था। असन्तुलन की सामान्य परिस्थिति को अर्थशास्त्र संस्थापक सन्तुलन की सामान्य परिस्थितिसे अल्पकालीन भिन्नता विचारते थे जो अन्त में आर्थिक शक्तियों के कार्यशील होने के परिणामस्वरूप समाप्त हो जाती है। इस प्रकार प्राचीन अर्थशास्त्र सन्तुलित अर्थव्यवस्था का अर्थशास्त्र था। इस विचारधारा के विपरीत सस्थानिक अर्थशास्त्री आर्थिक जीवन मे असन्तुलन की अवस्था को एक सामान्य अवस्था स्वीकार करते है।

संस्थानिक अर्थशास्त्र का विकास

सयुक्त राष्ट्र आफ अमरीका का आर्थिक, सामाजिक तथा विद्योचित वातावरण सस्थानिक अर्थशास्त्र के तीव्र विकास के अनुकूल सिद्ध हुआ। १८६६ ई० मे वैबलन की पुस्तक **'Theory of the Leisure Class'** के प्रकाशन के पश्चात् सस्थानिक अर्थशास्त्र का काफी विकास हुआ तथा लगभग १½ दशाब्दी पश्चात् १६१४ ई० में वैबलन की दूसरी पुस्तक **'Instinct of Workmanship'** के प्रकाशित होने के समय सस्थानिक अर्थशास्त्र ने काफी विकसित अवस्था को प्राप्त कर लिया था। १६१७ ई० मे अमरीकी आर्थिक सघ (American Economic Association) के वार्षिक सम्मेलन के एक विशेष अधिवेशन मे मुख्यता सस्थानिक अर्थशास्त्र पर ही वादविवाद हुये थे। इस अधिवेशन, जिसमे अमरीका के प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों ने भाग लिया था, के वादविवाद का विषय "The Institutional Approach to Economic Theory" था। प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्री W. H. Hamilton, J. M. Clark, F. M. Ogburg तथा W. W. Stewart ने सस्थानिक अर्थशास्त्र के पक्ष तथा प्रो० B. M. Anderson, F. A. Fetter व L. H. Haney आदि ने विपक्ष मे तर्क प्रस्तुत किये थे। यह सब कुछ कहने का तात्पर्य यह है कि वर्तमान शताब्दी की प्रथम दो दशाब्दियो मे संस्थानिक अर्थशास्त्र का इतना अधिक विकास हो चुका था कि प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्रियो का ध्यान संस्थानिक अर्थशास्त्र के अध्ययन के महत्व की ओर आकर्षित हो चुका था।

इसके अतिरिक्त एक अन्य दूसरी शक्ति जिसने संस्थानिक अर्थशास्त्र के विकास में अपना योगदान दिया था वह समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र मे होने वाले नये परिवर्तनों से सम्बन्धित थी। समाजशास्त्री एच० सी० कूले (H. C. Cooley) ने १६०६ ई० मे लिखित अपनी पुस्तक **'Social Organisation'** तथा १६१८ ई० मे लिखित **'Social Process'** नामक पुस्तक में समाज की प्रकृति तथा सामाजिक प्रक्रियाओं पर नया प्रकाश डाला था। इन पुस्तकों ने काफी समाजशास्त्रियों का ध्यान आकर्षित किया तथा इससे संस्थानिक अर्थशास्त्र के विकास को काफी शक्ति प्राप्त हुई। संस्थानिक अर्थशास्त्र के विकास को शक्ति प्रदान करने वाला तीसरा कारण प्रथम महायुद्ध को समाप्ति के पश्चात् विद्यमान होने वाली १६२१ ई० की मन्दी थी। इसी वर्ष वेबलन की पुस्तक **'The Engineers and the Price System'** प्रकाशित हुई थी तथा तीन वर्ष पश्चात् १६२४ ई० मे प्रोफेसर टगवेल (R.C. Tugwell) ने **The Trend of Economics** नामक पुस्तक का सम्पादन किया था। यह पुस्तक शिकागो, कोलम्बिया या हार्वर्ड विश्वविद्यालयों मे पढाने वाले अर्थशास्त्रियों के लेखों का सग्रह थी। इन लेखों मे संस्थानिक अर्थशास्त्र का विवेचन किया गया था। इसके अतिरिक्त संस्थानिक अर्थशास्त्र के विकास को उत्तेजित करने वाली अन्तिम तथा चौथी शक्ति तीसा की महान विश्वव्यापी मन्दी थी। तीसा की इस महान मन्दी ने प्राचीन अर्थशास्त्र को घातक धक्का दिया तथा नवीन संस्थानिक अर्थशास्त्र के विकास के लिये अनुकूल वातावरण उपस्थित किया। W. E. Atkins की पुस्तक **'Economic Behaviour'** तथा S. H Slichter की पुस्तक **Modern Economic Society** इसी समय प्रकाशित हुई थी। इन पुस्तकों में लेखकों ने अर्थशास्त्र के अध्ययन मे महत्वपूर्ण परिवर्तन करने का अनुरोध किया था। अपने १६३१ ई० के वार्षिक सम्मेलन मे American Economic Association ने एक अधिवेशन मे संस्थानिक अर्थशास्त्र का मूल्यांकन किया था। १६३३ ई० मे जब Franklin Delano Roosevelt अमरीका के राष्ट्रपति निर्वाचित हुये तो उन्होंने अनेक संस्थानिक अर्थशास्त्रियों को अपना परामर्शदाता नियुक्त किया था तथा राष्ट्रपति रूजवेल्ट की प्रसिद्ध 'New Deal' नामक आर्थिक नीति पर संस्थानिक अर्थशास्त्र के प्रभाव की गहरी छाप थी। 'New Deal' सरकारी आर्थिक नीतियों पर संस्थानिक अर्थशास्त्रियों के विचारों के प्रभाव का उत्तम उदाहरण है।

संस्थानिक अर्थशास्त्रियों के दो दल है। प्रथम अथवा प्राचीन दल (Older Group) मे थोर्स्टीन वेबलन (Thorstein Bund Veblen), वेस्ली क्लेयर मिचल Wesley Clair Mitchell) तथा जॉन रोजर्स कोमन्स (John Rogers Commons) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस अध्याय मे आगे चल कर इन अर्थशास्त्रियों के व्यक्तिगत योगदानों की सक्षिप्त व्याख्या की जायेगी। प्राचीन दल ने प्राचीन व्यक्तिगत तथा मूल्य अर्थशास्त्र की आलोचना की है। इन अर्थशास्त्रियों

के विचारानुसार मनुष्य आदतों तथा अन्तः प्रेरणाओं से प्रभावित होने वाला विवेक-रहित प्राणी है। यह विचारधारा स्मिथवादी उस विचारधारा के बिल्कुल विपरीत है जिसमे मनुष्य को पूर्णतया विवेकशील माना गया है तथा जहाँ मनुष्य एक मात्र स्वार्थ की भावना से प्रेरित होता है। इस दल के अर्थशास्त्रियो ने नये अर्थशास्त्र तथा निश्चित लक्ष्यो की कोई व्याख्या नही की है।

नवीन दल (Younger Group) के सदस्यों मे R. G. Tugwell, G. C. Means, S. H. Slichter, A. B. Wolfe, K. Polanyi, C. E. Ayres तथा A. G. Gruchy के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। इन अर्थशास्त्रियो ने केवल प्राचीन अर्थशास्त्र की ही आलोचना नही की बल्कि अपने धनात्मक विचार भी प्रस्तुत करके सामाजिक उद्देश्य निर्धारित किये। इस दल का अमरीका की 'New Deal' नीति पर गहरा प्रभाव पडा था। K. Polanyi ने १९४४ ई० मे प्रकाशित अपनी पुस्तक **'The Great Transformation'** मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को एक भ्रम बताया था। उन्होंने पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की स्वतन्त्र बाजार प्रणाली की कडी आलोचना की तथा राज्यहस्तक्षेप के पक्ष मे अनेक तर्क प्रस्तुत किये थे। C. E. Ayres ने भी १९४४ ई० में प्रकाशित अपनी **'The Theory of Economic Progress'** नामक पुस्तक मे पूंजीवाद की कडी आलोचना की थी तथा सस्थानिकवादी सिद्धान्त भी प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया था। A. G. Gruchy ने १९४७ ई० मे प्रकाशित अपनी **'Modern Economic Thought'** नामक पुस्तक में पूँजीवाद व व्यक्तिवाद की कडी आलोचना की थी। नवीन दल की विचारधारा राज्य को अधिक सत्ता प्रदान करने के पक्ष में होने के कारण एक प्रकार से फासिज्म (fascism) से मिलती जुलती थी। परन्तु समय के बीतने के साथ-साथ नवीन दल का प्रभाव कम होने लगा तथा द्वितीय महायुद्ध की घोषणा के पश्चात् इसके दल के खण्डन का क्रम आरम्भ हो गया। १९४८ ई० के लगभग सस्थानिकवाद केवल नाममात्र को ही जीवित था।

थोर्स्टीन वेबलन (१८५७ ई०-१९२९ ई०)
(Thorstein Bunde Veblen)

वेबलन[1] सस्थानिक अर्थशास्त्र के जनक थे। उन्होने प्राचीन अर्थशास्त्र पर आक्रमण किया था। उनके विचारानुसार जेवन्स तथा अन्य मनोविज्ञानवादियो के

1. सस्थानिक अर्थशास्त्र के जनक थोर्स्टीन वेबलन का जन्म १८५७ई० मे अमरीका मे विस्कनसिन मे (Wisconsin) हुआ था। उनके माता पिता नारवे के निवासी थे जो अमरीका मे आकर बस गये थे। १८७३ ई० मे उन्होंने (Carleton College) मे उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रवेश किया। इस कालेज मे धर्म तथा वेदान्त (theology) के अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

इस कथन मे कोई सत्य नही था कि अर्थशास्त्र सुख-दुःख का कलन था। वे आस्ट्रियन अथवा आनन्द जीवी (hedonistic) सम्प्रदाय की विचारधारा के, जिसमें सन्तोष को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था, आलोचक थे। वे एडम स्मिथ के इस विचार के भी कडे आलोचक थे कि व्यक्तिगत तथा सामाजिक हितो मे एकरूपता होती है। यद्यपि उन्होंने उद्विकासकारी अर्थशास्त्र (evolutionary economics) की कल्पना की थी परन्तु एक सनकी व्यक्ति के समान उनको अपने इस विचार की व्यावहारिकता के प्रति सन्देह था। उन्होंने मानव नैसर्गिक प्रवृत्तियो (human instincts) तथा आर्थिक सस्थाओ का विश्लेषण किया था। यह विश्लेषण, जिसकी

वेबलन पर सबसे अधिक प्रभाव उनके शिक्षक तथा प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्री जॉन बेटस क्लार्क (John Bates (Clark) का पड़ा था। १८८० ई० मे वेबलन ने बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। तत्पश्चात् उन्होंने जान्स हाप्किन्स विश्वविद्यालय मे (Johns Hopkins University) मे प्रवेश किया परन्तु वजीफा प्राप्त न होने के कारण कुछ ही समय पश्चात् इस विश्वविद्यालय को छोड येल विश्वविद्यालय (Yale University) मे प्रवेश किया। यहाँ रहकर उन्होंने दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया तथा १८८४ ई० मे Ph D की उपाधि प्राप्त की। उनके अनुसन्धान ग्रन्थ (Thesis) का शीर्षक 'Ethical Grounds of a Doctrine of Retribution' था। येल विश्वविद्यालय मे रहकर वेबलन ने दर्शनशास्त्र (Philosophy), अध्यात्मविद्या (Metaphysics) तथा मनोविज्ञान का गहन अध्ययन किया। प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक कान्ट (Immaneul Kant), हर्बर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) तथा कुछ शिक्षको विशेषरूप से Reverend Noah Porter व William Graham Sumner के विचारो का वेबलन के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा था।

येल छोडने के पश्चात वेबलन को कोई काम न मिलने तथा स्वास्थ्य भी खराब रहने के कारण लगभग ७ वर्ष तक बेकार रहने के लिये विवश होना पड़ा। १८८८ ई० मे उन्होंने अपनी एक Carleton College की सहपाठिनी से विवाह किया। १८६० ई० तक बेकार रहने के पश्चात् १८६० ई० मे उन्होंने Cornell University मे Graduate विद्यार्थी के रूप मे प्रवेश किया सौभाग्यवश यहाँ प्रो० J L Laughlin के वेबलन की योग्यता से प्रभावित हो जाने के कारण वेबलन अधिछात्रवृत्ति (fellowship) प्राप्त करने मे सफल हो गये। १८६२ ई० मे जब प्रो० लाघलिन की शिकागो विश्वविद्यालय मे अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष के पद पर नियुक्ति हुई तो वेबलन को भी वे अपने साथ ही शिकागो ले गये। इस प्रकार वेबलन की नियुक्ति हो पाई।

वेबलन १८६२ ई० मे सस्थापित **Journal of Political Economy** पत्रिका के लगभग १० वर्ष तक सम्पादक रहे थे। इस तथा अन्य पत्रिकाओ मे अनेक विषयो पर उनके लेख प्रकाशित हुये थे। शिकागो मे वेबलन एक सफल शिक्षक सिद्ध न हो सके। उनके सनकीपने के कारण १६०४ ई० मे उनको पदच्युत कर दिया गया। १६०६ ई० मे वेबलन की

प्रमुख विश्लेषताए वेबलन की १९१४ ई० मे प्रकाशित पुस्तक **The Instinct of Workmanship** मे व्याख्यात है, नये अर्थशास्त्र—संस्थानिक अर्थशास्त्र—का आधार हैं। वेबलन ने मानव नैसर्गिक प्रवृत्तियों (human instincts) के उद्विकास का अध्ययन किया हैं। उनके विचारानुसार मनुष्य की वर्तमान संस्कृति उसकी आदतो का, जिन पर प्राचीन समय से अनेक शताब्दियो का क्रमिक प्रभाव पडा है, परिणाम है। वेबलन के विचारानुसार मनुष्य मे कुछ ऐसी नैसर्गिक प्रवृत्तियाँ होती है जो जन्म से ही उसके साथ होती है तथा जो विभिन्न परिस्थितियो के अन्तर्गत विकसित होकर उसकी स्थाई तथा साधारण आदतो मे सम्मिलित हो जाती है। यह डार्विन का उद्विकासकारी परिवर्तन (evolutionary change) का विचार हैं जिसका प्रयोग वेबलन ने आर्थिक समाज का विश्लेषण करने मे किया हैं। वेबलन का कहना हैं कि आर्थिक समाज तथा इसकी समस्याओं का अध्ययन करने के लिये समाज मे विशेष वर्गो की विचारो तथा रीतियो सम्बन्धी उन आदतों का अध्ययन करना जो उस समाज मे समय विशेष पर प्रचलित होती है, अत्यन्त आवश्यक है। वेबलन ने मनुष्य की विचारने की आदतो तथा प्रचलित रीतियों को 'संस्थाओं' से सकेत किया है। वेबलन के विचारानुसार इन संस्थाओ मे निरन्तर उद्विकासकारी परिवर्तन होते रहते हैं। वे इन उद्विकासकारी परिवर्तनों को मानव के समस्त अस्तित्व का एक महत्वपूर्ण अग

नियुक्ति स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय (Stanford Universsty) मे Associate Professorके पद पर हुई। परन्तु यहाँ भी वे असफल शिक्षक सिद्ध हुये तथा १९०९ई०मे उनको विश्वविद्यालय को छोडना पड़ा तत्पश्चात् उनकी नियुक्ति १९११ ई० मे प्रो० डेवनपोर्ट (H.J. Davenport) के द्वारा University of Missouri में हो गई। यहाँ वे १९१८ ई० तक नियुक्त रहे। तत्पश्चात् वे **The Dial** नामक पत्रिका के सम्पादक नियुक्त हो गये। यहा से वे कुछ ही मास पश्चात् छोड करNew School of Social Research, जो १९१९ ई० में स्थापित हुआ था, मे ६,००० डालर वार्षिक वेतन पर नियुक्त हो गये। यहाँ वे १९२२ ई० तक रहे। १९२२ ई० से लेकर १९२७ ई० तक वे New York मे रहे थे। तत्पश्चात् वे California चले आये जहाँ उनकी ३ अगस्त १९२९ ई० को मृत्यु हो गई। उनकी इच्छानुसार उनकी भस्म को भूमध्य सागर में प्रवाह कर दिया गया था। वेबलन के लेखन कार्यो में निम्नलिखित उल्लेखनीय है :

The Theory of the Leisure Class (1899), The Theory of Business Enterprise (1904); The Instinct of Workmanship and the State of the Industrial Arts (1914); Imperial Germany and Industrial Revolution (1925) ; An Enquiry in to the Nature of Peace and its Perpetuation (1927); The Vested Interests and the State of the Industrial Arts (1919); The Engineers and the Price System (1921), Absentee Ownership and Business Enterprise in Recent times.

विचारते थे। समाज की उद्विकासकारी धारणा अथवा परिभाषा की व्याख्या वेबलन का आर्थिक विचारों के इतिहास के क्षेत्र में विशेष रूप से एक महत्वपूर्ण योगदान था।

वेबलन ने नैसर्गिक प्रवृत्तियों का व्यापक अध्ययन किया था। उनके विचारानुसार समाज की आर्थिक सम्यता में मानव नैसर्गिक प्रवृत्तियों पर दो प्रमुख संस्थायें आधारित थीं। ये दो संस्थायें 'व्यापार' तथा 'उद्योग' थीं। समाज में अधिकाश आर्थिक क्रियायें इन्हीं दोनों संस्थाओं पर आधारित है तथा इन क्रियाओं के परिणामस्वरूप समाज में एक निश्चित प्रकार का वर्ग व्यवहार (group behaviour) विद्यमान होता है। समाज की संस्कृति का स्तर उसकी संस्थाओं द्वारा निर्धारित होता है। मूल्य प्रणाली, निजी सम्पत्ति, प्रतियोगिता, लाभ प्राप्ति का उद्देश्य, द्रव्य तथा साख, बैंक तथा व्यापार व उद्योगों को चलाने के अन्य साधन संस्थायें है। वेबलन का मुख्य लक्ष्य इन संस्थाओं के उद्विकास की प्रक्रिया का अध्ययन करना था।

इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वेबलन तथा मार्क्स में काफी समानता है क्योंकि वेबलन के समान मार्क्स ने भी आर्थिक संस्थाओं—सामन्तवाद, पूँजीवाद आदि के उद्विकास का अध्ययन किया था। वेबलन के समान मार्क्स भी परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के आलोचक थे। परन्तु वेबलन तथा मार्क्स में इस सम्बन्ध में समानता होते हुये दोनों विचारकों के दृष्टिकोण मौलिकरूप से भिन्न थे। मार्क्स ने इतिहास के अध्ययन के द्वारा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) के विचार की सत्यता को सिद्ध करने का भरसक प्रयास किया था। इसके विपरीत वेबलन पर डार्विन का प्रभाव था तथा डार्विन के समान वेबलन भी संस्थाओं के उद्विकास की प्रक्रिया को एक सामान्य प्रवैगिक—निरन्तर गतियुक्त रहने वाला—नियम समझते थे। वेबलन के विचारानुसार समाज का उद्विकास एक निरन्तर प्रक्रिया थी जिसका कोई अन्तिम बिन्दु नहीं था। सामाजिक आदतों में परिवर्तन होने के साथ साथ सामाजिक संस्थाओं में भी परिवर्तन होते रहते है। परिवर्तनों की यह प्रक्रिया अनन्त थी। वेबलन का समाज तथा संस्थाओं के निरन्तर उद्विकास का विचार मार्शल के महान निरन्तरता सिद्धान्त (Principle of Continuity) के समान है जो समय की सीमाओं में अबाध्य होने के कारण सदा गतिशील रहता है।

वेबलन अर्थशास्त्र के क्षेत्र में कार्लमार्क्स के पश्चात् तथा जान मेनार्ड कीन्स के पूर्व एक महान मौलिक लेखक थे।

मिचल[2] संस्थानिक अर्थशास्त्र के प्रमुख व्याख्याता थे। अन्यो के साथ वे भी वेब्लन के विद्यार्थी तथा उत्तराधिकारी थे। यह मिचल के लिये बडे सौभाग्य की बात थी कि वे शिकागो विश्वविद्यालय मे उस समय विद्यार्थी थे जब अर्थशास्त्र विभाग मे वेब्लन शिक्षक थे। अर्थशास्त्र के विद्यार्थी मिचल की प्रसिद्ध पुस्तक **'Business Cycles'** (१६१३ ई०) से भली प्रकार परिचित है। मिचल की **'Business Cycles'** नामक पुस्तक की प्रशंसा करते हुये प्रसिद्ध अमरीका अर्थशास्त्री ऐ० एफ० बर्न्स

---

2. वेस्ली क्लेयर मिचल का जन्म अमरीका के Illinois प्रान्त में Rushville नामक स्थान मे १८७४ ई० में हुआ था। शिकागो विश्वविद्यालय से उन्होने क्रमश. १८६६ ई० तथा १८६६ ई० में बी० ए० व पी० एच० डी० की उपाधियाँ प्राप्त की थी। एक वर्ष के अल्प समय के लिये उन्होने प्रसिद्ध जर्मन अर्थशास्त्री कार्ल मैगर के वियना विश्वविद्यालय मे व्याख्यान भी सुने थे।

मिचल ने १६१३ ई० मे कोलम्बिया विश्वविद्यालय मे शिक्षक के पद पर प्रवेश किया तथा इस विश्वविद्यालय मे वे १६४४ ई० तक (केवल तीन वर्ष को छोड़कर जब वे New School of Social Research मे नियुक्त हो गये थे) शिक्षण कार्य करते रहे थे। १६०० ई० मे वे United States Census Commission तथा प्रथम महायुद्ध मे War Industries Board के सदस्य भी रहे थे। अल्प समय के लिये वे **Chicago Tribune** नामक पत्रिका के लेखक सपादक भी रहे थे। १६२० ई० मे वे National Bureau of Economic Research के एक सगठनकर्ता थे तथा कुछ समय पश्चात् वे इस सस्था के सचालक भी रहे थे। १६२६ ई० से लेकर १६३३ ई० तक वे राष्ट्रपति हुवर (President Hoover) द्वारा नियुक्त Research Committee on Social Trends के भी अध्यक्ष रहे थे। १६३४-१६३५ ई० में National Resources Board के सदस्य तथा १६३७ ई० मे Secretary Morgenthau के विशेष परामर्शदाता थे।

मिचल को उनके जीवन काल मे अनेक विद्योचित सस्थाओ ने उच्च पदो पर नियुक्त कर सम्मानित किया था। वे American Association for the Advancement of Science के सभापति थे। National Institute of Social Sciences ने उनको अर्थशास्त्र विज्ञान तथा सार्वजनिक क्षेत्र मे उनके विशेष महत्वपूर्ण योगदानो के लिये स्वर्ण पदक प्रदान करके सम्मानित किया था। वे American Statistical Association तथा Econometric Association के Fellow निर्वाचित हुये थे तथा Royal Statistical Society के वे Honorary Fellow थे। American Economic Association; Econometric Society; Academy of Political Science तथा American Statistical Association इत्यादि संस्थाओ का उनको भिन्न-भिन्न समय पर सभापति निर्वाचित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। १६३० ई० में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने उनको Visiting Professor के उच्च पद पर आमन्त्रित करके सम्मानित किया था। १६४७

(A. F. Burns) ने लिखा है कि "मिचल की पुस्तक संसार के आर्थिक साहित्य में एक महान रचना है।......मार्शल की प्रसिद्ध पुस्तक **Principles** तथा कीन्स की प्रसिद्ध पुस्तक **General Theory** के मध्य पश्चिमी संसार की आर्थिक विचार-धारा पर अन्य किसी पुस्तक का इतना अधिक प्रभाव नहीं पड़ा था जितना कि मिचल की पुस्तक का पड़ा था।[3]

मिचल पर वेबलन के प्रभाव की छाप इस बात से स्पष्ट है कि मिचल ने समाज के आर्थिक रूप को महत्व दिया है। मिचल ने मौद्रिक अर्थव्यवस्था की व्याख्या की है। लगभग ६०० पृष्ठों की अपनी इन पुस्तक में मिचल ने व्यापार चक्र के सिद्धान्तों की ऐतिहासिक गणना करने के उद्देश्य से आश्चर्यजनक सामग्री प्रस्तुत की है। मिचल के विचारानुसार मौद्रिक अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाओं के प्रवाह में होने वाले उच्चावचन, व्यवसाय व उद्योग में प्राप्त होने वाले लाभों की मात्रा पर निर्भर होते हैं। परन्तु स्वयं लाभ क्रय व विक्रय मूल्यों के मध्य के अन्तर तथा उत्पादन अथवा बिक्री के आकार द्वारा निर्धारित होते हैं।

मिचल के विचारानुसार समाज में व्यापार चक्र—व्यापार के क्षेत्र में होने वाले उच्चावचन—उन कारणों के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं जो स्वयं समाज की समकालीन संस्कृति का अंग होते हैं। समाज की उद्विकासकारी संस्कृति में परिवर्तनों के द्वारा व्यापार चक्र को उत्पन्न करने वाले कारणों में भी परिवर्तन किया जा सकता था। समाज में आर्थिक क्रिया का प्रत्येक रूप कुछ उन शक्तियों को जन्म

ई० में American Economic Association ने इनको सुप्रसिद्ध Francis A. Walker पदक, जो पाँच वर्ष में केवल एक बार अमरीकी अर्थशास्त्री को अर्थशास्त्र विज्ञान के क्षेत्र में उच्चतम योगदान देने के हेतु प्रदान किया जाता है, प्रदान करके सम्मानित किया था। Paris, Columbia, Chicago, Princeton, California, Harvard, Pennsylvania इत्यादि विश्वविद्यालयों ने मिचल को सम्मानार्थ उपाधियाँ प्रदान करके स्वयं को सम्मानित किया था।

अनेक पत्रिकाओं में अनेक लेख लिखने के अतिरिक्त उनके लेखन कार्यों में निम्नलिखित पुस्तकों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

History of the Greenbacks (1903), Gold, Prices and Wages under the Greenback Standard (1908), Business Cycles (1913); Income in the United States, Vol. I (1921); Business Cycles and Unemployment (1933); Business Annals (1926); Measuring Business Cycles (1946); तथा Economic Research and the Development of Economic Science and Public Policy (1946).

3. A. F. Burns : *Wesley Mitchell and the National Bureau*, p. 23.

देता है जो स्वयं आर्थिक परिवर्तन को कभी समाप्त न होने वाली प्रक्रिया के दूसरे रूप को जन्म देती हैं। इस प्रकार मिचल ने व्यापार चक्र की व्याख्या अनन्त उद्विकासकारी प्रक्रिया के रूप मे की है। मिचल का यह विचार वेबलन, जो समाज को अनन्त उद्विकास के रूप मे देखते थे, के विचारो के समान है। मिचल की पुस्तक **Business Cycles** केवल आर्थिक उच्चावचनों—ups and downs—की ही व्याख्या नही है वरन् यह महान पुस्तक हमारे पेचीदा आर्थिक ढाचे की व्याख्या है। उनके विचारानुसार मानव जीवन में होने वाले परिवर्तन मुख्यत: सस्कृति के उद्विकास के परिणाम होते हैं तथा इस तथ्य को समझने के लिये आर्थिक संस्थाओं का अध्ययन करना अनिवार्य है।

जान रोजर्स कोमन्स (१८६२ ई०–१९४५ ई०)
(John Rogers Commons)

वेबलन तथा मिचल के अतिरिक्त कोमन्स की भी प्रथम श्रेणी के सस्थानिक अर्थशास्त्रियों मे गणना की जाती है। वेबलन के समान कोमन्स का जन्म भी गृह युद्ध (Civil War) के असाधारण काल मे हुआ था तथा उनके जीवन काल के समय के कुछ वर्ष तो अमेरिका के इतिहास मे अत्यधिक असाधारण वर्ष विचारे जाते है। कोमन्स[4] वेबलन के समकालीन थे तथा उन की मृत्यु वेबलन की मृत्यु के १६ वर्ष पश्चात हुई थी।

---

4. जान रोजर्स कोमन्स का जन्म १८६२ ई० में अमरीकी गृह युद्ध के असाधारण काल मे हुआ था। उनका अधिकाश विद्योचित जीवन विस्किनसन विश्वविद्यालय (University of Wisconsin) में व्यतीत हुआ था। उनकी रुचि व्यापक थी तथा उन्होंने मूल्य व वितरण, श्रम विधान, आप्रवासन (immigartion), श्रमसंघ, श्रम इतिहास, सामाजिक बीमा, एकाधिकार, आर्थिक विचार, निर्देशाक, आयात-निर्यात कर आदि आर्थिक विषयो पर लिखा था। कोमन्स का जीवन एक व्यस्त जीवन था तथा वे अमरीकी जीवन से निकट सम्पर्क रखते थे। औद्योगिक श्रमिको के अतिरिक्त वे उद्योगपतियो तथा राजनीतिज्ञो से भी निकट सम्पर्क रखते थे।

कोमन्स का अधिकाश लेखन कार्य श्रम समस्याओ के अध्ययन से सम्बन्धित है तथा वे श्रम अर्थशास्त्री (labour economist) के रूप मे प्रसिद्ध है। उनके लेखन कार्यो में निम्नलिखित विशेषरूप से उल्लेखनीय है।

1. **The Distribution of Wealth**, published in 1893
2. **Proportional Representation**, published in 1896
3 **Trade Unionism and Labour Problems**, published in 1905
4. **Races and Immigrants in America**, published in 1907
5. **A Documentary History of American Industrial Society,** published in 1910. It is a ten volume study which was prepared with the help of associates.

कोमन्स की **Institutional Economics** नामक पुस्तक १६३४ ई० मे प्रकाशित हुई थी। सस्थानिक अर्थशास्त्री के नाते कोमन्स की विचारधारा वेबलन से भिन्न है। वेबलन की विचारधारा समाजशास्त्रीय (sociological) थी। इसके विपरीत कोमन्स की विचारधारा का दृष्टिकोण वैधानिक (legal) था। कोमन्स जेवन्स तथा आस्ट्रियन सम्प्रदाय के सिद्धान्तो के आलोचक थे। कोमन्स की पुस्तक **Institutional Economics** को समझने के लिए पाठको को यह ध्यान मे रखना आवश्यक है कि कोमन्स का सम्पूर्ण जीवन आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक हितो के मध्य विद्यमान सघर्ष का अध्ययन करने मे व्यतीत हुआ था। कोमन्स की विचारधारा मे सामूहिक क्रिया (collective action) का व्यक्तिगत क्रियाओ का नियन्त्रण करने मे एक विशेष महत्व है। अपनी पुस्तक **Institutional Economics** के प्रथम अध्याय की आरम्भिक पंक्तियो मे कोमन्स ने सस्थानिक अर्थशास्त्र मे सामूहिक कार्यवाही के महत्व के सम्बन्ध मे इस प्रकार लिखा है· "My point of view is based on my participation in collective action in control of Individual action. The view may or may not fit other peoples ideas of institutional economics. कोमन्स ने अर्थशास्त्र के अध्ययन मे व्यक्तिगत सम्पत्ति, कानून, न्यायालयो इत्यादि सस्थाओ के अध्ययन पर विशेष बल दिया है।

सस्थानिक विचारधारा के अन्य समर्थक

वेवलन, मिचल, कोमन्स तथा अन्य सस्थानिक अर्थशास्त्रियो के अतिरिक्त कुछ अन्य लेखको के अनुसधान तथा लेखन कार्यो को भी सस्थानिक अर्थशास्त्र मे सम्मिलित किया जा सकता है। यद्यपि वेबलन को सस्थानिक अर्थशास्त्र का प्रवर्तक स्वीकार किया जा सकता है, परन्तु एक प्रकार से सस्थानिक अर्थशास्त्र के चिन्ह सिसमोन्डी, चार्ल्सफोरियर, मार्क्स, मेक्स वेबर आदि १६ वी शताब्दी के विचारकों के लेखन कार्यो मे विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त यह भी कहना पूर्णतया सत्य नही है कि सस्थानिक अर्थशास्त्र पूर्णतया अमरीकी है। मार्शल, हावसन, टाईनवी आदि

---

6 **Labour and Administration**, published in 1913 in co-authorship of J B. Andrews

7 **Industrial Goodwill**, published in 1919

8. **Industrial Government**, published in 1921

9. **Legal Foundtions of Capitalism** published in 1924.

10 **Institutional Economics** Published in 1934

11. **Myself** published in 1934 this book is an autobiography उपरोक्त पुस्तको के अतिरिक्त कोमन्स ने अनेक पत्रिकाओ के लिए अनेक आर्थिक विषयो पर भी लेख लिखे थे।

अंगरेज अर्थशास्त्रियो के लेखन कार्य अमरीकी अर्थशास्त्रियों के लेखन कार्यो से काफी मिलते जुलते है। W. H. Hamilton की १९२५ ई० मे प्रकाशित **The Case of Bituminous Coal'** नामक पुस्तक, J. M. Clark की १९२३ ई० मे प्रकाशित **The Economics of Overhead Costs'** तथा १९२६ ई० में प्रकाशित **Social Control of Business** नामक पुस्तक १९११ ई० मे प्रकाशित B. M. Anderson की पुस्तक **'Social Value'**; Carter Goodrich की १९२५ ई० मे प्रकाशित **'The Miners Freedom'** नामक पुस्तक तथा १९३३ ई० मे प्रकाशित A. A. Barle व Gardiner Mean की पुस्तक **'The Modern Corporation and Private Property'** सस्थानिक अर्थशास्त्र की उतनी ही उत्तम उदाहरण हैं जितनी उत्तम कि मिचल की पुस्तक **'Business Cycles'** तथा कोमन्स की पुस्तक **'Legal Foundation of Capitalism'** हैं।

सारांश

वर्तमान शताब्दी के 'बीसा तथा 'तीसा' के युग मे सस्थानिक अर्थशास्त्र पूर्ण विकसित अवस्था मे था। यह समय सस्थानिक अर्थशास्त्र के विकास के अनुकूल था। इसी समय मे अमरीकी अर्थशास्त्रियो ने सस्थानिक अर्थशास्त्र के पक्ष मे अनेक लेख लिख कर सस्थानिक अर्थशास्त्र का विकास किया था। १९२४ ई० मे प्रकाशित **'The Trend of Economics'** नामक पुस्तक, जो नवीन पीढी के अमरीकी अर्थशास्त्रियो के लेखो का सग्रह थी तथा जिसका सम्पादन प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्री R. G. Tugwell ने किया था, ने काफी प्रसिद्धि प्राप्त की थी। १९३० ई० के लगभग सस्थानिक अर्थशास्त्र अपनी प्रसिद्धि के शिखर पर था। परन्तु आगामी वर्ष सस्थापित अर्थशास्त्र के विकास के लिये अनुकूल सिद्ध नही हुये। यह अर्थशास्त्र शीघ्र ही आक्रमण का विषय बन गया। १९३१ ई० मे Paul T. Homan ने अपने "An Appraisal of Institutional Economics" नामक लेख मे सस्थानिक अर्थशास्त्र पर घातक आक्रमण किया था। इस लेख मे, जो American Economic Association के समक्ष १९३१ ई० के वार्षिक अधिवेशन मे पढा गया था, लेखक ने यह घोषित किया था कि सस्थानिक अर्थशास्त्र के नाम का कोई अलग अर्थशास्त्र नही था। तत्पश्चात् १९३३ ई० मे हारवर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एडवर्ड एच चेम्बरलिन (Edward H. Chamberlin) की पुस्तक **'The Economics of Monopolistic Competition'** तथा केम्ब्रिज विश्वविद्यालय की श्रीमती जॉन रोबिनसन (Joan Robinson) की प्रसिद्ध पुस्तक **'The Economics of Imperfect Competition'** के प्रकाशित होने से अर्थशास्त्रियो का ध्यान मूल्य विश्लेषण की ओर आकर्षित हो गया। १९३६ ई० मे स्वर्गीय लार्ड जॉन मेनार्ड कीन्स की विश्व प्रसिद्ध पुस्तक **General Theory** के प्रकाशित होने पर सस्थानिकवाद का रहा-सहा प्रभाव भी लुप्त हो गया।

विशेष अध्ययन सूची

1. J. F. Bell : A History of Economic Thought, Chapter, 23.
2. L. H. Haney : History of Economic Thought, Chapter, XXXVI.
3. P. C. Newman . The Development of Economic Thought, Chapter, XXXII and XXXIII.
4. R. Lekachman ; A Histoty of Economic Ideas, Chapter, 13.
5. Eric Roll A History of Economic Thought, Chapter, IX.
6. P T Homan : Contemporary Economic Thought.
7. Joseph Dorman : Thornstein Veblen and His Amerika.
8. Joseph Dorman The Economic Mind in American Civilisation

प्रश्न

1. Give a brief account of the theories of the institutional economists, especially those of Veblen and W. C Mitchell.
(आगरा १९५४, १९५७, १९६१)
2. Write an essay on Institutional Economics as developed by Veblen.
(राजस्थान, १९५७)
3. Dissuss briefly the theories of the Institutional Economists.
(राजस्थान, १९५८)

षष्टम खण्ड

भारत में आर्थिक विचारधारा

(Economic Thought In India)

अध्याय ३१

प्राचीन भारत मे आर्थिक विचारधारा

(Economic Thought in Ancient India)

प्राचीन भारत मे आर्थिक विचार मुख्यत हिन्दू तत्त्वज्ञानियो के प्रसिद्ध दार्शनिक लेखों तथा धार्मिक ग्रन्थो मे पाये जाते हैं। भारत में प्राचीन आर्थिक विचारधारा का मैसूर के प्रसिद्ध विद्वान डा० आर० शामाशास्त्री (Dr. R. Shamashastri) ने अपनी पुस्तक '**Kautilya's Arthshastra**' मे, डा० के० टी० शाह (Dr. K. T. Shah) ने अपनी '**Ancient Foundation of Indian Economic Thought**' नामक पुस्तक मे, तथा प्रो० रंगास्वामी आयगर (Prof. Rangaswamy Ayyangar) ने अपनी पुस्तक "**Aspects of Ancient Indian Economic Thought**" मे अध्ययन किया है। भारतीय साम्यवादी नेता ऐस० ए० डागे (S. A. Dange) ने भी अपनी पुस्तक '**India From Primitive Communism to Slavery**" मे प्राचीन भारतीय ग्रन्थो का मार्क्सवादी रूप मे अध्ययन किया है।

भारत मे प्राचीन आर्थिक विचारधारा के प्रमुख स्रोत हिन्दुओ के चार धार्मिक वेद ग्रन्थ—ऋगु वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद—तथा उन पर आधारित उपनिषद, पुराण, रामायण व महाभारत तथा मनु (Manu), यजनावालिक्या (Yajanwalkya), गौतम (Gautam), नारद (Narad), विदुर (Vidura) हरित (Harita) द्वारा लिखित स्मृतियाँ है। इन सब प्राचीन ग्रन्थो के अतिरिक्त प्राचीन आर्थिक विचारधारा सम्बन्धी सबसे अधिक प्रसिद्ध पुस्तक विष्णुगुप्त (कौटिल्य)[1] द्वारा

---

1. विष्णुगुप्त जिसका दूसरा नाम कौटिल्य भी है बडा ही विद्वान ब्राह्मण था। वह चाणक्य के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। वह चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रभावशाली प्रधानमन्त्री था। उसने नन्द वंश के राजा का नाश करके चन्द्रगुप्त मौर्य को राजसिंहासन पर बैठाया था। उसका स्वभाव बड़ा तेज था। कौटिल्य ने शासन विधि तथा राजा, मन्त्री व सरकारी अधिकारियो के कर्तव्यो सम्बन्धी अपने विचार अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अर्थशास्त्र' मे व्यक्त किये है।

चन्द्रगुप्त मौर्य के समय मे लिखित अर्थशास्त्र है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र ३२१-२९६ ईसा पूर्व के लगभग लिखा गया था।

वैदिक काल मे लिखित चार प्रसिद्ध वेदो, उपनिषदो तथा अन्य ग्रन्थो मे सभी सामाजिक समस्याओ—इनमें आर्थिक समस्याएँ भी सम्मिलित थीं—का अध्ययन धार्मिक तथा नैतिक रूप मे किया गया है। वेदो मे वर्णित वर्णाश्रम (Varnashram) के सिद्धान्त के अनुसार सारा समाज, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तथा शूद्रचार वर्गो मे विभाजित था। ब्राह्मणो का कार्य विद्या पढना तथा पढाना था, क्षत्री योद्धा होने के नाते देश की रक्षा करते थे। वैश्य लोग व्यापार तथा शूद्र निम्न श्रेणी के कार्य करते थे। इस प्रकार वर्णाश्रम सिद्धान्त श्रम विभाजन पर आधारित एक कार्यात्मक समाज का वर्णन था। महाकाव्य युग (Epic Age) मे भी वेदो पर आधारित विचार प्रचलित रहे। रामायण तथा महाभारत, विशेषरूप से भगवद्गीता मे, मानव कार्यो को अत्यधिक नैतिक व धार्मिक रूप दिया गया है। महाकाव्यो मे एक ऐसे समाज का वर्णन किया गया है जिसमे व्यक्तिगत सम्पत्ति, जाति, राज्य, राजा इत्यादि संस्थाएँ विद्यमान थीं।

प्राचीन युग मे आर्थिक विचारधारा की एकमात्र सर्वोत्तम पुस्तक कौटिल्य द्वारा चौथी शताब्दी ईसा पूर्व मे लिखित 'अर्थशास्त्र' है। अर्थशास्त्र सभी दृष्टिकोणो से एक परिपूर्ण पुस्तक है। कौटिल्य के अनुसार अर्थशास्त्र धर्म से भिन्न था, तथा राज्य का एकमात्र मुख्य उद्देश्य जनकल्याण था। 'अर्थशास्त्र' स्वयं कौटिल्य के शब्दो मे, विद्वानो द्वारा लिखित सभी प्राचीन पुस्तको का संग्रह है। 'अर्थशास्त्र' में महान पंडित कौटिल्य ने केवल प्राचीन विद्वानो के विचारो को ही नही दोहराया है बल्कि अपने व्यक्तिगत अनुभव तथा ज्ञान को भी व्यक्त किया है। अर्थशास्त्र १५ अध्यायो अथवा पुस्तको में विभाजित है तथा संस्कृत भाषा के ४३० पृष्ठो में है। पुस्तक में कौटिल्य ने अपने विचारो को केवल अर्थशास्त्रीय क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रखा है बल्कि सगठित समाज की दैनिक जीवन सम्बन्धी प्रत्येक समस्या का वर्णन पुस्तक मे कुशलता के साथ किया गया है। यद्यपि कौटिल्य के सभी उन विचारो का, जिनको भारत के महान पंडित ने अपनी पुस्तक मे व्यक्त किया है, अध्ययन करना यहाँ सम्भव नही है, फिर भी हम कौटिल्य के कुछ विचारो को निम्न शीर्षको के अन्तर्गत अध्ययन कर सकते है।

(१) भौतिक धन का स्वभाव तथा धन प्राप्ति का उद्देश्य (Nature and Purpose of Material Wealth)

(२) कृषि का महत्व (Importance of Agriculture)

(३) सार्वजनिक वित्त (Public Finance)

(४) कीमतो का नियमन (Regulation of Prices)

(५) सामाजिक सुरक्षा (Social Security)

(१) भौतिक धन का स्वभाव तथा धन प्राप्ति का उद्देश्य

कौटिल्य के मतानुसार धन का अर्थ काफी विस्तृत था तथा इसमें कई गुण विद्यमान थे। कौटिल्य के विचारानुसार निम्नलिखित सभी धन में सम्मिलित थे।

(१) द्रव्य अथवा पदार्थ।
(२) वित्त अथवा जो प्राप्त किया जाता है।
(३) सार्वजनिक अथवा व्यक्तिगत सम्पत्ति।
(४) हिरन्य अथवा स्वर्ण, रजत तथा चलित धन।
(५) अर्थ अथवा जो संचय का परिणाम हो।
(६) श्री, लक्ष्मी अथवा विभव अथवा समृद्धि।
(७) भोग अथवा जिसका भोग किया जा सके।
(८) व्यवहारमय अथवा जो विनिमय साध्य (negotiable), हस्तातरण (Transferable) योग्य होने के कारण झगडे का विषय हो सकती है।

संक्षेप मे भौतिक धन में भौतिकता अथवा वास्तविकता, (Reality) उपभोगिता, (consumability) हस्तातरणता (transforability) तथा पर्यादान (appropriation) की चार विशेषताओं का होना आवश्यक था। कौटिल्य ने धन में श्रम तथा उन उत्पादन को भी सम्मिलित किया है। महान पंडित ने न केवल धन के विचार को ही ठीक प्रकार से व्यक्त किया है बल्कि धन को प्राप्त करने की विधि तथा धन-प्राप्ति के उद्देश्य के सम्बन्ध मे भी अपने विचार व्यक्त किये है। जिस प्रकार विद्या को प्रति क्षण कण-कण के रूप मे प्राप्त किया जाता है ठीक इसी प्रकार धन को भी कण-कण करके प्रतिक्षण प्राप्त किया जाना चाहिये। प्रत्येक उस व्यक्ति को जो विद्या अथवा धन को प्राप्त करना चाहता है कण तथा क्षण के महत्व को नहीं भूलना चाहिये। यदि धन को अच्छी स्त्री, अच्छे पुत्र अथवा अच्छे मित्र का पालन-पोषण करने अथवा धर्मार्थ दान देने के उद्देश्य से प्राप्त किया जाता है तो इस धन की प्राप्ति सदा लाभदायक होती है।[2] इस प्रकार कौटिल्य के विचारानुसार वही धन उचित था जो उचित प्रकार से श्रम द्वारा प्राप्त किया गया था। इसके अतिरिक्त कौटिल्य के अनुसार धन तथा इसकी प्राप्ति जीवन का लक्ष्य नहीं थे। धन केवल जीवन के उद्देश्यो—पुरुषार्थो—की पूर्ति का साधन था। इस सम्बन्ध मे कौटिल्य के विचार एडम स्मिथ तथा संस्थापक सम्प्रदाय के अन्य अंग्रेजी अर्थशास्त्रियों की अपेक्षा, जो धन का स्वय एक लक्ष्य समझते थे, अधिक वर्तमान तथा सत्य थे। कौटिल्य के समय में अकाल (famines) अधिक साधारण घटना होने के

2. "Wealth is to be acquired grain by grain, as learning is to be acquired every moment. Anyone who is anxious to acquire wealth or learning should not neglect either a grain or a moment. Acquisition of wealth is always beneficial if it is acquired for the sake (for the maintenance) of a good wife, a son or a friend; or for giving away (charity)."

कारण कौटिल्य ने अकालो के कोप से बचने के लिये समाज मे धन के सचय के महत्व को भी स्पष्ट किया है।

(२) कृषि का महत्व

कृषि को कौटिल्य ने अपनी समस्त आर्थिक प्रणाली मे परम महत्व दिया है। कौटिल्य की विचारधारा मे कृषि का महत्व इतना अधिक है कि वरत अथवा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (National Economy) मे केवल कृषि, पशुपालन तथा व्यापार ही सम्मिलित थे। कौटिल्य की पुस्तक मे कृषि को प्रथम महत्व दिया गया है क्योकि यह समाज को खाद्य सामग्री, पशुधन, स्वर्ण, वन उत्पादन तथा सस्ता श्रम प्रदान करती है। इस प्रकार अर्थशास्त्र विज्ञान के क्षेत्र मे कृषि तथा पशुपालन को अत्यधिक महत्व दिया गया है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि कौटिल्य की आर्थिक विचारधारा प्रकृतिवादियो की विचारधारा से बहुत मिलती जुलती है।

कौटिल्य की विचारधारा मे व्यवसायो का वर्णन करते समय भी प्रथम स्थान कृषि को ही प्राप्त है। व्यापार तथा नौकरी क्रमश कृषि के पश्चात ही आते हैं। यहाँ भी कौटिल्य के विचार प्रकृतिवादियो के विचारो के समान है।

कौटिल्य की पुस्तक मे कृषि के परम महत्व पर कृषक की जाति का कोई प्रभाव नही पडता है। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय कृषि व्यवसाय को अपना सकते थे। वैश्य तथा शूद्र भी कुछ अश तक कृषि व्यवसाय मे कार्य कर सकते थे। यद्यपि ब्राह्मण कृषि व्यवसाय को अपना सकता था परन्तु उसको हल (plough) नहीं छूना चाहिये, ऐसा महान पंडित कौटिल्य का विचार था। अपनी पुस्तक के प्रथम अध्याय मे वरत (Economics) तथा दण्ड नीति के सम्बन्ध मे विचार व्यक्त करते हुये कौटिल्य ने लिखा है कि वरत अथवा अर्थशास्त्र मे कृषि, पशुपालन तथा व्यापार सम्मिलित है। इनके द्वारा अनाज, पशु, स्वर्ण, वन उत्पत्ति तथा श्रम प्राप्त होते है। इन्ही की सहायता से राजा अपने शत्रुओ को पराजित करता तथा उनको अपना मित्र बनाता। है इससे अधिक स्पष्ट शब्दो मे कृषि के महान महत्व को व्यक्त करना कठिन है।

(३) सार्वजनिक वित्त

कौटिल्य की विचारधारा मे सार्वजनिक वित्त के नियमन का भारी महत्व था तथा वे इसे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मेहराव (arch) का एक महत्वपूर्ण स्तम्भ विचारते थे। 'अर्थशास्त्र' की दूसरी पुस्तक के आठवे अध्याय मे लोक वित्त के महत्व को व्यक्त करते हुये कौटिल्य ने लिखा है कि सभी कार्य तथा शासन वित्त पर निर्भर होते है तथा इस कारण कोषागार अथवा खजाने पर सबसे अधिक ध्यान दिया जाना चाहिये। प्राचीन समय मे भारत मे राज्य वन, कृषि, खानें, मत्स्यपालन (fishery), व्यापार तथा उद्योग इत्यादि उत्पादक कार्यो को भी सम्पन्न करती थी। कौटिल्य राज्य द्वारा इस प्रकार के उत्पादक कार्यों के किये जाने

के पक्ष मे थे। इस दृष्टि से हम यह कह सकते है कि कौटिल्य के विचार वर्तमान समाजवादी विचारधारा के बहुत समान थे।

इन व्यवसायो के द्वारा लाभ के रूप मे प्राप्त आय के अतिरिक्त राज्य को अनेक प्रकार के करो के द्वारा भी भारी मात्रा मे आय प्राप्त होती थी। यह आय भिन्न सरकारी विभागो को चलाने मे उचित प्रकार से व्यय की जाती थी। इसके अतिरिक्त कोषागार को ठीक अवस्था मे रखने के लिये बचत को भी आवश्यक समझा जाता था। कौटिल्य के समय मे लोक वित्त तथा इससे सम्बन्धित सभी समस्याएँ बहुत महत्वपूर्ण थी।

प्राचीन समय मे लोक वित्त का मुख्य उद्देश्य जनता को जीवन के लक्ष्य (धर्म) को सुगमता तथा शीघ्रता से प्राप्त करने मे सहायता प्रदान करना था। लोक वित्त के इस आधार सूत्र उद्देश्य को ध्यान में रखते हुये प्राचीन लेखक बेशी के बजटो (Surplus Budgets) को महत्वपूर्ण विचारते थे। बेशी के बजट के महत्व को समझाते हुये शुक्र (Shukra) ने लिखा है कि राजा को अपने व्यय की, अपनी आय के अनुसार, व्यवस्था करनी चाहिये क्योंकि यदि राजा का व्यय सदा उसकी आय से अधिक रहेगा तो उसे पूरा करने के लिये कुबेर का खजाना भी समाप्त हो जावेगा। संक्षेप मे प्राचीन लेखक घाटे वाले बजटो (deficit budgets) के पक्ष मे नही थे। यही कारण है कि कौटिल्य ने आवश्यकता पड़ने पर बजट के घाटे को पूरा करने के लिये बलात ऋणो को प्राप्त करने तथा अन्य असाधारण सुझाव दिये है।

लोक वित्त के क्षेत्र में कौटिल्य के विचार मुख्यत केन्द्रीय सरकार की वैत्तिक आवश्यकताओ तक ही सीमित है। चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रभावशाली प्रधान मन्त्री होने के नाते कौटिल्य की रुचि केवल केन्द्रीय वित्त तक ही सीमित थी। यही कारण है कि उस की पुस्तक में स्थानीय सस्थाओ (Local Bodies) की कर तथा व्यय सम्बन्धी बातो के सम्बन्ध मे विशेष नहीं लिखा गया है। राज्य के व्यय मे निम्न मदो पर किया गया व्यय सम्मिलित था।

(१) राष्ट्रीय प्रतिरक्षा सम्बन्धी व्यय।
(२) जानपद प्रशासन सम्बन्धी व्यय।
(३) मन्त्रियो के वेतनो तथा सभी सरकारी विभागों पर किया गया व्यय।
(४) सरकारी भाण्डारों तथा अन्य वस्तुओ पर किया गया व्यय।
(५) राष्ट्रीय भाण्डार गृहो तथा कोठारो (Granaries) पर किया गया व्यय।
(६) फौज के लिये हथियारो तथा अन्य सामान सम्बन्धी व्यय।
(७) रत्न, आभूषणो तथा मूल्यवान हीरो पर किया गया व्यय।

उपरोक्त मदो पर व्यय करने के पश्चात जो आय शेष रह जाती थी वह कोषागार तथा युद्धपेटी (War Chest) को प्राप्त होती थी। मौर्य राज्य मे कर

प्रणाली तथा कर वसूली करने की विधि बहुत ही सगठित रूप में थी। कौटिल्य ने मालगुजारी (land revenue), जो उस समय राज्य की कर-आय का प्रमुख साधन था, कर को लगाने तथा वसूल करने के विषय मे नियमों का वर्णन किया है। वैयक्तिक भूमि (Private lands) पर मालगुजारी की दर कुल उपज का $\frac{1}{12}$ भाग से लेकर आवश्यकता के समय मे $\frac{1}{3}$ भाग तक हो सकती थी। सरकारी भूमि के अतिरिक्त, जिस के द्वारा लगान अथवा लाभ के रूप मे प्राप्त कुल आय राज्य को प्राप्त होती थी, सारी निजी भूमि की ध्यानपूर्वक माप की जाती थी तथा इस को नकशो मे दिखाया जाता था। इसके अतिरिक्त राष्ट्र की कुल भूमि का पूरा हिसाब रखा जाता था।

Private

कृषि भूमि पर मालगुजारी के अतिरिक्त राज्य को भवन कर (इस मे दुकान कर भी सम्मिलित था) के द्वारा भी कुछ आय प्राप्त होती थी। इन करों के अतिरिक्त सडक कर (road toll); मोहल्ला कर (street dues) फल तथा वृक्ष कर (fruit and trees tax) इत्यादि से भी आय प्राप्त होती थी। इनके अतिरिक्त कर वस्तु करों के रूप में भी वसूल किये जाते थे। उदाहरणार्थ गायो पर से दूध के रूप मे कर लिया जाता था। इस प्रकार सरकार भूमि, पशुओं, फलो तथा सब्जी तथा मकानों इत्यादि पर कर लगा कर आय प्राप्त करती थी। इस प्रकार प्राप्त कर-आगम राज्य की कुल आय का लगभग ५० प्रतिशत थी। इसके अतिरिक्त सरकारी खानो, खेतों वनों तथा उद्योगो से प्राप्त आय भी राज्य की कुल आय का एक महत्वपूर्ण (लगभग ५० प्रतिशत) अग थी। कौटिल्य, राज्य को सरकारी व्यापारी व्यवसायो द्वारा लाभ के रूप मे प्राप्त होनी वाली आय को, कर-आय की अपेक्षा अधिक निश्चित तथा अच्छी समझते थे। इसके अतिरिक्त कौटिल्य के विचार मे सरकारी व्यापारी व्यवसाय राज्य के लिये आय का साधन होने के अतिरिक्त समाज मे लोगो को अधिक रोजगार प्रदान करके राष्ट्रीय आय मे वृद्धि करने के भी अच्छे साधन थे। कौटिल्य के इन सब विचारों का अध्ययन करने के पश्चात हम यह कल्पना किये बिना नही रह सकते कि कौटिल्य की लेखनी द्वारा व्यक्त किये गये ये विचार कीन्स के समान किसी वर्तमान अर्थशास्त्री के हैं। वास्तविकता तो यह है कि इस क्षेत्र मे कौटिल्य की विचारधारा स्वभाव में एकदम वर्तमान है भले ही यह अब से २,३०० वर्ष पूर्व व्यक्त क्यो न की गई हो। इसके अतिरिक्त यह भी भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि कौटिल्य की विचारधारा एडम स्मिथ की विचारधारा (जिस मे राज्य को व्यापार तथा उद्योग के क्षेत्र मे क्रियाये करने का विरोध किया गया था) की अपेक्षा अधिक सन्तुलित तथा उत्तम है।

कौटिल्य के समय मे अच्छी बजट प्रणाली प्रचलित थी। कौटिल्य ने अपनी पुस्तक मे बजट बनाने, इसे प्रस्तुत करने तथा इसकी जाच करने के सम्बन्ध मे काफी लिखा है। यदि कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' पर विश्वास किया जाये तो यह भली प्रकार

ज्ञात हो जाता है कि मौर्य शासन काल में वित्तमंत्री अपने महासग्रहकर्त्ता (Collector-general) की सहायता से प्रत्येक वर्ष के आरम्भ मे वार्षिक आय तथा व्यय सम्बन्धी आय-व्ययक आगणन (Budget Estimates) तैयार करता था। इस से यह सिद्ध होता है कि महान पडित कौटिल्य के समय मे बजट बनाने की वर्तमान प्रणाली भली प्रकार चलनशील थी तथा कौटिल्य को लोक वित्त सम्बन्धी जटिल समस्याओं तथा उनको सुलझाने का पूर्ण ज्ञान प्राप्त था। कौटिल्य लोक वित्त के स्वभाव तथा क्षेत्र को भली प्रकार समझते थे। वास्तविकता तो यह है कि उनका लोक वित्त सम्बन्धी ज्ञान इतना विस्तृत तथा अध्ययन इतना गहन था कि यहाँ कुछ पृष्ठो मे उसका अवलोकन करना असम्भव है। चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने राज्य में महान पंडित कौटिल्य के लगभग सभी विचारो को कार्यरूप प्रदान करने का भारी प्रयत्न किया था। चन्द्रगुप्त के शासन काल मे प्रत्यक्ष व परोक्ष कर आगम तथा अकर आगम—व्यवसायिक क्रियाओं द्वारा प्राप्त आगम—सरकारी आय के महत्वपूर्ण अग थे। सरकारी व्यय मे मितव्ययिता के सिद्धान्त तथा करदाताओ से कर वसूल करने मे सुविधा के सिद्धान्त को सदा ध्यान मे रखा जाता था। लेखाङ्कन प्रणाली भी संगठित तथा विकसित रूप मे थी।

(४) कीमतों का नियमन

चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्य मे आवश्यक वस्तुओ के मूल्यो के नियमन का कार्य वाणिज्य अधीक्षक के आधीन था। मूल्य नियमन का उद्देश्य उपभोक्ताओं को चालाक तथा बेईमान व्यापारियो से सरक्षण प्रदान करना था। अनाज तथा जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुएं केवल राज्य द्वारा अधिकृत व्यापारियो द्वारा ही वेची जाती थी। वाणिज्य अधीक्षक स्थानीय वस्तुओं की निर्धारित कीमत पर ५ प्रतिशत तथा विदेशी वस्तुओ की निर्धारित कीमत पर १० प्रतिशत का लाभ व्यापारियो के लिये निर्धारित करता था। जो व्यापारी वस्तुओ को वाणिज्य अधीक्षक द्वारा निर्धारित मूल्य तथा लाभ से अधिक मूल्य पर बेचते थे उन पर जुरमाना किया जाता था। जुरमाने की राशि वस्तु के मूल्य में अधिक वृद्धि करने के अनुसार बढती थी।

(५) सामाजिक सुरक्षा

यद्यपि कौटिल्य के समय मे सामाजिक सुरक्षा (social security) वर्तमान रूप मे विद्यमान नही थी परन्तु कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे जन कल्याण पर भी विचार व्यक्त किये है। कौटिल्य के विचारानुसार राज्य का कर्तव्य है कि गरीबो के लिये समाज मे धर्मार्थ सस्थाएं (charitable institutions) तथा दरिद्रालय (poor-houses) स्थापित करे। राज्य का यह भी एक अनिवार्य कार्य है कि बेकारो को काम प्रदान करे। इन सब के अतिरिक्त समाज मे वृद्ध तथा दुर्बल व्यक्तियों के लिये आश्रय गृह खोलना भी राज्य का अनिवार्य कार्य है। इससे यह भली प्रकार ज्ञात होता है कि कौटिल्य सामाजिक सुरक्षा के महत्व को भली प्रकार

समझते थे। उपरोक्त संक्षिप्त वर्णन से यह भली प्रकार ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत की आर्थिक विचारधारा मे वर्तमान आर्थिक नीतियो के काफी मात्रा मे चिन्ह विद्यमान है तथा युग की दृष्टि से प्राचीन होते हुये भी यह विचारधारा वर्तमान विचारधारा के निकट है।

मध्यकाल, जो १० वी शताब्दी से आरम्भ होकर १५ वी शताब्दी तक कहा जाता है, मे भारत मे विशेष प्रकार से आर्थिक विचारधारा का कोई महत्वपूर्ण विकास नहीं हुआ। इस काल के सत कवियो—तुलसी, नानक, कबीर, मीरा, सूरदास, जायसी—के विचार तथा लेख साधारणतया धार्मिक क्षेत्र मे ही सीमित रहे। इन सतो ने जाति प्रथा का विरोध किया तथा मानव बन्धुता का प्रचार किया तथा जन्म व धन के आधार पर सामाजिक वर्गो के बीच विद्यमान अन्तर का विरोध किया।

मुसलमान काल मे लिखित आर्थिक महत्व की केवल पुस्तक अकबर के शासन काल मे अब्बुलफजल द्वारा लिखित आईने-अकबरी (Ain e-Akbari) है। बिनोय सरकार ने अब्बुलफजल को मुसलमान चाणक्य कहा है। अब्बुलफजल ने मालगुजारी प्रणाली, तकावी (taccavi), कृषको को मुफ्त बीज देने तथा अन्य कृषि समस्याओ पर इतनी कुशलता के साथ अपने विचार व्यक्त किये है कि यह सिद्ध होता है कि उसको भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था का पूर्ण ज्ञान था। इसके अतिरिक्त अब्बुलफजल ने कीमतो के नियमन व सार्वजनिक निर्माण कार्यो के महत्व पर भी विचार व्यक्त किये है।

विशेष अध्ययन सूची

1. Rangaswamy Ayyangar : Aspects of Ancient Indian Economic Thought
2. R. Shamasastry : Kantilya's Arthasastra
3. K T Shah : Ancient Foundations of Indian Economie Thought.
4. K P. Jayaswal : Hindu Polity.

प्रश्न

1. Discuss the views of Kautilya under the following heads.
   (a) Nature and Purpose of material wealth
   (b) Importance of agriculture.
   (c) Public finance.

   (आगरा, १९५९)
2. Give in brief Kautilya's contribution to 'Arthashastra.'

   (राजस्थान, १९५९)
3. Give the main featnres of the ancieut Indian economic thought

   (राजस्थान, १९५७)
4. Is it correct to hold that Kautilya has dealt largely with measures of economic control and social security ? What is their importanee for planned economy today ?

   (राजस्थान, १९५२)

अध्याय ३२

भारतीय अर्थशास्त्र के संस्थापक

(Founders of Indian Economics)

वर्तमान भारतीय अर्थशास्त्र का प्रारम्भ मुख्यत: १६ वी शताब्दि के मध्य मे हुआ था। यह भारत का बड़ा सौभाग्य था कि उस समय देश मे राजा राममोहन राय, दादा भाई नौरोजी, महादेव गोविन्द रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले तथा रोमेश चन्द्र दत्त के समान महान व्यक्तियो का भारत के राष्ट्रीय व आर्थिक हितो की रक्षा करने के लिये जन्म हुआ था। ये महान व्यक्ति वर्तमान भारतीय आर्थिक विचारधारा के निर्माता थे। इन के पश्चात् इन के कार्य को गाधी जी तथा उन के शिष्यो ने पूरा किया। आगे भारतीय अर्थशास्त्र के इन निर्माताओ के जीवन तथा आर्थिक विचारो का सविस्तार अध्ययन किया गया है। गाधी जी के आर्थिक विचारो का सविस्तार अध्ययन अलग एक पूरे अध्याय मे किया गया है।

१. राजा राममोहन राय (१७७४ ई०–१८४२ ई०)
(Raja Ram Mohan Roy)

जीवन चित्र

राजा राममोहन राय का जन्म १७७४ ई० मे बगाल के मुर्शिदाबाद जिले मे एक छोटे से गाव मे ब्राह्मण कुल मे हुआ था। उन के बाबा कृष्ण चन्द बनर्जी एक योग्य व्यक्ति थे। योग्य होने के कारण तथा स्थानीय सरकार की सेवा करने के उपलक्ष मे उनको 'राय' की पदवी का सम्मान प्राप्त हुआ था। बाबा के समान उनके पिता व्रज विनोद राय भी योग्य व्यक्ति थे तथा नवाब सिराद्दौला की सरकार मे उच्च पद पर नियुक्त थे। राजा राममोहन राय का जन्म-वर्ष विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योकि इसी वर्ष देश मे सर्वोच्च परिषद (Supreme Council) तथा सर्वोच्च न्यायालय (Supereme Court) स्थापित किये गये थे। उन के पिता जमीदार थे जिनको अपने तथा समीप के अन्य गावो मे सम्मान प्राप्त था। उन की माता पवित्र विचार तथा आदर्श चरित्र की स्त्री थी।

अपने गाव की छोटी सी पाठशाला मे उन्होंने बगला की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। उस समय न्यायालयो मे फारसी तथा अरबी प्रचलित होने के कारण

राममोहन राय को गांव के मौलवी की देखरेख मे ये दोनो भाषाये भी सीखनी पडी। ६ वर्ष की आयु मे उन को पटना भेजा गया जो बंगला में उस समय अरबी शिक्षा का मुख्य केन्द्र था। यहाँ पर तीन वर्ष तक उन्होने अरबी व फारसी का अध्ययन किया तथा हाफिज (Hafiz) व सादी (Sadi) के समान प्रसिद्ध कवियो के ग्रन्थो को ध्यान पूर्वक पढा। इस के पश्चात सस्कृत तथा धर्मशास्त्र की बनारस मे रहकर शिक्षा प्राप्त की। उन्होने वेदान्त व उपनिषदो का भी ज्ञान प्राप्त किया तथा इन का अंग्रेजी व बगला मे अनुवाद किया।

आरम्भ मे ही वे अंग्रेजी राज्य से घृणा करते थे। परन्तु विवश होकर उन को कुछ समय के लिये सरकारी नौकरी करनी पडी जहा उन को अपने श्रम तथा ईमानदारी के कारण दीवान का उच्च पद प्राप्त हो गया। वे समाज सुधारक थे। उन्होने ब्रह्म समाज की स्थापना की तथा देश मे प्रचलित सती-प्रथा को समाप्त करने के लिये सफलतापूर्वक लडे। वे स्त्रियो के अधिकारो के लिये लडे तथा देश में प्रचलित एक से अधिक स्त्री से विवाह करने की प्रथा (Polygamy) का विरोध किया। देश की कानून पद्धति मे सुधार करने के लिये भी उन्होने भारी प्रयास किया था। उन्होने जाति प्रथा का भी विरोध किया तथा लेखो तथा भाषणो के माध्यम के द्वारा लोकमत को विधवाओ के पुन विवाह के पक्ष मे किया था। राममोहन राय ने देश में शिक्षा प्रसार कार्य में भी काफी रुचि के साथ कार्य किया था। बनारस में सस्कृत कालेज व कलकत्ते में अनेक स्कूल राममोहन राय के आभारी है।

राजनैतिक व आर्थिक सुधार

राजनैतिक सुधारों के क्षेत्र में राममोहन राय ने देश मे प्रेस की स्वतन्त्रता के लिये बहुत कार्य किया। उन के कठोर परिश्रम के कारण लार्ड मोरा (Lord Moira) के काल में अखबारो को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। आर्थिक क्षेत्र मे उन्होने मुख्य रूप से नमक के उत्पादन सम्बन्धी एकाधिकार तथा नमक कर का कडा विरोध किया तथा दोनो को समाप्त करने का अनुरोध किया। वे सभी प्रकार के आर्थिक एकाधिकारो को समाज के हितो मे बुरा समझते थे। उन के विचार में नमक के उत्पादन पर केवल East India Company का एकाधिकार होना उपभोक्ताओ के हितों के लिये हानिकारक था। उन्हो ने कहा कि कम्पनी द्वारा उत्पादित नमक में इतनी अधिक मिलावट होती है कि उपभोक्ताओ तक पहुँचने के समय तक यह मिट्टी से केवल थोडा सा ही भिन्न रहता है। यदि नमक का उत्पादन स्वतन्त्र रहेगा तो उत्पादको के बीच स्पर्धा होने के कारण इस मे मिलावट नही हो सकेगी तथा उपभोक्ताओ के हितो की रक्षा हो सकेगी। इस के अतिरिक्त एकाधिकारी लाभ समाप्त होने पर मूल्य भी कम होगा जिससे देश के निर्धन वासियो की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा। उन का नमक कर को समाप्त करने का विचार भी सामाजिक न्याय के सिद्धान्त पर आधारित था।

२. दादाभाई नौरोजी (१८२५ ई०-१९१७ ई०
(Dadabhai Naoroji)

जीवन चित्र

दादा भाई नौरोजी जिन को देश के सभी नागरिक भारतीय राष्ट्रीयता (Indian Nationalism) का जनक तथा भारत में स्वशासन (Self Government) प्रणाली का समर्थक स्वीकार करते है, का जन्म ४ सितम्बर, १९२५ मे बम्बई के एक गरीब पारसी परिवार मे हुआ था। उन के पिता नौरोजी पालनजी दार्दी (Naoroji Palanji Dordi) एक गरीब पारसी पंडित थे। उन के पूर्वज नवसारी (Navsari) मे रहते थे। बचपन से ही वे बहुत बुद्धिमान थे। पिता का स्वर्गवास हो जाने के कारण उन की शिक्षा तथा देख रेख का कार्य उन की माता को ही करना पडा था। उन की प्रारम्भिक शिक्षा Native Education Society द्वारा बम्बई में स्थापित एक स्कूल में हुई थी जहा पर शिक्षा नि.शुल्क प्रदान की जाती थी। इसी समय से दादा भाई नि.शुल्क शिक्षा पद्धति के भारी समर्थक बन गये थे क्योकि उन की गरीब माता शुल्क देकर शिक्षा प्राप्त करने के लिये अपने पुत्र को कदापि स्कूल नही भेज सकती थी।

पारसी जाति मे छोटी आयु मे शादी की प्रथा प्रचलित होने के कारण दादा भाई नौरोजी का विवाह ११ वर्ष की कम आयु मे ही सोराबजी शरोफ (Sorabji Shroff) की ७ वर्षीय बेटी गुलबाई के साथ सम्पन्न हुआ था। अपनी पत्नी के लिये वे एक कुशल तथा विश्वसनीय पति सिद्ध हुये थे। पत्नी के अशिक्षित होने के कारण यद्यपि उन को बहुत से अवसरो पर दुःख का अनुभव होता था, परन्तु इस को वे भाग्य से सम्बन्धित करके सन्तोष प्राप्त करते थे। अपनी माता के दूसरी शादी करने के प्रस्ताव को उन्होंने निस्संकोच अस्वीकार कर दिया था। इस शादी से उनको दो पुत्री व एक पुत्र प्राप्त हुये। पुत्र की मृत्यु उन के जीवन काल मे हो जाने से उन को बडा भारी शोक हुआ था।

नौरोजी की उच्चतर शिक्षा अलफिन्सटन कालेज (Elphinstone College) बम्बई मे हुई थी। पढ़ने लिखने मे अत्यधिक चतुर होने के कारण नौरोजी अपनी कक्षा के उन प्रथम बारह विद्यार्थियो मे से थे जिन को कालेज मे उच्चतर शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से प्रोफेसर बाल गगाधर शास्त्री ने चुना था। कालेज काल मे नौरोजी अपने प्रोफेसरो तथा सहपाठियो मे अत्यधिक लोकप्रिय थे। अपने विद्योपार्जन जीवन क्रम (academic career) मे उनको अनेको सम्मान (Honours) प्राप्त हुये थे। प्रोफेसर ओर्लेबर (Professor Orlebar) उनको 'भारत की आशा' (Promise of India) कहा करते थे। निःसन्देह प्रोफेसर की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। नौरोजी अनेक क्षेत्रो में प्रथम भारतीय सिद्ध हुये। वे गणित-शास्त्र के प्रथम भारतीय प्रोफेसर थे। भारतवासियों का सामाजिक व राजनैतिक सुधार करने

; उद्देश्य से उन्होने सर्वप्रथम अनेक सस्थाओ का निर्माण किया था। वे प्रथम भारतीय थे जो इंगलैंड में लोकसभा के सदस्य चुने गये थे। वे राजकीय वित्त आयोग (Royal Commisson) के भी प्रथम भारतीय सदस्य थे। वे बडौदा राज्य के दीवान व बम्बई नगर पालिका के सदस्य भी रहे थे। इन सब बातो के अतिरिक्त वे पहले भारतीय थे जिन्होने भारतीयो के लिये स्वशासन की माँग की थी। गाधी जी नौरोजी के सच्चे शिष्य थे तथा उन्होने नौरोजी के विचारो को अपने कार्य क्षेत्र में अपनाया था। इगलैंड मे प्रकाशित हुई अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **Poverty and Un-British Rule in India** में नौरोजी ने अगरेजी राज्य की कठोर आलोचना की थी। १६१५ ई० में दादा भाई श्रीमती एनी बिसेंट द्वारा स्थापित भारतीय Home Rule League के सभापति नियुक्त हुये थे। उनके इस पद को स्वीकार करने पर कुछ काग्रेसी सज्जनों को दुख हुआ क्योंकि वे लीग की स्थापना के पक्ष मे न थे। १६१६ ई० मे बम्बई विश्वविद्यालय ने उन को Doctor of Laws की सम्मानित उपाधि (Honorary Degree) प्रदान करके स्वयं अपने को सम्मानित किया था। भारत में संवैधानिक सुधारो के इतिहास के क्षेत्र मे नौरोजी का एक महत्वपूर्ण स्थान है। २० अगस्त १६१७ ई० को अचानक बीमार हो जाने से उनकी मृत्यु हो गई।

सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक सुधार सम्बन्धी विचार

नौरोजी ने स्त्रियों के सामाजिक सुधार कार्य मे काफी महत्वपूर्ण योग दिया। उन्होने स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया। १ अगस्त १८५१ ई० मे वे रहनुमाये मजदयासन्न सभा के, जिसका उद्देश्य पारसी जाति मे पारसी धर्म का प्रचार करना था, मन्त्री बन गये। इसके अतिरिक्त नौरोजी **Students Literary and Scientific Society** तथा **Gyan Prasarak Mandali** (ज्ञान प्रसारक मण्डली) जिसका उद्देश्य स्त्री शिक्षा का विकास था, के भी प्रमुख्य सदस्य थे। इन दोनो सस्थाओ ने सफलतापूर्वक कार्य किया।

नौरोजी का कार्य शिक्षा तथा धर्म तक सीमित न रह कर राजनीति के क्षेत्र मे देश के हित मे सफलता के साथ सदा विद्यमान रहा। यद्यपि १८३३ ई० के अधिनियम के अनुसार भारतीयों को सरकारी नौकरियो को प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था परन्तु वास्तव मे भारतीय सरकारी नौकरियो से वंचित रखे जाते थे। नौरोजी ने इसका बड़ा विरोध किया। २६ अगस्त, १८५२ ई० को देश मे राजनैतिक सुधार करने के उद्देश्य से Bombay Association नामक एक राजनैतिक सघ की स्थापना की गई। सघ की पहली सभा मे नौरोजी ने राजनैतिक सुधारो पर अपने विचार निःसंकोच स्पष्ट किये। १६०६ ई० मे नौरोजी ने काग्रेस के वार्षिक अधिवेशन मे अपने भाषण में अंग्रेजी सरकार तथा भारत की स्वतन्त्रता पर अपने विचारों को व्यक्त किया। वे लडाई मे विश्वास न करके समझौते में आशा रखते थे। नौरोजी समाजवादी विचार रखते थे। उन्होने International Socialist Congress में भी

\

भारतीयो का प्रतिनिधित्व किया था। इगलैंड मे रहते हुये वहाँ पर भारत के हितो की रक्षा करना वे अपना महान गौरव समझते थे। उन्होने भारत मे अफीम (opium) तथा शराब के व्यापार का कड़ा विरोध किया। उन्होंने अंग्रेजी सरकार की निन्दा की तथा ससद (House of Commons) के सदस्य होने के नाते सदन मे अपने विचार स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हुये अंग्रेजी सरकार की, भारतीयो के हितों को सुरक्षित न रखने का आरोप लगा कर, कड़ी आलोचना की। उन्होने यह स्पष्ट रूप से कहा कि भारत के आर्थिक विकास के लिये यह आवश्यक है कि भारत का राजनैतिक व आर्थिक शासन भारतीयो के हाथों में होना चाहिये।

३. महादेव गोविन्द रानाडे (१८४२ ई०–१९०१ ई०)
(Mahadeo Govind Ranade)

महादेव गोविन्द रानाडे भारतीय आर्थिक विचारो के सच्चे निर्माता थे। अपनी शिक्षा समाप्त करने के पश्चात वे बम्बई उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश हो गये थे। भारतीय अर्थशास्त्रियो मे उनको एक महान स्थान प्राप्त है तथा सदा प्राप्त रहेगा। गोखले तथा गांधीजी पर उनके विचारो का गहरा प्रभाव पड़ा था। १९वी शताब्दी के मध्य काल मे विद्यमान भारतीय आर्थिक समस्याओं पर उनके स्पष्ट तथा सुलझे विचार थे जिनको उन्होने निर्भीकता के साथ व्यक्त किया था। वे सच्चे देश भक्त थे तथा उनके आर्थिक विचारो ने भारत के प्रति अंग्रेजी राज्य की आलोचनाओं का रूप धारण किया था। उनका अर्थशास्त्र का ज्ञान बहुत व्यापक था। उन्होंने संस्थापित अर्थशास्त्र (Classical Economics) तथा इतिहासवादी सम्प्रदाय के अर्थशास्त्रियो के विचारो का पूर्णतया अध्ययन किया था।

उन्होने अंग्रेजी सरकार की भारत के प्रति अबन्ध नीति (Laissez-faire) की कड़ी आलोचना की। उन्होंने सरकार से विदेशी सस्ते आयातो पर रोक लगाने व देशी उद्योगों का विकास करने का अनुरोध किया। यद्यपि अंग्रेजी सरकार का अबन्ध नीति के पक्ष मे यह तर्क था कि यह नीति भारत के गरीब उपभोक्ताओं के लिये हितकारी थी क्योंकि उनको सस्ती तथा अच्छी उपभोग वस्तुएँ प्राप्त होती थीं परन्तु उन्होंने इस तर्क को गलत बताया तथा यह सिद्ध किया कि वास्तव मे यह नीति लकाशायर (Lancashire) व मेनचस्टर (Manchester) मे स्थापित उद्योगो के विकास के हित मे थी। उन्होंने कहा कि देश मे उद्योगो का विकास करना राज्य का अनिवार्य कर्तव्य है।

रानाडे ने सुप्रसिद्ध जर्मन अर्थशास्त्री लिस्ट (Fredereich List) की पुस्तक **National System of Political Economy** का गहन अध्ययन किया था तथा लेखक के विचारो से बहुत प्रभावित हुये थे। उनके विचार मे भारत की आर्थिक स्थिति लिस्ट के समय के जर्मनी की आर्थिक स्थिति के समान थी तथा उन्होंने जर्मन अर्थशास्त्री की आर्थिक नीतियो का समर्थन किया। अपनी शक्तिशाली

आवाज मे उन्होने देश में आर्थिक व औद्योगिक विकास के लिये सरकार से सरक्षण की नीति को अपनाने का कडा अनुरोध किया। उन्होंने कहा कि स्वतन्त्र व्यापार के पक्ष मे तर्क केवल उसी समय सत्य हो सकता है जब सभी देश आर्थिक क्षेत्र मे समान विकसित हो। परन्तु यह स्थिति इगलैंड के समान पूर्णतया विकसित देश तथा भारत के समान अविकसित देश के बीच व्यापार के सम्बन्ध मे कदापि सत्य नहीं थी।

उन्होने सरकार का ध्यान लघु उद्योगो के नियोजित विकास के द्वारा भारत के गावो की अर्थव्यवस्था को सुधारने की ओर भी आकर्षित किया। भारतीय गावो की समृद्धि के हित मे उन्होने सरकार से गावो का, यातायात व परिवहन के साधनो के द्वारा, सम्बन्ध शहरो व औद्योगिक केन्द्रो से स्थापित करने का अनुरोध किया। भारतीय आर्थिक समस्याओ के अध्ययन मे उन्होने प्राचीन अवास्तविक निगमन प्रणाली के स्थान पर इतिहासवादी सम्प्रदाय की आगमन प्रणाली का प्रयोग किया।

रानाडे भारतीय आर्थिक समस्याओ के यथाक्रम अध्ययन के निर्माता थे। उनके विचार मे भारतीय आर्थिक समस्याओ का अध्ययन तथा उचित नीतियों का निर्माण ही भारतीय अर्थशास्त्र का उपयुक्त विषय था। देश की लगान पद्धति मे सुधार करने के उद्देश्य से उन्होने स्थायी रैयतवारी प्रणाली को अपनाने का सुझाव दिया था।

४. रोमेश चन्द्र दत्त (१८४८ ई०-१९०९ ई०)
(Romesh Chandra Dutt)

रोमेश चन्द्र दत्त का जन्म १८४८ ई० मे कलकत्ते मे एक कुशल बगाली परिवार में हुआ था। वे भारतीय Civil Service के योग्य भारतीय शासको मे से थे। १८६९ ई० मे उनकी नियुक्ति भारतीय Civil Service में हुई थी तथा १८७१ ई० से लेकर १८८२ ई० तक उन्होने बगाल के विभिन्न जिलो मे भिन्न पदो पर नियुक्त होकर कार्य किया था। १८८३ ई० मे वे जिलाधीश तथा १८९४ ई० मे बर्दवान क्षेत्र के कमिश्नर नियुक्त हुये थे। १८९७ ई० मे नौकरी से निवृत्त होकर वे योरप चले गये जहाँ वे १९०४ ई० तक रहे। अपने जीवन के अन्तिम वर्षो मे वे लन्दन विश्वविद्यालय मे भारतीय इतिहास के अध्यापक नियुक्त हो गये थे जहाँ पर उन्होने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Economic History of India (2 Volumes) लिखी थी। उनकी यह पुस्तक आज भी भारतीय आर्थिक इतिहास के क्षेत्र मे प्रसिद्ध है। वे पक्के राष्ट्रवादी थे। उन्होने भारतीयो की निर्धनता के लिये अंग्रेजी सरकार को दोषी घोषित किया। उन्होने अनिश्चित तथा अन्यायपूर्ण भूमि कर की कड़ी आलोचना की। देश की आर्थिक उन्नति के लिये, उनके विचारानुसार, लघु उद्योगो का विकास तथा कृषि का सुधार आवश्यक था। उन्होने भारतीय कृषकों की आर्थिक स्थिति मे सुधार करने के उद्देश्य से भूमि कर मे कमी तथा सिंचाई के साधनो मे वृद्धि करने का सरकार से अनुरोध किया था।

उन्होने सरकारी शासन तथा सैनिक व्यय मे भी कमी करने का सुझाव दिया। उन्होने प्रचलित मालगुजारी (land revenue) प्रथा मे व्यापक सुधार करने का अनुरोध किया। वे स्थायी प्रथा (permanent settlement) के पक्ष मे थे।

जुलाई १९०० ई० में उनकी पुस्तक **'Famines in India'** जिसमे उन्होने भारतीय कृषि व कृषक की चिन्ताजनक स्थिति का चित्रण किया था, प्रकाशित हुई तथा सभी क्षेत्रों में इसकी प्रशंसा की गई। लार्ड कर्जन (Lord Curzon), जो इस समय भारत के वायसराय थे, ने भी इस पुस्तक की प्रशंसा की थी। रोमेश चन्द्र दत्त के आर्थिक व राजनैतिक पन्थ (creed) का मुख्य लक्ष्य भारतीय कृषको की भौतिक स्थिति में सुधार करना था। भारतीय कृषि के पिछड़ी अवस्था मे रहने का मुख्य कारण अच्छी तथा उपजाऊ भूमि का अभाव तथा खेती की पुरानी पद्धति मे निहित था। भारतीय कृषि के सुधार के लिये भारतीय कृषि के ढांचे मे परिवर्तन करना अत्यन्त आवश्यक था। इसके लिये वर्तमान मालगुजारी तथा भूमि अधिकार पद्धतियों मे आवश्यक सुधार करना भी आवश्यक था।

अपनी पुस्तक **'India in the Victorian Age'** मे दत्त ने भारतीयों की भौतिक स्थिति का वर्णन किया है। भारत में प्रति व्यक्ति आय को तीस रुपये बतलाते हुये उन्होंने कहा कि देश में इतनी कम प्रति व्यक्ति आय होने का मुख्य कारण यह था कि देश को समय समय पर अकालो (famines) का सामना करना पड़ता था। इन अकालों का भी इस पुस्तक मे विस्तृत वर्णन किया गया है। अपने लेखों तथा पुस्तकों में दत्त का मुख्य लक्ष्य अकालो तथा इनके आर्थिक कारणों की व्याख्या तथा विश्लेषण करना था। देश की गरीबी का उनकी पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर चिन्ह विद्यमान है। दत्त ने सरकार की मालगुजारी पद्धति की आलोचना करते हुये कहा कि देश मे मालगुजारी की दर इतनी अधिक है कि भारत का गरीब कृषक इसके भारी भार को सहन नही कर सकता है। उन्होंने इस सत्य को व्यक्त किया कि भारतीय मालगुजारी पद्धति तथा अकालो के बीच एक गहरा सम्बन्ध था। उन्होने भूमि कर की आलोचना करते हुये कहा कि देश मे भूमि कर अधिक तथा कष्टदायक होने के अतिरिक्त अनिश्चित भी था। कर अधिक होने के कारण, दत्त के मतानुसार, यह देश मे कृषि के विकास मे बाधक था।

भारत सरकार की कृषि के प्रति उदासीनता नीति की आलोचना करते हुये उन्होंने कहा कि यद्यपि देश में भूमिकर का भार कृषकों की निम्न करदान क्षमता को देखते हुये बहुत अधिक था, परन्तु सरकार इस कर आगम का उपयोग कृषि के सुधार पर न करके शासन पर करती है। दत्त ने कहा कि सरकार को अपने शासन व्यय मे कमी करनी चाहिये। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि जब तक सरकार का शासन व्यय बढ़ता रहेगा, मालगुजारी मे भी निरन्तर वृद्धि होती रहेगी तथा परिणामस्वरूप भारतीय कृषक की आर्थिक स्थिति भी खराब होती रहेगी। इस प्रकार

देश मे गरीब कृषक के ऊपर मालगुजारी का भार कम करने तथा कृषि की उन्नति करने के लिये सरकारी व्यय मे कमी करना अतिआवश्यक था। उन्होने सरकार से भारतीय कपडा मिल उद्योग पर से उत्पादन कर समाप्त करने तथा भारतीय उद्योगो की सहायता करने का अनुरोध किया। उन्होने सरकार से यह भी प्रार्थना की कि भूमि को मालगुजारी के अतिरिक्त अन्य सभी करो से मुक्त किया जाना चाहिये तथा भूमि-कर की मात्रा कम होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त उन्होने यह भी कहा कि मालगुजारी को इस प्रकार से वसूल किया जाना चाहिये कि कृषक को मालगुजारी का भुगतान करने मे न्यूनतम कष्ट का अनुभव हो। रोमेशचन्द्र दत्त १६ वी शताब्दी के एक महान शासक-अर्थशास्त्री थे।

५ गोपालकृष्ण गोखले (१८६६ ई०-१९१५ ई०)
(Gopal Krishan Gokhale)

जीवन-चित्र

गोपाल कृष्ण गोखले का जन्म ६ मई, १८६६ ई० मे महाराष्ट्र के रतनागिरि जिले मे स्थित कोतलक (Kotluk) नाम के स्थान पर हुआ था। दस वर्ष की आयु मे ही उनको घर छोडकर कोल्हापुर शिक्षा प्राप्त करने के लिये आना पडा था। १८७९ ई० मे जब वे केवल १३ वर्ष के ही थे, उनके पिता की मृत्यु हो गई थी। १८८० ई० मे उनकी प्रथम तथा १८८७ ई० मे दूसरी शादी हुई थी। १८६३ ई० मे उनकी माता की भी मृत्यु हो गई थी। १८८१ ई० मे Matric की परीक्षा पास करने के पश्चात् उन्होने १८८२ ई०, १८८३ ई० व १८८४ ई० मे क्रमश. राजाराम कालेज कोल्हापुर, दक्खन कालेज पूना तथा अल्फिन्सटन कालेज बम्बई मे अध्ययन किया था। बी० ए० की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् उन्होने कानून का अध्ययन किया। १८८५ ई० मे New English School मे सहायक शिक्षक के पद पर उनकी नियुक्ति हो गई। १८८७ ई० मे वे सर्व प्रथम महादेव गोविंद रानाडे के सम्पर्क मे आये। वे Deccan Education Society के जीवन सदस्य थे तथा इसके कार्य व प्रगति मे सदा विशेष रुचि दिखाते थे। १८८८ ई० मे वे सार्वजनिक सभा के मन्त्री नियुक्त हुए। १८६५ ई० मे वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उपमन्त्री नियुक्त हुये।

१८६६ ई० मे उनकी भेट गाधी जी से हुई। गाधी जी सदा उन को अपना राजनैतिक गुरु मानते थे। १८६७ ई० मे वेलबी आयोग (Welby Commission) के सम्मुख बयान देने के लिए वे विलायत गये जहाँ उनको दादा भाई नौरोजी व दिनशा वाचा (Dinshaw Wacha) का सम्पर्क प्राप्त हुआ। १८६६ ई० मे वे बम्बई विधान परिषद के सदस्य निर्वाचित हुए। परिषद के सदस्य होकर उन्होने सरकार की अनेको आर्थिक व राजनैतिक नीतियो की कडी आलोचना की। १९०२ ई० मे वे Imperial Legislative Council के सदस्य निर्वाचित हुए। १९०४ ई० मे उनको C. I. E. के पद का सम्मान प्राप्त हुआ। १९०५ ई० मे उन्होने Servant of India

Society को, जो अब भी जीवित है, स्थापित किया था। १६०६, १६०८, १६१२ व १६१३ ई० मे वे पुनः इग्लैंड गए। १६०८ ई० मे उन्होंने Ranade Economic Institute की स्थापना की। १६१२ ई० मे उनकी नियुक्ति Public Service Commission के सदस्य के उच्च पद पर हुई। १६१४ ई० मे उन्होंने K. C. I. E. के पद के सम्मान को अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार अनेकों सम्मान प्राप्त करने तथा देश की लगभग तीन दशाब्दियों तक सच्ची लगन से सेवा करने के पश्चात उनकी १६ फरवरी १६१५ ई० मे मृत्यु हो गई। लार्ड करजन ने, जिनकी गोखले ने अनेक बार आलोचना की थी, उनकी प्रशंसा करते हुए कहा था कि 'ईश्वर ने आप को असाधारण योग्यताएँ प्रदान की हैं जिनका आपने नि.सकोच व सच्ची भावना के साथ अपने देश के हितो के प्रति उपयोग किया है"।[1]

राजनैतिक व आर्थिक विचार

गोखले भारतीयो के अधिकारो व देश की स्वतन्त्रता के लिये अंग्रेजी सरकार से अपनी पूर्ण शक्ति के साथ लडे थे। रानाडे, जो उनके गुरु थे, के चरण कमलो में रह कर उन्होने राजनैतिक चेतना प्राप्त की थी। राज्य विधान सभा (Imperial Legislative Council) मे उनको विरोधी नेता का सम्मान प्राप्त था। बम्बई विधान सभा के सदस्य निर्वाचित होने पर उन्होंने राज्य सरकार के अकाल सहायता कार्य (Famine Relief Measures) की कडी आलोचना की। उन्होने सरकार के भूमि हस्तान्तरण बिल (Land Alienation Bill) का भी कडा विरोध किया था। १६०२ ई० मे राज्य विधान सभा के सदस्य निर्वाचित होने पर उन्होंने सरकार की अनेको नीतियो की आलोचना की थी। १६०२ ई० मे सरकार की वैत्तिक नीति की निन्दा करते हुये उन्होने करो के उच्च स्तर, नमक कर तथा फौज पर किये जाने वाले अधिक व्यय की कडी आलोचना की थी। उन के विचारानुसार देश की निधनता को देखते हुये फौज पर अधिक व्यय करना देश के आर्थिक हितों के लिये घातक था।

१६०३ ई० मे बजट पर भाषण करते हुये उन्होने नमक कर तथा सूती माल पर उत्पादन कर मे कमी करने की आवश्यकता की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया था। इस के साथ ही साथ उन्होंने सरकार से इस बात का भी अनुरोध किया था कि सरकारी नौकरियो पर भारतीयो की ही नियुक्ति होनी चाहिये। उन्होने सरकार का ध्यान देश मे शिक्षा का अधिक प्रचार करने की आवश्यकता की ओर भी आकर्षित किया था। अपने १६०४ ई० के बजट भाषण मे उन्होंने सरकार के फौज पर बढते हुये व्यय की आलोचना की थी। उसी वर्ष दो अन्य सरकारी बिलो—Official Secrets Bill तथा Indian Universities Bill—का भी

---

1 "God has endowed you with extraordinary abilities and you have placed them unreservedly at the disposal of your country" (Lord Curzon)

उन्होंने विरोध किया था। १९०५ ई० के बजट भाषण में गोखले ने फिर सरकार का ध्यान नमक कर में कमी करने, देश में कृषकों को सहायता देने तथा सरकारी नौकरियों का भारतीयकरण करने की ओर आकर्षित किया था। बर्क के समान गोखले का भी यह अटल विश्वास था कि शान्ति तथा नियमों का पालन करना देश की सच्ची प्रगति के लिये आवश्यक है। उनकी देश भक्ति सच्ची थी। लोकमान्य तिलक, जो गोखले के राजनैतिक विरोधी थे, ने भी उन की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुये कहा था कि 'भारत के रत्न का स्थान कोई अन्य' व्यक्ति प्राप्त नहीं कर सकता है।

६. डाक्टर मोक्षगुन्दम विश्वेश्वरइया (१८६१ ई०–१९६२ ई०)

(Dr. Mokshagundam Visvesvaraya)

जीवन चित्र

भारत में बीसवीं शताब्दी की औद्योगिक सम्यता के शिल्पकार (architect) डाक्टर मोक्षगुन्दम विश्वेश्वरइया का जन्म १५ सितम्बर, १८६१ ई० में आंध्र प्रदेश (Andhra Pradesh) में नन्दी नामक पहाड़ियों (Nandi Hills) से ३६ मील दूर मद्दनाहाली (Muddenahalı) नामक स्थान में हुआ था। उनकी उच्चतर शिक्षा सेन्ट्रल कालेज, बंगलोर तथा कालेज ऑफ साइन्स, पूना में हुई थी। अभियान्त्रिक विज्ञान (Engineering Science) में उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त उन्होंने बम्बई राज्य में १८८४ ई० में सहायक अभियन्ता (assistant engineer) के पद से अपने जीवन क्रम (career) का श्रीगणेश किया जहां पांच वर्ष के अल्प समय के पश्चात् ही १८८९ ई० में वे कार्यकारी-अभियन्ता (executive engineer) के पद पर नियुक्त किये गये। तत्पश्चात् १८९४ ई० में एक वर्ष के लिये उन्होंने सक्कर वाटर्स्ड्रेनेज स्कीम (Sukkar Water Supply and Drainage Scheme) में सिन्ध प्रान्त में (जो इस समय पाकिस्तान में है) विशेष अभियन्ता (special engin-er) के पद पर कार्य किया। उन्होंने १९१६ ई० में अदन (Aden) के लिये एक Water Supply And Drainage Scheme भी तैयार की थी। बम्बई राज्य में लगभग २५ वर्ष तक नौकरी करने तथा अधीक्षक अभियन्ता (superintending engineer) का उच्चतम पद प्राप्त करने के पश्चात् १९०८ ई० में उन्होंने नौकरी से अवकाश प्राप्त किया।

बम्बई सरकार की नौकरी से अवकाश मिलने के फौरन ही पश्चात् उनकी नियुक्ति हैदराबाद राज्य में परामर्श अभियन्ता (consulting engineer) के पद पर हो गई। १९०९ ई० से लेकर १९१२ ई० तक उन्होंने मैसूर राज्य में मुख्य अभियन्ता (chief engineer) के पद पर कार्य किया। मैसूर राज्य में अपनी नौकरी के काल में उनको मैसूर राज्य की दो प्रसिद्ध योजनाओं—कृष्णराजा सागर (Krishnaraja Sagar Project) तथा कन्नमबादी बांध (Kannambadı Dam) के निर्माण करने का श्रेय प्राप्त हुआ। मैसूर राज्य में अन्य उद्योगों को, जिनके कारण आज

मैसूर राज्य को भारत का रूहर (Ruhr of India) कहलाने का गौरव प्राप्त है, स्थापित करने का श्रेय भी उन्ही को प्राप्त है। वास्तव मे यह कहना अनुचित न होगा कि डाक्टर विश्वेश्वरइया के बिना मैसूर राज्य काऔद्योगिकरण असम्भव नही तो कठिन अवश्य ही होता। भद्रावती लोहा व स्पात (Bhadravati Iron and Steel Works Ltd.) के कारखाने का नियोजन भी स्वय उन्होने ही किया था। १९१२ ई० मे वे मैसूर राज्य के दीवान के पद पर नियुक्त हुये। इस पद पर छ. वर्ष की अवधि मे उन्होंने राज्य मे कुटीर तथा छोटे उद्योगों (Cottage and Small-Scale Industries) के विकास की ओर विशेष रूप से ध्यान देकर मैसूर राज्य के लगभग सभी गावो मे समृद्धि के युग का निर्माण किया था।

१९२२ ई० मे वे Bombay Technical and Educational Committee के अध्यक्ष नियुक्त हुये। १९२५ ई० मे वे भारतीय आर्थिक जाच समिति (Indian Econonmic Enquiry Committee) के अध्यक्ष तथा १९२६ ई० मे बम्बई बैंकवे जाच समिति (Bombay Beckbay Enquiry Committee) के सदस्य थे। १९३८ ई० मे वे बम्बई सिंचाई जाच समिति (Bombay Irrigation Enquiry Committee) के अध्यक्ष थे।

उनकी रुचि केवल व्यावसायिक कार्यों तक ही सीमित नही थी। वे राजनैतिक तथा आर्थिक समस्याओ के अध्ययन मे भी काफी रुचि रखते थे। वे १९२२ ई० मे बम्बई मे हुये सर्व-दलो के राजनैतिक सम्मेलन (All-Parties Political Conference) के अध्यक्ष थे। इस के अतिरिक्त १९२९ ई० मे वे South Indian States Peoples' Conference के भी अध्यक्ष थे। १९३८ ई० से लेकर १९४५ ई० तक वे Indian Institute of Science के Court के सभापति भी रहे थे।

१८९८ ई० व १९४६ ई० के बीच वे छ वार विदेश गये। १९४१ ई० से सस्था के जन्म दिवस से ही वे अखिल-भारतीय विनिर्माता सगठन (All India Manufacturers' Organisation) के सभापति थे। १९५६ ई० मे राष्ट्र ने उन को भारत रत्न की उपाधि देकर सम्मानित किया था।

देश के आर्थिक नियोजन तथा औद्योगीकरण में योगदान

डाक्टर विश्वेश्वरइया भारतीय नियोजन के जनक थे। उन्होने सर्व प्रथम भारत के आर्थिक विकास के लिये नियोजन की आवश्यकता व्यक्तकी थी। १९३४ ई० मे जब नियोजन की बात करना भी आलोचना का विषय था उन्होने सर्वप्रथम भारत के लिये दस-वर्षीय योजना का सुझाव दिया था। १९३४ ई० मे लिखित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **Planned Economy for India** मे उन्होने स्वतन्त्र समाज मे नियोजन की विशेषताओं को बहुत सुन्दर शब्दो मे व्यक्त किया है। इसके पूर्व १९२० ई० मे अपनी पुस्तक **Reconstructing India** मे उन्होने भारत के लिये विश्व के देशो

के अनुभवो से लाभ उठाने का अनुरोध किया था। १६३४ ई० मे भारत में नियोजन की आवश्यकता के सम्बन्ध मे लिखते हुये उन्होने कहा था कि "अभी तक (१६३४) देश मे कोई उचित नीति तथा योजना का भारतीयो की आय तथा उनके जीवन स्तर मे सुधार करने के लिये निर्माण नही किया गया है। देश के औद्योगिक, कृषि, वाणिज्य, वित्त तथा उत्पादन के विकास के लिये व बेरोजगारी को नष्ट करने के लिये नियोजित अर्थव्यवस्था अनिवार्य है। आर्थिक नियोजन के द्वारा देश के भौतिक साधनो व श्रम शक्ति का आदर्श तथा लाभप्रद उपभोग किया जा सकेगा। इसके द्वारा देश मे समय समय पर होने वाले नये नये औद्योगिक आविष्कारो का भी देश के आर्थिक हितो के पक्ष मे उपयोग किया जा सकेगा। नियोजित अर्थव्यवस्था मे भिन्न व्यवसायो के बीच उपयुक्त सन्तुलन स्थापित किया जा सकेगा तथा देश मे शिक्षित नागरिको को व्यापार व प्रशासन की कला की शिक्षा दी जा सकेगी। नियोजित अर्थव्यवस्था के द्वारा देश मे आर्थिक क्रियाओ की तीव्रगति से प्रगति होगी तथा लोगो मे अधिक कार्य करने का उत्साह उत्पन्न हो सकेगा।"[2]

डा० विश्वेश्वरय्या देश के औद्योगीकरण के समर्थक थे। उनके विचार मे किसी देश के औद्योगीकरण व उस देश के आर्थिक विकास के बीच एक सीधा अनुपाती सम्बन्ध होता है। कृषि के सुधार के लिये यह आवश्यक है कि देश में औद्योगिक विकास हो जिससे कि अतिरिक्त जनसंख्या को कृषि से हटा कर उद्योगों मे काम पर लगाया जा सके। वे देश के लिये मिश्रित अर्थव्यवस्था (mixed economy) के पक्ष मे थे। उनके विचारानुसार केन्द्रीय सरकार को सामान्य नियन्त्रण को अपने हाथ मे रखते हुये, व्यक्तियो को उद्योग तथा वाणिज्य क्रियाओ मे स्वतन्त्रता प्रदान करनी चाहिये।

उन्होने देश की पंच वर्षीय योजनाओ पर भी अपने विचार व्यक्त किये थे। प्रथम पंचवर्षीय योजना की आलोचना करते हुए उन्होने कहा था कि सरकार को शिक्षा पर अधिक महत्व देना चाहिये था। इस सत्य को ध्यान मे रखते हुये कि देश में ८० प्रतिशत जनसाधारण अशिक्षित है शिक्षा पर पंचवर्षीय योजनाओं में ध्यान देना अधिक अनिवार्य हो जाता है। प्रथम पंचवर्षीय योजना का दूसरा दोष

यह था कि इसमें उद्योगो के विकास को, जो किसी भी देश को आर्थिक शक्ति प्रदान करने के लिये आवश्यक होते है, बहुत कम महत्व दिया गया था। नियोजित औद्योगीकरण, बेरोजगारी तथा गरीबी का अन्त करने के लिये ही आवश्यक नही है बल्कि यह देश की सभ्यता के विकास का चिन्ह भी है। उनके जीवन तथा लेखो का एकमात्र लक्ष्य यही था कि भारत ससार का एक स्वतन्त्र तथा शक्तिशाली देश बने। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये वे आरम्भ से ही देश मे औद्योगीकरण की शिक्षा तथा राष्ट्रीयता के विकास की ओर अपने लेखो द्वारा देश की सरकार का ध्यान आकर्षित करते रहे थे। उनका नाम देश के नियोजन के इतिहास मे सबसे पहले लिखा जायेगा। उनकी मृत्यु १४ अप्रेल, १९६२ में बगलौर मे हुई। वे सभी प्रकार से एक महान व्यक्ति थे तथा दादा भाई नौरोजी के समान भारत का महान वृद्ध व्यक्ति (Grand Old Man of India) कह कर पुकारे जाते थे।

विशेष अध्ययन सूची

1. J. K. Majumdar . Raja Ram Mohan Roy And Progressive Movements in India.
2. R. P. Masani . Dadabhai Naoroji.
3. T. V. Parvate : Gopal Krishna Gokhale
4. V. G Kale : Gokhale and Economic Reforms.
5. R. C Dutta Economic History of India.
6. S. A. Wolpert Tilak and Gokhale
7. M Visvesvaraya . Planned Economy for India.
8 P. R Gopalakrishnan : Development of Economic Ideas in India, Chapters II, III, IV & V.

प्रश्न

1. Write short notes on (i) Ranade , (ii) Gokhale , Dadabhai Naoroji.
2. Describe the role of Visvesvaraya in the development of the idea of planning in India.
3. Review briefly the ideas of leading exponents of Indian Economic Thought.

(राजस्थान, १९५४)

अध्याय ३३

गाँधीजी के आर्थिक विचार

(Economic Ideas of Gandhiji)

महात्मा गाधी[1] का नाम न केवल भारतवर्ष के ही इतिहास मे बल्कि समस्त ससार के राजनैतिक इतिहास मे अमर रहेगा। उनको वास्तव मे एक प्रकार से न केवल भारतवर्ष मे ही परन्तु ससार के सभी उपनिवेशी देशो मे वर्तमान

---

१ महात्मा गाँधी (१८६९-१९४८ ई०) का असली पारिवारिक नाम मोहनदास करमचन्द गाँधी था। उनका जन्म २ अक्तूबर, १८६९ ई० मे काठियावाड राज्य के पोरबन्दर नामक स्थान पर हुआ था। उनके पिता इस रियासत अथवा राज्य मे दीवान थे। उनकी माता पवित्र तथा धार्मिक विचारो वाली स्त्री थी तथा गाँधी जी के जीवन पर उनका गहरा प्रभाव पडा था। सत्य तथा अहिंसा म विश्वास करना, ईश्वर-भक्ति की भावना तथा जीवन सयम-नियम का पालन करना इत्यादि बाते गाँधी जी ने अपनी माता से ही सीखी थीं। प्रारम्भिक शिक्षा देश मे समाप्त करने के पश्चात् वे इगलैंड गये जहाँ से वकालत की परीक्षा पास करने के पश्चात् भारत वापिस आये। १८९३ ई० मे वे एक मुकदमे मे वकील के रूप मे दक्षिणी अफ्रीका गये थे। दक्षिण अफ्रीका मे उन्होने वहाँ के भारतीय नागरिकों पर सरकार द्वारा किये गये अत्याचारो के विरुद्ध एक कडा आन्दोलन आरम्भ किया था तथा सत्याग्रह के उस यन्त्र का सर्वप्रथम उपयोग किया था जो उनके स्वतन्त्रता आन्दोलन का सदा के लिये मुख्य साधन बन गया।

दक्षिणी अफ्रीका से लौटने के पश्चात् १९१५ ई० से उन्होने अपने तन, मन, धन को भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस (Indian National Congress) के कार्य मे लगा दिया। १९१९ ई० मे उन्होने रौलट एक्ट का कडा विरोध किया तथा इसके विरुद्ध सत्याग्रह आरम्भ किया जिसके कारण १९२२ ई० मे उनको ६ वर्ष का जेल दड मिला। १९१८ ई० से लेकर १९२२ ई० तक उन्होने हिन्दु-मुस्लिम एकता के कार्य मे अपनी शक्ति लगादी तथा १९२४ ई० मे इस कार्य को पूर्ण करने के उद्देश्य से ३ सप्ताहका उपवास किया था। १९२५ ई० मे उन्होने राजनीति से २ वर्ष के अल्प समय के लिये अवकाश प्राप्त किया था परन्तु १९२७ ई० मे राजनीति मे पुनः वापस आगये। १९३० ई० मेगाँधीजी ने प्रसिद्ध डन्डी सत्याग्रह किया था।

अहिंसात्मक स्वतन्त्रता आन्दोलन (Non-violent Freedom Movement) का जन्मदाता कहा जा सकता है। महान व्यक्ति तथा नेता होने के अतिरिक्त वे एक महान विचारक भी थे। शायद ही ज्ञान की कोई ऐसी शाखा हो जिसे उनके विचारो के रूप मे योगदान प्राप्त न हुआ हो। क्या धर्म, क्या नीतिशास्त्र, क्या अर्थशास्त्र तथा क्या राजनितिकशास्त्र ज्ञान के सभी क्षेत्रो मे गाधी जी ने अपने विचार नि:सकोच व्यक्त किये हैं। वे एक महान समाज-सुधारक थे। वे अहिंसा तथा सत्य के महान पुजारी थे। उनके लिये, तथ्यो के साथ निर्धारित लक्ष्यो को

१९३१ ई० मे उन्होने गाधी इरविन समझौते (Gardhi Irwin Pact) तथा लन्दन मे हुये असफल दूसरे गोलमेज सम्मेलन (Second Round Table Conference) मे भारतीय जनता के प्रतिनिधि के रूप मे भाग लिया था। १९४२ मे गांधी जी ने प्रसिद्ध भारत छोड़ो आन्दोलन (Quit India Movement) को आरम्भ किया जिसका अन्तिम परिणाम १९४७ ई० मे भारत की स्वतन्त्रा का प्राप्त होना था। इस आन्दोलन काल मे उनको जेल जाना पडा। १९४४ ई० मे स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण अंग्रेजी सरकार ने उनको जेल से रिहा कर दिया। १९४६ ई० मे जब देश मे जातीय विद्रोह हुये तो गाधी जी ने अपनी जान की कोई परवाह न करके देश मे शान्ति स्थापित करने का प्रयास किया तथा इस कार्य मे सफल भी हुये। वे सरकार के मना करने पर भी बगाल मे नोआखली (Noakhali) नामक स्थान पर गये तथा उपवास करके हिन्दुओ तथा मुसलमानो के बीच एकता स्थापित करने मे सफल हुये। अपने जीवन के अन्तिम दिनो मे वे दिल्ली मे बिरला भवन मे प्रतिदिन प्रार्थना किया करते थे तथा इस प्रार्थना सभा मे देश के सभी जातियो के लोग एकत्रित होकर उनके प्रवचन को सुना करते थे। इसी प्रार्थना सभा मे ३० जनवरी १९४८ ई० को लगभग ६½ बजे सायंकाल एक पागल नाथूराम विनायक गोडसे ने उनको गोली मार कर एक महान् भारतीय नेता तथा सत्य के पुजारी के जीवन का अन्त कर दिया। इसी दिन गाधी जी का नाम मातृभूमि की स्वतन्त्रता पर बलिदान होने वाले शहीदो की अमर सूची मे लिख दिया गया। राष्ट्रपिता महात्मा गाधी की राजघाट, दिल्ली मे बनी समाधि पर देशवासी ही नही बल्कि विदेशी भी जाकर फूल चढा कर राष्ट्रपिता के प्रति अपनी श्रद्धाजलियाँ अर्पित करते है।

गाधी जी ने अनेको पुस्तके, पुस्तिकाये तथा लेख लिखे है। उनके *अधिकतर लेख '**Young India**' तथा '**Harijan**' नामक पत्रिकाओ मे* प्रकाशित होते थे। ये लेख गाधीजी के महान व्यक्तित्व के सूचक है। उन्होने अपनी दो ग्रन्थो मे आत्मजीवनी भी लिखी है। इसका शीर्षक **'The story of my Experiments with Truth'** है। उनकी पुस्तिकाओ मे **Cent Per Cent swadeshi (1938)** तथा **Constructive Programme (1941)** के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। गाधी जी पर अंग्रेजी लेखक जॉन रसकिन (John Ruskin) तथा रूसी दार्शनिक टालस्टाय (Tolstoy) का गहरा प्रभाव पडा था।

प्राप्त करने के साधनों का भी समान महत्व था। गाँधीजी का यह दृढ विश्वास था कि यदि किसी उचित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अनुचित साधनों का प्रयोग करना पडता है तो वह लक्ष्य कदापि उचित नही हो सकता है। ईश्वर मे उनको दृढ विश्वास था तथा वे मनुष्य की अन्तर्निहित अच्छाई (inherent goodness of man) मे पक्का विश्वास रखते थे। जीवन के सभी क्षेत्रो मे उनकी महानता अधिक तथा अप्रश्नीय थी। यही कारण है कि न केवल भारतवासियों ने ही बल्कि विदेशियों ने भी उनकी तुलना साक्रेटीस (Socrates) तथा अबराहम लिंकन (Abraham Lincoln) के समान महान पुरुषो से की है।

गाँधी जी के आर्थिक विचार तथा सुझाव

पूँजीवाद, अहिंसा तथा शोषण के सम्बन्ध में गाँधी जी के आर्थिक विचार उनके अन्य विचारो से अलग नही थे। वास्तव मे उनके आर्थिक विचार उनके समस्त जीवन सम्बन्धी विचारो का एक आवश्यक तथा महत्वपूर्ण अंग थे। *उनकी विचारधारा मे सत्य व अहिंसा, मनुष्य के व्यक्तित्व, धर्म, सादगी इत्यादि* का विशेष महत्व था। फलस्वरूप अहिंसा का, जो उनके लिये किसी मत से कम नही थी, गाधी जी के आर्थिक विचारो पर गहरा प्रभाव पडा था। गांधी जी की आर्थिक विचारधारा सादगी, (simplicity), अहिंसा, (non-violence), श्रम की प्रतिष्ठा (dignity of labour) तथा मानव आदर (human values) के चार मौलिक *सिद्धान्तों पर आधारित है। वे पूँजीवाद का विरोध इसी कारण करते थे क्योकि* उनके विचार मे पूँजीवाद मे मानव श्रम के शोषण की समस्या उत्पन्न होने के कारण हिंसा की भयानक समस्या सदा विद्यमान रहती है तथा देश का धन तथा सत्ता केवल कुछ थोडे व्यक्तियो के हाथो मे सकेन्द्रित हो जाती है। पूँजीवाद मे मशीन श्रम को उत्पादन के क्षेत्र मे बाहर कर देती है तथा समाज मे बेरोजगारी की भीषण *समस्या उत्पन्न हो जाती है जो धन पूँजीवादी समाज मे कुछ व्यक्तियो के हाथो में* केन्द्रित हो जाता है उसकी पूँजीपतियों को पुलिस तथा अन्य हिंसात्मक उपायो द्वारा रक्षा करनी पडती है। इस कारण गाधी जी उत्पादन के यन्त्रीकरण (mechanisation of production) तथा बडे पैमाने की उत्पादन प्रणाली के पक्ष मे नही थे। इस सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त करते हुये गाधी जी ने ३० दिसम्बर १९३४ ई० के *हरिजन मे लिखा था कि "यदि हम भारत मे अहिंसात्मक प्रकार से विकास करना* चाहते हैं तो हम को बहुत चीजों का विकेन्द्रीकरण करना होगा क्योंकि केन्द्रीकरण की पद्धति को पर्याप्त शक्ति का प्रयोग किये बिना कदापि नही चलाया जा सकता है। उन छोटे घरों को जहाँ पर लूटने के लिये अधिक धन नही है, पुलिस की रक्षा कदापि आवश्यक नही होती है। इसके विपरीत धनी लोगो के घरो की डाकुओं से रक्षा करने के लिये पुलिस की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार बड-बडे कारखानों को भी हिफाजत की आवश्यकता होती है। ग्रामो के आधार पर सगठित

भारत मे विदेशी आक्रमण का फौज, जल सेना तथा वायु सेना से सुसज्जित शहरी भारत की अपेक्षा बहुत कम खतरा होगा।"[2]

गाधी जी का यह पूर्ण विश्वास था कि जब तक आर्थिक विषमता का समाज से अन्त नही किया जावेगा समाज तथा ससार मे स्थाई शान्ति कदापि स्थापित नही हो सकती है। गाधी जी देश मे धनी तथा गरीबों के बीच विद्यमान चौडी तथा लम्बी खाई को पाटने के इच्छुक थे। यह खाई समाज के लिये हितकारी नही थी। साथ ही यह धनी वर्ग के लोगो के हितों के लिये भी घातक सिद्ध हो सकती थी। जब तक धनी तथा गरीबो के बीच अन्तर को जन्म देनी वाली यह खाई रहेगी तब तक देश मे अहिंसात्मक सरकार को स्थापित करना कठिन होगा। गाधी जी का धनी लोगो को यह सुझाव था कि उनको अपने धन तथा आर्थिक सत्ता का स्वेच्छापूर्ण त्याग करके इसका समाज की अच्छाई के लिये उपयोग करना चाहिये। इसी मौलिक विचार को ध्यान मे रखते हुये उन्होने निक्षेपधारी सिद्धान्त (Doctrine of Trusteeship) का निर्माण किया है। सिद्धान्त का मुख्य तत्व यह है कि सारी सम्पत्ति समाज की है तथा पूँजीपतियो को चाहिये कि वे इस सम्पत्ति के प्रति अपने आप को समाज का प्रन्यासी अथवा जमानती समझे। जिस प्रकार कि प्रन्यासी का यह कर्तव्य होता है कि प्रन्यासी-सम्पत्ति (Trust Property) की उचित रूप से देखभाल करे इसी प्रकार पूँजीपतियों, जिन के हाथ मे राष्ट्र के सभी उत्पादन-साधन है, का भी यह कर्तव्य है कि इन साधनो का राष्ट्रीय हितो को ध्यान मे रखकर उचित रूप से उपयोग करे।

इस सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त करते हुये गाधी जी ने **Constructive Programme** मे लिखा था कि "जब तक देश मे धनी तथा करोडो भूखो के बीच चौडी खाई विद्यमान है, तब तक देश मे एक अहिंसात्मक सरकार की स्थापना असम्भव है। स्वतन्त्र भारत में, जहाँ पर गरीबो को भी देश मे वही शक्ति प्राप्त होगी जो सबसे अधिक धनी को प्राप्त है, नई दिल्ली के महलो तथा बड़े भवनों व गरीब श्रमिको के लाखो छप्परो (hovels) की असमानता को एक दिन भी सहन नही किया जावेगा। एक बडी हिंसात्मक तथा खूनी क्रान्ति निश्चय ही एक दिन देश में अवश्य होगी, जब तक कि धनी अपने धन तथा धन द्वारा प्राप्त सत्ता का स्वेच्छापूर्ण

---

2 'I suggest if India is to evolve along non violent lines, it will have to decentralise many things Centralisation cannot be sustained and defended without adequate force Single homes from which there is nothing to take away require no policing The places of the rich must have strong guards to protect them against decoits. So must have factories Rurally organised India will run less risk of foreign invansion than urbanised India well equipped with military, naval and airforces' (Gandhiji in Harijan, December 30, 1934)

त्याग करके उसका समाजिक हितों के लिये उपयोग करने को तैयार न हो। ऐसा करने के लिये यह आवश्यक है कि वे निक्षेपधारी सिद्धान्त का पालन करें।"[3]

मशीनों सम्बन्धी विचार—गाधी जी को मशीन से एक प्रकार से घृणा थी। अपने प्रारम्भिक जीवन के काल में वे मशीनी सभ्यता को शैतान सभ्यता के समान समझते थे। उनके विचार में मशीन मानव जाति के पतन का एकमात्र आर्थिक कारण थी। मशीन के सम्बन्ध में लिखते हुये उन्होंने कहा था कि "मशीन वर्तमान सभ्यता का प्रमुख चिन्ह है तथा यह एक महान पाप का प्रतीक है। मैं मशीन के सम्बन्ध में एक भी अच्छी बात नहीं सोच सकता हूँ परन्तु इसके दोषों पर पुस्तकें लिखी जा सकती है। हमें यह मुख्य सत्य नहीं भूलनी चाहिये कि मशीन स्वयं एक बुराई है। यदि हम इस सत्य को सदा ध्यान में रखेंगे तो धीरे-धीरे इससे मुक्ति प्राप्त कर सकेंगे। यदि मशीन को वरदान समझने के स्थान पर हम इसको एक बुराई समझने लगें तो अन्त में यह स्वयं समाप्त हो जावेगी।"[1] यही कारण था कि गाधी जी हाथ करघे के भारी पक्षपाती थे तथा इसको स्वतन्त्रता प्राप्त करने का एक प्रमुख साधन विचारते थे।

परन्तु गाधी जी की मशीन सम्बन्धी आलोचना किसी अन्धविश्वास का परिणाम नहीं थी। वे मशीन को इस कारण बुरा समझते थे क्योंकि इसके द्वारा देश की आय केवल कुछ ही व्यक्तियों के हाथ में केन्द्रित हो जाती है। गाधी जी समाज सुधारक होने के नाते राष्ट्रीय आय को सभी देशवासियों के हाथों में केन्द्रित होना चाहते थे। इसके अतिरिक्त उनका विरोध बेरोजगारी की भीषण समस्या से भी सम्बन्धित था। वे कहते थे कि मशीन उस देश के लिये तो ठीक हो सकती है जहाँ पूँजी की प्रचुरता तथा श्रम की कमी हो परन्तु भारत के समान देश के लिये, जहाँ की जनसंख्या अधिक है तथा जहाँ पूँजी का अभाव है मशीन बुराई के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकती है। गाधी जी उन लोगों की आलोचना करते थे जो मशीन को श्रम-बचत का साधन (labour-saving device) समझते थे।

तथा सामाजिक परिस्थितियों पर आधारित था। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि "यंत्रीकरण उस स्थिति मे तो अच्छा सिद्ध होता है जब काम की मात्रा की अपेक्षा काम करने वालों की संख्या बहुत कम होती है। परन्तु जब काम करने वालो की संख्या अधिक हो, जैसा की भारत मे है, तब यन्त्रीकरण एक बुराई होती है। हमारी समस्या यह नही है कि गावो मे रहने वाले करोडों मजदूरों व किसानो को किस प्रकार अवकाश प्राप्त हो। इसके विपरीत हमारी समस्या उनके खाली अथवा बेकार समय को इस प्रकार उपयोगी बनाने की है कि उनको वर्ष मे अधिक नही तो कम से कम छ मास के लिये तो कार्य प्राप्त हो सके।"[5]

विकेन्द्रीकरण व लघु उद्योगो सम्बन्धी विचार—गाधी जी के विचार मे उत्पादन प्रणाली का विकेन्द्रीकरण राष्ट्र मे सामाजिक तथा आर्थिक स्थाई शान्ति की स्थापना के लिये अत्यन्त आवश्यक था। गाधी जी का विचार था की केन्द्रीकरण को पर्याप्त शक्ति का प्रयोग किये बिना जीवित रखना कठिन है। उनके विचारानुसार एक अत्यधिक यन्त्रित औद्योगिक प्रणाली (highly mechanised industrial system) तथा अहिंसात्मक समाज दो बिल्कुल बेजोड बातें थी। समाज मे उत्पादन का विकेन्द्रीकरण करने तथा समान वितरण को सम्भव बनने के उद्देश्य से गाँधी जी घरेलू उद्योगो के विकास के भारी पक्ष मे थे। अपने विचार इस विषय पर व्यक्त करते हुये उन्होने लिखा है कि 'यदि एक पल के लिये यह कल्पना भी करली जाय कि मशीन मानवता की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है, तो भी यह सत्य है कि यह उत्पादन को केवल कुछ ही विशेष क्षेत्रो मे केन्द्रित कर देती है जिसका यह परिणाम होता है कि वितरण का नियमन करना जटिल हो जाता है। इसके विपरीत यदि वस्तुओं का उत्पादन तथा वितरण प्रत्येक क्षेत्र मे आवश्यकता के अनुसार होता है तो वितरण स्वय हो जाता है तथा सट्टेबाजी अथवा धोखे की सम्भावना भी कम हो जाती है।"[6]

बडे पैमाने के उद्योगो के द्वारा उत्पादन करने के स्थान पर गाधी जी की राय मे विकेन्द्रित छोटे पैमाने के उद्योगो के द्वारा उत्पादन करना गावो मे रहने

5, "Mechanisation is good when the hands are too few for the work intended to be accomplished It is an evil when there are more hands than required for the work as it is the case in India The problem with us is not how to find leisure for the teeming millions inhabiting our villages. The problem is how to utilise their idle hours, equal to the working days of six months in the year" (Harijan : 16, November, 1934)

6. [illegible]

ber, 1924)

वाले लोगो के लिये लाभदायक था। उनका विचार था कि जब उत्पादन घरेलू तथा लघु उद्योगो के द्वारा होता है तो तब उत्पादन का कार्य देश के सारे गावो के प्रत्येक घर मे हो सकता है।

सादगी तथा आवश्यकताओ सम्बन्धी विचार—गाधी जी के आर्थिक विचारों मे सादगी का एक विशेष महत्व था। गाधी जी के विचारानुसार प्रत्येक मनुष्य के जीवन का लक्ष्य सादगी होना चाहिये। जीवन का उद्देश्य **Simple living and high thinking** होना चाहिए। कल्याण तथा जीवन मे सच्चे सुख का अनुभव करने के लिये यह आवश्यक है कि हमारी आवश्यकताए सीमित हो। वास्तव मे जितनी हमारी आवश्यकताएं कम होगी उतना ही हम को कम असन्तोष तथा कष्ट का अनुभव होगा। गाधी जी केवल भौतिक कल्याण को ही जीवन मे सुख का साधन नहीं विचारते थे वरन् उन के लिये अभौतिक कल्याण (nonmaterial welfare) का भी समान विशेष महत्व था। सच्चा सुख प्राप्त करने के लिये शरीर तथा बुद्धि दोनों पर नियन्त्रण करना आवश्यक है। गाधी जी का यह पक्का विश्वास था कि समाज के सामाजिक-आर्थिक सगठन का लक्ष्य आवश्यकताओ मे निरन्तर वृद्धि करने का नहीं होना चाहिए। *मनुष्य को द्रव्य की प्राप्ति से कभी सच्चा सुख प्राप्त नहीं हो* सकता है। यह विचारधारा वर्तमान पाश्चात्य सभ्यता, जिस में भौतिक कल्याण को केन्द्रिय महत्व दिया जाता है, के प्रतिकूल है। भले ही पाश्चात्य भौतिक सभ्यता के पुजारी सादे जीवन के विचार की कितनी ही आलोचनाएं क्यो न करे, भारतीय सभ्यता मे सादगी को आदि काल से एक विशेष महत्व दिया गया है। इस के अतिरिक्त इस सत्य से भी किसी को इन्कार नहीं हो सकता कि भारत के समान निर्धन देश मे लोगों को अपनी आवश्यकताये सीमित रख कर ही सुख प्राप्त हो सकता है। इसका यह *अर्थ कदापि नहीं है कि गाधी जी प्रगति के विरोध मे थे।* उन का कहना था कि देश के प्रत्येक वासी को एक उचित न्यूनतम जीवन स्तर के अनुकूल जीवन व्यतीत करने के लिये वस्तुयें प्राप्त होनी चाहिये। परन्तु इस स्तर को प्राप्त करने के पश्चात उस को चाहिये कि अपनी लालसा को काबू मे रखे।

श्रम अथवा काम की प्रतिष्ठा सम्बन्धी विचार—गाधी जी किसी भी काम को घृणाजनक नहीं समझते थे। उन के लिये जीवन का लक्ष्य काम करना था तथा काम किसी प्रकार पूजा से कम नहीं था। वे **Work is Worship** के कथन मे पूर्णतया विश्वास करते थे। उनका कहना था कि शरीर को स्वस्थ्य रखने का काम अथवा श्रम एक मात्र उत्तम उपाय है। वे श्रम को एक प्राकृतिक नियम समझते थे। *जो भी व्यक्ति प्राकृतिक नियम का उल्लघन करता है स्वय मुसीबत को आमं*त्रित करता है। वे कहा करते थे कि शारीरिक श्रम मनुष्य के शरीर को स्वस्थ्य रखने के अतिरिक्त मनुष्य की मानसिक शक्ति को भी उत्तेजित करता है। वे महनत करने को शाप न समझ कर जीवन की खुशी समझते थे। उनके लिये शारीरिक श्रम मनुष्य

का एक पवित्र कर्तव्य था तथा इसी मे उन के विचारानुसार मनुष्य की प्रतिष्ठा निहित थी। वे उन व्यक्तियों को समाज-हित विरोधी समझते थे जो सदा अधिक छुट्टी तथा अवकाश प्राप्त करने इच्छुक रहते थे। काम तथा श्रम मनुष्य के मस्तिष्क को शैतान की कर्मशाला (devil's workshop) बनने से रोकता है।

गावो के पुनर्जन्म सम्बन्धी विचार—गाधी जी के विचार मे भारत का अर्थ इस के लाखो गॉव थे। उन का यह पक्का विश्वास था कि नव भारत का निर्माण देश के गावो का जागरन किये बिना कदापि सम्भव नही हो सकता था। देश के लाखो गावों में रहने वाली देश की ७० प्रतिशत जनसख्या को आर्थिक सम्पन्नता तथा सामाजिक समानता का अनुभव होना चाहिये। प्राचीन भारत के गॉवो मे कृषि तथा उद्योग सहकारी रूप से किये जाते थे तथा शोषण की कोई सम्भावना नही थी। उत्पादन का क्रम उपभोग तथा वितरण के साथ साथ चलता था। गाँधी जी के आदर्श गाव मे सभी आवश्यक वस्तुओ का उत्पदान स्वय गाव मे होगा। उन का कहना था कि प्रत्येक गांव एक स्वय सम्पन्न (self-sufficient) गणराज्य (Republic) होना चाहिये। इस के सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त करते हुये उन्होने लिखा था कि मेरे गाव स्वराज्य (village swaraj) के विचार के अनुसार 'प्रत्येक गाव एक ऐसा पूर्ण गणराज्य होना चाहिये जो अपनी सभी आवश्यक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये अपने पडोसियो पर आश्रित न हो। इस प्रकार प्रत्येक गाव को खाने के लिये पर्याप्त मात्रा मे अनाज तथा कपडे के लिये कपास पैदा करनी होगी। इसके अतिरिक्त गाव मे पशुओ के लिये चरागाह तथा बडो व बच्चो के लिये मनोरजन व खेलने के मैदान भी होने चाहिये। यदि इन सब आवश्यकताओ की पूर्ति करने के पश्चात गॉव मे कुछ भूमि शेष बच जावे तब उस भूमि पर गाजा, तम्बाकू, अफीम भाग इत्यादि नशीली वस्तुओ को छोड कर, अन्य प्रकार की उपयोगी नकदी प्राप्त होने वाली फसलो (cash crops) को उगाया जा सकता है। प्रत्येक गाव मे नाट्यशाला, पाठशाला तथा सार्वजनिक भवन भी होने चाहिये। साफ पानी की पूर्ति के लिये गाव मे अपना अलग पानीघर होना चाहिये। यह गाव के कुओ तथा तालाबों की सफाई तथा उन पर निय ण करके सम्भव हो सकता है। शिक्षा final basic course के स्तर तक अनिवार्य होनी चाहिये। यथासम्भव सभी कार्य सहकारिता के द्वारा होने चाहिये। गॉव मे जाति प्रथा तथा अछूतता नही होगी"।[7] ऐसा गाधी जी का अपने आदर्श गणराज्य गाव का चित्र था।

---

7. [illegible]

adults and children. Then if there is more land available it will grow useful money crops, thus excluding ganja, tobacco, opium and the like

The village will maintain a village theatre, school and public hall. It will have its own water works ensuring clear water supply This can be done through controlled wells and tanks. Education will be compulsory upto the final basic course As far as possible every activity will be conducted on the co-operative basis There will be no caste such as we have today with their graded untouchability" (R K. Prabhu & U R. Rao (Compilors) *The Mind of the Mahatma*)

भारतीय गाव के पुनर्जन्म के लिये गाधी जी ने चरखे पर आधारित एक व्यापक योजना बनाई थी। गाधी का नारा था 'कताई के द्वारा स्वराज्य' (Swaraj Through Spinning) प्राप्त करना चाहिये। गाधी जी इस सत्य से भली प्रकार परिचित थे कि ग्रामीण जनता की गरीबी को दूर करने का एकमात्र उपाय चरखा ही हो सकता था। चरखा बेरोजगारी की कुंजी होने के अतिरिक्त खादी के उत्पादन को बढ़ाने का भी एक अच्छा साधन था। इस प्रकार चरखा देश में गाधी जी के आर्थिक तथा राजनैतिक स्वतन्त्रता आन्दोलन का एक आवश्यक अग बन गया था। अपने मित्र हकीम अजमलखा को १९२२ ई० में लिखे एक पत्र में गाधी जी ने लिखा था कि सम्भवत. चरखा चलाने तथा खादी पहनने के अतिरिक्त अन्य किसी दूसरे कार्य से अखिल भारतीय एकता की भावना उत्पन्न नही हो सकती है। खादी तथा स्वदेशी कपडा उद्योग का विकास गाधी जी के स्वदेशी आन्दोलन के प्रमुख अग थे।

गांधी जी के आर्थिक विचार तथा नीतिशास्त्र—गाधी जी के आर्थिक विचार समुचित मानव जीवन की अनेक समस्याओ तथा लक्ष्यो से गहरे प्रकार से सम्बन्धित थे। प्रसिद्ध फ्रान्सीसी अर्थशास्त्री सिसमण्डी (Sismondi) के समान गाधी जी का *यह विश्वास था कि अर्थशास्त्र को नीतिशास्त्र (Ethics) से अलग नही किया जा* सकता है क्योंकि जीवन का अध्ययन सम्पूर्ण रूप से किया जाना आवश्यक है। अर्थ-शास्त्र व नीति शास्त्र को अलग न करने के पक्ष के सम्बन्ध मे गाधी जी ने लिखा है कि "वह अर्थशास्त्र जो किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्र के नैतिक कल्याण के लिये धक्का पहुँचाता है अनैतिक है तथा इस कारण पापी है। उदाहरणार्थ जो अर्थशास्त्र एक देश को दूसरे देश का शिकार करने की आज्ञा देता है, वह अर्थशास्त्र अनैतिक है। 'Sweated labour' द्वारा बनी वस्तुओ को खरीदना तथा उपयोग करना पाप है। इसी प्रकार अमरीकी गेहूँ खाना पाप है जब देश मे गल्ला बेचने वालो के पास ग्राहकों का अभाव है। इसी प्रकार रीजेट स्ट्रीट (Regent Street) के बने बढ़िया वस्त्रो को पहनना भी पाप है जब मैं यह भली प्रकार जानता हूँ कि मेरे पडोसी जुलाहे के पास कपडा है जो मैं भली प्रकार पहन सकता हूं तथा जिस को पहन कर उसको भी रोटी तथा कपडा प्राप्त हो सकता है।"[8]

गाधी जी के विचार मे कोई उद्योग-विशेष इस कारण महत्वपूर्ण नही था कि वह उस उद्योग के निर्माताओं को अधिक लाभ प्रदान करता है। गाधी जी का कहना था कि किसी उद्योग की उपयोगिता की माप उस उद्योग के अशधारियो को प्राप्त होने वाले लाभाश की मात्रा से नही करनी चाहिये अपितु उस उद्योग के कारण समाज के लोगो के शरीर, आत्मा तथा रोजगार पर पड़ने वाले प्रभावो के आधार पर की जानी चाहिये। गाधी जी को अर्थशास्त्र के प्रसिद्ध माग व पूर्ति के नियम (प्रत्येक क्रेता को सबसे सस्ते पर खरीदना चाहिये तथा प्रत्येक विक्रेता को सबसे ऊँचे मूल्य पर वस्तु को बेचना चाहिये) से घृणा थी क्योकि यह नियम आर्थिक लाभ की सकुचित विचारधारा पर आधारित था। सामाजिक तथा नैतिक दृष्टिकोणो को आर्थिक नियमो के संसार से बिलकुल अलग करना पाप है। गाधी जी के लिये अहिंसा तथा प्यार जीवन के दो महान लक्ष्य थे तथा वे प्रत्येक आर्थिक नियम को इन महान लक्ष्यो की कसौटी पर तौलते थे। गाधी जी के लिये अहिंसा समाज में इच्छित सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक परिवर्तनों को लाने का केवल साधन ही नही थी बल्कि उनके विचारानुसार यह समाज के सारे आर्थिक व सामाजिक ढाँचे की आत्मा थी।

गाधी जी के आर्थिक विचारो के उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उनकी आर्थिक विचारधारा निम्न छ मुख्य सिद्धान्तो पर आधारित थी :

गाधीवादी अर्थशास्त्र के मौलिक सिद्धान्त

न्यूनतम आवश्यकताएँ (Minimum Wants)	मानव-आदर (Human Values)	अहिंसा (Non-Violence)	सादगी (Simplicity)	प्रन्यासित (Trusteeship)	विकेन्द्रीकरण (Decentralisation)
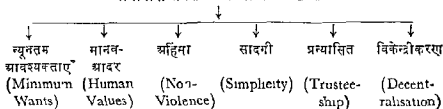
गांधीवाद[9] तथा साम्यवाद

यद्यपि गाधी जी के आर्थिक विचारो तथा साम्यवाद मे कुछ बातो मे समानता पाई जाती है परन्तु यह होते हुये भी गाधी जी की आर्थिक विचारधारा बहुत बातो मे साम्यवाद से भिन्न है। कुछ लोगों का कहना है कि मार्क्सवाद अथवा साम्यवाद तथा गाधीवाद एक प्रकार से समान हैं। इन लोगों का कहना है कि गाधीवाद अहिंसात्मक साम्यवाद (Non-violent Communism) है। यदि साम्यवाद मे से

---

९. गाधी जी गाधीवाद शब्द के प्रयोग के पक्ष मे नही थे। वे नही चाहते थे कि साम्यवाद के समान उनके आर्थिक विचार मत (creed) का रूप धारण करें।

हिंसा को घटा अथवा निकाल दिया जावे तो गाधीवाद शेष रह जावेगा। प्रो० जे० सी० कुमारप्पा (J. C. Kumarappa) ने, जिन्होने गाधी जी के विचारो का विशेष अध्ययन किया है, लिखा है कि यद्यपि रूसी आदर्श पूर्णतया गाधी जी के सर्वोदय समाज के आदर्शों से मेल नही खाता है, परन्तु फिर भी वर्तमान रूसी सामाजिक व्यवस्था बहुत बातो मे गाधी जी के आदर्शो से मिलती जुलती है। श्रीमन नारायण ने जो इस समय योजना आयोग के सदस्य है तथा जिन्होने प्रो० कुमारप्पा के समान गाधी जी के विचारो का विशेष अध्ययन किया है, प्रो० कुमारप्पा के इस विचार पर आश्चर्य प्रकट करते हुये लिखा है कि "यह कहना कि सर्वोदय तथा मार्क्सवाद कुछ बातो मे समान हैं तथा रूस मे गाधीवाद के सिद्धान्तो का पालन किया जाता है, सर्वोदय तथा मार्क्सवाद दोनो के साथ अन्याय करना है। वास्तव में दोनो की विचारधाराएँ एक दूसरे से बहुत दूर हैं तथा दोनो विचारधाराओं के आधारित सिद्धान्त एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं।[10] श्री के० जी० मशरूवाला (K. G. Mashruwala) ने भी इस विचार को पूर्णतया गलत बताया है कि गाधीवाद 'Communism minus violence' है। इस विचार की आलोचना करते हुये श्री मशरूवाला ने अपनी **'Gandhi and Marx'** नामक पुस्तिका मे लिखा है कि "गाधीवाद तथा मार्क्सवाद एक दूसरे मे इसी प्रकार भिन्न हैं जिस प्रकार कि हरा रंग लाल रग से भिन्न है, यद्यपि रग-अन्धे मनुष्य (colour-blind person) को हरा तथा लाल समान ही दिखाई दे सकते हैं"।[11]

सत आचार्य विनोवा भावे ने भी गाधीवाद व मार्क्सवाद मे भिन्नता सिद्ध करते हुये कहा है कि दोनो विचारधाराएँ एक दूसरे के कदापि समान नहीं है तथा दोनों मे मौलिक अन्तर हैं। मार्क्सवाद द्रव्य-प्रेरित पाश्चात्य सभ्यता पर आधारित है परन्तु गाधीवाद अहिंसा, आत्मा, सत्य, ईश्वर, सादगी तथा नैतिकता के महान तत्वों पर आधारित है। गाधी जी स्वय साम्यवाद को वर्तमान भौतिक सभ्यता का परिणाम समझते थे। वे कहा करते थे कि साम्यवाद के हिंसा पर आधारित होने तथा इसमे धर्म व परमेश्वर का कोई स्थान न होने के कारण मुझे इसमे घृणा है। गाधी जी के लिये धर्म ही जीवन था परन्तु एन्जिल्स (Engels) के लिये धर्म का पहला शब्द भी पाप था।

गांधीवाद तथा साम्यवाद में बहुत अन्तर है। गांधीवाद तथा साम्यवाद की तुलना संक्षेप में निम्नलिखित प्रकार की जा सकती है।

गान्धीवाद	साम्यवाद
(१) साम्यवाद का दृष्टिकोण क्रान्तिकारी है। यह अपने उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये हिंसात्मक साधनो के प्रयोग में भारी विश्वास करता है।	(१) गाधीवाद शान्ती का आदोलन है। इसमें हिंसा का कोई स्थान नही है। अहिंसा गान्धीवाद की आधारशिला है।
(२) साम्यवाद मे लक्ष्य ही महत्वपूर्ण है। निर्धारित लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिये कैसे भी साधनो को प्रयोग मे लाया जा सकता है। साम्यवाद मे लक्ष्य ही साधनो की अच्छाई को सिद्ध करते हैं। यही कारण है कि समाज मे शोषण व आर्थिक असमानता को समाप्त करने के लिये साम्यवादी हिंसात्मक साधनो का भी प्रयोग करते हैं।	(२) गान्धीवाद मे लक्ष्यो के साथ-साथ साधनो का भी समान महत्व है। गान्धी जी का पूर्ण विश्वास था कि जब अच्छे लक्ष्य को अनुचित व बुरे साधनो द्वारा प्राप्त किया जाता है तो उस लक्ष्य की अच्छाई काफी अश तक नष्ट हो जाती है। वे पूँजीपतियो के प्रति घृणा करने के स्थान पर उनके हृदयो को प्रेम के द्वारा बदलना चाहते थे। यही कारण है कि गाधी जी के आर्थिक विचारो तथा आर्थिक कार्यक्रमो मे trusteeship के सिद्धान्त का विशेष महत्व है।
(३) साम्यवाद श्रमिको की तानाशाही (Dictatorship of the Proletariat) को जन्म देता है।	(३) गाधीवाद का विचार वर्ग-हीन समाज की शिला पर आधारित है।
(४) साम्यवाद का दृष्टिकोण केवल भौतिक है। सभी क्रियाओं को केवल आर्थिक अथवा भौतिक कल्याण की अधूरी तराजू पर तोला जाता है।	(४) गाधीवाद मे आर्थिक दृष्टिकोण के साथ-साथ धार्मिक व नैतिक दृष्टिकोणों को भी समान महत्व दिया गया है।
(५) साम्यवाद मे अर्थव्यवस्था के विकेन्द्रीकरण, लघु उद्योगो के विकास, सहकारिता इत्यादि को कोई विशेष महत्व नही दिया जाता है।	(५) गाधीवाद मे विकेन्द्रीकरण को एक मौलिक सिद्धान्त का उच्च स्थान प्राप्त है। सहकारिता तथा कुटीर व ग्राम उद्योग गाधीवाद के एक विशेष अङ्ग हैं।

(६) साम्यवाद एक अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक वर्ग आन्दोलन है।	(६) गांधीवाद किसी विशेष वर्ग तक ही सीमित नहीं है। गाधी जी के आर्थिक विचार जिन मौलिक सिद्धान्तों पर आधारित है उनका पालन सभी राष्ट्र व सामाजिक वर्ग कर सकते हैं।
(७) साम्यवाद मे व्यक्तिगत सम्पत्ति का उन्मूलन किया जाता है। उत्पादन के सभी साधनो पर राज्य का अधिकार होता है।	(७) गाधी जी व्यक्तिगत सम्पत्ति की संस्था के विरोधी नहीं थे तथा न ही वे राज्य को साम्यवाद के समान अधिक सत्ता प्रदान करने के पक्ष में थे। वे मनुष्य के व्यक्तित्व मे विश्वास करते थे।
(८) साम्यवाद मे तानाशाही होती है।	(८) गाधीवाद मे लोकतन्त्र का एक विशेष महत्व है।

गांधी जी के आर्थिक विचारों का प्रभाव

गाधी जी एक महान पुरुष थे तथा उनका व्यक्तित्व बहुत ऊँचा था। उनके विचारो का प्रभाव केवल भारत तक ही सीमित नहीं रहा है अपितु ससार के अन्य देशो मे भी उनके विचारो के प्रभाव के चिन्ह देखे जा सकते हैं। यद्यपि भारतवष मे गाधी जी के आर्थिक विचारो का सरकार की आर्थिक नीतियो तथा भारतवासियों के चरित्र पर उतना गहरा प्रभाव नही पडा है जितना कि पडना चाहिये था, फिर भी उनके विचारो का प्रभाव सरकार की नीतियो पर काफी पडा है। देश मे सहकारिता के आन्दोलन का गत शताब्दी मे हुआ विकास, जमीदारी प्रथा का उन्मूलन, घरेलू तथा लघु उद्योगो का विकास, भारी तथा मूल उद्योगो का राष्ट्रीयकरण, ग्रामीण साख वित्त सहायता की सुविधायें इत्यादि सभी पर गाधी जी के विचारो का प्रभाव है। भारत सरकार की नीति देश मे समाजवादी समाज का निर्माण करना है। परन्तु स्वय यह नीति भी गाधी जी के विचारो पर ही आधारित है। कांग्रेस सरकार जिसके सभी मन्त्रियो पर गाधी जी के विचारो का बहुत गहरा प्रभाव है उनके विचारो को सरकारी नीतियों के रूप मे कार्यरूप देने मे प्रयत्नशील हैं। पडित जवाहरलाल नेहरू ने गाधी जी के विचारो का, देश मे सरकारी नीतियों के क्षेत्र मे प्रयोग करने के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी प्रचार किया है। पचशील की नीति जिसको ससार के अनेक देशो ने स्वीकार किया है, गान्धी जी के विचारो का ही प्रतिरूप है। आचार्य बिनोवा भावे तथा जयप्रकाश जैसे महान राष्ट्रीय नेता भूदान, सम्पत्तिदान व श्रमदान आन्दोलन के द्वारा अहिंमात्मक ढग से धन का समान वितरण करने मे व्यस्त हैं तथा गान्धीजी के विचारो का प्रचार कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त भारत सेवक समाज भी पडित जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व मे गाधी

जी के सर्वोदय समाज के उद्देश्यों की पूर्ति करने का भरसक प्रयत्न कर रहा है। देश के सविधान मे भी गांधी जी के विचारो को मुख्य स्थान प्राप्त है। देश के अनेक विश्वविद्यालयो मे गांधी जी के आर्थिक विचारो पर अनुसन्धान हो रहे है।

भारत के बाहर भी विदेशो मे गाधी जी के विचारो को समझाने का प्रयत्न किया गया है तथा किया जा रहा है। अमेरिका, रूस, इगलैंड तथा यूरोप के अन्य देशो से लोग भारत गाँधी जी के तत्वज्ञान का अध्ययन करने के उद्देश्य से आते है। U. N. O. मे भी आज गांधी जी के इस मौलिक सिद्धान्त को स्वीकार किया जाने लगा है कि राष्ट्रो को अपने सभी आपसी झगड़ो को अहिंसात्मक व शान्तिमय उपायों से सुलझाना चाहिये। गाधी शान्ति सस्थापन (Gandhi Peace Foundation) का एक शिष्टमण्डल (mission) हाल ही मे भारत से अमरीका तथा अन्य पाश्चात्य देशो मे गांधी जी के विचारो तथा तत्वज्ञान का प्रचार करने के उद्देश्य से गया था। भारत के भूतपूर्व गवर्नर-जनरल श्री सी. राजगोपालाचारी (C. Rajgopalachari) इस शिष्टमण्डल के एक सदस्य थे।

सक्षेप मे यह कहना किसी प्रकार गलत न होगा कि गाधी जी के विचारो का सामान्यतः ससार के सभी देशो पर विशेषरूप से भारत मे विभिन्न आर्थिक व सामाजिक नीतियों पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

गांधी जी के विचारो का आलोचनात्मक आगणन

गाँधी जी का नाम देश के समाज सुधारो के इतिहास मे सदा अमर रहेगा। वे एक महान राजनैतिक तत्वज्ञानी तथा क्रान्तिकारी थे। परन्तु यह सब होते हुये भी उन के विचारो में सन्दर्भ का अभाव है। उदाहरणार्थ विकेन्द्रीकरण तथा राष्ट्रीकरण मे किस प्रकार से सयोग हो सकता है यह समझना कठिन है। इसी प्रकार उन के simple living and high thinking के विचार की भी आलोचना की जाती है। यह ठीक ही कहा जाता है कि गाधी जी का सादगी का सिद्धान्त आर्थिक प्रगति के प्रतिकूल है। व्यक्तिगत सम्पत्ति की सस्था के सम्बन्ध मे गाधी जी के विचार यूटोपियाई समाजवादियों (Utopian socialists) के समान थे। गाँधी जी के आर्थिक विचार बिखरे हुये है तथा इन विचारो का विश्लेषण करना आवश्यक है। यही कारण है कि गाधी जी एडम स्मिथ, रिकार्डो, मार्क्स तथा कीन्स के समान आर्थिक सिद्धान्तो तथा नीतियो को प्रसिद्ध पुस्तक के रूप मे प्रस्तुत नहीं कर सके थे। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र उनके जीवन के व्यापक लक्ष्य का केवल एक अग था। स्वयं सन्त होने के नाते वे साधारण मनुष्य की मनोवृत्ति को पूर्णतया समझने में असमर्थ थे। उन का वर्तमान युग मे एक ऐसे मनुष्य की कल्पना करना जिस की आवश्यकतायें सीमित हो, जो अहिंसा तथा त्याग का सच्चा पुजारी हो, एक आदर्श था जिस को ससार मे साधारण मनुष्य न तो प्राप्त ही कर सकता है न ही प्राप्त करने का प्रयत्न

करता है। आज साधारण मनुष्य तो क्या, बल्कि गांधीवादी भी यह स्वीकार करते हैं कि आज के मशीन युग मे गाधी जी के सभी विचारो का पालन करना साधारण मनुष्य के लिये असम्भव तो नही परन्तु कठिन अवश्य है।

विशेष अध्ययन सूची

1. D G Tendulkar . Mahatma · Life of Mohandas Karamchand Gandhi.
2. J. J. Anjaria : An Essay on Gandhian Economics.
3 M K. Gandhi : India of My Dreams.
4 Shriman Narayan : Principles of Gandhian Planning.
5. K G Mashruwala Gandhiji and Marx.
6. R K Prabhu & U. R. Rao The Mind of the Mahatma and Free India.
7 P K Gopalkrishnan . Development of Economic Ideas in India, Chapter, VII

प्रश्न

1 Discuss the contribution of Mahatma Gandhi to economic thought

(आगरा, १९५१; राजस्थान, १९५७)

2. Examine critically the basic principles of the Gandhian school of economic thought

(आगरा, १९५३, राजस्थान, १९६०.)

3 Compare and contrast the economic ideas of Mahatma Gandhi with the doctrines of communism

(आगरा, १९५४, १९५६, राजस्थान, १९५८,१९६१.)

4 Write an essay, not exceeding eight pages of your answer book on the contribution of Mahatma Gandhi to economic thought

(आगरा, १९५५)

5, 'One has to interpret Gandhiji's economic ideas and build up what may be described as Gandhian economic thought.' (*vakil*) Elucidate,

(आगरा, १९५६, १९६२)

6 *What are the basic ideas behind Gandhian economics?* Examine critically their practicability.

(आगरा, १९६१.)

7. "Sarvodaya is communism minus violence'. Discuss.

(कर्नाटक, १९५८.)

8. Examine critically the basic principles of the Gandhian School of Economics.

(राजस्थान, १९६२)

अध्याय ३८

वर्तमान भारत में आर्थिक विचार

(Economic Ideas in Modern India)

दादा भाई नौरोजी, महादेव गोविन्द रानाडे, रोमेश चन्द दत्त के महत्वपूर्ण आर्थिक विचारो के पश्चात भारत मे आर्थिक साहित्य का निरन्तर विकास हो रहा है। भारतीय अर्थशास्त्रियो ने अनेक भारतीय आर्थिक समस्याओ का समय समय पर अध्ययन किया है तथा उनके सम्बन्ध मे अपने सुझाव दिये है। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा समय समय पर नियुक्त की गई समितियाँ तथा आयोगों ने भी अपनी रिपोर्टों मे देश की अनेक आर्थिक समस्याओ की जाच तथा अध्ययन किया है तथा इन समस्याओ के सम्बन्ध मे अपने सुझाव दिये हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वर्तमान भारत मे आर्थिक विचारो के दो प्रमुख स्रोत भारतीय अर्थशास्त्रियो के लेख, पुस्तिकाये तथा पुस्तके तथा सरकारी रिपोर्ट है। सरकारी रिपोर्टों के अतिरिक्त रिजर्व बेंक ऑफ इडिया द्वारा नियुक्त समितियो की रिपोर्टों मे भी भारतीय आर्थिक समस्याओ का अध्ययन किया गया है। उदाहरणार्थ अखिल भारतीय ग्रामीण साख जाच समिति की रिपोर्ट जो १९५४ ई० मे प्रकाशित हुई है, भारतीय ग्रामीण साख के विषय पर एक महत्वपूर्ण लेखपत्र है।

सरकारी रिपोर्ट

काफी समय से सरकारी रिपोर्टों मे भारत की आर्थिक समस्याओ का अध्ययन किया गया है। १९१४ ई० मे नियुक्त चैम्बरलेन आयोग (Chamberlain Commission) १९२५ ई० में नियुक्त हिल्टन यग आयोग (Hilton Young Commission), १९१९ ई० मे बेबिंगटन स्मिथ समिति मे (Babington Smith Committee); फावलर समिति (Fowler Committee), १९२८ ई० में नियुक्त राजकीय कृषि आयोग (Royal Commission on Agriculture (1928), १९१६ ई० मे नियुक्त औद्योगिक आयोग ((Industrial Commission. (1916), १९३१ ई० में नियुक्त राजकीय श्रम आयोग (Royal Commisson on labour, (1931) १९२१ ई० तथा १९३६ ई० मे नियुक्त रेल समस्याओ सम्बन्धी अकवर्थ तथा वेजउड (The AckWorth and Wedgewood Committees on Railway Pro-

blems in 1921 : and 1931); १९४६ ई० में नियुक्त श्रम समस्याओं के अध्ययन सम्बन्धी रिगे समिति (The Rege Committee on Labour problems 1946); १९३०-३१ ई० में नियुक्त बैंकिंग जांच समिति (The Banking Enquiry Committee, 1930-31); १९५३ ई० में नियुक्त करारोपण जांच आयोग (Taxation Enquiry Commission, (1953) तथा राष्ट्रीय योजना आयोग (National Planning Commission) इत्यादि की रिपोर्टों में देश की भिन्न आर्थिक समस्याओं का अध्ययन किया गया है। इसके अतिरिक्त देश मे भिन्न प्रान्तीय सरकारो द्वारा भी समय समय पर नियुक्त की गई समितियो तथा आयोगों की रिपोर्ट है जिनमें भिन्न-भिन्न क्षेत्रीय तथा प्रान्तीय आर्थिक समस्याओ का अध्ययन किया गया है। सरकारी तथा रिजर्व बैंक की रिपोर्टों के द्वारा देश की आर्थिक स्थिति सम्बन्धी आकडे तथा अन्य प्रकार की महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती है।

भारतीय विश्वविद्यालयों में अनुसंधान तथा अर्थशास्त्रियों के विद्योचित लेख व पुस्तके इत्यादि

भारत तथा राज्य सरकारो की रिपोर्टों तथा रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, भारतीय अनुसूचित बैंको के सघ द्वारा प्रकाशित अनेक पत्रिकाओ, जो आर्थिक समस्याओ के अध्ययन के दृष्टिकोण से बहुत ही महत्वपूर्ण लेख पत्र है, के अतिरिक्त देश मे भिन्न स्थानो (विशेषकर कलकत्ता, बम्बई तथा देहली मे) साप्ताहिक, द्विसाप्ताहिक तथा मासिक आर्थिक पत्रिकाये भी प्रकाशित होती है। इन पत्रिकाओ मे, जिनमे **Commerce, Eastern Economist, Capital, Indian Finance, Economic Review, Economic Weekly** इत्यादि के नाम विशेषरूप मे उल्लेखनीय है, देश की आर्थिक व वाणिज्य स्थिति सम्बन्धी आवश्यक सख्या शास्त्रीय आकडे तथा लेख प्रकाशित होते है।

परन्तु उपरोक्त स्रोतो के अतिरिक्त भारत मे अर्थशास्त्र की काफी मात्रा मे विषय सामग्री भारतीय अर्थशास्त्रियों द्वारा लिखित विद्योचित लेखो, पुस्तिकाओ तथा पुस्तको से प्राप्त होती है। आज भारतीय विश्वविद्यालयो मे कुशल प्रोफेसरो की देखरेख मे सनातक अनेक आर्थिक विषयो पर अनुसधान करने मे व्यस्त है। इन अनुसधानों के द्वारा नई आर्थिक समस्याओ का व्यापक अध्ययन तथा पुरानी आर्थिक समस्याओ का बढने हुये नये ज्ञान की सहायता से पुनर्मध्ययन किया जाता है। इसके फलस्वरूप देश की आर्थिक समस्याओ को ठीक-ठीक समझने मे भारी सहायता मिलती है। बम्बई विश्वविद्यालय मे Bombay School of Economics, देहली विश्वविद्यालय में Institute of Economic Growth तथा Delhi School of Economics, पूना विश्वविद्यालय मे Institute of Economics and Political Science इत्यादि संस्थाओ मे देश की विभिन्न आर्थिक समस्याओ के अध्ययन सम्बन्धी प्रशसनीय अनुसधान कार्य किया गया है।

देश मे जिन वर्तमान अर्थशास्त्रियों ने महत्वपूर्ण विद्योचित अध्ययन किया है तथा प्रसिद्ध पुस्तकें लिख कर देश की आर्थिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है, उनमें प्रो० सी० एन० वकील, प्रो० के० टी० शाह, प्रो० जे० के० महता, डा० वी० के० आर० वी० राव, डा० डी० आर० गेडगिल, डा० ए० के० दासगुप्ता, डा० आर० बालकृष्ण, डा० बी० आर० शिनोय तथा डा० राधाकमल मुकर्जी के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। भारतीय अर्थशास्त्रियो के भारतीय अर्थशास्त्र के प्रति विद्योचित योगदान का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है।

(१) आर्थिक सिद्धान्त (Economic Theory)

भारतीय अर्थशास्त्रियो का आर्थिक सिद्धान्त के क्षेत्र मे पाश्चात्य अर्थशास्त्रियो के समान, कोई विशेष विद्योचित योगदान नही है। केवल कुछ ही को छोड कर, शेष सभी भारतीय अर्थशास्त्रियों का अध्ययन तथा कार्य केवल प्रयुक्त अर्थशास्त्र (applied economics) के क्षेत्र तक ही सीमित है। जिन कुछ भारतीय अर्थशास्त्रियो ने आर्थिक सिद्धान्त के क्षेत्र मे लेखन किया है उनमे डा० ए० के० दासगुप्ता, प्रो० जे० के० महता, प्रो० वी० वी० कृष्णामूर्ती, स्वर्गीय प्रो० बृजनारायन तथा श्री तापस मजूमदार के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

(२) सार्वजनिक वित्त व करारोपण (Public Finance and Taxation)

आर्थिक सिद्धान्त की अपेक्षा सार्वजनिक वित्त व करारोपण के क्षेत्र मे भारतीय अर्थशास्त्रियो का लेखन कार्य गुणात्मक तथा परिमाणात्मक दोनों ही दृष्टिकोणो से प्रशसाजनक है। इस विषय पर काम करने वाले अर्थशास्त्रियो में डा० के० टी० शाह, डा० एम० एच० गोपाल डा० आर० एन० त्रिपाठी डा० बी० आर० मिश्रा, तथा डा० आर० एन० भार्गव के नाम उल्लेखनीय है।

(३) कृषि (Agriculture)

सार्वजनिक वित्त व करारोपण के समान भारतीय अर्थशास्त्रियो ने कृषि-समस्याओ का भी काफी अध्ययन किया है। भारत के समान कृषि प्रधान देश मे यह होना स्वाभाविक ही है। कृषि अर्थव्यवस्था की विभिन्न समस्याओ को जिन भारतीय अर्थशास्त्रियो ने विशेषरूप से अपना अध्ययन विषय बनाया है उनमे पूना के प्रो० डी० आर० गाडगिल, लखनऊ विश्वविद्यालय के डा० राधाकमल मुकर्जी, बम्बई के प्रो० एम० एल० दान्तवाला, श्री एच० डी० मालविया तथा श्री० के० मुकर्जी के नाम उल्लेखनीय है।

(४) आर्थिक विचारधाराओ का इतिहास (History of Economic Thought)

उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त (Advanced Economic Theory) के समान आर्थिक विचारधाराओं के इतिहास के विषय के क्षेत्र मे भी भारतीय अर्थ-

शास्त्रियों का कार्य प्रशंसनीय नहीं है। इस विषय पर प्रो० के० टी० शाह, प्रो० रंगास्वामी आयंगर, प्रो० व्रजनारायन, श्री पी० के० जेसवाल, श्री एस० के० दास तथा श्री पी० के० गोपालकृष्णन ने पुस्तकें लिखी हैं।

(५) श्रम समस्याएं (Labour Problems)

देश में श्रम समस्याओं के क्षेत्र में काफी लेखन कार्य किया गया है। औद्योगिक तथा कृषि श्रम की अनेक समस्याओं का अनेक भारतीय अर्थशास्त्रियों ने अध्ययन किया है। डा० पी० एम० लोकनाथन, प्रो० एस० पी० मिश्रा, डा० राधाकमल मुकर्जी, डा० आर० बालकृष्ण, श्री डी० डी० काजी, श्री एस० जे० पटेल, डा० एन० दास तथा डा० आर० सी० सक्सेना के नाम श्रम समस्याओं सम्बन्धी अध्ययन करने वाले भारतीय अर्थशास्त्रियों में उल्लेखनीय हैं।

(६) सहकारिता (Cooperation)

भारतीय अर्थशास्त्रियों ने तथा सरकार ने सहकारिता पर भी काफी लिखा है। सर्वश्री के० जी० सरकार, ए० आई० कुरेशी, वी० एन० महता, के० आर० कुनहन्नी तथा मी० वी० मेमोरिया के नाम उल्लेखनीय हैं।

(७) आर्थिक इतिहास (Economic Histroy)

भारत के आर्थिक इतिहास के विषय के सम्बन्ध में भारतीय अर्थशास्त्रियों का लेखन कार्य प्रशंसाजनक है। श्री रोमेशदत्त, डा० राधाकमल मुकर्जी, डा० डी० आर० गेडगिल, डा० डी० टी० लकड़ावाला, प्रो० व्रजनारायन, श्री वी० वी० विस्थल, तथा प्रो० पी०पी० पिल्लई के नाम इस विषय पर लिखने वाले अर्थशास्त्रियों में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(८) बैंकिंग तथा मुद्रा बाजार (Banking and Money Market)

बैंकिंग तथा मुद्रा बाजार के आर्थिक तथा वित्तीय विषयों पर भारतीय अर्थशास्त्रियों ने काफी मात्रा में अच्छे प्रकार का लेखन कार्य किया है। जिन भारतीय अर्थशास्त्रियों ने भारतीय बैंकिंग तथा भारतीय मुद्रा बाजार के विषयों पर पुस्तकों के रूप में अपने विचार व्यक्त किये हैं उनमें श्री के० सी० लालवानी, डा० के० एन० राज, डा० एम० एन० सेन, डा० वी० आर० शिनोय, डा० एस० के० मुरनजन, डा० के० के० शर्मा, डा० सी० डी० देशमुख, श्री वी० रामाराव, प्रो० वी० टी० ठाकुर, डा० एम० के० बसु तथा प्रो० बी० इ० दादाचनजी के नाम उल्लेनीय हैं।

(९) उद्योग तथा व्यापार (Industry and Trade)

इस क्षेत्र में भी भारतीय अर्थशास्त्रियों के लेखन कार्य की संख्या काफी है। डा० एन दास, डा० पी० एस० लोकनायन, डा० एम० के० बसू, डा० पी० सी० ... गांगुली तथा प्रो० बी० सी० घोष के नाम उल्लेखनीय हैं।

(१०) आर्थिक नियोजन तथा विकास (Economic Planning and Growth)

गत शताब्दी मे देश मे नियोजन की नीति को अपनाने के कारण भारतीय अर्थशास्त्रियो ने देश मे नियोजन तथा आर्थिक विकास की समस्याओ का अध्ययन किया है। आर्थिक नियोजन तथा आर्थिक विकास के विषयो को अध्ययन करने वाले भारतीय अर्थशास्त्रियों मे प्रो० अलक घोष, डा० डी० आर० गाडगिल, डा० वी० के० आर० वी० राव, डा० बी० आर० शिनोय, डा० आर० बालकृष्ण, प्रो० पी० आर० ब्रह्मानन्द, सी० एन० वकील तथा आई० एस० गुलाटी के नाम विशेष रूप मे उल्लेखनीय हैं।

(११) चलन, मुद्रा तथा राष्ट्रीय आय (Currency, Money and National Income)

इस क्षेत्र मे भी देश मे अर्थशास्त्रियो का अध्ययन कार्य काफी है। डा० बी० एन० गंगोली, प्रो० बी० टी० ठाकुर, डा० डी० के० मलहोत्रा, इत्यादि ने अच्छा कार्य किया है।

(१२) परिवहन (Transport)

भारत में रेल, सडक, हवाई तथा समुद्र परिवहन समस्याओ का जिन अर्थशास्त्रियो ने अध्ययन किया है उनमे प्रो० आर० डी० तिवारी, डा० अम्बाप्रसाद, डा० आर० सी० सक्सेना, तथा सर्वश्री टी० वी० रामानुजन, यू० एस० राव, एल० ए० नटेसन, एम० आर० धेकने के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

(१३) जनसख्या (Population)

भारत मे जनसख्या की समस्या का अध्ययन करने वाले भारतीय अर्थशास्त्रियो मे डा० एस० चन्द्रशेखर, डा० ज्ञानचन्द, तथा डा० पी० के व्टटल के नाम उल्लेखनीय है।

भारतीय अर्थशास्त्रियो ने, जैसा कि उपरोक्त अध्ययन से भली प्रकार ज्ञात होता है, अनेक भारतीय आर्थिक समस्याओ का अध्ययन किया है। परन्तु अन्य प्रयुक्त आर्थिक समस्याओ के अध्ययन की अपेक्षा आर्थिक सिद्धान्त तथा आर्थिक विचारधारा के इतिहास के विषयो पर भारतीय अर्थशास्त्रियो का योगदान बहुत कम रहा है तथा स्वर्गीय प्रो० ब्रजनारायन का यह कथन सत्य ही है कि "अर्थशास्त्र पर लिखने वाले भारतीय लेखकों ने अर्थशास्त्र के सिद्धान्त के क्षेत्र में कोई मूल काम नही किया है। उन का अधिकाश समय आर्थिक जीवन के सत्य तथा प्रयुक्त समस्याओ के अध्ययन करने मे व्यतीत हुआ है। उनका कार्य अधिकाश ऐतिहासिक, व्याख्यात्मक तथा वास्तविक है।"

भारतीय लेखको द्वारा अर्थशास्त्र के विभिन्न विषयो पर किये गये लेखन कार्यो की एक संक्षिप्त झांकी संलग्न सारणी मे दी गई है।

B. R. Adarkar : Federal Finance in India.
B B. Dasgupta : Our Plans and Our Public Finance.
R J. Chelliah : Fiscal Policy in Underdeveloped Countries with special reference to India.
B. V. Borkar · Public Finance and Full Employment with special reference to Underdeveloped Areas
Government of India : 1. Indian Taxation Enquiry Committee, 1924-25.
2. Taxation Enquiry Commission, 1953
3. Indian Tax Reforms : Report of a Survey by Nicholas Kaldor.
D. R. Gadgil : Federal Problems in India.
M H. Gopa · Financial Policy of the Indian Union Since Independence.
Gyan Chand : Local Finance in India.
J. Krishnaswamy : Studies in Local Finance and Taxation

(३)

कृषि

(Agriculture)

S. T. Thirumali · Postwar Agricultural Problems and Policies in India.
H. D. Malaviya : Land Reforms in India.
Radhakamal Mukerjee : 1. Planning the Country Side.
2. Food Supply.
P. A. Gopalkrishnan : India's Food Problem.
P. C. Bansil : India's Food Resources and Population.
G. D. Patel : Indian Land Problem and Legislation.
K. Mukerji · Land Reforms.
V. M. Dandekar : Use of Food Surpluses for Economic Development.
M. L. Dantwala · India's Food Problem.
Govt. of India : Studies in Agricultural Economics, 2 Vols.
Reserve Bank of India : 1. State Aid to Agriculturists in India.
2. All India Rural Credit Survey Committee's Report, 1954.

(६)

सहकारिता

(Cooperation)

Reserve Bank of India : Cooperative Movement of India; Annual Reviews.

K. R. Kulkarni Theory and Practice of Cooperation in India and Abroad.

H. G. P. Srivastava : Cooperation in India and Abroad

V. L Mehta · Cooperative Movement in New India.

A. S Qureshi : Future of the Cooperative Movement in India.

C. B. Memoria and R. D. Saxena · Cooperation in India.

K. G. Sarkar : Cooperative Movement in U. P.

(७)

आर्थिक इतिहास

(Economic History)

N C. Bandyopadhyaya : Economic Life and Progress in Ancient India

Romesh Dutt : Economic History of India under early British Rule.

N. C, Sinha : Studies in Indo-British Economy hundred years ago

Radhakamal Mukerjee : 1. Foundations of Indian Economics
2 Economic Problems of Modern India

Brij Narain : 1. Indian Economic Life . Past and Present.
2. Economic Problems : Prewar, War, and Postwar
3. Economic Structure of Free India.

Jadunath Sarkar : Economics of British India.

P. P. Pillai : Economic Conditions in India.

H. Venkata Subbiah Structural Basis of Indian Economy.

V. B. Vithal : Economic Conditions in India.

D. T. Lakdawala : International Aspects of Indian Economic Development

Wadia and Joshi : Wealth of India

D. R. Gadgil : 1. Economic Policy and Development.
2. Industrial Evaluation of India in recent times.

M. H. Gopal : Indian Economy Since Independence

(८)

बैंकिंग तथा मुद्रा बाजार

Banking and Money Market

K. N. Raj . Monetary Policy of the Reserve Bank of India

K. C. Lalwani : Functions and Working of the Reserve Bank of India.

B. Rama Rau . Evolution of Central Banking in India.

S. N. Sen : Central Banking in Underdeveloped Money Market.

K. K. Sharma Reserve Bank of India and Rural Credit.

N. I. Almaula : Operations of the Reserve Bank of India.

B. R. Shenoy : Sterling Assets of the Reserve Bank of India.

S. K. Basu · A Survey of Contemporary Banking Trends.

B. E. Dadachanji . A Reserve Bank for India and the Money Market.

C. D. Deshmukh : Central Banking in India. A Retrospect.

B. T. Thakur · Organisation of Indian Banking.

Brij Narain Money and Banking.

D. S. Savkar : Joint Stock Banking in India.

L. C. Jain · Indigeneous Banking in India.

S. K. Muranjan . Modern Banking in India

B. C. Ghose · A Study of Indian Money Market

Dass Gupta & R. Ghosh : Scheme for an Organised Bill Market

M. A. Mulky : The New Capital Issue Market i India.

S. L. N. Sinha · The Capital Market of India.

H. T. Pareek : The Bombay Money Market.

Wadia, P. A. and Joshi, Money and Money Market in India

Reserve Bank of India : 1. Reports on Currency and Finance.
2. Trends and Progress of Banking in India.
3. Functions and Working of the Reserve Bank of India
4. Land Mortgage Banks (1950).
5 Statistical Tables Relating to Banks in India.

(९)

उद्योग तथा व्यापार

Industry and Trade.

C. N. Vakil : Growth of Trade and Industry in Modern India.
B. C. Ghose : Industrial Organisation.
B. N. Ganguli Reconstruction of India's Foreign Trade.
P. C. Jain · Industrial Problems of India.
P. S. Lokanathan : Industrial Organisation in India.
S. K. Basu · 1. Industrial Finance in India.
2. Financing Postwar Industry.
Government of India . 1 Programmes of Industrial Development, 1951—56 and 1956—61.
2. Large Industrial Development in India, 1958.
3. The Karve Committee Report on Village and Small-Scale Industries, 1956.
Bhavatish Dutta · The Economics of Industrilisation.
Vakil, C N. and Munshi, M. C. Industrial Policy of India with special Reference to Customs Tariff.
N. Dass Industrial Enterprise in India.
Dr. P. C. Jain : Industrial Finance in India.

(१०)

आर्थिक नियोजन तथा विकास

(Economic Planning and Growth)

I. S. Gulati : Resource Prospects of the Third Plan.
B. R. Shenoy : Problems of Indian Economic Development.

Vakil, C. N. and Brahmanand, P. R. : 1. Planning for an Expanding Economy
2. Planning for a Shortage Economy : The Indian Experiment.

Alak Ghosh : New Horizons in Planning

R. Balakrishna : 1. Regional Planning in India
2. Review of Economic Growth in India

D. R. Gadgil : 1 Planning and Economic Policy in India.
2. Indian Planning and the Planning Commission.

V. K. R. V. Rao . Deficit financing, Capital Formation and Price Behaviour in an Underdeveloped Economy

Govt. of India : 1. First, Second and Third Five Year Plan Reports
2. Progress Reports of Plans.

Shriman Narayan . 1. Trends in Indian Planning.
2. Gandhian Economic Planning.

Birendra Kumar : An Introduction to Planning in India.

(११)

चलन, मुद्रा तथा राष्ट्रीय आय

(Currency, Money and National Income)

B. T. Thakur . Money, Its Nature and Management.

V. K. R. V. Rao : 1. National Income of British India 1931-32.
2 Postwar Rupee.

B. N. Ganguli : Devaluation of the Rupee.

D. K Malhotra . History and Problems of Indian Currency.

(१२)

परिवहन

(Transport)

R. D. Tiwari : Railway Rates in relation to Trade and Industry in India.

Amba Prasad : Indian Railways ; A Study in Public Utility Administration.

R. C. Saxena : Railway Finance in India.

T. V. Ramanujan : Functions of State Railways in Indian National Economy.

M. R. Dhekney : Air Transport in India.

U. S. Rao : Inland Water Navigation.

L. A. Natesan : State Management and Control of Railway in India.

Govt. of India : 1. Railways Since Independence.
2. Report on the Survey of Minor Ports in India.
3. Ministry of Railways annual Reports.

(१३)

जनसंख्या

(Population)

S. Chandrasekhar : 1. Demographic Disarmament for India.
2. Population Planning and Planned Parenthood in India.
3. Hungry People and Empty Lands.

Gyan Chand : India's Teeming Millions

Indian Economic Association : Annual Conference Number (1953)

Govt. of India : Census Reports 1951 and 1961.

P. K. Wattal : Population Problem in India.

विशेष अध्ययन सूची

1. Brij Narain : Tendencies of Recent Economic Thought.

प्रश्न

1. Assess the value of contributions of Indian Economists in the domains of economic theory and practice.

(राज०

2. Trace the development of Indian economic thought during the last fifty years.
(आगरा, १९४७)

3. 'Indian writers on economics have made no original contribution to the theory of economics. They are largely occupied with the facts of economic life and practical problems Their work is largely historical, descriptive and realistic'. (Brij Narain)
Discuss carefully the above statement.
(आगरा व राजस्थान, १९४८)

अनुक्रमणिका
(INDEX)